राधाकृष्ण-ग्रंथावली

पहला खंड

जिसमें

गोलोकवासी बाबू राधाकृष्णदास की कविताओं, लेखों,
जीवनचरित्रों तथा नाटकों का संग्रह है।

संकलनकर्त्ता और संपादक

श्यामसुंदरदास, बी० ए०

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

प्रथम संस्करण] १९३० [मूल्य ३)

Published by
K. Mittra,
at The Indian Press, Ltd.
Allahabad.

Printed by
A. Bose,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch.

निवेदन

गत ईसवी शताब्दी के अंतिम अंश में हिंदी-साहित्य-सेवियों में बाबू राधाकृष्णदास का एक विशेष स्थान था। उन्होंने हिंदी-भाषा और साहित्य की जो उस समय सेवा की थी वह बड़े महत्त्व की थी। हम यह भी कह सकते हैं कि भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने जिस नीति का अवलंबन कर देशहितैषी कार्यों की ओर ध्यान दिया था उनकी उस परंपरा को बनाए रखने और उसी मार्ग पर अंत समय तक चलने की दृढ़ता बाबू राधाकृष्णदास ने दिखाई थी। पर अब इन महोदय को लोग भूलते जा रहे हैं। काशी-नागरीप्रचारिणी सभा की सेवा में हम दोनों ने अनेक वर्षों तक एक साथ काम किया था अथवा मुझे इस बात के कहने में अत्यंत आनंद और अभिमान होता है कि हिंदी की सेवा में तत्पर रहने के लिये मुझे बाबू कार्तिकप्रसादजी खत्री निरंतर कहते रहते थे। वे नित्य नए नए उपायों और योजनाओं की ओर मेरा ध्यान दिलाते रहते थे, पर साहित्य-सेवा में दीक्षा देकर मुझे अग्रसर करने का श्रेय मेरे मित्र बाबू राधाकृष्णदास को प्राप्त है। हिंदी पुस्तकों की खोज का काम करने तथा प्राचीन अनुसंधानों के पीछे पड़ने की ओर उन्होंने मेरी प्रवृत्ति को उत्तेजना दी और उसे सुव्यवस्थित मार्ग पर लगाया था। अतएव केवल मित्रता के ही नाते नहीं, वरन् उनका जो मुझ पर उपकार है उससे किंचित् मात्र भी उऋण होने के निमित्त मैं अपना यह कर्तव्य समझता हूँ कि उनकी स्मृति तथा उनकी रचनाओं को, जहाँ तक मुझसे हो सके, स्थायी करने का उद्योग करूँ। इन्हीं कामनाओं से प्रेरित होकर मैंने राधाकृष्ण-ग्रंथावली को प्रकाशित

करने का आयोजन किया है। इसका पहला खंड तो अब प्रकाशित हो रहा है जिसमें उनकी रचित कविताओं, लेखों, जीवनचरित्रों तथा नाटकों का संग्रह है। दूसरे खंड में उपन्यासों तथा आख्यायिकाओं का संग्रह रहेगा। इस दूसरे खंड के साथ मेरी इच्छा उनका जीवन-चरित्र लिखने की भी है।

इस संग्रह के प्रस्तुत करने में पंडित केदारनाथ पाठक ने मेरी बड़ी सहायता की है अतएव उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट करता हूँ। साथ ही मैं काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा का भी अनुगृहीत हूँ कि उसने उन सब पुस्तकों आदि को इस संग्रह में सम्मिलित करने की अनुमति दे दी जिन पर उक्त सभा का स्वत्वाधिकार था। मुझे विश्वास है, हिंदी के प्रेमी पाठक इस राधाकृष्ण-ग्रंथावली का यथोचित आदर कर मेरे मित्र तथा हिंदी के एक प्रमुख सेवक की कृति और स्मृति को स्थायी करने में मेरी सहायता करेंगे।

काशी

श्यामसुंदरदास

विषय-सूची

कविता

[पृष्ठ १—६८]

लेख

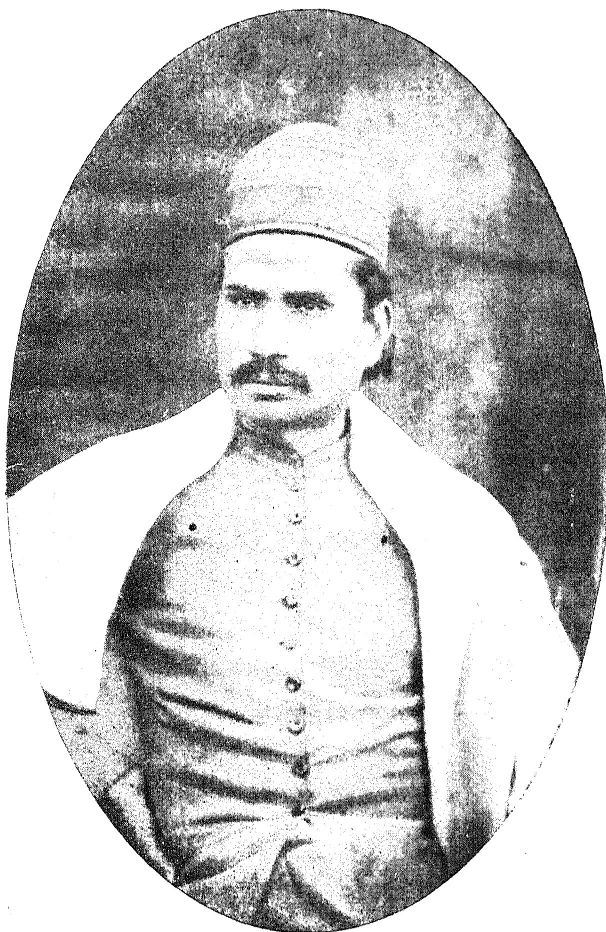
[पृष्ठ ६९—१५३]

जीवन-चरित्र

[पृष्ठ १५५—५४६]

नाटक

[पृष्ठ ५४७—८१९]



गोलोकवासी बाबू राधाकृष्णदास

कविता

(१) मेकडानेल पुष्पांजलि

जय मेकडानेल अति उदार दीनन-हितकारी।
नीति-निपुन, समदरसी, प्रजापुंज-सुखकारी॥
महा-अविद्या-तम-नासन मैं परम सहायक।
विद्या-वारिद बरसि हरसि शिक्षा-उन्नायक॥
हतभाग्य देश तुव समय मैं बहु बिधि सुख संपद लह्यो।
जय जयति लाट प्रिय लाट जय हृदय खोलि सबहिन कह्यो॥१॥

धन मेकडानेल लाट प्रजा के दुःख निवारे।
कचहरिया लीला सों सबके प्रान उबारे॥
धन उनइस सौ सन धन धन यह मास एपरिल।
धन तारीख अठारह जन-हिय-कमल गए खिल॥
जब लौं हिंदू हिंदी रहैं यह शुभ दिन न बिसारिहैं।
मेकडानेल नाम पवित्र यह नित सादर उच्चारिहैं॥ २॥

शिक्षा मैं ह्याँ के वासी सबहिन तें पाछे।
उरदू सीखै कौन न जानैं हिंदिहु आछे॥
दारिद बस अँगरेजी उरदू पढ़ि जु सकैं नहिं।
हिंदी सों न अदालत के कछु कारज निकरहिं॥
तासों विद्या सों हीन रहि दीन दुखित क्लेसित रहैं।
सुनि कै पुकार सो दुख हरयो तासों सब जय जय कहैं॥ ३॥

इक तौ महा कराल अकाल सतावन आयो।
दूजे ज्वाला प्लेग चारहू दिसि धधकायो॥
महा अराजकता राजत सब देस दुखारी।
पै तुम धीरज सहित देत सबही दुख टारी॥
केवल न विपति ही हरत तुम नव शिच्छा विस्तारिकै।
रच्छत सब भाँतिहि निज प्रजा अति सनेह हिय धारिकै॥ ४॥

प्रभो! हमारी दसा छिपी नहिं तुमसों नेकहु।
पुनि पुनि कहि कै तुम्हैं कहा हम देहिं दुःख बहु॥
हरौ पीर हे बृटिश वीर! अति धीर न्यायनिधि।
विद्या कला प्रचारि देहु सुख हमैं सबै विधि॥
इक नाथ तिहारी कृपा ही हमकों धीरज खंभ है।
रच्छौ, सिच्छौ सब दुख हरौ तुम्हराही अवलंब है॥ ५॥

तुम समान प्रभु कबौं न अबलौं मिल्यो रह्यो है।
जे जे सुख तुव समय लहे नहिं जात कह्यो है॥
रहै सदा तुम्हरी छाया हम सीस विराजत।
तुव अनुशासन पाइ सबै दुख हमरे भाजत॥
जद्यपि तुव अवधि बढ़ी तऊ जब तुव गमन विचारहीं।
थहराइ उठै हिय सुमिरि तुव गुनगन धीर न धारहीं॥ ६॥

निसि दिन वा करुणासय सों माँगैं सरसाए।
चिरजीवी तुम होहु कुशल सों सदा सुहाए॥
कीरति देवी सदा अचल तुव संग विराजैं।
विजय-लच्छमी चरनन सों लिपटी ही भ्राजैं॥
तुव सुजस-घटा छाई निरखि, मन मयूर हम सबन के।
नाचैं सनेह युत अनँद भरि, बिसरि सबै दुख भवन के॥ ७॥

कौन वस्तु हम दीन जगत मैं ऐसी पावैं।
तुव चरननि धरि भेट हृदय अभिलाष पुजावैं॥
भक्ति रत्न करि यत्न हृदय में धर्‍यो सोहायो।
सोई अमोलक रत्न जत्न सों सन्मुख लायो॥
हे दीनबंधु, करिकै दया ताको सादर लीजिए।
हम प्रजावृंद के हृदय को अति संतोषित कीजिए॥ ८॥

[१८९७ ई०]

---

(२) विजयिनी विलाप

अरे आजु चारहु दिसा छायो कहा विषाद ।
नर नारी व्याकुल फिरत पूरित आरत नाद ।।
श्याम ध्वजा फहरात क्यों जित तित लखियत आज ।
श्याम बसन धारन कियो क्यों सब राज-समाज ।।
मुख मलीन अति छीन दुति क्यों सब लोग लखात ।
करिकै कृपा बताइए मेरो हिय अकुलात ।।

'कहा तुम्हैं नहिं खबर' खबर अनरथ की आई ।
भारतेश्वरी विजयिनी यह जग छोड़ि सिधाई ।।
तोरि जगत सों नेह मोरि मुख जग के सुख सों ।
छोरि सबै धन धान्य बोरि जग सागर दुख सों ।।
बिमल कीर्ति फैलाइ, लोक करिकै यह निज बस ।
गई करन वह लोक विजय फैलावन निज जस ।।

मातृहीन सब प्रजावृंद करि, जगत रुलाई ।
मातु विजयिनी हाय हाय सुरलोक सिधाई ।।
भई अनाथिनि दिग दिगंत लौं पृथ्वी सारी ।
सब भूमंडल आजु शोक की मूरति धारी ।।
हाय दया की मूर्ति हाय विकटुरिया माता ।
हा ! अनाथ भारत को दुख में आश्रयदाता ।।

दीन करुन धुनि यही चहूँ दिसि गूँज रही है ।
उदासीनता महा बेबसी बरसि रही है ।।

हैं हैं कहत कहा अरे साँचहि फूटे भाग।
मातु विजयिनी ने कहा छाँड़्यो सुत-अनुराग ॥
जासु दया-पूरित हृदय लखि जन मुखहि मलीन।
पिघलि चलत हो धीर तजि मेटन को दुख दीन ॥

सो किमि गही कठोरता, लखि निज प्रजा-समाज।
दीन दुखी बिलखत गई कैसे तजि कै आज ॥
निज के दुख तृन सम तजति लखि कोउ प्रजा मलीन।
सो आश्वासन देत किन सबहि प्रजा लखि दीन ॥
अहह ! दैव कीनी कहा तोहि दया नहिं नेक।
क्यों तुम नित प्रति दीन कों देत कलेस अनेक ॥

तापैं भारत पैं कछू तुम्हरो कोप विसेख।
जबहिं यासु कछु दिन फिरत तबहिं सकत नहिं देख ॥
बहु दिन के बहु दुःख सहि जबहिं विजयिनी गोद।
हतभागी भारत लह्यो जबहिं कछू हिय मोद ॥
तबही तुम निर्दय दई सुख की सो आधार।
हरि लीनी अनयास ही बोरि दुःख मझधार ॥

क्यों तुमकों न्यायी कहत क्यों दयालु तुव नाम।
न्याय-रहित निर्दय अतिहि तेरे सबही काम ॥
अथवा भारत के विषय भूलत तुम निज बान।
भेद बताओ बेगही व्याकुल अतिसय प्रान ॥
दीनदयाल दयानिधान हरि भारत सों क्यों रूठे।
निज अपराध और पैं डारत न्यायी भए अनूठे ॥

बिनु तुव अनुशासन इक पातहुँ डोलि सकत नहिं प्यारे।
फिर क्यों ताको फल भोगत ये भारत प्रजा बिचारे ॥

कहो कौन के कहे महाभारत में सबहिं लराई।
भारत को निर्जीव कियो तुम सबै भाँति जदुराई॥
बचे बचाए कों प्रभास थल आपुस में कटवाई।
हा हा! भारत को अनाथ करि आपहुँ गए सिधाई॥

हा! कबहूँ वे दिन फिर ह्वैहैं वह समृद्धि सुख सोभा।
कै अब तरसि तरसि ससूसि कै दिन जैहैं सब छोभा॥
कहाँ परीच्छित कहँ जनमेजय कहँ विक्रम कहँ भोज।
नंद-वंश कहँ चंद्रगुप्त कहँ हाय कहाँ वह ओज॥
काल-बिबस जौ गए नृपति वे तौ क्यों उनके बालक।
भए न उनके सम, काकी अज्ञा उपजे कुल-घालक॥

पृथ्वीराज जयचंद कासु प्रेरण सों बैर बढ़ाई।
आपुस मैं कटि मरे विदेशी यवनहिं लियो बुलाई॥
वाही दिन भारत स्वतंत्रता जड़ मैं तेल पिलाई।
बैठे आप तमासा देखत, फिरैं सबै बिलखाई॥
मथि लीने सब सहज प्राकृतिक गुण भारतवासिन के।
रहि गए सीठी छाछ सदृश ये दर दर चुनते तिनके॥

अकबर जहाँगीर से शाहन को किन राज दिवायो।
होनहार दारा शिकोह कों क्यों हाथी भड़कायो॥
आपुस के झगड़े बढ़ाइ क्यों कियो अराजक देशहिं।
दीन प्रजा दुख भार दुखित ह्वै कहँ लौं सहै कलेशहिं॥
ऐसे मैं करि कृपा भेज न्यायी अँगरेजहिं राजा।
सूखत धान अमृत बरसा सी किए कछुक सुख-साजा॥
इतनी कसर कहो क्यों राखी जासों सब दुख भाजत।
महरानी क्यों इतै आइ नहिं भारत माँहि विराजत॥

निज नैननि लखि निज रैयत दुख दया हृदय उपजावति ।
दारिद फलइ अविद्या दुख को भारत सों भगवावति ॥
भला सोऊ नहिं सही रहति जीवित जोपै महरानी ।
तऊ उतहिं सों बैठि हरति दुख बरसि सुधा सम बानी ॥

सोऊ सही गई नहिं तुमसों तिनको हूँ हरि लीनो ।
अहह ! दैव निर्दय तुम अतिसय महा कष्ट यह दीनो ॥
तिरसठ बरस जासु छाया सुख कीनो भारतबासी ।
ताकों अनायास हरि लीनी सब कछु आसा नासी ॥
रे बीसवीं सदी तेरो पैरो कैसो जग आयो ।
या बसुधा को अमल चंद्र हरि चहुँ दिसि तम फैलायो ॥

जाको प्रताप छायो दिगंत ।
जाके प्रताप बसुधा कपंत ॥
जो अबला-कुल में जनम लीन ।
अतिसय सबलन कों जेर कीन ॥
जाके प्रताप दिनकर डरात ।
दिन रहत सदा नहिं होत रात ॥

जाको मुख ताकत अति ससंक ।
महिपाल जगत के मनहुँ रंक ॥
जाको प्रताप सागर तरंग ।
लै करत जगत में नाच रंग ॥
फहरात विजय ध्वज अति उतंग ।
लखि लखि सब अरि हिय रहत दंग ॥

सहि सकत न जासु प्रताप दाप ।
जिमि हरि पद अरओ न जगत नाप ॥

जल पियत सिंह अरु अजा साथ ।
विद्युत ठाढ़ी जहँ बाँधि हाथ ॥
जा सम न और तिय सुनी कान ।
जनमे न जगत नर जा समान ॥

जाकी न दया को कहूँ अंत ।
लहि जासु छाँह सब सुख बसंत ॥
जो जीव मात्र पै करत प्रीत ।
मनु निज कुटुंब सम सबै मीत ॥
सुनि जासु सुधा सम मधुर बैन ।
सब प्रजापुंज अति लहत चैन ॥

अति कृपा प्रेम भरि जासु दीठ ।
लखि, हरत प्रजा के दुखहि नीठ ॥
सो अमित गुननि की रासि मात ।
हा हा ! विनु जीवन है लखात ॥
तजि सबै दया अरु मोह हाय !
सुरलोक गई कैसे सिधाय ॥

तजि अखिल भुवन सागर अगाध ।
भुव तीन हाथ कीन्हो समाध ॥
हा हा ! यह दुख नहिं सह्यो जात ।
चहुँ ओर यहै धुनि है सुनात ॥
हा मातु ! हाय हा मातु हाय !
तजि नेह कितै तू छिपी जाय ॥

बोलत न हाय क्यों निठुर होय ।
देखो न पुत्र तुव रहे रोय ॥

कहँ गई तुम्हारी दया माय।
किन लेत दुखित सुश्र हिय लगाय॥
हा हा! विधना तुम भए बाम।
मैया ने प्रीति तजी ललाम॥

हैं सुने जगत बहु पूत ढीठ।
पै तजत न मैया प्रीति नीठ॥
करि अबस माय-सुत दिय छुड़ाय।
तो सों न निठुर बिधि कछु बसाय॥

यह मानी इक दिन अवसि जग मैं मरनो होय।
पै निज स्वारथ हेतु लगि धीर धरत नहिं कोय॥
नहिं संसय इननैं लह्यो पूर्ण आयु सुखपूर्ण।
पै निज स्वारथ को सुमिरि होत हृदय अति चूर्ण॥
अस्तु न कछु बस आपनो भगवत इच्छा माहिं।
तासों करि संतोष अब यह माँगत प्रभु पाहिं॥

कीरति बिमल सदैव जगत मैं अविचल राजै।
परमातमा समीप पवित्रातमा विराजै॥
रहै वंस मैं राज लच्छमी नित थिर होई।
रहै प्रजा नित सुखी दुखी जग होइ न कोई॥
तुव असीस या देस को दुख दारिद सबही वहै।
उन्नति गौरव सब पूर्व सम यह भारत फिर सों लहै॥

[सरस्वती भाग २]

---

(३) पृथ्वीराज-प्रयाण

जननी हमैं सीख अब दीजै ।
परम कुपूत पूत तेरो यह ताहि विदा अब कीजै ।।
पूत कुपूत होत बहुतै पै होत कुमाता नाहीं ।
बरु कुपूत पै अधिक मातु रुचि होतै रही सदाहीं ।।
करिकै यहै भरोस मातु माँगत तुम पै कर जोरे ।
छमियो सब अपराध हमारे पुत्र-सनेह निहोरे ।।

करिकै बहुत साध जनमायो बहु आसा करि पोष्यो ।
राजछत्र दै मान बढ़ायो सबहिँ भाँति संतोष्यो ।।
पै या भाग्यहीन नैं माता ! कोउ आसा न पुरायो ।
केवल बोझ भयो तुव ऊपर दिन दिन अधिक सतायो ।।
रक्तप्रवाह बहाइ, जीति बहु देस, छत्र सिर धार्यो ।
राज बढ़ावन लोभ मातु हम देश-बंधु बहु मार्यो ।।

सोइ सब पाप आइ सिर नाच्यो छलियन के छल हार्यो ।
हाय मातु ! तोहि दै मलेच्छ कर चहत बिदेश सिधार्यो ।।
परम पवित्र शस्य-धन-पूरित रत्नमई सुखदाई ।
जासु अनूप रूप पै सुरगन रहत सदा ललचाई ।।
रही अनादि काल सों पालित जो आरज-भुज-छाहीं ।
ताहि अधम अति भाग्यहीन हम राखि सके हठ नाहीं ।।

मातु ! बहुत सुख पायो तुम मम पुरुषन के आधीना ।
अब वह सुख सपने से ह्वै हैं हाय दैव ! कह कीना ।।

यद्यपि हम सबही बिधि दोषी लग्यो कलंक हमारे।
पै निर्दोष मातु सब भाँतिहि जौ जिय न्याय बिचारे॥
अपुनेहि भाई बंधु आपुही करैं जो छल अरु द्रोहा।
तौ रच्छा ह्वै सकै कौन बिधि जौ बिधिही बुधि मोहा॥

ताहू पै निज भुज प्रताप दुष्टन को दियौ भगाई।
छली चोर छल सों जीते याकी नहिं हमैं हँसाई॥
होनहार जो रह्यो भयो; अब सोच किए फल नाहीं।
मातु बिदा अब देहु हाय! बिछुरत तुव पद-नख-छाहीं॥
पुण्यभूमि मैं जनमि हाय! अब मरन चल्यो मरु देसा।
आर्य्यध्वजा दै शत्रु हाथ मैं यह अति हाय कलेसा॥

अपुने किए कर्मफल भोगन मैं कछु दुख मोहिं नाहीं।
पै जननी तुव भावी दसा विचारि हृदय फटि जाहीं॥
ये देवालय, वेद शास्त्र ये, यह गो-ब्राह्मण-पूजा।
यह पवित्रतम धर्म्म-भाव जग मैं न जासु सम दूजा॥
हाय! महाद्रोही मलेच्छकर परि सब कलिषुत ह्वै हैं।
पाप-ताप-पूरित भुव करिकै घोर यंत्रणा दैहैं॥

जाकी विद्या कला और कौशल की छटा लुभाई।
इकटक देखत रहत जगत मोहित ह्वै सुधि बिसराई॥
होइ यवन-पद-दलित सोइ सब माटी ही ह्वै जैहैं।
चारहु दिसि मूढ़ता बेबसी कछु दिन माँहि लखैहैं॥
जा भारत प्रताप दिसि लख जग चख चकचौंधी लागे।
हाय! कहा सो लुटिहैं पद-तर सोचत ही बुधि भागे॥
ऐसे करत तर्क व्याकुल ह्वै कंठ रुद्ध ह्वै आयो।
'चल काफिर क्या रोता है' इक यवन ढकेलि सुनायो॥

गिरत सम्हारि सचेत होइ कर जोरि जननि पग लागी ।
देश बंधु दिसि हेरि बचन बोले आरत-रस पागी ॥
भैया ! मैया दै मलेच्छकर हम तौ जात बिदेसा ।
तुम रच्छा करिहौ जहँ लौं बस होइ न याहि कलेसा ॥

जद्यपि पराधीन भए पै जौ आत्मपनौ न बिसरिहौ ।
धर्म, ऐक्य, विद्या अनुसरिहौ तौ अरि-सीस बिदरिहौ ॥
जैसे भई दसा यह सो तुम निज नैननहिं निहारौ ।
दूर बहाइ खोट सो इक ह्वै भारत मातु उबारौ ॥
जिनि भूलौ निज पुरुषन के गौरव की भ्रात कहानी ।
सिमिटि शत्रु-बल मेटि उबारौ भारत भुव सुख-खानी ॥

सुनत वचन ये म्लेच्छ सैन चहुँ दिसि सों गरजन लागी ।
मुसुक बाँधि भारत-गौरव कों भारत सों लै भागी ॥
चिर स्वतंत्रता चिर गौरव चिर सुख छन माँहि बिलाई ।
बँधि चिर-दिन दासत्व-शृंखला, भारत भुव बिलखाई ॥
दीनबंधु निज बिरद सम्हारौ दीन दुखित दुख हारौ ।
हे भारत भुवनाथ हाथ गहि भारत भूमि उबारौ ॥

[सरस्वती भाग २]

---

(४) भारत बारहमासा

लाग्यो असाढ़ सुहावना सब देश मिलि आनँद करैं ।
यूरप अमेरिक फ्रांस जरमन मोद जिय में नहिं धरैं ॥
एक हम अभागे देश भर कै बैठि के रोवत रहैं ।
नहिं काम कोउ करनो हमैं बस व्यर्थ दिन खोवत रहैं ॥ १ ॥

आयो सुसावन मन बढ़ावन सबहि के आनँद भयो ।
गरजन लगे नभ चमकि बिज अँधियार चारहु दिसि छयो ॥
सो चमक गरज गँभीर मोकहँ अतिहि हाय डरावहीं ।
भए नारि हम डरपत रहैं धीरज न हिय में लावहीं ॥ २ ॥

भादों लग्यो आधो भयो मन कौन बिधि जीवन धरैं ।
इक तो रह्यो अँधियार मो मन और चहुँ दिसि घूमरैं ॥
जहाँ बोलते दादुर पपीहा मोर सब मन मोहते ।
अब रटत आठहु जाम उल्लू अतिहि सुंदर सोहते ॥ ३ ॥

आयो कुआर तुषार लाग्यो पास कपड़ा हू नहीं ।
जब देहिं भिच्छा यूरपी तब काम कछु चलिहैं सही ॥
अब और कछु बाकी नहीं इक नामहीं बस बचि रह्यौ ।
करि श्राद्ध पितर की याद करि अँग अंग शोकानल दह्यौ ॥ ४ ॥

कातिक पुनीत लग्यो नहान दीपावली हू आ गई ।
करि याद पिछले दिनन के वे सुख सबै आनँदमई ॥
अब कहाँ धन-तेरस रह्यौ बचि हारि जूआ में गए ।
अब बारि कै तन आपुनो दीपावली हमहीं भए ॥ ५ ॥

गिरत सम्हारि सचेत होइ कर जोरि जननि पग लागी ।
देश बंधु दिसि हेरि बचन बोले आरत-रस पागी ॥
भैया ! मैया दै मलेच्छकर हम तौ जात बिदेसा ।
तुम रच्छा करिहौ जहँ लौं बस होइ न याहि कलेसा ॥

जद्यपि पराधीन भए पै जौ आत्मपनौ न बिसरिहौ ।
धर्म, ऐक्य, विद्या अनुसरिहौ तौ अरि-सीस बिदरिहौ ॥
जैसे भई दसा यह सो तुम निज नैननहिं निहारौ ।
दूर बहाइ खोट सो इक ह्वै भारत मातु उबारौ ॥
जिनि भूलौ निज पुरुषन के गौरव की भ्रात कहानी ।
सिमिटि शत्रु-बल मेटि उबारौ भारत भुव सुख-खानी ॥

सुनत वचन ये म्लेच्छ सैन चहुँ दिसि सों गरजन लागी ।
मुसुक बाँधि भारत-गौरव कों भारत सों लै भागी ॥
चिर स्वतंत्रता चिर गौरव चिर सुख छन माँहि बिलाई ।
बँधि चिर-दिन दासत्व-शृंखला, भारत भुव बिलखाई ॥
दीनबंधु निज बिरद सम्हारौ दीन दुखित दुख हारौ ।
हे भारत भुवनाथ हाथ गहि भारत भूमि उबारौ ॥

[सरस्वती भाग २]

---

(४) भारत बारहमासा

लाग्यो असाढ़ सुहावना सब देश मिलि आनँद करैं ।
यूरप अमेरिक फ्रांस जरमन मोद जिय में नहिं धरैं ॥
एक हम अभागे देश भर कै बैठि के रोवत रहैं ।
नहिं काम कोउ करनो हमैं बस व्यर्थ दिन खोवत रहैं ॥ १ ॥

आयो सुसावन मन बढ़ावन सबहि के आनँद भयो ।
गरजन लगे नभ चमकि बिज अँधियार चारहु दिसि छयो ॥
सो चमक गरज गँभीर मोकहँ अतिहि हाय डरावहीं ।
भए नारि हम डरपत रहैं धीरज न हिय में लावहीं ॥ २ ॥

भादों लग्यो आधो भयो मन कौन बिधि जीवन धरैं ।
इक तो रह्यो अँधियार सो मन और चहुँ दिसि घूमरैं ॥
जहाँ बोलते दादुर पपीहा मोर सब मन मोहते ।
अब रटत आठहु जाम उल्लू अतिहि सुंदर सोहते ॥ ३ ॥

आयो कुआर तुषार लाग्यो पास कपड़ा हू नहीं ।
जब देहिँ भिच्छा यूरपी तब काम कछु चलिहैं सही ॥
अब और कछु बाकी नहीं इक नामहीं बस बचि रह्यौ ।
करि श्राद्ध पितर की याद करि अँग अंग शोकानल दह्यौ ॥ ४ ॥

कातिक पुनीत लग्यो नहान दीपावली हू आ गई ।
करि याद पिछले दिनन के वे सुख सबै आनँदमई ॥
अब कहाँ धन-तेरस रह्यौ बचि हारि जूआ में गए ।
अब बारि कै तन आपुनो दीपावली हमहीं भए ॥ ५ ॥

अगहन महीना गहन सो लगि नास हमरो सब भयो ।
वह तेज वह उजियार सबहीं एक छिन में नसि गयो ॥
अचरज ! भए गोरे सुराहु औ चन्द्रमा "काला" भयो ।
अब भीख माँगत देश सबहीं दान में धन बल गयो ॥ ६ ॥

अब पूस आयो रूस आयो सुनत जिय औरहु जरयो ।
थोरो बहुत जो कछु बच्यो इन आपनो सोऊ हरयो ॥
जानत नहीं क्यों रूस बैठे श्यामसुंदर मोहना ।
भए हूस हम खँडहर भयो सब देख सुंदर सोहना ॥ ७ ॥

माघ मास बसंत आयो हम बसंत निजै भए ।
खोइ सब धन मान विद्या फूलि कै उमगे नए ॥
पतझार धन सब होइगो अरु पीयरे हमहीं भए ।
अरु आम से बौरे हमी दुख रोग चारहु दिसि छए ॥ ८ ॥

फागुन लग्यो आगुन लग्यो हिम आइ होली सिर चढ़ी ।
लहू टपकन लगे आँखन मनु नदी रँग की बढ़ी ॥
रह्यो जो कछु बच्यो थोरो सोऊ सब इकठा करयो ।
झोंकि होलिका में दयो तेहि एक छिन में सब जरयो ॥ ९ ॥

चैत लाग्यो चैन नहिं जिय तनिक हू अजहूँ भयो ।
बीरता साहस पराक्रम द्रव्य सबही नसि गयो ॥
अब बच्यो नाहीं पास कछु सब खोइ बैठे हाय हम ।
जानौं नहीं अब रह्यो का जासों अजहुँ नहिं लेत जम ॥ १० ॥

वैशाष में ग्रीषम लग्यो गरमी चहूँ दिसि छै गई ।
का करौं कैसे जीव राखौं या दुःख तन सब नै गई ॥
मोहि छोड़ि करुनानाथ हरि नहिं जानिए कितही गए ।
भजि भूत प्रेतक सीतलै वैशाख-नंदन हम भए ॥ ११ ॥

जेठ में दूनो भयो दिन कटत कोऊ विधि नहीं ।
जग ढूँढ़ि डाल्यो मिल्यो नहिं साचो कोऊ साथी कहीं ।।
ग्रीषम जरावै तनहिं मन को हाय शोकानल दहै ।
हाय कोउ नहिं मीत अपु मन बेदना कासों कहै ।।१२।।

इमि रोइ बारह मास जिय भरि हारि कै चुप ह्वै रह्यो ।
समुझि अपुनो मीत भल संतोष अति गाढ़े रह्यो ।।
राज धन ऐश्वर्य बल सब भाँति सो भूलत भयो ।
हाय आपुहि भूलि कै यह दास भारत बनि गयो ।। १३ ।।

[भारत-जीवन १८६४]

---

(५) जुबिली

कोटि कोटि सुरराज मुकुट लुंठित जा पद तर ।
जासु नयन की कोर सदा जोहत ब्रह्मा हर ।।
पै अपनी सत्ता नरपति मैं दिखरावन हित ।
रहत युधिष्ठिर को आपहु रुख जोवत ही नित ।।
सोइ भक्तबछल करुणायतन यादवपति मंगल करहिं ।
चिरविजयिनि श्रीविक्टोरिया भारत भुव आनंद भरहिं ।। १ ।।

परम दुःखमय तिमिर जबै भारत पैं छायो ।
गृह-विछेद, बहु खंड राज्य, सब प्रजा सतायो ।।
तबहि कृपा करि ईश बृटिश सूरज प्रगटायो ।
जिन उजरत करि कृपा बहुरि यह देश बसायो ।।
सोइ बृटिश वंश उज्ज्वल करन विक्टोरिया प्रकाश भो ।
आनंद छायो सब देश मैं अरु दुख तिमिर विनाश भो ।। २ ।।

हे जननी तुव हृदय पुत्र-वत्सलता-पूरित ।
पिघलि चलत जब लखत प्रजागन दुखित विसूरित ।।
अतिहि कराल अकाल फँसे लखि प्रजा दुखारी ।
वाक्य-दान, धन-दान, किए सब देश सुखारी ।।
तुव प्रतिनिधि मेकडोनेल प्रभु डूबत सों रच्छा करी ।
यां कठिन काल के गाल सों प्रजा कृपा करि उद्धरी ।। ३ ।।

तुव शासन के समय जगत जो उन्नति पायो।
ज्ञान, विज्ञान, कला कौशल कल, जो प्रगटायो ॥
जैसे कवि, पंडित, ज्ञानी, जनमे एहि अवसर।
राज्यनीति, रणरीति, कुशलता, फैली भुव पर ॥
जो कबहुँ सुनी नहिं कान सों रवि-रथ हू थिर ह्वै रह्यो।
या साठ बरस के बीच में सो सुख संपति जग लह्यो ॥ ४ ॥

[प्रीति-कुसुमांजली १८९७]

(६) देश-दशा

फूले कास आस वर्षा की टूटी, पछवाँ वाय बही ।
स्वच्छ हुआ आकास चिलकती धूप चार दिस छाय रही ।।
पहिली वर्षा पाय खेत में पौधे जो थे हरखाए ।
हाय धूप की तेजी से सो जाते हैं अब मुरझाए ।।

कर कर आस किसानों ने जी जान लगाकर बोए थे ।
सहकर धूप जेठ की चिल्ला बीज पास के खोए थे ।।
सहैं आप दुख पेट जरावैं जिमींदार का पोत भरें ।
तिस पर मारी जाय फसिल तो कहो क्यों न बेमौत मरें ।।

संबत तिरपन के अकाल में टूट चुकी थी प्रजा सभी ।
परै जो छप्पन में भी टोटा पनपैंगे फिर नहीं कभी ।।
संबत छप्पन के फल सुन सुन उड़े होश थे पहिले से ।
राजा प्रजा सशंकित थे औ सबके जी थे दहले से ।।

जो वह बात हुई सच्ची तो रहा ठिकाना नहीं कहीं ।
तो गारत यह आरत भारत होगा कुछ संदेह नहीं ।।
पांचाल, मद्रास, बंबई, राजस्थान आदि की ओर ।
तरस रहे असाढ़ ही से, पर बूँद पड़ी नहिं कोई ठौर ।।

कौन नाज का कहैं ठिकाना कौन घास औ चारे का ।
जल का टोटा, प्रान बचै क्यों जल बिन हाय बिचारे का ।।
दीनबंधु करि नेह मेह आनन्द से जो तुम बरसाते ।
हम भी जीते सुख से खाते उनको भी कुछ पहुँचाते ।।

सहते सहते दु:ख जरजरित होय रहे हैं हम सब हाय ।
जीवन-धन ! जीवन बिनु मारौ तो जीवन क्यों रहै बचाय ।।
नि:संदेह भूलकर तुमको नित नित पाप कमाते हैं ।
धरती माता को कुपूत हम बोझ से सदा दबाते हैं ।।

पर हो खेल कूद में मायल बालक जो अघ करते हैं ।
तुम्हीं कहो मा बाप कभी भी सूली पर ले धरते हैं ।।
जगतपिता, जगजीवन, जगनायक, जगस्वामी होकर भी ।
जगजीवन अपराध देख जीवन न देव, है उचित कभी ।।

त्राहि ! दयानिधि करुणासागर त्राहि दीन के हितकारी ।
बहुत भई अब द्रवौ नाथ ! नवनीत प्रिया गिरिवरधारी ।।
सुनत बचन आरत दुखियन के दयासिन्धु रुक सकै नहीं ।
होय दयार्द्र तुरंत दिया है सब अपराध बहाय यहीं ।।

लगी झकोरन पुरवैया बादल भी कुछ कुछ दिखलाए ।
गई आस कुछ बँधी फेर कर मुरझाए चित हरखाए ।।
लगी टकटकी बादल के दिस, वह आए घन, वह आए ।
वह बिजली चमके घन गरजे, वह देखो बादल छाए ।।

हाय ! हाय ! यह बादल तो उड़ करके निकल गए उस ओर ।
आँखें पथरा गईं न बरसे क्यों तुम ऐसे भए कठोर ।
मरे तो आप हैं हम सब क्यों मार रहे हो तरसाकर ।
अब तो दया करो दुख नासो, सरसाओ कुछ बरसाकर ।।

बोल उठा एक, मीठी सोंधी लपक इधर से आती है ।
इठला इठला हवा और कुछ ठंढी खबर सुनाती है ।।
झींसी भी कुछ पड़ी न घबड़ाओ पानी भी आता है ।
आनँदघन कर कृपा तुम्हारे सब दुख दूर बहाता है ।।

जाते, आते, तरसा सरसा, कर निरास, दे आस कभी ।
हँसा, रुला, गाली खा, बिनती करा, हरा दुख अन्त सभी ॥
वह बरसे, सरसे, तरसे जिय सरसे सुख परसे सबही ।
झर से निकल सके नहिं घर से, हरसे नर नारी सबही ॥

सूखत धान परा पानी सब धरा हरष के फूल उठी ।
दीन किसान प्रसन्न अन्न अब पावैंगे दो चार मुठी ॥
धन ! धन ! दीनदयाल तुम्हारी दया का पारावार नहीं ।
कर दिया लहर बहर छिन भर में रहा न दुख का नाम कहीं ॥

ठहर गई बाजार, दहल गए निठुर सभी गल्लेवाले ।
रह गए लोग लोभ सब बह गए, भए अकाल के मुँह काले ॥
पर जब दशा और प्रांतों की याद करै जी कांप उठै ।
दीनानाथ ! दीन जन पर क्यों रह रहकर तू हाय रुठै ॥

प्रभो दीन भारतवासी हम, तुम बिनु नहिं अवलंब कहीं ।
तुम जो दया दीठ नहिं देखो, मरैं सभी संदेह नहीं ॥
नाम दया चित धरो, हुई अब बहुत, हरो दुख के रासी ।
कृपा वारि सींचो भारत भुव, सुख पावैं भारतवासी ॥

[भारतमित्र १८६८]

———

(७) छप्पन की बिदाई, नए वर्ष की बधाई

दीन, दुखी, आरत विपत्ति के, मारे भारतवासी ।
सहमि उठे सुनि कै आगम छप्पन की छई उदासी ॥ १ ॥
पंडित कहैं महाभारत के ग्रह सब एकत आवैं ।
भारत में भारत मचवावैं महाप्रलय घहरावैं ॥ २ ॥
यूरुप के गणितज्ञ कहैं, भुअ का अंतिम दिन आवै ।
नभ तें रीझि प्रकृति देवी नक्षत्र-माल पहिरावै ॥ ३ ॥
तिरपन, निरखि प्रतच्छ 'पेशखीमा' की विकट अवाई ।
निहचय भयो भविष्य वाक्य को, मुँह पर उड़ी हवाई ॥ ४ ॥
घोर अकाल प्लेग की ज्वाला, भारत जारन लागी ।
राजा प्रजा त्रस्त भए डोलैं सबन धीरता भागी ॥ ५ ॥
व्यापारी व्यापार वन्द करि धनी संचि धन राखे ।
लौटि प्रवासी निज घर आवैं धुकुर पुकुर हिय माखे ॥ ६ ॥
एक वाक्य ह्वै सबहि पुकारैं हे करुणामय स्वामी !
रच्छौ नाथ ! विपति सब टारौ हे प्रभु गरुडागामी ॥ ७ ॥
जदपि नाथ की कोप दीठि लहि निज कुकर्म फल पाई ।
सहस बरस सों दीन हीन भारत जन रहे बिलखाई ॥ ८ ॥
तदपि आहि निज लीला-थल नाते तौ दया विचारौ ।
हे क्रीड़ामय ! निज स्वभाव तजि अब कैं हमैं उबारौ ॥ ९ ॥
यों बिलखात सहत दुख नाना छप्पन जू हू आए ।
राम राम करि विजय-दशमि लौं सब त्योहार मनाए ॥ १० ॥
कातिक लाग्यो सब सुख भाग्यो कठिन काल नियरायो ।
लगी चटपटी सबके जिय में सबको मुख कुम्हिलायो ॥ ११ ॥

कातिक इतै, नवंबर उत कोउ भाँति कुशल सों बीत्यो ।
बहुरे प्रान सबनि के मानो काल व्याल सों जीत्यो ॥ १२ ॥
जद्यपि परलय भई न भारत रक्त नदी सो न्हायो ।
तदपि कराल अकाल, प्लेग ने अतिसय प्रजा सतायो ॥ १३ ॥
चलत चलावत पाथर बरसि फसिल की करिकै ख्वारी ।
आश मूल निरमूल कियो, छप्पन सब विधि दुखकारी । १४ ॥
तापै, राजा के चिंता सों चिंतित भारतवासी ।
भूलि पेट-ज्वाला, निद्रा तजि, निसि दिन रहे उदासी ॥ १५ ॥
भारतेश्वरी माता को चिंतित मुख लखि कुम्हिलानो ।
भक्ति-भाव पूरित भारत हिय फाटि हाय बिलगानो ॥ १६ ॥
यों संबत छप्पन सताइ पतझार संग ही भाग्यो ।
परम सुखद बसंत आगम लहि सबको मन अनुराग्यो ॥ १७ ॥
एहि अवसर अतिसय आनँदमय विजयिनी विजय सुनाई ।
सूखत धान पर्यो पानी जनु हियक्यारी लहराई ॥ १८ ॥
कोउ कोउ भाँति चलो भैया छप्पन की भई बिदाई ।
नए बरस की आओ हम सब हिलि मिलि देहिं बधाई ॥ १९ ॥
होय परम सुभ यह संबत मेरे दुख सबै नसावै
प्लेगहिं मारि अकालहिं जारि जुद्ध ज्वालाहिं बुझावै ॥ २० ॥
दयासिंधु ! जय दीनबंधु जय ! जय भारत हितकारी ;
तुम्हरी कृपा लहै सुख संपति नित यह प्रजा तुम्हारी ॥ २१ ॥

[सरस्वती भाग १]

(८) राम जानकी

(चित्रकूट)

कहो पिय साँचे काके बैन ?
तुम भाख्यो घर रहौ जहाँ है सबही विधि सुख चैन ॥ १ ॥
यह मन्दाकिनि तीर गिरि गुहा यह सुख मन्द समीर ।
यह एकान्त कुंज बिहरन यह सुंदर श्याम शरीर ॥ २ ॥
फूलन के आभरन मनोहर निज रुचि सों पहिरावन ।
उरझे बार जटा के निज कर प्रेम सहित सुरझावन ॥ ३ ॥
यह कोकिल-रव शीतल छाया यह तुम संग बिहार ।
प्राणनाथ कँह भाग हमारे यह सुख सहज पियार ॥ ४ ॥
ज्यों ज्यों घन गरजत बरसत इत त्यों त्यों तुव गर लागि ।
परमानंद अलौकिक लूटत नित नित नव अनुरागि ॥ ५ ॥
यह गिरि-अवलि, सोहावनि, झरना झरते चारहुँ ओर ।
प्रबल प्रवाह पहाड़ी नदियाँ बहति, करत कल रोर ॥ ६ ॥
राजभवन सुख साज सबै, पै तुम बिन हमको फीको ।
हमरे भाग सुहात बिराजत प्राणनाथ सुख टीको ॥ ७ ॥
जहँ राजा तहँ राजमहल, अरु जहाँ धूप तहँ छाया ।
जहाँ धनी धन रहत तहाँ ही जहाँ प्रान तहँ काया ॥ ८ ॥
तुम मेरे जीवन धन प्यारे ! तुव चरननि सुख राजैं ।
राधाकृष्णदास की जीवनि नैन प्रेम जल छाजैं ॥ ९ ॥

[सरस्वती भाग १]

(६) प्रताप-विसर्जन

[नन्ददासजी के भ्रमर गीत की चाल]

उन्नत सिर गिरि अवलि गगन सों उत बतरावत ।
इत सरवर पाताल भेदि अति छवि छहरावत ।।
मंद पवन सीरी बहै होन लगे पतझार ।
पर्नकुटी नरसिंह लसत इक मानों कोउ अवतार ।।
हरन भुव भार को ।।

मुखमंडल अति शांत कांतिमय चितवन सोहैं ।
भरे अनेकन भाव व्यग्र चारहुँ दिसि जोहैं ।।
वीर-मंडली घेरि कै प्रभु की गति रहै जोहि ।
मनु भीषम सर-सयन परे कौरव पांडव रहे सोहि ।।
हृदय उमग्यो परै ।।

लखि निज प्रभु की अंत समय की वेदन भारी ।
व्याकुल सब मुख तकैं सकैं धीरज नहिं धारी ।।
राव सलूमर रोकि निज हिय उदवेग महान
हाथ जोरि बिनती कियो अति हरुए लगि प्रभु कान ।।
बैन आरत सने ।।

"अहो नाथ अहो वीर-सिरोमनि भारत-स्वामी ।
हिंदू कीरति थापन मैं समर्थ सुभ नामी ।।
कहाँ वृत्ति है आपकी, कौन सोच कहा ध्यान ?
देखि कष्ट हिय फटत है केहि संकट में हैं प्रान ।।
कृपा करिकै कहौ ।।"

सुनत दुख भरे बैन नैन तिनके दिसि फेरयो ।
भरि कै दीरघ साँस सबन तन व्याकुल हेरयो ॥
पुनि लखि सुत तन—फेरि मुख अति संतप्त अधीर ।
धरि धीरज अति छीन सुर बोले बचन गँभीर ॥
परम आतंक सों ॥

"हे हे वीर-सिरोमनि सब सर्दार हमारे ।
हे विपत्ति-सहचर प्रताप के प्रान पियारे ॥
तुव भुजबल लहि मैं भयो रच्छा करन समर्थ ।
मातृभूमि स्वाधीनता कों प्रबल सत्रु करि व्यर्थ ॥
अनेकन कष्ट सहि ॥

प्रानन हूँ तें प्रिय स्वतंत्रता कब तें खोई ।
हाय आर्यगन भए दास निज गौरव धोई ॥
म्लेच्छ बिदेसी सत्रु के दास बने करि गर्व ।
नस्वर तन सुख कारनैं आर्य कीर्ति करि खर्व ॥
भूलि निज रूप कों ॥

या प्रताप नैं उचित कहो कै अनुचित भाखौ ।
वा स्वतंत्रता हेतु जगत सुख तृन सम नाखौ ॥
ढाइ महल खँडहर किए सुख सामान बिहाय ।
छानि बनन की धूरि को गिरि गिरि मैं टकराय ॥
जनम दुख झेलि कैं ॥

स्वर्गहु तें बढ़ि जन्मभूमि करि रहित म्लेच्छ अरि ।
सूखी रोटी अति पवित्र जल, छुधा तृप्त करि ॥
सो खोई बहु दिनन की सुख स्वतंत्रता पाय ।
बंधु बांधव बीच मैं हम मरत आजु हरषाय ॥
क्लेश को लेस नहिं ॥

पै जब आवत ध्यान लह्यो जो सहि दुख इतने ।
सो अमूल्य निधि मम पाछे रहिहै दिन कितने ॥
तुच्छ वासना मैं पग्यो दुःख सहन असमर्थ ।
चंचल अमरहिं देखिकै होत आस सब व्यर्थ ॥
सोचि भावी दशा ॥"

कहि दुखमय ये वचन अमर तन दुख सों देख्यो ।
मूँदि नैन जल भरे ख्वाँस लै सब दिसि पेख्यो ॥
सन्नाटा चहुँ दिसि छयो सबके मुख गंभीर ।
पृथ्वी दिसि हेरैं सबै भरे महा हिय पीर ॥
बैन नहिं कछु कहैं ॥

करि साहस पुनि राव सलूमर सीस नवायो ।
अभिवादन करि अति विनीत ये वचन सुनायो ॥
"पृथीनाथ यह सोच क्यों उपज्यो प्रभु हिय आज ।
कुँअर बहादुर तैं परी कौन चूक केहि काज ॥
निराशा जो भई ॥"

बदलि पास कछु सँभरि बैन परताप कह्यो पुनि ।
अति गंभीर सतेज मनहुँ गुंजत केहरि धुनि ॥
"सुनौ वीर मेवार के गौरव राखनहार ।
मेरे हिय की वेदना—जो कियो आस सब छार ॥
अमर के कर्म नें ॥

एक दिवस एहि कुटी अमर मेरे ढिग बैठ्यो ।
इतनेहि मैं मृग एक आनि कै तहाँ जु पैठ्यो ॥
हरबराइ संधानि सर अमर चल्यो ता ओर ।
कुटिया के या बाँस मैं फस्यो पाग को छोर ॥
अमर तौहू न रुक्यो ॥

बढ़न चहत आगे वह पगिया खैंचत पाछे।
पै नहिं जिय मैं धीर छुड़ावै ताको आछे॥
पागहु फटी सिकारहूँ लग्यो न याके हाथ।
पटकि पाग लखि झोंपड़िहि अतिहि क्रोध के साथ॥
बैन मुख ते कढ़े॥

'रहु रहु रे निर्बोध अमर-गति रोकनहारे।
हम न लेहिंगे साँस बिना तोहि आजु उजारे॥
राजभवन निर्मान करि तेरो चिह्न मिटाइ।
जो दुख पाए तोहि मैं सो दैहौं सबै भुलाइ॥
सुखद आवास रचि॥'

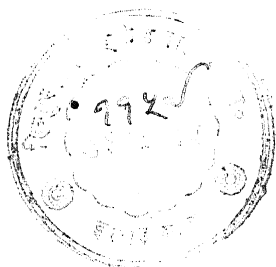
तबही तें ये बैन सूल सम खटकत मम हिय।
यह परि सुख वासना अवसि दुख दिवस बिसारिय॥
अति अमोल स्वाधीनता तुच्छ विषय के दाम।
बेचि, सिसोदिय कीर्ति को यह करिहै अवसि निकाम॥
रुके हम सोच एहि॥"

हिंदूपति के बैन सुनत छत्री कोपे सब।
अति पवित्र रजपूत रुधिर नस नस दौरयो तब॥
लै लै असि दृढ़ पन कियो, छ्वै छ्वै प्रभु के पाय।
"जौ लौं तन, स्वाधीनता तौ लौं रखौं बचाय॥
संक करिए न कछु॥"

दृढ़प्रतिज्ञ छत्रिन पन सुनि राना मुख बिकस्यो।
आसलता डहडही भई मुख तें यह निकस्यो॥
"धन्य वीर तुम जोग ही यह पन तुम्हहिं सुहाय।
अब हम सुख सों मरत हैं, हरि तुम्हरे सदा सहाय॥
यहै आसीस मम॥"

देखत देखत शांतिसदन परताप सिधाए ।
पराधीनता-मेघ बहुरि भारत सिर छाए ॥
सबही सुख परताप सँग किया विसर्जन हाय ।
दीन हीन भारत रह्यो सुख सम्पदा गवाँय ॥
त्राहि प्रभु रच्छिए ॥

[सरस्वती भाग ३]



(१०) रहिमन विलास

गहि सरनागत राम की भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर और न कछू उपाव॥
और न कछू उपाव पाप के बोझ दबाए।
पूर्व कर्म की वायु भयानक लहर उठाए॥
कहुँ सुझात नहिं ठौर सुदुस्तर भवसागर महि।
चहत बचन जौ मूढ़ अजौं प्रभु सरनागत गहि॥ १॥

यह रहिमन सब संग लै उपजत नाहिन कोय।
सबै प्रीति अभ्यास बस होत होत ही होय॥
होत होत ही होय सबै अवसर निज पाए।
करु उद्योग उपाय अतिहि दृढ़ चित्त लगाए॥
दुरुह काज लखि 'दास' हारि हिम्मत तू जिन रह।
सब कछु मनुजहि करै राखु निश्चय निज हिय यह॥ २॥

निज कर क्रिया रहीम कहि सुधि भावी के हाथ।
पासे अपने हाथ में दाँव न अपने हाथ॥
दाँव न अपने हाथ जदपि है हाथ पराए।
पै बिनु कर्मन किए शुभाशुभ फल नहिं पाए॥
भाग्य भरोसे भूलि समय जिनि चूकै रे नर।
होनी होय सु होय करै कर्तव्य जु निज कर॥ ३॥

रूप, कथा, पद, चारु पट कंचन दूवा लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्म गति मोल रहीम विशाल॥
मोल रहीम विशाल अधिकतर सुख उपजावै।
ज्यों ज्यों तिनमें गढ़ौ तत्व त्यों त्यों दरसावै॥
'दास' प्रेम को नेम विलच्छन औरहु बेहद।
ताके आगे कहा मोल है रूप कथा पद॥ ४॥

बड़न कोऊ जौ घटि कहै नहिं रहीम घटि जाहि।
गिरधर मुरलीधर कहे कछु दुख पावत नाहि॥
कछु दुख पावत नाहिं जगतधर गिरधर भाखे।
पूरन ब्रह्म अपार नाम नँदनंदन राखे॥
वामन रूपहिं धर्यो भयो वैराट सोऊ तौ।
'दास' घटै नहिं नेकु कहै लघु बड़न कोऊ जौ॥ ५॥

ससि, सकोच, साहस, सलिल, साजे नेह रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात हैं, घटे न तिनकी सीम॥
घटे न तिनकी सीम देखतहि मैं घटि जाई।
बढ़त कछुक दिन लगै जतन बहु भाँति बनाई॥
बढ़ि कै जब यह घटै जाइ सोभा औरहु नसि।
जदपि सोई पै कृष्ण पच्छ फीको लागै ससि॥ ६॥

बड़े दीन के दुख सुने होत दया उर आन।
हरि हाथी के कब हुती कहु रहीम पहिचान॥
कहु रहीम पहिचान रही कब हरि हाथी सन।
सहज सुभाउ दयालु देखि नहिं सके दुखित जन॥
पर उपकारिन साथ काम नहिं जान चीन के।
सब संसार कुटुंब लखैं हित बड़े दीन के॥ ७॥

कहि रहीम नहिं लेत हैं रही विषय लपटाइ।
घास चरे पशु आप तें गुर लौं लाए खाइ॥
गुर लौं लाए खाइ विधाता प्रकृति बनाई।
बोझ ढोइ नित मरैं पढ़न सों जान छिपाई॥
आम्र वृक्ष तजि दूर बेलि बब्बूलहिं लपटहि।
भव दुख सुख सों सहैं सहज हरिनाम न मुख कहि॥ ८॥

रहिमन राज सराहिए जो बिधु के बिधि होय।
रवि को कहा सराहिए उगै तरैयाँ खोय॥
उगै तरैयाँ खोय नाहिनै तासु बड़ाई।
बड़े सराहन जोग सोई जो जग सुखदाई॥
प्रभुता मद जिनि भूलु प्रजा पालहि किन सुख सन।
यह सरीर नसि जाय रहै इक कीरति रहिमन॥ ९॥

दुरदिन परै रहीम प्रभु दुरथल जैये भाग।
जैसे जैयत घूर पर जब घर लागै आग॥
जब घर लागै आग सबै मरजाद भुलावै।
समुझि समय को फेर सबै सहतै बनि आवै॥
जैसो समयो देखि रहै तैसो ह्वै तू किन।
मौन होइ सहु दास परै जो कबहूँ दुरदिन॥ १०॥

क्षमा बड़न को उचित है छोटन को उतपात।
कह रहीम प्रभु को घट्यो जो भृगु मारी लात॥
जो भृगु मारी लात औरहु आदर दीनो।
लघु प्रकृतिहिं पहिचानि नेकु जिय रोस न कीनो॥
नदी नीर गंभीर काम कहँ भवर पड़न को।
छिलछिल जल इतराय सहज गुण क्षमा बड़न को॥ ११॥

जो गरीब सों हित करैं धन रहीम वे लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग॥
कृष्ण मिताई जोग कहाँ शवरी गुह बानर।
तजि दुरजोधन पाक शाक खायो जो बिदुर घर॥
जौन प्रेम मन करै कहा तौ ले अमीर कों।
तेई नर जग धन्य करैं हित जो गरीब सों॥ १२॥

कुटिलन संग रहीम बसि साधु बचौती नाहिं।
नैना टैना करत हैं उरज मरोरे जाहिं॥
उरज मरोरे जाहिं फँसे शिव नारद ज्ञानी।
ओछे संगति बैठि होत बित हित की हानी॥
सबै साधुता दाबि रँगत सहजहिं अपुने रँग।
सत संगत मैं बैठु दूरि तजु तू कुटिलन सग॥ १३॥

कमला यह न रहीम थिर सांच कहत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होय॥
क्यों न चंचला होय सिंधु-तनया चंचल-मति।
एकन को करि तुष्ट देइ तजि सहज चपल गति॥
बड़न गिरावै दास धरै छोटन सिर समता।
कोटि जतन किन करौ रहै नाहिन थिर कमला॥ १४॥

जाइ समानो अब्धि मैं गंग नाम भयो धीम।
काकी महिमा ना घटी पर-घर गए रहीम॥
पर-घर गए रहीम होइ अवसहिं हलकाई।
जदपि न पूँजी तदपि भरम निज गेह सुहाई॥
आधे पेटहि खाइ सहै बरु सरबस हानी।
पर-घर धाए दास बड़ाई जाइ समानी॥ १५॥

रहिमन कहत जो पेट्ट सों क्यों न भयो तू पीठ।
भूखे मान घटावहीं भरे डिगावै डीठ॥
भरे डिगावै डीठ नीठ जग को तृण जानै।
सबै खुटाई भरी क्रोध तनिकहिं मैं आनै॥
याके भरिबे हेत करत नर पाप अनेकन।
सबही दुख को हेत दास यह पेट जु रहिमन॥ १६॥

आपु सदा बेकाम के शाखा दल फल फूल।
रोकत जाय रहीम कह औरन के फल फूल॥
औरन के फल फूल रोकि जग अनहित करहीं।
व्यर्थहिं रोकै भूमि भार पृथ्वी पर धरहीं॥
आपु करैं नहिं काम और कों मारैं आँकुस।
ऐसे जन सों भूलि दास करिए जिन आपुस॥ १७॥

बड़े जो छोटन सों बँधैं कहि रहीम यह लेख।
सहसन के हय बाँधिए लै कौड़ी के मेख॥
लै कौड़ी के मेख अस्व गज बाँधि जु राखहिं।
मुक्ता मणि अनमोल पोहि गुन नाहिं जु नाखहिं॥
बड़े बड़े सद ग्रन्थ लिखत इक तुच्छ कलम सो।
लघु को हूँ आदरैं अहैं जग लोग बड़े जो॥ १८॥

धूर उड़ावत सीस पैं कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज रिखि-पतनी तरी सो ढूँढत गजराज॥
सो ढूँढत गजराज आजु व्याकुल ह्वै भारी।
ज्यों बूड़त गज देखि धाइ गहि लियो उबारी॥
त्योंही हम पैं द्रवौ नाथ गजराज मनावत।
अँसुआ ढारत नैन भूमि सिर धूर उड़ावत॥ १९॥

जो रहीम भावी कहूँ होती अपुने हाथ।
राम न जाते हिरन सँग सीता रावन साथ॥
सीता रावन साथ जाइ दुख असह न पावत।
दसरथ बचन न देत प्रान प्रिय पुत्र गँवावत॥
जदपि राम सरवज्ञ टारि नहिं सके लिखी सो।
कोटिन करो उपाय होत निहचय भावी जो॥ २०॥

हित अनहित सब कोउ कहै को सलाम को राम।
हित रहीम तब जानिए जेहि दिन अटकै काम॥
जेहि दिन अटकै काम न ता दिन मुखहि छिपावै।
आपु सहै दुख कोटि मित्र के काम बनावै॥
विपति देइ जो साथ मीत जानिय तेहि नित चित।
सम्पद मैं तो धाइ बनत सहजही सबै हित॥ २१॥

जो रहीम गति दीप की कुल कपूत की सोय।
बारे उजियारो करै बढ़े अँधेरो होय॥
बढ़े अँधेरो होय नेह गुन देय जलाई।
दुरगन्धित गृह करै कालिमा देइ लगाई॥
व्यभिचारी अरु चोर देहि सुख तिन ही को अति।
सब सोभा बिनसाइ होइ यह जो रहीम गति॥ २२॥

ऊगत जाही किरन सों अथवत ताही कांति।
त्यों रहीम सुख दुख सबै बढ़त एक ही भाँति॥*

---

* जान पड़ता है, रहीम ने यह दोहा नीचे लिखे हुए प्राचीन श्लोक को देखकर रचा है—

उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥—सं० स०।

बढ़त एक ही भाँति तैसहीं घटत न देरी।
सुख दुख आठो जाम रहैं सबही कौं घेरी ॥
जो विवेक-रत दास नाहिं तनिकहुँ ते चूकत।
रहत एक रस, होत अस्त त्यों ही ज्यों ऊगत ॥ २३ ॥

जो रहीम छोटे बढ़ैं बढ़त करैं उतपात।
प्यादे तें फरजी भयो तिरछे तिरछे जात ॥
तिरछे तिरछे जात अधिक अभिमान बढ़ाई।
ओछे घट में कहाँ बहुत जल रहे समाई ॥
जन्मि हीन कुल बढ़े भाग्य प्रभुता पाई सो।
भू पैं धरैं न पाँव भूलि गए आपु रहे जो ॥ २४ ॥

गति रहीम बड़ नरन की ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपुने सही होत असवार ॥
सही होत असवार आप दुख सहै अनेकन।
पर-उपकारन लागि हानि निज करैं जु कोटन ॥
औरन के सुख हेतु सहैं दुख धन्य धीर मति।
जस भागी ते दास स्वर्ग में पावें नित गति ॥ २५ ॥

संपति भरम गँवाइ कै तहाँ बसे कछु नाहिं।
ज्यों रहीम ससि रहत है दिवस अकासहि माहिं ॥
दिवस अकासहि माहिं रहै निज तेज गँवाई।
अति फीके मुख लखै सबै सोभा बिनसाई ॥
नकटा जीए जदपि तऊ है महा अधम गति।
तहाँ बसे सुख नाहिं जहाँ भोगे सुख संपति ॥ २६ ॥

संपति संपतिमान को सब कोई सब देय।
दीनबंधु बिनु दीन की को रहीम सुधि लेय ॥

को रहीम सुधि लेय दीन दुखिया संपति बिन ।
बनै धनिक के सार दरिद परिवार करैं बिन ॥
पैं कृपालु प्रभु संपतिमानन कों करि चम्पत ।
अपुनावत अति दीन दीनपन जिहि एक सम्पत ॥ २७ ॥

दीनहि सब कहँ लखत है दीनहिं लखै न कोइ ।
जो रहीम दीनहिं लखै दीनबन्धु सम होइ ॥
दीनबन्धु सम होय करैं वाको प्रभु निज सम ।
दीनबन्धु यह नाम प्रभुहिं लागत अति प्रियतम ॥
देखु न करि हित दीन, कहत का ताकों जग महँ ।
दीनबंधु ये धन्य दान इन दीनहिं सब कहँ ॥ २८ ॥

अब रहीम चुप करि रहौ समुझि दिनन को फेर ।
जब दिन नीके आइहैं बनत न लागै देर ॥
बनत न लागै देर जबै पलटै दिन अपने ।
तब लौं चुप करि सहौ कोऊ सों नेकु न झपने ॥
सबै उपाय निरर्थ होयँ दिन खोटे हैं जब ।
करैं खुसामद सबै फेरि दिन पलटैंगे अब ॥ २९ ॥

खीरा सिर धरि काटिए मलिए निमक लगाय ।
करुए मुख कों चाहिए रहिमन यहै सजाय ॥
रहिमन यहै सजाय होत कटु मुखवारन की ।
तातें धरे सुभाउ मधुरता मुख धारन की ॥
मधुर अँगूरहिं खात दिए बिनु छिलकहिं चीरा ।
देखु प्रतच्छ प्रमान कहाँ अंगुर कहँ खीरा ॥ ३० ॥

साधु सराहैं साधुता जती जोखिता जान ।
रहिमन साँचे सूर को बैरी करै बखान ॥

वैरी करैं बखान सुजस सुर-पुर लौं छावै।
साँचो गुण बखसहु शत्रु मुख वाह कढ़ावै॥
सांचहिं आँच न कहूँ साँच की जय जु सदा हैं।
खलहु आदरैं अचरज कह जौ साधु सराहैं॥ ३१॥

रहिमन ओछ्र प्रसंग तें नित प्रति लाभ विकार।
नीर चुरावत संपुटी मार सहत घरियार॥
मार सहत घरियार जगत मैं प्रगट सुनावै।
गंगोदक मद संग मिलत निज नाम गँवावै॥
गेहूँ सँग घुन पिसैं बुरे सँग दुखित भले जन।
भूलि न ओछे संग करो कहि दास जु रहिमन॥ ३२॥

अमिय पियावत मान बिनु रहिमन मोहि न सुहाय।
मान सहित मरिबो भलो जो विष देइ बुलाय*॥
जौ विष देइ बुलाय अमिय जनि पान कीजिए।
आधे पेटहि खाइ नमक रोटिही जीजिए॥
धिक जीवन बिनु मान मिलै किन राज अमर तिय।
मान सहित विष दास लाख अम्मिय सों अम्मिय॥ ३३॥

सर सूखे पंछी उड़ैं औरैं सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के कहु रहीम कहँ जाहिं॥
कहु रहीम कहँ जाहिं जिन्हें आसरो तुम्हारो।
तुम बिनु रहैं न प्रान छनक जो नाथ बिसारो॥
कहाँ कौन पै छोड़ि होत हम पै तुम रूखे।
दास दया जिय धरहु मरत जिमि झख सर सूखे॥ ३४॥

---

* यह दोहा सोरठा के रूप में अहमद के नाम से प्रसिद्ध है।

कहु रहीम कैसे निभै केर बेर को संग।
वे डोलत रस आपुने इनके फारत अंग॥
इनके फारत अंग रंग वह अपुने डोलै।
चना चबावन संग कैसे सहनाई बोलै॥
खल सज्जन को संग निभत नाहिंन छन एकहु।
गाय व्याघ्र को संग निभै कै धरी दास कहु॥ ३५।

जो विषया संतन तजी मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत वमन करि स्वान स्वाद सों खात॥
स्वान स्वाद सों खात ज्ञान बिनु बुरो न बूझै।
तू ताहू ते मूढ़ पाइ नर तन नहिं सूझै॥
देखि जगत व्यवहार तऊ लावत नहिं हृदया।
बचिकै रहु तासों अनर्थ को जड़ जो विषया॥ ३६॥

अमी हलाहल मद भरे स्वेत स्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवत इक बार॥*
जेहि चितवत इक बार करत तिनकी नाना गति।
सत तम राजस साथ धरत यह परम प्रबल मति॥
बंक सहज मुसक्याइ, निरखि गति पलटत पल पल।
परम अनूपम नैन ऐन मद अमी हलाहल॥ ३७॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापै नहीं लपटे रहत भुजंग॥
लपटे रहत भुजंग होइ विषहीन सु आपै।
लाख सुंदरिन मध्य साधु मन नेकु न कांपै॥

---

* इस दोहे को कोई कोई रसलीन का कहते हैं।

जो नर सत्य-प्रतिज्ञ छार है रतन ढेर तो।
लाखन में नहिं मुरै अहैं जग सत्य सूर जो ॥ ३८ ॥

बसि कुसंग चाहत कुसल रहिमन मन अफसोस।
महिमा घटी समुद्र की रावन बसे परोस ॥*
रावन बसे परोस सिंधु पै सेतु बँधायो।
पाइ कुसंगति साधु जनन हू धर्म भुलायो ॥
हींग संग परि कस्तूरिहु की गंध जाइ नसि।
दृढ़ करि राखौ हिए कुसल नाहिन कुसंग बसि ॥ ३९ ॥

रहिमन सूधी चाल सों प्यादो होत उजीर।
फरजी मीर न है सकै टेढ़े की तासीर ॥
टेढ़े की तासीर मीर फरजी नहिं होवै।
परे कुदावन प्रान पियादे हाथहिं खोवै ॥
सूधी चालहिं गहो बनावत जो सब काजन।
दास कुटिलता तजौ लहो सुख संपति रहिमन ॥ ४० ॥

जो रहीम दीपक दसा तिय राखति पट ओट।
समय परे पर होति है वाही पट की चोट† ॥
वाही पट की चोट दीप छन माहिं बुझावै।
जोइ रच्छक सोइ भच्छक यह प्रत्यच्छ दिखावै ॥

---

* यह दोहा तुलसीदास जी के नाम से प्रसिद्ध है।

† इस दोहे का भाव नीचे दिए गए प्राचीन पद्य से मिलता है।

येनार्जुनेन सरसीरुहलोचनाशा-
स्त्रातः प्रभूतपवनाद्धृदये प्रदीपः।
तेनैव सोऽस्तसमयेऽस्तमयं विनीतः
क्रुद्धे विधौ भजति मित्रममित्रभावम् ॥ सं० स०

समय फिरे पर बनै सत्रु जो रहै मीत सो।
समय फेर नहिं फिरै सहो सो आनि परै जो ॥ ४१ ॥

अनुचित उचित रहीम लघु करैं बड़ेन के जोर।
ज्यों ससि के संकोच सों पचवत आग चकोर॥
पचवत आग चकोर चन्द्रमा के बल ही सों।
हने शिखंडी भीष्म एक अर्जुन के छल सों॥
कहा धनिक नहिं करै पाइ कमला को निज हित।
हाकिम को बल पाइ करैं अमला बहु अनुचित ॥ ४२ ॥

काम कछू आवै नहीं मोल न कोऊ लेय।
बाजू टूटे बाज को साहब चारा देय॥
साहब चारा देय जाहि कोउ बात न पूछे।
परम गरीबनेवाज भरत जेहि देखत छूछे॥
देइ गजहिं मन चिउटिन कन अजगरहू को भछ।
तिनके दाता राम जौन नहिं जोग काम कछु ॥ ४३ ॥

धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है जगत पियासो जाय॥
जगत पियासो जाय तृपित लखि जल ललचावै।
जद्यपि सब कछु भरयो काम कोउ के नहिं आवै॥
है सब लायक दीन दया नहिं धिक तिन कहँ गनि।
लघु पुँजी उपकार सने मन नर तेइ धनि धनि ॥ ४४ ॥

माँगे घटत रहीम पद कितो करो बढ़ि काम।
तीन पेग बसुधा करी तऊ बावनै नाम॥
तऊ बावनै नाम काम बलि द्वारे ठाढ़े।
कर फैलाए कहत सदा दाता की बाढ़ै॥

सब परतिष्ठा दास दूर ताही छिन भागे।
आँखिन मैं घटि जाय जाय पर-द्वारे माँगे ॥ ४५ ॥

नाद रीझि तन देत मृग नर धन हेत समेत।
ते रहीम पसु तें अधिक रीझेहु कछू न देत ॥
रीझेहु कछू न देत वाह वाहिहु मैं टोटा।
कबहुँ कियो जो वाह दियो मनु कंचन कोटा ॥
सहि कलेस निज गुन दिखरायो बड़ी साध मन।
रुच्यो न तातें धन्य देत मृग नाद रीझि तन ॥ ४६ ॥

रहिमन कबहूँ बड़न कों नाहिं गर्व को लेस।
भार धरें संसार को तऊ कहावत सेस ॥
तऊ कहावत सेस अटल गति रहत सदाहीं।
सरसों सम तेहि जानि नाहिं कबहूँ अनखाहीं ॥
ओछे जौ कछु बढ़ैं धरत धरनी पर पैर न।
भूलि आपनो रूप जगत तृन लखत रहीमन ॥ ४७ ॥

रहिमन नीचन संग बसि लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि मद समुझहिं सब ताहि ॥
मद समुझहिं सब ताहि घृणा सों ताको पेखैं।
जैसी संगति लखैं ताहि तैसोही लेखैं ॥
दुष्ट संग मैं बैठि बचौ बरु दुष्ट कर्म सन।
पै जग के उपहास बचो नहिं दास रहीमन ॥ ४८* ॥

---

* पाठांतर—मद समुझहिं सब ताहि संग बस संशय पैठ्यो।
परम सुंदरी साथ युवक इकलोही बैठ्यो ॥
वरियन अवसर पाइ सकत रखि मन के बेगन।
पै कलंक जग कबौं रोक नहिं सकत रहीमन ॥ ४८ ॥

रहिमन अब वे बिरछ कँह जाकी छाँह गँभीर ।
बागन बिच बिच देखियत सेंहुड़ कंज करीर ॥
सेंहुड़ कंज करीर जहाँ तहँ देखि परत अब ।
अनमोलक हय जहाँ तहाँ खर बँधे लखौ सब ॥
जिन सों सब सुख लहत पाइ फल फूल सुछाँहन ।
तहँ बबूल दुख देइ काल बस हाय रहीमन ॥ ४९* ॥

बिगरी बात बनै नहीं लाख करौ किनि कोय ।
रहिमन बिगरे दूध को मथे न माखन होय ॥
मथे न माखन होय जतन चाहे जो कीजै ।
एक बेर मन फटे सुरस नहिं फेरि लहीजै ॥
चूके एकहि बूँद फेर ढरकाए गगरी ।
बनै न कोटि उपाय दास बिगरी सो बिगरी ॥ ५० ॥

मथत मथत माखन रहै दही मही बिलगाय ।
रहिमन सोई मीत है भीर परे ठहराय ॥
भीर परे ठहराय मीत तेहि साँचो जानें ।
संपति में सब सगे विपति सबही बिलगानें ॥
प्रिय हितनि ताहि सबै त्यागि निज स्वार्थ मनोरथ ।
ऐसे निज हित सने मीत कों दास लेहु मथ ॥ ५१ ॥

होय न जाकी छाँह ढिग फल रहीम अति दूर ।
बाढ़ेउ सो बिनु काम के जैसे तार खजूर ॥

---

* पाठांतर—सेंहुड़ कंज करीर रहे सोभा बिनसाई ।
बालमीक शुक व्यास जहाँ छबि रहे बढ़ाई ॥
अर्जुन करन ययाति भीष्म सोहत जो देसन ।
तहँ दिखात हम सरिस अधम कायर नर रहिमन ॥

जैसे तार खजूर बढ़े पै काम न आवै ।
धिक धिक ऐसी बाढ़ जो न कछु सुख सरसावै ॥
जानि देहु फल कथा दया नहिं पथिक बिथा की ।
व्यर्थ ठाम रहे रोकि छाँह हूँ निकट न जाकी ॥ ५२ ॥

रहिमन निज मन की बिथा मन ही राखौ गोय ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब बाँटि न लैहैं कोय ॥
बांटि न लैहैं कोय भरम बिनु बात गँवाइय ।
जो कछु बीते सहै बिथा केहि रोइ सुनाइय ॥
हँसिबेवारे सबै दुखित दुख बूझत बिरलन ।
भव दुख मेटनहार और नहिं बिनु वा रहिमन ॥ ५३ ॥

रहिमन वे नर मर चुके जे कहुँ माँगन जाहिं ।
उनते पहिले वे मुए जिन मुख निकसत नाहिं ॥
जिन मुख निकसत नाहिं नाहिं ते मनौं जगत में ।
होत विमुख जे होहिं जनम धिक तिनको जग में ॥
भले पसारें हाथ लगै जब प्रान अधर तर ।
जिन्हैं न ताकी दरद जियत क्यों रहिमन वे नर ॥ ५४ ॥

मुकता करै कपूर करि चातक जीवन जोय ।
एतो बड़ो रहीम जल ब्याल बदन विष होय ॥
ब्याल बदन विष होय प्रकृति अमृतमय तजि कै ।
जैसो देखै पात्र मिलै तेहि तैसहि सजि कै ॥
जे रघुपति पद पदुम रहत मुनि मन संयुक्ता ।
तिन पद तर दससीस लुठत रजमय तजि मुक्ता ॥ ५५ ॥

ससि की सीतल चांदनी सुंदर सबहिं लखाय ।
लगै चोर चित में लटी घटि रहीम मन आय ॥

घटि रहीम मन आय न तासों ससिहिं छोटाई ।
जौ घटि लखै उलूक दिवाकर नाहिं हेठाई ॥
खल निंदा नहिं गिनहिं सुसज्जन टारि देहिं हँसि ।
सज्जन गुन सब काल लगत सीतल जैसे ससि ॥ ५६ ॥

अमृत ऐसे वचन मैं रहिमन रिस की गांस ।
जैसे मिसरिहु में मिली निरस बाँस की फांस ॥
निरस बाँस की फाँस सरस मिसरी सँग लागत ।
बाँकी चितवनि बिना रसिक मन नहिं अनुरागत ॥
मान समय अपमान रुचत पिय कों मानिनि कृत ।
रसमय रिस के बैन दास लागत ज्यों अमृत ॥ ५७ ॥

रहिमन मनहिं लगाइ कै देखि लेहु किन कोय ।
नर को बस करिबो कहा नारायन बस होय ॥
नारायन बस होय मनहिं दृढ़ करि जु लगावै ।
सब कारज ही धाइ सहज मैं सनमुख आवै ॥
जगत भयो बस जासु भयो बस जब चंचल मन ।
दमन कठिन मन केर कठिन कछु और न रहिमन ॥ ५८ ॥

रहिमन अँसुआ नैन ढरि मन दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह तें कस न भेद कहि देइ ॥
कस न भेद कहि देइ भेद घर को सब जानै ।
देइ मान हिय धरयो निकारत जिय दुख मानै ॥
मुँह लगाउ करि जांच तरह दीजे भेदी सन ।
होत अतिहि नुकसान बिगारे भेदिया रहिमन ॥ ५९* ॥

* पाठांतर—कस न भेद कहि देइ भेद घर को सब जानै ।
करौ न कोटि छिपाव सीस चढ़ि तौन बखानै ॥

गुन ते लेत रहीम जन सलिल कूप तें काढ़।
कूपहु तें कहुँ होत है मन काहू को गाढ़॥
मन काहू को गाढ़ कितेको चाहे होवै।
वस गुन तें ह्वै जाय रुखाई सारी खोवै॥
गुनी जनन के गुन को गाहक अवसि मिलै सुन।
कबहुँ दुखी नहिं होइ रहै अपुने में जो गुन॥ ६० ॥

रहिमन मन महराज के दृग सो नहीं दिवान।
जाहि देखि रीझे नयन मन तेहि हाथ बिकान॥
मन तेहि हाथ बिकान ठिकानो लागै कैसे।
इक तो आपुहि चपल मिले मंत्री हू तैसे॥
तापैं उतते लगे नैन सर कसिकै जेहि छन।
दीवाने दीवान भए मन फँसयो रहिमन॥ ६१ ॥

विरह रूप घन तम भयो अवधि आस उद्योग।
ज्यों रहीम भादों निसा चमकि जात खद्योत॥
चमकि जात खद्योत कहूँ कहुँ पंथ सुझावत।
जैसे सिंधु अथाह बांस लहि धीर बढ़ावत॥
अवधि मिलन पिय कयो आस इक सोइ विरहिनि तन।
प्रान रहत ठहराय भेदि कै विरह रूप घन॥ ६२ ॥

रहिमन लाख भली करो अगुनी अगुन न जाय।
राग सुनत पय पियत हूँ साँप सहज धरि खाय॥
साँप सहज धरि खाय जदपि पाल्यो बचपन सों।
वाको जाति सुभाय काऊ सों छूप न मन सों॥

तब लौं गोए रहत रुकत नहिं जबही लौं मन।
जब उफनाइ कढ़ात छिपत तब नाहिन रहिमन॥ ५९ ॥

कुटिल कृतघ्नी लोगन पैं वारे हूँ तन मन।
जाइ न दुष्ट सुभाव दास यह कहत रहीमन ॥ ६३ ॥

जैसी परै सो सहि रहै कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब सीत घाम औ मेह॥
सीत घाम औ मेह सबै सहतै बनि आवै।
चलै न एकु बिचार आइ जब सिर घहरावै॥
राजा रंक अमीर दास सबकी गति ऐसी।
बनै सबन ही सहत परै जिनपैं जब जेसी ॥ ६४ ॥

सीत हरत तम हरत नित भुवन भरत नहिं चूक।
रहिमन तेहि रवि को कहा जौ घटि लखै उलूक॥
जौ घटि लखै उलूक दोस तौ रवि नहिं पावै।
ससि पै डारै धूर आपुने ही पैं आवै॥
इनही के बल जगत चलत दूजो को इन सम।
परयो सौर जग नाम दास नित सीत हरत तम ॥ ६५ ॥

ज्यों रहीम सुख होत है बढ़े आपुने गोत।
त्यों बड़री अँखियानि लखि अँखियन को सुख होत॥
अँखियन को सुख होत बड़ाई नैनन देखे।
पाइ सजाती बिहँसि मिलत कुल गुन बिनु लेखे॥
ज्यों ज्यों ये मिलि हँसैं बिबस मन होय सु त्यों त्यों।
उलझत औरहिं और छुड़ाओ इनको ज्यों ज्यों ॥ ६६ ॥

मनसिज माली की उपज कहि रहीम नहिं जाय।
फल श्यामा के उर लगे फूल श्याम उर आय॥
फूल श्याम उर आय लगे हिय मोद बढ़ावन।
प्रेमबेलि डहडही सदा दोऊ मनभावन॥

भई प्रफुल्लित और फलित मोहत सोभा निज।
प्रेम अमृत सों सींचि बढ़ायो है एहि मनसिज ॥ ६७ ॥

जिन रहीम तन मन लियो कियो हिए में भौन।
तिनसों सुख दुख कहन की रही कथा अब कौन ॥
रही कथा अब कौन जौन हिय माहिं छिपाइय।
मनहिं लियो अपनाइ वस्तु अब कौन दुराइय ॥
पय पानी सों मिलै दास तू तजि छल बल किन।
करै न कछू दुराव लियो है तेरो मन जिन ॥ ६८ ॥

ये न रहीम सराहिए देन लेन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिए हार होइ की जीत ॥
हार होइ कै जीत मीत हित टरैं न सपने।
प्रान हाथ ही लिए रहै प्रीतम हित अपने ॥
एक प्रेम तैं काम आस कछु चित्त न धरते।
जग सब खोजे दास मिले बिरले जु मित्र ये ॥ ६९ ॥

हरि रहीम ऐसी करी ज्यों कमान सरपूर।
खैंचि आपुनी ओर कों डारि दियो पुनि दूर ॥
डारि दियो पुनि दूर भ्रमत लख चौरासी यों।
अपनो जन कहवाइ करावत उपहासी क्यों ॥
नाथ ! न्याय गुन भूलि दया गुन सहज चित्त धरि।
लीजै दास उबारि अहो करुणा-निधान हरि ॥ ७० ॥

करत निपुनई गुन बिना रहिमन निपुन हजूर।
मानो टेरत बिटप चढ़ि एहि प्रकार हम कूर ॥
एहि प्रकार हम कूर आपुहि प्रगट जतावै।
जादू वहै बखान सीस चढ़ि कै कबुलावै ॥

गुन पुरुषारथ हीन फैल ये बहु आडंबर।
दास अंत खुल जाय चतुरई लाख क्यों न कर॥ ७१॥

नहिं रहीम कछु रूप गुन नहिं मृगया अनुराग।
देसी स्वान जो राखिए भ्रमत भूख ही लाग॥
भ्रमत भूख ही लाग काम नहिं कबहूँ आवै।
भौं भौं करि कै कान फोरि चित दुचित करावै॥
जो देखै सो हँसै धन्य है इनकी रीझहिं।
ताहि साथ जिनि रखौ रूप गुन कछु जिनमें नहिं॥ ७२॥

कागद को सो पूतरा सहजहि में घुलि जाय।
रहिमन यह अचरज लखौ सोऊ खैंचत बाय॥
सोऊ खैंचत बाय अमर अपने को मानै।
द्वै दिन की चाँदनी ऐंठि जग तृन सम जानै॥
अरे मूढ़! निज रूप समुझु करु सुकृत कर्म जो।
नस्वर तन जिनि भूलु पूतरा कागद को सो॥ ७३॥

कहि रहीम इक दीप तें प्रगट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै दृग दीपक जरु दोय॥
दृग दीपक जरु दोय भरयो हिय नेह खजानो।
दोय दोय के मिलत झलक बाइस गुन मानो॥
चाहत जितो छिपाव तितो औरहु वह प्रगटहि।
हृदय भाव बरबसहिं नैन ये दास देत कहि॥ ७४॥

तरवर फल नहिं खात हैं सरवर पियें न पान।
कहि रहीम पर-काज-हित संपति सुचहिं सुजान॥
संपति सुचहिं सुजान देह पर-कारज धारहिं।
करि कै पर-उपकार बचन नहिं कबहूँ उचारहिं॥

और आप दबि जाहिं दास जे अहैं श्रेष्ठ नर।
फल सों लदि कै सदा झुकत जिमि धरनी तरवर ॥ ७५ ॥

जिहि रहीम चित आपनो कीनो चतुर चकोर।
निसि बासर लागी रहै कृष्णचंद्र की ओर ॥
कृष्णचंद्र की ओर सदा मो मन अनुरागै।
ज्यों मयूर घन चातक स्वाती ही सों पागै ॥
ऐसे ही मन लग्यो रहै नित चरन कमल तिहि।
ब्रज-युवती मन-मोर नचत लखि मुख सुंदर जिहि ॥ ७६ ॥

रीति प्रीति सबसों भली बैर न हित नित गोत।
रहिमन याही जनम को बहुरि न संगति होत ॥
बहुरि न संगति होत कहाँ तुम कहँ वे बिछुरैं।
कहा कहाँ तें आइ आज एकत ह्वै बिचरैं ॥
जीवन है दिन चार कलह अरु द्वेष तजौ अब।
हिल मिल सुख सों रहौ दास करि रीति प्रीति सब ॥ ७७ ॥

कहि रहीम धनि बढ़ि घटै जात धनिन की बात।
घटै बढ़ै तिनको कहा घास बेचि जे खात ॥
घास बेचि जे खात रहत निर्द्वंद सदा ही।
धनिकहिं टेढ़ी परत होत जौ तनिक तबाही ॥
साक मिटै अरु भेद बात मैं परै जु तनकहि।
उद्यम-जीवी लोग नेकु जिय मैं नहिं संकहि ॥ ७८ ॥

दुरदिन परे रहीम कहि भूलत सब पहिचानि।
सोच नहीं वित हानि को जो न होय हित हानि ॥
जौं न होय हित हानि कहा बित हानि बिगारै।
वित नित आवै जाय भाग्य बस सबै सहारै ॥

दास लेत मुख फेरि देखि कछु लै यह माँगि न।
भये बिगाने मीत सतावत औरहु दुरदिन ॥ ७९ ॥

को रहीम पर-द्वार पर जात न जिय पछितात।
संपति को सब जात है बिपत सबहिं लै जात॥
बिपति सबहिं लै जात समुझिओ संपति वारे।
करु न निरादर वहू जीव है सदस तिहारे॥
आयो तुव ढिग हारि आस बिनु करु न बनै तो।
ढलती फिरती छाँह सुफल करु निज धन पद को ॥ ८० ॥

जो रहीम होती कहूँ प्रभु-गति अपने हाथ।
तो को धौं केहि मानतो आप बड़ाई साथ॥
आप बड़ाई साथ भूमि पै पग नहिं धरतो।
मन भावति अनीति सदा ही जग मैं करतो॥
बिनु पाये अधिकार फूलि अभिमान करै सो।
ना जानै का करै नेकु अधिकार मिलै जो ॥ ८१ ॥

जो रहीम मन हाथ है मनसा कहुँ किन जाहिं।
जल भीतर छाया परी काया भीजति नाहिं॥
काया भीजति नाहिं रहै जल सों जो न्यारो।
मन राखै दृढ़ किये कहा दुःसंग बिचारो॥
दास डिगावैं नाहिं सहै सब परै जोई तन।
करि न सकै कोउ कछू रहै बस जो रहीम मन ॥ ८२ ॥

तेहि प्रमान चलिबो भलो जो सब दिन ठहराय।
उमड़ि चलै जल पार तें जो रहीम बढ़ि जाय॥
जो रहीम बढ़ि जाय घटै सो निहचै जग यहि।
पूनो को ससि ग्रसै राहु तजि द्वैज चंद्रमहि॥

चलै न ऐसी चाल लखत जग आँख चढ़ै जेहि।
बुधजन चलैं जो चाल दास दृढ़ करि तू गहि तेहि ॥ ८३ ॥

यों रहीम सुख दुख सहत बड़े लोग सहसाँति।
उवत चंद्र जेहि भाँति सों अथवत वाही भाँति ॥
अथवत वाही भाँति एक विधि अंतर नाहीं।
यहै नीति जग चली घटत औ बढ़त सदाहीं ॥
बाढ़े जैसे रहे घटे हू पै रहिए त्यों।
धीरजवान सुजान सहैं सुख दुःख सदा यों ॥ ८४ ॥

माह मास लहि टेसुआ मीन परे थल और।
त्यों रहीम जग जानिए छूटे अपनो ठौर ॥
छूटे अपनो ठौर रहैं बस हाड़ चाम के।
दाँत केस नख मनुज भ्रष्ट थल बिना काम के ॥
जब लौं थल पैं रहै तबै लौं सब गुन गरिमा।
कौड़ी के भये तीन छुटे थल भागी महिमा ॥ ८५ ॥

कहि रहीम संपति सगे बनत बहुत बहु रीत।
बिपति कसौटी जे कसे तेई साँचे मीत ॥
तेई साँचे मीत परे दुख टरैं न सपने।
ज्यों ज्यों लागै आँच लगै रँग औरहु दपने ॥
ऐसे साँचे हितू जगत खोजे बिरले लहि।
जिन्हें मिले अस मीत तिन्हें जग धन्य धन्य कहि ॥ ८६ ॥

तब ही लग जीबो भलो दीबो परै न धीम।
बिनु दीबो जीबो जगत हमहिं न रुचै रहीम ॥
हमहिं न रुचै रहीम दया बिनु जग मैं जीबो।
यहै एक है सार बनै निज कर जो दीबो ॥

धन की सोभा दान दान सों जस फैलै जग।
जब लौं पर-उपकार बनै धन जनम तबहि लग ॥ ८७ ॥

रहिमन दानि दरिद्र तर तऊ जाँचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे कुआँ खनावत लोग ॥
कुआँ खनावत लोग लेइ गुन तें जल काढ़त।
दत्तात्रय जड़ गुरु कियो इक गुनहिं निहारत ॥
नीच ऊँच को भेद दास करि दूर राखु मन।
मिलै जहाँ गुन दान धाइ लीजै तहँ रहिमन ॥ ८८ ॥

रहिमन देखि बड़ेन को लघु न दीजिए डार।
जहाँ काम आवै सुई कहा करै तलवार ॥
कहा करै तलवार अँगरखा के सीवन में।
मोती चुगे न जाहिं अन्न है जड़ जीयन में ॥
बैठि बड़न ढिग फूलि निरादर करहिं न लघु जन।
जहँ आवै जो काम तहाँ संचिय सो रहिमन ॥ ८९ ॥

बड़ माया को दोस यह जो कबहूँ घटि जाय।
तो रहीम मरिबो भलो दुख सहि जिए बलाय ॥
दुख सहि जिए बलाय मान बिनु जीवन फीको।
कियो राज तहँ लगत भीख माँगन नहिं नीको ॥
रहे आपुने आस, हाथ तिन पै फैलाया।
निभै एक रस सदा होय बरु नहिं बड़ माया ॥ ९० ॥

धनि रहीम गति मीन की जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अनत बसि कहा भौंर को भाय ॥
कहा भौंर को भाय लेइ मधु अनत सिधारै।
स्वारथ ही की प्रीति काम लै फिर न निहारै ॥

धिक धिक ते नर दास स्वार्थ हित मीत रहे बनि ।
प्रिय बिछोह जे प्रान तजैं ते प्रेमी जग धनि ॥ ६१ ॥

दादुर मोर किसान मन लग्यो रहै घन माहिं ।
पै रहीम चातक रटनि सरवर कों कोउ नाहिं ॥
सरवर कों कोउ नाहिं श्यामसुंदर रस ओपीं ।
ज्ञान सुनैं नहिं धर्म प्रेम मद माती गोपीं ॥
सुनि ऊधो की बात दुखित ह्वै बोलीं सब मुर ।
चातक चाहैं स्वाति नचत घन लहि कै दादुर ॥ ६२ ॥

अमर बेलि बिन मूल की प्रतिपालत है ताहि ।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि खोजत फिरिए काहि ॥
खोजत फिरिए काहि नंदनंदन पिय आछत ।
निज जन दु:ख प्रहार रहत नित काछा काछत ॥
जो सहाय असहाय सरन गहि अरे मूढ़ किन ।
होइ अमर किमि दास गहे दृढ़ अमर बेलि बिन ॥ ६३ ॥

रहिमन अत्ति न कीजिए गहि रहिए निज कानि ।
सहिजन अति फूलै तऊ डार पात की हानि ॥
डार पात की हानि भए कहा सोभा पाई ।
अत्ति किये हरनाकुस छन में गयो बिलाई ॥
बलि कीनो अति धर्म पठायो तुरत पतालन ।
करै राह की बात निभै जो सदा रहीमन ॥ ६४ ॥

सरवर के खग एक से बाढ़त प्रीति न धीम ।
पै मराल को मानसर एकै ठौर रहीम ॥
एकै ठौर रहीम अनत चित नाहिं डिगावै ।
कमलन कों रवि एक और सों सुख नहिं पावै ॥

सती नारि मन सदा रहै मति एक चरन तर ।
गोपिन एकहि श्याम कहो को इनके सरवर ॥ ९५ ॥

कहु रहीम केती रही केती गई बिहाय ।
माया ममता मोह परि अंत चले पछिताय ॥
अंत चले पछिताय काम एकौ नहिं आए ।
जिन हित बहु दुख सहे आजु वे भए पराए ॥
अब सब तजु रे मूढ़ सरन नँदनंदन की गहु ।
राधे कृष्ण गोपाल सियापिय राम राम कहु ॥ ९६ ॥

जो रहीम करबो हुतो ब्रज को यहै हवाल ।
तो कत मातहिं दुख दियो गिरिवर धरि गोपाल ॥
गिरिवर धरि गोपाल ब्रजहि बूड़न सों राख्यो ।
क्यों परबस सहि क्लेस जरत दावानल चाख्यो ॥
कालिय दहि विषहीन कियो क्यों जमुना जल को ।
क्यों ब्रज राख्यो नाथ ! करन ही रही यही जो ॥ ९७ ॥

जो रहीम बिधि बड़ किए को कहि दूषन काढ़ि ।
चंद दूबरो कूबरो तऊ नखत सों बाढ़ि ॥
तऊ नखत सों बाढ़ि सदा उडुराज कहावै ।
बूढ़ भयो मृगराज तऊ बन मेरु कँपावै ॥
करौ लाख उपहास ईरषा कछु न गिनैं ते ।
तिनको घटै न बढ़ै बिधाता किए बड़े जे ॥ ९८ ॥

रहिमन जाचकता गहे बड़े छोट ह्वै जात ।
नारायन हू को भयो बावन आँगुर गात ॥
बावन आँगुर गात परयो ही हाथ पसारत ।
बलि के द्वारे खरे अजहुँ यह कहे पुकारत ॥

सबै बड़ाई धूल माँगिबे की आई मन।
दाता की जय सदा दबै जाचक ही रहिमन॥ ९९॥

जब रहीम घर घर फिरैं माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छाँड़ि द्यो अब रहीम वे नाहिं॥
अब रहीम वे नाहिं रहे मुख जिनको जोहत।
कौड़ी के भए तीन द्रव्य अपुनो सब खोवत॥
रहिए इनसों दूर लेहिं नहिं माँगि कछू अब।
अब सब बातें गईं रहीं तब रहीं दास जब॥ १००॥

जाल परे जल जात बहि तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर की तऊ न छाँड़ति छोह॥
तऊ न छाँड़ति छोह बिछोहा प्रान गँवावै।
अम्मृत मैं लै धरो तऊ नहिं ताहि सुहावै॥
साँचे प्रेमी अटल करहिं प्रीतम कैसहुँ छल।
झख न तजै जल नेह तजत झख जाल परे जल॥ १०१॥

धन दारा अरु सुतन मैं रहत लगाए चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं गाढ़े दिन को मित्त॥
गाढे दिन को मित्त चित्त में क्यों नहिं राखहु।
सुद्ध प्रेममय होय प्रेम अमृत किन चाखहु॥
जाके संग अनंत समय तुम करौ बिहारा।
छोड़ु न सो दिन चार हेत ये सुत धन दारा॥ १०२॥

बड़े पेट के भरन मैं है रहीम दुख बाढ़ि।
गज के मुख बिधि याहि तें दए दाँत द्वै काढ़ि॥
दए दाँत द्वै काढ़ि प्रगट जग माहिं दिखावत।
मनहुँ निकारे दाँत पेट की बिथा जनावत॥

लघु संतोषी सदा सुखी बचि सब रपेट के।
सबहिन भारी परैं परे सिर बड़े पेट के॥ १०३॥

ओछो काम बड़ो करैं तौ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमंत को गिरिधर कहै न कोय॥
गिरिधर कहै न कोय मेरु लै लंका धाए।
इन्हैं न गिरिधर कहैं उन्हें पूजन सब आए॥
यहै जगत की रीति बड़न पद सबहि न पोछे।
कोऊ न पूछत काम करैं कैसहु जो ओछे॥ १०४॥

प्रीतम-छबि नैनन बसी पर-छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि पथिक आपु फिरि जाय॥
पथिक आपु फिरि जाय टिकन की जगह न पावै।
तन मन पिय रस भरयो ज्ञान अब कहाँ समावै॥
मन समुझावत चहत हाय! पै कहा करैं हम।
नैनन ढिग आवतै सबै ह्वै जात जु प्रीतम॥ १०५॥

गुरुता फबै रहीम कहि फबि आई है जाहि।
उर पर कुच नीके लगैं अंत बतौरी आहि॥
अंत बतौरी आहि सबै सोभा बिनसावै।
जेहि हित जो कछु बन्यो तहाँ सोई छबि पावै॥
ओछे बड़ पद लहैं तदपि झलकत हठि लघुता।
पै तिनही को फबै सदा जिन पाई गुरुता॥ १०६॥

मान सरोवर ही मिलै हंसनि मुकता भोग।
सफरी भरे रहीम सर बक-बालक ही जोग॥
बक-बालक ही जोग इहाँ नहिं काम हमारो।
जग माया के कीट करै को मान तिहारो॥

हमें न कछु परवाह तिहारी अरे मूढ़ नर।
कहा दिखावत लोभ बसत हम मानसरोवर॥ १०७॥

रहिमन रिस सहि तजत नहिं बड़े प्रीति की पौरि।
मूकन मारत आवई नींद बिचारी दौरि॥
नींद बिचारी दौरि पुट-पुरिन लागत आवै।
जे गँभीर जन रोस विवस नहिं न्याय भुलावै॥
आम वृच्छ सहि मार देत फल परम प्रेम सन।
कटैं कुटैं अन देइ बड़न की गति यह रहिमन॥ १०८॥

जो पुरषारथ सों कहूँ संपति मिलति रहीम।
पेट लागि बैराट घर तपत रसोईं भीम॥
तपत रसोईं भीम त्यागि कुल मान बड़ाई।
बिनु अवसर नहिं होय कोऊ कारज ही साँई॥
सौ सौ करौ उपाय सुफल नहिं होय नेकु सो।
सोई मिलै अरु तबै मिलै लिखि रही भाग जो॥ १०९॥

रहिमन अपने पेट सों बहुत कह्यो समुझाय।
जौ तू अनखाए रहै तो सों को अनखाय॥
तो सों को अनखाय खाय तू तोहिं बढ़ावै।
तू ही अनरथ मूल जगत मैं मान घटावै॥
तेरेहि कारन रोग लेत सब अंगन को गहि।
दादा! करिकै कृपा क्यों न तू अनखाए रहि॥ ११०॥

खरच बढ़्यो उद्यम घट्यो नृपति निठुर मन कीन।
कहु रहीम कैसे जिए थोरे जल की मीन॥
थोरे जल की मीन भए सब भारतवासी।
अनावृष्टि अतिवृष्टि सबै धन धान विनासी॥

पेट जुरै नहिं अन्न लगत नित प्रति कर पर कर।
अन धन खिचत बिदेस रहत इत नाहिन इक खर ॥१११॥

रहिमन तीन प्रकार तें हित अनहित पहिचान।
परबस परे परोस बस परे मामिले जान ॥
परे मामिले जान जान पहिचान करावै।
उघरैं मन के भाव सत्रु अरु मित्र जनावै ॥
करैं भलाई सदा अहैं जग जे सज्जन जन।
इनकी संगति किए भलाई नित प्रति रहिमन ॥११२॥

दीरघ दोहा अरथ के आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली सिमिटि कूदि कढ़ि जाहिं ॥
सिमिटि कूदि कढ़ि जाहिं देखि अचरज जिय आवै।
घट तैं सिंधुहिं बाँधि मनौं निज बस मैं लावै ॥
सार पूर्ण उपदेस पूर्ण गुन पूरन सोहा।
कैसे कहे रहीम अरथ के दीरघ दोहा* ॥११३॥

[सरस्वती, भाग ३]

---

* कविवर् राधाकृष्ण ने उनहिं पल्लवित कीन।
सारदीय ससि सम बिमल सुजस विस्व बिच लीन ॥ स० सं०

(११) विनय

प्रभु हो पुनि भूतल अवतरिए ।
अपुने या प्यारे भारत के पुनि दुख दारिद हरिए ॥
धरम गिलानि होति जबही जब तब तब तुम वपु धारत ।
दुष्टन हरि साधुन निर्भय करि तबही धरम उबारत ॥
महा अविद्या राच्छस ने या देसहिं बहुत सतायो ।
साहस, पुरुषारथ, उद्यम, धन, सबही निधिन गँवायो ॥

काल, पात्र अधिकार विरोधी सबही कारज साधैं ।
साँचे धर्म छाँड़ि मिथ्या विश्वासन ही आराधैं ॥
जेते गुन जग मैं बढ़िबे के ते अवगुन इन लेखे ।
देखि प्रतच्छ प्रमान अनेकहु करत हाय अनदेखे ॥
जो कोउ हित की कहत बात तौ कोपैं सबही भारी ।
धरम बहिरमुख, मूरख, नास्तिक कहि कहि देवैं गारी ॥

कहँ लगि कहौं दयानिधि इनकी सबहि भए मतवारे ।
जो तुम साँचे जगत-पिता तौ क्यों न दया उर धारे ॥
जौ कोउ कबहूँ धरम परचारक भाग्यन ही सों जनमे ।
तौ वे शुष्क जगत स्वारथ-रत भक्ति नेकु नहिं मन में ॥
झूठे मन केवल बनावटी तुव अस्तित्वहिं मानैं ।
करिकै ओट धरम-ग्रंथन की भेद और जिय ठानैं ॥

जद्यपि निहचय देस दसा लखि कोउ कोउ दु:खित भारी।
पै ये देश काल बिनु सोचे चलत चाल हितकारी॥
ताही तें इनके बातन को होत प्रभाव न नेकौ।
तैंतिस कोटि अछत बढ़वत ये संख्या और अनेकौ॥
करुनामय! शंकर स्वामी सम पुनि भूतल वपु धारौ।
मेटि सकल उपधर्म भ्रमित विश्वासहिं जड़ सों जारौ॥

थापि प्रेम मन भक्ति अचल साँचे गुन हिंदुन दीजै।
मूल धर्म निरधारित करि प्रभु त्राहि! कल्यानहिं कीजै॥
उद्धत भए सबै सनमाने बिना तुम्हारे आए।
काहू की न सुनैंगे ये करिहैं निज निज मन भाए॥
जो यह बात न मन में आवै तौ सबवा कों टेरौ।
हुकुम देहु दल बल समेत भारत पै डारै डेरौ॥

पूर्न प्रताप प्रलय बरसा करि छिन में याहि बहावै।
रहै न नाम हिंद हिंदू को जग में अब न लजावै॥
देखो जग उपहासास्पद ह्वै तुम्हरो नाम धरावैं।
कृष्ण कृपानिधि! कृष्णकाय ये तुम्हरो विरद हँसावैं॥
कै मारौ कै तारौ इनको कछु निस्तार लगाओ।
त्राहि त्राहि करुनामय केशव! दासहिं प्रभु अपुनाओ॥

[सरस्वती, भाग ३]

(१२) फुटकर कविता

(१)

लागे पै मानत न कछु, करहु जु लाख उपाय।
इत उत चितवैं नहिं तनिक, नैन निगोरे हाय॥
मन सों मन अरु हार सों, हार उरझि रहि देह।
धन उरझनि यह प्रेम की, धन्य धन्य यह नेह॥
रात जगी सँग लाल के, भे दृग दोऊ लाल।
मानहुँ होन प्रभात सों, भई क्रुद्ध अति बाल॥

[कविवचनसुधा]

(२)

बिरह पलेट्यो तन दसा, मन गति हू बदलानि।
निज प्रतिबिंबहि लखि चकित, दूजी तिय जिय जानि॥
प्रेम-पंथ कछु और, प्रियतम बिछुरे सुख बढ़ै।
प्रिय लखात सब ठौर, भेंटे इक प्रिय भेंटहीं॥

(३)

झीनी झीनी बूँदनि परति, बड़ी सोभा अति,
चमकि चमकि बिज्जु जिय डरपावै है।
लाल मखमली वीरबहू भूमि डोलैं मानों,
बूँद अनुराग नेह मेह बरसावै है॥
भरे अनुराग बैठे प्यारे प्यारी झूले माँहि,
सखी जन गावत बजावत झुलावैं हैं।

दास देखि सोभा यह भूलि जात दुःख सबै
प्यारी जू डरति प्यारो अंग लपटावै हैं ॥

[कविवचनसुधा]

(४)

देखी लाडलि की दसा, चंदा गयो लुभाय ।
बदरी में मुँह ढाँकि कै, नीर बहावत हाय ॥

(५)

हमरो चौथ चंदा का करिहै ?
श्री ब्रजचंद चंदमुख प्रेमी औरन सों का डरिहै ।
कुलबोरिन सब कहत गाँव में और नाम का धरिहै ?
'दास' कलंकहुँ हम प्रेमिन के ढिग आवत थरहरिहै ।

(६)

जनम लियो है ब्रज प्रेम सुधा सागर, वह—
बापुरो मयंक प्रगट्यो है जल खारी को ।
घटत बढ़त तेजहीन तेजमान होत,
बाढ़ै दिन दूनो तेज कीरति कुमारी को ॥
वह सकलंक 'दास' दुखद चकोर, यह—
मेटत कलंक भव पोषत बिहारी को ।
वन में छिपत, यह घनश्याम संग सदा,
मंद करै चंदहि अमंद दुति प्यारी को ॥

(७)

हौं बलि जाउँ मानिनी छबि पर ।
बैठी भौंह चढ़ाय रिस भरी गोल कपोलनि कर धर ॥

नैन बंद, अलकावलि छूटी, अंचल पट खसक्यो सर।
लाल मनावत मानहिं रहि गए धरि के प्यारी के पग पै कर॥
विह्वल देखि प्राण प्रीतम को मिली मान तजि प्यारे के गर।
बरनि सकै या छबिहि 'दास' जो जग में ऐसो नाहिन कोउ नर॥

(८)

लाड़िली ऐसी मति मोहिँ दीजै।
चरन छोड़ि नहिं जाउँ अनत कहुँ सरन आपनी दीजै॥
नित उठि दरस करूँ पिय प्यारी, हृदय-पखान पसीजै।
इतनी अरज 'दास' की सुनिए निज जन कृपा करीजै॥

(९)

काल व्याल के गाल सों राखि लियो गहि हाथ।
भूलि सबै अपराध मम जय जय कालीनाथ॥

(१०)

प्राननाथ प्रीतम ललन पूरन परमानंद।
राखो अपने चरन में काटि सकल भवफंद॥

(११)

निज भाषा हित निरत होइ तजि गृह कारज छति।
देस देस पर्यटन कियो सहि कै कलेस अति॥
अति सुदच्छता सहित सभा उद्देश प्रचारयो।
पाल्यो निज कर्तव्य नागरी काज सुधारयो॥
श्रीराम राव, माधव उभय, विश्वनाथ कीरति अयन।
अति हरखित चित हम सबन को, धन्यवाद कीजै ग्रहन॥

(१२)

पिता असंभव पन पूरित लखि आनंदित अति।
सोत्साह जयमाल लिए धाई चंचल गति॥
रविकुल रवि तट पहुँचि रूप के तेज बिमोहित।
भूलि तन दसा रही चित्र पुतरा सी सोहित॥
लखि प्रेम बिबस पिय जब झुके अति सँकोच डारो गरैं।
यह प्रेममई मूरति दोऊ नित नित नव मंगल करैं॥

[सरस्वती]

(१३) सुनीति

[अनुवाद]

मूर्ख शिष्य उपदेस, पालन नारि कुलच्छनी।
दुखियन संग हमेस, पंडितहू दुख नित लहहिं ।।
कुलटा, नारी, मित्र सठ, उत्तरदायक दास।
गृह ससर्प के बास तें, मृत्यु हथेली पास ।।
आपद हित धन रच्छिए, धन दै रच्छिय नारि।
आपुहु रच्छिय सर्वदा धन अरु नारि बिसारि ।।
आपद हित धन रच्छहीं धनियन कों कह क्लेस।
पै लक्ष्मी जब पग करत रहै न संचित लेस ।।
नहिं सम्मान, न जीविका, नहिं बांधव जेहि देस।
नहिं विद्या-चरचा तहाँ बसिकै पावत क्लेस ।।
धनी, वेदविद विप्र, नृप, नदी, वैद्य ये पाँच।
जहाँ होहिं नहिं तहँ बसे निहचै पावै आँच ।।
भय, उदारता, कुशलता, लाज, जीविका बित्त।
जिनमें नहिं ये पाँच गुन तिनकौ करै न मित्त ।।
काम पड़न पै भृत्य अरु बांधव संकट काल।
मित्र विपति में परखिए धन छय जानिय बाल ।।
रोग, दुःख, दुर्भिच्छ अरु राजद्वार, मसान।
शत्रु घिरे में साथ जे ते हैं बंधु महान ।।
ध्रुव तजि अध्रुव आस बस धावहिं जे अज्ञान।
ध्रुवहू खोवहिं व्यर्थ ते अध्रुव प्रथम नसान ।।

रूपहीन हूँ सुकुल की ब्याहहिं सुता सुजान।
रूपवती कुल नीच तजि सोहत ब्याह समान॥
नदी, शस्त्रधारी, नखी, शृंगी, राजा नारि।
भूलि न इन्हैं पतीजिए बुध जन कहत बिचारि॥
विष तें अमृत काढ़िये सुबरन अशुचि बिहाय।
नारि-रत्न दुष्कुलहुँ तें विद्या नीचहु पाय॥
कुल-नारिन भोजन द्विगुन लज्जा चौगुन नैन।
साहस षट गुन आठ गुन तन में ब्यापत मैन॥

[सरस्वती]

लेख

(१) हिंदी क्या है ?

हिंदोस्तान-निवासी जन साधारण की भाषा का नाम हिंदी है। हिंदी के बहुत कुछ रूपांतर हुए और वर्तमान काल में भी बहुत से भेद हैं। हिंदोस्तान की बनावट पृथ्वी के सब देशों से कुछ विलक्षण ही है, ध्यान देकर देखिएगा तो स्पष्ट जान पड़ेगा मानों परमेश्वर ने संसार को बनाकर इस देश को सबका इग्जिबिशन (प्रदर्शिनी) बनाया। इस देश के जितने खंड हैं उतनी ही चाल उतने ही जुदे जुदे जल वायु प्रकृति—सारी पृथ्वी का नमूना यहाँ मिलता है। अरब देश सी गर्मी और रेगिस्तान इस देश में देख लीजिए, लैपलैंड सी सर्दी इस देश में अनुभव कर लीजिए, काबुल के मेवे यहाँ लीजिए, संसार भर के अन्न यहाँ खाइए, गोरे से गोरे काले से काले, वीरशिरोमणि, मारतों के पीछे भागतों के आगे, सभी प्रकृति, सभी आकार के मनुष्य यहाँ हैं। काश्मीर भी इसी देश में है और मारवाड़ का रेगिस्तान भी यहीं। इन्हीं कारणों से यहाँ की भाषा के भी बहुतेरे भेद हैं। दूसरे और देशों में इसके विरुद्ध एक ही सा जल वायु, एक ही सा रूप, आकार, स्वभाव, भाषा, फल, फूल, अन्न सब एक ही से पाए जाते हैं। इसलिये और देशों के साथ मिलान करके इस देश का अनुमान करना कठिन ही नहीं वरन असंभव है, परंतु क्या इससे यही सिद्ध हो गया या यही मान लेना चाहिए कि इस देश की कोई एक भाषा नहीं है ? यदि आप ध्यान देकर देखेंगे तो अवश्य ही सब के भीतर मूल एक ही पावेंगे, सब भेदांतरों को एक ही सूत्र में बँधा पावेंगे, वह सूत्र कौन है ? हिंदी—चाहे जितना

भेद देखिए, चाहे उसे बंगालिन के वेश में देखिए, चाहे पारसिन की साड़ी और रूमाल पहिरे देखिए, चाहे पाश्चात्य बड़े बड़े घाघरे और ओढ़नी के घूँघट में पाइए और चाहे पायजामा और दुपट्टे की पोशाक से यवनगृह में देखिए परंतु तनिक भी विचारपूर्वक आप जिस समय देखेंगे अनायास पहिचान लेंगे—यह तो हिंदी है। निदान हिंदुस्तान की यदि कोई एक भाषा हो सकती है तो वह हिंदी ही है। यद्यपि हिंदी और उर्दू ये दो भाषाएँ इस समय प्रचलित हैं और सदा से इन दोनों में झगड़ा चला ही आता है परंतु यथार्थ में उर्दू और कुछ नहीं है केवल हिंदी ही है। भेद इतना ही है कि हिंदी से और जितनी भाषाएँ बनी हैं वे सीधे अक्षरों में अर्थात् देवनागरी अक्षरों से निकले अक्षरों में लिखी जाती हैं और उर्दू उलटे अक्षरों में अर्थात् फारसी अक्षरों में लिखी जाती है। यद्यपि उर्दू में फारसी के कठिन कठिन शब्दों को मिलाकर लोग इतनी कठिन भाषा बना डालते हैं जितनी कि हिंदी को लोग संस्कृत शब्दों से। परंतु यथार्थ रूप उर्दू का देखिए तो सिवाय हिंदी के और कुछ न पाइएगा। क्रिया तो सब हिंदी की निर्विवाद हुई हैं परंतु शब्द भी हिंदी के बहुत से मिलेंगे।

यह साधारण नियम है कि जब जो राजा होता है और जो उसकी भाषा होती है तब वही प्रधानता प्राप्त करती है। इसी से मुसलमान बादशाही के समय हिंदी में बहुत से फारसी के शब्द ऐसे मिलजुल गए कि अब वे मानो हिंदी के ही जान पड़ते हैं, किसी भाँति वे हिंदी से अलग नहीं किए जा सकते, यहाँ तक कि अच्छे अच्छे हिंदी के लेखक भी उन्हें बेधड़क लिख जाते हैं और कभी उन पर ध्यान भी नहीं जाता। यह कुछ आश्चर्य नहीं है क्योंकि मुसलमानी राज्य तो लगभग हजार वर्ष तक यहाँ रहा है। अँगरेजी राज्य को अभी डेढ़ ही सौ वर्ष

के लगभग हुए परंतु अँगरेजी के बहुत से शब्द ऐसे मिलजुल गए हैं कि अब वे हिंदी ही के जान पड़ते हैं, जैसे रेल, स्टेशन, लालटेन, टमटम इत्यादि। परंतु यथार्थ में देखिए तो हिंदोस्तान की भाषा हिंदी ही पाइएगा। कुछ लोगों का यह कथन है कि प्रायः ग्रामीण लोग उर्दू ही समझ सकते हैं संस्कृत के शब्द मिली हिंदी नहीं समझ सकते, परंतु यह ठीक नहीं है। कौन ऐसा हिंदू है जो साधारणतः रामायण को न समझ सकता हो? इसमें संदेह नहीं कि वे संस्कृत के कठिन शब्द नहीं समझ सकते परंतु साथ ही वे उर्दू के भी कठिन शब्द नहीं समझ सकते। उनके लिये जैसे महाशय और महोदय है वैसे ही जनाब और हुजूर है; उनसे तो यदि आप रउरे या राउर कहकर संबोधन कीजिए तो वे झट समझ जायँगे परंतु यह शब्द कहाँ से आया? क्या यह संस्कृत के रावल शब्द का अपभ्रंश नहीं है? यों ही जब आप ध्यान देकर देखेंगे तो जन साधारण की बोलचाल में अधिकता ठेठ हिंदी के शब्दों की या संस्कृत के बिगड़े शब्दों की पावेंगे और जो फारसी के शब्द उनमें मिलेंगे वे भी ऐसे ही होंगे जो अब हिंदी के साथ ऐसे मिल गए हैं माना वे हिंदी ही के हैं। हिंदी की चिट्ठी पत्री की प्रशस्ति, बही खाते की लिखावट आदि देखिए सबमें आप मुख्य शब्द हिंदी संस्कृत के ही पाइएगा। आप हिंदुओं की बात जाने दीजिए, मुसलमानी महल्ले या गाँव में चलिए और साधारण मुसलमानों से दस्तखत कराना आरंभ कीजिए। देखिए जितने लिखे पढ़े मुसलमान मिलेंगे उनमें अधिकता हिंदी ही में दस्तखत करनेवालों की होगी। डाकखानों में देखिए तो अधिक चिट्ठियाँ हिंदी ही सिरनामे की मिलेंगी। पुस्तकों में देखिए तो रामायण के बराबर किसी उर्दू पुस्तक की बिक्री न होगी, बरंच उर्दू अलिफलैला से हिंदी में उसका अनुवाद अधिक बिकता है।

हम ऊपर सिद्ध कर चुके हैं कि भिन्न भिन्न प्रकृति और जल वायु के कारण भाषा में भी भिन्नता पाई जाती है परंतु यथार्थ में सब भाषाएँ हिंदी ही की रूपांतर है, सब प्रांत के निवासी कुछ कठिनता से हिंदी बोली को समझ सकते हैं और अधिकांश लोग टूटी फूटी हिंदी बोल भी लेते हैं, परंतु हिंदोस्तान में प्रति योजन अर्थात् बारह कोस पर बोली बदलती जाती है और इसी से बहुत से रूप हो गए हैं। व्रज से चाहे जिस ओर चलिए बराबर थोड़ा थोड़ा भेद पाते जाइएगा, यहाँ तक कि बंगाल पहुँचते पहुँचते वह बँगला हो जायगी और उधर दक्षिण पहुँचते पहुँचते गुजराती और महाराष्ट्री हो जायगी परंतु क्रम से मिलाते चलिए तो बहुत स्पष्ट भेद जान पड़ेगा। निदान हिंदी के हिंदोस्तान की भाषा होने में कोई संदेह नहीं है पर इसके बहुत भेद हो गए हैं जिनमें चार मुख्य हैं, पहली पूरबी (बनारस प्रांत की), दूसरी कनौजी (कानपुर प्रांत की), तीसरी व्रजभाषा (आगरा मथुरा प्रांत की), चौथी खड़ी बोली (सहारनपुर मेरठ प्रांत की)।

यह सब भेद तो हुए बोलचाल और प्रादेशिक हिंदी के। अब हमें उस हिंदी की ओर ध्यान देना चाहिए जो सभ्यसमाज, राजदर्बार वा साहित्य में बरती जाती हो और जिससे सारे देश से संबंध हो। वह खड़ी बोली है। वर्तमान समय में उर्दू और हिंदी दोनों ही सभ्य भाषाएँ खड़ी बोली ही के भेद हैं। उर्दू के दोष और हिंदी के गुण हम आगे चलकर दिखावेंगे, यहाँ केवल यही कहना चाहते हैं कि हिंदी क्या है ?

सारे संसार की यह रीति है कि जन साधारण की बोलचाल से और साहित्य की भाषा से बड़ा भेद रहता है। साहित्य की भाषा सदा ऊँचे दर्जे की रहती है अतएव हम लोग हिंदी भाषा उसी को कहेंगे जिसमें शुद्ध शब्द हों और जिसमें विद्या संबंधी किसी विषय के लिखने

में कठिनता न हो, जब कि अँगरेजों के बच्चों के लिये व्याकरण आदि पढ़ने की आवश्यकता होती है तब हिंदोस्तानियों को हिंदी ग्रंथ समझने के लिये हिंदी पढ़ने की आवश्यकता हुई तो इसमें आश्चर्य क्या है ? पर हाँ साथ ही हम यह अवश्य कहेंगे कि कचहरी की भाषा ऐसी ही सहज रहनी चाहिए जो सर्वसाधारण की समझ में यथासंभव अनायास आ सके, चाहे आवश्यकतानुसार उसमें उर्दू और अँगरेजी के भी शब्द मिला दिए जायँ ।

हिंदी से उपकार क्या है ?

मान लिया कि जैसा कहा गया है हिंदी का वही रूप है परंतु हिंदी से उपकार क्या है ? हिंदी की उन्नति करने से हमें क्या लाभ है ?

यह बात सर्वमान्य है कि मनुष्यों को परमेश्वर ने अपनी सृष्टि में जो सबसे श्रेष्ठता दी है उसका मुख्य कारण ज्ञान है । ज्ञान और विद्या का वैसा ही परस्पर संबंध है जैसा कि देह के साथ छाया और वाक्य के साथ अर्थ का । विद्या ही मनुष्य-जीवन की शोभा और सार्थककारिणी है । जिस देश में जितना ही विद्या का प्रचार अधिक होता है वह देश उतना ही अधिक सभ्य समझा जाता है। इसी हिंदोस्तान में जिस समय विद्या का पूरा प्रचार था उस समय का गौरव हम क्या सारा संसार करता है और वर्तमान समय में विद्या के प्रचार से यूरोप और अमेरिका जैसे सुख और समृद्धि को भोग रहे हैं वह विदित ही है । यह विषय ऐसा सर्वमान्य है कि इसपर अधिक लिखना व्यर्थ समय नष्ट करना है ।

इस समय हिंदोस्तान की जो दशा है वह आप लोगों पर भली भाँति प्रगट है । अँगरेजों का सुख और शांतिमय राज्य पाकर भी

यथार्थ में हिंदोस्तान उसका पूरा लाभ नहीं उठा सकता। वाणिज्य की दिनों दिन कमी होती जाती है। जन साधारण बेकाम और परमुखापेक्षी होते जाते हैं, देश दरिद्र और निकम्मेपन से भस्म हुआ जाता है। जिधर देखिए भूखे और नंगों की हाहाकार गूँज रही है, स्थान स्थान में झगड़े हो रहे हैं, मूर्ख लोग पक्षपात के वशीभूत होकर महा अनर्थकारी दुर्घटना कर उठाते हैं, व्यर्थ को धर्म का नाम बदनाम करने के लिये आपस में लड़ मिटते हैं, देश को नाश किए डालते हैं, राजा और प्रजा दोनों को दुःख देते हैं। सरकारी अदालतों में देखिए कानून की अज्ञानता से कितने निर्दोषी दोषित होकर दंड पाते हैं। क्या इन सभों का कारण केवल अविद्या का प्रचार ही नहीं है?

यहाँ हमारे सुयोग्य मित्रगण कह उठेंगे कि यह बात व्यर्थ को कही जाती है। सरकार अँगरेज की कृपा से देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक विद्या का प्रचार हो रहा है। स्कूल और कालिज खुल गए हैं, हर बरस हजारों लड़के पढ़ पढ़कर निकलते हैं फिर भी अविद्या का प्रचार कैसा? हम इस बात को स्वीकार करते हैं, अवश्य विद्या का प्रचार बहुत कुछ हुआ और हो रहा है, और उसका बहुत कुछ सुंदर परिणाम हो रहा है। यहाँ पर हम अपनी बात पुष्ट करने के लिये दो बातों का अवश्य वर्णन करेंगे—एक तो यह कि आजकल जितने उपद्रव और झगड़े होते हैं यदि आप लोग देखेंगे तो सुशिक्षित मंडली को उससे अलग ही पाइएगा, वरंच इसके लिये उन्हें दुखित देखिएगा। दूसरे यह कि आप पढ़े लिखे लोगों को पेट की ज्वाला से जलते कम देखिएगा। परंतु वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से देश के उपकार के साथ ही साथ कुछ अपकार भी हो रहा है, और पूरा उपकार तो कदापि साधित न होता है और न हो सकता है। देश में व्यापार और कारीगरी के अभाव से अँगरेजी शिक्षा पानेवालों का

ध्यान केवल दो ही विषयों पर अधिक होता है एक नौकरी और दूसरे वकालत—पर इन दोनों की भी कोई सीमा है। देश का देश यदि नौकर और वकील ही बन जाय तो नौकरी और मुकद्दमे कहाँ तक शेष रह सकते हैं। आप लोग प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि वकीलों की बहुतायत से बहुतेरे वकीलों की यह दशा हो रही है कि इक्के का किराया तक नहीं मिलता और इधर अच्छे अच्छे ग्रैजुएट बीस बीस रुपए महीने की नौकरी के लिये लालायित हो रहे हैं। तनिक आप लोग इन बेचारों के चित्त के नैराश्य की ओर तो देखिए।

"हसरत पः उस मुसाफिरे बेकस के रोइए
जो थक गया हो बैठ के मंजिल के सामने"

बड़ी बड़ी आशा करके अपनी औकात से अधिक व्यय करके पढ़ा। अब बी० ए० या वकील हुए, परंतु हाय अब भी पेट नहीं भर सकता! घरवालों ने समझा था कि जब यह पढ़के तैयार होंगे, सारा दुख दारिद्र्य दूर हो जायगा, पर जब आप खाली पाकेट घर लौटकर आए, विचारिए उन बेचारों पर क्या गुजरी होगी? अब पढ़ लिखकर यह भी गवारा नहीं कि अपना पैतृक रोजगार या कोई छोटे दर्जे का काम और दुकानदारी करें और जिसके लक्ष्य पर पढ़ा था उसका भी ठिकाना नहीं तो अब क्या करें। निदान ज्यों ज्यों ऐसी शिक्षा का प्रचार अधिक होता है, ज्ञान लाभ करने के साथ ही साथ दुःख की सीमा और भी बढ़ती जाती है। इसके सिवाय यह शिक्षा इतना समय और इतना व्यय चाहती है कि जिससे सर्वसाधारण का उपकार नहीं हो सकता। आप लोग जब विचार करेंगे, इतिहासों से यह सिद्ध होगा कि किसी देश की उन्नति और उसको श्री-समृद्धि की प्राप्ति बिना उस देश की भाषा की उन्नति के नहीं हुई है। जब तक सब विषयों के ग्रंथ ऐसी भाषा में न हों, जिसको उस देश के रहनेवाले

बहुत कम परिश्रम से पढ़ और समझ सकें तब तक संभव नहीं कि सारे देश में विद्या का प्रचार यथार्थ रूप से हो सके। देखिए हिंदी में एक ग्रंथ रामायण है उसका प्रचार इस देश में कैसा है और उसके सुधामय उपदेश से देश को कितने लाभ पहुँचते हैं। अतएव हिंदी भाषा में सब आवश्यक विषयों के ग्रंथ जब तक न बनेंगे तब तक देश का उपकार नहीं हो सकता। आबाल वृद्ध वनिता गँवैये आदि सब हिंदी के ग्रंथों से अपना अपना काम सीख सकते हैं। निदान जब तक देश-भाषा हिंदी में पूरी शिक्षा न दी जायगी तब तक देश का उपकार होना असंभव है।

हिंदी की दशा क्या है ?

अब यह विचारना चाहिए कि हिंदी की दशा क्या है ? उस पर ध्यान देने की आवश्यकता है या नहीं ?

यद्यपि हिंदी इस देश की प्राचीन भाषा है पर जिस समय यहाँ हिंदुओं का राज्य था उस समय यहाँ की सभ्य तथा राजभाषा संस्कृत होने के कारण इसकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता था। एक तो हिंदोस्तान की यही चाल बहुत बुरी थी कि यहाँ कलाकौशल आदि विद्याओं को गुप्त रखना ही लोग परम पुरुषार्थ समझते थे जिससे यहाँ की बड़ी बड़ी विद्याएँ लोप हो गईं। दूसरे उस समय जो कुछ ग्रंथ बने भी वे संस्कृत में। इससे हिंदी की कुछ पुष्टि न हो सकी, और सिवाय इसके यदि उस समय का कोई ग्रंथ मिले भी तो उसकी भाषा आज क्या सर्व साधारण का काम दे सकती है। इसके पीछे जिस समय हिंदी पर ध्यान दिया गया उसी समय मुसलमानों की चढ़ाई इस देश पर हुई, फिर तो ऐसे झगड़े फैले कि लड़ाई झगड़ों के सिवाय किसको अवकाश था कि विद्या की ओर

ध्यान देता। केवल काम मात्र चलाने के लिये कुछ धर्म ज्योतिष वैद्यक और इतिहास के ग्रंथ बन गए। यथार्थ में एक भाषा को जैसे सब लौकिक और पारलौकिक विषयों से पूरित होना चाहिए वह न हो सकी। दूसरे राजा का ध्यान उर्दू की ओर विशेष रहने से हिंदी की और भी दुर्दशा हो गई। इसमें संदेह नहीं कि उर्दू भी हिंदी ही की एक शाखा है पर फारसी के विद्वानों ने अपनी आदत के अनुसार उसमें फारसी के शब्द मिला मिलाकर उसे ऐसी कठिन कर डाला कि वह फारसी ही के समान हो गई और उससे जन साधारण कोई लाभ नहीं उठा सकते। इतने अधिक काल तक उर्दू का प्रचार इस देश में रहा और इस अँगरेजी राज्य में भी उसी को आदर मिला हुआ है; परंतु किसी गाँव में निकल जाइए देखिए तो उर्दू जाननेवाले कितने मिलते हैं? इसके विरुद्ध आप जहाँ देखेंगे हिंदी जाननेवाले बहुतेरे मिलेंगे यद्यपि हिंदी का पक्ष करनेवाला कोई नहीं है। यहाँ तक कि मुसलमान समाज में भी हिंदी ही की अधिकता पाइएगा। दूसरे यह कि फारसी के अक्षर ऐसे भ्रममूलक हैं कि एक शून्य के घटने बढ़ने से कुछ का कुछ हो जाता है। लिखा कुछ जाय पढ़ा कुछ जाय। कोई मनुष्य जो उर्दू या हिंदी भाषा न जानता हो वह केवल उर्दू के अक्षर सीखकर चाहे कि कोई पुस्तक शुद्ध शुद्ध पढ़ सके कभी पढ़ नहीं सकता और हिंदी के अक्षर पढ़कर भाषा से संपूर्ण अनभिज्ञ भी शुद्ध उच्चारण कर सकेगा। पूज्यपाद भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र जी ने एज्यूकेशन कमीशन में गवाही दी थी, उसमें सिद्ध किया था (ﻣﺮ) ऐसा चिह्न ६०६ रीति से पढ़ा जा सकता है और कहीं रे का दाल बन गया तो फिर १२०० हो गए, योंही सब शब्दों को समझ लीजिए। निदान उस समय हिंदी की अवनति के सिवाय उन्नति न हुई। अब आया

अँगरेजों का समय। इस समय हिंदी ने रूप बदला। अब केवल कविता और धर्म का विचार छोड़कर साधारण लोगों के समझने और उपकार के योग्य भाषा बनने लगी, सहज बोलचाल में ग्रंथ बनने लगे, समाचार-पत्र छपने लगे, लोगों का कुछ ध्यान इस ओर खिंचा। यह सब केवल दोही एक बड़े बड़े राजपुरुषों की कृपा-दृष्टि का फल था परंतु अधिकांशों का ध्यान इधर नहीं पड़ा क्योंकि राज-भाषा तो उर्दू ही रही। इसलिये उन लोगों ने केवल उसी के सहायक रहना कर्तव्य समझा नहीं तो हिंदी का रूप अब तक दूसरा हो जाता।

हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि जब तक वाणिज्य कलाकौशल आदि का प्रचार इस देश में न होगा, देश का दुःख दूर न होगा और उसके होने का उपाय सहज यही है कि हिंदी में सब आवश्यक ग्रंथ बनें और उनकी शिक्षा दी जाय। परंतु दुःख का विषय है कि इसका सर्वथा अभाव हिंदी में बना ही है। किसी उपयोगी विषय को ढूँढ़िए तो हिंदी में न मिलेगा, यहाँ तक कि हिंदी का कोई उत्तम कोष या सर्वमान्य व्याकरण चाहिए तो न मिलेगा। अब इससे बढ़कर हिंदी की क्या दुर्दशा हो सकती है।

नागरी-प्रचारिणी सभा क्यों बनी ?

इन्हीं अभावों को दूर करने के अभिप्राय से इस नागरी-प्रचारिणी सभा का जन्म हुआ। जब देखा गया कि हिंदी, जिस पर इस देश की सारी भलाई निर्भर है, दिन पर दिन उन्नति के बदले अवनति कर रही है, कोई भी इस अनाथिनी की ओर ध्यान नहीं देता तो हिंदी के कुछ प्रेमी लोगों ने इस सभा को स्थापित किया; क्योंकि बिना रोए माँ भी लड़के को दूध नहीं पिलाती तो हमारी अँगरेजी सर्कार कैसे इस अनाथिनी का स्वत्व इसे दे सकती है और

हमारे देशबांधव लोगों को भी नींद कुछ अधिक आती है। जब तक जगाए न जायँ, वे भी क्यों इधर देखने लगे थे?

"इस सभा का मुख्य कर्तव्य (क) हिंदी भाषा की त्रुटियों को दूर करना, (ख) हिंदी को उत्तम और आवश्यक विषयों के ग्रंथों से (नवीन ग्रंथ अथवा दूसरी भाषाओं के अनुवाद द्वारा) अलंकृत करना और (ग) हिंदी भाषा के प्रचार तथा उचित अधिकार पाने के लिये सर्कार तथा एतद्देशीय और परदेशीय सज्जनों में उद्योग करना है।"

इस सभा की नियमावली और रिपोर्ट से इसका पूरा वृत्तांत विदित होगा।

नागरीप्रचारिणी सभा क्या चाहती है?

नागरीप्रचारिणी सभा जो कुछ चाहती है उसे हम बहुत संक्षेप में निवेदन किए देते हैं।

(१) हिंदी भाषा का पूरा पूरा इतिहास, व्याकरण तथा कोष प्रकाशित करके हिंदी साहित्य की पूर्णता करें।

(२) गद्य और पद्य के ऐसे ग्रंथों का प्रचार करें जिसमें इस देश में सदाचार और सभ्यता का अधिकार हो।

(३) गणित, ज्योतिष, वेदांत आदि सब शास्त्रों का संस्कृत, अँगरेजी तथा अन्यान्य भाषाओं से हिंदी में अनुवाद करें जिसमें विद्या संबंधी यावतीय विषय हिंदी में मिल सकें।

(४) विज्ञान शास्त्र, शिल्प विद्या, कल बनाने, कल चलाने आदि की विद्या, वाणिज्य, कृषि कर्म आदि सांसारिक विषयों के ऐसे ग्रंथ बनावें जिससे इस देश के लोग शिक्षा प्राप्त करके देश की दुर्दशा को दूर कर सकें।

(५) जन साधारण को हिंदी शिक्षा प्राप्त करने में उत्साहित करें।

(६) भारतवर्ष के सब प्रांत-निवासियों को हिंदी सीखने के लिये उत्तेजित करें जैसे बंगाली, गुजराती, महाराष्ट्र आदि, जिसमें हिंदी भाषा कुछ समय में ऐसी भाषा हो जाय जिसे सारे भारतवासी पढ़ लिख और समझ सकें।

(७) सरकार से आदर दिलाने का उद्योग करें। उर्दू के अक्षरों की अपूर्णता से अदालती कागजों में जो बुराइयाँ और कठिनाइयाँ आ पड़ती हैं उनसे बचाने की चेष्टा करें।

देशवासियों का कर्तव्य क्या है ?

परंतु यह सब निर्भर करता है केवल देशवासियों की कृपादृष्टि पर। जब तक आप लोग इस ओर दृष्टि न देंगे, कुछ नहीं होने का। सभा है ही क्या ? केवल आप लोगों के इकट्ठे होने का ही तो नाम सभा है ? जब तक आपही लोग अलग रहेंगे, हम लोग सभा कहेंगे ही किसको ? यदि आप लोग सभा के प्रस्ताव को ठीक समझते हैं—सहायक हूजिए; और यदि सभा को ठीक रास्ते पर नहीं देखते—सचेत कीजिए। सभा केवल आपही लोगों का भरोसा रखती है—आपही की कहलाती है—इसकी सफलता आपही की सफलता है—और इसके उपहास से आपही को लज्जित होना पड़ेगा। ऊपर लिखी बातों और इनके सिवाय और जो कुछ आप विचार करें उन बातों में मनसा वाचा कर्मणा सहायता करके देश के दुःखों को दूर करने की चेष्टा कीजिए और यश के भागी हूजिए।

[साहित्यसुधानिधि]

---

(२) मुसलमानी दफ्तरों में हिंदी

जब से मुसलमानों का राज हिंदुस्तान में आया तभी से देवनागरी अक्षर और हिंदी भाषा के अतिरिक्त फारसी अरबी अक्षर और भाषा का प्रचार इस देश में हुआ, राजकीय कार्य फारसी अक्षर और भाषा में होने लगे, प्रतिष्ठित और शिक्षित हिंदुओं ने भी फारसी सीखी और उसमें यहाँ तक योग्यता प्राप्त की कि मुसलमानों को भी उनकी फारसी कविता और लेखों पर रीझना पड़ा। परंतु गँवार छोटे दर्जे के फौजी सिपाहियों में फारसी से काम चलता न देखकर बादशाह अलाउद्दीन खिलजी (सन् १३०० ई०) के समय में अमीर खुसरो ने उर्दू भाषा की सृष्टि की। उर्दू का अर्थ लशकर है। इस नई भाषा को सर्व साधारण में प्रचलित करने के लिये खुसरो ने खालिकबारी बनाई और उसकी लाखों प्रतियाँ लिखकर साधारण में बाँटी गईं, जो कि इस कहावत से सिद्ध है—

"एक लख ऊँट सवा लख गारी (गाड़ी)।
उस पर लादी खालकवारी ॥"

और इसी लिये खालिकबारी की भाषा गँवारी भाषा है, परंतु उर्दू ने निम्न श्रेणी के लोगों के अतिरिक्त कभी शिक्षित, उच्च पदस्थ लोगों में तथा राजकाज में आदर नहीं पाया, क्योंकि न तो कोई प्राचीन ग्रंथ उर्दू के मिलते हैं, न कोई अदालती कागज या उनके अनुवाद उर्दू में मिलते हैं और न कोई प्राचीन व्यवहार के ही उर्दू में होने का पता चलता है, केवल टोडरमल ने अकबर के समय में कुछ काम इससे लिया था और अंत में आकर इसका कुछ आदर दिल्ली के अंतिम बादशाह बहादुरशाह (जफर) तथा लखनऊ के

नवाबों के दर्बार में हुआ परंतु वह भी केवल कविता ही तक रहा, उस समय भी अदालतों में उर्दू न घुसने पाई, यहाँ तक कि अँगरेजों के आने पर भी बहुत दिनों तक फारसी ही अदालतों में जारी रही और उर्दू को किसी ने न पूछा। यह फारसी सन् १८३७ ई० तक जारी रही और उसके पीछे अँगरेज गवर्मेंट ने फारसी से सर्व साधारण प्रजा को कष्ट देखकर देश-भाषा जारी करने की आज्ञा दी और उसी आज्ञा के अनुसार बंगाल में बँगला, गुजरात में गुजराती और महाराष्ट्र में महाराष्ट्री प्रचलित हुई और पश्चिमोत्तर, अवध, बिहार, मध्यप्रदेश आदि में हिंदुस्तानी जारी की गई, परंतु उस समय के अँगरेज हाकिमों को न जाने क्या उलटी सीधी समझाकर अमलों ने उर्दू ही हिंदुस्तानी भाषा है, समझा दिया और उसी के अनुसार उर्दू प्रचलित हो गई, परंतु इस भ्रम को समझकर बिहार और मध्यप्रदेश की गवर्मेंट ने सन् १८८१ ई० में उर्दू को उठाकर हिंदी जारी कर दी। एक इसी प्रांत की गवर्मेंट ने न जाने क्यों अब तक इस ओर ध्यान नहीं दिया है।

देखने में फारसी से उर्दू सरल जान पड़ती है और फारसी के बदले में उर्दू का प्रचलित करना सुगम जान पड़ता है और इसी से इसका प्रचार किया गया, परंतु विचार करके देखा जाय तो इससे महा अनिष्ट हुआ है और देश में विद्या की चर्चा बहुत ही घट गई तथा सर्व साधारण को भी कठिनता पड़ी और समय समय पर हाकिमों को भी धोखा खाना पड़ता है। फारसी एक स्वतंत्र विद्या है। उसे तब तक कोई नहीं समझ सकता जब तक कि वह उसे अच्छी तरह न पढ़ ले। इसलिये जब तक फारसी थी, लोगों को उसमें पूरी योग्यता प्राप्त करनी पड़ती थी। दूसरे फारसी में स्थानों और व्यक्तियों आदि के नामों के अतिरिक्त और सब बातें उसी भाषा के शब्दों में

लिखी जाती थीं जिनको कि नियमपूर्वक पढ़े बिना कोई समझ नहीं सकता था, और तीसरे जो अक्षर लिखे जाते थे वही भाषा रहती थी इससे कुछ का कुछ नहीं पढ़ा जाता था। इसके ठीक विपरीत उर्दू की दशा है। एक तो उर्दू कोई भाषा नहीं है। यह फारसी, अरबी और हिंदी के आधार बिना बन नहीं सकती और इन तीनों भाषाओं में योग्यता प्राप्त करें ऐसे कम लोग होते हैं। इससे उर्दू पढ़-कर कोई विद्वान् नहीं बन सकता। दूसरे, अक्षरों को पढ़ने लगे और उसमें अपने हृदय के भावों को लिखने का अभ्यास हो गया। अब और कौन समय लगावे ? उसी अधकचरी अवस्था में रह गये। उनकी विद्वत्ता की यह दशा है कि यदि उन्हें 'सावित' लिखना है तो वे यह नहीं जानते कि 'सा' को 'से' से लिखें या 'स्वाद' से या 'सीन' से। योंही 'त' को 'ते' से लिखें या 'तो' से, क्योंकि जिस भाषा के शब्द उसमें आए हैं उससे तो वे परिचित हैं ही नहीं, करें क्या, निदान विद्या की गंभीरता सर्वथा जाती रही। तीसरे, अक्षर भ्रामक और एक उच्चा-रण के कई अक्षर जैसे अ के दो, त के दो, स के तीन, ज के तीन, र के दो, इत्यादि तथा मात्राओं का काम केवल जेर जबर पेश के चिह्नों से लिया जाता है, वह भी प्राय: लिखे नहीं जाते, केवल अनुमान से समझे जाते हैं। ऐसी दशा में दूसरी भाषा के शब्द इन अक्षरों में कभी ठीक पढ़े लिखे नहीं जा सकते और यही सारी कठिनाइयों की जड़ है। चौथे, फारसी के प्राचीन अदालती कागजात जहाँ तक देखे जाते हैं प्राय: नस्तालीक अर्थात् सुपाठ्य लिखे हुए मिलते हैं क्योंकि कठिन भाषा होने के कारण लोग उन्हें सबसे पढ़े जा सकें इसलिये साफ लिखते थे और अब लोग यह समझकर कि यह भाषा सबकी समझ में आनेवाली है, इस ओर ध्यान ही नहीं देते और ऐसा शिकस्त: लिखते हैं कि दूसरे की कौन कहे प्राय: स्वयं ही नहीं पढ़

सकते। अस्तु, हम यहाँ हिंदी उर्दू के गुण दोषों पर विचार नहीं करना चाहते, हमारा आलोच्य विषय केवल यही है कि मुसलमान बादशाहों के समय में हिंदी का कुछ आदर अदालतों में था या आजकल ही की तरह उस समय भी हिंदी की कोई पूछ न थी ?

मुसलमान बादशाहों के आदि काल से क्या क्या परिवर्तन हुए इसका ठीक पता नहीं लगता। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि किसी बादशाह ने शृंखला से जमकर राज्य नहीं किया, बहुधा झगड़े बखेड़े ही में रहे और थोड़े ही दिनों तक प्राय: खंड राज्य ही करते रहे। मुसलमानी बादशाहों की उन्नति अकबर के समय से और अवनति औरंगजेब के समय से आरंभ हुई। अतएव हम इसी समय का उदाहरण दिखलावेंगे।

अकबर के मंत्री राजा टोडरमल ने सर्कारी दफ्तरों का प्रबंध किया और उचित समझकर महकमा माल के कागजात हिंदी में कर दिए जो कि आज तक प्रचलित हैं और पटवारी लोग हिंदी ही में कागजात देही दाखिल करते हैं।

महाजनी के कागजों को टोडरमल ने हिंदी में जारी रखा जो कि आज तक वैसे ही चलते हैं, हुंडी के लिये जो मस्विदा उन्होंने बनाया वह ज्यों का त्यों आज तक चलता है, यदि उसमें एक मात्रा का भी अंतर पड़े तो हुंडी नाजायज हो जाय, यहाँ तक कि यदि कोई ऐसा व्यक्ति जो हिंदी नहीं जानता हुंडी लिखना चाहता है तो फारसी अक्षरों में उसे हुंडी की वही नकल लिखनी होती है जो कि हिंदी में लिखी जाती है।

दफ्तरों में हिंदी बरती जाती थी इसका प्रमाण गोस्वामी तुलसीदास जी का पंचनामा है जिसे उक्त गोसाईं जी ने भदैनी के दो भाइयों के हिस्सा करने में लिखा था और जिस पर उस समय के काजी ने तसदीक़ लिखी है और मुहर कर दी है। इस पंचनामे की नकल को खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर की छपी रामायण तथा डाक्टर

ग्रिअर्सन साहब के The Modern Vernacular Literature of Hindustan के Addenda Et Corrigenda में देखिए। मैं उस समय के किबाले आदि की खोज में भी हूँ, यदि हाथ आए तो पाठकों की भेट करूँगा।

जहाँगीर और शाहजहाँ ने अकबर के परिश्रम का सुख भोगा और अकबर के दिखाए मार्ग पर चलकर सुखपूर्वक राज्य किया। उनके समय में कोई विशेष परिवर्त्तन राज्य-प्रणाली में नहीं हुआ।

औरंगजेब ने अपनी नीति और अपने सिद्धांत को बदला। यदि अकबर ने हिंदुओं को प्रसन्न करके अपना शुभचिंतक बनाना उचित समझा तो औरंगजेब ने "बिनु भय होइ न प्रीति" की नीति पर उन्हें दु:खित करना; यदि अकबर ने किसी के धर्म में हस्तक्षेप करना अमंगलकारक समझा तो औरंगजेब ने सब धर्मों को मिटा देने में मंगल; निदान दिन की रात, और रात का दिन हो गया, परंतु आवश्यक समझकर राज-कार्य-दक्ष औरंगजेब ने अदालती भाषा में कुछ परिवर्त्तन नहीं किया, महक्मा माल में पूर्ववत् हिंदी ही जारी रही, किबाले आदि का अनुवाद हिंदी में होना आवश्यक ही बना रहा। हम इसको प्रमाणित करने के लिये औरंगजेब के राजत्व काल के एक प्राचीन किबाले के हिंदी-अंश की नकल उद्धृत करते हैं—

मुहर काजी की फारसी में	मुहर मुफ्ती की फारसी में

(फारसी का किबाला)

....

संवत् १७४० स में फागुन सुदी ९ तमुमी (?) पुरूषक (?) करै बीकरै करै करता महाराज रघुनाथ सुत बीसेसर दास का पोता

बीकरै करता सुरजन शाही कन्हई सुत रामभदर का पोता वा राज साही आनंदराम सुत टोडरमल का पोता वा रामपरसाद मचूकर का बेटा रामदास का पोता वा सुमेरा जुझारा का बेटा आजोचा का पोता दारूल अदालती बलदै महमदाबाद उर्फ बनारस मों हाजीर होई कै बयान किया की एक कीता जमीन जो तूल पछीव वा पुरूब लाठा बीस २० वा अरज उत्तर दखीन लाठा बीस २० तीश का मोकसर बीगहा एक १ तीश की हदहदूद का बेवरा मोजीब तपसील ।

पुरूब मोतसील	पछींव मोतसील	उत्तर मोतसील	दखीन मोत-
जीमीन बाग तुला लहेरा जदू का बेटा	बाग गंधी	नरहरी मसहूर	जीमीन मया वोगैरह सुरकाई	सील तालाब रोटा भंटा

मौजे रोटा भंटा मामुला परगने हवेली महमदाबाद उर्फ़ बनारस की रकबा में इशके कीसमती बीरादरी हमारे हीशा मों हुआ अब-ताई हमारे कबुज तसरूफ मों था पहीले इशके महाराज मजकूर ने हमारी रजामंदी शो बारह दरखत आवंली वा दस दरखत आवला वा सात दरखत आंवा वा चारी दरखत लीबु बोही जीमीन मजकूर मों बैठावा बोही पर काबीज था अब महाराज मजकूर ने खरीदारी बोही जीमीन की कीया तब बोही जीमीन का मोल करावा मोल भा रजामंदी तरफएन रूपैआ ५३) मोकरर भा तब हाजीर कीआ भग-वती सीवदत का बेटा रामदास का पोता वा बीकरम भरथ का बेटा कबला का पोता एन्हौ गुआंही दीया तब सुरजन साही वा राजसाही वा रामपरसाद वा सुमेरा मजकूर इकरार शरई कीआ की जीमीन मजकूर वा अमला फएला शुधा रूपैया तीरपन ५३) शीक्का आलम-गीरी वोजन पूरा पर महाराज मजकूर के हाथ बुड़ा बुड़ा (?) कै

बेंचा बेचा रूपैश्रा मजकूर महाराज सो लेई कै आपने हीशा मोजीव हरीक दाम का बीज मो तसरफ भए चौः सुरजन शाही १३।) राज-साही १३।) रामपरशाद १५।।।=)।। सुमेरा मजकूर १०।।—)।। जीमीन मजकूर पर महाराज को काबीज मोतसरफ कीया कोई दावागीर पैदा होई तौ बेचवैश्रा जवाब करै ताः ६ माह रवील औली शन १०९५............''

उस समय में केवल हिंदी ही में कैसे कागजात लिखे जाते थे इसे दिखलाने के लिये हम ''श्री गोवर्धन नाथ जी के प्रागट्य की वार्ता'' से गोस्वामि श्री बिट्ठलराय जी के इकरारनामे की अविकल नकल उद्धृत करते हैं जो कि दिल्ली में लिखा गया था (पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या प्रकाशित उक्त वार्ता के पृष्ठ ३५ का फुटनोट देखो)।

॥ १ ॥

श्रीहरि

लिखतं बिट्ठलराई दामोदरजी सुत श्रीगोवर्धन नाथजी के देवाले की सेवा श्री वल्लभाचार्य करते ता पीछे श्री बिट्ठलेश्वर दीक्षित करते उनके सात बालक श्री गिरधरलाल जी श्री गोबिंदजी श्री बालकृष्ण जी श्री गोकुलनाथ जी श्री रघुनाथ जी श्री यदुनाथ जी श्री घनश्याम जी ज्यों छहो भाईन सों चले त्यों इनके कुल सों चले ज्याहि या बात तें कोई घाटि बाढ़ि करे सो श्रीनाथजी तें बिमुख श्रीनाथजी को अपराधी लौकिक गुनहगार यह बात महाराजा श्री जसवंतसिंह जी महाराजा श्री जयसिंहजी महाराजा श्री बिट्ठलदासजी के आगे चुकी मिति चैत्र वदी ७ गुरौ संबत १७०७ मुकाम शाहजहांनाबाद ।

महाराज जसवंतसिंहजी	अत्र साषी राजा जसवंतसिंह

महाराजा जयसिंहजी

राजा बीठलदासजी	अत्र साषी राजा बीठ्ठलदास

औरंगजेब के उत्तराधिकारियों को अपने झगड़ों और मुसलमानी राज्य की जड़ खोदने से अवकाश कहाँ था जो कुछ परिवर्तन करते ? वही प्रथा प्रचलित रही। इसके प्रमाण में मेरे अधिकार में उस समय से लेकर अँगरेजी राज्य के आरंभ तक इसी तरह के अनेक किबाले आदि वर्तमान हैं परंतु उनको प्रकाशित करना अनावश्यक समझकर मैं ठीक इसी तरह के अँगरेजी राज्यारंभ के एक किबाले के हिंदी अंश की नकल उद्धृत करता हूँ।

मुहर काजी की फारसी में	मुहर मुफ्ती की फारसी में

(फारसी का किबाला)

... ...

संबत १८६७ मी० जेठ सुदी १ बार सुभ दीने वीकरी करता धवल वोझा गजराज वोझा के बेटा मोहकम वोझा के पोता बराभन बीच कजाये बुलदै बनारस के हाजिर आये कै एकरार कीया की एक मंजिल बाग समेत चारिबदीवार ईट समेत जमीन इमारत महला कासीपुरा जो बनारस में है पैमाइस पीरन राज जुमीला जमीन गज ११५८)-, २ बहर कीता पहीला तूल पूरब पछींव समेत दोनों दीवार गज ८७॥) तरफ दखिन गज ४४) तरफ उत्तर गज ४३॥) करार

अधिया ४३॥।)= अरज उत्तर दखीन समेत दोनों दीवार गज २६।)≡ मोकसर गज ११४३॥)-२ बहर कीता दूसर वा खोची तरफ पूरब तूल उत्तर दखीन गज ४) पूरब पछींव गज १॥) मोकसर गज ६) वा इमारत एक बंगला खपरापोस तरफ उत्तर वा एक घर खपरापोस तरफ दखीन वा कुआं पका वा एक दलान तरफ पूरब वा दो दरखत दाखील बाग बीके मों है तेकी चारो हद--

पूरब तालाब मैदागीन	पछींव गली चलती दुवारा पनारा	उत्तर गली खास वा मंदिल गनेस जो बड़े वा दुआरा पनारा वातीन खीरकी बाला खाने की इधर है	दखीन गली चलती

ममलूका खरीद मेरा है वा केबाला समेत मोहर हजरत तुमारे के पास रखता हीं वा मैं अब तको बीला सरीकत दूसरे के ऊपर उसके कावीज हीं अब तमामी बाग कीता २ बदले रूपैआ ८७५) सीका हाली आधा रूपैआ ४३७॥) बदसत हुकुमचंद बीहारीलाल के बेटा ठाकुरदास के पोता अगरवाला तीस के हाथ बुड़ा बुड़ा कै (?) बेचा बेचा रूपैआ सभ दाम दाम खीरीदार से ले कै अपने खरच में ले आया मैं तब जीमा खरीदार का खलास भया खरीदार कीता २ ऊपर कबुजोअत अपनी ऊपर तमामी बाग जमीन बै पर कावीज कीया मैं खरीदार मजीलीस में हाजीर था मोल जमीन बाग रूपैआ

पर कबूल करकै एकरार कीया की अपर कबुजियत बेचनेवाले ऊपर तमामी बाग जमीन वै पर काबीज हुआ मैं आगे कोई इसका दावा झगरा करै तौ झूठा झूठा इसका जवाब बेचनेवाला करै खरीदार से इलाका नाहीं ता० २९ रवीउस्सानी सन १२२५ हीजरी द: हींदुइ संकरलाल गु: कानीगो......"

जान पड़ता है कि उस समय के अँगरेज लोग भारतवर्ष की बातों से वैसे परिचित नहीं होते थे जैसे कि मुसलमान थे, इसी लिये अदालत के अमलों ने अपना मतलब साधने के लिये हिंदी अनुवाद उठा दिया और उस समय के हाकिमों ने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया, क्योंकि पीछे के किबाले आदि में हिंदी अनुवाद नहीं है।

फिर प्राचीन शैली किबाले के लिखने की बदली और वर्तमान शैली के समान "मनकि" करके लिखने की प्रथा चलाई गई, परंतु भाषा फारसी ही रही।

इन किबालों को देखकर यह न समझना चाहिए कि केवल किबालों ही में हिंदी अनुवाद रहता था मेरे पास पट्टे, रेहन्नामे आदि कई प्रकार के कागजात कई समय के लिखे हुए हैं, जिनको प्रकाशित करना व्यर्थ लेख बढ़ाना है।

[नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग २, १८९८]

---

(३) होली है

अहा हा ! आज होली है, नहीं नहीं भारत के भिक्षा की झोली है, नहीं नहीं क्षत्रियों की होली है; अजी वाह अच्छा कहा यह तो बुड्ढों के खेलने की गोली है, भारतवर्ष की दुर्दशा के छिपाने को लाल गुलाल की खोली है, नहीं भारतवर्ष के असभ्यता प्रदर्शन को यह बेहूद: ठठोली है, यह लाल लाल क्या उड़ रहा है ? अजी हजरत गुलाल। यहाँ कभी लोग ऐसे थे कि थोड़ी थोड़ी बातों पर ख़ून बहाते थे, फिर आप समझिए कि हमारे हिंदुस्तानी लोगों की तो यह सदैव की चाल है कि बड़ों की नकल करना फिर ये क्यों न ख़ून बहावें ? पर उतना पराक्रम कहाँ कि किसी अपने विदेशी शत्रु से लड़कर ख़ून बहावें ? तब आपस में ही सही, पर भाई उसमें चोट चपेट लगती है, कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि चोट भी न लगै और बड़ों की चाल निभी जाय, तब गुलाल और लाल रंग निकाला गया !!! यहाँ की सभी बातें ऐसी हैं। देखिए प्रमाण प्रस्तुत हैं। आगे की यह चाल थी कि स्त्री विधवा हुई और उसका प्राण लिया गया, फिर जब सर्कार से सती होने की मनाही हुई तब सोचा कि जीवदान तो अवश्य ही करना चाहिए, कैसे जीवदान हो ? विधवा-विवाह मत करो, एक की जगह दस जीवदान होंगे; ले सर्कार सती होना बंद करै भ्रूण-हत्या ही सही !!! गुलाल का अर्थ सुनिए—गु-गुणों-ला-लाल ल-लीपना अर्थात् गुणों को लाल चौका से लीप पोतकर रंगीन कर देना। अबीर का अर्थ तो स्पष्ट है अर्थात् अ = नहीं, वीर = वीर। अबीर पिचकारी में रंग भरकर ऐसा मारो कि समुद्र पार जाय, छिः पिचकारी से क्या होगा

दमकला लगाओ रंग की इतनी बहुतायत करो कि भारत रंक हो जाय, मारे सर्दी के अकड़ जाय, जिसमें फिर दम भी न ले, बचै खुचै होलिका में जलाओ।

भई हम लोग तो अँगरेजों के भी गुरु हैं। अँगरेज लोग कहते हैं कि "आदमी बंदर की औलाद हैं" हम कहते हैं नहीं हम लोग स्वयं बंदर हैं। विश्वास न हो हिंदुस्तानियों का मुँह आज देख लो। यह सामने क्या शोर गुल हो रहा है? अजी यह "पुलिस" की गोल है। क्यों भाई पुलिसवाले ही जो गाली इत्यादि बकते हैं तो और लोगों की क्या बात है? क्यों जी आज शहर की रक्षा कौन करता है? पुलिसवाले दूसरे ही रंग में मस्त हैं। वाह तुमने सुना नहीं कि "राम-भरोसे वे रहैं पर्वत पर हरियाय" भला वह कौन लोग हैं जो बड़ी सभ्यता से होली खेल रहे हैं? वे हिंदी पत्र हैं।

देखो लेखनी कैसे धूमधाम से पिचकारी का काम दे रही है! कागज कैसे उड़े जाते हैं जैसे गुलाल, उनके अक्षर ऐसे हैं जैसे कुमकुमा, कलेजे पर लगते ही कलेजे को बेध डालते हैं। पर भाई ये लोग गाली तो नहीं बकते? वाह वाह! गाली तो ऐसी बकते हैं कि जैसी कोई भी नहीं बकता। हिंदुस्तानियों को अपनी उन्नति करने को कहते हैं। यह गालियों की परदादी है! भई सबसे पक्के खिलारे तो यही लोग हैं। इनको बारहों महीना होली है। भई आज "ताश" बादला मत पहिनना नहीं तो फिर पूरे बनोगे। सच पूछो तो आज कल "बादशाहों" की बड़ी खराबी है पर "बीबियों" ने तो हर तरफ से "रंग मार" रखा है, दालमंडी के कारण घर के "गुलामों" को चैन है, अजी होली ऐसी मचाओ कि लोगों को "दहला" दो, रंग इतना उड़ाओ कि सबको "नहला" दो, होली का तिवहार ऐसा है कि साठ बरस के बुड्ढे को भी "आठ" बरस

का बच्चा बना देता है, खेल में ऐसी धूम मचाओ कि शरीर से "सत्ता" जाती रहे, और लोग "छक्का पंजा" सब भूल जायँ, थोड़ी सी अबीर लेकर मुँह में "चौका" लगा दो, आजकल तो जो फल "तिया" के जपने में है वह तो अब किसी फकीर के "दुआ" में जरा भी नहीं, "एक्का" पर चढ़कर बहरी तरफ जाने और बूटी छानने ही में दुनिया का मजा है, "रंग" है गुरु तोरा, का कहना है, यार "पान" ने तो तुम्हारे मुँह में ख़ूब लाली मचा रक्खी है; अजी यह मुँह में क्या "लाल लाल" पोत रक्खा है ? ईंट पड़े तुम्हारे अक्किल पर, इतना भी नहीं जानते यह गुलाल है, हुजूर अगर "हुक्म" हो तो इस 'चिड़िया'वाले के मुँह में कालिख पोत कर "काला" देव बना दूँ ।

देखो एडिटर लोग भी होली खेल रहे हैं ।

जुरि आए एडिटर लोग होरी होय रही ।

कोऊ धन्यवाद की ढेरी करत सहित आनंद ।
कोऊ बैठ्यो होरी गावत कोउ बैठ्यो निर्द्वंद ।।
होरी होय रही ।

कोऊ देखि दशा भारत की दुखी होत चित माँहि ।
तापै होरी देखि देखि कै मन महँ धीरज नाहिं ।।
होरी होय रही ।

कबहुँ हुतो जो भारत सबसों उत्तम या जग बीच ।
ताही की यह दीन दसा है इनहि कहत सब नीच ।।
होरी होय रही ।

दास बने सब रोवत निसि दिन कोऊ नहिं सुधि लेत ।
लार्ड रिपन की देखि किरपा मिलि धन्यवाद सब देत ।।
होरी होय रही ।

क्यों भई होली भी क्या अच्छा तिवहार है ?

आजु होलिका को अहै अति प्रसिद्ध तिहवार।
याही सों निकस्यो सबै भारत को कतवार ॥
जित देखहु तित लाल ही पीलो रंग लखात।
मानहुँ अति आनंद सों सबही प्रमुदित गात ॥
सबके जिय को भाव यह प्रगट होइ दरसात।
प्रेस एक्ट के उठन सों आनँद उर न समात ॥
जब हिय में आनंद को भयो खजानो बंद।
तब बाहर ह्वै छोड़ चल्यो छाड़ि सबै दुख द्वंद ॥

[उचितवक्ता]

---

(४) कुछ प्राचीन भाषा कवियों का वर्णन

भाषा कवियों का वर्णन करके सबसे पहले बाबू शिवसिंह सेंगर ने संवत् १९३४ में यश प्राप्त किया। उनके पीछे भाषारसिक डाक्टर ग्रियर्सन ने इसे और भी परिमार्जित करके अँगरेजी भाषा में प्रकाशित किया, जिसके लिये भाषारसिक मात्र उक्त महोदयों के कृतज्ञ हैं—परंतु बाबू शिवसिंहरचित "शिवसिंह-सरोज" के भी पहले का अर्थात् संवत् १९३० सन् १८७३ का बना "भाषा काव्य-संग्रह" नामक ग्रंथ मुझे मिला। यह ग्रंथ पंडित महेशदत्त शुक्ल द्वितीयाध्यापक रामनगर (जिला बारहबङ्की) पाठशाला रचित है और लखनऊ के मुंशी नवलकिशोर प्रेस में मुद्रित है। इसमें संग्रह-कर्ता ने पहले कुछ प्राचीन कवियों की कविता संग्रह की है, फिर उन्हीं कवियों का जीवनचरित्र तथा समय आदि संक्षेप से दिया है और अंत में कठिन शब्दों का कोष दिया है। कवियों का समय-निर्णय इस ग्रंथ में जैसा किया है वैसा कहीं देखने में नहीं आता, विशेष कर अवध प्रांत के कवियों का समय-निर्णय बहुत ही निश्चय के साथ किया है। यदि इसमें दिया समय ठीक हो (जिसके ठीक न मानने का कारण हमें नहीं दिखाई पड़ता), तो बहुत से कवियों के समय-निर्णय का मार्ग अत्यंत परिष्कृत हो जाता है। जिन कवियों के विषय में कोई विशेष बात इन्होंने लिखी है उनका संक्षिप्त वर्णन इस लेख में पाठकों के कौतूहलार्थ किया जाता है।

भगवतीदास

कान्यकुब्ज ब्राह्मण किठाँवाँ गाँव जिला फैजाबाद के रहनेवाले।

संवत् १६८८ में नासिकेतोपाख्यान बनाया और संवत् १७१४ में स्वर्गवासी हुए।

नरोत्तमदास

वाड़ी जिला सीतापुर के रहनेवाले। संवत् १५८२ में "सुदामा-चरित्र" बनाया। "शिवसिंह-सरोज" में इनका समय संवत् १६०२ दिया है।

लल्लूजीलाल

आगरे के रहनेवाले। प्रेमसागर आदि के कर्त्ता। संवत् १८३० में जन्म हुआ था।

अनन्यदास

कान्यकुब्ज ब्राह्मण गाँव चकेंदवा जिला गोंड़ा के रहनेवाले। भारतवर्ष के अंतिम राजा पृथ्वीराज (?) के कवि थे। "अनन्य योग" ग्रंथ योगशास्त्र का बनाया। जन्म संवत् १२७५ (?) में हुआ। "शिवसिंह-सरोज" में इनका समय संवत् १६२५ लिखा है। इनकी कुछ कविता "अनन्य योग" से उद्धृत करते हैं—

का होत मुड़ाए मूड़ बार। का होत रखाए जटा भार॥
का होत भामिनी तजे भोग। जौ लौं न चित्त थिर जुरै जोग॥
थिर चित्त करै सुमिरन मँझार। ऊपर साधै सब लोक चार॥
यह राजयोग सुख को निधान। कोइ ज्ञानवंत जानत सुजान॥
अर्जुन रु जनक पृथु आदि लोग। राजन साध्यो सब राजयोग॥
सुखराज कियो अरु भोग सिद्ध। को अतिथि भयो इन सम प्रसिद्ध॥
यह अतिथिनहूँ ते अति अनूप। सुनु राजयोग सिद्धांत भूप॥
सुख मारग यह पृथीचंदराज। यहि सम न आन तम है इलाज॥

....

दोहा

राजयोग सिद्धांत मत, जानि राज पृथिचंद।
यहि सम मत नहिं दूसरो, खोजि शास्त्रि बहु छंद ॥
जो चाहो संसार सुख, अरु सिद्धांत प्रकाश।
तौ साधौ सर्वज्ञ यह, योग सदा अनयास ॥ १५ ॥

मलूकदास

ब्राह्मण, कड़ा मानिकपुर के रहनेवाले संवत् १६९५ में स्वर्गवासी हुए। ये "बड़े सिद्ध थे। इनके मित्र एक मुरारिदास वैष्णव थे जो कि कड़ा नगर से बीस कोस पूर्व दिशा में कहीं गंगाजी के निकट रहते थे। माघ मास में इन्होंने एक बड़ा भारी भंडारा किया पर मनुष्य बहुत थे इससे सामग्री न पहुँच सकी तब ईश्वरानुग्रह से यह वृत्त मलूकदास को विदित हुआ तो एक तोड़े पर अपनी ओर से लिखा कि मुरारिदास के पास पहुँचे। उसे ले गंगाजी से कहा 'हे गंगे, इसे अभी वहाँ पहुँचा दीजिए क्योंकि मनुष्य इसको ले जाकर समय पर नहीं पहुँच सकता' यह कह गंगाजी में छोड़ दिया। उसी समय मुरारिदास अपने घाट पर स्नान करने गए थे कि तोड़ा रुपयों से भरा हुआ पाय में लगा। उसे देख जाना कि मलूकदास का भेजा हुआ है। सबको भोजन कराया। ये मलूकदास तुलसीदासजी के समय में थे क्योंकि जब तुलसीदासजी अयोध्याजी से चित्रकूट जाते थे तो इनसे भेंट हुई थी"।

"शिवसिंह-सरोज" में इनका समय संवत् १६८५ लिखा है।

मलूकदास का एक स्वतंत्र मत ही चलता है। ये रामोपासक थे। मिस्टर ग्राउस इन्हें जहाँगीर के समय में बताते हैं और लिखते हैं कि इनके संप्रदाय का एक स्थान और एक रामजी का मंदिर श्रीवृंदावन केशीघाट पर है। अब तक इनकी गद्दी पर महंत

लोग हैं। इनका बनाया "दश रत्न" ग्रंथ और अनेक पद हैं। यह प्रसिद्ध दोहा इन्हीं का है—

"अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम।
दास मलूका कहि गए सबके दाता राम॥"

मोतीलाल कवि

सरवरिया ब्राह्मण बांसी राज्य में अधैला ग्राम के रहनेवाले। गणेशपुराण भाषा किया। संवत् १५९८ में मरे। "शिवसिंह-सरोज" में इनका समय संवत् १५९७ दिया है।

चरणदास

पंडितपुर जिला फैजाबाद के रहनेवाले संवत् १५३७ में मरे। स्वरोदय बनाया। "शिवसिंह-सरोज" ने भी यही समय दिया है। इनके और भी कई ग्रंथ हैं। सभों का संग्रह लाहौर के "ब्रह्म-विद्याप्रचारक" मासिक पत्र में छपा है।

भिखारीदास (दास)

कायस्थ अरवल देश (बुँदेलखंड) के टैंगा नगर के रहनेवाले। पिता का नाम कृपालुदास, पितामह का वीरभानु, प्रपितामह का रामदास और भाई का चैनलाल था। जन्म-संवत् १७४५ मृत्यु-संवत् १८२५। इन्होंने छंदार्णव पिंगल, रस-सारांश, काव्य-निर्णय, शृंगार-निर्णय, बाग-बहार आदि ग्रंथ बनाए। "शिवसिंह-सरोज" में इनका समय संवत् १७८० दिया है।

रामनाथ प्रधान

श्रीअयोध्याजी के रहनेवाले। संवत् १८५६ में जन्म और संवत् १९२५ में मृत्यु। "राम कलेवा, रामहोरी रहस्य, और फुलवारी आदि ग्रंथ अत्यंत सुंदर बनाए।" "शिवसिंह-सरोज" में इनका समय संवत् १९०२ दिया है।

जानकीदास कवि

पँवार ठाकुर गुड़सड़ा ग्राम जिले गोंडा के रहनेवाले। संवत् १४६८ में मरे। स्फुट कविता मिलती है। "शिवसिंह-सरोज" में इनका नाम नहीं है।

नरहरि कवि

भाट महापात्र, असनी ग्राम जिला फतहपुर के रहनेवाले। संवत् १६६६ में मरे। अकबर के दर्बार में थे। इन्होंने निम्नलिखित छप्पय बनाकर गौओं के गले में लटकाकर अकबर से गोवध छुड़वाया था—

"अरिहु दंत तृन दबहिं ताहि नहिं मारि सकइ कोइ।
हम संतत तृन चरहिं बचन उच्चरहिं दीन होइ ॥
अमृत पय नित स्रवहिं बच्छ महि थंभन जावहिं।
हिंदुन मधुर न देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं ॥
कह नरहरि सुनु साहपद बिनवत गउ जोरे करन।
केहिऽपराध मोहिं मारियतु मुयउ चाम सेइयत चरन ॥"

हरिनाथ

ऊपर लिखे नरहरि कवि के पुत्र। पिता के मरने के समय २२ वर्ष के थे अर्थात् संवत् १६४४ में जन्म और संवत् १७०७ में मृत्यु।

"शिवसिंह-सरोज" में लिखा है कि बड़े दानी उदार थे। एक एक दोहे पर लाखों पाया पर सब लुटा दिया। महाराज मानसिंह सवाई अजमेरवाले से इन दो दोहों पर दो लाख रुपए पाए—

"बलि बोई कीरति लता करन करी द्वै पात।
सींची मान महीप ने जब देखी कुँभिलात ॥

जाति जाति तें गुण अधिक सुन्यो न अजहूँ कान।
सेतु बाँधि रघुबर तरे हेला दै नृप मान॥"

जब बाहर निकले, रास्ते में एक नागापुत्र मिला। उसने यह दोहा कहा—

"दान पाइ द्वै ही बढ़े कै हरि कै हरिनाथ।
उन बढ़ि ऊँचो पग कियो इन बढ़ि ऊँचो हाथ॥"

चट सर्वस्व उसी को दे डाला।

[नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ५—१६०१]

---

(५) विक्टोरिया शोकप्रकाश

बीसवीं शताब्दी ने न जाने कैसी कुसाइत में पैर रखा है कि शताब्दी के उलट फेर के साथ ही साथ हम लोगों के भाग्य का भी उलट फेर कर दिया। हाय! यह आज क्या सुनते हैं कि जिस दयामयी, स्नेहमयी महारानी विजयिनी (विक्टोरिया) की स्नेहमय गोद में प्राय: तिरसठ वर्ष तक हम अभागे भारतवासियों ने सुख से काल यापन किया था—उनकी पवित्रात्मा अब केवल उनकी यशोराशि को संसार में छोड़कर और उनके पवित्र पार्थिव शरीर को, जिसके प्रताप के अटने के लिये यह सारी पृथ्वी भी छोटी थी, केवल साढ़े तीन हाथ भूमि में अनाथों की भाँति सुलाकर, इस संसार से अंतर्हित हो गई। यद्यपि इस अशुभ संवाद को विश्वास करने का एकाएकी जी नहीं चाहता, परंतु क्या किया जाय। जो घटना घट चुकी, उसके अविश्वास करने का कोई फल नहीं। सचमुच ता० २२ जनवरी को संध्या के सात बजे श्रीमती—परम भाग्यवानों की भाँति बिना कुछ विशेष कष्ट पाए हुए बहुत थोड़ी बीमारी में—इस संसार की ममता छोड़ चल बसीं। यद्यपि श्रीमती जैसी कुछ सुख समृद्धि, प्रताप यश छोड़कर पूर्णायु भोगकर सुकीर्ति के साथ इस संसार से उठ गईं वैसा किसी बिरले ही के भाग्य में कदाचित् कभी हो—परंतु उनके दया, प्रेम और न्यायमय शासन-काल से प्रजा अतृप्त ही रह गई। उसे यह सुखमय समय ऐसा बीता मानो वह बहुत ही छोटा था—सच है सुख की घड़ी बात करते ही बीत जाती है। कल जिस सुख का अहर्निशि हम लोग अनुभव करते थे वह आज कहानी मात्र रह गया! जिस प्रशंसित समय को हम लोगों ने आँखों से देखा है

वह अनंत समय तक इतिहास के पृष्ठों पर आदर के साथ पढ़ा और सुना जायगा ! अस्तु, भगवदिच्छा में किसी का कुछ वश नहीं—हम लोगों के संतोष के निमित्त केवल श्रीमती के पवित्र चरित्र का मनन और उसके शिक्षामय उदाहरण को अपने लिये आदर्श बनाना ही एक आधार है, इसलिये हम बहुत ही संक्षेप से श्रीमती का जीवनचरित्र यहाँ पर लिखते हैं—

जन्म और राज

महारानी विक्टोरिया का जन्म सन् १८१९ की २५ मई को इँगलेंड के केंगसिंगटन राजभवन में हुआ। इनके ताऊ इँगलैंड-नरेश चौथे विलियम की मृत्यु हुई। उस समय विक्टोरिया से बढ़कर उनका उत्तराधिकारी होने का दूसरे को अधिकार न था इसलिये इन्हीं को निज ताऊ की गद्दी मिली। इस राज्याभिषेक का उत्सव सन् १८३८ ई० की २९ जून को बड़े समारोह से संपन्न हुआ। इनका विवाह अपने ममेरे भाई से हुआ जो दुलहिन से केवल तीन ही महीने बड़े थे। इनका नाम प्रिंस एलबर्ट था। सन् १८४० ई० के १० फरवरी के शुभ मुहूर्त में यह शुभ विवाह हुआ। विलायत होने पर भी महारानी ने अपने पति से ऐसी प्रीति और भक्ति दिखाई जैसी प्रीति और भक्ति भारतवर्ष की सती कुलवती कामिनियाँ दिखाती हैं। इस दंपति-प्रेम को देख सुन सारी प्रजा चकित और प्रफुल्लित होती थी परंतु यह अलौकिक सुख महारानी के भाग्य में केवल २१ ही वर्ष रहा अर्थात् सन् १८६१ ई० के दिसंबर की १६ तारीख को महारानी को असहनीय वैधव्य-यातना ने आ दबाया। उस कोमल हृदय पर इस असहनीय दुःख ने प्रबल आघात दिया और वह ऐसा दुःख हुआ जैसा प्राणपति के वियोग से पतिप्राणा ललनाओं को हुआ करता है। वैधव्य-दुःख का महारानी

ने ऐसा विचित्र पालन किया कि जिसे देख विलायतवालों को आश्चर्य्य सा हो गया।

संतति

महारानी को सब मिलाकर नौ संतानें हुईं। उनके नाम ये हैं—

सन् १८४० की २१ नवंबर को महारानी की प्रथम संतति—श्रीमती विक्टोरिया एडीलेड मेरी लूइसा प्रिंसेस रायल का जन्म हुआ। यही वर्तमान जर्मन-नरेश की माता हैं। दूसरी संतान—ज्येष्ठ पुत्र श्रीमान् अलबर्ट एडवर्ड प्रिंस आफ वेल्स हुए। ये सन् १८४१ ई० की ९ नवंबर को जन्मे। १८६३ ई० की १० मार्च को डेनमार्क की प्रिंसेस अलेकजेंडरा से इनका विवाह हुआ। तीसरी संतान—श्रीमती प्रिंसेस एलिस माड मेरी सन् १८४३ ई० १५ अप्रैल को जन्मी। सन् १८६२ ई० की १ जुलाई को हेसीड्रामस्टाड के प्रिंस लूइस से इनका विवाह हुआ और सन् १८७८ ई० की १४ दिसंबर को राजकुमारी का परलोकवास हुआ। चौथी संतान—सन् १८४४ ई० की ६ अगस्त को प्रिंस आलफ्रेड अर्नेस्ट अलबर्ट पैदा हुए। इन्हीं को ड्यूक आव एडिनबरा की उपाधि मिली। १८७४ ई० की २३ जनवरी को रूस के वर्त्तमान नरेश की बहिन से इनका विवाह हुआ। गत वर्ष ३० जुलाई को उनकी मृत्यु हुई। पाँचवीं संतान—श्रीमती प्रिंसेस हेलेना अगस्टा विक्टोरिया सन् १८४६ ई० की २४ मई को पैदा हुईं। सन् १८६६ ई० की ५ जुलाई को शेल्स-विग होल्स्टीन के प्रिंस क्रिश्चियन से इनका विवाह हुआ। छठी संतान—श्रीमती प्रिंसेस लूसी क्यारोलिन अलबर्टा १८४८ ई० की १४ मार्च को पैदा हुईं। सन् १८७१ ई० की २१ मार्च को मार्किस लोर्न से इनका विवाह हुआ। सातवीं संतान श्रीमान् प्रिंस आर्थर विलियम पैट्रिक एलबर्ट ड्यूक आव कनाट १८५० ई० की १ मई को

जन्मे। १८७९ की १७ मार्च को प्रुशिया के प्रिंस फ्रेडरिक की कन्या से इनका विवाह हुआ। आठवीं संतान—प्रिंस लिओपोल जार्ज डनकन अलबर्ट ड्यूक आफ अलवेनी १८५३ ई० की ७ अप्रैल को जन्मे। प्रिंस वालडेक की कन्या से इनका विवाह हुआ। १८८४ ई० को २८ मार्च को इनकी मृत्यु हुई। नवीं और अंतिम संतान—श्रीमती प्रिंसेस वियाट्रिस मेरी विक्टोरिया फिमीडोर १८५७ ई० की १४ अप्रेल को पैदा हुईं। १८८५ ई० की २३ जुलाई को व्याटनवर्ग के प्रिंस हेनरी से इनका विवाह हुआ। यह भी इस समय विधवा हैं।

सर्वप्रिय होने पर भी कई बार महारानी पर कई दुष्टों ने घात किया। उन्होंने घात तो किया परंतु महारानी के पूर्ण पुण्य के कारण उन्हें उसकी ज़रा भी आँच न पहुँची। उसके प्रतिशोध में उन्होंने उन दुष्टों को अपनी अपार दया से क्षमा कर दिया।

पहले भारत का विस्तृत राज्य ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ में था; परंतु सन् १८५७ में कई कारणों से यहाँ की राजकीय सेना ने राज-विप्लव मचा दिया था। इस अग्नि के शांत होने पर महारानी ने निज हाथ में राज्यशासन का भार लिया। सन् १८७६ ई० में महा-रानी के प्रतिनिधि लार्ड लिटन ने दिल्ली में एक बड़ा दरबार किया जिसमें महारानी के अधीन स्वाधीन मित्र राज्यों और करद राज्यों के प्राय: सभी राजा महाराजा उपस्थित हुए थे। उनकी पूर्ण सम्मति से महारानी ने भारत-राजराजेश्वरी की उपाधि ग्रहण की।

महारानी के ५० वर्ष लों शासन करने के आनंद में प्रथम "स्वर्ण जुबिली" का उत्सव सब स्थानों में बड़े आनंद के साथ मनाया गया था। उसी के १० वर्ष के उपरांत अर्थात् १८९७ में "हीरक जुबिली" नाम का उत्सव मनाया गया।

महारानी विक्टोरिया के समय में इँगलैंड का जैसा कुछ प्रताप बढ़ा वैसा कभी भी नहीं बढ़ा था। पृथ्वी के प्रायः सभी खंडों के किसी न किसी भाग में बृटिश पताका फहराती है। श्रीमती के अचल राज्य में सूर्यनारायण ने भी अचल मूर्ति धारण कर ली है अथवा यों कह सकते हैं कि श्रीमती के भय से पृथ्वी की गति बंद हो गई है और वह सर्वदा सूर्यनारायण के सामने ही बनी रहती है अर्थात् श्रीमती के राज्य में कभी सूर्यास्त नहीं होता। आश्चर्य की बात यह है कि जैसे जैसे साम्राज्य महारानी के शासनाधीन हुए वैसी बड़ी लड़ाइयों और रक्तप्रवाह की आवश्यकता नहीं पड़ी, मानों परमेश्वर ने महारानी के दयामय हृदय का परिचय पाकर ही उनके कोमल हृदय को व्यथित न करने के लिये ही इनकी राज्यवृद्धि में अपने प्यारे संतानों के संहार की उग्र मूर्ति नहीं धारण की। अस्तु महारानी का राजत्व-समय संसार के इतिहास में सदा स्मरणीय बना रहेगा।

महारानी के निज के राज्योन्नति तथा पारिवारिक और चारित्र्य संबंधीय उत्कर्ष के अतिरिक्त इस भूमंडल में ज्ञान, विज्ञान, कला, कौशल आदि सभी विषयों में इस प्रशंसनीय समय में बहुत कुछ सुधार और उन्नति हुई है। यदि इन सब का वृत्तांत लिखा जाय तो एक बड़ा ग्रंथ बन जायगा जिसके लिये इस पत्रिका (= नागरीप्रचारिणी पत्रिका) में स्थान नहीं है, इसलिये हम केवल कुछ संक्षिप्त वर्णन अपने यहाँ के साहित्य का करके इस लेख को समाप्त करेंगे।

भारतवर्षीय साहित्य

महारानी के शासन-काल में सारे संसार के साहित्य ने विशेष उन्नति प्राप्त की, परंतु भारतीय साहित्य ने जो नवीन रूप धारण करके उन्नति लाभ की यह वर्णनातीत है। संस्कृत जो संसार भर की

भाषाओं में सबसे प्राचीन और सर्वांगपूर्ण, सर्वोत्तम भाषा थी, लगभग एक सहस्र वर्ष से मुमूर्षु दशा में प्राप्त होकर जीवन के दिन पूरे कर रही थी—पाश्चात्य सभ्यता रूपी ओषधि की कृपा से उसने फिर से बल प्राप्त किया और अब वह न केवल भारतवर्ष ही वरंच सारे संसार को अपने अतुलनीय गुणों से मोहित करके उत्तरोत्तर उन्नति प्राप्त कर रही है। प्राचीन ग्रंथों की खोज, अलभ्य ग्रंथों के मुद्रण, अनेकानेक संस्कृत विद्यालयों के संस्थापन और विद्यार्थियों को उत्साह प्रदान के द्वारा मृतप्राय संस्कृत ने पुनर्जीवन लाभ किया। भारतवर्ष के अतिरिक्त जर्मन आदि यूरोपीय देशों में जैसा कुछ संस्कृत का आदर हुआ वह भारतवर्ष के लिये परम गौरव का कारण है।

संस्कृत के अतिरिक्त इस देश की यावतीय देशभाषाओं ने जो नवीन रूप धारण करके उन्नति प्राप्त की है वह उन भाषाओं के इतिहास में सदा ही महारानी के राज्य को स्मरणीय रखेगी। यद्यपि बँगला, गुजराती और महाराष्ट्री आदि सभी भाषाओं ने जो नवीन रूप धारण करके देश का कल्याण किया है वह स्मरणीय रहेगा—परंतु हम यहाँ कुछ वर्णन हिंदी भाषा का करेंगे, जिसने श्रीमती महारानी के राजत्व-काल में वह अपूर्व नवीन रूप धारण किया है जो पहले किसी के ध्यान में भी न आया होगा।

प्राचीन समय में हिंदी

महाराष्ट्री को छोड़कर जहाँ तक पता लगता है हिंदी भाषा इस देश की सबसे प्राचीन भाषा है। इसने यथासमय यथोचित उन्नति प्राप्त की थी और यद्यपि विदेशियों के आक्रमण से इस पर बहुत कुछ कुठाराघात होता रहा, परंतु इसने समयानुकूल उत्तरोत्तर उन्नति करने में त्रुटि न की। प्राचीन समय में न केवल भारतवर्ष वरंच

सारे संसार ही में कविता का आदर होता था, परंतु यह देश इस विषय में सबसे बढ़ चढ़ गया था—यहाँ वैद्यक, कोष और कानून आदि सभी कविताबद्ध बनते थे। हिंदी ने भी वही पथ अनुसरण किया था। कविता में संस्कृत को छोड़कर भारतवर्षीय दूसरी किसी भाषा ने हिंदी के समान उन्नति नहीं प्राप्त की थी। इस देश के दुर्भाग्य-वश विलासप्रियता की रुचि बढ़ने के कारण शृंगार रस के काव्यों ने यद्यपि साहित्य संसार को आच्छादित कर लिया था परंतु खोज करने पर पता लगता है कि हिंदी साहित्यभंडार आवश्यक विषयों से (जिनका इस देश में प्रचार रहा है) परिपूर्ण है। हिंदी साहित्य काव्य-विषय में संसार की किसी भाषा से भी पीछे नहीं है।

हिंदू राजत्व-काल में संस्कृत के अधिक प्रचार और आदर के कारण यद्यपि हिंदी ग्रंथों का अब तक पता नहीं लगता है परंतु महाराज पृथ्वीराज के समय के और उनके पीछे के ग्रंथों को देखने से यह प्रतीत होता है कि सात आठ सौ वर्ष पूर्व भी हिंदी उन्नति के उच्च आसन पर आरूढ़ हो चुकी थी। परंतु वर्तमान हिंदी काव्य की उन्नति का यथार्थ समय अकबर का समय है। तब से जो परिमार्जित पथ ग्रहण करके हिंदी ने एक अभिनव रूप धारण किया उसने शाही दर्बार से लेकर कुटीरवासी कंगाल तक को मोहित कर लिया। उसके पीछे एक से एक बढ़कर कवि उत्पन्न हुए, एक से एक उत्तम ग्रंथ बने और जैसा चाहिए वैसा ही आदर हुआ। परंतु—

अँगरेजी राज्य

के साथ हिंदी ने दूसरा ही रूप धारण किया। गद्य की ओर लोगों की रुचि फिरी और विदेशीय अँगरेज अफसरों को इस देश की हिंदी भाषा का सीखना पद्य में कठिन जानकर गद्य की सृष्टि की गई।

प्राचीन साहित्य में जो कुछ गद्य ग्रंथ उपलब्ध थे वे न तो बोलचाल की यथार्थ भाषा में थे और न सर्व साधारण के पाठोपयोगी थे। इसलिये कलकत्ता फोर्ट विलियम के डाक्टर गिलक्राइस्ट ने लल्लूलालजी से प्रेमसागर बनवाया और इसी को पढ़कर अँगरेज लोग इस देश की भाषा सीखने लगे। निदान अँगरेजी राज्य के आरंभ के साथ ही साथ हिंदी में ग्रंथों के मुद्रण और गद्य साहित्य की सृष्टि हुई। यद्यपि बीजारोप अँगरेजी राज्य के आरंभ से ही हुआ परंतु वास्तविक उन्नति श्रीमती महारानी विक्टोरिया के समय में हुई। हिंदी साहित्य के लिये महारानी विक्टोरिया का समय यावत् चंद्र-दिवाकर स्मरणीय रहेगा।

लल्लूलालजी के प्रेमसागर ने एक नवीन पथ मात्र दिखलाया परंतु वास्तविक गद्य भाषा का जन्म राजा लक्ष्मणसिंह, राजा शिवप्रसाद और भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की लेखनी के द्वारा हुआ। राजा लक्ष्मणसिंह ने सुंदर विशुद्ध ललित भाषा में शकुंतलादि काव्य और भारतीय दंडसंग्रह आदि राजनियम के ग्रंथ लिखकर विशुद्ध हिंदी का पथ प्रशस्त किया, राजा शिवप्रसाद ने मुहावरेदार बोलचाल की भाषा में स्कूलों के पाठोपयोगी ग्रंथ निर्माण करके इस देश में हिंदी-शिक्षा का प्रचार किया और भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अभूतपूर्व मनोहर शैली का नवीन आविष्कार कर नागरी देवी के अंग प्रत्यंग को नाटक, उपन्यास, हास्य, परिहास, समयानुसार देशानुरागमय लेख तथा ऐतिहासिक ग्रंथों से अलंकृत कर सब भाषाओं में इसे उच्चासन दिलाया। ये सभी घटनाएँ श्रीमती विजयिनी के राजत्वकाल की स्मारक हैं।

हिंदी में सबसे पहला नाटक नहुष नाटक अथवा शकुंतला नाटक इन्हीं के समय में बना। पहला समाचारपत्र 'सुधाकर'

सन् १८५० ई० में निकला। फिर तो अनेकानेक उत्तमोत्तम ग्रंथ बने और एक से एक बढ़कर सामयिक पत्र प्रकाशित हुए। यदि इन सभों का वर्णन विशद रूप से किया जाय तो भारी ग्रंथ बन सकता है।

यहाँ पर यह संदेह हो सकता है कि हिंदी गद्य ने तो नवीन रूप धारण कर उन्नति प्राप्त की परंतु पद्य की ओर से लोगों की रुचि कम होकर इसकी अवनति हुई होगी—और साहित्य की शोभा पद्य है। परंतु ऐसा नहीं है। पद्य ने भी इस स्वर्णमय समय में बहुत कुछ उन्नति की और पद्य के एक से एक बढ़कर अनुपम कवियों का इनके समय में जन्म हुआ।

यद्यपि काशिराज के आज्ञानुसार महाभारत का प्रणयन पहले से हो चुका था परंतु इसका पूर्ण विकास इसी समय में हुआ। प्राचीन कवियों के काव्यों का अपूर्व संग्रह "रागसागरोद्भव" पहले पहल इसी समय में प्रकाशित हुआ और गिरिधरदास (गोपालचंद्र), गोपीनाथ, जसवंतसिंह, ठाकुर, द्विजदेव, दीनदयाल गिरि, देव (काष्ठजिह्वा स्वामी), पद्माकर, पजनेस, महाराज विश्वनाथसिंह, माणिकदेव, रामसहाय, रामनाथ प्रधान, महाराज रघुराजसिंह, लछीराम, सरदार, सेवक, हनुमान और हरिश्चंद्र आदि सुप्रसिद्ध कवियों ने इसी समय को सुशोभित कर भाषा-साहित्य-भंडार को अमूल्य रत्नों से जटित किया।

जैसे भाषा के गद्य-साहित्य ने एक नवीन रूप धारण किया वैसे ही पद्य-साहित्य ने भी नवीनता दिखाई। प्राचीन शैली की शृंगारमय अथवा अत्युक्तिपूर्ण कविता को छोड़कर कवियों ने एक नवीन ही सुप्रशस्त पथ परिष्कृत किया। देशदशा, देशानुराग, स्वाभाविक वर्णन आदि की कविता एक नए ही ढंग से बनने लगी।

इसके भी प्रणयनकर्ता हमारे परम प्रिय भारतेंदु हरिश्चंद्र ही हुए—"भारतवीरत्व", "भारतभिक्षा", "मदिरास्तवराज", "जातीय संगीत" आदि इसके उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त खड़ी बोली की कविता का भी एक नवीन रूप खड़ा हुआ। यद्यपि इसका अंकुर राजा शिवप्रसाद, भारतमित्र और बिहारबंधु ने बोया था परंतु इसे वृक्ष रूप में पंडित श्रीधर पाठक ने ही परिणत किया। यह भी श्रीमती के राजत्व का एक अखंडनीय स्मारक है।

हिंदी की उन्नति का इतने ही से अंत नहीं है—देश में इसके प्रचार का होना भी श्रीमती ही के प्रतापमय समय का प्रभाव है। भारतेंदु हरिश्चंद्र की अमृतमयी लेखनी तथा समाचारपत्रों के अतिरिक्त स्वामी दयानंद का अभ्युदय और उनके आधुनिक दृष्टि से एक मत चलाने पर खड़बड़ाकर धर्मसभाओं और आर्यसमाजों के जन्म से हिंदी ने देशवासियों में बहुत कुछ आदर पाया। इसके अतिरिक्त हमारी प्रजावत्सला महारानी ही का राजत्व था कि तीन सौ वर्षों के पीछे हिंदी ने राजकाज में आदर पाया। बिहार, कमाऊँ और मध्य प्रदेश में हिंदी ने स्थान पाया और चलते चलाते इस अभागे पश्चिमोत्तर प्रदेश में भी न्यायपरायण श्रीमान् सर एंटोनी मेकडानेल के द्वारा श्रीमती विजयिनी नागरी-प्रचार द्वारा हिंदी का असीम उपकार कर गईं।

निदान श्रीमती का राजत्व समय हिंदी के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा हुआ अनंत समय तक जगमगाता रहेगा।

अब हम इस क्षुद्र लेख को इस अपनी हार्दिक प्रार्थना के साथ समाप्त करते हैं—

जब लौं यह संसार, अचल तुव कीरति भ्राजै।
जब लौं बृटिश सुराज्य, तुव परिवार विराजै॥

जब लौं तुव परिवार, प्रजा सुख शांति लहै वित ।
जब लौं प्रजा समाज, दैव अनुकूल रहैं नित ॥
तुम देवि वै ढिग जाइ कै, या जग को मंगल करौ ।
तुव पीछे तुव असीस बल, यह भारत फूलौ फरौ ॥

[नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ५—१९०१]

---

(६) पंच

(बनारसी गप की बानगी)

गंगा-तीर घाट पर लोग एकत्र थे। सबेरे का समय, कोई तख्ते पर बैठा संध्या करता था, कोई सीढ़ी पर लोटा माँजता था, कोई नहाता, कोई गंगाजी में खड़ा तर्पण इत्यादि करता था, कि इतने में तख्ते पर बैठे हुए लोगों में से एक ने कहा "अजी भाई साहब! क्या कहते हो। आजकल तो बड़ी बीमारी फैली है। लाहौर में तो ऐसी बीमारी है कि लोग बैठे बैठे मर जाते हैं।" दूसरे ने कहा "भाई साहब! तुमने कहाँ सुना?" पहला "अजी साहब! मूलचंद के यहाँ कल चिट्ठी आई है। आज वे पढ़ के सुनाते थे।" दूसरा "हो मुमकिन है।" इतने में एक गप्पी महापुरुष, जो कि गंगाजी में खड़े नाक दबाए ध्यान कर रहे थे, ध्यान छोड़ घबराकर बोले "हूँ, हुँ ई सरवा तो झूठ बोले थे। एकै बात का प्रमाण नहीं। हम कल अपने आँख से सुखदेवमल किहाँ चिट्ठी देख आए हैं कि अंबरसर में ऐसा पानी बिगड़ गया है कि जो कोई पीए तो ओही बखत मर जाय और जो हाथ पाँव धोवै तो एकै दूसरे दिन मर जाय।"

पहला "देखिए तो सही कैसी झूठी बात कहता है। भला जो पानी ऐसा खराब है तो वहाँ कोई बचा काहे को होगा! सभी एक दिन मर गए होंगे।" गप्पी "तूहैं कुछ मालुमो है। हम का झूठ बोली थे। हुआँ से कोस भर पर एक गाँव है, हुआँ का पानी अच्छा है। हुआँ का पानी एक कटोरा एक रुपए का मिलते थे वही लोग पीए थे। झाड़चंद तनिक एहर ओहर की भी खबर रक्खा करो। बचा जो।"

सब लोग हँस पड़े। बेचारा पहला आदमी लज्जित हो गया। गप्पी महाशय ने फिर ध्यान करना प्रारंभ किया। पहले मनुष्य ने फिर धीरे से कहा "देखिए साहबो! बे बात कितनी गालिएँ दिया। मैं क्या जानता था कि मेरा इतना कहना जहर होगा। छि. छि"। इतना सुनना था कि अब फिर गप्पी महाशय घबराए। मारे क्रोध के न रहा गया, चट ध्यान छोड़ गंगा जी में से निकल आए और डपटकर कहा "देखले सरवा कर फिर नाहीं मानते। अब जो तनिको बोल्यो तो फिर मारे जूतन के फरस कर देइब"। इतना कहने पर भी क्रोध न शांत हो सका, मारने दौड़ा। लोगों ने "हाँ हाँ" करके पकड़ लिया और शांत किया।

बनारसी गप्पी लोगों का जी भला थोड़े ही मानने को है? इतना होने पर भी लोगों से न रहा गया। एक महाशय बोले "कहो यार! सुना है कि अब्दुल रहमान और आयूब से लड़ाई हो गई और आयूब जीता, सो कैसी बात है?" एक पंडित जी उसी तख्ते पर बैठे हुए संध्या कर रहे थे, संध्या को संध्या के लिये छोड़ बोल उठे—नहीं नहीं—सरकार से और काबुलवालों से लड़ाई हुई उसमें सरकार हार गई। पाँच सौ तोप और बीस लाख रुपए काबुलियों ने ले लिया। सरकारी बीस हजार आदमी मारे गए; और काबुलियों के एक सौ।" उनमें से कुछ लोग तो हँस दिए (जो कि समझते थे कि यह झूठी गप्प है) और कुछ बड़े आश्चर्य से पूछने लगे "सच, सच, कहाँ सुन्यो?" पंडित जी ने कहा "अजी अब तो आनंद है, सर्कार धता होती है और रूम सूम (रूस) वाले आते हैं। तब खूब चैन से कटैगी। आगा मोहम्मद अली के यहाँ तार आया है।" कुछ लोग बड़े ही प्रसन्न हुए और पंडित-जी की बात का विश्वास करने लगे। पंडित जी ऐसे प्रसन्न हुए

कि अपनी आधी संध्या छोड़ छाड़ चल दिए। लोग इसी की बात करने लगे।

इतने में एक महाशय और बोल उठे "भाई! सब लोग होशयार रहना। सर्कार से हुक्म हुआ है कि जितने छोटे छोटे लड़के मिलैं सब पकड़कर पुल में बल दिए जाँयगे। सो भाई सब लोग अपने अपने लड़कों से खबरदार रहना।" लोग बहुत ही डरे। ग्यारह बज गया था इससे लोग घाट पर से उठकर चले, पर रास्ते भर यही चर्चा रही।

धन्य हैं काशीवासी। नित्य नई बात जोड़ा करते हैं। यह तो बानगी है। ऐसी बातें नित्य प्रति घाटों और मंदिरों में हुआ करती हैं, जिनका आनंद देखने और सुनने से ही मिलता है। लेखनी की शक्ति नहीं कि लिख सके।

[सारसुधा-निधि, २३ जनवरी १८८२]

---

(७) स्वर्ग की सैर

स्वप्न और अपूर्व स्वर्ग

रात अँधेरी, मेघों से आकाश शोभित, बिजली चमककर इस अंधकार में छटा दिखा रही है, और यह बात प्रकाशित कर रही है कि इस समय संसार में मेरा ही राज्य है। इसके प्रमाण के लिये उसकी सलामी की तोपें ऐसे जोर शोर से छूटती हैं कि सोए लोग भी जाग उठते हैं और अगस्त* भी काँप उठते हैं। इस समय विचित्र समा है। ऐसा कौन मनुष्य है जिसका चित्त ऐसे समय में भी न प्रसन्न होगा। अहा! हा! यह देखो बूँदें भी पड़ने लगीं! वाह! हवा कैसी सुंदर बह रही है। इस समय स्वाभाविक प्रसन्नता होती है। यह सब शोभा को देखते देखते दो पहर रात्रि बीत गई परंतु इस आनंद के अवसर में निद्रा न आई। एक बज गया जरा सी झपकी आई तो देखा क्या कि मैं एक मित्र के साथ सिकरौल की ओर घूम रहा हूँ। अकस्मात् जो दृष्टि आकाश की ओर गई तो देखता क्या हूँ कि कई गोरे कोट बूट पटलून पहिने चुरुट पीते नंगे सिर टोपी हाथ में लिए मेम साहब का हाथ बगल में किए ऊपर चढ़े चले जाते हैं। मैंने अपने मित्र से पूछा कि "कहो भाई, तुम कुछ जानते हो कि ये लोग कहाँ जाते हैं"? उसने कहा "नहीं भाई, मुझे तो कुछ नहीं मालूम। जरा इनसे पूछना तो चाहिए कि कहाँ जाते हो।" मैंने उत्तर दिया "भाई, हम लोग दो ही मनुष्य हैं। इन लोगों का स्वभाव बुरा होता ही है। यदि पूछने से कुछ ये लोग रुष्ट हो जायँ और आकर हम

---

* अगस्त एक मुनि का नाम है। जिस समय बादल गरजता है, लोग अगस्त अगस्त कहते हैं। यहाँ अगस्त महीने का वर्णन भी है।

लोगों को मारने लगें तो हम लोग क्या कर सकेंगे ?" पर अंत में यही ठहरी कि चाहे कुछ हो, पूछना तो अवश्य चाहिए। दूर निकल जाने के कारण हम लोगों ने चिल्लाकर कहा "कृपापूर्वक यह बतला दीजिए कि आप लोग कहाँ जाते हैं।" इसको सुनकर ऊपर से एक साहब ने उत्तर दिया "आ यू काला आदमी टोम लोग काए को चिल्लाटा है, चुप रश्रो, हम लोग बिहिष्ट में जाता है।" हम लोगों ने बहुत गिड़गिड़ाकर कहा कि कृपापूर्वक हम लोगों को भी ले चलिए। इसको सुनकर तो वे लोग बड़े ही लाल पीले हुए और ऊपर चढ़ने लगे। हम लोगों ने फिर से बहुत गिड़गिड़ाकर और हाथ जोड़कर वही बात कही। फिर साहबों ने कुछ उत्तर न दिया। जब हम लोगों ने फिर से कहा तब एक मेम ने उन लोगों से झिड़िक के कहा "तुम लोग इन बेचारों की बात क्यों नेईं सुनता, अलबत तुम लोगों को ले चलना होगा"। यह सुनकर तीनों साहब बहुत ही घबड़ाने लगे और उन्होंने एक आदमी भेजा जिसने आकर हम लोगों से कहा "देखो टोम लोगों का किसमट बड़ा है, मेम साहब मिहर्बान हो गया, नहीं तो कभी न चलने मिलता। अच्छा लो यह कोट बूट वगैरह पहन लो और हम लोगों के साथ चला आओ।" हम लोगों ने सोच विचारकर स्वर्ग देखने के लालच से उन कपड़ों को पहिना और उन सभों के साथ ऊपर चले। धन्य! कोट बूट पटलून धन्य!! पाठको, स्वर्ग में सशरीर जाना हो तो चटपट यही कपड़ा पहिनो, सीधे स्वर्ग में चले जाओ। आओ! चूको मत चूको मत—ऐसा सुअवसर फिर काहे को मिलना है!! कोट बूट पटलून के प्रभाव से बिना परिश्रम स्वर्ग मिलता है। पाठक महाशय! क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि हम लोग उन कपड़ों को पहिनते ही ऊपर चढ़ने लगे? जिस समय हम लोगों ने उस पेशाक

को पहिना उसी समय हम लोगों के कान में अच्छे अच्छे अँगरेजी गीतों की मधुर ध्वनि आने लगी। लवंडर इत्यादि अँगरेजी इतरों की सुगंध के साथ अँगरेजी शराबें और चुरुट की दुर्गंधि ऐसी मिल गई थी कि मालूम नहीं होता था कि यह सुगंध है या दुर्गंध। कभी कभी तो ऐसी दुर्गंध आती कि रुमाल नाक में ठूँसकर मुँह फेरना पड़ता। सीढ़ी बड़ी सुंदर काठ की वारनिश की हुई थी। कभी कभी फटाफट बंदूक का शब्द, कभी तोप की सलामी, कहीं ईसा मसीह की प्रशंसा का शोर, कहीं शराब के गुणों का जोर, कहीं बग्घियों की खरखराहट, कहीं घोड़ों की टपटपाहट, कहीं वियोगियों का विलाप, कहीं आशिक माशूकों का मिलाप, कहीं महाशय की मारामार, कहीं मिस्टर की ब्योछार, कहीं काली परियाँ, कहीं हाथ में फूलों की कलियाँ, कहीं लव (प्रेम) की पुकार, कहीं अन सिविलाइज्ड ब्लाक इंडियन (असभ्य काले हिंदुस्तानी) पर कमबख्ती की मार इत्यादि देखता सुनता मैं भी ऊपर चढ़ा। ऊपर जाकर सबके पहले, एक बड़ा भारी फाटक देखा जिस पर अँगरेजी ही लिखी थी। कहीं पादरियों की प्रीच, कहीं सभ्यों की स्पीच। अक्षर बहुत छोटे थे जल्दी में न पढ़ सके। उस फाटक पर दो गोरे बड़े सजे सजाए, मोटे ताजे, शराब के नशे में चूर बंदूक हाथ में लिए तलवार कमर में लटकाए टेढ़ी चक्करदार टोपी (जो दोनों ओर डोरों से बँधी थी) पहिने अंगूर सा बदन, लहू ऊपर से झलकता हुआ, झूमते झामते, अँगरेजी गीत जोर शोर से गाते खड़े थे। मैंने मेम साहिबा से पूछा "यह कौन जगह है? इसका क्या नाम है? इसमें कौन रहता है?" मेम साहिबा ने बड़े आश्चर्य से मेरी ओर देखा, देखते ही खिलखिलाकर हँसी और कहा "आ यू फूल! टुम इतना भी नहीं जानटा! ईशका नाम हेवेन् फर्स्ट क्लास (प्रथम श्रेणी का स्वर्ग) हई। इसमें इँगराज लोग रहना माँगटा। टुम

बरा बेकूफ है।" मैंने जो अच्छी तरह देखा और स्वर पहिचाना तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि यह कोई हिंदुस्तानी है। मैंने पूछा कि आपका जन्म कहाँ का है? उन्होंने हँसकर कहा "अम इंडुस्तान में पैदा हुआ पर अम ऐसा बेकूफ नेईं था कि जैसा टुम लोग है। अमने होश सम्हालटे ही इस सीधी राह को पकड़ा और अम टुम लोगों का बोलचाल नेईं पसंड करता, अम साहब लोगों के माफिक बोलटा"। मैं लाचार चुपचाप उसके पीछे चला। फाटक पर पहुँचा। पहुँचते ही गोरों ने ललकार के मुझसे कहा Ah you fool, where are you going? मेम साहिबा ने डपटकर कहा Let them go। मैंने भीतर पैर रक्खा, पर जी में आया कि यहीं से फिर चलूँ क्योंकि एक साथ ही ऐसी दुर्गंध आई कि मैं घबड़ा गया, परंतु मैं जी कड़ा करके चला।

भीतर जाते ही मैंने देखा कि सच यही स्वर्ग है! सड़क बड़ी लंबी चौड़ी, बिजली की रोशनी इत्यादि विचित्र शोभा देखने में आई। मैं थोड़ी दूर गया कि इतने में पाँच चार अँगरेज मेरे पास आए और मेम साहिबा से कुछ थोड़ी सी बातें कीं। मेम साहिबा ने मुझसे पूछा "टुम खाने माँगटा?" मैंने कहा "नहीं, मेरा सिर मारे दुर्गंध के दुखने लगा।" मुझसे वहाँ न रहा गया। मैंने जी में सोचा कि "पत्थर पड़ै ऐसे स्वर्ग पर और ऐसे स्वर्गीय मनुष्यों पर कि ऐसी दुर्गंधि में भी रहते हैं!" आप लोगों को बड़ा आश्चर्य होगा कि ऐसे सुंदर स्वर्ग में दुर्गंध का क्या काम? सड़े मांस, शराब, चुरुट इत्यादि की दुर्गंध मुझे बहुत ही बुरी मालूम हुई, चाहे मेरे पाठक लोग इसे सुगंध मानें पर मैं उसे कभी नहीं सुगंध समझता। फिर मैंने सोचा कि इन लोगों की बात न मेरी समझ में आती है न मैं इनसे बोल सकता हूँ, क्योंकि मैं अँगरेजी बहुत ही कम जानता हूँ इसलिये मैंने मेम साहिबा से कहा कि "अब मुझे दूसरा

कोई स्वर्ग हो तो दिखा दीजिए, मैं यहाँ नहीं ठहर सकता''। उन्होंने कहा ''अम नेई चलने सकटा टुम इडर के सीढ़ी से (दक्खिन के) चला जाओ। पहले तुमको हेवेन सेकेंड क्लास (द्वितीय श्रेणी का स्वर्ग) और उसके बाद हेवेन थर्ड क्लास (तृतीय श्रेणी का स्वर्ग) मिलैगा। टुम उसको डेकटा हुआ नीचे उतर जाना। यह लो अम टुमको पास देते हैं; डिखा डेना, कोई न रोकेगा''। यह कहकर मुझे एक कागज का टुकड़ा दिया। मैं उसे लेकर दक्षिणाभिमुख चला। मेरे मित्र भी मेरे पीछे पीछे चले।

थोड़ी सीढ़ी उतरकर फिर एक फाटक मिला। उस फाटक पर अर्बी और उर्दू में लिखा था। मैं अर्बी पढ़ न सका पर उर्दू पढ़ा। उसमें यह लिखा था।

''यह बिहिश्त हज़रत मोहम्मद अली हुस्सलाम के हुक्म से हम दीन मोहमद्दियों के लिये बना है। इसमें काफिरों के लिये बड़ी ही इज्जत रक्खी गई है। प्यारे काफिरो! दौड़ो, अच्छा मौका तुम लोगों के हाथ लगा है। खुद खोदाबंद ताला तुम्हारी इज्जत करैगा। तुम बे खटके चले आओ''।

हम लोगों ने सलाह की कि चलो देख आवैं यह सब बात कैसी है?

फाटक पर एक मनुष्य अफीम की गोली चढ़ाए पिनक में बैठा झूम रहा था। केवल एक फटा पैजामा पहने था, दाढ़ी बहुत बड़ी, पास एक पंखा और एक राँगे के कलई का टोंटीदार करवा। मैंने पुकारा ''क्या मियाँ साहब! जरा होश कीजिए।'' उसने उत्तर दिया ''अरे म्याँ क्या टे टे करता है, चला जा शोर क्यों करता है? नामाकूल नशा तोड़ दिया!'' हम लोग भीतर गए। जाकर देखा कि बड़ा बड़ा पैजामा पहिने हुए मुसलमान लोग घूम रहे हैं। एक

कहता है कि "भई हिंदू लोग तो बड़े ही बेवकूफ होते हैं। इन लोगों की तो बड़ी ही सहज तर्कीब है। ये तमाम दुनियाँ की पूजा करते हैं। किसी दरख्त, बुत, जानवर वगैरह की शिकायत जरा भी करने से कम्बख्त चिढ़ने लगते हैं। यहाँ तो कम्बख्त बहुत ही कम आते हैं। इन लोगों के आने ही के लिये तो हम लोगों ने दर्वाजे पर लिख रखा है पर इस पर भी कम्बख्त नहीं आते। खैर—वाह दुनिया में बात बनाने के बराबर कोई शय नहीं है। खास कर हम लोगों के लिये। काफिरों को इसका क्या मजा?" मैंने भीतर पैर रखा कि आठ दस आदमी मेरी ओर दौड़े। मैं खड़ा हो गया। वे लोग यही चिल्लाते थे—"पकड़ो—पकड़ो—काफिर है शिकार अच्छा है जाने न पावै"। हम लोग बड़े ही घबराए। हमने पुकारकर कहा "यह क्या? दर्वाजे पर क्या लिखा है?" उन लोगों ने कहा "अबे देख जो कुछ लिखा है। हमारी जो खुशी हुई लिखा, तेरा क्या? खड़ा रह—खड़ा रह।" हम लोग वहाँ से भागे। वे लोग फाटक तक तो आए फिर लौट गए। हम लोग मारे जल्दी के वहाँ कुछ विशेष न देख सके कि आप लोगों से वर्णन करें। मुसलमानों का तमाशा तो आप लोगों ने देखा है।

थोड़ी दूर नीचे जाकर फिर एक फाटक मिला। उस फाटक पर रोमन अक्षरों में यह लिखा था—

यह "थर्ड क्लासेज हेवेन" (तृतीय श्रेणी का स्वर्ग) है। इसमें गोरे खयाल का साहिब लोग रहने माँगटा। वेल काला लोग, टुम लोग भी यहाँ आओ। देखो कैसा मजा है। जरूर आओ।"

इस फाटक पर दो महाशय बैठे हुए थे। दोनों ऐसे काले जैसे कोयले की खान से निकाले गए हों; महा मलीन और फटा कोट पटलून, अँगरेजी टोपी पहिने हुए थे। मुझे तो ऐसा ज्ञात हुआ

कि कदाचित् "हजरत ईसा मसीह" ने (जब कि वे जीते थे) स्वयं इन लोगों को यह सब दिया था। शराब के नशे में चूर, "गोरे खयाल" के मद से भरपूर, टूटे पुराने मोढ़े पर बैठे थे। पास एक छड़ी रखी हुई थी। हम लोगों के देखते ही देखते फाटक में से झूमती झूमती दो कौआ परियाँ महामलीनवसना निकल आई। आते ही उन दोनों महाशयों को एक एक झिड़की दीं। दोनों चट उठ खड़े हुए और बड़ी इज्जत से उन दोनों को मोढ़े पर बिठाया और आप हाथ जोड़कर सामने खड़े हुए। हम लोगों ने पास जाकर पूछा "कहो भाई, आप लोग कौन हैं और ये लोग कौन हैं ?" एक ने हँसकर कहा "उह ! टुम नेई जानटा हम शाहब लोग है और ये दोनों हम लोगों का मेम साहिबा हैं।" हम लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ। धन्य गोरा खयाल धन्य चमाइनो, दौड़ो तुम्हारी भी यही इज्जत होगी !!! हम लोग आगे बढ़े। भीतर पैर धरते ही महा दुर्गंध आने लगी ! खैर—किसी तरह भीतर गए। जाकर देखता क्या हूँ कि इसमें सब वे ही हिंदोस्तानी हैं जिन्होंने अपना धर्म छोड़ दिया। मैंने इनमें कोई भी गुण न पाया, पर औगुण अँगरेजों के सभी इनमें दिखाई दिए। जिन महाशयों को अँगरेजों के अवगुण देखने होवें यहाँ आकर देख लें, क्योंकि यहाँ मूर्तिमान् प्रत्यक्ष विराजमान हैं। पाठको ! यह स्वर्ग नहीं है, धर्मनाशियों के दोषों का नमूना है !! मैंने फिर थोड़ी दूर जाकर देखा कि कई एक मनुष्य बैठे हुए बातें कर रहे थे। एक महाशय ने कहा "हिंडुष्टानी लोग बरा बेवकूफ है, बरी पूत्तल पत्थर पूजा करटा है, सच्चा राह को कभी नहीं ढूँढ़ता; जो कोई पाडरी साहिब बटलाता है टो उस पर चलने नहीं माँगटा, बलके गाली डेटा है। जब हम हिंडू ठा टब हमको बरा डुख ठा। एक पादरी साहिब ने जब से हम को प्रभु ईशा

का सच्चा राह बटलाया टब से हम दूसरा हो गया। ढन्य प्रभु! ढन्य!"

दूसरे ने कहा "अजी यह सुख कभी भी हिंदू कंबख्तों को नसीब है। डेखो कैसा अच्छा बिहिश्ट है?" मैंने कहा "पत्थर पड़े तुम्हारी बिहिश्त पर और तुम्हारे धर्म पर। समझते हैं कि इससे अच्छा तो हम लोगों का नरक ही है। तुम लोगों ने अपना धर्म छोड़कर क्या सुख उठाया। छिः मेरी तो इस नरक में जान निकली जाती है। राम! राम!" उन लोगों ने कहा "आ यू काला लोग, टुम कुछ नेई समझने शकटा चुप रहना माँगो।" हमने फिर कुछ कहना चाहा कि एक महाशय ने कहा "बडमाश! गढा! मना करने से नेइ मानटा", और उठकर मुझे एक धक्का ऐसा दिया कि मेरी नींद ही खुल गई। उठकर देखता हूँ कि न वह स्वर्ग है, न गोरे खयाल के लोग, न दुर्गंधि, न सुगंधि, न कोट, न बूट, न पटलून, न वह मित्र। मैं अकेला पड़ा हूँ, वही पानी बरस रहा है, बिजली चमकती है, बादल गरजता है।

———

(८) वर्तमान वाइसराय और गवर्नर-जेनरल राइट आनरेबुल लार्ड जार्ज नैथिनियल कर्जन आफ कैडेल्स्टन

हम लोगों के सौभाग्य से इस दु:समय में हमें श्रीमान् लार्ड कर्जन ऐसे प्रजावत्सल और विद्यारसिक शासक मिले हैं जिनके उत्तम प्रबंध से भारतवासी घोर अकाल और महामारी के कराल आक्रमण से रक्षा पाते हुए, उत्तम शिक्षा और उचित न्याय प्राप्त कर रहे हैं। श्रीमान् प्रजापालन तथा बाहरी शत्रुओं से देश की रक्षा का प्रबंध-भार फूलों की माला के समान धारण किए हुए, इस देश के प्राचीन शिल्प की रक्षा पर यथोचित ध्यान रखते हैं, और उनके उद्धार तथा रक्षा का यथासंभव प्रबंध करते हैं। श्रीमान् ने अपने पिछले दौरे में हिंदुस्तान के प्राचीन स्थानों का निरीक्षण ऐसी रीति से किया जैसा कि आज तक किसी वाइसराय ने नहीं किया था। इन स्थानों को देखकर इनके विषय में श्रीमान् ने जो कुछ अपने उदार भावों को प्रगट किया है वह देखने ही योग्य है, इसलिये हम उस वक्तृता को, जो श्रीमान् ने एशियाटिक सोसाइटी के वार्षिक उत्सव में दी थी, आगे प्रकाशित करते हैं। श्रीमान् की उदारता और गुणग्राहकता से हमारे पाठकों को श्रीमान् के दर्शन और जीवनचरित्र जानने की लालसा अवश्य होगी; अत: हम इसी पत्र में श्रीमान् का चित्र अपने पाठकों को भेंट करके यहाँ उनका संक्षिप्त जीवनचरित्र लिखते हैं।

इनके पूर्वपुरुष अर्थात् कर्जन वंश के लोग लगभग एक हज़ार वर्ष से डर्बीशायर स्थान में निवास करते आते हैं। यह वंश सदा से बहुत प्रतिष्ठित और संपत्तिवान गिना जाता है। इनके पूर्वपुरुष उन सेक्सन लोगों में से हैं जिन्होंने अपनी संपत्ति की रक्षा नारमन लोगों के आक्रमण से की थी। इस वंश के लोगों में प्रायः ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने राज्य की उन्नति में तथा देश में सभ्यता और नीति के फैलाने में बहुत कुछ ख्याति प्राप्त की थी; परंतु हमारे वर्तमान वाइसराय की समानता को कोई भी न पहुँच सका था। वर्तमान शताब्दी के आरंभ से इनका वंश वैरन की उपाधि से भूषित है। ये लोग वैरन इस्कारसूडेल कहलाते हैं। यह उपाधि और संपत्ति श्रीमान् के यहाँ वंशपरंपरागत प्राप्त है।

अट्ठारहवीं शताब्दी में जो वैरन इस्कारसूडेल वर्तमान थे उन्होंने वह राजप्रासाद बनवाया जो अब कैडलस्टन हाल के नाम से प्रसिद्ध है। एक समय भारतवर्ष के भूतपूर्व वाइसराय लार्ड वेल्सली इस कैडेल्स्टन हाल में अतिथि रहे थे। उन्हें इसकी बनावट ऐसी रुची कि जिस समय उन्होंने कलकत्ते में वर्तमान गवर्नमेंट हाउस बनवाना आरंभ किया, तो आज्ञा दी कि यह ठीक वैसा ही बने जैसा कि कैडेल्स्टन हाल है। कैसे कौतुक का विषय है कि हमारे वर्तमान वाइसराय इस समय ऐसे स्थान में विराजमान हैं जो कि ठीक उन्हीं के पैतृक स्थान के समान है। कर्जन हाउस एक सौ वर्ष से अधिक दिन का बना हुआ नहीं है। परंतु मेज आफ कैडेल्स्टन आठ सौ वर्ष से कर्जन वंश के अधिकार में है। वर्तमान लार्ड इस्कारसूडेल केवल मेज के लार्ड ही नहीं हैं, वरंच कैडेल्स्टन पैरिश के पादरी भी हैं। हमारे वाइसराय लार्ड जार्ज कर्जन इन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र और इस वंश के उत्तराधिकारी हैं। श्रीमान् का

जन्म सन् १८५९ ई० में हुआ था। अब तक जितने वाइसराय भारतवर्ष के राजसिंहासन पर सुशोभित हो चुके हैं, उनमें यह सबसे अल्पवयस्क हैं। घर पर कुछ शिक्षा पाने के उपरांत ये ईटन भेजे गए और वहाँ से अपने सहपाठियों में अपने परिश्रम और योग्यता से मान्य तथा प्रधानता प्राप्त करके, बैलियल कालेज आक्सफोर्ड में आए। यहीं इन्होंने सन् १८८४ ई० में बी० ए० और सन् १८८७ ई० में एम० ए० पास किया। आक्सफोर्ड में यह बड़े ही योग्य व्याख्यानदाता समझे जाते थे, और अंत में यह यहाँ के प्रेसिडेंट बनाए गए। इन्होंने अपने साहित्यजीवन में वह प्रतिष्ठा प्राप्त की कि जिस समय ये फेलोशिप आफ आल सोल्स पर नियत किए गए, उस समय किसी को भी आश्चर्य नहीं हुआ। इस पद पर प्राय: बड़े प्रसिद्ध ग्रंथकर्तागण ही प्रतिष्ठित होते आए हैं।

श्रीमान् में यह स्वाभाविक गुण है कि ये कभी परिश्रम से नहीं थकते। तीसवें वर्ष के पहले ही आप डर्बीशायर के मैजिस्ट्रेट और डिपटी लेफ्टिनेंट नियुक्त हुए थे। ऐसी प्रतिष्ठा श्रीमान के और भी पूर्व पुरुषगण प्राप्त कर चुके हैं। लार्ड कर्जन अपना सारा समय केवल साहित्यचर्चा और ग्रंथरचना ही में नहीं बिताते थे, वरंच आप व्यवसायसंबंधी कामों पर भी पूरा पूरा ध्यान देते थे; क्योंकि अपना पोलिटिकल जीवन आरंभ करने के पहले श्रीमान् हेडफील्ड के लोहे के कारखाने के मैनेजर रह चुके हैं। यद्यपि यह बड़े धनिक न थे, परंतु इनके पास पृथ्वीपर्यटन के योग्य यथोचित धन था। इन्होंने अपनी युवावस्था के आरंभ ही में प्राय: यूरोप के अनेक स्थानों की सैर की थी, और उसी समय राजनीतिक (पोलिटिकल) संसार में संमिलित होने की इन्हें इच्छा उत्पन्न हुई। छब्बीस वर्ष की अवस्था में ये लैंकशायर के साउथ—पोर्ट

डिविजन की ओर से कंसरवेटिव दल के द्वारा पार्लियामेंट के मेंबर चुने गए। जिस समय ये पार्लियामेंट के हाउस आफ कामंस में आए, मिस्टर डिसराइली मर चुके थे और लार्ड डर्बी हाउस आफ कामंस में न थे। अतः कंसर्वेटिव दल के अनुभवी लीडरों की सहायता प्राप्त करने का इन्हें कुछ भी अवसर न मिला; और वास्तव में इन्हें किसी सहायक की आवश्यकता भी न थी। अपनी योग्यता से ये स्वयं प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगे, और वादविवाद में संमिलित होने लगे। इनका झुकाव विशेष कर फारेन डिपार्टमेंट तथा हिंदोस्तान की ओर ही रहा। इनकी योग्यता को देखकर लोगों को निश्चय हो गया था कि ये यथासमय कोई उच्चतम स्थान के अधिकारी होंगे, परंतु यह समय लोगों के अनुमान से बहुत ही पहले आ गया। सन् १८९१ ई० में आप इंडिया आफिस के अंडर-सेक्रेटरी नियुक्त हुए और श्रीमान् ने पहले पहल इसी पद पर प्रतिष्ठित होकर भारतवर्षसंबंधी जानकारी प्राप्त की। इंडिया आफिस में ये केवल एक ही वर्ष रहे, परंतु उसी थोड़े काल में आपने भारतवासियों और यहाँ की राज्यशासन-प्रणाली की पूरी पूरी जानकारी प्राप्त कर ली थी। इंडिया आफिस ही के अनुभव ने इन्हें भारतसंदर्शन के लिये उत्तेजित करके भारतीय राजनीति में पूरा पूरा अनुभवी बना दिया। जब कभी इन्हें पार्लियामेंट के कामों से अवकाश मिलता, तभी पूर्वीय देशों में पर्यटन करने की इच्छा करते। श्रीमान् चार बेर भारतवर्ष की सैर कर चुके हैं। राजकीय प्रबंधों का भार अपने ऊपर लेने के पहले ही आपने सन् १८८८ ई० में रूस के रास्ते से मध्य एशिया की सैर की थी। इसके दूसरे ही वर्ष इन्होंने अपने अनुभव पर एक ग्रंथ "मध्य एशिया में रूस" (Russia in Central Asia) नामक प्रकाशित किया।

इस ग्रंथ ने उस समय लोगों का ध्यान आकर्षित किया और इस पर बड़े वादविवाद हुए। लार्ड कर्जन अपनी इस यात्रा में मध्य एशिया के अधिकारियों और शासकों से मिले; रूस के गवर्नरों और रूसी पदाधिकारियों से भेट की और वहाँ के लोगों की रहन सहन तथा समाचारों और सम्मतियों को संग्रह किया। इस ग्रंथ से एशिया में रूस की चाल पर श्रीमान् की सम्मति भली भाँति प्रगट होती है। श्रीमान् रूसी अफसरों की उन चालाकियों और चालबाजियों पर बड़ा जोर देते हैं जो वे लोग मध्य एशिया में रूसी व्यापार और रूसी राज्य बढ़ाने के लिये चुपके चुपके कर रहे हैं। उस समय इनका मत यह था कि रूस हमारे भारतवर्ष पर ताक लगाए हुए है और वह गुप्त रीति से अपना काम साधता जाता है। आपकी सम्मति थी कि हमारा मुख्य कर्तव्य है कि रूस की इन चालों को देखते और रोकते रहें। इसके अतिरिक्त आपके दूसरे ग्रंथ तथा यात्राओं के वर्णन पढ़ने योग्य हैं। इनसे उनकी योग्यता, जानकारी आदि भली भाँति विदित है। इन यात्राओं में आप कभी कभी "टाइम्स" पत्र के संवाददाता भी रहे हैं। आप अपने एक ग्रंथ में रूसी विचारों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हैं और सब कठिनाइयों को निबटाने के उपाय आपका दूसरा ग्रंथ "ईरान और ईरान के मामले" प्रगट करता है। श्रीमान् की भारतवर्ष की पश्चिमोत्तर सीमा की यात्रा तथा अफगानिस्तान की कहानियों का वर्णन उनके सीमासंबंधी अनुभवों का भली भाँति परिचय देता है। आपके पूर्वीय पर्यटन तथा राजनैतिक साहित्य की पूरी पूरी सूची न लिखकर हम यहाँ केवल इतना ही प्रकाशित करना बहुत समझते हैं कि आपने सन् १८८० ई० के आरंभ ही में यूनान की सैर की और फिर ईरान, हिंदुस्तान, मध्य एशिया, बुखारा, समर-

कंद, काश्मीर, चीन, जापान, कोरिया, काफरिस्तान, कैनेडा और यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका का दौरा किया। यह बात तो सभी लोग जानते हैं कि श्रीमान् ने अफगानिस्तान में अमीर काबुल से भेंट की और मित्रता बढ़ाई, जिसका बर्ताव अब तक चला आता है।

सन् १८९५ ई० के जेनरल इलेक्शन में आप कंजर्वेटिव गवर्नमेंट में फारेन डिपार्टमेंट के अंडर-सेक्रेटरी नियुक्त हुए और अपने इस पद पर प्रतिष्ठित रहकर पार्लियामेंट के सभासदों को ऐसा प्रसन्न किया कि जिस समय उन लोगों ने इनके भारतवर्ष के वाइसराय होने का समाचार सुना, अपना हार्दिक आनंद प्रकाशित किया और श्रीमान् को बधाई दी।

थोड़े ही दिन हुए कि श्रीमान् ने अमेरिका के प्रसिद्ध धनिक मिस्टर लीटर की रूपवती तथा गुणवती कन्या से विवाह किया, जिनके गर्भ से दो कन्या-रत्न उत्पन्न हुए हैं, जिनमें छोटी की अवस्था अभी कई महीने मात्र की है।

श्रीमान् ता० ३० दिसंबर, सन् १८९८, को बंबई पहुँचे और ता० ६ जनवरी, सन् १८९९ ई०, को लार्ड एल्गिन से चार्ज लेकर प्रजापालन में तत्पर हैं और अपने न्याय और दयागुण से भारत-वासियों के हृदयराज्य के सिंहासन को अधिकृत कर रहे हैं।

[सरस्वती भाग १]

(६) भाषा कविता की भाषा

इन दिनों भाषारसिक समाज में इस बात की चर्चा फैल रही है कि भाषा कविता की भाषा क्या होनी चाहिए ? कुछ लोगों की सम्मति है कि ब्रजभाषा के अतिरिक्त प्रचलित बोलचाल की भाषा में कविता हो ही नहीं सकती, और कुछ कहते हैं कि ब्रजभाषा की कविता हिंदी भाषा की कविता ही नहीं है, वह केवल एक प्रांत की भाषा कविता कही जा सकती है; कविता जब खड़ी बोली में होगी तभी वह हिंदी कविता कहलाने योग्य होगी। मेरी समझ में दोनों ही दलवाले कुछ न कुछ भ्रम में हैं।

इसके पहले कि कविता की भाषा का कुछ विचार किया जाय, यह देखना आवश्यक है कि इस देश की बोलचाल की भाषा क्या थी और अब क्या है ? प्राचीन ग्रंथों से जहाँ तक पता चलता है यह स्पष्ट है कि इस देश की यद्यपि बोलचाल की भाषाएँ भिन्न भिन्न रही हैं परंतु साहित्य की भाषा संस्कृत थी, अतएव संस्कृत ग्रंथों के अतिरिक्त और कोई उपाय इस देश की बोलचाल की भाषाओं को जानने का नहीं है; परंतु इसमें एक कठिनाई यह बड़ी भारी आ पड़ी है कि हिंद, हिंदू और हिंदी ये नाम जो इस समय अपने देश, अपना और अपनी भाषा के हम लोग जानते हैं ये विदेशियों के साथ इस देश में आए और ऐसे सर्वव्यापी हो गए कि इसे छोड़कर अपना यथार्थ नाम भी हम लोग भूल गए और ये नए नाम हमारे प्राचीन ग्रंथों में कहीं मिल नहीं सकते (जो नाम उस समय की भाषाओं का संस्कृत ग्रंथों में मिलता है उसमें से कौन सी भाषा हमारी सर्वव्यापिनी हिंदी थी इसका पता भी नहीं लगता)।

सबसे प्राचीन आर्य ग्रंथ वाल्मीकीय रामायण है। उससे यह पता लगता है कि उस समय संस्कृत द्विजातियों की भाषा थी परंतु मानुषी भाषा दूसरी ही थी। जिस समय हनुमान् जी सीताजी को ढूँढ़ते हुए अशोक वन में पहुँचे हैं तो श्री जनकनंदिनी से परिचय करने के समय विचार करते हैं—

यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सांत्वायितुं शक्या नान्यथेयमनिंदिता॥

—सुं० का० ३० सर्ग

अतः अब इसका कोई उपाय नहीं है कि ठीक ठीक पता प्राचीन भाषा का लग सके, अतएव हमें छ सात सौ वर्ष के भीतर ही की भाषा को लेकर अपने आलोच्य विषय पर विचार करना होगा। प्राचीन प्रथा इस देश की केवल पद्य ग्रंथ लिखने ही की थी इसलिये बोलचाल की भाषा की खोज के लिये भी हमें अगत्या पद्य ग्रंथों ही का आश्रय लेना पड़ेगा।

सबसे प्राचीन हिंदी का ग्रंथ चंद कृत रायसो है; परंतु हम तीन कारणों से इसका आश्रय न लेकर इसके पीछे के प्रमाणों ही के आधार से इसे आरंभ करेंगे—(१) रायसो की प्राचीनता में बहुत लोगों को संदेह है। (२) रायसो में कई प्रकार की भाषा लिखी गई हैं। (३) रायसो की कोई प्राचीन प्रामाणिक प्रति नहीं मिलती। अतएव लेखकों के दोष से उसकी भाषा का लेखक के प्रांत की भाषा की ओर खिंच जाना संभव है*। मेरी समझ में इस देश की प्रच-

* मैंने कई ग्रंथ ऐसे देखे हैं जिनमें पंजाब के लेखक ने कबीरदास की कविता पंजाबी और राजपुताने के लेखक ने मारवाड़ी बना डाली है।

लित भाषा के विचार के समय, उर्दू के आरंभकाल को ही प्रमाण मानकर आगे चलना चाहिए। जहाँ तक पता लगता है, उर्दू के जन्मदाता फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि 'तूतिए हिंद' अमीर खुसरो थे, और उनकी बनाई 'खालिकबारी' ही इस विषय की पहली पुस्तक थी। यह समय निर्विवाद सन् १३०० ई० के लगभग था। खुसरो फारसी का उत्कृष्ट कवि और उर्दू का जन्मदाता होने के अतिरिक्त हिंदी का भी अच्छा कवि था। अतएव हमें प्राचीन भाषा का पता बतलानेवाला इससे बढ़कर दूसरा कोई न मिलेगा।

खुसरो की भाषाओं पर विचार करने से हमें यह जान पड़ता है कि ठीक इसी समय की भाँति यहाँ की भाषाएँ उस समय भी कई थीं और जो प्रचलित भाषाएँ इस समय बोली जाती हैं उनसे बहुत ही सूक्ष्म रूपांतर की भाषाएँ उस समय भी बोली जाती थीं। उदाहरण के लिये हम कुछ कविता उद्धृत करते हैं।

खुसरो की हिंदी कविता—

"आदि कटें ते सबको पारै।
मध्य कटें ते सबको मारै॥
अंत कटें ते सबको मीठा।
कह खुसरो मैं आँखों दीठा॥"

कहिए इसमें से ब्रजभाषा की झलक आती है या नहीं? अब शुद्ध खड़ी बोली की कविता देखिए—

"जल का उपजा जल में रहै।
आँखों देखा खुसरो कहै॥"

खुसरो की उर्दू कविता—

"सनम जद याद आता है।
चश्म दरिया बहाता है॥"

अब खुसरो की "खालिकबारी" में ग्रामीण भाषा की झलक देखिए—

"रसूल पैगंबर जान बसीठ।
यार दोस्त बोले जा ईठ॥
बिया बिरादर आव रे भाई।
बिनशीं मादर बैठु रे माई॥"

एक ज्योतिष संस्कृत ग्रंथ "भास्वती" की टीका भाषा गद्य में संवत् १४८५ (१४२८ ई०) की बनी बनारस कालिज में है। उसकी भाषा विलक्षण ही है। कुछ अंश उसका उदाहरण के निमित्त महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदी जी कृत "गणकतरंगिनी" से यहाँ उद्धृत करते हैं।

"मुरारि यो (जो) है वासुदेव तेहि के ये (जे) हहिं चरण-कमल तेन्ह नमस्कार कै शिष्य निमित्त भास्वती संकू(स्कृ)त शता-नंद कीन्हि। कौन काल शकू ऊन करब एक सहस्र एकैस १०२१ ग्रंथादि वर्ष भुक्त जानवे। शास्त्र (स्त्रा) कु संज्ञा होइ। सो देखि कै बनमालीब्द शिष्यार्थ भाषा टीका कीन्ह। १४८५ समय॥"

इसके पीछे के प्रसिद्ध कवि कबीर थे। कबीर की कविता में भाषा पर कुछ विशेष ध्यान नहीं है विषय पर ध्यान है—परंतु एक कविता हम उदाहरण के लिये कबीर की बोलचाल की भाषा से मिलती जुलती उद्धृत करते हैं—

"तनना बुनना तजा कबीर। रामनाम लिख लिया सरीर॥
जब लग भरूँ नली की बेह। तब लग टूटै राम सनेह॥
ठाढ़ी रोवै कबीर की माइ। ये लरका क्यों जीव खुदाइ॥
कहै कबीर सुनौ री माइ। पूरन हारा त्रिभुवन राइ॥"

इसके पीछे तो फिर भाषा तथा उर्दू की कविताओं से ए. फारसी किताबों के साथ के हिंदी अनुवादों तथा महाजनों की चिट्ठियों की लिखावट से स्पष्ट सिद्ध है कि यहाँ के सभ्य समाज की बोलचाल की भाषा लगभग वही है जिसे आजकल खड़ी बोली कहते हैं और जिसे भाषा गद्य के जन्मदाता लल्लूलाल जी ने रेखते की बोली लिखा है।

अब भाषा कविता की भाषा पर ध्यान देना आवश्यक है। सुप्रसिद्ध कवि भिखारीदासजी ने अपने "काव्यनिर्णय" नामक ग्रंथ में इस विषय में लिखा है।

"भाषा ब्रजभाषा रुचिर कहै सुमति सब कोइ।
मिलै संस्कृत पारस्यौं पै अति प्रगट जु होइ॥"

इसके प्रमाण में भिखारीदासजी ने आगे चलकर फिर लिखा है।

"तुलसी गंगा दो भए सुकविन के सरदार।
इनकी काव्यन मैं मिली भाषा विविध प्रकार॥"

वास्तव में भिखारीदासजी ने बहुत ही ठीक लिखा है। कहने को तो यह प्रसिद्ध है कि भाषा कविता ब्रजभाषा में होती है परंतु वास्तव में ध्यानपूर्वक देखा जाय तो थोड़े से ब्रज के कवियों के अतिरिक्त अधिकांश भाषा कविता की कोई विशेष भाषा नहीं है; कविगण यथावसर उचित शब्दों को भाषा का विचार छोड़कर यथास्थान रख देते हैं—केवल अपने हृद्गत भाव को प्रकाशित करने और कविता को रोचक बनाने पर ध्यान रखते हैं—यही उचित भी है। यह बात केवल प्राचीन कवियों में ही नहीं है वरंच 'खड़ी बोली' के नवीन कवियों की कविता में भी पाई जाती है। पंडित श्रीधर पाठकजी ने अपनी एक कविता में लिखा है—

"रसीली मुसकान हसन कटाक्ष से,
प्रवासियों के मन में मनोज की।
उमंग यों शीघ्र करें विलासिनी,
सलोनी साँझै शशिशोभिनी यथा॥"

—ग्रीष्मवर्णन

लगती है को लगै है, करती है को करै है, देख करके के स्थान पर 'विलोकि' ऐसे प्रयोग तो बहुतायत से मिलते हैं। ऐसे ही पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी की कविता में भी ऐसे अनेक प्रयोग हैं; यथा—

"सिर ऊँचा कर मुख खोलै है।
कैसी मृदु बानी बोलै है॥"

—कोकिल कविता

"मातासमत्व जस वेद पुराण भाखा।
तत्तुल्य है अपर केवल मातृभाषा॥
आजन्म जो विमुख, तासु विपत्ति माहीं।
आवे सदैव मुख में सोइ, अन्य नाहीं॥

—नागरी

गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो इसकी पराकाष्ठा ही कर डाली है। स्वयं ही लिखा है —

"भनित भदेस भाँति बहु बरनी। राम-कथा कलिकलमष हरनी॥"

अब यहां पर यह प्रश्न उदय होता है कि जब कई भाषा के आश्रय से हिंदी की कविता होती रही है तो फिर कविता की भाषा का नाम व्रजभाषा क्यों कहा जाता है? मेरी समझ में इसका कारण यही है कि कविता के क्रियापदों में आया के स्थान पर आयो, गया के स्थान पर गयो, कहा के स्थान पर कह्यो आदि व्रजभाषा की

क्रियाओं के रख देने ही से यह नाम प्रसिद्ध हो रहा है। दूसरी बात यह है कि यदि विशेष विचारपूर्वक देखिए तो यही अनुमान होता है कि भारतवर्ष की Lingua Franca भाषा जो हिंदी कहलाती है वह केवल इसी लिये नहीं कि वह सर्वत्र समझी और बोली जाती है वरंच इसलिये भी कि भारतीय सब भाषाएँ इसी के आश्रय से बनी हुई हैं। ब्रजभाषा, राजपुताने की भाषाएँ, बैसवारे की भाषा, बुंदेलखंड की भाषा, भोजपुर विहार की भाषाएँ, तिरहुत की भाषा आदि भाषाएँ तो हिंदी के उपभेद मात्र हुई हैं, साथ ही बँगला, उड़िया, मैथिली, गुजराती, महाराष्ट्री, नैपाली, पंजाबी तथा पहाड़ी भाषाओं की बनावट भी स्पष्ट ही कहे देती है कि इन्होंने हिंदी का आश्रय अवश्य लिया है। यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि भारतवर्ष में प्रति पाँच कोस पर भाषा बदलती है परंतु यह निश्चय करना कठिन है कि वह मूल भाषा कौन है जिससे यह परिवर्तन आरंभ हुआ। मेरे अनुमान में यही जँचता है कि वह मूल भाषा ब्रजभाषा ही है, क्योंकि यदि विचार करके देखा जाय तो ब्रज के चारों ओर से ही यह परिवर्तन क्रमश: आरंभ हुआ है, और अधिकांश भाषाएँ ब्रजभाषा से ही मिलती हुई हैं। राजपुताने की ओर बढ़िए तो भरतपुर की भाषा, ब्रजभाषा और जैपुरी भाषा के बीच की भाषा जान पड़ती है। उसके आगे जैपुर की भाषा फिर जोधपुर की मारवाड़ी और जो उससे मिलाइए तो गुजराती बहुत कुछ मिलती है। इधर आगरे की भाषा कुछ ब्रजभाषा की ओर झुकती खड़ी बोली है और दिल्ली में आकर तो वह उर्दुए मुअल्ला ही बन गई है। यह खड़ी बोली काशी तक सूक्ष्म परिवर्तन के साथ बोली जाने के उपरांत भोजपुर शाहाबाद से फिर परिवर्तित होना आरंभ करती है और क्रमश: भोजपुरी, बिहारी, तिरहुतिया से बदलकर मैथिली के रूप में आ जाती है। मैथिली से

बँगला और उड़िया का क्रमशः परिवर्तन स्पष्ट प्रतीत होता है। बुंदेलखंडी और बैसवारी आदि की क्रियाओं का मिलान व्रजभाषा से बहुत कुछ होता है। दूसरा कारण यह जान पड़ता है कि हिंदुओं का सर्वमान्य अंतिम अवतार श्रीकृष्णावतार ही है। और उनका जन्म व्रज में होने के कारण यह भाषा सर्वमान्य हुई। तीसरा कारण यह प्रतीत होता है कि खड़ी बोली को मुसलमान जाति ने अपनी उर्दू बनाकर ग्रहण कर लिया इसलिये हिंदुओं ने विशेष आग्रह व्रजभाषा की ओर किया। इसका दृढ़तर प्रमाण यह है कि श्री-वल्लभाचार्यजी के संप्रदाय में अब तक यह प्रथा है कि भगवत्सेवा के समय व्रजभाषा का बोला जाना ही उचित समझा जाता है, यावनी शब्दों का प्रयोग निषिद्ध है। इसके अतिरिक्त व्यास लोग जो कथा कहते हैं वे चाहे जिस देश के रहनेवाले क्यों न हों और चाहे वने या नष्ट हो जाय पर वे कथा व्रजभाषा ही में कहने का उद्योग करते हैं; गोस्वामी लोग व्रजभाषा ही बोलते हैं तथा च उस समय में साहित्य की भाषा ही व्रजभाषा मान ली गई थी—न केवल पद्य ग्रंथ वरंच गद्य ग्रंथ भी जितने मिलेंगे वे प्रायः व्रजभाषा की क्रियाओं ही में। धर्म संबंधी वार्ता आदि तथा पुराणादिकों की टीका, ज्योतिष, वैद्यक आदि विषयों के सैकड़ों ही ग्रंथ व्रजभाषा गद्य में अब तक वर्तमान हैं, यहाँ तक कि 'खड़ी बोली' गद्य के आरंभकर्ता लल्लूलालजी ने भी "हितोपदेश" को व्रजभाषा में बनाया था और कहाँ तक कहें बंगाली कवि अपनी कविता व्रजभाषा में करना गौरव समझते थे। प्राचीन बँगला पद्य प्रायः व्रजभाषा से मिलते जुलते सैकड़ों ही मिलते हैं। अतः हिंदी के सब रूपों में व्रजभाषा ही को प्रधानता मिली थी। परंतु इसमें भी संदेह नहीं कि खड़ी बोलीवाले बहुत दिनों से इसे उपहास की दृष्टि से देखते और गँवारी बोली कहते थे, जैसा कि

मुंशी इंशाअल्लाह खाँ की "रानी केतकी की कहानी" की भूमिका से प्रगट होता है। अस्तु, चाहे यह भाषा ठीक ब्रजभाषा न हो, कवियों की गढ़ी हुई एक विशेष भाषा ही क्यों न हो, पर इसका झुकाव विशेषकर ब्रजभाषा ही की ओर है। यहाँ पर हम इतना और भी कहना आवश्यक समझते हैं कि भाषा कवियों ने अपनी कविता के लिये केवल एक ही प्रकार की भाषा का प्रयोग नहीं किया है वरंच अनेक अवसरों के लिये अनेक प्रकार की भाषाएँ लिखी हैं। जैसे वीर रस के लिये चन्द से लेकर गिरिधरदास तक सभी कवियों ने भाषा को संस्कृत का रूप बनाने के हेतु अनुस्वार लगाया है और टवर्गी अक्षरों को प्रायः द्वित्व करके प्रयोग किया है। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय तो वीर रस के प्रायः सभी प्राचीन नवीन ग्रंथों में एक सी भाषा पाई जायगी, और ऐसे ही शृंगार के लिये ब्रजभाषा के प्राचीन कवियों ने खड़ी बोली में भी बहुत सी कविता की रचना की है। ब्रजभाषा कविता के आचार्य स्वयं सूरदासजी ने भी खड़ी बोली की कविता की है यथा—"देखो रे एक बाला जोगी द्वारे मेरे आया है। अंग भभूत गले मृगछाला शृंगीनाद बजाया है।" और खड़ी बोली के कवियों ने वरंच यहाँ तक कि बहुधा उर्दू वालों ने भी ब्रजभाषा का आश्रय लिया है। अतएव ऊपर लिखे प्रमाणों पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि ब्रजभाषा कविता के पक्षपातियों का कहना कि खड़ी बोली में कविता उत्तम हो ही नहीं सकती और खड़ी बोली वालों का कहना कि ब्रजभाषा की कविता हिंदी कविता ही नहीं है सर्वथा अनुचित है।

अब विचारणीय विषय यह है कि भाषा कविता की भाषा क्या होनी चाहिए? ऊपर यह कहा गया है कि इस देश की भाषा प्रत्येक पाँच कोस पर बदल जाती है परंतु यहाँ पर हम यह कहेंगे

कि इतना ही नहीं वरंच यहाँ प्रत्येक नगर में कई प्रकार की बोलियाँ बोली जाती हैं; यथा काशी में—(१) आते हैं (२) आता हौं (३) आई थै (४) आई ल: या आई ला (५) आवत बाटी या आवत बाड़ी (६) आवथई। निदान यह कहना तो सर्वथा असंभव ही है कि सभी भाषाओं में कविता हो, यद्यपि गँवारी भाषा तक में कविता करने में लोगों ने सफलता प्राप्त की है। परंतु ऐसी कविता सभ्य समाज में आदर नहीं पा सकती। इसलिये यह आवश्यक है कि कोई एक भाषा ऐसी मान ली जाय जो सर्वमान्य और सबके समझ में आने योग्य हो। यह स्थान अधिकृत करने योग्य दो ही भाषाएँ हैं, एक व्रजभाषा या यों कहिए कि प्राचीन कवियों की गढ़ी हुई भाषा और दूसरी खड़ी बोली। मेरी समझ में भाषा की कविता पर दोनों ही बोलियों का समान अधिकार है।

कविता की प्रचलित भाषा (व्रजभाषा) में माधुर्यगुण के अतिरिक्त सुगमता बहुत अधिक है। बहुत दिनों से परिमार्जित होते होते इसके शब्द ऐसे बन गए हैं जो कविता के लिये बहुत ही उपयुक्त हैं; 'देख करके' इतने बड़े शब्द के लिये केवल 'लखि' 'निरखि' 'विलोकि' या 'अवलोकि' यथावसर काम दे देता है। केवल इकार लगा देने से 'करके' इतना अर्थ निकल आता है। दीर्घ का ह्रस्व बना लेना या शब्दों का रूप कुछ बदल देना जैसा व्रजभाषा में खप जाता है उसके विरुद्ध खड़ी बोली की कविता में बहुत ही खटकता है। इसके अतिरिक्त कविता शक्ति परमेश्वर की देन है और इसी लिये कवियों की तरंग कुछ विलक्षण ही होती है। जो लोग सुकवि हैं उन्हें जब तरंग आती है तो फिर संसार के नियमों को दूर रखकर वे अपनी उमंग को निकाल डालते हैं। यदि उस समय कोई उन्हें नियम में बाँधना या रोकना चाहे तो उनकी स्वाभाविक कल्पना नष्ट हो जाती है और फिर उसका

रस जाता रहता है। इसलिये कवियों को उनकी इच्छा से रोकना तथा व्रजभाषा की कविता गँवारी कविता है यह कहकर उत्साह-हीन कर देना सर्वथा अनुचित है। यदि यह कहा जाय कि ऐसी कविता साधारण बोधगम्य नहीं है तो सर्वथा भ्रम है। सच पूछिए तो आजकल की गद्य की हिंदी सर्वसाधारण की समझ में नहीं आती परंतु सूरदास, कबीर, तुलसीदास, मीराबाई आदि की कविता का प्रचार गाँव गाँव में है और आबाल वृद्ध वनिता सब सहज में उसे समझ लेते हैं। और यदि यह कहा जाय कि व्रजभाषा में समयानुकूल, देशोपकारी तथा स्वाभाविक कविता नहीं हो सकती तो यह भी भूल है। पूज्य भारतेंदुजी की 'भारतभिक्षा', 'प्रबोधिनी' आदि कविता इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि इसमें सभी तरह की कविता बन सकती और रोचक हो सकती है। अतएव मेरी समझ में यह आग्रह करना कि व्रजभाषा में कविता न हो सर्वथा हानिकारक है वरंच जिन कवियों को व्रजभाषा की कविता का अभ्यास हो उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे अपनी रुचि की भाषा में ही कविता करें परंतु केवल लकीर के फकीर होकर एक ही रस की कविता का पिष्ट-पेषण न करें वरंच देश की दशा को देखकर उसके अनुसार अपने देशभाइयों के उपकार तथा उनकी सामयिक रुचि के अनुसार कविता करके हिंदी का गौरव बढ़ावें। परंतु जिन लोगों की रुचि खड़ी बोली की कविता की ओर है और जिनको खड़ी बोली में उत्तम कविता करने की सामर्थ्य है उन्हें इससे रोकना भी उतना ही अनुचित है जितना व्रजभाषा के कवियों को खड़ी बोली के लिये रोकना। प्राचीन ढर्रे के भजन, लावनी, रेखता, ठुमरी आदि के अतिरिक्त पंडित श्रीधर पाठक ने 'एकांतवासी योगी' आदि ग्रंथ तथा कविता, पंडित प्रताप-नारायण मिश्र ने 'संगीत शाकुंतल' और पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी

ने 'कुमारसंभवसार' आदि रचकर यह सिद्ध कर दिया कि परिश्रम करने से खड़ी बोली भी उतनी ही मधुर और श्रवणप्रिय हो सकती है जितनी व्रजभाषा; अतएव इसका विरोध करना केवल दुराग्रह मात्र है। खड़ी बोली की कविता के प्रेमियों का यह अवश्य कर्तव्य है कि इसको भी उसी उच्च श्रेणी पर पहुँचा दें जिस पर व्रजभाषा पहुँच चुकी है परंतु यह नहीं उचित है कि अपने हठ के रक्षार्थ हिंदी के इस अमूल्य संचित भांडार से भाषा साहित्य को वंचित करें। कवियों को बहुत से नियमों में आबद्ध न करके उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार कविता करने दो परंतु उनकी रुचि समयोपयोगी आवश्यकताओं की ओर झुकाकर अपने साहित्य भांडार को उपयोगी विषयों से भरने का उद्योग करो। पूज्य भारतेंदुजी ने प्राकृत श्लोक के आश्रय पर "कर्पूरमंजरी" में बहुत ठीक कहा है—

"जामैं रस कछु होत है पढ़त ताहि सब कोय।
बात अनूठी चाहिए भाषा कोऊ होय॥"

[नागरीप्रचारिणी पत्रिका]

---

(१०) पुरातत्त्व

हमें आज यह कहने और प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं है कि भारतवर्ष ने बहुत ही प्राचीन समय से उन्नति के सर्वोपरि सोपान पर आरोहन किया था, क्योंकि एक तो यह बात सर्ववादि-सम्मत है, दूसरे आज हमारा आलोच्य विषय यह नहीं है, आज हम केवल इतना ही दिखाना चाहते हैं कि हमारे प्राचीन इतिहास की क्या दशा है और उसके पुनरुद्धार का कौन सा उपाय है।

प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति की एक एक भिन्न प्रणाली और भिन्न भिन्न रुचि होती है। हमारे भारतवर्ष की यह प्राचीन प्रणाली थी कि जिस जाति के बाँटे जो काम कर दिया गया उसमें कोई दूसरा हस्तक्षेप न करेगा और उस विषय में पूर्णतया उसी का भरोसा और उसी पर विश्वास करेंगे और इसी लिये यहाँ के जितने लौकिक या पारलौकिक विषय कहे गए उनको केवल सूत्र मात्र में कह दिया, उसे समझाने या प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं। दूसरे जितने सूत्र थे उन्हें वे ईश्वरवत् मान्य और ग्राह्य थे; उनको कोई प्रश्न करने की आवश्यकता न थी, उनका कर्तव्य केवल इतना ही था कि उन आज्ञाओं का अनुकरण करें और बिना कुछ सोचे विचारे उन्हीं के अनुसार चलें।

रुचि यहाँ के लोगों की लौकिक की अपेक्षा पारलौकिक की ओर अधिक थी; वे इस नश्वर संसार में सुख भोगने की अपेक्षा उस अविनाशी संसार के लिये प्रस्तुत होना आवश्यक समझते थे, इसी लिये उन्होंने दूसरे देशों तक जाना, उन्हें विजय करना और बहुत सा द्रव्य उपार्जन करना अनावश्यक समझा, जो कि उस समय उनके लिये

बहुत ही सहज बात थी, और इसी कारण यहाँ के प्रत्येक विषय के साथ धर्म का घनिष्ठ संबंध मिलाया गया, और यह तो स्पष्ट ही है कि जहाँ अदृष्ट घटनाएँ दृष्टि के साथ मिलाई गईं वहाँ चाक्षुष-प्रमाण मिलना असंभववत् है। यही कारण है कि आजकल की युरोपीय रुचि के साथ प्राचीन रुचि से बड़ा अंतर पड़ता है।

दूसरा एक बड़ा कारण यह भी है कि इस देश के लोग कविता-प्रिय सीमातिरिक्त थे, और कविता का नामांतर अत्युक्ति कहना चाहिए, फिर अत्युक्ति से और यथार्थता से तो रात दिन का अंतर है।

तीसरे इतिहास लिखने का काम राजाओं के चारनों तथा भाटों के सिपुर्द था, एक तो वे खुशामद से बहुत कुछ घटा बढ़ा देते थे, दूसरे एक राजा का राज्य बदला, दूसरा राजा हुआ कि मंत्री से लेकर प्रतिहारी तक बदल गए, जिसकी विद्या उसके साथ गई, जिस कुल की कीर्ति उस कुल के साथ हुई।

चौथे सबसे बड़ा कारण नित्य का धर्म विप्लव। विद्या बुद्धि से और धर्म से बड़ा विरोध है। जहाँ तक विद्या की उन्नति होगी युक्तियों की नित्य नई कल्पना होगी; और धर्म का मूल केवल विश्वास है, उसमें युक्तियाँ आईं और गड़बड़ मचा; यही दशा भारत की हुई। दोनों एक दूसरे के विरोधी। एक ने यहाँ पूर्णता लाभ की। और लोगों ने दोनों को एक करना चाहा जिसने और भी उपद्रव किया। जैसा ही यह देश विद्या बुद्धि के लिये प्रसिद्ध था, वैसा ही धर्मचर्चा और धर्म की दृढ़ता भी इसकी अंग थी, अतएव अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार नित्य नई युक्तियाँ लोग सोचते रहे और उन्हीं के अनुसार धर्म परिवर्तित होते रहे।

धर्म एक ऐसा पदार्थ है जिसके आगे मनुष्य हिताहित-ज्ञान-शून्य हो जाता है और यह बात केवल एशिया ही के लिये नहीं

वरंच इस विषय में युरोप की भी यही दशा है। एक धर्म के पीछे दूसरे धर्म्म ने जोर पकड़ा और पहले धर्मवालों के साथ उचितानुचित बर्ताव का ध्यान दूर हुआ और यही मुख्य कारण सारी दुर्दशा का हुआ। वैदिक मत शिथिल हुआ, जैन बौद्धों ने जोर पकड़ा, चलिए वैदिक ग्रंथ बोरों में कसकर नदियों में डुबाए गए, पुस्तकालय जलाए गए। इनकी युक्ति पुरानी पड़ी, शांकर मत ने स्थान पाया, वही दशा उनकी हुई। शांकर गए वैष्णव आए। उन्होंने भी परम अहिंसा-निष्ठ होने पर भी प्राचीनों की कीर्ति के नाश में कुछ दया न की। और सबके ऊपर विदेशी मुसलमान आए। इन्होंने तो मानों इस देश की प्राचीन कीर्त्तियों के नाश के लिये अवतार ही लिया था। यदि अकबर सरीखे दो चार विद्यारसिक मुसलमान बादशाह न होते, या औरंगजेब सरीखे दो चार परम क्रूर पराक्रमी बादशाह और होते तो जो कुछ थोड़ी बहुत प्राचीन कीर्ति, ग्रंथादि बच रहे हैं उनका भी पता न लगता। तनिक सोचिए तो सैकड़ों ही वर्ष से परम विद्यारसिक अध्यवसायशील अँगरेज लोग इन प्राचीन पदार्थों की खोज में कटिबद्ध हैं तथापि नए आविष्कार होते ही आते हैं और नित्य इनके द्वारा एक न एक नई बात का पता लगता ही जाता है, फिर यथार्थ में यहां की विद्या की कहाँ तक उन्नति थी इसका क्या ठिकाना है?

इतिहास के ठीक पता न लगने का एक बड़ा कारण यह भी है कि प्राचीन समय में कोई एक संवत् नहीं चलता था। जो राजा गद्दी पर बैठा उसका संवत् उसी दिन से चला। वह मरा, संवत् भी उसी के साथ सती हुआ, दूसरा संवत् चला। अब यथार्थ काल-निर्णय क्योंकर हो? जब से महाराज विक्रम का संवत् चला, इतिहास का भी कुछ न कुछ पता लगता ही है।

इस विषय में उदयपुर के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ तथा पुरातत्त्ववेत्ता महामहोपाध्याय कविराजा साँवलदासजी ने पूज्यपाद भारतेंदुजी को एक पत्र लिखा था उसे यहाँ अविकल प्रकाश करते हैं।

कविराजाजी लिखते हैं।

"मित्रमित्रोत्तमेषु" अपरंच पत्र आपका आया समाचार बाँच चित्त प्रसन्न हुआ। आपने लिखा कि मुसलमानों ने तवारीखों में अपना पक्षपात लिखा और अँगरेजों ने भी तदनुसार ही लिखा सो आप का लिखना सच है। मैंने भी सैकड़ों इतिहास देखे परंतु आपकी और मेरी सम्मति एक है। परंतु कलेश इस बात का है कि राजपूताने में इतिहास लिखने की रीति नहीं थी, मरु भाषा ब्रजभाषा में यदि ग्रंथ लिखे हैं तो उनमें वाक्य-बाहुल्य इतना बढ़ा दिया कि जिसमें सिवाय कपोलकल्पित प्रशंसा के असली प्रयोजन कठिनता से हाथ आवे, केवल कवियों ने अपनी कविता की शक्ति प्रकाश करने पर दृष्टि रखी। पाषाण लेख मिलते हैं उनमें भी राजाओं को इंद्र वरुण कुबेर या ब्राह्मणों को दान देने के सिवाय इतिहासिक वृत्त नहीं।

थोड़ा आश्रय युरोपियन विद्वानों की यात्रा-पुस्तकों का है। तीन सौ वर्ष अथवा साढ़े तीन सौ से इस तरफ की और इसके पहले की यूनानियों की अथवा अरब के यात्रियों की पुस्तकें मुझको मिली हैं। उनमें देश, स्थान और मनुष्यों के नामों को कुछ का कुछ कर दिया जिससे असली नामों का पता लगाना मुश्किल है तथापि मैं अपने इतिहास में अवश्य दृष्टि रखूँगा परंतु बिना सबूती के नहीं लिखा जा सकता।

नैपाल का इतिहास आप रचें तो मुझे अधिक सावकाश तो नहीं क्योंकि सात घंटा प्रतिदिन इतिहास-निर्माण में व्यतीत होता है परंतु जहाँ कहीं संदेह हो लिख भेजिए यथाशक्ति उत्तर दिया जावेगा।

सं० १९४० ज्येष्ठ शुक्ला १३ ह० साँवलदास

परंतु क्या हमें यह देख हताश होना चाहिए ? क्या हमें अपने पूर्वजों की कीर्ति तथा अपने प्राचीन इतिहास की खोज से पराङ्मुख होना चाहिए ? कदापि नहीं। हमें देखना चाहिए कि किन उपायों से हम इनके उद्धार में कृतकार्य हो सकते हैं और हमें उनका अनुकरण करना चाहिए।

देखिए तो परम बुद्धिमान् युरोपीय विद्वानों ने आपके प्राचीन इतिहासों का यथा-कथंचित् पता कैसे लगाया है ? जिन बातों को आप स्वप्न में भी नहीं जानते उन्हें वे विदेशी, विजाती विधर्मी आपकी भाषा रीति व्यवहार आदि से संपूर्ण अनभिज्ञ होने पर भी आपको बताते हैं। कैसी लज्जा की बात है कि हमारे पूर्व पुरुषों का वृत्तांत हमें छ हजार कोस से अजनबी लोग आकर बतावें और हम यह देखकर भी कुछ अपना पता आप न लगावें, केवल अकर्मण्य होकर बैठे उन्हीं का भरोसा करें और जो कुछ अपना वृत्तांत जानना हो तो उन्हीं का आश्रय ढूँढ़ें !!!

भला जाने दीजिए अब तक आपने कुछ न किया, आप जानते नहीं थे या आपका ध्यान इस ओर न था, परंतु अब तो आपको दूसरों ने पथप्रदर्शन कर दिया। उससे जो कुछ फल हुआ, आपके इतिहास के अंधकार में कुछ प्रकाश दिखलाया, उसे देखकर भी आपकी रुचि उस ओर नहीं होती और आप कुछ भी उस ओर उद्योगी नहीं होते ?

आज हम आप लोगों को यही दिखलाया चाहते हैं कि उन लोगों ने कौन कौन उपायों से इस कठिनाई को दूर किया है और किन उपायों से यह सब पता लगाया है और यदि आप लोग भी उद्योग करें और इस ओर ध्यान दें तो आप न वही काम कर सकें जो उन्होंने किया है; वरंच उनसे कहीं बढ़कर आप लोग काम कर

सकते हैं क्योंकि बहुत से ऐसे मंदिर आदि धर्म-स्थान हैं जिनसे बहुत कुछ प्राचीन लिपि द्वारा पता लग सकता है परंतु वे लोग वहाँ तक पहुँच नहीं सकते। दूसरे बहुतेरे लोगों के पास बहुत सी वस्तुएँ प्राचीन इतिहास से संबंध रखनेवाली हैं परंतु वे इन लोगों को सरकारी आदमी समझकर छिपाते हैं और किसी प्रकार से प्रगट नहीं करते। तीसरे जिन बातों को वे लोग विदेशी होने के कारण जान और समझ नहीं सकते उन्हें आप सहज में समझ सकते हैं। चौथे बहुत सी प्राचीन कहानियाँ ऐसी प्रसिद्ध हैं जिनसे इतिहासों से बहुत कुछ संबंध है और उन्हें प्राचीन स्त्री पुरुष प्रायः कहा करते हैं। उन्हें जैसे सहज में आप संग्रह कर सकते हैं और उनका मर्म समझ सकते हैं वैसा वे नहीं कर सकते। पाँचवें बहुत सी बातें आप अपनी रीति रसम चाल व्यवहार से प्राचीन कहावत तथा लेखों से मिलान कर समझ सकते हैं उन्हें वे लोग कदापि नहीं समझ सकते। निदान ऐसी बहुत कुछ सुगमता है जिनके द्वारा वे जिन बातों को बहुत कठिनाई से भी नहीं जान सकते उन्हें आप सहज में संग्रह कर सकते हैं, तनिक इधर ध्यान देने मात्र का काम है।

बड़े हर्ष की बात है कि इन दिनों बहुत से महाशयों को हिंदी के समाचारपत्रों में लेख लिखने और ग्रंथ-रचना करने का उत्साह हुआ है। यदि ये लोग इस ओर ध्यान दें तो बहुत कुछ उपकार हो सकता है और उनके उद्योग को भी सफलता प्राप्त हो सकती है। उन्हें चाहिए कि व्यर्थ के बहुत से लेख न लिखकर अपने गाँव, नगर, महल्ले आदि का इतिहास, अपने यहाँ के प्रसिद्ध लोगों की जीवनी, अपने यहाँ की प्राचीन इमारतों का इतिवृत्त तथा लेख आदि को संग्रह करें, उनकी खोज करें उनसे प्राचीन बातों के पता लगाने का उद्योग करें। कहीं किसी काम से विदेश जायँ तो वहाँ भी इन बातों

का ध्यान रखें तो देखेंगे कि वे इस रीति पर कितना कुछ पता ऐतिहासिक घटनाओं का लगा सकते हैं और इसके द्वारा उनकी कीर्ति कैसी अक्षय हो जाती है।

अब मैं उन रीतियों का उल्लेख करता हूँ जिनके द्वारा युरोपीय विद्वानों ने पता लगाया है और वे अनुसंधान करते हैं।

(१) गवर्नमेंट के एक सेक्रेटरी इलियट साहब थे। वे बड़े भारी पुरातत्त्ववेत्ता थे। उन्होंने बहुत से ऐतिहासिक ग्रंथ इकट्ठे किए थे। उनकी मातहती में राजा शिवप्रसाद काम करते थे। राजा साहब उक्त साहब के संग्रह की यह रीति बतलाते थे कि वे एक ऐतिहासिक प्राचीन ग्रंथ उठा लेते और उसे आद्योपांत पढ़ जाते। उससे जो कुछ उपयोगी बातें मिलतीं उनको लेने के अतिरिक्त उस ग्रंथ में जिन ग्रंथों का कुछ वर्णन पाते उनकी एक सूची बनाते और फिर उन ग्रंथों की खोज करते। अब उन ग्रंथों से फिर और ग्रंथों के नाम निकालते और योंही करते करते उन्होंने केवल ऐतिहासिक कई सौ ग्रंथ इकट्ठे किए, जो कि इस समय विलायत में सर्कारी पुस्तकालय में हैं और सैकड़ों ही ऐसे ग्रंथों के नामों का पता लगाया जो कि वह खोज करने पर न पा सके।

(२) जो विदेशी यात्री लोग हिंदुस्तान में आए थे उनके भ्रमण-वृत्तांत से, जिनमें हुएन्त्संग चीनी यात्री मुख्य था।

(३) यहाँ की चाल थी कि प्रायः ग्रंथकर्ता अपने कुल तथा अपने आश्रयदाता का (जो कि प्रायः राजा ही हुआ करते थे) तथा समय के राजा का वृत्तांत लिखते थे और ग्रंथ बनने का समय देते थे।

(४) यहाँ के किसी किसी राजा ने जो दूर देशों में जाकर विजय की थी उनका उस देश के इतिहास से पता लगाते हैं।

(५) प्राचीन ताम्रपत्र तथा पत्थर पर खुदी प्रशस्तियों तथा दानपत्रों से बहुत ही अधिक काम लिया गया है। इन पत्थरों पर प्राचीन समय के प्रचलित बहुत प्रकार के अक्षर खुदे मिलते हैं। इन लोगों ने एक को दूसरे से मिलाकर उन अक्षरों की वर्णमाला बना ली और तब सहज में उन्हें पढ़ लिया। अक्षरों का परिवर्तन क्रमशः हुआ है इस विषय का एक उत्तम ग्रंथ उदयपुर से "प्राचीन लिपिमाला" नामक पंडित गौरीशंकरजी ने प्रकाशित किया है। इन लेखों में समय और वंशावली आदि बहुत ठीक ठीक दिए हुए मिलते हैं।

राजा की प्रशंसा में अत्युक्ति चाहे जितनी की जाय, ऐसे लेख प्रायः तालाब, मंदिर, सीढ़ी आदि में लगे या कीर्तिस्तंभों पर खुदे, मिलते हैं। जो ये लेख स्पष्ट उस समय पढ़े नहीं जाते तो उसे ज्यों का त्यों एक कागज पर छाप लेते हैं और फिर उसे लाकर और विद्वानों की सहायता से पढ़ते हैं। इसके छापने का सुगम उपाय यह है।

प्रथम लिपि को अच्छे प्रकार से पानी से धोकर और कपड़े से रगड़कर साफ कर ले जिसमें मिट्टी आदि जो उसमें भरी है निकल जाय। पश्चात् एक काग़ज़ के उतने ही बड़े टुकड़े को, जो लिपि के समान हो, पानी में भिगोकर उस लिपि पर लगा दे। ऐसा करने से वह कागज गीला होने से उस पर चिपक जायगा। पश्चात् धीरे धीरे एक नर्म बालों के बुर्श से इस कागज को ठोंकना चाहिए जिसमें खुदे हुए अक्षरों के भीतर कागज समा जाय। इस क्रिया के उपरांत लकड़ी के एक डैबर को, जिसके एक ओर चार अंगुल चौड़ी काठ की एक तख्ती जड़ी हो और उस पर रुई की एक गद्दी लगी हो, उसे काँच के टुकड़े पर जिस पर गोंद मिला हुआ काजल रखा है थोड़ा गीला करके रगड़े और पुनः लिपि पर चढ़े हुए कागज पर

इस डैबर से स्याही चढ़ावे। ऐसा करने से कागज का बाह्य भाग काला हो जावेगा और लिपि के अक्षर श्वेत इस पर छप आवेंगे।

(६) प्राचीन सिक्कों से।

(७) प्राचीन मूर्तियों से।

(८) प्राचीन इमारतों तथा मंदिरों की बनावट से।

(९) ग्राम्य गीतों के संग्रह और फिर उनके ऐतिहासिक घटनाओं के मिलान से।

(१०) वृद्ध लोगों से प्राचीन जनश्रुतियों तथा कहानियों के संग्रह और उनके ऐतिहासिक घटनाओं के मिलान से।

(११) ग्राम, महल्ला, नगर के नाम और उनके कारण के अनुसंधान से।

(१२) प्रसिद्ध लोगों के जीवनवृत्तांत को लोगों से पूछ पूछकर उनसे ऐतिहासिक घटनाओं के मिलान से।

(१३) नाटक, काव्य, आदि ग्रंथों से चाल व्यवहार आदि का पता लगाकर समयनिर्णय तथा और भी ऐतिहासिक बातों का पता।

(१४) राजाओं के पत्रादि तथा सम्मानपत्रादि से।

(१५) भाट चारनादिक की प्राचीन कविता और वंशावली-वर्णन से।

(१६) वेद, पुराणादि में लिखे इतिहास और कथाओं से तथा फारसी के इतिहासों या इनशाओं (अर्थात् पत्रव्यवहार के ग्रंथ) और हिंदी आदि देशी भाषाओं के ग्रंथों से।

आप लोग निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखेंगे तो आशा है कि बहुत कुछ ऐतिहासिक अनुसंधान कर सकेंगे।

(१) जिस ग्राम या नगर में आप रहते हों या जाने का संयोग पड़े उसका नाम क्यों वह पड़ा, जिस व्यक्ति के नाम से

उसका नाम पड़ा हो वह कौन था और कब हुआ आदि जो पता लगे, लिख लीजिए।

(२) जिस देवस्थान में या प्राचीन इमारत में जाइए यदि वहाँ कोई पत्थर खुदा हुआ मिले, ईंटों पर कुछ लिखा मिले, उसकी नकल कर लीजिए। यदि वह ऐसी भाषा में हो जिसे आप न पढ़े हों या उसके अक्षर ऐसे हों कि न पढ़े जाते हों तो ऊपर लिखी रीति से उनको छाप लीजिए और आपको कोई पढ़नेवाला न मिले तो कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी के सेक्रेटरी के पास यह लिखकर भेज दीजिए कि आपने कहाँ और कैसे पाया। तालाब कुओं आदि में भी देखिए।

(३) जहाँ कहीं तीर्थस्थान में जाइए वहाँ के पंडों के प्राचीन लेखों को देखिए और जो आपको कुछ मतलब के जान पड़ें उनकी नकल कर लीजिए। इससे बहुत से प्राचीन ऐतिहासिक लोगों की वंशावली मिलेगी।

(४) पुराने पैसे, रुपए, अशर्फी जो मिले संग्रह कीजिए उनको पढ़िए पढ़ाइए और प्रकाशित कीजिए या एशियाटिक सोसाइटी को भेज दीजिए।

(५) अपने कुल तथा जाति की अल्लों को तथा गोत्रों को प्रकाशित कीजिए, इतिहास जो मिले लिखिए, जाति में जो प्रसिद्ध लोग हुए हों उनका वृत्तांत समयादि लिखिए, जन्म से मरण पर्य्यंत की रसमों को लिखिए, जाति के गीत जो हों लिखिए।

(६) गँवारों के बहुतेरे गीत ऐसे हैं जो ऐतिहासिक घटनाओं से संबंध रखते हैं या किसी वीर या दानी आदि की प्रशंसा में होते हैं। उनको संग्रह कीजिए : उनके विषय में और जो पता लगे लिखिए।

(७) बूढ़े बूढ़े लोगों से जो कोई पुराने इतिहास, कहानी सुनिए उन्हें यह समझकर छोड़ न दीजिए कि अप्रामाणिक हैं, उनको

लिखिए और पीछे उन्हें इतिहासों से मिलाइए। बहुत सी सच्ची घटनाओं का पता लगेगा।

(८) पुराने दस्तावेज या चिट्ठी या किबाला जो कुछ मिले देखिए उनमें बहुत कुछ मतलब की बातें मिलेंगी, काजी की मुहर आदि भी देखिए।

(९) प्राचीन ग्रंथ जो हाथ आवें उन्हें संग्रह कीजिए, पढ़िए, जो कुछ मतलब की बातें हों सुन लीजिए। इस विषय में समयांतर में हम एक अलग लेख लिखेंगे। इनसे ग्रंथकर्त्ता आदि का बहुत कुछ पता लगेगा।

(१०) जहाँ कहीं किसी पुराने घर की रद्दी मिले उसे खूब मन लगाकर देखिए। संभव है उन रद्दियों में कोई ऐसी चीज मिल जाय जो इतिहासवेत्ताओं को बड़ी ही उपयोगी हो। पुरानी कीड़ा खाई हुई पुस्तकें भी बहुमूल्य होती हैं। उन्हें सड़ी या अपूर्ण समझकर उपेक्षा न कीजिए।

(११) जहाँ कहीं किसी वीर (जैसे लहुराबीर, कंकड़हा बीर आदि) पीर, शहीद, गाजी, ब्रह्म, सती, साधु, महात्मा आदि का पता लगे उनका जो कुछ वृत्तांत मिले लिखिए।

(१२) कब्र, समाधि आदि के लेख को ढूँढ़िए।

(१३) कोई पुराना मकान या ढूहा खोदा जाता हो तो बहुत मनोयोगपूर्वक देखिए। संभव है उसमें कोई उपयोगी वस्तु मिले।

विदित रहे कि एक सौ वर्ष के ऊपर के पदार्थ प्राचीन कहलाते हैं। यदि मेरे इस लेख से कोई एक महाशय भी इस ओर ध्यान देंगे तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

[विद्याविनोद १८९७]

जीवन-चरित्र

(१) वीरवर बाप्पा रावल*

ईदर के राजा नागादित्य को मारकर जब भीलों ने फिर अपना राज्य स्वाधीन किया तब बाप्पा केवल तीन वर्ष का बालक था। उसके परिवार में महा कोलाहल मच गया। चारों ओर शत्रु—रक्षा कैसे हो? क्या गहलौत वंश आज नष्ट हो जायगा? बचने

---

* इतिहास एक कैसी उत्तम वस्तु है यह सभी लोग जानते हैं। हमारे यहाँ क्रमपूर्वक इतिहास नहीं है इससे हमारे देश की कैसी कुछ हानि होती है। जो कोई नए इतिहास मिलते भी हैं तो मुसलमानों के समय के, जिन्होंने मुसलमानों की स्तुति और हिंदुओं को गालिप्रदान की कसम खाई है। संप्रति जितने इतिहास प्रचलित हैं उनकी प्रायः यही दशा है। इन्हें पढ़कर सुकुमार-मति बालकों के हृदय में ऐसा संस्कार जम जाता है कि वे अपने को तुच्छ और सदा गुलाम समझने लगते हैं। इन होनहार युवकों ही पर भारत का भावी निर्भर है। इस दशा में उनका यह संस्कार होना कैसे दुःख की बात है! महात्मा टाड ने इस अभाव को दूर करने के लिये बड़ा परिश्रम करके "राजस्थान" बनाया। इसका अनुवाद बँगला इत्यादि कई एक भाषाओं में हुआ, किंतु दुःख का विषय है कि अभागिनी हिंदी में उसका अनुवाद किसी 'माई के लाल' ने न किया जिसमें एतद्देशीय लोग भी अपने पूर्वजों का वृत्तांत जान सकें। यह ग्रंथ इसी उद्देश पर लिखा जाता है। इसमें आर्य्य महात्माओं का जीवनचरित्र लिखा जायगा, जिससे सर्वसाधारण लोग अपना स्वरूप पहिचानें और फिर वैसा होने का उद्योग करें। इसमें मुख्य सहायता महात्मा टाड के राजस्थान से और पूज्यपाद भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के उदयपुरोदय से मिली है, इससे ये महात्मा धन्यवादार्ह हैं।

किंतु क्या इससे हमारे पाठकों को आत्मज्ञान के सिवाय और कोई लाभ न होगा? क्या वे इससे नीति न सीख सकेंगे? क्या केवल गिरधर की कुंडलिया, चाणक्य-नीति और हितोपदेश ही से नीति-शिक्षा प्राप्त हो सकती

की कोई आशा न थी, चारों ओर लोहू के प्यासे भील ही भील दिखाई पड़ते थे; किंतु ईश्वर निस्सहाय बालक का सहाय था, उसने उसकी रक्षा की। जिस कमलावती ने इनके मूल पुरुष गोह की रक्षा की थी उसी के वंश के लोगों ने इसकी रक्षा पर भी कमर बाँधी। चाहे कुछ हो, वे बाप्पा की रक्षा अवश्य ही करेंगे। जीते जी बाप्पा की रक्षा जैसे हो करेंहीगे, वे इनके कुल-पुरोहित थे। अपनी जान होमकर बाप्पा को ले सत्यपरायण ब्राह्मण लोग भाँडोर दुर्ग में आए; वहाँ एक यदुवंशी भील ने उन्हें आश्रय दिया, किंतु वहाँ भी संपूर्ण निरापद न जानकर वे पराशर वन में चले गए। उस वन में त्रिकूट नामक पर्वत है। उसके नीचे नगेंद्र (जिसको नागोद कहते हैं) गाँव में वे शिवोपासक शांतिप्रिय ब्राह्मण बाप्पा को लेकर रहने लगे।

बाप्पा की लड़कई की बड़ी विचित्र विचित्र बातें सुनने में आती हैं। बाप्पा उन ब्राह्मणों की गाय चराया करते थे। सूर्यवंशीय महाराज शिलादित्य के वंशज चरवाहों का कार्य करने लगे। बाप्पा की लड़कई के संबंध में भाटों ने बड़ी उत्तम उत्तम रचनाएँ की हैं। शार-

---

है ? मेरी समझ में कभी नहीं। इन जीवनचरित्रों से उनको विशेष शिक्षा मिल सकती है। उनमें केवल मौखिक शिक्षा है या झूठी कहानियों द्वारा शिक्षा दी जाती है; किंतु इसमें सच्चे उदाहरण द्वारा शिक्षा मिलेगी जिसका असर उससे कहीं बढ़कर होगा। इसी नंबर में महात्मा बाप्पा का जीवन पढ़ने से कितनी बड़ी नीति-शिक्षा मिल सकती है। बाप्पा का धैर्य, साहस, शौर्य, बुद्धि, चाल और राज-नियम इत्यादि सभी बातें नीतिपूर्ण और अनुकरणीय हैं। महाराज मानसिंह का धोखा खाना क्या और राजाओं को सतर्क नहीं करता ? बाप्पा के सहचरों का चरित्र कैसा उपदेश देता है ? निदान इन लोगों की प्रत्येक बात नीतिपूर्ण, उपदेशपूर्ण और मनोरंजक है। यदि पाठकगण चाहें तो इनसे अवश्य लाभ उठा सकते हैं। यदि पाठकों की रुचि दिखाई देगी तो यह ग्रंथ शीघ्र ही खंड खंड करके प्रकाशित होगा। सं० १८८२

दीय झूलनोत्सव में राजपुताने में बड़ी तैयारी और धूमधाम होती है। कहते हैं कि नागौद उस समय सोलंकी वंश के किसी राजा के हाथ में था; इस झूलनोत्सव में उनकी लड़की अपनी सखियों और नगर की लड़कियों के साथ खेलने के लिये कुंज वन में आई थी; पर झलुआ डालने के लिये रस्सी न मिलने से वह इधर उधर ढूँढ़ने लगी। उसी समय बाप्पा वहाँ आ गए। लड़कियों ने उनसे रस्सी माँगी; पर बाप्पा ने बाल-चापल्य से तमाशा करने के लिये हँसकर कहा—"तुम लोग जो हमसे विवाह करो तो हम अभी रस्सी ला दें।" भोली भाली आनंदमयी राजपूत बालिकाओं ने इस बात को मान लिया। उसी समय खेल में विवाह हो गया। राजकुमारी और बाप्पा की गाँठ जोड़ी गई और सब लड़कियों ने आपस में हाथ पकड़ एक शृंखलाबद्ध होकर एक बड़े पेड़ की फेरी दी। इसी घटना से बाप्पा के होनहार सौभाग्य का सूत्रपात हुआ। उन लड़कियों के वंशवाले आज तक अपने को बाप्पा के वंश में कहते हैं।

थोड़े दिन पीछे जब राजकुमारी विवाहने योग्य हुई तब राजा एक अच्छा वर ठहराकर ब्याह की तैयारी करने लगे। एक दिन लड़केवाले की ओर के एक सामुद्रिक ब्राह्मण ने राजकुमारी का हाथ देखकर कहा—"इनका विवाह तो हो चुका है"। इस आश्चर्य की बात से राज-भवन में बड़ी हलचल मच गई। यह विवाह किसने किया, कैसे हुआ, क्या हुआ, कब हुआ—यह जानने के लिये गुप्तचर छूटे। बाप्पा को भी यह खबर लगी। उसने सोचा कि तनिक सी बात खुलने से भी हम बड़ी आपत्ति में पड़ेंगे। उसने अपने साथी चरवाहों को सावधान करा दिया; वे लोग उसकी जैसी भक्ति करते थे और उसे जैसा मानते थे उससे बात खुलने की कोई आशंका ही न थी, तिस पर भी बाप्पा ने उन लोगों से बड़ी कड़ी सौगंद ले ली

कि वे रहस्य प्रगट न करें। सौगंद ऐसे ली कि एक छोटा सा कुआँ खोदकर हाथ में एक छोटा पत्थर का टुकड़ा लेकर बड़े गंभीर स्वर से वे बोले—"शपथ करो—सुख में, दुःख में, संपद में, आपद में हमारे साथ रहोगे, हमारी कोई बात मरने पर भी किसी से न कहोगे, हमारे विषय में जो बात जहाँ सुनोगे उसी समय हमसे सब कहोगे। शपथ खाकर कहो, जो ऐसा न करो तो इसी पत्थर के टुकड़े की तरह तुम लोगों के बाप दादा सात पुरुषों का सब पुण्य अँधेरे कुएँ में पड़ेगा।" और हाथ के पत्थर को उस कुएँ में फेंक दिया। साथियों ने एक मत होकर कसम खाई। उन लोगों ने इसके विरुद्ध कभी न किया; किंतु जिस घटना-सूत्र में कम से कम छः सौ राजपूत बालाओं का भाग्य बँधा हुआ था वह कै दिन छिप सकता है? थोड़े दिन में आप ही राजा को सब बात विदित हो गई।

बाप्पा ने यह सब हाल सुना। वह विपदाशंका से पहाड़ के एक ऐसे प्रदेश में रहने लगे जहाँ कोई मनुष्य भी न था। इस निर्जन स्थान में कई बेर इनके पूर्वपुरुषों को आश्रय मिला था। भागने के समय बालीय और देव ये दो भील-कुमार इनके साथ रहे। इन लोगों का जीवन बाप्पा के साथ जड़ित था। जब बाप्पा ने चित्तौर का राज्य लिया तब बालीय ने अपना अँगूठा फाड़कर उसके ताज़े लहू से उन्हें राज-तिलक दिया।

बालीय और देव यद्यपि असभ्य कुल में उत्पन्न हुए थे, किंतु उन लोगों का हृदय जिस पवित्र भाव से भरा हुआ था उसने कितने सुसभ्य मनुष्यों के उज्ज्वल और ज्ञानालोकित हृदय में स्थान पाया है? वे लोग जैसा पवित्र चरित्र संसार में छोड़ गए हैं वैसा चरित्र कितने सुसभ्यों का हुआ है? उन लोगों ने जो प्रतिज्ञा की थी उसको पूरा पूरा निबाहा। उस प्रतिज्ञा के लिये घर छोड़ा, कुटुंब

छोड़ा, अपना सुख छोड़ा, सभी कुछ छोड़ा, कितनी बेर कितना कष्ट सहा, कितनी बेर उपवास किया, कितनी बेर रात दिन जागते रहे और कितने ही असह्य क्लेश सहे; किंतु उन्होंने एक क्षण भी बाप्पा का संग न छोड़ा, एक मुहूर्त भी वे अपनी प्रतिज्ञा न भूले। यदि बाप्पा को ऐसे जीवन-सहचर न मिलते तो उस अज्ञातवास से निकलकर चित्तौर के राज्य-सिंहासन पर उसका बैठना असंभव था। बाप्पा भी अपने भील मित्रों का उपकार कभी न भूलते, अपने को उनके साथ से सुखी और सम्मानित समझते, और कई प्रकार से कृतज्ञता प्रकाशित करते। जिस दिन वीरचूड़ामणि बाप्पा ने अपने भिल्ल बंधु बालीय और देव के हाथ से आनंद हृदय से चित्तौर-राज्य-तिलक ग्रहण किया, उसी दिन से, उसी पवित्र आनंद-मय दिन से, आज तक चित्तौर की राजगद्दी पर जो राणा बैठते हैं उनको इन्हीं के वंशधर तिलक करते हैं और ये लोग उनके हाथ से तिलक पाकर अपने को सम्मानित और गौरवान्वित मानते हैं।

भाट लोग बाप्पा के भागने का वृत्तांत यों लिखते हैं—बाप्पा नागौद में अपने प्रतिपालक ब्राह्मण की गाय चराने लगे। सूर्यवंशीय महाराज शिलादित्य के वंश में होकर भी वे आनंदपूर्वक गाय चराकर दिन बिताने लगे। इन गौओं में एक दुधार गऊ थी; जब वह संझा को चराई से आती तो उसके थन से एक बूँद दूध भी न निकलता! ब्राह्मणों के जी में संदेह हुआ कि बाप्पा इसका दूध पी जाते हैं। वे लोग अत्यंत सतर्कता से बाप्पा पर ध्यान रखने लगे। बाप्पा ने यह जान लिया। वे उन लोगों के इस संदेह से बड़े ही दुखी हुए। किंतु क्या करें? जब तक इसका ठीक कारण जानकर न प्रकाशित कर सकें उतने दिन मन का दुःख मन ही में रखना पड़ा। उन्होंने इस गाय पर विशेष ध्यान रखने का दृढ़

संकल्प किया। दूसरे दिन चराई पर जाकर बाप्पा उस गाय के पीछे पीछे घूमने लगे। गाय एक एकांत पहाड़ की गुफा में घुसी। बाप्पा भी पीछे पीछे चले गए। अकस्मात् एक अद्भुत दृश्य दिखलाई पड़ा। देखा कि गाय एक सघन लता-मंडल के ऊपर अविरल पयोधार अभिसिंचन कर रही है! बाप्पा बड़े ही विस्मित हुए; पास जाकर देखा कि लता-मंडल में एक शिवलिंग स्थापित है और उसी शिवलिंग के ऊपर सुधामय दुग्धधारा गिर रही है! अब बाप्पा ने जाना कि इसी से गाय का दूध क्षय हो जाता है। शिवलिंग के सामने एक बेत के कुंज में ध्यान में मग्न एक योगी बैठे हैं। उस स्थल में बाप्पा के जाने से योगी का ध्यान-भंग हो गया; किंतु दयासागर तपस्वी ने बाप्पा को कुछ भी न कहा। योगी का नाम हारीत था, वे भी इस गाय का दूध पीते थे।

बाप्पा ने हारीत को साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद देकर परिचय पूछा। राजपूत-कुल-तिलक बाप्पा ने, जहाँ तक जानते थे, अकपट भाव से अपना हाल कह सुनाया। उस दिन मुनिवर हारीत से बिदा होकर बाप्पा गाय लेकर घर आए। उस दिन से बाप्पा नित्य योगी के पास आते, उनका पैर धोते, चरणामृत लेते, दूध दुहकर पिलाते और पूजा के फूल चुन लाते। बाप्पा की ऐसी अकपट भक्ति देख महात्मा हारीत चित्त से प्रसन्न हुए और उन्हें बहुत सी नीति-शिक्षा देने लगे। कुछ काल ऐसे ही बीता। मुनिवर धीरे धीरे ऐसे संतुष्ट हुए कि उन्होंने शैव-मंत्र में दीक्षित करके अपने हाथ से बाप्पा के गले में जनेऊ पहिना दिया और उन्हें "एकलिंग के दीवान" की बड़ी भारी उपाधि दी। बाप्पा की अकपट भक्ति और स्नेहपूर्वक शिव-पूजा देखकर भगवती भवानी भी अत्यंत प्रसन्न हुई। उन्हें आशीर्वाद देने के लिये वे स्वयं सिंह पर

चढ़के सामने आई। उन्होंने अपने हाथ से विश्वकर्मा के बनाए हुए शूल, धनुष, तीर, तुनीर, असिचर्म और बड़ी तलवार इत्यादि उत्तमोत्तम शस्त्रों से बाप्पा को अलंकृत किया। ऐसे आदि-देव भगवान् भूतनाथ के मंत्र से दीक्षित और भगवती भवानी के दिए हुए दिव्यास्त्रों से सुसज्जित होकर बाप्पा अत्यंत पराक्रमशाली हो गए। तब उनके गुरु महर्षि हारीत ने शिवलोक में जाने का दृढ़ संकल्प किया। उन्होंने बाप्पा से सब समाचार कहा और स्वर्गारोहण के दिन बड़े तड़के बुलाया; पर बाप्पा गाढ़ी नींद में सो जाने से ठीक समय पर वहाँ न पहुँच सके। वहाँ पहुँचकर बाप्पा ने देखा कि योगीवर हारीत अप्सरावाहित दीप्तिमय रथ पर चढ़कर आकाश में कुछ दूर जा चुके हैं। महर्षि ने अपने प्रिय शिष्य पर अंतिम प्रेम दिखलाने के लिये रथ को रोका और आशीर्वाद लेने के लिये बाप्पा को अपने पास आने को कहा। देखते देखते अकस्मात् बाप्पा का शरीर बीस हाथ बढ़ गया; तिस पर भी वे गुरु के पास न पहुँच सके। तब मुनिवर ने मुँह खोलने को कहा। बाप्पा ने मुँह खोला। हारीत मुनि ने मुँह में निष्ठीवन डाला। किंतु बाप्पा भाग्यदोष से एक अमूल्य वर लाभ न कर सके। घृणा और अवज्ञा प्रकाश करके मुँह नीचे करने से वह पवित्र निष्ठीवन पैर पर गिर पड़ा। यदि बाप्पा घृणा से गुरु के दिए हुए स्नेहोपहार की अवमानना न करते तो अमर हो जाते; किंतु यह न हुआ। अमर तो न हो सके, पर देह सब अस्त्र शस्त्र से अभेद्य हो गई। यह भी उनके लिये कुछ थोड़े सौभाग्य का विषय नहीं था। इधर देखते देखते हारीत थोड़ी देर में आकाशमंडल में अंतर्हित हो गए।

जिस दिन यह घटना हुई उसी दिन से बाप्पा ने मूल मंत्र साधने की प्रतिज्ञा की। उसी दिन से उनका भाग्य चमका।

बाप्पा ने अपनी मा से सुना था कि चित्तौरगढ़ का मौर्य राजा इनका मामा है। इस संबंध के कारण बाप्पा अपने कार्य-साधन में दूने उत्साहित हुए। चरवाही करके जीने से उन्हें घृणा उत्पन्न हुई। थोड़े से साथी लेकर वे लोकालय में आए। बाप्पा ने आज पहले ही पहिल लोकालय देखा। मनुष्यों का वास-स्थान कैसा होता है यह वे आज तक नहीं जानते थे। लोकालय का सौंदर्य देखकर वे और भी उत्साहित और उत्तेजित हुए। जब दिन अच्छे फिरते हैं तो मिट्टी छूने से भी सोना हो जाती है। आज बाप्पा का भाग्य चमका है, जिधर जाते हैं उधर ही मंगल देख पड़ता है। वन से निकलते ही नाहरा मगरा पर्वत के नीचे सुप्रसिद्ध बाबा गोरखनाथ से उनकी भेंट हुई। गोरखनाथ ने इन्हें एक दोरुखी तलवार दी। मंत्र फूककर इस तलवार से मारने से अनायास पहाड़ कटता है। बाप्पा की उन्नति का पथ पहले ही से परिष्कृत था, जो कुछ बाकी था सो आज पूरा हो गया, इस तलवार की पूजा हर बरस राणा लोग करते हैं।

प्रमर की एक शाखा मौर्य वंश है। इस समय ये लोग ही भारतवर्ष में सबसे बड़े राजा थे। बाप्पा जिस समय चित्तौर में गए उस समय मानसिंह नामक मौर्यवंशीय राजा सिंहासन पर थे। महाराज मानसिंह ने अभ्यागत भाँजे को यथोचित आदर से रखा और अपनी सामंत-मंडली में मिलाकर खाने पहिरने के लिये उसे एक अच्छी जागीर दी। उस समय सामंतप्रथा राजपूताने में बहुत प्रचलित थी। राजपूत सामंत लोग बड़ी बड़ी जागीरें भोगते थे और लड़ाई के समय मानसिंह की सहायता के लिये अपनी अपनी सेना लेकर आ जाते थे। पहले ये लोग विशेष भक्तिभाजन थे और वे भी इन्हें स्नेह करते थे; पर जिस दिन से बाप्पा उनके प्रेमपात्र हुए उस दिन से मानसिंह सामंतों का ध्यान कम रखने लगे। उन

लोगों ने समझा कि इसके मूल कारण बाप्पा ही हैं, इससे वे लोग इनके बड़े भारी शत्रु हो गए और उन्होंने सब तरह से इनका अनिष्ट करने की प्रतिज्ञा की।

उसी समय एक विदेशी शत्रु ने चित्तौर पर चढ़ाई की*। महाराज मानसिंह ने अपने सामंतों को लड़ने की आज्ञा दी; पर उन लोगों ने अपनी जागीरों के पट्टे बड़े घमंड से पटककर कहा—"महाराज! अपने प्यारे बाप्पा को लड़ाई में भेजिए।" बाप्पा ने यह सब अपने कान से सुना पर इससे वे तनिक भी साहसहीन न हुए वरंच उन्होंने दूने उत्साह के साथ उस देशबैरी पर अकेले चढ़ाई की। सामंतों ने मारे घमंड के जागीर तो छोड़ दी, पर लोकलाज के डर से लड़ाई में बाप्पा का साथ दिया। वीर-केसरी बाप्पा की तलवार की चोट शत्रु लोग न सह सके, हारकर इधर उधर भाग गए। बाप्पा उसी विजयी वेश से अपने बाप दादा की राजधानी गजनी नगर में चले गए। गजनी उस समय सलीम नामक एक म्लेच्छ राजा के अधिकार में थी। बाप्पा उससे राज्य छीनकर सौर वंशीय एक सामंत को राज्य-सिंहासन पर बिठलाकर चित्तौर फिर आए। कहते हैं कि इसी समय इन्होंने म्लेच्छ सलीम की लड़की से विवाह किया था।

जले कुढ़े सामंत लोग मानसिंह से अत्यंत रुष्ट हो चित्तौर छोड़-कर और कहीं चले गए। राजा इससे बड़े ही दुखी हुए।

* "इतिहास-तिमिरनाशक" में इस विदेशी का वृत्तांत यों लिखा है—"सन् ७११ ई० में किवलीद खलीफा था। मुसलमानों के लश्कर ने बड़ा उपद्रव मचाया। सारा सिंध अपने कब्जे में कर लिया और बहुत राजाओं से कर वसूल किया। उसी लश्कर के सेनापति कासिम का बेटा मुहम्मद तीन बरस बाद फिर हिंदुस्तान पर चढ़ा और गुजरात फतह करके चित्तौर की ओर झुका लेकिन बाप्पा से शिकस्त खाकर उसे भागना पड़ा।"

उन्होंने लौट आने के लिये उनके पास कई बेर दूत भेजा; पर वे लोग किसी तरह न फिरे। क्रोधांध सामंत लोग किसी तरह प्रकृतिस्थ न हुए और उन्होंने विद्वेष भाव न छोड़ा, यहाँ तक कि गुरु का कहना भी न माना। जो दूत मनाने के लिये गया था उससे उन लोगों ने कहा कि "हम लोगों ने उनका निमक खाया है इससे एक बरस कुछ बदला न लेंगे।" वे अपनी नीच दुराकांक्षा सिद्ध करने के लिये एक उपयुक्त अधिनायक खोजने लगे। जिस बाप्पा के कारण उन लोगों की यह दशा हुई, अंत में उसी को उसके अलौकिक शौर्य और गुण-गौरव से लाचार होकर उन लोगों को अपना सरदार करना पड़ा। आहा! राज्य का लोभ कैसा भयानक होता है? धन के लोभ में पड़कर मनुष्य को भले बुरे का ध्यान नहीं रहता। परम उपकारी बंधु का ध्यान नहीं रहता। बाप बेटे का ध्यान नहीं रहता। धर्म का ध्यान नहीं रहता। केवल एक धन का ध्यान रहता है!! बाप्पा की भी वही दशा हुई। जो मानसिंह इनके मामा, जिनके अनुग्रह से इनकी उन्नति का द्वार खुल गया, जो इन्हीं के कारण अपने सामंतों के विद्वेषानल में पड़े, अंत में बाप्पा उनके सब उपकारों को भूलकर पत्थर सा कलेजा करके वीरधर्म को तिलांजलि देकर उन्हें मार उन्हीं सामंतों की सहायता से सिंहासन पर आप बैठ गए!! सिंहासन पर बैठने पर सब लोगों ने एकमत होकर इन्हें "हिंदू सूर्य", "राजगुरु" और "चकवै" (अर्थात् सार्वभौम) की उपाधि दी।

वीरवर बाप्पा अपनी मातृभूमि, लड़के बाले, और घर कुटुंब सब छोड़कर खुरासान चले गए और उसे जीतकर उन्होंने बहुत सी म्लेच्छ स्त्रियों से विवाह किया। इन लोगों के गर्भ से लड़के लड़कियाँ हुईं।

पूरे एक सौ वर्ष की अवस्था में वीर-कुल-तिलक बाप्पा ने मनुष्य-देह छोड़ी। देलवारा के राजा के पास एक पुराना इतिहास है। उसमें लिखा है कि बाप्पा ने इस्पहान, कंधार, काश्मीर, इराक, तूरान और काफ़िस्तान इत्यादि देशों के राजाओं को जीतकर उनकी लड़कियाँ व्याही थीं और अंत में तपस्वी होकर सुमेरु के नीचे अपना शेष जीवन बिताया था। कहते हैं कि वहाँ उन्होंने जीते जी समाधि ली थी। इन म्लेच्छ स्त्रियों से बाप्पा को एक सौ तीस लड़के हुए। वे सब नौशेरा पठान नाम से प्रसिद्ध हैं। इन लोगों ने अपनी अपनी मा के नाम पर एक एक स्वतंत्र वंश चलाया था। बाप्पा की हिंदू स्त्रियों के गर्भ से सब मिला के अट्ठानबे लड़के हुए थे। ये सब "अग्नि-उपासी सूर्यवंशी" नाम से प्रसिद्ध हैं।

भट्ट ग्रंथ में एक और भी विचित्र बात लिखी है। कहते हैं कि बाप्पा के मरने पर उनके हिंदू और म्लेच्छ संतानों में बड़ा झगड़ा उठा। हिंदू लोग उन्हें जलाने को कहते थे और मुसलमान लोग कब्र में गाड़ना चाहते थे। इसका पचड़ा बड़ी देर तक पड़ा रहा, कुछ तै ही न हो; अंत में बाप्पा के शरीर पर का कपड़ा उठाकर देखा गया तो शरीर के बदले श्वेत कमल के फूल मिले! ये फूल वहाँ से निकालकर मानसरोवर में लगाए गए। पारसी वीर नौशेरवाँ का भी यही हाल सुना जाता है।

बाप्पा संवत् ७६९ में जन्मे। जब ये चित्तौर के सिंहासन पर बैठे तब पंद्रह वर्ष के थे। संवत् ७८४ या ७२८ ई० में गद्दी पर बैठे। बाप्पा* का नाम बाष्प और शिलाधीश भी कहीं कहीं पाया जाता है।

---

* बाप्पा दुलार में लड़के को कहते हैं।

(२) श्रीनागरीदासजी का जीवनचरित्र*

पिय प्यारी अनुराग मधु, मत्त मधुप सुखरास।
गुप्त प्रेम अनुभव छके, जयति नागरीदास॥

आज हम उस महानुभाव भगवदंश महात्मा के चरित्र लिखने में प्रवृत्त हुए हैं जिसके गुप्त प्रेमानुभव भाव को स्मरण करते ही सहृदय रसिक मात्र को रोमांच होता है, और जिसे भाषा का जयदेव कहने पर भी हृदय को संतोष नहीं होता। आहा! हमारे प्यारे नागरीदासजी के प्रेम-रंग-रँगे चित्र का जिन महाशयों

---

* मेरी इच्छा बहुत दिनों से श्रीनागरीदासजी का जीवनचरित्र लिखने की थी परंतु ठीक ठीक पता न लगने से न लिख सका। मित्रवर बाबू अमीर-सिंहजी द्वारा कई ग्रंथों के मिलने से वह इच्छा पूरी हुई और एक जीवनी लिखी थी जो कि "नागरीप्रचारिणी सभा" के उत्साही सभ्यों के इच्छानुसार ता० २४ मार्च सन् १८९४ ई० को सभा में पढ़ी गई थी। सभा के अनुरोध से "खड्गविलास यंत्रालय" के स्वामी महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंहजी ने अपने यंत्रालय में उसको छापकर प्रकाशित किया था। परंतु उससे मुझे संतोष न हुआ। मैंने अपने मित्र कुँअर जोधसिंह जी मेहता की कृपा से कृष्णगढ़ के दीवान रावबहादुर श्यामसुंदरलालजी द्वारा कृष्णगढ़ के कवीश्वर जयलालजी से नागरीदासजी के वृत्तांत मँगाए। उसके देखने पर मेरे हृदय में कई संदेह हुए और उनको लिखकर उन सभों के उत्तर मँगाए और तब जीवनी लिखनी आरंभ की। इसी बीच में पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्याजी ने इनकी जीवनी पर एक लेख एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में छपवाया, जिसे देखकर और भी उत्साह बढ़ा और यह जीवनी लिख आप लोगों के सम्मुख उपस्थित करता हूँ, तथा उक्त महाशयों को धन्यवाद देता हूँ।

इसके पहिले संस्करण में भ्रम से महाराज सावंतसिंह के स्थान पर महाराज जसवंतसिंह छप गया था।

ने दर्शन किया होगा उन्हें अनुरागरसमत्त झुके और डबडबाए नेत्रों में अलौकिकता की झलक ने अवश्य मोहित सा कर दिया होगा और महानुभाव भगवदीयों के दर्शन मात्र से अपने चित्त का विलक्षण परिवर्तन होता है इसका अनुभव किया होगा। हम यहाँ उनके हृदय के चित्रस्वरूप इस पद को अपने प्रिय पाठकों को सुनाए बिना आगे नहीं बढ़ सकते—

"गावनि रोवनि मौनहि में ह्वै मौनहि माँझ सराहनि।
रोके ऊर्द्ध उसास मौन मैं यह दुख कठिन निबाहनि॥
बरे बिजाती निकट काठ से लगे रहैं हियदाहनि।
नागर सुख-सागर किन मेटौ यह अब दुख अवगाहनि॥१॥"

नागरीदास नाम के चार महात्मा हुए हैं। सबसे प्रथम श्रीवल्लभ चार्य महाप्रभु के शिष्य आगरा में रहते थे जिनकी कथा "चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता" में है और जिनके विषय में गोस्वामि श्रीहितहरिवंशजी के शिष्य श्रीध्रुवदासजी ने अपने ग्रंथ "भक्त-नामावली" में लिखा है।

"नेही नागरिदास अति, जानत नेह की रीति।
दिन दुलराई लाड़िली, लाल रँगीली प्रीति॥२॥"

ध्रुवदासजी ने संवत् १६८६ में "श्री वृंदावन शतक" और संवत् १७०२ में "रहसि मंजरी" बनाई थी परंतु "भक्तनामावली" में संवत् नहीं लिखा।

इन्हीं बड़े नागरीदासजी के विषय में भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र ने अपने "उत्तरार्द्ध भक्तमाल" में लिखा है।

हिय गुप्त बियोगहि अनुभवत बड़े नागरीदास हे।
बारवधू ढिग बसत सबै कछु पीयो खायो॥
पै छनहूँ हिय सों नहिं सो अनुभव बिसरायो।

सुनतहिं बिट्ठल नाम भक्त मुख श्रवन मझारी ।।
प्रान तज्यो कहि अहो अजौं सुधि तिन्हैं हमारी ।
दरसनही दै हरि भक्त अपराध कुष्ट जन दुख दहे ।।

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य का जन्म संवत् १५३५ में हुआ था अतएव उसी के लगभग इनका भी काल है ।

दूसरे नागरीदासजी श्री स्वामी हरिदासजी की शिष्य-परंपरा में हुए हैं । मिस्टर ग्रौस साहब अपने "मथुरा" नामक ग्रंथ में यह परंपरा यों लिखते हैं—श्री स्वामी हरिदास के शिष्य बिट्ठल-बिपुलजी (जो कि उक्त स्वामी के चाचा थे), उनके बिहारिनिदास और उनके नागरीदासजी । संवत् १५३७ में श्री स्वामीजी लीला में प्राप्त हुए और उनकी गद्दी पर बिट्ठलबिपुलजी बिराजे । यदि २० वर्ष की अवधि महंती की मान ली जाय तो श्रीनागरीदास-जी का समय संवत् १५७७ के लगभग होता है । इनके विषय में ध्रुवदासजी लिखते हैं ।

"नागरि अरु हरिदास मिलि, सेयें नित हरिदास ।
वृंदावन पायो दुहुनि, पूजी मन की आस ।। १ ।।"

स्वामी हरिदासजी के संप्रदायावलंबी
नागरीदासजी की कविता

बाबू गदाधरसिंह के "आर्यभाषा पुस्तकालय" में मुझे एक ग्रंथ प्राचीन हस्त-लिखित मिला, इसमें हरिदासस्वामी तथा इनके संप्रदाय के कई महात्मा कवियों की पूरी बानी का संग्रह है; इसमें नागरीदास जी की बानी का संग्रह भी है, इनके सब मिलाकर लगभग १२८ पद हैं, इन्हीं का वर्णन ध्रुवदासजी ने अपनी "भक्तनामावली" में किया है । इनकी परंपरा यों है—स्वामी हरिदास, उनके विट्ठलविपुल, उनके

विहारिनिदास, उनके नागरीदास, उनके सरसदास (रसिकबिहारी), उनके किशोरीदास (ललितकिशोरी) ।

भक्तमाल में नाभाजी ने इन नागरीदासजी के विषय में यह लिखा है—

''अनन्य नृपति श्री हरिदास कुल भयो धुरंधर धर्मधीर ।
श्री बिहारीदास गुरु कृपा महा वैराग प्रेम हद ।
विपुल सहज अनुराग विलोकत बर बिहार सद ।।
गाई अद्‌भुत केलि झेलि रस रहत मगन मन ।
अरुझी श्याम तमाल बेलि कल कनक सार कन ।।
श्री नागरीदास भीज्यो हियो कुंज बिहारी सर गँभीर ।।''

श्री बल्लभ संप्रदाय तथा हितहरिवंश संप्रदाय वाले नागरीदासजी कविता करते थे या नहीं इसका अब तक मुझे कोई प्रमाण नहीं मिला है केवल ''भक्तनामावली'' तथा ''वार्ता'' आदि में नाम मिलता है।

तीसरे नागरीदासजी श्री गोस्वामी हितहरिवंशजी वा श्री कृष्णचैतन्य महाप्रभु के संप्रदाय में हुए हैं। इनका काल भी १५५० संवत् से १६०० के लगभग समझना चाहिए। इनके विषय में ध्रुवदासजी लिखते हैं—

''रमन दास अद्भुत हुते, करत कबित्त सुढार ।
बात प्रेम की सुनतही, छुटत नैन जलधार ।। १ ।।
बौरो रस मैं फिरै सो, खोजत नेह की बात ।
आछे रस के बचन सुनि, बेगि बिबस ह्वै जात ।। २ ।।
कहा कहौं मृदुल सुभाउ अति, सरस नागरीदास ।
बिहारी बिहारिनि को सुजस, गायो हरषि हुलास ।। ३ ।।

इन दोनों नागरीदासजी के विषय में भारतेंदुजी लिखते हैं।

''श्री बृंदावन के सूरससि, उभय नागरीदास जन।

*निज गुरु श्रीहरिवंश, कृष्णचैतन्य चरनरत ॥
हरि सेवा में सुदृढ़, काम क्रोधादि दोष गत ।
अद्भुत पद बहु किए, दीनजन दै रस पोषे ॥
प्रभु पद रति बिस्तारि भक्त जन मन संतोषे ।
दृढ़ सखी भाव जिय मैं बसत सपनेहुँ नहिं कहुँ और मन ।

चौथे नागरीदासजी हमारे ग्रंथ के नायक महाराज सावंतसिंह कृष्णगढ़ (राजपूताना) नरेश उपनाम श्रीनागरीदासजी हैं। ये महाप्रभु बल्लभाचार्य संप्रदाय के शिष्य थे। इनके विषय में भारतेंदुजी लिखते हैं।

"हरिप्रेममाल रस जाल के नागरिदास सुमेर भे।
बल्लभ पथहिं दृढ़ाइ कृष्णगढ़ राजहिं छोड्यो ॥
धन जन मान कुटुंबहिं बाधक लखि मुख मोड्यो।
केवल अनुभव सिद्ध गुप्त रसचरित बखाने ॥
हिय सँजोग उच्छलित और सपनेहुँ नहिं जाने।
करि कुटी रमन रेती बसत संपति भक्ति कुबेर भे ॥"

भाषा-कवि-चूड़ामणि श्री आनंदघनजी से इनसे बड़ा ही प्रेम था। हमारे यहाँ एक अत्यंत प्राचीन चित्र है जिसमें नागरीदासजी और घनआनंदजी एक साथ बिराजते हैं। घनआनंदजी के विषय में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी "सुजानशतक" की भूमिका में लिखते हैं—

'आनंदघनजी जाति के कायस्थ थे और मुहम्मदशाह के मुंशी थे। गानविद्या और कविता दोनों विषयों में अति कुशल थे और सच्चे प्रेमी थे, अंत समय में घर छोड़कर श्री वृंदावनवास करते थे। नादिरशाह ने जब मथुरा लूटी तो उसी मार काट में ये भी मारे गए।"

"शिवसिंह-सरोज" में इनका समय संवत् १७१५ लिखा है।

---

* यहाँ भ्रम होता है।

आनंदघनजी के विषय में कवीश्वरजी लिखते हैं "सुना जाता है कि जब वृंदावन से महाराज नागरीदासजी और आनंदघनजी कृष्णगढ़ आते थे तब पहले जयपुर आए और श्रीगोविंददेवजी के दर्शनों को गए थे। वहाँ श्रीगोविंददेव जी के सान्निध्य आनंदघनजी ने कीर्तन गाए। उस समय जयपुर महाराजा भी दर्शनों को आए थे सो जयपुर महाराजा ने उनके कीर्तनों की प्रशंसा की। तब आनंदघनजी ने कहा कि तुम प्रशंसा करनेवाले कौन ? हमारे कीर्तनों की प्रशंसा करें तो श्रीगोविंदजी करें। यह कहके वहाँ से बिदा हुए और नागरीदासजी से कहा हम ऐसे देश में आगे नहीं चलेंगे, पीछे हो जायँगे। सो पीछे ही मथुरा चले गए और यह भी सुना है कि मथुरा में कत्लेआम हुई तब इन्होंने कत्ल करनेवालों से कहा कि मेरे तलवार के घाव बहुत थोड़े थोड़े बहुत देर तक दो। इनको ज्यों ज्यों तलवार के घाव लगते गए त्यों त्यों ये व्रजरज में लोटते रहे ऐसे देहत्याग किया।"

नागरीदासजी के विषय में भी प्रसिद्ध है कि वे मथुरा के क़त्ले-आम में कट गए परंतु श्रीवृंदावनवास न छोड़ा परंतु "वनजन-प्रशंसक" ग्रंथ में, जिसे नागरीदासजी ने संवत् १८१९ में बनाया, वे लिखते हैं—

"अष्टादश शत दश जु नव, संवत् माघ सुमास।
वनजनसंसक ग्रंथ यह, कियो नागरीदास॥"

इससे प्रमाणित हुआ कि संवत् १८१९ तक नागरीदासजी वर्तमान थे और संवत् १८१४ [सन् १७५७ ई०] में शाहआलम सानी के समय में अहमद दुर्रानी ने मथुरा में कत्लेआम किया था। इस विषय में कवीश्वर जयलालजी ने मुझे यह लिखा है—

"कत्लेआम होने की खबर यहाँ कृष्णगढ़ रूपनगर में गुप्त आ पहुँची थी, नागरीदासजी के छोटे भाई बहादुरसिंहजी और नागरी-

दासजी के पुत्र सरदारसिंहजी ने इनको अर्जी लिखी थी कि कुटुंब-यात्रा के लिये यहाँ अवश्य पधारें तब इस धोखादई से यहाँ आ गए थे फिर छः महीने रहकर पीछे वृंदावन ही पधार गए।

सं० १८२१ की भादो सुदी ३ को ये वृंदावन ही में परलोक-निवासी हुए। वहाँ उनकी छतरी है जिसमें लेख भी है। वह लेख इस प्रकार है—

"श्रीनाथजी

श्रीराधाकृष्ण गोवर्धनधारी। वृंदावन जमुनातट चारी॥
ललितादिक वल्लभ बिठलेश। मोहन करो कृपा आवेस॥

छप्पय

सावंतसिंह नृप कलि विषैं सत त्रेता सम आचरी।
सुत को दै युवराज आप बृंदावन आए।
रूपनगर पति भक्ति वृंद बहो लाड़ लड़ाए॥
सूरबीर गंभीर रसिक रिझवार अमानी।
संत चरनामृत नेम उदधि लौं गावैं बानी॥
नागरीदास विदित सो कृपा ढार नागर ढरिय।
सावंतसिंह नृप कलि विषै सत त्रेता विध आचरिय॥"

"संवत् १८२१ भादों सुदी ५ को महाराज नागरीदासजी श्री-वृंदावन पाए।"

चारों नागरीदासजी कविता करते थे और ये सब कविताएँ ऐसी मिल जुल गई हैं कि कुछ पता नहीं लगता कि कौन कविता किसकी है। परंतु राजा नागरीदासजी की अलौकिक कविता में कुछ ऐसा माधुर्य और गूढ़ भाव भरा है कि थोड़े ही काल में इसकी झनकार सहृदय मात्र के हृदय में गूँज उठी और हिंदीभाषा के कवियों के मुकुटमणि का स्थान इन्हीं ने पाया।

हमको खेद है "शिवसिंहसरोज" में शिवसिंहजी ने इनका संवत् बहुत ही अशुद्ध लिखा है। उन्होंने संवत् १६४८ लिखा है। यदि कहा जाय कि उन्होंने पहले के नागरीदास में से किसी का वर्णन किया है तो यह इससे अशुद्ध ठहरता है कि निम्नलिखित सवैये, जो "शिवसिंहसरोज" में उक्त कवि की कविता में लिखे गए हैं वे, महाराज सावंतसिंह उपनाम नागरीदासजी के ग्रंथों में पाए जाते हैं और यदि इनके समझे जायँ तो समय ठीक नहीं है, क्योंकि इनका जन्म संवत् १७५६ का है—१०८ वर्ष का अंतर है और इसी विश्वास पर डाक्तर ग्रियर्सन साहब ने* इनके जन्म का समय सन् १५६१ ई० अपने ग्रंथ The Modern Vernacular Literature of Hindustan में दिया है। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्याजी ने अपने लेख Antiquity of the poet Nagari Das† में इनके जन्म का समय ठीक दिया है परंतु शिवसिंह‡ और डाक्तर ग्रिअर्सन के भ्रम को स्पष्ट नहीं दिखलाया है, क्योंकि यदि समय के अनुसार इन्हें छोड़ पहले नागरीदासों में से कोई माने जायँ तो कविता नहीं मिलती और यदि कविता के अनुसार ये माने जायँ तो समय ठीक नहीं।

"भादों की कारी अँध्यारी निसा लखि बादर मंद फुही बरसावै।
श्यामा जू आपनी ऊँची अटा पै छकी रस रीति मलारहि गावै॥
ता समै नागर के दृग दूरि तें चातिक स्वाति की बूँद यों पावै।
पौन मया करि घूँघट टारै दया करि दामिनी दीप दिखावै" ॥१॥

---

* डाक्टर ग्रिअर्सन का The Modern Vernacular Literature of Hindustan नंबर ६५ पृष्ठ ६३८ और नंबर ३३ पृष्ठ १३८ देखो।

† Journal Asiatic Society of Bengal, Vol. LXVI Part 1 No. I—1897 Page 63 देखो।

‡ शिवसिंहसरोज—नं० ११ पृष्ठ १७२ देखो।

"देवन की औ रमापति की दोउ धाम की वेदन कौन बड़ाई।
संखरु चक्र गदा पुनि पद्म सरूप चतुरभुज की. अधिकाई॥
अमृतपान बिमानन बैठिबो नागर के जिय नेक न भाई।
स्वर्ग बैकुंठ में होरी जो नाहिं तौ कोरी कहा लै करै ठकुराई" ॥२॥

"गाँस गँसीलिए बातैं छिपाइए इश्क ना गाइए गाइए होलियाँ।
गेंद बहाने न बीरा चलाइए सूधे गुलाल उड़ाइए झोलियाँ॥
लोग बुरे चतुरे लखि पावैंगे दाबे रहौ दिल प्रीति कलोलियाँ।
पाइ परौं जू डरौ टुक नागर हाइ करौ जिनि बोलियाँ ठोलियाँ" ॥३॥

इन कविताओं में कुछ पाठांतर नागरीदासजी के ग्रंथों से है जिसे पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्याजी ने लिखा है। उसका आशय नीचे प्रकाशित करते हैं।

"हमारे पास इनके ग्रंथों के संग्रह में नंबर ३८ पत्र १६२ में एक अधूरा ग्रंथ "वर्षा के कवित्त" है जिसमें केवल ८ कवित्त हैं। उसका सातवाँ कवित्त यह है। इसमें बड़ा पाठांतर यही है कि शिवसिंह ने जहाँ नागर लिखा है वहाँ इसमें 'मोहन' है—

भादौं की कारी अँध्यारी निसा झुकि बादर मंद फुही बरसावै।
श्यामा जू आपनी ऊँची अटा पै छकी रस रीत मलारहि गावै॥
ता समै मोहन की दृग दूरि तें आतुर सूप (रूप) की भीष यों पावै।
पौन मया करि घूँघट टारे दया करि दामिनि दीप दिखावै॥७॥

उसी संग्रह में नंबर ३५ पत्र १८४ में "होरी के कवित्त" नामक ग्रंथ है जिसमें १६ कवित्त हैं। उसका १६ वाँ कवित्त यह है। इसमें भी बड़ा अंतर यही है कि 'नागर' के स्थान पर 'भावते' लिखा है।

गाँस गसीलिए बातैं छिपाइए इश्क न गाइए गाइए होलियाँ।
गेंद बहाने न बीरा चलाइए सूधे गुलाल चलाइए झोलियाँ॥

लोग बुरे चतुरे लखि पावैंगे दाबे रहो दिल प्रीति कलोलियाँ।
पाय परौं जो डरो ढुव (ढुक)भावते हाय करो मति बोलियाँ ठोलियाँ॥१६॥

उसी संग्रह में नंबर ४१ पत्र २५६ "फाग विहार" नामक ग्रंथ है। उसमें यह सवैया ८ वीं है।

देवन केरु रमापति के दोऊ धाम की देवनि कीनी बड़ाई।
संखरु चक्र गदा अरु पद्म सरूप चतुर्भुज की अधिकाई॥
अमृतपान बिमानन बैठि बोली जेती कही तेती एक न भाई।
स्वर्ग बैकुंठ में होरी जो नाहीं तौ कोरी कहा लै करै ठकुराई॥८॥

कविता में ये नागरि, नागर, नागरीदास और नागरिया नाम रखते थे।

इनका कुल सदा से वीर वैष्णव चला आता है। इनके हृदय में राजकाज में फँसे रहने पर भी सदा उज्ज्वल प्रेमशिखा प्रदीप्त थी और वे श्रीवृंदावन के लिये तरसा करते थे जैसा कि उनके पदों से झलकता है।

"ज्यों ज्यों इत देखियत मूरख विमुख लोग,
त्यों त्यों सुखरासी ब्रजवासी सुधि भावै है।
खारे जल छीलर दुखारे अंधकूप चितै,
कालिंदी के काज महामन ललचावै है॥
जैसी अब बीतत सु कहत न आवै बैन,
नागर न चैन परै प्रान अकुलावै है।
थोहर पलास देखि देखि कै बबूल बुरे,
हाय हरे हरे वे तमाल सुधि आवै है॥"

कृष्णगढ़ राज्य का ७२४ मील मुरब्बा है। सन् १८८१ ई० में इसमें ११२६३३ मनुष्यों की बस्ती थी, जिनमें ५९०९८ पुरुष और ५३५३५ स्त्रियाँ थीं। ये लोग ३ नगर और २१० गांवों में रहते

हैं, और सब २४९२८ घर हैं; जिनमें ९७८४६ हिंदू ८४९२ मुसलमान और ६२९५ जैन रहते थे। इस राज्य में कृष्णगढ़ (राजधानी), रूपनगर और सरवाड़ ये तीन नगर हैं।

इस राज्य को जोधपुर के महाराज उदैसिंह के द्वितीय पुत्र कृष्णसिंह ने, पैतृक अधिकार को छोड़कर, अब जिस देश में कृष्णगढ़ राज्य है उसे विजय किया और डाक्टर ँटर का कहना है कि इन्होंने सन् १५९४ ई० में अकबर से फर्मान हासिल करके वर्तमान कृष्णगढ़ राज्य स्थापित किया। परंतु कृष्णगढ़ के लेख से विदित हुआ कि यह राज्य संवत् १६६८ (सन् १६११ ई०) में स्थापित हुआ, टाड साहब अपने "राजस्थान" में संवत् १६६९ (सन् १६१२ ई०) लिखते हैं। डाक्टर हंटर ने जो सन् १५९४ लिखा है उसका कारण यह विदित होता है कि जोधपुर के महाराज शूरसिंह और कृष्णगढ़-संस्थापक महाराज कृष्णसिंह सहोदर भाई थे, इनके पिता प्रसिद्ध मोटे राजा उदयसिंह ने अपने जीते जी इन्हें (कृष्णसिंह को) अपनी रियासत का आसोप नामक गाँव संवत् १६५१ (सन् १५९४ ई०) में दिया था, परंतु मोटे राजा उदयसिंह के मरने के पीछे शूरसिंहजी ने आसोप को जब्त कर लिया और दूधोड़ नामक दूसरा गाँव दिया, तदनंतर शूरसिंहजी के मंत्री भाटी गोइनदास (गोविंददास) के और कृष्णसिंहजी के अनबन होने से ये दूधोड़ को छोड़कर चले आए, तब संवत् १६५४ सन् (१५९७ ई०) में बादशाह के यहाँ से इन्हें हिंडोण का परगना मिला। यही समय राज्य के स्थापन होने का समझना चाहिए, परंतु संवत् १६६८ (सन् १६११ ई०) में इन्होंने कृष्णगढ़ को अलग बसाया।

कृष्णगढ़ नगर बहुत ही सुंदर गूदोलाव नामक तालाब के किनारे पर बसा है, जिसके बीच में महाराज का बाग मुहकमविलास बना

हुआ है। नगर में श्रीब्रजराजजी का मंदिर है तथा मोहनलालजी, मदनमोहनजी, नरसिंहजी और चिंतामणिजी के मंदिर हैं। कृष्ण-गढ़ से १२ मील पर सलीमाबाद में एक निंबार्क संप्रदाय का मंदिर है जिसमें उस प्रांत के बहुत से हिंदू यात्री दर्शन के लिये आया करते हैं।*

कृष्णगढ़ राज्य की स्थापना के विषय में कृष्णगढ़ दर्बार के कवीश्वर ज़यलालजी ने मेरे प्रश्न के उत्तर में यह लिखा है—

"संवत् १६५४ में जोधपुर से पृथक् राज्य, प्रथम तो 'हिंडोण'† में हुआ और फिर 'सेठोलाव' में, जो कि कृष्णगढ़ से पश्चिम तरफ लगभग २ मील दूरी पर है, हुआ और महाराज श्रीकृष्णसिंहजी ने संवत् १६६८ में कृष्णगढ़ बसाया।"

ये महाराज कृष्णसिंहजी श्रीवल्लभ कुल के अनुयायी वैष्णव थे और तब से बराबर यह कुल उन्हीं का अनुयायी चला आता है। इस विषय के प्रश्नोत्तर में उक्त कवीश्वरजी लिखते हैं—

"यह कृष्णगढ़ की राजधानी नियत करनेवाले जो महाराज कृष्णसिंहजी थे जब ही से वल्लभाचार्यजी के अनुयायी हैं और उनके मस्तक पर दो स्वरूप श्रीनृत्यगोपालजी के विराजते थे, वे दोनों स्वरूप अद्यापि यहाँ विराजते हैं, जिनमें एक स्वरूप श्रीदाऊजी का और दूसरा श्रीकृष्णजी का है, और महाराज श्रीकृष्णसिंहजी नरवर-

---

* Dr. Hunter's Imperial Gazetteer of India Volume VIII Page 223.

† हिंडोण—पहले अच्छा नगर था। महाराष्ट्रों ने उसे नष्ट कर दिया। प्राचीन प्राचीर टूटी फूटी पड़ी है। अब यह जयपुर राज्यांतर्गत है।

Dr. Hunter's Imperial Gazetteer Vol. V, Page 414.

गढ़ के कछवाहा राजा आसकरण जी* जो श्रीवल्लभाचार्यजी के अनुयायी महा वैष्णव थे और जिनका प्रसंग वैष्णवों की वार्ता में है जिनके भानजे थे।"

---

* नरवरगढ़ के कछवाहा राजा आसकरण जी—डाक्टर ग्रिअर्सन लिखते हैं Askaran Das, the Kachhwaha Rajput of Narwargarh, in Gwaliyar Fl. C. 1550 A. D.

Rag. He was son of King Bhim Singh. See Tod II 362 Calc. ch. II 390—The Modern Literature of Hindustan, page 31, No. 71.

यही शिवसिंह भी सरोज में लिखते हैं। (पत्र ६ नं० ३७)

यह गोस्वामि श्रीबिट्ठलनाथजी के शिष्य थे। इनका चरित्र "दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता" में (नं० २०२) जो लिखा है हम उसका संक्षेप यहाँ देते हैं—

इन्हें राग पर बड़ी आसक्ति थी। देश देशांतर के गवैयों का आदर सत्कार करते थे। एक समय तानसेन इनके यहाँ आए और उन्होंने "कुँवर बैठे प्यारी के संग अंग अंग भरे रंग बलि बलि बलि त्रिभंग युवतिन मन भाई" गाया। राजा प्रेम से मत्त हो मूर्च्छित हो गए। चैतन्य होने पर पूछा, यह किसका पद है? तानसेन ने बताया, गोकुल के गोसाईं बिट्ठलनाथजी के शिष्य गोबिंद स्वामी का। राजा तानसेन को दो सहस्र रुपया देने लगे पर उन्होंने नहीं लिया। कहा, "मैं रुपए का भूखा नहीं, गुण-ग्राहक ढूढ़ता हूँ सो जैसा सुना था वैसा पाया"। तानसेन को संग ले राजा गोकुल आए और श्रीगोसाईंजी के सेवक हुए। श्रीगुसाईंजी की आज्ञा से गोविंद स्वामीजी ने रमणरेती पर लिवा जाकर राजा को सेवा की रीति तथा कीर्तन आदि सिखाए। तदनंतर राजा श्रीगुसाईंजी की आज्ञा ले और श्रीमदनमोहनजी ठाकुर को सेवा के लिये पधरा अपने देश आए। एक समय दक्षिण देश का कोई राजा इन पर चढ़ आया। इन्होंने सेवा में विघ्न न पड़े इसलिये विचार किया कि राज्य इसे सौंप आप गोकुल चल बसें, परंतु स्वप्न में आज्ञा हुई कि मानसी सेवा कर और शत्रु से लड़। उन्होंने ऐसा ही किया और प्रभु की कृपा से जयी हुए। एक दिन जाड़े की ऋतु में राजा चार घड़ी के तड़के सेवा में नहाए। वहाँ चार चोर छिपे थे। उन सभों ने राजा को

महाराज रूपसिंहजी ने 'रूपनगर' बसाया और उसे राजधानी बनाया। इस विषय में उक्त कवीश्वरजी लिखते हैं—

"संवत् १६६८ में महाराज श्रीकृष्णसिंहजी ने कृष्णगढ़ बसाया और राजधानी नियत की। फिर संवत् १७०० में महाराज श्रीरूपसिंह जी ने रूपनगर को राजधानी का मुख्य स्थान नियत किया था। जब से वहीं रहते थे। फिर महाराज नागरीदासजी के एक पीढ़ी पीछे अर्थात् संवत् १८२३ के पीछे कृष्णगढ़ ही को पीछा राजधानी का मुख्य स्थान नियत किया सो अद्यापि है। और उक्त महाराज को कृष्णगढ़ाधिपति इस कारण से लिखते हैं कि अब प्रसिद्ध राजधानी का स्थान कृष्णगढ़ ही है नहीं तब ये तो रूपनगर* के ही राजा थे।"

तीर मारा जो पीठ को छेद बाहर निकल गया। भितरियों ने पट्टी बाँध दी, परंतु राजा सेवा में ऐसा देहाध्यास भूल गए थे कि कुछ खबर ही न हुई। जब सेवा से निकले, पट्टी बँधी देखी। लोगों ने सब वृत्त कहा। राजा ने सोचा कि सब अनर्थ का मूल धन है, राज अपने भतीजे को दे ठाकुरजी का वैभव श्रीगुसाईंजी के यहाँ भेज, एक झाँपी में श्रीठाकुरजी को केवल गुंजा मोरपंख धरा अपने साथ ले श्रीगोकुल चले आए, और विरक्त भाव से रहने और लीला का अनुभव करने लगे।

यह वार्ता श्रीगोस्वामी गोकुलनाथजी की बनाई बताते हैं जिनका जन्म संवत् १६०८ मि० माघ सु० ७ का है।

* इसी रूपनगर की राजकुमारी के रूप की प्रशंसा सुन औरंगजेब ने राजकुमारी से विवाह करने का पैगाम भेजा। एक फ़ौज दो हजार सवारों की रूपनगर भेज दी कि यदि यों न माने तो बलपूर्वक ले आओ। बेचारे राजा की क्या सामर्थ्य थी जो इस घृणित इच्छा को रोक सकता, परंतु राजकुमारी के हृदय को राणा राजसिंह के गुणों ने ऐसा मोहित कर लिया था कि उसने अपने पुरोहित के द्वारा राणा के पास संदेसा भेजा "कि क्या

नागरीदासजी किन वल्लभकुल गोस्वामी के शिष्य थे इसके उत्तर में उक्त कविराजाजी लिखते हैं—

"महाराज श्रीकृष्णसिंहजी के पौत्र रूपसिंहजी थे। वे श्रीवल्लभाचार्यजी* के पुत्र बिट्ठलनाथजी† जिनके पुत्र टीकैत (बड़े) श्रीगिरि-

---

आपके रहते मैं राजपूतानी, जिसके शरीर में शुद्ध राजपूत रक्त प्रवाहित है, उस बंदरमुँहे म्लेच्छ की स्त्री हूँगी? यदि आप रक्षा न करेंगे तो मैं आत्मघात करूँगी।" राणा तुरंत रूपनगर के मार्ग में आ पहुँचे और बादशाही फौज को मार कुमारी को ले गए। राणा राजसिंह संवत् १७१० में राज्यगद्दी पर बैठे थे।

यह कथा "टाड राजस्थान" के अनुसार है। इसके विषय में कृष्णगढ़ से कवीश्वर जयलालजी लिखते हैं कि "औरंगजेब ने न तो फौज भेजी थी और न पैगाम भेजा था। इसका प्रसंग तो ऐसे है कि दाराशिकोह और औरंगजेब से धौलपुर में झगड़ा हुआ था तब किशनगढ़ के राजा रूपसिंहजी दाराशिकोह की तरफ से काम आए थे। तब औरंगजेब ने कृष्णगढ़ के राज्य का मंसब तगीरी में नाम दर्ज किया था। तब यहाँ रूपसिंहजी के पुत्र मानसिंहजी केवल ३ वर्ष के थे सो वकील ने वहाँ जाकर औरंगजेब के शाहजादह मोअज्जम को इस राजकुमारी का व्याहा जाना स्वीकार किया था फिर शाहजादह को तो नहीं ब्याही और उदयपुर के महाराणा राजसिंहजी से गुप्त व्याह कर दिया और शाहजादह को फिर राजकुमारी सिवाय किसी दूसरी कन्या व्याह दी थी।"

इस घटना को लेकर बंगभाषा में बंकिम बाबू ने "राजसिंह" उपन्यास बनाया है और उसका अनुवाद भाषा में पूज्य भारतेंदुजी तथा प्राणोपम मित्र पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने किया है। दोनों अनुवाद "खड्गविलास प्रेस" बाँकीपुर में छपे हैं। देखने योग्य हैं।

* श्रीवल्लभाचार्य—जन्म संवत् १५३५ मि० चैत्र कृष्ण ११।

† श्रीबिट्ठलनाथजी—जन्म संवत् १५७२ मि० पौष कृष्ण ९।

धरजी* थे जिनके तृतीय पुत्र दीक्षितजी श्रीगोपीनाथजी† थे जिनके शिष्य हुए थे उन्हीं के पास ब्रह्म संबंध भी लिया था और श्रीकल्याण-रायजी का स्वरूप दीक्षितजी श्रीगोपीनाथजी ने इन (रूपसिंहजी) के मस्तक पर पधराया था। वह स्वरूप अद्यापि यहाँ विराजता है। और इन्हीं रूपसिंहजी ने श्रीवल्लभाचार्यजी के उस चित्र को, जो बादशाह अकबर ने बनवाया था, बादशाह शाहजहाँ से माँग के ले लिया था। वह चित्र अद्यापि यहाँ है और श्रीकल्याणरायजी के समीप सेवा में बिराजता है। पूर्वोक्त श्रीनृत्यगोपालजी के दो स्वरूप थे जिनमें एक स्वरूप बड़ा श्रीदाऊजी का सो तो श्री-कल्याणरायजी की गोद में ही विराजता है और दूसरा छोटा स्वरूप श्रीकृष्णजी का सो वर्तमान महाराजाधिराज महाराज श्रीशार्दूलसिंह-जी बहादुर जी० सी० आई० ई० के अनुज महाराज दीक्षितजी श्रीजवानसिंहजी के मस्तक पर विराजता है।"

"जो कि महाराज श्रीरूपसिंहजी के गुरु गोस्वामी दीक्षितजी श्रीगोपीनाथजी थे जिनके प्रपौत्र गोस्वामी श्रीरणछोड़जी‡ नागरीदास जी के गुरु थे। इनका स्थान कोटे में श्री बड़े मथुरेशजी का है और श्रीरूपसिंहजी से लेकर अब तक उसी स्थान के शिष्य होते हैं और उनका मंदिर कृष्णगढ़ में भी श्रीमदनमोहनजी का है जिनके भेंट यहाँ की तरफ से ग्राम भी हैं और लगान सहित दस सहस्र के लग-भग की जीविका है।"

कृष्णगढ़ राज्यवंश का वंशवृक्ष इस प्रकार है—

---

* श्रीगिरिधरजी टीकैत—जन्म सं० १५९७ मि० कार्तिक कृष्ण १२।

† श्रीगोपीनाथजी—जन्म संवत् १६३४ पौष कृष्ण ४।

‡ गोस्वामी श्रीरणछोड़जी—जन्म संवत् १७७८ पौष कृष्ण ५।

महाराज कृष्णसिंह

- सहसमल
  - जगमाल (गोद आए)
    - हरिसिंह (गोद आए)
      - रूपसिंह (गोद आए)
        - मानसिंह
          - राजसिंह
- जगमाल (ये भाई की गोद बैठे)
- भारमल
  - रूपसिंह (ये चचा हरिसिंह की गोद बैठे)
- हरिसिंह (भाई जगमाल की गोद बैठे)

राजसिंह

- सुखसिंह
- फतहसिंह
- सावंतसिंह (नागरीदास)
  - सरदारसिंह
    - विरदसिंह (गोद आए)
      - प्रतापसिंह
        - कल्याणसिंह
          - मोहकमसिंह
            - पृथ्वीसिंह
  - विरदसिंह (ये सरदारसिंहजी की गोद बैठे)
- बहादुरसिंह
  - वाघसिंह
- वीरसिंह

पृथ्वीसिंह

- महाराजा शार्दूलसिंह जी० सी० आई० ई० (वर्तमान)
  - महाराजकुमार मदनसिंह
- जवानसिंहजी
  - महाराजकुमार यज्ञनारायणसिंह
- रघुनाथसिंहजी

नागरीदासजी के सेव्य ठाकुर के विषय में उक्त कवीश्वरजी लिखते हैं—

"नागरीदासजी स्वयं पूर्वोक्त श्रीकल्याणरायजी की सेवा में उपस्थित रहते थे और परदेश जाते तब श्रीनृत्यगोपालजी का स्वरूप साथ में रखते थे। वृंदाबन में रहे तब भी श्रीनृत्यगोपालजी की ही सेवा की।"

नागरीदासजी का जन्म संवत् १७५६ पौष कृष्ण १२ को हुआ। इनके पिता का नाम महाराज श्रीराजसिंह था। इनका विवाह भानगढ़ नामक नगर के राजा राजावत (राजावत कछवाहों की एक शाखा है) यशवंतसिंहजी की कन्या से संवत् १७७७ की ज्येष्ठ सुदी ९ को हुआ था। इन्हें ४ संतति हुईं। प्रथम पुत्र, जिनका जन्म संवत् १७८३ में हुआ था बाल्यावस्था ही में परलोकगामी हुए। दूसरे कुमार सरदारसिंहजी, जिनका जन्म संवत् १७८७ के भाद्रपद शुक्ल २ को हुआ था, यही इनके उत्तराधिकारी हुए। पहली कन्या किशोर कुँवरिजी का विवाह बूँदी के हाड़ा दीपसिंहजी से हुआ था और दूसरी का नाम गोपाल कुँवरिजी था। इनका संबंध जयपुर के महाराज श्री माधोसिंहजी से निश्चय हुआ था, परंतु परम वज्र-हृदय विधाता से यह सुखमय संबंध न देखा गया, उक्त महाराज विवाह के पहले ही सुरधामगामी हुए। इनके भ्राता महाराज सरदारसिंहजी ने इनका विवाह किसी दूसरी जगह करने का उद्योग किया, परंतु जिस सती रमणी-रत्न के शरीर में परम भगवदीय महानुभाव नागरीदासजी का पवित्र रक्त संचालित होता था, जिसने पवित्र कुल की शोभा बढ़ाई थी, वह क्या कभी सांसारिक सुखों के लोभ में फँसकर अपने परम पवित्र सतीत्व धर्म को तिलांजलि दे सकती थी? प्रातःस्मरणीया गोपालकुँवरिजी ने दृढ़तापूर्वक दूसरा संबंध अस्वीकार किया और कहा जो होना था हो चुका, क्या एक शरीर दो

पति को अर्पण हो सकता है ? और संसार के सुखों से मुख मोड़ भगवत् चरणारविंद में मन लगाया, अपने सिर पर एक स्वरूप श्री-ठाकुरजी का पधराया जिनका नाम श्रीरामलालाजी रखा और इन्हीं के प्रेम में मगन रहकर अपने इस क्षणस्थायी जीवन को परम-संतोषपूर्वक व्यतीत किया। धन्य राजपूत-कुल-कमलिनी ! धन्य सतीत्व-मानसंवर्धिनि !! धन्य नागरीदास-यशोविस्तारिनि !!! धन्य !!! आजकल की कुल-बालाओं को इनका उदाहरण लेना चाहिए, उन्हें हृदय की आँखों से देखना चाहिए कि सती साध्वी पतिव्रताओं के लिये पति कैसा आदरणीय देवता है, उन्हें चाहिए कि गोपालकुँवरि के आदर्शमय चरित्र को रात्रि दिवस अपने गले का हार बनावें। कहाँ हैं गोपाल कुँवरि और कहाँ गए महाराज नागरीदास ? परंतु यह उनका उज्ज्वल चरित्र आज तक यश फैला रहा है और अनंत काल तक ऐसे ही महानुभावों के चरित्र भारतवर्ष तथा क्षत्रिय कुल का गौरव सारे संसार में स्थित रखेंगे। कहिए संसार में कितने ही इनके ऐसे तथा इनसे बढ़कर लोग जन्मे और काल के कराल गाल में विलीयमान हुए परंतु किसका नाम कौन लेता है ? किसका चिह्न पृथ्वी पर वर्तमान है ? परंतु हाँ—

कीर्तिर्यस्य स जीवति

महाराज सावंतसिंह संस्कृत, फारसी अच्छी पढ़े थे; भाषा पिंगल और डिंगल के तो पंडित ही थे; राग, चित्र और शस्त्र-विद्या में परम प्रवीण थे। एक दिन जब कि ये श्रीवृंदावन से घर आए थे, इनके भ्रातुष्पुत्र कुमार बिरदसिंहजी ने कहा कि "मैंने सुना है कि आप शिकार अच्छा खेलते हैं, मुझे भी दिखाइए"। आपने उत्तर दिया कि "अब मुझे शिकार से क्या प्रयोजन, परंतु तुम कहते हो तो दिखाऊँगा।" एक हिरन के पीछे आपने घोड़ा डाला और थोड़ी दूर

जाते जाते ही उसके सींग में अपनी कुबड़ी को लगाकर उसे रोक रखा। चित्र-कला में ऐसे निपुण थे कि प्रिया-प्रीतम के कई एक भाव नए ढंग से चित्रित किए थे। काव्य-कला परिचय तो उनके काव्यों ही से मिलता है।

ये परम शूर वीर थे और बचपन ही से परम निर्भय थे। संवत् १७६६ में, जब कि ये केवल १० ही वर्ष के थे, एक दिन दिल्ली में राज्यदर्बार से लौटते समय एक मस्त हाथी, जो कि महावतों के काबू से बाहर था, इन पर टूटा। महावत लोग लाख पुकारते रहे इधर मत आओ, भागो, परंतु वीर बालक ने पीठ देना सीखा ही न था। इन्होंने हाथी से मुठभेड़ होते ही एक हाथ तलवार का ऐसा मारा कि वह चुपचाप दुम दबाकर पीछे भागा और आप अपने घर आए। उस समय का चित्र कृष्णगढ़ दर्बार में है।

संवत् १७६९ में, जब कि इनकी अवस्था केवल १३ वर्ष की थी, इन्होंने अकेले ही बूँदी के हाड़ा जैतसिंह को मारा था जिसमें इन्हें कुछ घाव भी लगे थे।

इसी संवत् में दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह मरे और गद्दी के लिये जहाँदारशाह और फर्रुखसियर से लड़ाई हुई और फर्रुखसियर ने विजयी होकर दिल्ली के तख्त पर अधिकार किया। इस लड़ाई का वर्णन श्रीधर कवि ने बहुत सुंदर लिखा है। यह श्रीधर कवि, जिसका नाम मुरलीधर भी था, प्रयाग का रहनेवाला था। इसने इसी "जंगनामा" में लिखा है--

"श्रीधर मुरलीधर उरुफ, द्विजवर बसत प्रयाग।
रुचिर कथा यह शाहि की बढ़यो कथन अनुराग॥

यह श्रृंगार और वीर रस दोनों ही की कविता सुंदर करता था। इसने उस समय के अमीर उमराओं का बहुत कुछ गुणानुवाद किया है और पारितोषिक पाया है। जिसने कुछ दिया नहीं है उसकी इसने ऐसी हजो की है कि अश्लीलता के कारण वह कविता प्रकाशित करने योग्य नहीं है।

शिवसिंह ने अपने ग्रंथ में चार श्रीधर लिखे हैं जिनमें से एक का नाम राजा सुब्बासिंह चौहान था जो ओयल जिला खीरी के रहनेवाले थे। इनका समय संवत् १८७४ दिया है। इन्होंने "विद्वन्मोदतरंगिनी" नामक साहित्य-ग्रंथ बनाया। दूसरे श्रीधर राजपुतानावाले हैं। इनका समय १६८० दिया है। इन्होंने "भवानी छंद" नाम एक दुर्गा की कथा का ग्रंथ बनाया है। शेष दोनों श्रीधर निश्चय एक ही हैं क्योंकि दोनों की कविता जो दी है वह श्रीधर उर्फ मुरलीधर कवि ही की है। शिवसिंह ने एक श्रीधर (जिनके नाम में मुरलीधर नहीं लगाया है) का समय १७८६ संवत् दिया है और लिखा है कि "श्रृंगार रस में सरस कवित्त हैं" और कवित्त इनका यह दिया है—

"श्रीधर भावत प्यारी प्रवीन के रंग रँगे रथ साजन लागे।
अंग अनंग तरंगनि सों सब आपने आपने काजन लागे॥ १॥
किंकिनी पायल पैजनियाँ बिछिया घुघरू घन गाजन लागे।
मानो मनोज महीपति के दरबार मरातिबे बाजन लागे॥ २॥

यह कविता श्रीधर उर्फ़ मुरलीधर के ग्रंथ में मुझे ढूँढ़ने पर मिली। यह प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक के ७७ पत्रे में ३१ अंक का कवित्त है और प्रथम के एक पाद में कुछ पाठांतर है। हस्तलिखित पुस्तक में यह पाठ है—

श्रीधर भावतो प्यारी प्रवीन सों रंग भरे रति साजन लागे।

हम इस कवित्त के ऊपर नीचे का एक एक कवित्त उद्धृत कर देते हैं—

"ठाढ़ी ही सादे ही साज सों आजु उछाह भरी मद सौति को खूँदि कै।
आँचर खूँटि खुल्यो अचका निकसे कुच कोरक कंज सी दूँदि कै॥
छाति छपावति भाव भरी तकि श्रीधर लाल रहे रस गूँदि कै।
हेरि इतै दृग फेरि गई हँसि घूघट के पट सों मुख मूँदि कै॥ ३० ॥

मेरे जबै आवत हौ हँसत हँसावत हौ,
रीझत रिझावत हौ रंगनि रँगत हौ।
और कें पधारत हौ ताहि उर धारत हौ,
छलनि सुधारत हौ प्रेम सों पगत हौ॥
श्रीधर अहीरा कछु जानत न पीरा सदा,
खीरा बार हीरा मिले जगत ठगत हौ।
मीत की प्रतीति होति देखें रीति रावरे की,
नेक भीति ओट है अमीत से लगत हौ॥ ३२ ॥"

समय तो ठीक मिलता ही है क्योंकि संवत् १७६९ में इन्होंने जंगनामा बनाया। यथा—

"संवत सो सत्रह सै उन्हत्तरि पूस पून्यो बुध तहीं।
सन सो अग्यारह तेतिसा माहे मोहर्रम चौदहीं" ॥ १ ॥
अरू पातसाही माहे आजर बाएसी श्रीधर कही।
सफजंग की साएति सधी साहेबजहाँ कीनी सही॥ २ ॥

अब यहाँ हिजरी सन् में भ्रम है क्योंकि फर्रुखसियर की जहाँदारशाह से लड़ाई सन् ११२४ में हुई है। यह भूल लेखक की प्रतीत होती है।

दूसरे श्रीधर मुरलीधर का संवत् शिवसिंह ने नहीं दिया है, लिखा "कवि विनोद नाम पिंगल बनाया" और कवि विनोद पिंगल के ये दोहे उठाए हैं—

'श्रीधर मुरलीधर सुकवि मानि महा मन मोद।
कवि विनोद मय यह कियो उत्तम छंद विनोद ॥ १ ॥
श्रीधर मुरलीधर कियो निज मति के अनुमान।
कवि विनोद पिंगल सुखद रसिकन के मन मान" ॥ २ ॥

यही भ्रम डाक्टर ग्रिअर्सन को भी हुआ है।

अस्तु, यह तो निश्चय है कि ये दोनों एक ही श्रीधर थे।

संभव है कि इस संवत् १७६९ की लड़ाई में महाराज सावंतसिंहजी भी रहे हों क्योंकि कृष्णगढ़ से आए हुए इतिवृत्त में लिखा है कि "इन साहिबों पर बादशाह फर्रुखसियर की बहुत मेहरबानी थी। इन साहबों के पास घोड़े फिरवाके बहुत देखता" और इधर श्रीधर अपने जंगनामा में लिखते हैं—

"सब मीर जुमिला संग ह्वै। द्वै लाख स्वार उमंग है॥
यह बंक कोतल फौज है। सावंत उर में ओज है॥"

परंतु अधिक संभव यही है कि कवि ने सावंत शब्द वीर के लिये लिखा हो, क्योंकि प्रायः ऐसा ही किया है, जैसे—

"समसेर सरकि सिरोह की सावंत ए दोऊ लरे।
घन-घाइ खाइ अँगाइ अंगनि अटल ह्वै दोऊ अरे॥"

संवत् १७७१ में जब कि महाराज सावंतसिंह १५ वर्ष के थे, जलूस महफिल हो रही थी। उस समय इनके पिता महाराज श्रीराजसिंहजी, कोटा के महाराज श्रीभीमसिंहजी, सोपर के महाराज श्रीगजसिंहजी, और महाराज भदोरिया श्रीगोपालसिंहजी प्रभृति

बैठे थे। उस समय अकस्मात् इनके जामा के दामन में एक विषधर सर्प आ गया। आपने इसकी किसी को भी खबर न होने दी। चुपचाप उसके फन को पकड़कर मसल दिया और किसी बहाने से उठकर मृतक सर्प बाहर फेंक आए। इस भेद को उनके खिदमतगारों के अतिरिक्त और किसी ने भी न जाना।

संवत् १७७४ में, जब कि ये १८ वर्ष के थे, थूण की गढ़ी को फतह किया। थूण की गढ़ी के स्वामी जाट बदनसिंह को पराजित करने के लिये फर्रुखसियर ने नव्वाब मुजफ्फरखाँ,* जयपुर के महाराज जयसिंह, और कोटा के महाराज भीमसिंह को भेजा था। थूण की गढ़ी में, जो मेवासा में है, लड़ाई हो रही थी, परंतु गढ़ी कब्जे में नहीं आती थी क्योंकि जगह बेढंग थी, चढ़ने का रास्ता न था। तब नव्वाब नौलादखाँ, खानदौरा† बख्शी के भाई ने अर्ज करके

---

* नवाब मुजफ्फरखाँ की वीरता के विषय में श्रीधर लिखते हैं—

"सज्यो मुजफ्फर खाँ फतूह कर। समसामुद्दौला सुवीर बर"

† खानदौरा—पूर्व नाम ख्वाजा मुहम्मद आसिन, उसके पीछे अरफखाँ तत्पश्चात् शमसामुद्दौला, अमीरुल्उमरा खानदौरा बहादुर मनसूरजंग की पदवी मिली। इनके पिता ख्वाजः कासिमनकूश बंदी थे। खानदौरा नादिरशाह की लड़ाई में २३ फर्वरी सन् १७३९ को जखमी हुए और चार ही दिन पीछे २७ तारीख को ६८ वर्ष की अवस्था में मरे।

See Journal Asiatc Society Bengal, Part 1, No. 1 Vol. LXVI, Page 57.

यह खानदौरा फर्रुखसियर के भी सर्दारों में था। श्रीधर लिखते हैं—

"सज्यो खानदौरा सुबहादुर। समसामुद्दौला सिपाह पुर।
उतहि उनको खानदौरा। इतहि सजि यह खानदौरा॥
संग केतिक खानदौरा। मनहुँ उनको खान दौरा॥ ३२॥"

ऐसे ही अनेक स्थानों पर लिखा है।

इन्हें भेजवाया। यह वहाँ पहुँचते ही बख्तर पहिने हुए, गोलियों की वर्षा के बीच हाथी पर सवार घुस पड़े और गढ़ी के फाटक पर पहुँच हाथियों से फाटक तोड़वा गढ़ी ले ली। पीछे से सारी फौज भी आ पहुँची। यह दिन संवत् १७७४ वैशाख बदी ६ था। इस समय एक गोली इनके शरीर से भिड़ती हुई निकल गई थी परंतु कुछ गहरी चोट नहीं लगी; वहाँ से पालकी में सवार हो डेरे पर आए। उस समय नवाब और महाराज जयसिंह उनके डेरे पर आए और कहा कि यह आपही का काम था, और नवाब ने बादशाह के पास अर्जी भेजी उसमें फतह इन्हीं के नाम लिखी। बादशाह ने प्रसन्न हो बड़ी ही प्रशंसा की और खिलत शमसेर आदि भेजा।

संवत् १७७६ बीस वर्ष की अवस्था में अकेले ही सिंह का शिकार किया जिसका चित्र कृष्णगढ़ दर्बार में है।

संवत् १७९३ में दक्षिणी मल्हारराव गुजरात से मारवाड़ आया। इन्होंने उसे खिरणी (कर) नहीं दिया, कुछ लड़ाई भी हुई। अंत में बाजीराव पेशवा ने मल्हारराव से कहा—

"बाजे राव मल्हार सों कहतो गयो कथाह।
और राव सब राव हैं सांवत बात अथाह॥"

यह दोहा उस देश में अत्यंत प्रसिद्ध है।

संवत् १८०४ में, जब कि मुहम्मदशाह दिल्ली के तख्त पर बैठ चुके थे, पठानों ने दिल्ली पर चढ़ाई की। उस समय मुहम्मदशाह ने यहाँ भी फर्मान भेजा था। इनके पिता श्रीमहाराज राजसिंहजी जाने को प्रस्तुत हुए, परंतु इन्होंने कहा कि आप बहुतेरी लड़ाइयाँ लड़ चुके हैं इस पर हमें जाने दीजिए। निदान पिता की आज्ञा से ये अपने पुत्र सरदारसिंह के साथ दिल्ली गए परंतु बादशाह ने इन्हें

मुहिम पर नहीं भेजा, अपने ही पास रख लिया। विदित होता है कि इसी समय से इनसे आनंदघनजी से मित्रता हुई। संवत् १८०५ में मुहम्मदशाह मर गए और उसी समय इनके पिता महाराज राजसिंहजी का भी परलोक हुआ और संवत् १८०५ वैशाख सुदी ५ को ये गद्दी पर बैठे।

इस घटना को एक वर्ष भी न बीता था कि ये इधर दिल्ली आए थे उधर इनके छोटे भाई बहादुरसिंहजी ने राज्य पर अधिकार कर लिया। दिल्ली की बादशाहत में तो कुछ जोर रह ही नहीं गया था, और मरहठों का चढ़ता समय था। उन लोगों के पास सहायता लेने के लिये यह भी गए। रास्ते में अपने पुत्र सरदारसिंह को घासड़ा नगर, जो बड़गूजर जाति के राजपूतों की राजधानी था और जहाँ सरदारसिंहजी ब्याहे थे, भेज दिया और आप मरहठों के पास गए। उनके साथ आप कुमाऊँ की मुहिम पर गए।

कुमाऊँ की लड़ाई संवत् १८०८ में हुई थी; वहीं 'जुगल-भक्ति-विनोद' ग्रंथ बनाया था।

"अष्टादश सत अष्ट पुनि, संवत माघ सुमास।
जुगल भक्त गुन ग्रंथ यह, कियौ नागरीदास॥
निकट कुमाऊँ पर्वतनि, बिकट बिटप की भीर।
तहाँ ग्रंथ-रचना भई, नदी कौसिकी तीर॥"

वहाँ की लूट के विषय में लिखते हैं—

"लाज छाँड़ि मन कौं भजौ, दीजै मन कौ छूट।
कुमाऊँ की मुहिम मैं, जैसे लूटा लूट॥"

इसी के पीछे ही आपने "तीर्थानंद ग्रंथ" बनाया है और उसमें उसी सिलसिले से मुकाम भी दिए हैं, जैसे रूपनगर से साँभर

गए, वहाँ देवयानी का वर्णन किया है, जैपुर में गलता (गालवाश्रम) का वर्णन किया है फिर वृंदाबन आए। वहाँ से अपने पुत्र को घासड़ा में भेज आप मरहठों के पास गए, फिर उनके साथ कुमाऊँ। मरहठों को अपने साथ लेकर फिर श्रीवृंदाबन आए; आप तो वहीं रह गए और अपने पुत्र को मरहठों के साथ लड़ने को भेज दिया। इन्हें वृंदाबन में स्वप्न में आज्ञा हुई थी कि तुम यहीं निवास करो, राज्य तुम्हारे लड़के को मिलेगा। निदान बहुत लड़ाई के पीछे संवत् १८१३ में बहादुरसिंहजी और सरदारसिंहजी ने राज्य को दो भाग करके बाँट लिया।

संवत् १८१३ के फाल्गुन में इन्होंने कुटुंबयात्रा के निमित्त प्रस्थान किया। सुनते हैं कि उस समय इनके साथ आनंदघनजी भी थे परंतु जयपुर ही से लौट आए, और इस भ्रातृ-विरोध ने कुछ ऐसा असर इनके हृदय पर किया कि फिर इन्होंने राज्यगद्दी पर पैर न रखा और संवत् १८१४ द्वितीय आश्विन शुक्ल १० को अपने कुँवर सरदारसिंहजी को युवराज बना आप आश्विन सु० ११ को श्री वृंदाबन चले गए। उनके हृदय का भाव कैसा बदल गया था यह ये दोहे कहे देते हैं—

"जहाँ कलह तहाँ सुख नहीं, कलह सुखन कौ सूल।
सबह कलह इक राज मैं, राज कलह को मूल॥
मेरे या मन मूढ़ तैं, डरत रहत हैं हाय।
वृंदाबन की ओर तैं, मति कबहूँ फिरि जाय॥
लेत न सुख हरिभक्ति कौ, सकल सुखनि कौ सार।
कहा भयो नृपहू भए, ढोवत जग बेगार॥
और भौन देखौं न अब, देखूँ वृंदा भौन।
हरि सों सुधरी चाहिए, सब ही बिगरै क्यौं न॥

ब्रज मैं ह्वै ह्वै कढ़त दिन, किते दिए लै खोय।
अब कैं अब कैं कहत ही, वह अब कैं कब होय॥
राज बड़े बड़े देत हरि, दिन मैं लाख करोर।
पै काहू को नाहिं वै, खीचत अपनी ओर॥"

संवत् १८१० में 'तीर्थानंद' ग्रंथ बनाया। परंतु यह ग्रंथ संवत् १८०८ से आरंभ होकर संवत् १० में पूरा हुआ प्रतीत होता है। यदि ऐसा न हो तो इसमें तो संदेह नहीं है कि इन्हीं दो वर्षों की कथा इसमें लिखी गई है और इसी की समालोचना में हमारे पाठक बहुत कुछ समाचार आपके जीवनचरित्र का पावेंगे। इस ग्रंथ का आरंभ यों किया है—

"जब चले स्थिति तें देस आन। बिच किए देवयानी सनान॥" फिर लिखते हैं "पुनि चले तहाँ तें नाय माथ। परसे गोविंद गोकुल के नाथ॥ पुनि गालव आश्रम अति अगम्य। जहाँ भ्रमत फिरत अति मधुप झुंड॥" वहाँ से ब्रज में आए। पहले श्रीगोवर्धन आकर रहे। यहाँ का वर्णन पाठकों के सुनने योग्य है—

"पायन प्रदच्छना दई फेर। बिच रसिक संग गन गुनी घेर॥
कलगान कीरतन बन्यो रंग। बहु झाँझ झनक बाजत मृदंग॥
बन ग्वाल गऊ चले सुनत साथ। मधु पिवत श्रवन पुट कृष्ण गाथ॥
सब अनन्य मंडली छकी प्रेम। चित गए भूलि तब मन के नेम॥
आए चलि तेहि ठां रसिक झुंड। तहँ राधाकुंड अरु कृष्णकुंड॥
उत तें उमगे सुनि रसिकवृंद। उठि चले सामुहें बढ़ि आनंद॥
तहँ रुपे सूर सन्मुख सँभारि। बहि चले परस्पर प्रेमबारि॥
हुंकार शब्द करि गिरि निसंक। कोउ चलत धरनि धुकि भरत अंक॥
बंसीदास अरु मुरलिदास। मनु महारथी ये प्रेमरास॥
बिच खेत परे मूर्छित निदान। सोए सर सज्जा गान तान॥

सुख प्रेम भक्ति को भयो प्रात। मुख सों न कछु है बरन्यो जात॥
दंपत रस संपत बर बिहार। फिर गाय चले तन मन सँभार॥
परकरमा दै गिरिवर सुआय। मधुपुरी चले दुख बिरह छाय॥"

गिरिराज से श्रीमथुरा में आए। वहाँ विश्रांतघाट पर स्नान किया। साँझ को विश्रांत पर श्रीयमुनाजी की आरती की बड़ी शोभा वर्णन की है। वहाँ एक वृद्धा तपस्विनी रहती थीं, जो केवल दूध ही पीती थीं। उनका दर्शन करके श्रीवृंदाबन आए। इस समय इनका नाम चारों ओर फैल गया था और इनके प्रेम का आस्वाद प्रेमी-मात्र को मिल चुका था, क्योंकि श्रीवृंदाबन में इनको महाराज कृष्णगढ़ सुनकर तो लोग उदासीन भाव से अलग ही अलग रहे परंतु जब सुना कि नागरीदासजी ये ही हैं तो दौड़ दौड़कर श्रीवन के महात्मा लोग लिपट गए।

"सुनि ब्योहारक नाम मो, ठाढ़े दूर उदास।
दौरि मिले भरि नैन सुनि, नाम नागरीदास॥
इक मिलत भुजनि भरि दौरि दौरि। इक टेरि बुलावत और और॥
केउ चले जात सहजै सुभाय। पद गाय उठत मोगहिं सुनाय॥
जे परे धूर मधि मत्त चित्त। तेउ दौरि मिलत तजि रीति नित्त।
अतिसय बिरक्त तिनके सुभाव। ते गनत न राजा रंक राव॥
वे सिमिट सिमिट सब आय आय। फिर छाड़त पद पढ़वाय गाय॥"

इससे विदित होता है कि उस समय तक इनकी कविता का पूरा प्रचार हो गया था और महात्मा लोग बड़े चाव से उसे पढ़ते और याद करते थे।

वहाँ श्री बाँकेबिहारीजी (श्रीस्वामी हरिदासजी के सेव्य ठाकुर) का दर्शन किया। इस समय उन्होंने अपनी पासवान (उपस्त्री) बनीठनी (उपनाम रसिकबिहारी) का एक पद गाया—

"बनी बिहारिनि रससनी निकट बिहारी लाल।
पान कियो इन दृगनि तें अनुपम रूप रसाल ॥
तहँ पद गाए औसर संजोग। बिच रसिक बिहारी ही के भोग ॥"

जान पड़ता है कि नागरीदासजी बनीठनीजी को प्रेम से केवल बनी ही कहकर पुकारते थे और यह भी इससे स्पष्ट है कि वे प्रायः उनको साथ रखते थे तथा विशेष पर्दा आदि का विचार नहीं करते थे।

बनीठनीजो (रसिकबिहारी) को कोई संतान नहीं हुई। इन्होंने केवल ५८ पद बनाए थे और इनका देहांत श्री वृंदावन में (क्योंकि नागरीदासजी के पीछे ये वहीं रहीं) नागरीदासजी के १० महीना पीछे संवत् १८२२ आषाढ़ सुदी १५ को हुआ।

इनकी छतरी पर यह लेख है—

"श्री बिहारीजी

श्रीबिहारिन बिहारिजी ललितादिक हरिदास।
नरहर रसिकनि की कृपा दियो बृंदाबन बास ॥
श्रीरसिकदास* गुरु की कृपा लहमा भर सत्संग।
बिष्णुहि (?) बृंदावन मिल्यो भक्त विहार अनंग ॥
रसिक बिहारी सामरो ब्रज नागर सुरकाज।
इन पद पंकज मधुकरी......बिष्णु समाज ॥

* जान पड़ता है यह हरिदास स्वामी के शिष्य-संप्रदायांतर्गत नरहरिदासजी के शिष्य रसिकदासजी की शिष्य थीं। यह रसिकदासजी कविता में अपना नाम रसिकविहारी देते थे, इसी से कदाचित् इन्होंने भी अपना छाप यही रखा। श्रीरसिकदासजी का देहांत संवत् १७६८ सावन ब० १० को हुआ "श्रीस्वामी रसिकदास के हरि गुरु एक समान। सदाचार मैं सिद्धि गति संतनि मुखपरवान। सावन कृष्णा रोहनी सुभ दसमी रविवार। सत्रा सै अट्ठानवै पायो विपिन बिहार।" जान पड़ता है इसी कारण नागरीदासजी ने हरिदास स्वामी के सेव्य ठाकुर बिहारीजी के सामने इन्हीं का पद गाया था।

संवत् १८२२ मिती आषाढ़ सुदी १५ तिथि बुधवार।"

हम पाठकों को उनमें से एक पद "उत्सवमाला" ग्रंथ से उद्धृत करके सुनाते हैं। इस छाप के तीन पद और चार दोहे उक्त ग्रंथ में हैं।

"कुंजमहल मैं आजु रंग होरी हो।
फाग खेल मैं बना बनी की ह्वै रही पट गठजोरी हो॥
मुदित ह्वै नारि गुलाल उड़ावैं गावैं गारि दुहुँ ओरी हो।
दूलह रसिकबिहारी सुंदर दुलहिनि नवल किसोरी हो॥१॥"

यहाँ यह भी कहे बिना नहीं रह सकते कि इनका प्रेम अधिक हरिवंशी और हरिदासी वैष्णवों से था क्योंकि इनके पदों की शैली प्रायः उनसे मिलती जुलती है और ये प्रायः श्रीवृंदावन ही में रहते थे और वहाँ इन्हीं संप्रदायों के महात्मा अधिक थे। गोकुल का वर्णन बहुत कम किया है।

गोधूलक समय ज्ञानगुदरी आए, वहाँ भी देर तक समाज रहा। वहाँ से जमुना पार उतरे।

"सहि गई दुर्मति दुख असहि, बहि गई बुरी बयार।
रहि गई ब्रज अवसेर हिय, उतरे जमुना पार॥"

वहाँ से श्री जमुनाजी का स्नान करके सोरूँ में आकर रहे। यह स्थान जिला एटा में है। यहाँ बुढ़गंगाजी का स्नान किया। यहीं भगवान् का श्रीवाराहावतार हुआ है, हिरण्याक्ष को मारा है। इसका उपनाम उकल क्षेत्र और दूसरा शूकरक्षेत्र है।

वहाँ एक नौकर ने श्रीगंगाजी के तट पर बकरा मारा, इस पर गंगाजी ने क्रोध किया, बड़ी बाढ़ आई, फिर नागरीदासजी ने स्तुति की तब शांत हुई।

"तहँ किए एक अनुचर अधर्म। तटि हत्यो अजासुत पाप कर्म॥
कछु क्रोध कियो गंगा कृपाल। दई आन अचानक जल उछाल॥

भुव फाट गिरत अररात जोर ; अति भयो भयंकर समय सोर ॥
भजि पटकि पटकि डेरा निकारि । भयभीत सकल कौतिक निहार ॥
जब करी स्तुति सिर नाय पाव । करि छमा कियो सीतल सुभाव ॥"

दूसरे दिन दीपदान किया ।

वहाँ से कपिलाश्रम (कपिलग्राम) में आए जहाँ कपिलदेवजी ने तपस्या की है । वहाँ से नाव के पुल पर गंगा पार उतरे । एक नदी रामगंगा* और मिलीं, उनका स्नान करके धवलागिरि के पास कौसिक नदी के तट पर कमाऊँ† में पहुँचे, वहाँ बहुत दिन रहे और वहाँ से संधि करके लौटे । हम ऊपर लिख चुके हैं संवत् १८०८ में यह ग्रंथ बनना आरंभ हुआ "जुगल भक्त विनोद" वहीं संवत् १८०८ में बनाया है जिसका वर्णन ऊपर है ।

"रहे बहुत दिवस कौसिकी तीर । करि चले तहाँ तें संधि बीर ॥"

फागुन वहीं बीता । ब्रज के फाग का ध्यान करते यह वर माँगा कि परसाल अब होरी ब्रज में ही हो । यही हुआ भी ।

---

* Ramganga--Eastern—a river in Kumaun district N. W. P., rises on the Southern slope of the main Himalayan range at an elevation of 9,000 ft. above sea-level and falls into the Sarju at Rameshwar.

W. W. Hunter's Gazetteer of India. Vol. VII, 537 Page.

† Kumaun—The principal district of the division of the same name. In 1814 it was resolved to annex it to British possessions. At the end of January, 1815, everything was ready for the attack on Kumaun. The first successful event on the British side was the capture of Almora by Colonel Nicholson, on 26th April, 1815. Population 4,259,63 Hindus, 5,569 Mussalmans in 1872. It has a mild climate. Vol. V, 471 Page. Population in 1881—4,93,641.

उसी रास्ते से लौटते हुए श्रीवृंदाबन के उस पार रात को पहुँचे। उस समय कोई नाव या बेड़ा न मिला; उधर श्रीवृंदाबन का वियोग कौन सह सकता था। झट श्रीयमुनाजी में कूद पड़े और तैरकर श्रीवृंदाबन पहुँचे। कुछ लोग इनके साथ आए, कुछ रह गए। आप यों लिखते हैं—

"देख्यो श्रीवृंदाविपिन पार। बिच बहत महा गंभीर धार॥
नहिं नाव नहीं कुछ और दाँव। हे दई कहा कीजै उपाव॥
रहे वार लगनि कौं लगै लाज। गए पारहिं पूजै सकल काज॥
प्रेमपंथ को पीठ दै, यह जीवो न सुहाय।
मंगल दिन है आजु कौ, प्रिय सन्मुख जिय जाय॥
यह चित्त माँझ करिकै विचार। परे कूद कूद जल मध्य धार॥
चले पैर पैर तरराय धाय। तहाँ भई लगन सब बिधि सहाय॥
तरि गए तरुनजा दयौ पार। गहि हाथ लए ब्रजनाथ वार॥
"वार रहे रहे वार ते, पार भए भए पार।
दरसे बृंदाबिपिन बिच, राधा नंदकुमार॥"

वहाँ का आनंद लूटकर दिल्ली आए और यहाँ दर्बार से छुट्टी पा सांसारिक व्यवहारों को छोड़ राज्य कुटुंब से मुँह मोड़ अकेले श्रीवृंदाबन वास आरंभ किया। यह समय संवत् १८०९ के आरंभ का है, क्योंकि १८०८ का फाल्गुन कुमाऊँ में हुआ और वर्षोत्सव का वर्णन आगे चलकर इस ग्रंथ में किया है उसके उपरांत अर्थात् वर्ष दिन श्रीव्रज में रहने पीछे संवत् १८१० के माघ में यह ग्रंथ "तीर्थानंद" पूरा हुआ है।

आप दिल्ली का वृत्तांत यों लिखते हैं—

"फिर बहे बीच राजस प्रबाह। गए इंद्रप्रस्थ हिय बिरह दाह॥
दिल्ली दिवार कहकहा धाम। लियो फेरि तहाँ ते मोहि श्याम॥

तजि दयो तहाँ सब प्रवृत संग। भयो ब्रज सनमुख फिर बढ़यो रंग॥
जब कह्यो सुता लड़काय भाय। लयो बोलि मोहि वृषभानु राय॥
तब चले चरन बरसाने ओर। किए पैंड़ पैंड़ तीरथ करोर॥"

आगे फिर लिखते हैं—

"ऐसो बरसानो निरषि, गहवर आयो प्रेम।
करत दंडवत लुटत रज, छुटि गए राजस नेम॥"

इसके आगे आषाढ़ फिर सावन में हिंडोले का वर्णन बरसाने में किया है। फिर भादों में श्रीकृष्ण-जन्मोत्सव नंदगाँव में और ललिता-जन्मोत्सव करैला ग्राम में किया। वहाँ से सुनहरा की कदम-खंडी में दानलीला का अनुभव किया, फिर भादों सुदी सप्तमी को बरसाने में आकर श्री राधाजन्मोत्सव का दर्शन किया। नवमी को मोरकुटी, दानगढ़, मानगढ़ की लीला देखी; दशमी कोकिलावन, फिसलनीशिला, साँकरीखोर में दानलीला।

श्रीवृंदावन, आश्विन मास में साँझी, शारदीय पूर्णिमा, रासोत्सव देखा।

कार्तिक कृष्ण सप्तमी को श्री राधाकुंड आए। दीपमालिका और अन्नकूट श्री गिरिराज में किया। गोपाष्टमी को नंदगाँव में। अगहन और पूस बरसाने में रहे। बरसाने में वसंत और होली की। होली वर्णन बड़ी धूम से किया है। चैत्र वैशाख जेठ का वर्णन कुछ नहीं किया, यही लिख दिया—

"मधु माधव जेठोत्सव, याते बरन्यो नाहिं।
एक फाग आगें जिते, सब फीके दरसाहिं॥"

अंत में इन दोहों के साथ "तीर्थानंद" को पूरा किया है—

"गौर साँवरे रसिक दोउ, यह दीजै सुखरास।
कबहुँ नागरीदास अब, तजै न ब्रज को बास॥

माघ अष्टदस सत जु दस, बिच बृंदाबन बास।
ग्रंथ तीर्थानंद यह, कियो नागरीदास ॥"

नागरीदास जी के बनाए ग्रंथ इतने हैं—

(१) सिंगारसार वा ब्रजलीला पद प्रसंग
(२) गोपीप्रेमप्रकाश (सं० १८००)
(३) पद प्रसंग माला
(४) ब्रजवैकुंठ तुला (सं० १८०१)
(५) ब्रजसार (सं० १७९९)
(६) भोर लीला
(७) प्रात रस मंजरी
(८) बिहारचंद्रिका (सं० १७८८)
(९) भोजनानंदाष्टक
(१०) जुगल रस मंजरी
(११) फूल विलास
(१२) गोधन आगमन
(१३) दोहन आनंद
(१४) लग्नाष्टक
(१५) फाग विलास
(१६) ग्रीष्म विहार
(१७) पावस पचीसी
(१८) गोपी बैन विलास
(१९) रास रस लता
(२०) रैन रूपरस
(२१) शीतसार
(२२) इश्क चिमन
(२३) मजलिस मंडन
(२४) अरिलाष्टक
(२५) सदा की माँझ
(२६) वर्षाऋतु की माँझ
(२७) होरी की माँझ
(२८) कृष्णजन्मोत्सव कवित्त
(२९) प्रियाजन्मोत्सव कवित्त
(३०) साँझी के कवित्त
(३१) रास के कवित्त
(३२) चाँदनी के कवित्त
(३३) दिवारी के कवित्त
(३४) गोवर्धनधारन के कवित्त
(३५) होरी के कवित्त
(३६) फाग गोकुलाष्टक
(३७) हिंडोरा के कवित्त
(३८) वर्षा के कवित्त

(३६) भक्तिमगदीपिका (सं० १८०२)
(४०) तीर्थानंद (सं० १८१०)
(४१) फाग विहार (सं० १८०८)
(४२) बालविनोद (सं० १८०६)
(४३) सुजनानंद (सं० १८१०)
(४४) बनबिनोद (सं० १८०६)
(४५) भक्तिसार (सं० १७६६)
(४६) देहदसा
(४७) बैराग वल्ली
(४८) रसिकरत्नावली (सं० १७८२)
(४६) कलिबैरागबल्ली (सं० १७६५)
(५०) अरिल पचोसी
(५१) छूटकविधि
(५२) पारायण विधि प्रकाश (सं० १७६६)
(५३) सिखनख
(५४) नखसिख
(५५) छूटक कवित्त
(५६) चरचरियाँ
(५७) रेखता
(५८) मनोरथ मंजरी (सं० १७८०)
(५६) रामचरित्र माला
(६०) पद प्रबोध माला
(६१) जुगलभक्ति विनोद (सं० १८०८)
(६२) रसानुक्रम के दोहा
(६३) शरद की माँझ
(६४) साँझी फूल बीनन समेत संवाद
(६५) बसंत वर्णन
(६६) फाग खेलन समेतानुक्रम कवित्त
(६७) रसानुक्रम के कवित्त
(६८) निकुंज विलास (सं० १७६४)
(६६) गोविंद परचई
(७०) बनजनप्रशंसा (सं० १८१६)
(७१) छूटक दोहा
(७२) उत्सवमाला
(७३) पदमुक्तावली
(७४) बैन-विलास
(७५) गुप्तरस प्रकाश

} कृष्णगढ़ के कवीश्वरजी लिखते हैं कि इन दोनों ग्रंथों का नाम नागरीदासजी की ग्रंथावली में है परंतु यहाँ मिलते नहीं।

इनमें से जिनका समय ग्रंथों में दिया है उसे उद्धृत करते हैं।

मनोरथ मंजरी (नं० ५८)

दोहा

संबत सतरा सै असी, चौदस मंगलवार।
प्रगट मनोरथ-मंजरी, बदि आसू अवतार॥

रसिकरत्नावली (नं० ४८)

दोहा

सत्तरै सै बइयासिए, भादो सुदि भृगुवार।
तिथि परिवा कीनी इहै, लीजो संत सुधार॥

बिहारचंद्रिका (नं० ८)

दोहा

सत्तरै सै अठ्यासिया, संबत सावन मास।
नव विहार यह चंद्रिका, करी नागरीदास॥

कलिवैरागबल्ली (नं० ४९)

दोहा

सत्तरा सै पच्याणवे, संवत् सावण मास।
कलिवल्ली बैराग की, करी नागरीदास॥

भक्तिसार (नं० ४५)

कुंडलिया

सुख पायौ पूरन भयैं ग्रंथ जु भाषा चार।
सतरा सै निन्नानवै द्वैज द्यौस गुरुवार॥
द्वैज द्यौस गुरुवार मास सावन मन भावन।
कृष्णपच्छ सुभ मंत्र संत जन श्रवन सुहावन॥
भक्तिसार उच्चार कियौ निज मन समुझायौ।
नागरीदास न कहूँ विमुख काहू सुख पायौ॥

पारायण विधि प्रकाश (नं० ५२)

दोहा

सत्तरै सै निन्नानवै, संबत सावन मास।
पारायन जु प्रकास विधि, कियौ नागरीदास॥

व्रजसार (नं० ५)

दोहा

सत्तरै सै निन्नानवै, पोस जु सुदि रविवार।
नौमी नागरीदास यह, कियो ग्रंथ व्रजसार॥

गोपीप्रेमप्रकाश (नं० २)

दोहा

संबत अठारै सै सुकल, पच्छ जेठ सुभ मास।
गोपी-प्रेमप्रकाश यह, कियौ नागरीदास॥

व्रज वैकुंठतुला (नं० ४)

दोहा

संबत अठारै सै जु इक, दिन वसंत सुभ मास।
व्रज-वैकुंठ तुला कियौ, ग्रंथ नागरीदास॥

भक्तिमगदीपिका (नं० ३९)

दोहा

संबत अष्टदस सत जु द्वै, क्वार तीज गुरु वार।
रूप-नगर विचि कृष्णपच्छ, भयो ग्रंथ विस्तार॥

फाग विहार (नं० ४१)

दोहा

संबत अष्टदस सत जु पुन, अष्ट वर्ष मधु मास।
ग्रंथ गंग-तटि कृष्ण-पच्छ, कियो नागरीदास॥

जुगलभक्ति बिनोद (नं० ६१)

दोहा

अष्टादस सत अष्ट पुनि, संबत माघ सुमास ।
जुगल भक्ति-गुन ग्रंथ यह, कियो नागरीदास ॥
निकट कमाऊँ पर्वतनि, विकट विटप की भीर ।
तहाँ ग्रंथ-रचना भई, नदी कौसिकी तीर ॥

बनबिनोद (नं० ४४)

दोहा

समत अठारह सौ जु नव, कृष्ण-पच्छ मधु मास ।
बन बिनोद कल ग्रंथ यह, कियो नागरीदास ॥

बालविनोद (नं० ४२)

दोहा

समत अष्टदस सत जु नव, मास अस्वनि भृगु-वार ।
तिथि षष्टमि अरु शुक्ल-पच्छ, रच्यौ ग्रंथ विस्तार ॥

तीर्थानंद (नं० ४०)

दोहा

माघ अष्टदस सत जु दस, विचि बृंदावन वास ।
ग्रंथ तीरथानंद यह, कियौ नागरीदास ॥

सुजनानंद (नं० ४३)

दोहा

समत अष्टदस सत जु दस, बरसाने के बास ।
ग्रंथ सु-सुजनानंद यह, कियो नागरीदास ॥

बनजन प्रशंसा (नं० ७०)

दोहा

अष्टादस सत दस जु नव, संवत माघ सुमास ।
बन जन-प्रसंस ग्रंथ यह, कियो नागरीदास ॥

सबसे पहला ग्रंथ जो इनका मिला वह मनोरथमंजरी है जो सं० १७८० में बना, दूसरा रसिकरत्नावली सं० १७८२ में, तीसरा बिहारचंद्रिका संवत् १७८८ में बना ।

इस समय जैसी सुंदर और प्रौढ़ कविता आपकी है उसे हम अपने पाठकों को "बिहारचंद्रिका" का एक अंश लेकर सुनाते हैं । इसी से वे सारे ग्रंथ का गौरव समझ लेंगे ।

"उज्जल पच्छ कि रैन चैन उज्जल रस दैनी ।
उदित भयौ उड़राज अरुन दुति मन हर लैनी ॥
महा कुपित ह्वै काम ब्रह्म अस्त्रहिं छोड्यो मनौं ।
प्राची दिसि तें प्रजुलित आवति अगिनि उठी जनौं ॥
दहन मानपुर भए मिलन कौं मन हुलसावत ।
छावत छिपा अमंद चंद ज्यों ज्यों नभ आवत ॥
जगमगाति बन जोति सोत अमृतधारा से ।
नवद्रुम किसलय दलनि चारु चमकत तारा से ॥
स्वेत रजत की रैन चैन चित मैन उमहनी ।
तैसी मंद सुगंध पौन दिनमनि दुख दहनी ॥
मधि नायक गिरिराज पदिक बृंदावन भूषन ।
फटिकसिला मनि शृंग जगमगति दुति निदूषन ॥
सिला सिला प्रति चंद चमकि किरननि छबि छाई ।
बिच बिच अंब कदंब झंब झुकि पायनि आई ॥

ठौर ठौर चहुँ फेर ढेर फूलन के सोहत।
करत सुगंधित पवन सहज मन मोहत जोहत॥
बिमल नीर निर्झरत कहूँ झरना सुख करना।
महा सुगंधित सहज बास कुमकुममद हरना॥
कहुँ कहुँ हीरन खचित रचित मडल सुरासि के।
जटित नगन कहुँ जुगल खंभ झूलनि बिलासि के॥
ठौर ठौर लखि ठौर रहत मनमथ सो भारी।
बिहरत बिबिध बिहार तहाँ गिरि पर गिरिधारी॥

दोहा

कहत कहत कहँ लगि कहै, अब कवि छबि अभिराम।
प्रिया कमल पद परस हित, धरो रूपगिरि श्याम॥ १॥"

नागरीदासजी की सभा में निम्नलिखित कवि वर्तमान थे।

(१) प्रसिद्ध कवि वृंद* (जिनकी बनाई वृंदसतसई है) के, पुत्र बल्लभ जी। इनको महाराज नागरीदास के पिता महाराज राजसिंहजी ने "सुकवि" की पदवी दी थी, अतएव ये सुकवि बल्लभ कहलाते थे।

(२) पूरब की ओर के रहनेवाले सनाढ्य हरिचरणदासजी†। इनके बनाए ग्रंथ सभाप्रकाश, कवि-बल्लभ (इन दोनों ग्रंथों में काव्यप्रकाश का ठीक ठीक उलथा किया है), बिहारी सतसई की "हरिप्रकाश" नामक टीका, रसिकप्रिया की टीका, कबि-प्रिया की टीका इत्यादि हैं।

(३) करौली के सनाढ्य हीरालालजी‡। इनका बनाया "सिर-

---

* वृंद—No. 837—The Modern Literature of Hindustan.

† हरिचरणदास—No. 939—Do.

‡ हीरालाल—No. 948—Do.

दार सुजस" नामक ग्रंथ है, जिसमें महाराज नागरीदासजी के अनुज महाराज बहादुरसिंह ने जब राज्य छीन लिया था और नागरीदासजी ने अपने पुत्र सरदारसिंहजी के साथ कुमाऊँ आदि प्रदेश में जाकर मरहठों को लाकर अपना राज्य लिया उसका वृत्तांत लिखा है।

(४) मुंशी कवीरामजी, इनके मीर मुंशी थे, कवि भी थे।

(५) कल्लाह पन्नालाल जी, कवि थे।

(६) वैष्णव विजयचंदजी, कवि थे।

(७) बनीठनीजी, जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है।

(८) दाहिवाँ विजयरामजी, कवि थे।

(९) बाहर के बहुतेरे कवि पंडित आते थे, जिनमें से नरवरगढ़ के राव उदयनाथजी बहुत प्रसिद्ध थे। इन्होंने नागरीदासजी के सिंह के शिकार का एक ग्रंथ बनाया है। इनमें से डाक्टर ग्रियर्सन और शिवसिंह ने केवल पहले लिखे तीन कवियों का यत्किंचित् वर्णन किया है परंतु प्राय: समय में भ्रम है और वर्णन भी नाम मात्र है।

श्रीवृंदावन-वास पर नागरीदास जी के हृदय में कैसा संतोष हुआ था यह उनके वनजन-प्रशंसा ग्रंथ के नीचे लिखे पद से स्पष्ट झलकता है।

"हमारी सबही बात सुधारी।
कृपा करी श्री कुंजबिहारिनि अरु श्री कुंजबिहारी।
राख्यो अपने वृंदावन मैं जिहि को रूप उँज्यारी॥
नित्त केलि आनंद अखंडित रसिक संग सुखकारी।
कलह कलेस न व्यापै इहि ठाँ ठौर विश्व तें न्यारी॥
नागरीदासहिं जनम जिवायौ बलिहारी बलिहारी॥ १॥"

"ब्रज संबंध" ग्रंथ से—

"साँचो मित्र गोपाल है मेरो परम पियारौ ।
जिहिं दीनौ ब्रजबास लै बैकुंठ तें भारौ ॥
निज साधन को संग दयो नीके तें नीकौ ।
जाके पटतर क्यों लगे सुख स्वर्ग को फीकौ ॥
राज कलह के मूल को विष अमल छुटायौ ।
नागरिया वृंदा बिपुल रस अमृत प्यायौ ॥ १ ॥"

हम इन महानुभाव प्रेमरस छके महात्मा का चरित्र उन्हीं के इस छप्पय के साथ समाप्त करते हैं ।—

"धनि वह कुल धनि नगर धन्य वह देस सुमंडल ।
धन्य खंड वह द्वीप धन्य वह सकल महीतल ॥
धन्य धन्य सब लोक होत जेहि पावन पावन ।
मुख रसना वह धन्य करत तिनकौ गुन गावन ॥
जाकी महिमा कहि सकै को कवि नागर मध्य छित ।
करत धन्य इन नैनि को जेहि उर प्रेमानंद नित" ॥ १ ॥

[नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग २—सं० १९५४]

(३) कविवर विहारीलाल*

"सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं घाव करैं गंभीर॥"

भाषाकविकुलचूड़ामणि कविवर विहारीलाल के दोहों ने, ऐसा कौन भाषाज्ञ सहृदय रसिक है जिसके हृदय पर अपनी मोहिनी छटा

---

* इस देश में इतिहास का यथार्थ आदर न होने से प्राचीन विषयों के समय निर्णय करने में बड़ी ही कठिनता होती है। यहाँ के लोगों की रुचि केवल गुण ही को ग्रहण करने की ओर थी, गुणियों के चरित्र आदि पर विशेष ध्यान नहीं रहता था। इसी से जब किसी विषय का निर्णय करना होता है तब बड़ी ही कठिनता पड़ती है और फिर भी संदेह की छाया रह ही जाती है। यद्यपि मैंने बहुत कुछ सोच विचारकर इस लेख को लिखा है पर तो भी अभी संदेह इसमें विराजमान हुई है। परंतु यह विचारकर कि जब तक ये विषय विद्वानों के संमुख न रखे जायँगे ठीक निश्चय नहीं हो सकता, यह प्रकाशित किया गया। जिन महाशयों को इस विषय में कुछ ज्ञात हो कृपा करके प्रकाशित करें जिसमें इसका यथार्थ निर्णय हो सके।

विहारी और केशवदास के संबंध में दो आपत्तियाँ प्रधान हैं। एक तो यह कि भाषा दोनों की नहीं मिलती, दूसरे ये दोनों ही अत्यंत प्रसिद्ध कवि थे। यदि केशवदास विहारी के पिता होते तो अवश्य ही लोक में प्रसिद्धि होती।

पहली आपत्ति के विषय में तो यही कहना यथेष्ट होगा कि केशवदास का सारा समय बुंदेलखंड ही में कटा परंतु विहारी का अधिकांश समय व्रज में। तिस पर भी बुंदेलखंडी शब्दों और मुहाविरों ने विहारी का साथ न छोड़ा। पूज्यपाद बाबू गोपालचंद्र (गिरिधरदास) और भारतेंदुजी एक ही स्थान में आजन्म रहे, परंतु इन दोनों की भाषा में उससे अधिक अंतर है जितना कि केशवदास और विहारी की भाषा में है। सभी कवि बाणभट्ट और उनके पुत्र के समान नहीं होते और फिर भी विज्ञ लोग दोनों की भाषा को पृथक करके कादंबरी में दिखला ही देते हैं।

न झलकाई हो ? जिसके हृदय में भाषा कविता का कुछ भी स्थान है उसके हृदय में अवश्य ही बिहारी के दोहे स्वर्णसिंहासन पर विराजमान हैं। श्री गोस्वामी राधाचरणजी ने खूब कहा है कि "यदि 'सूर सूर तुलसी ससी उड़गन केशवदास' हैं तो बिहारी पीयूषवर्षी मेघ है जिसके उदय होते ही सब का प्रकाश आच्छन्न हो जाता है, फिर जिसकी वृष्टि से कवि-कोकिल कुहकने, मनोमयूर नृत्य करने, और चतुर चातक चहकने लगते हैं, फिर बीच बीच में जो लोकोत्तर भावों की विद्युत् चमकती है, वह हृदय छेद कर जाती है।"

खेद का विषय है कि इस इतने बड़े कविराज के जीवनचरित्र का वृत्तांत बहुत ही कम प्रसिद्ध है और जो कुछ प्रसिद्ध है वह भी ठीक नहीं। इतना पता तो ठीक ठीक लगता है कि विहारीलाल महाराज जयसिंह के दर्बार में थे और संवत् १७१९ (१६६२ ई०) में अपनी सुप्रसिद्ध सतसई को पूरा किया था और महाराज जयसिंह ने उन्हें एक एक दोहे पर एक एक अशर्फ़ी पारितोषिक दी थी।

दूसरी आपत्ति का उत्तर यही हो सकता है कि इतिहास की ओर अरुचि होने से यह बात कुछ असंभव नहीं है कि ऐसी बात प्रसिद्ध न हो सकी हो। दूसरे केशव की प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि बुंदेलखंड से हुई थी और बिहारी की व्रज से। उस समय रेल तार डाक का प्रबंध तो था नहीं, संभव है जिसकी जहाँ से प्रसिद्धि हुई हो उसे लोगों ने वहीं का अनुमान कर लिया हो। तीसरे संभव है कि बिहारी ने इस बात को प्रकाशित करना अनुचित समझा हो कि मेरे पूर्वजों ने ओड़छा में इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी और अब मुझे अनुपयुक्त स्वामी पाकर उसे छोड़ना पड़ा। इसमें अपनी और अपने पूर्व अन्नदाता की निंदा समझकर इसे दबा रखा हो। चौथे बिहारी को आत्मश्लाघा से चिढ़ थी, उनके हृदय ने यह स्वीकार न किया हो कि अपने पूर्वजों के बल पर मैं गौरव प्राप्त करूँ।

अस्तु, जो कुछ हो यह सब अनुमान ही अनुमान है। निश्चय कौन कह सकता है। परंतु इतना अवश्य है कि इसके पक्ष में जितने प्रमाण उतने विपक्ष में नहीं हैं।

"शिवसिंहसरोज"कार तथा डाक्तर ग्रियर्सन साहब ने विहारीलाल को ब्रज का चैाबे माना है। परंतु यह ठीक नहीं प्रतीत होता क्योंकि स्वयं विहारीलालजी लिखते हैं "जनम लियो द्विजराज कुल सुबस बसे ब्रज आय। मेरे हरौ कलेस सब केशव केशवराय।" इसकी टीका हरिचरणदासजी करते हैं "केशव विहारी को पिता और केशवराय भगवान, द्विजराज चंद्र ताके कुल में जो भगवान प्रगट भए सोई द्विजराज ब्राह्मणश्रेष्ठ के कुल में अब ब्रज में आए भए हैं, हमारे कलेश को हरो"। लालचंद्रिका टीका में लल्लूलालजी लिखते हैं "श्लेषअर्थ केशव पिता अरु हरि केशवराय। वे द्विजकुल ये चंद्रकुल प्रगटे अर्थ जताय।" गोस्वामी श्रीराधाचरणजी अनुमान करते हैं कि केशव भगवान, केशवराय विहारी के पिता, क्योंकि मथुरा में जो भगवान की मूर्ति है वह केशवदेव नाम से प्रसिद्ध है। "राय" शब्द से वह अनुमान करते हैं कि ये भाट थे क्योंकि राय भाटों की पदवी है और भाट जाति ब्राह्मण से क्षत्रियों में उत्पन्न होने के कारण अनुलोमों में अपनी गणना करके अपने को द्विज मानते हैं। उक्त गोस्वामीजी यह भी अनुमान करते हैं कि केशवराय ही विहारी के विद्यागुरु भी थे क्योंकि और किसी गुरु का नाम नहीं मिलता और यह दोहा सतसई के प्राय: अंत में पाया जाता है।

मेरे चित्त में इस विषय में बहुत दिनों से संदेह चला आता था और कुछ निश्चय न होता था कि क्या ठीक है। विहारीलाल ब्राह्मण थे या भाट? ब्राह्मण थे तो ब्रज के चैाबे या और कहीं के? केशवराय कौन? क्या सुप्रसिद्ध भाषासाहित्यकार केशवदास ही तो नहीं इनके पिता थे?

एक दिन मैं एशियाटिक सोसाइटी के लिये हिंदी पुस्तकों की नोटिस करा रहा था कि केशवदासजो रचित "विज्ञानगीता" हाथ

में आई। उसमें देखा तो विदित हुआ कि केशवदास जी प्राय: अपने को केशवराय भी लिखते थे। केशवदास जी सनाढ्य ब्राह्मण बुंदेलखंड उड़छा के रहनेवाले थे और राजा मधुकरशाह के बेटे इंद्रजीतसिंह की आज्ञा से 'रसिकप्रिया' और 'रामचंद्रिका' और इंद्र-जीत के भाई वीरसिंह की आज्ञा से 'विज्ञानगीता' तथा प्रवीनराय पातुर के लिये 'कविप्रिया' बनाई थी। केशवदासजी विज्ञानगीता में अपना वर्णन यों करते हैं।

"केशव तुंगारन्य में नदी बेतवै तीर।
नगर ओड़छो बहु बसै पंडित मंडित भीर॥
तहाँ प्रकास सों निवासु मिश्र कृष्णदत्त को।
अनेक पंडिताग्रनी सुदास विष्णुभक्त को॥
सुकासिनाथ तासु पुत्र विज्ञ कासिनाथ को।
सनाढ्य कुंभवार अंस बंस वेदव्यास को॥
तिनके केशवराय सुत भाषा कवि मति मंद।
करी ज्ञानगीता प्रगट श्री परमानँद कंद॥
सोरह सै बीते बरस विमल सतसठा पाइ।
भई ज्ञानगीता प्रगट सबहिन को सुखदाइ॥"

इन्होंने रसिकप्रिया संवत् सोलह सौ अड़तालीस में और राम-चंद्रिका सोलह सौ अट्ठावन में बनाई। केशवदासजी का प्रथम स्थान टेहरी बतलाते हैं फिर ओड़छे में कहते हैं कि राजा मधुकरशाह के दर्बार में आ रहे थे, परंतु विज्ञानगीता में केशवदासजी ने लिखा है कि कृष्णदत्त मिश्र को राजा मधुकरशाह ने पुराण की वृत्ति दी थी। उनके पुत्र काशीनाथ और उनके केशवदास जी हुए। राजा इंद्रजीत के यहाँ प्रवीनराय पातुर एक वेश्या थी। वह बड़ी सुंदरी और कविता में निपुण थी। बादशाह अकबर ने उसको बुलवाया, राजा

इंद्रजीत ने न भेजा, इस पर बादशाह ने जुर्माना किया, तब केशवदासजी ने राजा बीरबल को जाकर यह सवैया सुनाया—

"पावक पच्छि पशू नग नाग नदी नद लोक रच्यो दशचारी।
केशव देव अदेव रच्यो नरदेव रच्यो रचना न निवारी ॥
कै नरनाह बली बरबीर भयो कृतकृत्य महा व्रतधारी।
दै करतापन आपन ताहि दियो करतार दोऊ करतारी ॥"

बीरबल ने सिफारश कर जुर्माना माफ कराया पर प्रवीनराय को हाजिर होना पड़ा। बादशाह ने प्रवीनराय से कहा—"युवन चलत तिय देह ते चटकि चलत केहि हेतु।" प्रवीनराय ने उत्तर दिया—"मनमथ बारि मसाल कों सैंति सिहारो लेतु ॥" फिर बादशाह ने कहा—"ऊँचे ह्वै सुर बस किए सम ह्वै नर बस कीन्ह।" प्रवीनराय ने कहा "अब पताल बलि बस करन उलटि पयानो कीन ॥" प्रवीनराय ने बादशाह से निवेदन किया "विनती राय प्रवीन की सुनिए साह सुजान (जहान ?)। जूँठी पातर भषत हैं बायस बारी स्वान ॥" बादशाह ने प्रसन्न हो उसे बिदा किया। केशवदासजी ने लिखा है कि राजा इंद्रजीत ने मुझे २१ गाँव दिए। केशवदासजी की कविप्रिया और रसिकप्रिया ही को लोग प्रथम साहित्य के नियमों का ग्रंथ मानकर उन्हें साहित्य का आचार्य्य मानते हैं और उसे पढ़कर लोग कविता करते हैं, परंतु एक ग्रंथ साहित्य का हिततरंगिणी नामक* मित्रवर श्री बाबू जगन्नाथदास (रत्नाकर) जी के हाथ आया है जो संवत् १५९८ का बना है और एक ग्रंथ विष्णुविलासीलाल रचित विष्णुविलास पूज्यपाद भारतेंदुजी के पुस्तकालय में वर्तमान है जो संवत् १६८० का लिखा हुआ है परंतु बनने का समय नहीं दिया है। केशवदासजी की कविता के विषय में ये दोहे प्रसिद्ध हैं—

* यह ग्रंथ भारतजीवन प्रेस बनारस में छप गया है।

"सूर सूर तुलसी ससी उड़गन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकास ॥
उत्तम पद कवि गंग को कविता को बलबीर।
केशव अर्थ गँभीर को सूर तीन गुनधीर ॥"

किसी ने कहा है कि केशवदासजी की कविता नारियल के समान है कि ज्यों ज्यों छीलते जाइए, गरी निकलती आवे।

अब यह तो निश्चय हुआ कि केशवदासजी का नाम केशवराय भी था और वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। 'राय' शब्द से भाट का संदेह दूर हुआ। एक प्राचीन दोहा कवि विहारीलाल के विषय में प्रसिद्ध है—

"जनम ग्वालियर जानिए खंड बुँदेले बाल।
तरुनाई आई सुभग मथुरा बसि ससुराल ॥"

इस दोहे को उक्त गोस्वामीजी ने भी उद्धृत किया है। अब मेरा अनुमान यह कहने लगा कि विहारीलालजी का ननिहाल या तो ग्वालियर में था या केशवदासजी पहले ग्वालियर में थे और वहाँ इनका जन्म हुआ फिर बाल्यावस्था बुंदेलखंड में आई अर्थात् ओड़छे में रहे और युवावस्था मथुरा में आई। यहाँ इनकी ससुराल थी। इस दोहे से और विहारी के "जनम लियो द्विजराज कुल" से मेल मिल गया। समय भी ठीक मिलता है संवत् सोलह सै सरसठ में केशवदास ने 'विज्ञानगीता' बनाई और संवत् १७१९ (संवत् ग्रह शशि जलधि छिति छठ तिथि वासर चंद। चैत मास पख कृश्न में पूरन आनँदकंद) में विहारी ने सतसई संपूर्ण की। सतसई एक समय में नहीं बनी वरंच विहारी के जन्म भर के दोहों का संग्रह है और कई वर्षों में बनी है। यह बात प्रसिद्ध भी है और सतसई के देखने से भी यह प्रगट होता है। शिवाजी से जयसिंह ने संवत्

१७११ (१६६५ ई०) में दक्षिण में युद्ध को रोक औरंगजेब से संधि कराई थी। उस समय विहारीलाल ने यह दोहा कहा था—

"घर घर हिंदुनि तुरकिनी, देति असीस सराहि।
पतिन राखि चादर चुरी, तैं राखी जैसाहि॥"

इससे भी और पीछे काबुल पर सन् १६२८ ई० में जयसिंह ने चढ़ाई की थी। उस समय विहारी ने कहा था—

"यों दल काढ़े बलख तें, तैं जयसाह भुआल।
बदन अघासुर के परे, ज्यों हरि गाय गुआल॥"

इसके बहुत पहले जब विहारीलाल जयसिंह के यहाँ गए, यह दोहा—

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास एहि काल।
अली कली ही सों रम्यो, आगे कौन हवाल॥"

लिखकर भेजा था। ये सब दोहे सतसई में संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त सतसई का क्रम एक सा कहीं नहीं मिलता। जितनी प्रतियाँ मिलेंगी सबमें भेद होगा। महाराज जयसिंह ने ता० १० जुलाई सन् १६६७ (संवत् १७२४) में इस लोक से प्रस्थान किया था। उनके मरने के पाँच वर्ष पूर्व ही सतसई के दोहे संग्रह हो गए थे, फिर कुछ पता नहीं लगता कि उनके पीछे विहारी कहाँ रहे और क्या करते रहे और कौन सी कविता रची।

यद्यपि विहारी की युवावस्था व्रज में आई थी और व्रजभाषा के वे पूर्ण ज्ञाता हो गए थे तथापि बुँदेलखंडी भाषा की बू नहीं गई थी। उदाहरण के लिये कुछ दोहे उद्धृत किए जाते हैं।

"मोर चंद्रिका श्यामसिर चढ़ि कत करति गुमान।
लखबी पायन तर लुठत सुनियत राधामान॥
कंजनयनि मंजन किए बैठी ब्योरति बार।
कच अँगुरिनि बिच दीठि दै निरखति नंदकुमार॥

छुटै न लाज न लालचौ प्यौ लखि नैहरगेह ।
सटपटात लोचन खरे भरे सकोच सनेह ॥
पिय बिछुरन को दुसह दुख हरषि जाति प्यौसाल ।
दुरजोधन लौं देखियत तजति प्रान यह बाल ॥
उठि ठकठक इतनो कहा पावस के अभिसार ।
देखि परी यों जानिबी दामिनि घन अँधियार ॥
कौन भाँति रहिहै विरद अब देखिबी मुरारि ।
बीधे मोसों आनि कै गीधे गीधहि तारि ॥

दूसरा प्रमाण यह है कि विहारी जिस राजदर्बार में रहते थे और जहाँ उनके पूर्वजों ने आदर पाया था वहाँ कोई अनुपयुक्त राजा गद्दी पर बैठा और किसी अयोग्य पुरुष का आदर बढ़ गया तथा विहारी की कविता को समझनेवाला कोई न रहा । तब विहारी ने उस देश को दुखित होकर छोड़ दिया और महाराज जयसिंह के दर्बार में चले आए । विहारी के हृदय का भाव नीचे लिखे दोहों से स्पष्ट प्रगट होता है ।

"बसै बुराई जासु तन ताही को सनमान ।
भलो भलो करि छोड़िए खोटे ग्रह जप दान ॥
बड़े न हूजै गुनन बिनु बिरद बड़ाई पाय ।
कहत धतूरे सों कनक गहनो गढ़यो न जाय ॥
संगति सुमति न पावहीं परे कुमति के धंध ।
राखौ मेलि कपूर में हींग न होति सुगंध ॥
सबै हँसत करतार दै नागरता के नाँव ।
गयो गरब गुन को सबै बसे गँवारे गाँव ॥
अति अगाध अति औथरे नदी कूप सर बाय ।
सो ताको सागर जहाँ जाकी प्यास बुझाय ॥

मीत न नीत गलीत है लै धरिए धन जोरि।
खाए खरचे जौ जुरै तौ जोरिए करोरि॥
जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब की अपत कटीली डार॥"

(इस दोहे में पहले के राजा से वर्तमान राजा के भेद को दिखलाया है)

अरे हंस या नगर में जैयौ आपु बिचार।
कागनि सों जिन प्रीति करि कोयल दई बिडार॥
वे न इहाँ नागर बड़े जिन आदर तो आब।
फूल्यो अनफूल्यो भयो गँवई गाँव गुलाब॥
बहँकि बड़ाई आपनी कत राचति मति भूल।
बिनु मधु मधुकर के हिए गड़ै न गुड़हर फूल॥

(मेरी समझ में विहारी ने मधुकरशाह ओड़छा के सुयोग्य राजा से अयोग्य वंशधर पर लक्ष्य करके यह दोहा कहा है।)

मरत प्यास पिंजरा पर्‌यो सुआ समै के फेर।
आदर दै दै बोलिए बायस बलि की बेर॥
नहिं पावस ऋतुराज यह तजि तरवर मति भूल।
अपत भए बिनु पाइहैं क्यों नव दल फल फूल॥

(यह कदाचित् राज्य छोड़ने के समय कहा हो।)

शीतलता अरु सुगँध की महिमा घटी न मूर।
पीनसवारे जो तज्यो सोरा जानि कपूर॥
जो सिर धरि महिमा मही लहियत राजा राव।
प्रगटत जड़ता आपनी मुकुट पहिरियत पाँव॥
चले जाहु ह्याँ को करै हाथिन को व्यौपार।
नहिं जानत यहि पुर बसैं धोबी और कुम्हार॥

करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि।
रे गंधी मतिअंध तू अतर दिखावत काहि॥

अस्तु, मेरे अनुमान में विहारीलाल सनाढ्य ब्राह्मण ओड़छा-निवासी परम विद्वान् मिश्र कृष्णदत्त के प्रपौत्र, काशीनाथ के पौत्र और भाषा कवि केशवदास के पुत्र थे। ओड़छा में अपनी कविता का यथार्थ आदर न पाकर इन्होंने उसे छोड़ा। कविकुलगुरु मथुरा अपनी ससुराल में जा बसे। ये परम अनुरागी ब्रजलीला के अंतरंग उपासक थे। इन्होंने कहा है—

"सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥"

मथुरा में आने पर जयपुर गए। जयपुर में उस समय महाराज मानसिंह के बेटे महाराज जयसिंह राज्य करते थे। उक्त महाराज अपनी आगतप्राययौवना किसी रानी के प्रेम में ऐसे मुग्ध हो रहे थे कि राजकाज सब छोड़ रात दिन रनिवास ही में निवास करते थे। विहारी ने चट यह दोहा लिखकर महाराज के पास भेजा—

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों रम्यो, आगे कौन हवाल॥"

महाराज अत्यंत प्रसन्न होकर बाहर निकल आए और एक सौ मुहर इन्हें इनाम दी, तथा और भी दोहे इन्हें सुनाने को कहे। इन्होंने समय समय पर दोहे सुनाए और इनाम पाया। तभी से महाराज ने इन्हें बराबर अपने साथ रखा। जब जब लड़ाई पर गए, ये बराबर साथ थे। दक्षिण की लड़ाई (संवत् १७११) में इनके साथ रहने का प्रमाण "घर घर हिंदुनि तुरकिनी" और काबुल की चढ़ाई के समय "यों काढ़े दल बलख तें" ये दोहे हैं। सं० १७१९ में इन्होंने सात सौ दोहे बन जाने पर सबका संग्रह करके सतसई नाम रख-

कर उसे पूरा किया। कुछ दोहे सात सौ के ऊपर भी इनके मिलते हैं। सतसई के दोहे ऐसे अनूठे और अद्भुत बने कि इसी पर अक्षर कामधेनु की कहावत ठीक ठीक घटती है। ४८ मात्रा के दोहा ऐसे छोटे छंद में इतनी सुंदरता से इतने भाव का भर देना और उन भावों का मूर्त्तिमान आँख के सामने खड़ा कर देना काम विहारीलाल ही का था। अहा!

"किती न गोकुल कुलबधू, काहि न केहि सिख दीन।
कौने तजी न कुलगली, ह्वै मुरली सुर लीन॥"

इस दोहे में समुद्र को घड़े में भरकर विहारी ने अनहोनी को होनी कर दिखाया।

इसमें इतने भाव और अलंकार भरे हैं कि यदि केवल इसे ही कोई जी लगाकर पढ़ ले तो भाषा का अच्छा कवि हो जाय।

इस सतसई पर बहुत सी टीकाएँ हैं। "शिवसिंहसरोज"-कार लिखते हैं कि इस पर १८ तिलक तक मैंने देखे हैं। डाक्टर ग्रियर्सन इस पर इतनी टीकाओं का नाम बतलाते हैं—(१) चंद्र, (२) गोपाल शरण, (३) सूरति मिश्र, (४) कृष्ण, (५) करण, (६) अनवर खाँ, (७) जुल्फेकार, (८) यूसुफ खाँ, (९) रघुनाथ, (१०) लाल, (११) सरदार, (१२) लल्लूजीलाल, (१३) गंगाधर, (१४) रामबक्स। इनमें से सर्वोत्कृष्ट सूरति मिश्र की टीका है। और भी कई टीकाएँ छूट गई हैं जिनमें से हरिचरण-दास और ठाकुर की प्रसिद्ध हैं।

इस पर कुंडलिया भी कई कवियों ने की है जिनमें पठान सुल-तान की सबसे अच्छी मानी जाती है परंतु वह पूरी नहीं मिलती। लोग अनुमान करते हैं कि पूरी बनी भी नहीं थी। पंडित जोखूराम की कुंडलिया भी प्रसिद्ध है। पूज्यपाद भारतेंदुजी ने कुंडलिया

बनानी आरंभ की थी परंतु वह सौ दोहों से अधिक पर न बनी थी कि बीच ही में कई विघ्नों के कारण वह कार्य्य रुक गया। उसका नाम सतसई शृंगार है।

परमानंदजी कवि ने इसका अनुवाद संस्कृत में दोहा छंदों में किया है और संस्कृत ही में उस पर टीका भी की है। यह ग्रंथ भी बहुत ही सुंदर बना और शृंगार-सप्तशती नाम से भारतेंदुजी ने छपवाया था तथा उक्त कवि को पाँच सौ रुपया पारितोषिक भी दिया था।

सतसई में जो क्रम दोहों का अब मिलता है वह कहते हैं कि शाहजादा आजमशाह के लिये संगृहीत हुआ था और इसी से इसको अजीमशाही भी कहते हैं।

"शिवसिंहसरोज"कार लिखते हैं कि इनकी देखादेखी कइयों ने सतसई बनाई परंतु सब में विक्रम सतसई और चंदन सतसई कुछ अच्छी बनी। कोई कोई कहते हैं यह सतसई संस्कृत के "गोवर्धन सप्तशती" के ढंग पर बनी। जो हो, यह सतसई भाषा कविता की टकसाल है।

कवि विहारीलाल का स्वभाव बड़ा ही उच्च और खरा जान पड़ता है। इन्होंने भाटों की भाँति झूठी खुशामद से अपने ग्रंथ को नहीं भरा है। जिस महाराज जयसिंह ने इनको इतना आदर और धन दिया उनकी प्रशंसा में केवल ये ही कई एक दोहे लिखे हैं जो यहाँ प्रकाशित किए जाते हैं—

"चलत पाय निगुनी गुनी धन मनि मुक्तामाल।
भेट होत जयसाह के भाग चाहियत भाल॥
रहत न लखि जयसाह मुख लखि लाखन की फौज।
जाँचि निराखर हूँ चलैं ले लाखन की मौज॥
प्रतिबिंबित जयसाहदुति दीपति दर्पन धाम।
सब जग जीतन को करयो काम व्यूह मनु काम॥

अनी बड़ी उमड़ी लखैं असि बाहक भट भूप।
मंगल करि मान्यो हियैं भौ मुखमंगल रूप॥

जयसिंह के साथ ये रहा करते थे, संभव है कि बादशाह औरंगजेब के दर्बार में भी अवश्य ही गए होंगे, परंतु उनकी प्रशंसा में कुछ भी नहीं लिखा है।

विहारी श्रीवृंदावनविहारी के अंतरंग विहार के उपासक थे परंतु उनका हृदय उदार भावों से परिपूर्ण था, मत मतांतर के झगड़ों और दुराग्रह को ये अच्छा नहीं समझते थे, शुद्ध प्रेमोपासक थे। उनके ये दोहे इसके प्रमाण हैं—

"जप माला छापा तिलक सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचे वृथा साँचे राचे राम॥
अपने अपने मत लगे बाद मचावत सोर।
ज्यों त्यों सब ही सेइबौ एकै नंदकिसोर॥"

विहारी का अल्हड़पन भगवान् से भी चलता था। आप कहते हैं—

"मोहि तुम्हें बाढ़ी बहस को जीतै जदुराज।
अपने अपने बिरद की दुहुनि निबाहत लाज॥
समय पलटि पलटै प्रकृति को न तजै निज चाल।
भो अकरुन करुनाकरन यह कपूत कलिकाल॥"

विहारी संस्कृत के पूरे ज्ञाता थे यह तो उनकी कविता से झलकता ही है परंतु फारसी के भी विद्वान् रहे हों तो कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि फारसी के शब्द बड़े ही सौंदर्य और मौके से रखे हैं।

"मानहुँ बिधि तन अच्छ छबि स्वच्छ राखिबे काज।
दृग पग पोछन को किए भूषन पायंदाज॥

सब ही तन समुहाति छिन चलति सबनि दै पीठि।
वाही तन ठहराति इक किबिलनुमा लौं दीठि ॥"

मुहावरे और उत्प्रेक्षा के तो बिहारीलाल बादशाह थे। हिंदी में ऐसी बोलचाल और ऐसे गठे हुए वाक्य किसी की कविता में नहीं पाए जाते। उर्दू के कविकुलभूषण नसीम और अनीस भी कदाचित् बोलचाल में इनके सामने न ठहर सकेंगे।

बिहारी ने अपने दोहों में प्राय: सभी अलंकारों तथा साहित्य के भेदों के उदाहरण दिए हैं। हरिचरणदासजी ने प्राय: इनके अलंकारों को कविप्रिया व रसिकप्रिया के वाक्यों से प्रमाणित किया है। परंतु साथ ही शांत रस तथा उपासना के जो थोड़े से दोहे इनके मिलते हैं वे भी कुछ कम नहीं हैं। नीरस वर्णन में भी रस ने बिहारी की लेखनी का साथ न छोड़ा—

"गिरि तें ऊँचे रसिक मन बूड़े जहाँ हजार।
वहै सदा पशु नरनि कौं प्रेमपयोधि पगार ॥"

नीतिविषयक भी कुछ थोड़े से दोहे हैं। उस समय जब कि बड़े बड़े गुणग्राहक थे, और जिस समय का वर्णन बराबर सुनते हैं कि अमुक कवि को अमुक बादशाह वा राजा ने लाखों ही दिया उस समय भी बिहारीलाल लिखते हैं कि—

"थोरे ही गुण रीझते बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह मनौ भए आजु कालिह के दानि ॥"

तो फिर इन दिनों के दानियों से तो परमेश्वर ही रक्षा करे।

अब हम आप लोगों का समय विशेष नष्ट नहीं करना चाहते, क्योंकि सच तो यह है कि बिहारी की कविता की बहुत बड़ाई करना मानों उनका अपमान करना है; जो रस और आनंद उनकी

कविता में है उसे वर्णन करने के लिये कदाचित् कोष में शब्द ही न मिलेंगे।

यह सब अनुमान ही अनुमान पर लिखा गया है। इसलिये इसमें जो कुछ भूल चूक हो उसे क्षमा करके इस विषय में जो महाशय कुछ जानते होंगे और कृपा करके प्रकाशित करेंगे वे मेरे ही क्या, समस्त भाषारसिकों के धन्यवाद-भागी होंगे।

इस लेख को उक्त कवि के दोहे के साथ समाप्त करता हूँ।

"हरि कीजत तुम सों यहै विनती बार हजार।
जिहि तिहिं भाँति डरयो रहौं परयो रहौं दरबार॥"

[संवत् १९५२]

---

(४) आर्य चरित्र*

(क) कविगुरु वाल्मीकि

कविगुरु वाल्मीकिजी ने कब और कहाँ जन्म ग्रहण किया था यह निरूपण करना कठिन है। उनका प्रकृत नाम रत्नाकर था। रत्नाकर का जन्म उत्तम ब्राह्मण कुल में हुआ था, परंतु बहुत बड़ी अवस्था तक उनका चरित्र अत्यंत दूषित रहा। एक अत्यंत नीच जाति की स्त्री के साथ विवाह करके रत्नाकर ने गृह परित्याग किया। हाथ में धनुषबाण लेकर वन वन में घूमा करते और सुयोग पाकर पथिकों का सर्वस्व लूट लेते थे। यही पापवृत्ति ही उनकी जीवन-वृत्ति थी।

एक दिन रत्नाकर दूर ही से कई एक तपस्वियों को आते देखकर अपनी दुष्प्रवृत्ति साधन करने की इच्छा से दौड़ा, और ललकारा—"खबरदार कहाँ जाते हो अब आगे न बढ़ना"। ऋषिगण रत्नाकर की भयंकर मूर्त्ति और कठोर स्वर सुनकर डर गए परंतु उपायांतर न देखकर विनयपूर्वक बोले—"महाशय आपको यज्ञोपवीतधारी देखने से बोध होता है कि आप ब्राह्मण हैं। फिर आप ऐसे भयानक वेष से क्यों हैं और क्यों ऐसे कठोर वाक्य मुँह से निकालते हैं? यह तो निश्चय ही है कि आपका कोई कुअभिप्राय नहीं है।" रत्नाकर ने कहा—"हाँ हम हैं तो ब्राह्मण ही पर स्त्री पुत्र आदि परिवार से वेष्टित हैं उन्हीं के भरण पोषण के लिये धनुषबाण लिए वन वन घूमा करते हैं और पथिक देखते ही उसका सर्वस्व लूट लेते हैं।

---

* यह लेखावली संवत् १९५२ में विद्याविनोद में बँगला से अनुवादित होकर प्रकाशित हुई थी।

आज बड़े भाग से तुम लोगों से भेंट हुई है। अच्छा अब तुम्हारे पास जो कुछ हो सीधे से रख दो नहीं तो फिर अभी हमारा विक्रम देखोगे।" ऋषियों ने कोई उपाय न देखकर कहा—"तुम्हारे कहने के अनुसार हम लोग अपना सर्वस्व देने को प्रस्तुत हैं पर हमारी एक बात का उत्तर तुम्हें देना होगा। तुम जिनके लिये हाय हाय करते हो और ऐसे घृणाकर कार्य में प्रवृत्त हुए हो वे लोग क्या तुम्हारे इस पाप कर्म के भागी होकर परलोक में तुम्हारी नरकयातना में कुछ भी लाघव करेंगे? तुम घर से जाकर पूछ आओ। यदि वे लोग तुम्हारे पाप के भागी होना स्वीकार करें तो बिना बल प्रकाश किए ही हम अपना सर्वस्व तुम्हें दे देंगे। जब तक तुम न आओगे हम लोग यहीं रहेंगे। यदि विश्वास न हो तो हम लोगों को बाँधकर छोड़ जाओ।" यह सुनकर रत्नाकर को कुछ चिंता उदय हुई और मैं पापकर्म करता हूँ यह कुछ कुछ समझ में आया। तब वह घरवालों का मनोगत भाव जानने के लिये चला।

घर आकर स्त्री और बेटों को बुलाकर कहा—"हम तुम लोगों से एक बात पूछने आए हैं, सच कहना, खबरदार झूठ न बोलना।" उन लोगों के सच कहने की प्रतिज्ञा करने पर रत्नाकर ने पूछा—"हम वन वन नित्य घूमकर बहुतेरे लोगों को लूटा करते हैं जिसमें प्राय: बहुत लोगों को जान से भी मारना पड़ता है। इस प्रकार हम जो कुछ लाते हैं वह अकेले नहीं खा जाते तुम लोगों को बाँटकर खाते हैं, वरंच तुम्हीं लोगों के लिये हमको यह पापवृत्ति अवलंबन करनी पड़ी। अब हम यह पूछते हैं कि इसका फल अकेले हमी को भोगना पड़ेगा या तुम लोग भी इसके साथी होगे?" रत्नाकर की बात सुनकर उन लोगों ने उत्तर दिया—"हम लोग तुम्हारे अधीन हैं, हम लोगों का प्रतिपालन करना तुम्हारा मुख्य कर्तव्य है, क्योंकि

जब तुमने ब्याह किया था उसी समय भरण-पोषण की प्रतिज्ञा की थी और जब बेटा जन्माया तो उसकी रक्षा भी तुम्हारे ही सिर आई। उसके लिये तुम पाप करो या पुण्य हम लोग क्यों उसका अंश अपने सिर लेंगे ? हाँ तुम्हारे परिवार के होने से तुम्हारे कर्मानुसार लोक-समाज में घृणित या पूजित अवश्य हो सकते हैं।" घर के लोगों का उत्तर सुनकर रत्नाकर को वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने समझा कि हम कैसे भयानक पापाचारी हैं।

रत्नाकर चटपट घर बार छोड़ ऋषियों के पास आया और धनुष बाण दूर फेंककर उन लोगों के पैरों पर गिरकर साश्रुलोचन दीन वचन से बोला—"हे दयालु महर्षिगण, हम बड़े नारकी हैं। हमारे बराबर दुराचारी संसार में कोई न होगा। आज आप लोगों की कृपा से हमें जान पड़ा कि इतने दिन हमने कैसे दुष्कर्म में खोए। अब दयाकर अपने अनुरूप कार्य कीजिए। साधुसमागम का फल हमें प्रत्यक्ष मिले। ऐसा उपाय कीजिए जिसमें घोर नरक से हमारी जान बचे। सिवाय आप लोगों के अब हमें दूसरी गति नहीं है।" दयालु-हृदय ऋषियों ने रत्नाकर की आरत बानी सुनकर आपस में विचार किया—"यद्यपि यह दुर्वृत्त साधु-समाज के उपेक्ष्य है परंतु जब कि अनुतप्त होकर शरण आया है तो सदुपदेश द्वारा इसका उद्धार करना कर्तव्य है।" रत्नाकर से कहा—"पहले तुमको मन की एकाग्रता और पवित्रता संपादन करनी चाहिए क्योंकि बिना इसके उपदेश से कोई फल न होगा इसलिये थोड़े दिन तक राम नाम जपो"। रत्नाकर के मुँह से राम के बदले आम निकलने लगा। उसकी जीभ ऐसी जड़ताभावापन्न हो गई थी कि किसी प्रकार "राम" । शब्द न निकल सका। तब ऋषियों ने उलटकर अर्थात् "मरा मरा" कहना सिखलाया। राम नाम मुँह से न निकलने से रत्नाकर को और भी

घृणा उदय हुई। वह आहार निद्रा छोड़कर रात दिन रामनाम-जप और इंद्रिय-संयम करने लगा। ऐसा अनन्यमना होकर योग साधन करने लगा कि शरीर जड़ पदार्थवत् निश्चल हो गया। पुतिकाओं (दीमकों) ने जड़ पदार्थ के भ्रम से उसके शरीर में वल्मीक बना लिया परंतु उसे कुछ न जान पड़ा।

कुछ काल के पीछे रत्नाकर को उपदेश देने की इच्छा से ऋषि लोगों ने आकर देखा कि रत्नाकर एकाग्र चित्त होकर जप में लगा है और उसके शरीर में वल्मीक बन गई है। यह अद्भुत व्यापार देखकर वे लोग बहुत ही प्रसन्न हुए और उसकी बड़ी प्रशंसा करने लगे, और यथोचित सदुपदेश और शिक्षा देकर बोले—"रत्नाकर तुम्हारे शरीर में वल्मीक बन गई है इससे तुम्हारा नाम वाल्मीकि रखते हैं।" उसी दिन से दस्युराज रत्नाकर ऋषिराज वाल्मीकि हुए। थोड़े ही काल में सब शास्त्रों के पंडित हो गए। धीरे धीरे चारों ओर उनका यश फैल गया और नाना स्थानों से बहुतेरे शिष्यगण अध्ययन करने को आने लगे।

एक दिन महर्षि वाल्मीकि ने महा तपस्वी स्वाध्यायसंपन्न वेदविद पंडिताग्रगण्य देवर्षि नारदजी से पूछा—"देवर्षि वर्तमान समय में पृथ्वी पर कौन व्यक्ति गुणवान्, विद्वान्, महाबलपराक्रांत, महात्मा, धर्मपरायण, सत्यवादी, कृतज्ञ, दृढ़व्रत और सच्चरित्र वर्तमान है? कौन व्यक्ति प्राणीमात्र के हितसाधन में तत्पर है? कौन लोकव्यवहार-कुशल, अद्वितीय सुचतुर और प्रियदर्शन है? कौन व्यक्ति क्रोध के वशवर्ती नहीं है? संग्राम में किसके क्रोध को देखकर देवतागण भी भयभीत होते हैं? हे तपोधन, कौन मनुष्य ऐसे गुणों से संपन्न हैं यह आपके अतिरिक्त कोई नहीं जानता। कृपापूर्वक बताइए, इसको जानने के लिये हमें बड़ी उत्कंठा है।"

त्रिलोकदर्शी महर्षि नारद ने प्रसन्न होकर कहा—"हे तपोधन, आपने जिन गुणों का वर्णन किया वे साधारण मनुष्यों में असंभव हैं। इक्ष्वाकु वंश में श्रीरामचंद्र नामक अयोध्या के राजा हैं, वही इन सब अमानुष गुणों से विभूषित हैं। हम उनका वृत्तांत वर्णन करते हैं जी लगाकर सुनो"। अब नारदजी ने श्रीरामचंद्रजी का जीवनवृत्तांत वाल्मीकिजी से कह सुनाया। श्री जानकीजी के उद्धार और राज्याभिषेक तक कहकर बोले—"हे ऋषिराज, अयोध्याधिपति श्री रामचंद्र इस समय अपने भाइयों के साथ सिर से जटाभार उतारकर फिर से पुत्र के समान प्रजापालन में तत्पर हैं। उनके राज्य में प्रजा हृष्ट-पुष्ट, आधिव्याधिरहित, दुर्भिक्षभय-शून्य और धार्मिक होगी।"

वाल्मीकिजी नारदजी के मुख से सुने हुए रामचंद्रजी के वृत्तांत को सोचते हुए शिष्यों के साथ तमसा नदी के तट पर उपस्थित हुए। स्नान की इच्छा से बल्कल पहिरकर सुंदर कर्दमशून्य स्थान खोजते हुए वन में इधर उधर घूमने लगे। वहाँ एक जोड़ा क्रौंच पक्षी मधुर स्वर से गान करता हुआ विहार कर रहा था; इतने ही में एक व्याधे ने क्रौंच को मार डाला। क्रौंच के निहत और शोणित-लिप्त शरीर को पृथ्वी में तड़पते देखकर क्रौंची रोने लगी। धर्मपरायण महर्षि वाल्मीकि क्रौंच की दशा देखकर विषाद-सागर में डूब गए। क्रौंची के करुण स्वर से उनका अंतःकरण विदीर्ण होने लगा। उस समय इस काम को नितांत अधर्मजनित समझकर कहने लगे—

"मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥"

अर्थात् "हे निषाद! तैने क्रौंच मिथुन में से एक को विनाश कर दिया, अतएव तू कभी प्रतिष्ठा-भाजन नहीं हो सकता।"

जो रत्नाकर वन वन घूमकर रात दिन मनुष्यों का जीवन नष्ट किया करते थे, आज वही रत्नाकर एक साधारण पक्षी की मृत्यु से कैसे दुःखित हुए हैं और निषाद की कितनी निंदा कर रहे हैं ! ज्ञान की कैसी आश्चर्य महिमा है। साधु-संग का कैसा आश्चर्य प्रभाव है ? साधु-संग के प्रभाव से आज रत्नाकर दिव्य ज्ञान लाभ करके देवताओं की श्रेणी में परिणत हुआ। जो ज्ञानसंपन्न है वही मनुष्य है; केवल नरदेह पाने ही से मनुष्य नहीं होता।

वाल्मीकि निषाद को शाप देकर विचार करने लगे—हमने इस शकुनि के शोक में यह क्या कहा ! अपने प्रधान शिष्य भरद्वाज को बुलाकर कहा—वत्स! हमारा यह वाक्य चरणबद्ध है। अक्षर-वैषम्य-विरहित और स्वर-लयसहित गान करने के उपयुक्त है, विशेष करके जब कि यह शोकवेग में हमारे मुख से अनायास निकल गया है तो इसको श्लोक नाम से कहना चाहिए।" तभी से चरणबद्ध वाक्य अर्थात् पद्यमय रचना को श्लोक कहने लगे। महर्षि वाल्मीकि ने केवल यही एक श्लोक नहीं बनाया वरंच रामायण नामक सुप्रसिद्ध महाकाव्य बनाया है, जिसमें श्रीरामचरित्र का चमत्कार रूप से वर्णन किया है।

वाल्मीकिजी मन ही मन इस श्लोक पर विचार कर रहे थे उसी समय प्रजापति ब्रह्माजी उनके दर्शन के लिये उपस्थित हुए। वाल्मीकि ने उठकर अर्घ्य पाद्य आसन देकर साष्टांग दंडवत् किया। भूतभावन भगवान् ब्रह्मदेव आसन पर विराजमान होकर कुशल-मंगल पूछकर सहास्यवदन बोले—"ऋषिवर, तुम्हारे मुख से जो वाक्य निकले हैं वे श्लोक ही के नाम से प्रसिद्ध होंगे तुम इसमें संदेह मत करो। यह श्लोक हमारी ही प्रेरणा से तुम्हारे मुख से निकला है, अब तुम समग्र रामचरित्र का वर्णन करो। तुमने देवर्षि नारदजी के मुख से जिस प्रकार से सुना है उसी के अनुसार धर्मशील गंभीर स्वभाव,

बुद्धिमान् श्रीरामचंद्र, लक्ष्मणजी तथा सीताजी और राक्षसों के वृत्तांत की रचना करो। इस संसार में जब तक पहाड़ नदी आदि रहेंगे तब तक तुम्हारी बनाई यह रामायण प्रचलित रहेगी और तुम्हारा कीर्ति-शरीर त्रिलोक में स्थायी रहेगा।" ब्रह्माजी यह कहकर अंतर्धान हो गए। महर्षि वाल्मीकि अर्थ धर्म काम मोक्ष प्रतिपादक समुद्र की भाँति नाना पदार्थों के आधारस्वरूप श्रवणमनोहर रामचरित्र की रचना करने लगे। जिस समय भगवान् रामचंद्र लंका विजय करके अयोध्या का राज्य कर रहे थे उसी समय महर्षि ने रामायण बनाई। अस्सी हजार वर्ष पूर्व रामायण बनने की कथा प्रवाद है। वाल्मीकिजी ने पहले रावणवध तक छः कांड बनाकर राम-तनय लव-कुश को पढ़ाया था पीछे से उत्तरकांड बनाया। लव-कुश का जन्म और पालन वाल्मीकिजी के आश्रम में हुआ था। ये जैसे सुंदर थे वैसे ही सुकंठ भी थे। वाल्मीकिजी ने अपने ग्रंथ के प्रचार के निमित्त उनको सिखलाया था। ये लोग बहुत ही शीघ्र समग्र रामायण कंठस्थ करके ब्राह्मणसमाज में गान करने लगे। एक तो वाल्मीकि-जी की परम मधुर रचना, तिस पर परम रूपवान सुकंठ दोनों बालकों के गान से कुछ ऐसा चमत्कार आनंद प्राप्त होता था कि कदाचित् पृथ्वी में ऐसा मधुर गान कभी किसी ने न सुना होगा। थोड़े ही दिन में वाल्मीकिजी की रचना और बालकों की संगीत-निपुणता का यश फैल गया। जहाँ ये गान करते वहाँ इतने श्रोता आ जाते कि स्थान न मिलता। रामचंद्रजी ने भी समाचार सुनकर इन लोगों को बुलाकर आद्योपांत अपना चरित्र सुना था।

वाल्मीकि आदिकवि, "मा निषाद" आदिकविता और रामा-यण आदिकाव्य है। केवल भारतवर्ष ही का क्यों यह सारे संसार का आदिकाव्य है, इसी से वाल्मीकिजी का कविकुलगुरु नाम

पड़ा। अतएव यह आदि-श्लोक सबको कंठस्थ कर रखना उचित है। यह भारतवासियों क्या समग्र मानव-मंडली के अपूर्व गौरवपूर्ण इतिहास का प्रथम पृष्ठ और उच्चतर निदर्शन है। संसार में दूसरे किसी श्लोक को आदिम कहकर परिचय नहीं दिया जा सकता।

वाल्मीकि आदिकवि हैं केवल इतना ही नहीं वरंच वे महाकवि थे। उनकी रचना अतिमधुर, सरल और हृदयग्राही है। उत्कृष्ट कल्पना-शक्ति में वे भारत के सब कवियों में श्रेष्ठ हैं और उनका स्वभाव-वर्णन अत्यंत चमत्कारी है। एक पंडित ने कहा है—"जो एक बेर वाल्मीकिजी वर्णन कर चुके हैं उसको फिर से वर्णन करके संसार में कोई प्रशंसा नहीं पा सकता।" उसी ने स्थानांतर में कहा है—"रामायण और महाभारत की अपेक्षा उत्कृष्ट काव्य संसार में दूसरा नहीं है।" निदान कविता के प्रथम पथप्रदर्शक होकर इन्होंने जैसा काव्य लिखा है, अनेक महाकवियों ने उत्तम रीति से शिक्षित होने पर भी उतनी सामर्थ्य नहीं पाई।

वाल्मीकिजी राजनीतिविशारद और ज्योतिष आदि विज्ञानशास्त्र में विशेष पारदर्शी थे। भूगोल विद्या में उनका बड़ा अधिकार था।

(ख) वेदव्यास

महर्षि व्यासजी ने कब और कहाँ जन्म लिया था यह निर्णय करना कठिन है। वीरवर भीष्म पितामह की विमाता यशस्विनी सत्यवती इनकी मा और ख्यातनामा संहिताप्रणेता सुप्रसिद्ध महर्षि पराशर इनके पिता थे। बहुत ही बचपन से विद्याभ्यास में मन लगाने के कारण थोड़े ही दिनों में वेदव्यास सर्वशास्त्र के सुपंडित हो गए। कृष्णवर्ण होने के कारण उनका एक नाम कृष्ण था,

द्वीप में जन्म लेने के कारण एक नाम द्वैपायन और वेद का विभाग करने के कारण उनका नाम "कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास" प्रसिद्ध हुआ।

वे बहुत ही शीघ्र रचना कर सकते थे। महाभारत बनाने की इच्छा होने पर उसको शीघ्र संपूर्ण करने की इच्छा से वे एक अच्छा लेखक खोजने लगे। कहीं अच्छा लेखक न मिलने से श्रीगणेशजी को आह्वान करके उन्होंने अपना मनोगत भाव प्रकाशित किया। गणेशजी बहुत ही शीघ्र लिखते थे, अनर्गल बोलते जाने पर भी बिना एक अक्षर छोड़े बराबर लिख सकते थे। उन्होंने कहा "यदि एक क्षण भी हमारी लेखनी को ठहरना न पड़े तो हम आपके लेखक हो सकते हैं।" व्यासजी ने क्षणमात्र चिंता करके कहा—"हमें स्वीकार है; परंतु हम जो कहेंगे आप उसका यथार्थ अर्थ समझे बिना न लिख सकेंगे।" गणेशजी ने इसको स्वीकार किया, क्योंकि वह केवल लेखक तो थे ही नहीं, सभी विद्याओं में पारदर्शी थे। इसी नियम पर भगवान् गणेशजी ने व्यासदेव का महाभारत लिखना आरंभ किया। व्यासजी बीच बीच में एक एक श्लोक कूटार्थ ऐसे रचना करने लगे कि उसके समझने में गणेशजी को कुछ समय लग जाता। उतने ही अवकाश में व्यासजी बहुत से श्लोक बना लेते। इसी प्रकार उन्होंने लक्षाधिक्य श्लोकविशिष्ट महाभारत ग्रंथ पूर्ण किया। इसमें आठ सौ कूट श्लोक हैं। इनको व्यासकूट कहते हैं। व्यासकूट अत्यंत कठिन हैं।

भगवान कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी ने महाभारत बनाकर पहले-पहल अपने शिष्य वैशंपायन को सिखलाया। वैशंपायन ने अर्जुन के प्रपौत्र राजा जनमेजय को सुनाया। तभी से महाभारत सुनने की प्रथा चली है। महाभारत अत्यंत विस्तीर्ण ग्रंथ है। इसको पुराण, इतिहास, नीतिशास्त्र वा काव्य जो चाहो कह सकते हो। सब प्रकार के विषय

इसमें पूरी रीति से लिखे हैं। धर्मनीति, राजनीति, समाजनीति, लोकयात्राविधान, वाणिज्य, कृषि, शिल्पशास्त्र के सब नियमादि, पूर्वकालीन आचार व्यवहार, राजा और ऋषि आदिकों का जीवन-वृत्तांत और वंशावली प्रभृति सभी विषय उत्तम रीति से वर्णित हैं। मनुष्य मात्र इससे सब अवस्था का उपदेश पा सकते हैं! यह प्रसिद्ध है कि महाभारत में जो कुछ है वह दूसरे स्थान पर हो सकता है, परंतु उसमें जो कुछ नहीं है वह फिर कहीं नहीं है। निरपेक्ष होकर इसको आद्योपांत देखने से कोई पंडित ग्रंथकर्ता के आश्चर्यजनक अध्यवसाय, असामान्य कवित्व-शक्ति और ग्रंथ की गंभीर भावमाधुरी की हजार मुख से प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता। कल्पना-शक्ति में व्यासजी ने पृथ्वी के अनेक कवियों को परास्त किया है। निदान महाभारत के समान दूसरा काव्य पृथ्वी में नहीं है।

किंतु दुःख का विषय है कि हमारे नवयुवकगण उसका पाठ भी नहीं करते। उन्हें नावेल या उपन्यास रुचता है, परंतु जिस ग्रंथ में काव्य का राज्य है, भारतीय गौरव का पूर्ण निदर्शन है, मानव-माहात्म्य का अपूर्व परिचय है और जिसके पढ़ने से मनुष्य को प्रायः सभी ज्ञातव्य विषय विदित हो जाते हैं उस अमानुष ग्रंथ के पढ़ने में उनको किंचिन्मात्र अनुराग नहीं है।

व्यासजी ने वेद का विभाग किया। वेद में गद्य पद्य, और गीति, तीनों प्रकार की रचना है अतएव इसका दूसरा नाम त्रयी है। अंगिरावंशीय महर्षि अथर्वा ने उसमें से कुछ अंश छाँटकर अपने नाम से "अथर्ववेद" विभक्त किया। पद्यमय रचना ऋक् नाम से और गद्यमय रचना यजु नाम से एवं गीतिमय रचनावली को साम नाम से प्रसिद्ध किया। तभी से एक वेद चार नाम से विख्यात हुआ।

व्यासजी प्रथम पुराणकर्ता हैं अर्थात् इन्हीं ने पहले पहल इतिहास लिखना आरंभ किया, पूर्वकाल में जो सब राज्यवंशावली और सृष्टिविवरण प्रभृति लोगों को स्मरण और किसी किसी ग्रंथ में थे वह सब उन्होंने संग्रह किया और अपने जीवनकाल में जो जो घटनाएँ देखी थीं उन सबको एकत्र करके एक पुराण बनाया। उस पुराण को लोमहर्षण को सिखलाया। अठारह पुराण और अठारह उपपुराण व्यासजी के बनाए प्रसिद्ध हैं परंतु नए पंडित लोग कहते हैं कि सब उनके बनाए नहीं हैं और यदि हैं तो निश्चय पीछे के पंडितों ने उनका आकार बढ़ा दिया है, अर्थात् पीछे से अनेक पंडितों ने अनेक श्लोक और अनेक अध्याय बनाकर मिला दिए हैं। जब जिस बात का जिसने प्रचार करना चाहा उसको साधारण जनसमाज में अधिक आदरणीय करने के अभिप्राय से व्यासरचित कह दिया। यदि सब पुराण व्यासजी के बनाए होते तो एक एक विषय में भिन्न भिन्न पुराणों में भिन्न भिन्न मत कभी न होता। सभी ग्रंथ प्रक्षेप से पूर्ण हैं, यहाँ तक कि महाभारत में भी बहुतेरे प्रक्षिप्त श्लोक और अध्याय हैं। अतएव कौन सा और किसमें का कौन सा अंश व्यासदेव की सुललित लेखनी से निकला है यह निश्चय करना कठिन है।

वेदांत दर्शन नामक सुप्रसिद्ध दर्शनशास्त्र भी व्यासदेव-रचित है। प्राचीन दर्शनशास्त्रों में वेदांत दर्शन सर्वोत्कृष्ट है। उसमें व्यासजी ने आश्चर्यजनक क्षमता दिखाई है। यदि पृथ्वी के किसी देश में परमेश्वर का प्रकृत स्वरूप और महिमा निर्णीत हुई है तो वह भारतवर्ष ही है। वेदांत दर्शन ही उस गौरव की मूल भित्ति है। इसी मूल को अवलंबन करके सुप्रसिद्ध शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रचार करके बौद्ध-धर्म-निराकरण और हिंदू-धर्म-रक्षा की थी।

वेदांत दर्शन में ईश्वर के स्वरूप, प्रकृति और कार्य आदि के संबंध में जैसे चमत्कृत विचार हैं उनको सुनने से मोहित होना पड़ता है।

व्यासजी महाकवि, दार्शनिक, इतिहासवित्, राजनीति-विशारद, विज्ञानाभिज्ञ, बहुभाषाज्ञ, अर्थशास्त्रवित् और व्यवहार-कुशल थे। उस समय की प्रचलित विद्यामात्र में वे पारदर्शी थे।

(ग) महाकवि कालिदास*

लोगों का विश्वास है कि प्रायः दो हजार वर्ष हुए, भारतवर्ष को अलंकृत करने के लिये कालिदास ने जन्म ग्रहण किया था, परंतु आधुनिक पंडितों ने प्रमाणित किया है कि उनका जन्म १४०० वर्ष पूर्व हुआ था। कालिदास ने लड़कपन खेल कूद में गवाँया, लिखने पढ़ने का कभी नाम भी न लिया। विवाह होने के समय तक उन्हें अक्षर का भी ज्ञान नहीं था। यह प्रवाद प्रसिद्ध है कि वह जैसे मूर्ख थे, उनकी बुद्धि भी वैसी ही स्थूल थी। उनकी बुद्धि ऐसी स्थूल थी कि एक दिन एक पेड़ की डाली पर आगे की ओर बैठकर उसी डाली की जड़ काटने लगे। डाल कटने से आप भी गिर पड़ेंगे ऐसी मोटी बात भी वे न समझ सके। यह प्रवाद अलीक जान पड़ता है क्योंकि वे मूर्ख अवश्य थे परंतु निर्बोध नहीं थे। उनकी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय उनके सब काव्यों में जाज्वल्यमान है।

सारदानंद नामक राजा की विद्योत्तमा नाम की एक कन्या थी। वह कन्या जैसी रूपलावण्यवती थी वैसी ही विद्यावती भी थी। उसने प्रतिज्ञा की थी कि जो उसको विचार में जीतेगा उसी से वह विवाह करेगी, नहीं तो विवाह करेगी ही नहीं। नाना देशों से अनेक राज-

---

* इस विषय का निर्णय भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रलिखित जीवनचरित्र में देखो।

कुमार पंडितगण आए और विचार में परास्त हुए। उन लोगों को इस प्रकार से हतनाम होकर विद्योत्तमा पर विरक्ति हुई और स्त्री की ऐसी धृष्टता और अहंकार को असह्य समझकर उन्होंने आपस में परामर्श किया कि किसी प्रकार से महामूर्ख से इसका विवाह कर देना चाहिए। खोजते खोजते कालिदास को उन्होंने उपयुक्त पात्र ठहराया।

पंडितों ने कालिदास को, पंडितवेष बनाकर, विद्योत्तमा के सामने उपस्थित किया। कौशल करके यह निश्चय किया कि मौखिक विचार न होगा, सांकेतिक विचार होगा। जिस समय कालिदास सभा में आए, सभास्थित सब राजा तथा पंडित लोग महा संभ्रम के साथ उठ खड़े हुए और महा आदर के साथ सबसे उत्तम आसन उनको दिया। यह देखकर विद्योत्तमा ने समझा, यह अवश्य कोई महाविद्वान् पंडित है। विचार आरंभ हुआ। कालिदास ने एक उँगली दिखलाई। विद्योत्तमा ने समझा, यह कहते हैं एक ईश्वर है। उसने इसके उत्तर में तीन उँगलियाँ दिखलाईं अर्थात् ईश्वर से सत्, रज, तम त्रिगुणात्मक ब्रह्मा विष्णु महेश हुए। कालिदास ने दो उँगलियाँ दिखलाईं। विद्योत्तमा ने समझा, ये पुरुष और प्रकृति की बात कहते हैं। इस प्रकार कालिदास के जो मन में आता वैसे ही अंड बंड उँगली दिखलाते। विद्योत्तमा उसका अर्थ कुछ न समझ सकती। सभास्थित पंडित लोग उन संकेतों के ऐसे चमत्कार-पूर्ण अर्थ करने लगे और कालिदास के पांडित्य की ऐसी प्रशंसा करने लगे कि विद्योत्तमा को पराजय स्वीकार करनी ही पड़ी। विचार में विजय करने से विद्योत्तमा का विवाह महा समारोह के साथ कालिदास से हुआ।

विवाह के पीछे विद्योत्तमा और कालिदास एक साथ सोए थे कि एक ऊँट का शब्द उनके कान में पहुँचा। विद्योत्तमा ने पूछा—

यह किसका शब्द है? कालिदास ने जो उत्तर दिया उससे उनकी विद्या प्रकट हो गई। उन्होंने कहा—उष्ट बोलता है। उसकी जड़ जिह्वा से "उष्ट्र" न निकल सका। विद्योत्तमा आश्चर्य में हो गई। समझा कि समझने में भ्रम हुआ है फिर से पूछा—क्या कहा? कालिदास ने विद्योत्तमा के स्वर से समझा कि हमने अशुद्ध कहा है अतएव शुद्ध करके कहा—"उट्र बोलता है।" पहली बेर "र"-कार छोड़कर कहा था, अबकी "ष"कार न निकल सका। विद्योत्तमा सिर पीटकर रोने लगी। उसने समझा कि पंडितों ने चातुरी करके घोर मूर्ख के साथ मेरा विवाह करा दिया। बड़े बड़े पंडितों को छोड़कर वज्र मूर्ख के साथ विवाह होने से उसे मर्मभेदी दुःख प्राप्त हुआ। मारे दुःख के अचेतन होकर नाना प्रकार के परिताप-वाक्य कह कहकर वह विलाप करने लगी। स्त्री का रोना और परिताप देखकर कालिदास अत्यंत लज्जित और दुःखित हुए तथा अपने को महाघृणित जानकर उन्होंने आत्महत्या का संकल्प किया किंतु बहुत सोच विचारकर अंत में स्थिर किया कि यदि पूरी विद्या उपार्जन कर लेंगे तो घर लौटेंगे नहीं तो कभी देश में मुँह न दिखावेंगे।

उसी समय कालिदास विद्या सीखने के लिये घर से चल खड़े हुए। कहीं दूर देश में किसी अच्छे आचार्य के पास जाकर दिन-रात परिश्रम करके विद्या सीखने लगे। उनके चित्त में ऐसी लज्जा, दुःख और घृणा उदय हुई थी कि शारीरिक क्लेश पर तनिक भी ध्यान न देकर अहोरात्र पाठ में लगे रहते। बुद्धि और मेधा अत्यंत तीव्र थी। थोड़े ही दिनों में नाना शास्त्र-विशारद हो गए। इतने थोड़े दिनों में इतनी अधिक विद्या उपार्जन कर ली कि लोग इनको सरस्वती का वरपुत्र समझने लगे। तब घर आकर अपनी शोक-संतप्ता सहधर्मिणी को अतुल आनंद प्रदान किया।

कालिदास का यश:-सौरभ चारों ओर देश-देशांतर में फैल गया। उज्जयिनीपति सुप्रसिद्ध महाराज विक्रमादित्य ने इनको बुलाकर अपना सभासद बनाया, फिर तो ये उनके नवरत्न के शिरोरत्न हो गए।

कालिदास की तीक्ष्ण बुद्धि की पोषक निम्नलिखित जनश्रुति है। महाराज भोज की सभा में कई एक श्रुतिधारी पंडित थे। कोई श्लोक या ग्रंथ हो कोई एक बेर, कोई दो बेर, कोई तीन बेर सुनकर ही कंठस्थ कर लेते थे। महाराज भोज ने घोषणा कर दिया था कि "जो कोई नया श्लोक बनाकर हमारी सभा में लावेगा उसको एक लाख रुपया पारितोषिक मिलेगा।" इस पारितोषिक के लालच से बहुतेरे पंडित देश-देशांतर से नवीन श्लोक रचना करके भोज को सुनाने लगे। परंतु ुतिधारी पंडित लोग उसको पुराना कहकर उपेक्षापूर्वक एक एक करके सुना देते। बेचारे पंडित निरुत्तर होकर चले जाते थे। कालिदास ने महाराज भोज की चतुरता समझ-कर निम्न श्लोक बनाकर सुनाया——

"स्वस्तिश्रीभोजराज ! त्रिभुवनविजयी धार्मिक: सत्यवादी
पित्रा ते मे गृहीता नव नवतियुता रत्नकोटिर्मदीया।
तां त्वं मे देहि तूर्णं सकलबुधजनैर्ज्ञायते सत्यमेतत्
नो वा जानन्ति केचित् नवकृतमिति तद्देहि लक्षं ततो मे॥"

अर्थात् महाराज ! आपका मंगल हो। आप त्रिभुवनविजयी, धार्मिक और सत्यवादी हैं। आपके पिता ने हमसे ९९ करोड़ स्वर्णमुद्रा लिया था, आपके सभापंडित लोग यह जानते हैं। अतएव वह हमको तुरंत दिला दीजिए और पंडित लोग न जानते हों तो यह हमारा श्लोक नया है अतएव अंगीकृत कर लाख रुपया हमें दीजिए। श्रुतिधर पंडितों ने कहा, हम नहीं जानते। इस प्रकार एक सामान्य बात में कालिदास ने पंडितों को पराजित किया। कालिदास की

बुद्धिमत्ता की परिचायक ऐसी अनेक गप्पें प्रसिद्ध हैं। वे चाहे सब सत्य न हों परंतु उनसे यह अवश्य सिद्ध होता है कि वह विलक्षण बुद्धिमान थे।

महाकवि कालिदास ने रघुवंश और कुमारसंभव काव्य, अभिज्ञान शाकुंतल, विक्रमोर्वशी और मालविकाग्निमित्र नाटक, मेघदूत, नलोदय, ऋतुसंहार और महापद्यषट्क प्रभृति खंड काव्य एवं स्मृतिचंद्रिका प्रभृति कालज्ञान ग्रंथ बनाया था। इन सब ग्रंथों में कालिदास ने आश्चर्य कवित्व शक्ति का परिचय दिया है। जो उनका ग्रंथ देखेंगे उनको मानना पड़ेगा कि कालिदास के समान कवि पृथ्वी पर किसी देश में किसी काल में नहीं जन्मा था। इँगलैंड के शेक्सपियर के अतिरिक्त संसार के किसी कवि के साथ कालिदास की तुलना नहीं हो सकती। शेक्सपियर भी मानव-हृदय-वर्णन करने में कालिदास की तुलना कर सकते हैं, शेष विषयों में कालिदास से न्यून ही हैं। उनकी रचना में ऐसा माधुर्य है कि श्रवण मात्र से मन मोहित हो जाता है। अर्थ समझ में न आने से भी मीठी लगती है। कहते हैं कि इनकी चार कविता सुनकर कर्नाटाधिपति ने सारा कर्नाट राज्य इनको दे दिया था। विशेष क्या कहें, जर्मन देश के प्रसिद्ध कवि गेटे ने अभिज्ञान शाकुंतल का जर्मन अनुवाद देखकर लिखा है "यदि कोई वसंत के पुष्प और शरद के फल की अभिलाषा रखता हो, यदि कोई चित्त की आकर्षण तथा वशीकरणकारी वस्तु चाहे, यदि कोई प्रीतिजनक और प्रफुल्लकर वस्तु का अभिलाषी हो, यदि कोई स्वर्ग और पृथिवी दोनों नाम एक में समावेश करना चाहे, तो हे अभिज्ञान शाकुंतल! हम तुम्हारा ही नाम बतावेंगे और यही कहने से सब कहा गया।" जहाँ एक विदेशीय व्यक्ति ने अनुवाद का अनुवाद पढ़कर यह कहा है तहाँ हम लोग क्या कहकर उनकी

क्षमता का परिचय दें। कालिदास का नाम अत्यंत सामान्य लोग तक जानते हैं। उनके नाम का ऐसा गौरव है कि सब अपनी बनाई कविता कालिदास् की बनाई कहना चाहते हैं।

कालिदास की उपमा में अति चमत्कार है। उन्होंने ऐसे संक्षेप में और ऐसे लोकप्रसिद्ध विषय को लेकर उपमा का संकलन किया है कि पाठक मात्र को अनायास पढ़ते ही उपमान और उपमेय में सादृश्य हृदयंगम हो जाता है। उनकी रचना में सर्वत्र ही मधुर शब्द-विन्यास, सुंदर उपमा और चमत्कार-पूर्ण स्वभाववर्णन दृष्ट होता है। शब्दाडंबर वा शब्दालंकार द्वारा उन्होंने कभी ग्रंथ को नीरस नहीं होने दिया है। बहुत से लोग समझते हैं कि कालिदास में यह शक्ति नहीं थी परंतु नलोदय के पढ़ने से यह संदेह दूर हो जाता है। नलोदय में इन्होंने शब्दालंकार चूड़ांत दिखलाया है। कहते हैं विक्रमादित्य की सभा के एक रत्न घटखर्पर ने अपने नाम का एक यमक रचना-पूर्ण ग्रंथ लिखकर गर्व के साथ कहा "हमारे समान जो कोई यमक रचना कर देगा तो उसके यहाँ हम खर्पर (खप्पर) में जल भरेंगे।" कालिदास ने घटखर्पर का दर्प चूर्ण करने ही के लिये नलोदय काव्य बनाया। वास्तव में नलोदय काव्य अत्यंत ही उत्कृष्ट है।

कालिदास केवल कवि ही नहीं थे; वेदांत शास्त्र के भी पूरे पंडित थे। उनके बनाए काव्यों ही में इसके प्रमाण जाज्वल्यमान हैं। योगाकर्षणशक्ति, पदार्थ की कठिनता का कारण, जलकण-समूह के साथ सूर्यकिरणसंयोग से इंद्रधनुष की उत्पत्ति, जल के वाष्प से मेघ की उत्पत्ति, चंद्र और सूर्य का आकर्षण ही ज्वारभाटे का कारण, सूर्य की किरण चंद्रमा में प्रतिफलित होने ही से चंद्रमा की ज्योति, पृथ्वी की छाया से चंद्रग्रहण इत्यादि अनेक विज्ञान-शास्त्र-सिद्ध बातें कालिदास के काव्यों में दिखाई देती हैं।

जब कि काव्य में उन्होंने इसका वर्णन किया है तो फिर इस शास्त्र में व्युत्पन्न होने में क्या संदेह है? इन्होंने मेघदूत में पहाड़, नदी और प्रदेशों का जैसा सुंदर वर्णन किया है और रघुवंश में रघुदिग्विजय प्रसंग में पारस्य, चीन प्रभृति देश का जैसा वर्णन किया है उससे जान पड़ता है कि भूगोलविद्या में भी उनका पूरा अधिकार था।

कालिदास ऐसे अलौकिक कवित्व-शक्ति-संपन्न तथा ऐसे अशेष शास्त्रज्ञ होने पर भी ऐसे निरभिमान और विनीत थे और अपने को ऐसा क्षुद्र समझते थे कि सुनकर आश्चर्य होता है। उन्होंने रघुवंश के आदि में लिखा है—

"तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्।"
"मंदः कवियशःप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्॥
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः।"

अर्थात् रघुवंश-वर्णन हमारे लिये बेड़े पर दुस्तर सागर के पार करने की चेष्टा के समान है। लंबे मनुष्य का लभ्य जो फल है उसके लाभ के लिये जैसे वामन हाथ उठाकर लज्जास्पद होता है, वैसे ही हम भी कवियशप्रार्थी होकर उपहासास्पद होंगे।

(घ) बुद्ध शाक्यसिंह

शाक्यसिंह ने लगभग २५०० वर्ष हुए हिमगिरि समीपस्थ भागीरथी के तट पर कोशलराज्यांतर्गत वास्तुग्राम में मायादेवी के गर्भ से जन्म लिया। शाक्यवंशोद्भव शुद्धोदन राजा उनके जनक थे। एक दिन अगहन महीने में मायादेवी लुंबिनी नामक मनोहर उद्यान देखने गई थीं। वहीं घूमते घूमते प्रसव-वेदना उपस्थित हुई। वहीं एक वृक्ष के नीचे मायादेवी ने शाक्यसिंह को प्रसव किया। जन्म

के सात ही दिन पीछे शाक्यसिंह मातृहीन हो गए। पितृव्यपत्नी गौतमी ने इनका लालन पालन किया। इनके जन्म के उपरांत शुद्धोदन राजा के सब मनोरथ सिद्ध हुए इससे उन्होंने इनका नाम सिद्धार्थ और सर्वसिद्धार्थ रखा। शाक्यवंश में ये सर्वश्रेष्ठ थे इसलिये शाक्यसिंह नाम विख्यात हुआ। असाधारण बुद्धि-प्रभाव से ये बहुत शीघ्र शस्त्र और शास्त्र विद्या में निपुण हो गए। शाक्यसिंह अपरिमित बलशाली थे। एक दिन खेल ही खेल रास्ते में गिरे एक बड़े वृक्ष को उठाकर उन्होंने दूसरे स्थान पर रख दिया।

किशोर वयस ही में सहाध्यायियों के साथ खेल कूद में समय नष्ट न करके वे एकांत वन में बैठकर गंभीर चिंता में मगन रहते। राजा ने पुत्र की संसार से वैराग्य हेतुभूत अवस्था देखकर उसे बहुत शीघ्र विवाह-बंधन में बाँध दिया। मंत्रियों के विवाह का प्रस्ताव करने पर शाक्यसिंह ने कहा—"यदि मनोमत कन्या हो तो विवाह करने में कोई बाधा नहीं है।" बहुत खोजने पर गोपा नाम्नी एक असाधारण रूप-गुण-संपन्ना कुमारी सिद्धार्थ की उपयुक्त पात्री स्थिर हुई। पहले तो गोपा के पिता दंडपाणि ने शाक्यसिंह को मनुष्यत्व-विहीन और विषय-ज्ञान-शून्य समझकर अपनी सर्वगुण-संपन्ना कन्या देना अस्वीकार किया, परंतु फिर जब उनको असाधारण बुद्धिमान् और बलवीर्य-संपन्न जाना तो आह्लाद से कन्यादान किया। कहते हैं कि दंडपाणि की प्रतिज्ञा थी कि जो शिल्प विद्या में निपुण होगा उसी को कन्या देंगे। शाक्यसिंह ने शिल्प विद्या में पूरी निपुणता दिखलाई थी। ऐसी सुंदर और सर्वगुणमयी स्त्री पाने पर भी शाक्यसिंह ने यशोधरा और उत्पलवर्णा नाम की और दो कन्याओं से विवाह किया था। इनमें यशोधरा के गर्भ से राहुल नाम एक पुत्र हुआ।

शाक्यसिंह ने राज्यकुल में जन्म ग्रहण करके बाल्यकाल से सुख स्वच्छंदता में दिन बिताए थे सही परंतु उसमें वे कभी आसक्त नहीं हुए थे। सदा बंधुगण से कहा करते—पापमय संसार में कुछ भी स्थिर नहीं है, कुछ भी सत्य नहीं है, सब अस्थिर असत्य है। जीवन दो काठ से रगड़कर निकाले अग्नि-स्फुलिंग की भाँति बहुत शीघ्र लय हो जाता है। कौन जानता है कहाँ से जीव आता है और कहाँ जाता है? जब कभी किसी वृद्ध, आतुर या मृत शरीर को देखते तो यही चिंता करते कि मनुष्य मात्र ऐसे ही जरा, रोग और मृत्यु के अधीन है। शरीर का गौरव व्यर्थ है। यह चिंता ऐसी प्रबल हुई कि वे धीरे धीरे अचैतन्य से हो गए। पुत्र की मानसिक अवस्था का ऐसा परिवर्तन अवगत होने पर राजा ने मन फेरने के लिये नाना प्रकार के उद्योग किए किंतु सब निष्फल हुआ।

उनतीस वर्ष की अवस्था में एक दिन वे एक कृषक की कुटी में गए। उसकी और उसके परिवार की नितांत दुरवस्था देखकर अत्यंत व्यथित होकर सांसारिक अनित्य सुख की चिंता करते करते वे वन में जाकर एक जंबुवृक्ष के नीचे बैठ गए। बैठे बैठे वे संसार के आदि अंत और मनुष्य के क्षणस्थायी सुख की चिंता कर रहे थे कि एक संन्यासी दिखलाई पड़े। उनकी शांत मूर्त्ति में संतोष का पूर्ण विकास देखकर युवराज ने समझा कि संन्यासाश्रम ही सर्वोत्कृष्ट है। यह प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। संन्यासी का जीवन सबसे श्रेय और सब काल में विज्ञगण-कर्तृक प्रशंसनीय है। यह विचार कर उन्होंने संन्यासधर्म लेने का संकल्प किया और घर आकर अपने पिता और सहधर्मिणी-गण से अपना कठोर अभिप्राय प्रकाश किया। उन लोगों ने बहुत कुछ उपदेश देकर इस संकल्प को दूर करना चाहा। गोपा ने प्रेम-पूर्ण वचनों से कितना समझाया, नाना प्रकार

से हृदय-विदारक खेद और आर्तनाद किया, किंतु उन्होंने एक न सुना। धर्म के लिये उन्मत्त होकर वे उसी दिन आधी रात को धीरे धीरे शय्या से उठकर अश्वशाला में आए और वहाँ से एक वायु-वेग-गामी घोड़ा खोल उसी पर चढ़ संसार की माया और सुख का आलय परम रम्य राज्यप्रासाद छोड़ जीव के मंगल-साधन के उद्देश्य से इच्छित संन्यास धर्म अवलंबन की इच्छा से चल दिए। पहरेदार लोग सो गए थे; किसी को भी समाचार न मिला। केवल साईस को साथ लिए निशाचर-परिपूर्ण विपद-संकुल कानन-पथ में रात भर चले गए। सवेरे घोड़े से उतर अपने बहुमूल्य रत्न-जटित गहने उतार-कर साईस को दिए और उसे कपिलवस्तु नगर लौट जाने की आज्ञा दी। कहा—"पिता और बंधुगण से कह देना हमारे लिये शोकाकुल न होंगे। हम तत्त्वज्ञान लाभ करते ही फिर आकर आप लोगों का दर्शन करेंगे।"

साईस को बिदा करके वहीं शिखा मुड़ा, राजवेश त्यागकर उन्होंने गैरिक वस्त्र धारण किया। पहले वैशाल नामक नगर में आकर वे तीन सौ शिष्यों से परिवेष्टित एक सुविख्यात ब्राह्मण पंडित से धर्मशिक्षा लेने लगे। किंतु उनके उपदेश से उनको पूरी तृप्ति न हुई, अर्थात् संसार-सागर से परित्राण मिले ऐसा कोई सदुपदेश न मिला। तब मगध देश की राजधानी राजगृह में एक आचार्य ब्राह्मण के पास गए। उनसे भी इच्छित फल लाभ की संभावना न देख वहाँ से भी प्रस्थान किया। मगधराज बिंबिसार ने इनको रखने की बड़ी चेष्टा की परंतु यह किसी प्रकार से नहीं रहे। यहीं इनको पाँच शिष्य स्वमतानुयायी मिले। शाक्यसिंह ने उन पाँचों शिष्यों के साथ राज-गृह छोड़कर एक निकटस्थ वन में छः वर्ष तक कठोर तप साधन किया। छः वर्ष व्यतीत होने पर इनको विश्वास जन्मा कि तापस

व्रत आत्मा को शांत और मन को परिशुद्ध न करके धर्मपथ में व्याघात और बाधक होता है, और अनाहार से शरीर दुर्बल और बुद्धि में अल्पता होती जाती है। तब तो तापस व्रत के कठोर नियमादि परित्याग करके उन्होंने उत्तम रूप से पान भोजन आरंभ किया। यह देखकर उनके शिष्यों ने उन्हें धर्मत्यागी समझ उनका साथ छोड़ दिया। इसमें इन्होंने कुछ भी दु:ख वा अपमान न माना वरंच तब से अकेले निर्जन स्थान में रहकर अनन्य मन से धर्मालोचन करने लगे। ब्राह्मण आचार्य का संकीर्ण मत और कठोर तापस व्रत मनुष्यों को मुक्ति नहीं प्रदान कर सकता, यह विश्वास क्रमश: इनके हृदय में दृढ़ हो गया। मुक्ति का प्रशस्त पथ कौन है और क्या करने से मानवगण संसार की दु:खराशि से विमुक्ति पा सकते हैं—अब यही चिंता इनके हृदय में बलवती हुई। बहुत दिन तक चिंता करके जो स्थिर किया था वही उपाय मुक्ति का ठीक है इसमें इनको कुछ संदेह न रहा। तभी से इनका नाम "बुद्ध" अर्थात् ज्ञानी हुआ। इस समय इनका वय केवल ३६ वर्ष था। महर्षि कपिलकृत निरीश्वर सांख्य दर्शन ही इनके नूतन धर्म की मूल भित्ति था।

इस समय ये अपने इस मत को पृथ्वी पर मनुष्यों में प्रचार करने के लिये उत्सुक हुए। लोग अज्ञान-कूप में निमग्न हैं और अलीक धर्म में विश्वास करके प्रकृत पथ का अनुसरण नहीं करते, यह देखकर उन लोगों को सत्यधर्म की शिक्षा देने के लिये वे व्यग्र हुए। इस उद्देश से पहले विद्या और धर्मालोचना के प्रधान स्थान काशी में गए। वहाँ पूर्व परित्यक्त पाँचों शिष्यों को अपने मत में दीक्षित किया। क्रमश: सहस्रावधि नगर-वासियों ने इनका मत ग्रहण किया। वहाँ से छ: शिष्य साथ लेकर वे राजगृह गए। वहाँ कालांतक

नामक प्रसिद्ध मठ में एक गंभीर और भावरस-पूर्ण वक्तृता करके उन्होंने ख्याति प्राप्त की, और कात्यायन प्रभृति कई एक प्रधान व्यक्तियों को परास्त करके अपने मत में मिलाया। फिर श्रावस्ती नगर में जाकर धर्मसूत्र प्रचार और कोशल के राजा प्रसेनजित् प्रभृति अनेक प्रधान व्यक्तियों को अपने मत में दीक्षित किया। इसी भाँति मथुरा, उज्जैन, कामरूप, विंध्याचल प्रभृति स्थानों में परिभ्रमण करके बहुत से लोगों को अपने मत में दीक्षित किया। गंगा के उत्तर और दक्षिण तीरस्थ राजाओं में घोर विवाद उपस्थित था, इन्होंने वह विवाद मिटाकर उन लोगों को भी अपने मत में मिलाया।

महाराज शुद्धोदन ने अपने यहाँ कपिलवास्तु में बुलाने के लिये एक बेर आठ दूत भेजे थे परंतु शाक्यसिंह की सुमधुर वक्तृता से वे लोग ऐसे मोहित हो गए कि उनके मत में दीक्षित होकर उन्हीं के पास रह गए। तब राजा ने चर्म नामक मंत्री को भेजा, परंतु वह भी दूतों की भाँति दीक्षित होकर वहीं रह गया। अंत में राजा ने कपिलवास्तु में न्यग्रोध नामक एक विहार बनवाया और वहीं वे पुत्र को लिवा लाए। "बुद्ध" नाम प्राप्त होने के बारह वर्ष बाद उन्होंने विहार में आकर पिता से भेंट की। वहाँ आकर वे सब शाक्यवंशियों को अपने मत में लाए।

इस भाँति शाक्यसिंह ने एक नए धर्म की सृष्टि और प्रचार करके अस्सी वर्ष की अवस्था में दो शाल-वृक्षों के बीच उदरामय रोग से प्राण त्याग किया। कोई आसाम के अंतर्गत कुशीग्राम और कोई काशी और पटना के मध्यवर्ती गंडक नदी के तीरस्थ कुशीनगर को उनका मृत्यु-स्थान कहते हैं। उनके आज्ञानुसार उनका शरीर उस समय के सम्राटों की प्रथा के अनुसार दग्ध हुआ। चिताभस्म के लिये मगध, प्रयाग, कपिलवास्तु आदि आठ स्थानों के निवासियों में

घोर विवाद उपस्थित हुआ। अंत में एक ब्राह्मण ने इस भस्म के आठ भाग करके यह विवाद मिटाया। सभों ने अपने अपने देश में इस भस्म के ऊपर एक एक चैत्य बनाया। भस्मविभागकारी ब्राह्मण ने भस्मपात्र और एक दूसरे व्यक्ति ने चितावशिष्ट अंगार लेकर जुदा जुदा एक एक चैत्य बनाया। उनमें से कई एक चैत्य अब तक वर्तमान हैं। कहते हैं इनके चार दाँत इस देश में स्थान स्थान पर लाए गए थे। बौद्ध धर्मावलंबी गण इन दाँतों को बड़ा पवित्र मानते हैं।

शाक्यसिंह ने जन्म ग्रहण तो राजकुल में किया था परंतु वृक्ष ही के नीचे वे प्रसव हुए, वृक्ष ही के नीचे बैठकर उन्होंने संन्यास ग्रहण किया, और वृक्ष ही के नीचे मानव लीला का संवरण किया। उनका प्रचारित धर्म लोगों को ऐसा हृदयग्राही हुआ था कि उस समय के सभी धर्म निस्तेज हो गए थे। हिंदू धर्म भी लुप्तप्राय हो गया था। अब तक पैंतालीस करोड़ मनुष्य इस मत के अवलंबन करनेवाले हैं। पृथ्वी पर इतने अधिक लोग किसी मत के अवलंबन करनेवाले नहीं हैं।

शाक्यसिंह केवल बौद्धों ही में पूज्य नहीं हैं वरंच हिंदू लोग भी उनके प्रति विशेष सम्मान दिखाते हैं। हिंदू शास्त्रकारों ने बुद्ध को विष्णु का अवतार माना है। बौद्ध धर्म हिंदू धर्म के संपूर्ण विरुद्ध नहीं है केवल अंश मात्र है।

(ङ) शंकराचार्य *

हजार वर्ष से अधिक हुआ शंकराचार्य ने मलावार प्रदेश में नांबुरी ब्राह्मण वंश में जन्म ग्रहण किया था। कोई कोई कहते हैं इनका जन्म कर्नाट देशांतर्गत तुंगभद्रा नदीतीरवर्ती शृंगभेरि नामक नगर में

* शंकरदिग्विजय और भारतभूषण भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रलिखित जीवनचरित देखो।

हुआ। सर्वशास्त्रविशारद शिवगुरु इनके पिता थे। अष्टम वर्ष में उपनयन होने पर वे वेदाध्ययन में प्रवृत्त हुए। इनकी ऐसी चमत्कार-पूर्ण मेधा, सुतीक्ष्ण बुद्धि और दृढ़ अध्यवसाय था कि बारह ही वर्ष की अवस्था में वे सब शास्त्रों में असाधारण व्युत्पन्न हो गए। कोई कोई कहते हैं कि पंचम वर्ष में उपनयन हुआ और अष्टम में वेदादि सब शास्त्रों का अध्ययन करके वे गुरुगृह से लौट आए थे। ये निखिल वेद, एवं सकल प्रकार दर्शन, पुराण, इतिहास, काव्य और अलंकार प्रभृति सब शास्त्रों में सुपंडित हो गए थे। सांख्य, पातंजल प्रभृति तर्कशास्त्रों को ऐसे मनोयोग के साथ उन्होंने पढ़ा था कि उनमें से तर्कजाल उठाकर बड़े बड़े पंडितों को परास्त कर देते। अत्यंत सुकुमार वयस में उनकी ऐसी तीक्ष्ण बुद्धि, असामान्य विद्या, और प्रौढ़ोचित विज्ञता देखकर सब लोग विस्मयापन्न होते थे।

कहते हैं शंकराचार्य ने एक वर्ष के वय में मातृभाषा की वर्णमाला सुख से स्मरण कर ली थी, दूसरे वर्ष में लिखे अक्षर पहिचानकर पढ़ना सीख लिया था, तीसरे वर्ष पुराण और काव्य सुन सुनकर सीख लिया था। उनकी स्मरणशक्ति ऐसी थी कि जो एक बेर सुनते वही कंठस्थ हो जाता। उनको पढ़ाने में गुरु को कुछ भी कष्ट न होता, वरंच उनके द्वारा गुरु के श्रम में लाघव होता, क्योंकि वे प्रायः सहाध्यायियों को पाठ पढ़ा देते थे।

अत्यंत अल्प वयस में इनके पिता को परलोक प्राप्त हुआ। कोई कोई कहते हैं तीन ही वर्ष की अवस्था में वे पितृहीन हो गए थे। अष्टम वर्ष से घर के काम काज देखने पड़े। उसी समय संसार का सारा भार इनके सिर पड़ा। इतनी समाई भी न थी कि उससे अनायास दिनपात होता। इससे जीविका और गृहस्थी के सब झगड़ों का इन्हीं को उद्योग करना पड़ता। शंकराचार्य ऐसी दुरवस्था में

पढ़कर भी विद्याशिक्षा से विरत नहीं थे। जो समय मिलता वह केवल विद्या-शिक्षा ही में लगाते, क्षणमात्र भी विश्राम न करते।

थोड़े ही दिन में इनका यशसौरभ चारों ओर फैल गया। राजा लोग भी दर्शनार्थी होकर इनके घर आने लगे। केरलाधिपति ने इनके यहाँ आकर विविध धर्मोपदेश लिया था। उन्होंने इन्हें बहुत सा धन देना चाहा था परंतु अर्थ में किंचिन्मात्र लोभ न होने से इन्होंने कहा—"यह धन दरिद्रों को दान करो, हमें इसकी आवश्यकता नहीं है।" शंकराचार्य की माँ इनके गुणों से ऐसी मुग्ध हो गई थी कि इनके कारण एक दिन भी उसे वैधव्य यंत्रणा का अनुभव न हुआ।

इनको बहुत ही छोटी अवस्था में संन्यास धर्मग्रहण की इच्छा हुई। इन्होंने मन ही मन स्थिर किया था कि अकृतदार होकर ईश्वरोपासना और धर्म-चिंतन में जीवन अतिवाहित करेंगे। माता के कातर स्नेहपूर्ण वाक्यों से वे उस समय अपना मनोरथ सिद्ध न कर सके, परंतु विवाह नहीं किया। कैसे माता से आज्ञा मिले रात दिन इसी की चिंता करने लगे।

एक दिन शंकराचार्य गाँव से थोड़ी दूर पर अपने किसी आत्मीय के घर गए थे। रास्ते में एक क्षुद्र नदी पड़ती थी। उस नदी में बहुत ही कम जल था इससे सब लोग अनायास पार चले जाते, नाव का प्रयोजन न होता। जाने के समय तो शंकराचार्य अनायास चले गए परंतु आने के समय देखा नदी बरसात के जल से उमड़ आई है, पार जाने का कोई उपाय नहीं है। थोड़ी देर सोच विचार कर नदी पार करने के अभिप्राय से हिले परंतु जल इतना बढ़ गया था कि उनके गले तक पहुँच गया। प्रबल स्रोत में बह जाने का ढंग देखकर माता पुत्र के जीने की आशंका देखकर अत्यंत भीता और कातरा हुई। शंकराचार्य ने यही सुंदर अवसर अपने मनोरथ के पूर्ण होने का देखकर कहा—"मा यदि तुम हमें संन्यास धर्म लेने की आज्ञा

दो तो इस विपद से छूटने की आशा है नहीं तो कोई आशा नहीं, क्योंकि परमेश्वर संन्यासी पर अत्यंत प्रसन्न रहते हैं। आपके संन्यास धर्म ग्रहण की आज्ञा देने से वह अवश्य हम लोगों की रक्षा करेंगे।" माँ ने उस समय विवेचना का अवसर न पाया, पुत्र के रक्षणार्थ अगत्या इस प्रस्ताव पर सम्मति दे दी। शंकराचार्य दूने साहस के साथ माँ को पीठ पर लेकर तैरकर नदी पार हुए। आत्मीय स्वजनों को एकत्र करके माता के रक्षणावेक्षण का भार उन पर छोड़कर कभी कभी आप आकर भेट कर जायँगे इत्यादि वाक्यों से आश्वस्त कर वे ईप्सित प्रदेश की ओर चले गए।

पहिले कर्णाट देश में जाकर कुछ दिन रहे, वहाँ विविध धर्मशास्त्र और दर्शन पढ़ा। वहीं बौद्ध धर्मशास्त्र भी पढ़ा। सब शास्त्रों को देखकर उन्हें दृढ़ विश्वास जमा कि जगत् का स्रष्टा एक ही अनादि अनंत जगदीश्वर है। भिन्न भिन्न शास्त्रकारों में किसी ने शिव, किसी ने विष्णु, किसी ने शक्ति को सृष्टिकर्ता कहकर निर्दिष्ट किया है सही परंतु ये सब भिन्न नहीं हैं, यह भी शास्त्रकारों ने स्पष्ट प्रकाशित किया है। उन्हें यह विश्वास हुआ कि साधारण मृत्पिंड की भी, प्रकृत ईश्वर समझकर, उपासना करने से उसका फल प्राप्त होता है। भिन्न भिन्न धर्मशास्त्रों में जो परस्पर-विरोधी मत हैं वे सब उनकी तीक्ष्ण बुद्धि से समान बोध हुए। किंतु बौद्धों का "ईश्वर नहीं है" यह वाक्य इन्हें अत्यंत असह्य हुआ। उस समय बौद्धधर्म का भारतवर्ष में ऐसा प्राबल्य हो गया था और हिंदू धर्म की ऐसी दुरवस्था हो गई थी कि यदि उस समय शंकराचार्य सदृश असाधारण बुद्धिशाली हिंदू धर्म के रक्षण में न कटिबद्ध होते तो हिंदू धर्म लुप्त ही हो जाता। शंकराचार्य ने अपने धर्म की ऐसी दुर्दशा देखकर बौद्धधर्म को भारतवर्ष से निकाल देने की प्रतिज्ञा की।

कांचीपुर के राजा हिमशीतल नरपति बौद्धधर्म के बड़े ही पक्षपाती थे। उनकी सभा सदा प्रधान प्रधान बौद्ध पंडितों से परिपूर्ण रहती। शंकराचार्य ने वहाँ जाकर बौद्ध धर्म की अलीकता प्रकाशित की। राजा और पंडित-मंडली अत्यंत क्रुद्ध हुई। शंकराचार्य के विचार की प्रार्थना करने पर राजा ने क्रोधपूर्वक कहा—"बौद्धधर्म की अलीकता प्रमाणित करने की चेष्टा करना बड़ी धृष्टता का काम है।" अंत में वादविवाद के उपरांत यह स्थिर हुआ, कि जो कोई विचार में परास्त होगा उसे घानी पेरने का दंड भोगना पड़ेगा। राजा ने नाना स्थानों से बड़े बड़े बौद्ध पुरोहितों को आमंत्रण करके बुलाया। उन लोगों के साथ शंकराचार्य का विचार हुआ। इनकी अकाट्य युक्ति के आगे बौद्धों के कूट तर्कजाल छिन्न भिन्न हो गए और बौद्ध पंडितों को पराजय स्वीकार करनी पड़ी। राजा उन लोगों को उचित दंड देकर आप बौद्धधर्म छोड़ शंकराचार्य के मत के अनुवर्ती हो गए। शंकराचार्य के इस विजय का पूरा विवरण शिव कांची के श्मशानेश्वर महादेवजी के द्वार पर और भगवती नदी तीरस्थ भेरुली के देवमंदिर में पत्थर पर खुदा है। कांचीपुर से वे तिरुपति नामक स्थान में गए। वहाँ भी बड़े बड़े बौद्ध पंडितों को परास्त किया। इसी भाँति दक्षिण देश को विजय कर पश्चिमोत्तर देश विजय करने की इच्छा से विंध्याचल पार हो काशी आए। यहाँ विविध दर्शनशास्त्र-प्रणेता मंडन मिश्र को विचार में परास्त किया। इसी भाँति काश्मीर वल्लभीपुर प्रभृति उत्तर और पश्चिम के सब प्रदेशों को जीतकर फिर कर्णाट देश को लौटे। फिर दक्षिण के सब स्थानों में भ्रमण करके नाना कीर्ति स्थापित करके उत्तर और पूर्व देश की ओर यात्रा की। नैपाल, कामरूप आदि स्थानों के पंडितों को भी पराजित किया। अंत में काश्मीर

राज्य में सरस्वती पीठ में कुछ दिन रहकर बत्तीस वर्ष की अवस्था में केदारनाथ में मानवलीला संवरण की। कोई कोई कहते हैं कि यवन देश की ओर गए थे फिर वहाँ से नहीं लौटे।

इसी थोड़ी सी अवस्था में नाना शास्त्रों में विशारद होकर भारतवर्ष के नाना स्थानों में घूमकर पंडितों को परास्त करके अद्वैतवाद का प्रचार और स्थान स्थान पर मठ स्थापन करके वेदांत की चर्चा, वृद्धि एवं वेदांत दर्शन, कठादि उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता प्रभृति ग्रंथों के भाष्य तथा कई एक उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना करके वे संसार में चिरस्मरणीय हो गए। दीर्घजीवी होते तो न जाने क्या करते। शंकराचार्य जन्म ग्रहण न करते तो हिंदू धर्म का चिह्न भी कदाचित् न दिखलाई देता। हिंदू धर्म शंकराचार्य का ऋणी है। अद्वैतवाद प्रचलित करना ही इनका मुख्य उद्देश्य था। परंतु वे यह कहते थे कि जो लोग इसे समझने में असमर्थ हैं उनको शिवादि देवताओं की पूजा करना उचित है। इसी कारण से अनेक स्थानों में अनेक देव देवी की मूर्ति की उन्होंने स्थापना की थी।

(च) चाणक्य

प्राय: बाईस सौ वर्ष पूर्व राजनीतिविशारद पंडितवर चाणक्य वर्तमान थे। ये अत्यंत कदाकार और कृष्णवर्ण थे। परंतु प्रतिभा और अध्यवसाय में इनकी समानता कोई न कर सकता था। जिस बात के करने की मन में लाते उसे संपन्न किए बिना कदापि निवृत्त न होते। केवल दृढ़ अध्यवसाय और तीक्ष्ण बुद्धि के बल से इन्होंने महानंद सदृश प्रबल प्रतापी नरपति को सवंश विध्वंस करके चंद्रगुप्त को मगध के सिंहासन पर बिठाया था, और असाधारण बुद्धिमान्

प्रभुभक्त राक्षस मंत्री को अपने वश में लाकर चंद्रगुप्त के मंत्रित्व पर अभिषिक्त करा दिया था।

चाणक्य वेदादि सर्व शास्त्राध्ययन करके गुरुगृह से विवाह करने की इच्छा से घर की ओर लौट रहे थे, रास्ते में कुशा की जड़ से इनका पैर कट गया और क्षताशौच के कारण उस समय विवाह रुक गया। इससे अत्यंत ही क्रुद्ध होकर वहाँ से कुशा निर्मूल करने की इच्छा से एकाग्रचित्त हो कुशा उखाड़ उखाड़ फेंकने और उसकी जड़ में तक्र अर्थात् मठा ढालने लगे। महानंद के दूसरे मंत्री शकटार ने देखकर आश्चर्यपूर्वक पूछा—"ब्राह्मण देवता आप यहाँ इस निरर्थक व्यापार में क्यों व्यर्थ कष्ट उठा रहे हैं?" चाणक्य ने कहा—"रोग और शत्रु अति क्षुद्र होने पर भी उपेक्ष्य नहीं है।" इतना कहकर अपना परिचय और अपनी प्रतिज्ञा का वृत्तांत कह सुनाया। शकटार पहले महानंद का प्रधान मंत्री था, जाति में शूद्र होने पर भी असामान्य बुद्धिमान् और राजनीतिज्ञ था। परंतु स्वभाव अत्यंत उद्धत था, इससे प्रायः राजा पर अयोग्य आधिपत्य प्रकाश कर बैठता। महानंद भी अत्यंत क्रोधी और गर्वित था। वह शकटार के आचरण से ऐसा विरक्त हो रहा था कि सहन न कर सका और एक दिन क्रोध में आकर शकटार को सकुटुंब काराबद्ध कर दिया। वहीं कारागार ही में आहाराभाव से शकटार के कुटुंबवालों ने प्राण-त्याग किया। तभी से मन ही मन शकटार नंदवंश का विषम शत्रु हो गया और इसके नाश करने की उसने प्रतिज्ञा की। फिर मंत्री पद पर अभिषिक्त होने पर भी वह प्रतिज्ञा भूल न सका, अवसर की ताक में लगा रहा। चाणक्य की बात सुनकर और भावभंगी देखकर उसने मन में विचार किया कि इसके समान स्थिरप्रतिज्ञ और अध्यवसायशाली मनुष्य तो कोई दिखाई नहीं पड़ता। इसका स्वभाव क्रोधी और यह

अत्यंत बुद्धिमान्, कार्यदक्ष और कुटिल जान पड़ता है। इसकी सहायता मिलने से हम महानंद को सवंश सहज में नष्ट कर सकेंगे इसमें संदेह नहीं। चाणक्य से कहा—"महाशय, यदि आप नगर में चलकर चतुष्पाठी निर्माण करके रहना स्वीकार करें तो हम अभी सब कुशा बहुत से मनुष्य लगाकर उखड़वा दें।" चाणक्य के स्वीकृति देने पर मंत्री ने वह स्थान तुरंत कुशाशून्य करा दिया और वह उन्हें घर लिवा लाया।

नगर में चतुष्पाठी स्थापित हुई। नाना स्थानों से आकर विद्यार्थी लोग विद्याध्ययन करने लगे। चाणक्य सब शास्त्रों को पढ़ाने लगे। उनकी विद्या और बुद्धि की प्रतिभा देखकर सभों ने समझा कि यह असाधारण पंडित हैं। थोड़े ही दिन में इनकी प्रसिद्धि सारे नगर में हो गई।

चाणक्य के जी में राजा पर किस तरह क्रोधोत्पादन करें, शकटार रात दिन इसी की चिंता करने लगा। इधर राजा के पिता के श्राद्ध का दिन आया। प्रधान मंत्री राक्षस पर चट के ब्राह्मणों को लाने का भार था। परंतु शकटार राक्षस के अज्ञात चाणक्य को चट के आसन पर बिठा आप किसी काम के बहाने वहाँ से चल दिया। राक्षस ने निमंत्रित ब्राह्मणों के साथ आकर देखा कि यहाँ तो पहले ही से एक कदाकार कृष्णवर्ण ब्राह्मण बैठा है। आश्चर्य में आकर पूछा—"महाशय! आप कौन हैं और यहाँ आपको कौन लाया?" चाणक्य ने कहा—"हमें शकटार मंत्री निमंत्रण देकर लिवा लाए हैं।" राक्षस यह सुनकर अपने निमंत्रित ब्राह्मण को राजा के पास ले गया। राजा श्राद्धस्थान में आ रहे थे, राक्षस ने राजा से कहा—"महाराज, हमने आपके आज्ञानुसार इस ब्राह्मण को निमंत्रण दिया था परंतु शकटार मंत्री पहले ही से एक उदासीन ब्राह्मण

को आसन पर बिठा आप कहीं चले गए हैं। वह ब्राह्मण शास्त्रानुसार कदापि वरणीय नहीं है। कृष्णवर्ण, श्यामदंत, रक्तनेत्र ब्राह्मण को श्राद्ध में निमंत्रण देना निषिद्ध है। आगे महाराज की जो इच्छा हो करें।" एक तो महानंद महा अव्यवस्थित चित्त दूसरे शकटार पर सदा से विरक्त था ही तिस पर शकटार के बिना आज्ञा एक अपरिचित ब्राह्मण को बिठाकर आप खसक जाने से महानंद अत्यंत क्रुद्ध हुआ और शीघ्रता से श्राद्धस्थान में आकर चाणक्य का कुत्सित आकार देखकर क्रोधांध हो गया और शिखा पकड़कर उसे आसन से उठा दिया। सभा के बीच में ऐसा अपमान कोई सह्य नहीं कर सकता। चाणक्य तो स्वभावत: तेजस्वी और क्रोधपरायण था ही, राजा के इस भाँति उठा देने पर उसकी लाल आँखें और भी रक्त वर्ण हो गईं, सारा शरीर काँपने लगा और शिखा खुलकर फैल गई। बड़े क्रोध से पृथ्वी पर पदाघात करके बोला—"अरे दुरात्मा महानंद! तैंने जैसा निरपराध हमें अपमानित किया है उसका प्रतिफल तुझे शीघ्र ही मिलेगा। हमारा नाम चाणक्य है। देखो तुम लोग साक्षी रहना, इसने निरपराध केशाकर्षण करके हमारा अपमान किया है। इसी उन्मुक्त शिखा को नंदवंश की काल-भुजंगिनी स्वरूप समझना। हम प्रतिज्ञा करते हैं जब तक नंदवंश का ध्वंस न कर लेंगे, यह शिखा योंही खुली रहेगी।" चाणक्य यह कह तुरंत वहाँ से चला गया। सब लोग राजा के इस गर्हित व्यवहार से अत्यंत असंतुष्ट हुए परंतु कुछ बोल न सके, सिर नीचा करके मन ही मन मसूसकर रह गए।

चाणक्य मारे क्रोध के काँपता हुआ शकटार के घर गया और आनुपूर्वक सब वृत्तांत कह सुनाया। शकटार अपना मनोरथ सिद्ध देखकर अत्यंत सुखी हुआ और चाणक्य का क्रोध बढ़ाने के लिये

अपनी पूर्व दुरवस्था और राजा का असदाचरण कहने लगा। उसी दिन से दोनों नदवंशोच्छेद के उपायान्वेषण में तत्पर हुए।

चाणक्य को शकटार से विदित हुआ कि राजा को आठ बेटे हैं जिनमें सबसे बड़ा बेटा चंद्रगुप्त ही गुणवान् सच्चरित्र और शस्त्र तथा शास्त्र दोनों में निपुण है। प्रजा भी इसी को विशेष चाहती है; परंतु नाइन के पेट से जन्म लेने के कारण और भाई लोग उससे घृणा करते हैं। शेष सातों बेटों में गुण कोई नहीं है केवल पिता के दोषभाग के उत्तराधिकारी हैं। महानंद का भाई सर्वार्थसिद्धि निरा अयोग्य है। राजकर्मचारियों में एक राक्षस मंत्री ही यथार्थ उपयुक्त महा पंडित, सुचतुर और राजभक्त है।

यह सब समाचार पाकर चाणक्य ने चंद्रगुप्त को अपने पास बुलाया और उसको राज्यसिंहासन पर बैठाने का लालच देकर उसको और अपने शिष्यों को साथ लेकर अभीष्ट स्थान को प्रस्थान किया।

चाणक्य रसायन शास्त्र में बड़ा पंडित था, एक प्रकार का ऐसा विष बना सकता था, कि शरीर से छू जाने से ही मृत्यु हो जाती। कहते हैं राजा और राजपुत्रों के लिये चाणक्य ने शकटार के द्वारा विष मिलाकर कुछ निर्माल्य-द्रव्य भेजा जिसके स्पर्श से राजा और राजपुत्रों की मृत्यु हुई। कोई कोई कहते हैं कि शकटार ने अपने हाथ से राजा को मारा और राजपुत्रों ने थोड़े दिन राज्य किया तब चाणक्य ने चंद्रगुप्त से मिलकर उन सभों का नाश किया। राजा और राजपुत्रों के मरने पर मंत्री राक्षस ने महानंद के भाई सर्वार्थसिद्धि को सिंहासन पर बिठाया।

चाणक्य ने देखा कि बिना सैन्य-संग्रह मगध का सिंहासन अधिकृत् करना असंभव है अतएव वह सैन्य-संग्रह करने के लिये देश-देशांतर में भ्रमण करने लगा। पर्वतक नामक एक जंगली राजा के साथ

चाणक्य से भेंट हुई, उससे 'मगध राज्य मिलने पर आधा राज्य बाँट देंगे' कहकर साहाय्य की प्रार्थना की। पर्वतक महा लोभी था। चाणक्य के प्रस्ताव पर तुरंत ही सम्मत हो गया, और अपने मित्र म्लेच्छ राजाओं को साथ लेकर अपने पुत्र मलयकेतु और भाई वैरोधक के साथ उसने मगध पर चढ़ाई की।

चाणक्य ने असंख्य सैन्य लेकर मगध की राजधानी कुसुमपुर को घेर लिया। पंद्रह दिन तक घोर युद्ध हुआ। प्रत्येक युद्ध में नागरिक लोग परास्त हुए। अंत में राजा सर्वार्थसिद्धि ने राज्य की रक्षा असंभव जानकर और राज्यहीन संसार में जीना महाक्लेशकर समझकर वैराग्य ग्रहण कर तपोवन की ओर प्रस्थान किया। राक्षस ने सोचा था कि सर्वार्थसिद्धि को साथ लेकर किसी बड़े प्रबल राजा की सहायता लेंगे परंतु सर्वार्थसिद्धि के इस भाँति वैराग्य अवलंबन करने पर वह बड़ा ही दुखी हुआ। सर्वार्थसिद्धि को फेर लाने के अभिप्राय से उसने तपोवन में जाना आवश्यक विवेचन किया। अपने मित्र चंदनदास नामक एक धनाढ्य जौहरी के यहाँ अपने कुटुंब के लोगों को छिपाकर उसने आप तपोवन की ओर यात्रा की। चाणक्य-प्रेरित क्षपणक-वेषधारी जीवसिद्धि चाणक्य को राक्षस की तपोवन-यात्रा का समाचार देकर आप अमात्य के साथ हुआ।

चाणक्य ने सोचा यदि राक्षस ने सर्वार्थसिद्धि से मिलकर किसी बलवान् राजा का आश्रय लिया तो राज्य में नाना प्रकार के विघ्नों के उपस्थित होने की संभावना है, अतएव अभी से उसको रोकना चाहिए और जब तक सर्वार्थसिद्धि जीवित रहेगा हमारी नंदवंशोच्छेद की प्रतिज्ञा भी पूरी न होगी। यह विचारकर उसने सर्वार्थसिद्धि को मारने के उद्देश्य से उसके पीछे कई एक सैनिक लगा दिए। राक्षस के तपोवन पहुँचने के पहले ही उन लोगों ने

सर्वार्थसिद्धि को खपा दिया। राक्षस इस समाचार को सुन अत्यंत शोकाकुल हुआ और कई दिन तक हताश और किंकर्तव्यविमूढ़ होकर निश्चेष्ट भाव से बैठा रहा।

चाणक्य ने सोचा--"हम तो प्रतिज्ञासागर से उत्तीर्ण हो गए, परंतु चंद्रगुप्त को असहाय छोड़कर जाना उचित नहीं है। यदि मंत्रिप्रवर राक्षस चंद्रगुप्त का मंत्री होना स्वीकार करें तो फिर राज्य निष्कंटक हो जाय, और हम भी अभिलषित स्थान को जा सकें।" यह सोचकर चाणक्य ने मंत्रित्व पद ग्रहण करने के लिये राक्षस से अनुरोध किया। प्रभुभक्त राक्षस मंत्री इस प्रस्ताव में असम्मत हुआ। क्या राक्षस सा प्रभुभक्त कभी प्रभु के शत्रुओं का नाश किए बिना स्वस्थ हो सकता है? केवल इसी अभिप्राय को साधन करने के उद्देश्य से वह शत्रुओं के नष्ट करने के अनेक उपाय करने लगा। अंत में उसने विचार किया कि चाणक्य को पर्वतक ही का बड़ा भरोसा है यदि वह हमारे हस्तगत हो जाय तो तुरंत कार्य सिद्ध हो। यही निश्चय कर उसने पर्वतकेश्वर के पास जाकर उसे ही मगधसिंहासन पर बिठाने का लोभ देकर चाणक्य का पक्ष छोड़ अपने साथ होने का अनुरोध किया। पर्वतक ने पूरा राज्य पाने के लोभ से राक्षस की बात अंगीकार की और उसे अपना प्रधान मंत्री बनाकर सब काम उसको सौंप दिए।

चाणक्य असाधारण बुद्धिमान् और राजनीतिविशारद था। उसके मर्म को कोई भी न जान सकता और वह शत्रुपक्ष की अत्यंत गूढ़ मंत्रणा को भी जान लेता। उसने पहले ही से अपने एक विश्वासी अनुचर को राक्षस के पास छोड़ रखा था। उसके द्वारा सब समाचार अवगत होकर उसने उसके प्रतिविधान के निमित्त चारों ओर गुप्तचर छोड़ दिए। वे सब कोई क्षपणक, कोई आदितुंडिक,

कोई भिक्षुक का वेष बदलकर कुसुमपुर और पर्वतक के महल के चारों ओर घूमने लगे। इस उपाय से चाणक्य शत्रुपक्ष का समाचार नित्य नित्य जानने लगा और इसी से वह अनायास नगरनिवासी विपक्षियों के विनाश और पर्वतक राज्य की मंत्रणा का प्रतिविधान करने में समर्थ हुआ। उसके चमत्कार-पूर्ण नीतिकौशल से उसी के विश्वासी लोग पर्वतक के सर्वापेक्षा विश्वासपात्र बन गए थे, और उन्होंने उसके हृदय पर अधिकार कर लिया था। उसके कौशल की ऐसी आश्चर्य महिमा थी कि उसी का चर उसी के दूसरे चर को अपने पक्षवाला नहीं जान सकता था।

राक्षस ने भी इसी भाँति बहुत से गुप्तचर नियुक्त करके चंद्रगुप्त का वध करना चाहा था। किंतु चाणक्य के बुद्धिबल से उन सभों का विपरीत फल हुआ। वही सब चंद्रगुप्त के बदले पर्वतक और राक्षस ही के गुप्तचरों के प्राणवध के कारण हुए।

मुद्राराक्षस नामक नाटक में उन लोगों की कार्यप्रणाली का जो विवरण लिखा है उसका संक्षिप्त मर्म यहाँ प्रकाशित करते हैं।

राक्षस ने जब देखा कि अकेले पर्वतक से चंद्रगुप्त का पराजय संभव नहीं है तब किलात, मलय, काश्मीर, सिंधु और फारस राज्य में जाकर वहाँ के राजाओं से सहायता की प्रार्थना की। इन पाँचों राजाओं के सम्मत होने पर उन लोगों की सेना ले पर्वतक की सेना के साथ कुसुमपुर पर चढ़ाई करने का उद्योग करने लगा। उसने चंद्र-गुप्त के प्राणनाश और चाणक्य से अनबन कराने के लिये बहुत से उपायों का अवलंबन किया, कई एक विश्वासी अनुचरों को शिल्पी, हाथीवान, वैद्य और बंदी रूप से नियुक्त किया, और उसके वध के लिये विषकन्या का प्रयोग किया।

चाणक्य ने विषकन्या की भावभंगी देखकर उसे सद्यः प्राणहारी समझ लिया। वह पर्वतक की विश्वासघातकता और धूर्तता का

दंड देने के उपाय की खोज ही में था कि इस उपहार के पाने से अत्यंत प्रसन्न हुआ और पर्वतकेश्वर के पास उसे भेज दिया। उसी रात पर्वतक हत हुआ। पीछे उसका बेटा मलयकेतु यदि रहेगा तो उसे आधा राज्य बाँट देना होगा इसलिये इसको भी दूर करना चाहिए, यह सोचकर भागुरायण नामक एक व्यक्ति के द्वारा उसको जमाया कि "चाणक्य ने आपके पिता को मार डाला अब आपके भी मारने के उद्योग में है।" मलयकेतु यह सुन रात ही रात भागुरायण आदि चाणक्य ही के कई एक विश्वस्त अनुचरों के साथ अपने राज्य में भाग गया। निदान विषकन्या द्वारा चंद्रगुप्त के प्राणनाश के बदले उलटा आधे राज्य का लाभ हुआ। चाणक्य ने दूसरे दिन सारे नगर में प्रसिद्ध कर दिया कि पर्वतक ने चाणक्य की सहायता की थी इसलिये राक्षस ने उसे विषकन्या के प्रयोग से मरवा डाला। राक्षस ने पर्वतक का मंत्रित्व ग्रहण किया है यह समाचार किसी पर विदित नहीं था, अतएव सब किसी ने इस बात पर विश्वास कर लिया।

मलयकेतु के भाग जाने पर पर्वतक के भाई वैरोधक ने आधे राज्य की प्रार्थना की। चाणक्य चंद्रगुप्त और वैरोधक दोनों को राज्य पर अभिषिक्त कराने के लिये राज्यभवन में प्रवेश का उद्योग करने लगा। रात को चंद्रगुप्त राजभवन में प्रवेश करेंगे यह समाचार नगर में प्रचारित हुआ। चारों ओर तोरण बँध गईं, सारा नगर सजाया गया, मंगल कलश सजाए गए, सारे नगर में धूम धाम मच गई, नौबतें बैठ गईं। लोग चंद्रगुप्त के राजभवनप्रवेश को देखने के लिये उत्सुक हुए। चाणक्य ने राक्षस का कौशल जानकर पहले वैरोधक को चंद्रगुप्त के वेष से सजाकर और हाथी पर बिठा राज के अनुचरों सहित राजभवन में उसका प्रवेश कराया।

एक तो रात का समय दूसरे राज्य-परिच्छद देखकर सबको वैरोधक में चंद्रगुप्त का धोखा हुआ। पहले फाटक पर राक्षस का अनुचर शिल्पी था और हाथीवान भी राक्षस का अनुचर ही था। ज्योंही वैरोधक फाटक के नीचे पहुँचा शिल्पी ने तोरण गिराया और चंद्र-गुप्त के धोखे से हाथीवान ने हाथी को धीरे धीरे चलाया। चंद्र-गुप्त के बदले वैरोधक मारा गया। इसी के साथ हाथीवान और शिल्पी की भी मृत्यु हुई। निदान चंद्रगुप्त की हानि न होकर लाभ ही हुआ। बिना युद्ध ही आधे राज्य के भागी वैरोधक का प्राण-नाश हुआ, वैद्य प्रभृति भी इसी भाँति आपही नष्ट हुए।

चाणक्य के कौशल से सभी उपाय व्यर्थ होते देख राक्षस ने विचार किया कि किसी प्रकार चाणक्य का चंद्रगुप्त से बिगाड़ कराना चाहिए। चाणक्य जैसा अभिमानी और क्रोधी है, उसको चंद्रगुप्त से किंचिन्मात्र अपमानित करा देने ही से उद्देश सिद्ध होगा। यह सोचकर कई एक विश्वस्त अनुचरों को चंद्रगुप्त की सभा का बंदी नियुक्त किया। ये लोग रात दिन चंद्रगुप्त की शक्ति की प्रशंसा और चाणक्य के गर्व, अन्यायप्रभुत्व और अन्यायाचरण से राज्य के सब लोगों की विरक्ति प्रभृति कह कहकर सुनाने लगे। चाणक्य ने देखते ही समझ लिया "यह लोग हमसे और चंद्रगुप्त से बिगाड़ कराने के लिये राक्षस द्वारा नियुक्त हुए हैं।" किंतु इसी बिगाड़ ही से चंद्र-गुप्त का उपकार समझकर चाणक्य ने आप ही बिगाड़ का उपाय कर दिया। उसने कुसुमपुर के पुराने मेले कौमुदी-महोत्सव को बंद कर दिया।

चाणक्य बिना हमसे पूछे सब काम करता है और हम बिना उससे पूछे कुछ नहीं कर सकते—यह समझकर चंद्रगुप्त विरक्त होता; मन ही मन सोचता ऐसे नाममात्र के राज्य की अपेक्षा

राज्य न होना ही अच्छा है। राक्षस के भेजे बंदियों ने उसके चित्त में यह भाव जमा दिया था। यह सुअवसर पाकर इन लोगों ने और भी चिढ़ाया। चंद्रगुप्त अत्यंत धीर प्रकृति होने पर भी उस दिन न सहन कर सका। उसने चाणक्य पर अत्यंत विरक्त होकर उसे बुला भेजा और कौमुदी-महोत्सव के बंद करने का कारण पूछा। चाणक्य ने चंद्रगुप्त को चिढ़ाने के लिये तो कौमुदी-महोत्सव बंद किया था, ऐसा गर्वपूर्ण उत्तर दिया कि चंद्रगुप्त चाणक्य पर अत्यंत विरक्त हो गया। जिसमें शत्रुपक्ष के हृदय में विश्वास हो जाय कि उससे और चंद्रगुप्त से विवाद हो गया है चाणक्य ने क्रोध से उन्मत्त होकर कहा "वृषल! तुम हमारी अभी बुझी हुई क्रोधाग्नि को फिर प्रज्वलित करने की चेष्टा कर रहे हो! अच्छा हम उस पर ध्यान नहीं देते, जो तुम्हारी इच्छा राक्षस को मंत्री बनाने की है तो उसी को मंत्री बनाओ। यह लो हम जाते हैं।" यह कहकर मारे क्रोध के काँपता हुआ वह चला गया। जाने के समय मन ही मन कहने लगा "राक्षस! तुमने सोचा है कि हमारे साथ चंद्रगुप्त का बिगाड़ कराके उसे पराजित करोगे। बिगाड़ तो हुआ पर स्मरण रखना इसमें तुम्हारे ही अभिलाष के पूर्ण होने में व्याघात होगा।"

चंद्रगुप्त ने प्रचार कर दिया "आज से सब काम हमारे आदेशानुसार होंगे, चाणक्य से कोई संबंध न रहा।" बात की बात में यह समाचार राक्षस तक पहुँच गया। उसने यह उपयुक्त अवसर समझकर कुसुमपुर के घेरने का उद्योग किया। पूर्व लिखित पाँचों राजाओं की सेना के साथ मलयकेतु की सेना मिलित होकर युद्ध के निमित्त प्रस्तुत हुई। किंतु चाणक्य के बुद्धिबल से बिना युद्ध ही चंद्रगुप्त को जय-लाभ हुआ। उसने पहले ही से जो कौशल-जाल रच रखा था उसे सोचने से बुद्धि चकरा जाती है। चाणक्य

के समान बुद्धिमान्, सुचतुर, राजनीतिविशारद पंडित पृथ्वी पर कभी किसी देश में भी कदाचित् न जन्मा होगा।

चाणक्य ने पहले ही से अपने विश्वासी अनुचर जीवसिद्धि को राक्षस का, और सिद्धार्थक को अमात्य के परम बंधु शकटदास का प्रिय सहचर बना दिया था, भद्रभट प्रभृति कई एक व्यक्ति को मलयकेतु का विश्वासी बनाकर उसके साथ भागने दिया था। उन सभों पर राक्षस और मलयकेतु का पूरा विश्वास जमाने के लिये, ऐसा कौशल अवलंबन किया कि सबने समझा कि ये चाणक्य और चंद्रगुप्त के अहितकारी तथा राक्षस और मलयकेतु के परम हितकारी हैं। उसने ऐसा बहाना किया मानो उसे यह विदित हो गया है कि जीवसिद्धि, शकटदास और चंदनदास राक्षस के पक्षपाती और चंद्रगुप्त के विरोधी हैं। इसलिये उसने प्रकाशरूप से जीवसिद्धि को देश-निकाला देने, शकटदास को फाँसी चढ़ाने और चंदनदास को उस समय तक जब तक कि वह राक्षस के परिवार को न दे दे कारारुद्ध रखने की आज्ञा दे दी। इस आज्ञा के अनुसार जीवसिद्धि देश-निकाला पाकर राक्षस के पास गया, चंदनदास कारारुद्ध हुआ और शकटदास वध्यभूमि में लाया गया। इतने ही में सिद्धार्थक चाणक्य के नियमानुसार शकटदास को बलपूर्वक छुड़ाकर राक्षस के पास ले गया। निदान जीवसिद्धि और सिद्धार्थक राक्षस और मलयकेतु के पूरे विश्वासपात्र बन गए। इसके पहले किसी भाँति चाणक्य को राक्षस की मुहर की अँगूठी हाथ लग गई थी। उसने भविष्यत समयोपयोगी एक पत्र सिद्धार्थक द्वारा शकटदास के हाथ से लिखा रखा था और उस पत्र पर वही मुहर कर उसको उस मुहर के साथ सिद्धार्थक को देकर यथाकर्तव्य उपदेश कर दिया था। सिद्धार्थक ने गुप्तभाव से वह पत्र और मुद्रा अपने पास रख छोड़ा था।

कुछ दिन पहले मलयकेतु ने तीन बहुमूल्य आभूषण राक्षस को दिए थे। राक्षस ने उन आभूषणों को अपने परम मित्र शकट-दास को बचाने के बदले में सिद्धार्थक को दिए थे। सिद्धार्थक ने चाणक्य के आदेशानुसार उसको ग्रहण न करके कहा "इस समय इसे इसी मुहर से अंकित करके अपने पास रहने दीजिए, पीछे हम ले लेंगे।" यह कहकर राक्षस ही की मुद्रा राक्षस को दी। राक्षस के उस मुहर को पहिचानकर अपनी कहने पर सिद्धार्थक ने कहा "यदि आपकी है तो आप ले लें।" राक्षस ने अत्यंत प्रीति के साथ अलंकारों पर मुहर करके रख दिया और अपनी मुहर ले ली। तब से वह उस मुहर के चिह्न से काम करने लगा।

चाणक्य ने चंद्रगुप्त को त्याग कर दिया यह सुनकर अच्छा अवसर समझकर राक्षस युद्ध की आयोजना करने लगा। उसने पूर्वोक्त राजाओं की और मलयकेतु की असंख्य सेना लेकर कुसुमपुर पर चढ़ाई की। कुसुमपुर के पास आकर पड़ाव डाला। शत्रुपक्षीय कोई कुछ षड्यंत्र न कर सके इसलिये मलयकेतु ने नियम किया कि कोई बिना उसकी नामांकित मुहर के डेरे के बाहर न जाने पावे और बाहर से न आने पावे। मुहर का भार भागुरायण को सौंपा गया। चाणक्य ने जो सब कौशल कर रखे थे अब उनके फलवान् होने का समय आया। उपयुक्त समय जान सिद्धार्थक शकटदास लिखित पत्र और मंत्री प्रदत्त अलंकार लेकर डेरे के बाहर जाने लगा। जीव-सिद्धि भी उस समय बाहर जा रहा था। उससे बहुत पूछा गया कि कहाँ जाता है परंतु उसने न बतलाया पर जब देखा कि अब बिना कहे छुट्टी नहीं है तब उसने जो कहा उसका मर्म यही था कि राक्षस प्रथम ही से पर्वतक का शत्रु था उसी ने विषकन्या द्वारा पर्व-तक को मरवाया, और चंद्रगुप्त से मिलकर यह संधि करता है कि वह

उसका मंत्री होगा और मलयकेतु का राज्य और राजाओं को बाँट देगा। इसी संधि के अनुसार चाणक्य को चंद्रगुप्त ने अलग कर दिया है। यह कहकर सिद्धार्थक चला, किसी प्रकार न रुका, मंत्री का सुहृद् बनकर आज्ञा पालन करने लगा। इसी खींचो खींचा में उसके पास से राक्षस का नामांकित वह पत्र और अलंकार निकल पड़े। उस पत्र में जो लिखा था उससे जीवसिद्धि की बात प्रमाणित हुई। एक तो जीवसिद्धि और सिद्धार्थक राक्षस के बड़े ही अनुगत सुहृद्, दूसरे यह पत्र राक्षस का मुद्रायुक्त और शकटदास का लिखा, और इन सभों ने इच्छापूर्वक तो कहा नहीं जब देखा कि बिना कहे प्राण नहीं बचता तब कहा, और चाणक्य ने पहले से ऐसा उपाय रच रखा था कि मलयकेतु के मन में राक्षस की ओर से खटका हो गया था। निदान इन बातों में मलयकेतु को तनिक भी संदेह न रहा। क्रोधांध होकर उसने राक्षस के प्राणवध का संकल्प किया, किंतु चाणक्य ने भागुरायण प्रभृति से बार बार कह दिया था कि राक्षस का किसी प्रकार बाल बाँका न होने पावे। इसी से भागु-रायण प्रभृति के कौशल से राक्षस का प्राण बचा।

मंत्रीवर राक्षस जिसके हित के लिये प्राणपण से उद्योग कर रहे थे उन्हीं के द्वारा इस भाँति अपमानित और विताड़ित होकर अत्यंत विषण्ण हुए। चाणक्य के कौशल-जाल के आगे अपने सब कौशल-जाल को छिन्न भिन्न और अपने को उस जाल में आबद्ध होते देख मारे क्षोभ और रोष के उनका अंतर विदीर्ण हो गया, उपायांतर न देखकर उन्होंने तपोवन यात्रा का विचार किया। परंतु उस समय भी चाणक्य के जाल से मुक्त न हो सके थे। चाणक्य के गुप्तचर ही उसका विश्वस्त बनकर घेरे हुए हैं, यह उसे अभी तक विदित नहीं है। चाणक्य ने उंदुरायण पर यह भार दिया था कि जिस समय अमात्य

मलयकेतु द्वारा विताडित हों उन्हें निर्दिष्ट स्थान पर कुसुमपुर में किसी रीति से लिवा लावे। इसी के अनुसार उंदुरायण नाना कौशल से तथा प्रिय सुहृद् चंदनदास का समाचार भी लेना चाहिए इत्यादि कहकर राक्षस को कुसुमपुर की ओर लिवा लाया।

चाणक्य ने जब राक्षस के आगमन का समय निकट देखा, अपने दो सुहृदों को भेजा कि तुम लोग चांडाल का वेष धारण करके चंदन-दास को लेकर वध्यभूमि को चलो और उससे कहो कि अब भी राक्षस के परिवार को दे दो नहीं तो फाँसी होगी और फाँसी के लिये उद्योग करो। इधर राक्षस ने निर्दिष्ट स्थान पर आकर चाणक्य-प्रेरित गुप्तचर के मुख से चंदनदास के फाँसी चढ़ने का समाचार सुनकर क्रोधपूर्वक कहा "क्या हम हाथ में शस्त्र रहते हुए भी अपने मित्र की प्राणरक्षा नहीं कर सकते?" उंदुरायण ने बाधा देकर कहा—"यदि मित्र का प्राण बचाना है तो इस उपाय से मनोरथ सिद्ध न होकर उलटी हानि होगी। जबसे शकटदास को वध्य-भूमि से बलपूर्वक ले गए हैं तब से पहरेदार लोग सचेत रहते हैं। आप को सशस्त्र आते देखकर तुरंत ही चंदनदास को फाँसी लटका देंगे।" राक्षस ने सोचा—कहता तो ठीक है तब दूसरा कोई उपाय न देखकर आत्मसमर्पण करने का निश्चय करके "चंदनदास को मत मारना, जिसके लिये चंदनदास को मारना चाहते हो वह आपही उपस्थित है" यह कहता हुआ वध्यभूमि की ओर दौड़ा और चंदनदास को चांडालों से लेकर कहा "जाओ, चाणक्य से कहो जिसके लिये चंदन-दास का प्राणदंड होता था वह आप उपस्थित है उसी को फाँसी लट-काओ।" वे लोग राक्षस को पहिचानते थे अतएव बिना कुछ कहे उन्होंने जाकर चाणक्य से सब समाचार कहा। चाणक्य तो पहले ही से प्रस्तुत था, सुनते ही वध्यभूमि में आ उपस्थित हुआ। राक्षस ने दूर

ही से चाणक्य को देखकर जल-भुनकर कहा—"आइए आइए शीघ्र ही हमारा प्राणदंड करके निरपराधी चंदनदास को छोड़ दीजिए।" चाणक्य ने पास जाकर राक्षस के पैर पर गिरकर कहा—"महाशय विष्णुगुप्त प्रणाम करता है आशीर्वाद दीजिए। यदि आप बंधु का प्राण बचाना चाहते हैं तो वह प्राण देने से नहीं होता। यह मंत्रित्व का शस्त्र ग्रहण कीजिए।" यह कह चाणक्य ने राक्षस को चंद्रगुप्त का मंत्री बनाने के लिये जो सब उपाय अवलंबन किए थे कहकर क्षमा-प्रार्थना की। चंद्रगुप्त ने भी यथोचित सम्मान-पूर्वक प्रणाम किया। तब तो राक्षस चंद्रगुप्त का मंत्रीपद अस्वीकार न कर सका। चाणक्य राक्षस को मंत्री बनाकर आप निश्चिंत हुआ।

इधर मलयकेतु ने राक्षस को निकालकर दूसरे राजाओं को भी अपमानित किया। यह देखकर उसकी सेना भी उससे बिगड़ गई। अवसर पाकर भागुरायण आदि चाणक्य के दूतों ने मलयकेतु को बाँध चंद्रगुप्त के दरबार में उपस्थित किया। बिना युद्ध बिना रक्तपात चाणक्य ने प्रबल शत्रु को पराजित किया। जब चंद्रगुप्त ने चाणक्य से पूछा कि मलयकेतु के साथ क्या करना चाहिए? चाणक्य ने उत्तर दिया "अब हमसे कुछ न पूछा करो अब मंत्रीवर राक्षस से परामर्श किया करो।" तब उसने राक्षस के परामर्शानुसार मलयकेतु को छोड़ दिया और अपने राज्य को जाने दिया। चाणक्य प्रतिज्ञा-भार से मुक्त और चंद्रगुप्त को निष्कंटक करके परम सुखी हुआ। इन कामों के सिद्ध करने में उसे जो अन्याय कार्य करने पड़े थे उसके प्रायश्चित्त के लिये उसने तपोवन की यात्रा की, और विषय-वासना मात्र का परित्याग कर दिया।

चाणक्य का दूसरा नाम विष्णुगुप्त था। बहुत से लोग अनुमान करते हैं कि "पंचतंत्र" और "हितोपदेश" नामक ग्रंथ चाणक्य ही

के बनाए हैं। इन दोनों ग्रंथों में राजनीति, समाजनीति प्रभृति सर्व-प्रकार नीति और अर्थशास्त्र अत्यंत विचित्र रूप से वर्णित हुए हैं। चाणक्यरचित श्लोक नाम से जो उत्कृष्ट श्लोक प्रसिद्ध हैं वे प्राय: इन दोनों ग्रंथों में पाए जाते हैं। पंचतंत्र गद्यपद्यमय ग्रंथ है और हितोपदेश केवल गद्य-मय। सर विलियम जोंस लिखते हैं पंचतंत्र के समान नीतिपूर्ण दूसरा कोई ग्रंथ नहीं है। सभ्य जाति मात्र पंचतंत्र और हितोपदेश का आदर करते हैं। सबने अपनी भाषा में उसका अनुवाद करके अपनी भाषा का गौरव बढ़ाया है। हितो-पदेश का जितनी भाषाओं में अनुवाद हुआ है उतनी भाषाओं में बाइबिल के अतिरिक्त किसी दूसरे ग्रंथ का अनुवाद नहीं है।

चाणक्य अशेष शास्त्रज्ञ, असाधारण बुद्धिमान्, असामान्य अर्थ और नीति शास्त्र वेत्ता, असाधारण अध्यवसायशाली, दृढ़प्रतिज्ञ, विषयलोभशून्य और महा तेजस्वी था। वह सदा बड़े बड़े कठिन कामों का अनुष्ठान करता परंतु स्वार्थहीन और कामनाशून्य। इतने श्रम और यत्न से जो राज्य प्राप्त किया वह अनायास चंद्रगुप्त को दे दिया। मंत्री पद भी ग्रहण न किया। नि:स्वार्थ भाव से दृढ़ मन:संयोग के साथ जो काम किया जाय वह बनता है और निष्काम धर्म केवल आकाश-कुसुमवत् अलीक वाक्य नहीं है चाणक्य इसका प्रत्यक्ष दृष्टांत है।

(छ) विजयसिंह

प्राय: २५ सौ वर्ष हुए, राजकुमार विजयसिंह ने वंग देश के सिंहपुर नामक नगर में जन्म ग्रहण किया था। उनके पिता का नाम महाराज सिंहबाहु और माता का नाम सिंहवल्ली था। विजय-सिंह के राज्यकाल का कोई वृत्तांत प्राप्त नहीं होता। युवा होने

पर पिता के साथ विवाद होने से सिंहबाहु ने क्रोधित होकर इन्हें निकाल दिया। विजयसिंह पाँच सौ सहचर साथ लेकर सदा के लिए स्वदेश से बिदा होकर जहाज पर चढ़े। एक जहाज पर वह और उनके सहचर लोग और एक पर उनकी स्त्रियाँ थीं। रास्ते में भारी तूफान आने के कारण स्त्रियों का जहाज निरुद्देश्य हो गया और पुरुषों का जहाज सिंहल द्वीप तटस्थ बालुका पर जा अड़ा। विजय-सिंह समुद्रतरंग द्वारा बालू पर अचैतन्य फेंक दिए गए। वहाँ की बालू ताम्रवर्ण है, बहुत देर तक उस पर पड़े रहने से उनके हाथ ताम्रवर्ण हो गए। इससे उनकी संज्ञा ताम्रपाणि हुई।

विजयसिंह संज्ञा प्राप्त होने पर अपने श्रांत साथियों को प्रोत्सा-हित करके लंका द्वीप देखने के लिये गए। इस समय लंका में यक्ष लोग रहते थे। वहाँ के राजा ने विजयसिंह का बड़ा आदर किया। क्रमशः यक्षराज से बड़ा सौहार्द हो गया और यक्षराज ने अपनी बेटी कुरेनी के साथ विजयसिंह का विवाह कर दिया। परंतु विजयसिंह ने अनुग्रह का बदला बहुत बुरा दिया। उसने षड्यंत्र करके किसी पर्वोपलक्ष पर हठात् राजधानी पर आक्रमण किया और उसे अधिकृत कर लिया। विजयसिंह ने जैसी विश्वासघातकता से लंका का राज्य ले लिया वैसा ही और भी एक गर्हित कार्य किया। राज्य लेने के कुछ दिन पीछे कुरेनी को असभ्य स्त्री देखकर उन्होंने किसी आर्य रमणी से विवाह करने की इच्छा की। इसलिये भारतवर्ष में कन्या खोजने लगा। दाक्षिणात्य पांडु राज्याधिपति ने अपनी लड़की के साथ विवाह कर दिया। विजयसिंह ने परम सुंदरी स्त्री पाकर अभागी कुरूपा कुरेनी को दो बच्चों के साथ परित्याग कर दिया। इस अनाथा रमणी ने पति से परित्यक्त होकर दुःख और अभिमान से वन में जाकर प्राणत्याग किया। सिंहल द्वीप में अब तक प्रवाद

है कि कुरेनी की आत्मा नित्य रात "कुरेनी गुल्ला पर्वत शिखर" पर चढ़कर अपने देश की अमंगल कामना करती है।

विजयसिंह ने ऐसे कई एक अन्याय कार्य किए सही परंतु सिंहल द्वीप का उन्नतिसाधन बहुत कुछ किया था। उसने सुंदर सुप्रशस्त राजमार्ग और सुरम्य राजप्रासादादि बनवाकर सिंहलद्वीप को सुशोभित किया और सुव्यवस्था स्थापित करके राज्य में सुप्रणाली प्रतिष्ठित की। उनकी सिंह उपाधि से लंका का नाम सिंहल और ताम्रपाणि से ताम्रपर्णि हुआ।

रोमवालों ने इसी ताम्रपर्णि का अपभ्रंश सिंहल द्वीप का नाम "ताप्रबेन" लिखा है। विजयसिंह के पीछे अँगरेजों के अतिरिक्त और कोई सिंहल द्वीप पर अधिकार न कर सका। कई शताब्दी तक विजयसिंह का वंश सिहलद्वीप में राज्य करता रहा।

राजकुमार विजयसिंह का जीवनचरित्र बहुत ही कम मिलता है। जो जाना गया है उसमें महत्त्व-व्यंजक और अनुकरणीय बहुत कम है, घृणाकर और अकर्तव्य कार्य ही विशेष हैं, इसलिये इस आदर्श-चरित्र-ग्रंथ में उनके नाम का उल्लेख आवश्यक नहीं था परंतु केवल इस बात को दिखलाने के लिये कि प्राय: लोगों का संस्कार यह है कि भारतवर्षियों ने विशेष कर बंगालियों ने बाहर जाकर कोई कीर्ति और विजय नहीं पाई है; वे तो निरे निस्तेज और बलहीन होते हैं, यह चरित्र प्रकाशित किया गया है। विजयसिंह का चरित्र पढ़कर उन लोगों का यह कुसंस्कार दूर होगा। इससे जीवनचरित्र पाठ का पूरा फल तो न प्राप्त होगा परंतु अपने देश का गौरव और प्रताप तथा विदेशीय राज्याधिकार करने का आनंद अवश्य लोगों के हृदय में उदय होगा।

---

(५) ईश्वरचंद्र विद्यासागर*

परमेश्वर ने इस संसार को सुख और दुःख दोनों का आधार बनाया है। जो लोग विद्यारूपी धन बटोरकर उसका मीठा फल चखते हैं, वे सुख से अपने जीवन को बिताते और यश के भागी होते हैं। किंतु जो इससे हीन रहते हैं, वे जन्म भर दुःख भोगते और अंत में अपने ऊपर कलंक का बोझ लेकर मरते हैं। आज हम जिन महात्मा का चरित्र लिखते हैं उन्हों ने यह बात प्रत्यक्ष कर दिखाई है कि संसार में विद्या के बल से अच्छे मार्ग पर चलकर मनुष्य क्योंकर धन और यश कमा सकता, और सुख से अपना जीवन बिताकर अपने पीछे भी अचल कीर्ति छोड़ जा सकता है।

पंडितवर ईश्वरचंद्र विद्यासागर का जन्म बंगाल जिले मेदिनीपुर के बीरसिंह नामक गाँव में हुआ था। यह गाँव कलकत्ते से २६ कोस पर है। विद्यासागर के पिता का नाम ठाकुरदास वन्द्योपाध्याय और माता का नाम भगवती देवी था। ता० २६ सितंबर सन् १८२० ई० मंगलवार को दोपहर के समय विद्यासागर का जन्म हुआ था।

उनके दादा रामजय तर्कभूषण अपने भाइयों के झगड़े से दुखी हो देश छोड़कर तीर्थयात्रा करने चल दिए, और उनकी स्त्री दुर्गा देवी अपने दो पुत्रों और चार कन्याओं को लेकर बिना किसी के सहारे एक कुटी में जा बैठी और सूत कात-कातकर उसी की बिक्री से अपने दिन बिताने लगी। विद्यासागर के पिता ठाकुरदास अपनी माता का ऐसा दुःख देखकर किसी काम की खोज में चौदह

---

* यह जीवनचरित संवत् १९५५ में लिखा गया था।

वर्ष की ही अवस्था में कलकत्ते आए और वहाँ रहकर अँगरेजी पढ़ने लगे; क्योंकि उस समय थोड़ी भी अँगरेजी जाने बिना कोई काम मिलना कठिन था। उस समय उनको जो जो कष्ट हुए, उन्हें सोच-कर जी काँप उठता है। बालक ठाकुरदास को किसी दिन दोनों बेर पेट भर भोजन नहीं मिलता था; कभी एक बेर और कभी दोनों बेर उन्हें भूखे रह जाना पड़ता था। किसी किसी तरह कुछ पढ़ने लिखने पर दो रुपए महीने की नौकरी लगी। मातृभक्त ठाकुरदास अपने भोजन के दुःख को सहते हुए भी वे दोनों रुपए अपनी मा के पास महीने महीने भेजने लगे। जब वे पाँच रुपया महीना मा के पास भेजने लगे, तब तो मानो मा का दुःख दरिद्र ही दूर हो गया। जिस समय विद्यासागर का जन्म हुआ था, उस समय ठाकुरदास आठ रुपए महीने पर नौकर थे।

पाँच वर्ष की अवस्था में विद्यासागर को विद्यारंभ कराया गया। उन्होंने गाँव की पाठशाला अर्थात् गुरुजी के यहाँ की पढ़ाई तीन वर्ष में पूरी कर डाली। फिर सन् १८२६ ई० में उनके पिता उन्हें अपने साथ कलकत्ते ले आए। किसी ने सच कहा है कि "होन-हार बिरवान के होत चीकने पात" सोई बात ईश्वरचंद्र में पाई गई कि उन्होंने बालकपन ही में राह चलते चलते सड़कों पर लगे हुए "माइल स्टोन" से अँगरेजी के अंक पहिचान लिए। कलकत्ते पहुँच-कर ठाकुरदास एक दिन अँगरेजी के कुछ बिलों की ठोक दे रहे थे, उस समय ईश्वरचंद्र ने वे कागज पिता से लेकर आप जोड़ लगाया और सब ठीक उतरा; यह चरित देखकर लोग अचंभे में आ गए। उसी सन् की पहली जून को विद्यासागर संस्कृत कालिज की व्याक-रण श्रेणी में भरती किए गए। वहाँ कुल छ महीने पढ़कर परीक्षा में पास हुए और उन्हें पाँच रुपया महीना "स्कालरशिप" मिलने लगी।

व्याकरण श्रेणी में पढ़ने के समय छ महीने तक उन्होंने अँगरेजी श्रेणी में भी पढ़ा था। वह रात को केवल दो घंटे सोते, सारी रात पढ़ने में बिताते और जो नींद आने लगती तो सरसों का तेल आँखों में लगा देते थे। बारहवें वर्ष में उन्होंने रघुवंश, कुमारसंभव, माघ, किरातार्जुनीय, शकुंतला, मेघदूत, उत्तररामचरित, मुद्राराक्षस, कादंबरी, दशकुमारचरित आदि काव्य पढ़ डाले। उनकी स्मरण-शक्ति ऐसी थी कि बिना पुस्तक देखे संस्कृत नाटक आदि कहते जाते थे। वह संस्कृत का अनुवाद भी बहुत अच्छा करते थे। उनकी तीव्र बुद्धि को देख सबको अचंभा होता था और अध्यापक लोग भी उनसे बड़े प्रसन्न रहते थे। परीक्षा में सदा वे प्रथम होते थे और अक्षर उनके ऐसे सुंदर बनते थे कि उनके लिये भी वे पारितोषिक पाया करते। उस समय पढ़ने लिखने के परिश्रम के सिवाय उन्हें चार आदमियों को रसोई भी करके खिलाना पड़ता था। फिर सब के खा लेने पर उन्हीं को बरतन माँजना और रसोई-घर धोना पड़ता था। बाज़ार से सौदा लाना भी उन्हीं का काम था। सोने के लिये उन्हें केवल दो हाथ लंबी और डेढ़ हाथ चौड़ी जगह मिली थी, उतने ही स्थान में वे सिकुड़कर पड़े रहते, पर इन सब कष्टों को वे कष्ट नहीं गिनते थे। सब कामों को प्रसन्न चित्त से करते और बिना किसी प्रकार की थकाहट के पढ़ने में लगे रहते थे।

उसी छोटी अवस्था में उन्हें संस्कृत में कविता बनाने की भी शक्ति हो गई थी। जब कभी वे गाँव पर जाते तो लोगों के यहाँ श्राद्ध इत्यादि पर कविता बना देते और पंडितों की मंडली में संस्कृत भाषा में शास्त्रार्थ करते थे, यहाँ तक कि पंडित उस बाल-कवि की विलक्षण शक्ति देखकर आश्चर्य करने लगते।

पंद्रहवें वर्ष में उन्होंने अलंकार श्रेणी में प्रवेश किया और एक ही वर्ष में साहित्यदर्पण, रसगंगाधर आदि अलंकार के ग्रंथों को पढ़कर सबसे प्रथम पारितोषिक पाया। उस समय उन्हें आठ रुपया महीना स्कालरशिप मिलती थी। उन रुपयों को उनके पिता ले लेते और उनमें से कुछ रुपए उन्हें हाथ-खर्च के लिये देते थे। दयासागर विद्यासागर उसी रुपए से अपने साथ पढ़नेवाले बालकों की सहायता करते; किसी को कपड़े मँगा देते; किसी को पुस्तक ले देते, और यदि जलपान करते तो सभों को बाँटकर खाते। जो कोई बालक बीमार हो जाता तो वे उसकी सेवा करते, और जिस रोगी के पास कोई खड़ा न होता उसका मल-मूत्र तक धो देने में भी न घिनाते। जब वे गाँव पर जाते तो वहाँ भी दीन दुखियों की यों ही सहायता करते थे। विद्यासागर की उपाधि पाने के बहुत पहले ही इस गुण से उनका नाम दयासागर प्रसिद्ध हो गया था।

सन् १८३७ ई० में उन्होंने स्मृति की श्रेणी में प्रवेश किया और छ महीने में उसे पूरा कर "ला कमेटी" की परीक्षा के लिये पढ़ने लगे। वह परीक्षा भी समाप्त हुई और उन्हें 'त्रिपुरा' जिले के जज-पंडित का पद मिला, पर उनके पिता ने उन्हें उतनी दूर जाने न दिया। पितृभक्त ईश्वरचंद्र उस पद को छोड़ वेदान्त की श्रेणी में पढ़ने लगे। उसी समय उन्होंने गद्य-रचना में सबसे बड़ा सौ रुपए का पारितोषिक पाया था। उस समय उनके पिता बहुत ऋणी हो रहे थे, खर्च की ऐसी खींच थी कि एक पैसे के चने और बताशे में सबका जलपान होता था। दूसरे वर्ष उन्होंने न्याय-दर्शन की परीक्षा में प्रथम होने से सौ रुपए और कविता बनाने में सौ रुपए पारितोषिक पाए। जिस दर्शनशास्त्र का पढ़ना दूसरे लोग आठ दस वर्ष में पूरा करते हैं, तीक्ष्ण-बुद्धि ईश्वरचंद्र ने उसे पाँच वर्ष में

पूरा किया। ता० १८ दिसंबर सन् १८४१ ई० को बीस वर्ष की अवस्था में उन्होंने संस्कृत कालिज की शिक्षा समाप्त करके "विद्या-सागर" की उपाधि पाई।

कालिज से निकलते ही उन्हें दिसंबर सन् १८४१ ई० में "फोर्ट विलियम कालिज" में पचास रुपए महीने पर प्रथम श्रेणी के अध्यापक का पद मिला। इस फोर्ट विलियम कालिज में विलायत से आए सिविलियन साहब लोगों को हिंदी, बँगला, उर्दू आदि देशी भाषाओं को पढ़कर इनमें परीक्षा देनी पड़ती थी, इनमें पास होने पर उन्हें काम मिलता था। इन परीक्षाओं के कागज विद्यासागर को देखने पड़ते थे और उन्हें अँगरेजों से बहुत काम पड़ता था इसलिये उनको हिंदी और अँगरेजी सीखना आवश्यक हुआ। हिंदी तो उन्होंने थोड़े ही दिनों में एक पंडित रखकर सीख ली और अँगरेजी ऐसी कठिन भाषा को भी बड़े परिश्रम से शीघ्र ही सीख लिया। उनका परिश्रमी स्वभाव सराहने योग्य था, कालिज के काम के सिवाय घर पर आए हुए विद्यार्थियों को संझा-सबेरे दोनों समय वे न्याय व्याकरण आदि पढ़ाते और आप भी अँगरेजी पढ़ते थे।

उस समय बँगला भाषा की उतनी उन्नति नहीं हुई थी जितनी अब है। इस भाषा को ऐसी ऊँची अवस्था पर पहुँचानेवालों में प्रधान विद्यासागर ही हुए। उन्होंने सरल और मधुर भाषा में "वासुदेव-चरित" बनाया और हिंदी बैताल-पचीसी का पहले पहल बँगला में अनुवाद किया। वे तत्त्वबोधिनी मासिक पत्रिका में भी लिखते थे, पीछे उन्होंने "संस्कृत प्रेस" स्थापित किया। उस प्रेस में पुराने संस्कृत और बँगला ग्रंथों को शुद्ध करके छापते थे। वर्ण-परिचय, कथामाला, बोधोदय, चरितावली, आख्यानमंजरी, जीवन-

चरित, शकुंतला, और सीतार वनवास आदि ग्रंथों को लिखकर उन्होंने बँगला भाषा का बहुत कुछ उपकार किया। उन्होंने मुफस्सिल में जाते समय पालकी में पड़े पड़े वर्णपरिचय नामक पुस्तक लिखी थी और सीतार वनवास केवल चार दिन में पूरा किया था। उनके पहले बँगला में गद्य के ग्रंथ ऐसी सुंदर और सरल भाषा में नहीं लिखे जाते थे, इसी लिये बँगला के प्रसिद्ध कवि हेमचंद्र ने अपनी कविता में उन्हें "बँगला के साहित्यगुरु" लिखा है।

उनके एक मित्र ने संस्कृत सीखने की इच्छा प्रगट की। इस पर उन्होंने सोचा कि पुरानी चाल से पढ़ाने में तो बहुत दिन लगेंगे और ये भी ऊब जायँगे; बस आपने चट एक ही दिन में चार ताव फुलस्केप कागज पर वर्णमाला से लेकर धातु प्रत्ययादि तक मुग्धबोध व्याकरण का सारांश लिख डाला और उसी से थोड़े ही दिनों में अपने मित्र को कुछ संस्कृत व्याकरण का ज्ञान करा दिया। वे ही "चार ताव कागज" विद्यासागर की प्रसिद्ध पुस्तक "व्याकरण की उपक्रमणिका" के मूल हैं। विद्यासागर ने अपनी नई युक्ति और बुद्धिमत्ता से जो "सीनियर" परीक्षा पाँच वर्ष में होती थी वही अपने मित्र से ढाई वर्ष ही में दिलवाकर पास करा दी। यह बात सारे नगर में फैल गई और बहुत से लोग उनसे पढ़ने लगे। व्याकरण की पढ़ाई की नवीन प्रणाली का यहीं से प्रारंभ है।

जब दयासागर विद्यासागर को दो रुपया महीना जलपान के लिये मिलता था तब तो उसमें से दीन दुखियों को दिए बिना उनका मन मानता ही न था और जब पचास रुपया महीना मिलने लगा तब का भला क्या पूछना था? उन्होंने अपने पिता का काम छोड़वाकर उन्हें सुख से घर रहने के लिये भेजा और फिर वे बराबर बीस रुपया महीना अपने पिता के पास भेजते; बाकी तीस रुपए में दो

भाई, पाँच चचेरे-फुफेरे और मौसेरे भाई, एक नौकर तथा आए गए अतिथियों के साथ कलकत्ते में रहकर अपना काम चलाते थे किंतु केवल कुटुंब-पालन ही से उदार-चरित विद्यासागर के चित्त का संतोष क्योंकर हो सकता था? वे अपने भरसक दीन दुखियों की सहायता से कभी मुँह न मोड़ते। इस बात के बहुतेरे उदाहरण हैं पर उनमें से एक लिखे बिना लेखनी आगे नहीं बढ़ती। उनके एक परोसी के नौकर को हैजा हो गया, मालिक ने घसीटकर उसे सड़क पर डाल दिया। नौकर के कराहने की भनक विद्यासागर के कानों में पड़ी, फिर क्या उनका कोमल हृदय स्थिर रह सकता था? वह अपने बासे में उसे उठा लाए और उसकी दवा कराने लगे। उन्होंने आप उसका मल-मूत्र धोया और दो चार दिन में उसे भला चंगा करके बिदा किया।

उनकी मातृ-भक्ति का एक उदाहरण सुनिए। छोटे भाई के विवाह में उनकी माता ने उन्हें लिखा था "तुम अवश्य आओ" इस पर विद्यासागर ने कालिज के प्रिंसपल से छुट्टी माँगी पर साहब ने न दी, तब विद्यासागर से माता की आज्ञा न टाली गई और उन्होंने साहब से जाकर कहा कि "हम माँ की आज्ञा नहीं टाल सकते वरन अपना पद छोड़ सकते हैं; आप अपनी नौकरी लीजिए और हमारा हिसाब चुकता कर हमें बिदा कीजिए।" साहब ने उनकी सच्ची मातृ-भक्ति पर रीझकर तुरंत छुट्टी दे दी। फिर क्या था! आप उसी समय पैदल चल खड़े हुए, दिन रात बराबर चले गए, बीच में दामोदर नद ने भयानक रूप धारण करके उनकी राह रोकी। बरसात का दिन, महानद का ऐसा चौड़ा पाट और तीखा वेग कि बड़े बड़े मल्लाहों का भी साहस नाव चलाने का नहीं होता था, तिस पर भी उस समय घाट पर कोई नाव बेड़ा न था किंतु उस समय विद्या-

सागर के असीम हृदय में मातृभक्ति का सागर उमड़ रहा था। वे ऐसे ऐसे नद को क्या समझते थे! लोगों के लाख रोकते रोकते भी आप धड़ाम से नद में कूद पड़े और बात की बात में मातृ-चरण के सहारे पार जा लगे। दो दिन के कठिन परिश्रम पर नौ बजे रात को वे घर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि लड़के को लेकर सब लोग विवाह करने गए हैं, केवल माता दो दिन की उपवासी बालक ईश्वरचंद्र के लिये पड़ी पड़ी बिलख रही है। उस समय दोनों मिलकर खूब रोए और फिर साथ ही दोनों ने भोजन किया।

सन् १८४६ ई० में विद्यासागर "फोर्ट विलियम कालिज" में अपना पद अपने छोटे भाई को दिलाकर आप "संस्कृत कालिज" के असिस्टेंट सेक्रेटरी के पद पर चले आए। उनके अच्छे प्रबंध से कालिज की बहुत कुछ उन्नति हुई परंतु सेक्रेटरी में अनबन होने के कारण उन्होंने बिना इस बात का विचार किए कि इतने बड़े कुटुंब का पालन कैसे होगा, उस पद को छोड़ दिया और थोड़े दिनों तक धीरता के साथ घर बैठे रहे तथा ऋण लेकर अपना काम चलाया।

सन् १८४९ ई० के मार्च महीने में फिर उन्हें "फोर्ट विलियम कालिज" में अस्सी रुपए महीने पर हेड राइटर का पद मिला। वहीं से उन्होंने सन् १८५० ई० में "संस्कृत कालिज" के संस्कृत अध्यापक का पद ग्रहण किया। सन् १८५१ ई० में वे डेढ़ सौ रुपए महीने पर प्रिंसपल नियत हुए। अँगरेजी शिक्षा का प्रचार होने से संस्कृत कालिज में विद्यार्थी बहुत कम हो गए थे; इसलिये "कौंसिल आफ एडुकेशन" का विचार हुआ कि वह तोड़ दिया जाय, अतएव विद्यासागर से उस पर रिपोर्ट करने के लिये कहा गया। उन्होंने भी ऐसी उत्तम रिपोर्ट दी कि जिसे देखकर कौंसिलवाले बहुत ही प्रसन्न हुए और उनके लिखने के अनुसार

संस्कृत कालिज न तोड़ा गया। उसी सन् (१८५१) में उन्होंने "व्याकरण की उपक्रमणिका" नाम की प्रसिद्ध पुस्तक बनाकर छपवाई और उसी समय में तीन भागों में ऋजुपाठ और चार भागों में व्याकरण-कौमुदी बनाकर प्रकाशित की। ये ही सब ग्रंथ उस समय संस्कृत कालिज तथा युनिवर्सिटी में कोर्स किए गए।

विद्यासागर का ध्यान देश की कुरीतियों के दूर करने की ओर झुका। वे बराबर "शुभंकरी" पत्रिका में लेख लिखा करते और स्त्री-शिक्षा के पूरे पक्षपाती थे। बीटन साहब ने लड़कियों के लिये एक कालिज स्थापित किया था, जो कि अब "बीथुन कालिज" के नाम से प्रसिद्ध है। विद्यासागर उनके प्रधान सहायक थे। उस कालिज के प्रबंध के लिये जो कमेटी बनाई गई थी, विद्यासागर उसके अवैतनिक सेक्रेटरी नियत किए गए थे। बीटन साहब के मरने पर उस कालिज का भार लार्ड डलहौजी ने अपने हाथ में ले लिया। उस समय किसी कारण से विद्यासागर सेक्रेटरी का पद छोड़ना चाहते थे पर कमेटी के बहुत आग्रह से न छोड़ सके। वे सन् १८६९ ई० तक सेक्रेटरी रहे और उस कालिज में पढ़ाने के लिये उन्होंने रुडीमेंट्स आफ नालेज का अनुवाद किया और उसका "बोधोदय" नाम रखा।

सन् १८५३ ई० में उन्होंने अपनी जन्मभूमि बीरसिंह गाँव में एक स्कूल खोला था, जिसमें बिना फीस लिए लड़के पढ़ाए जाते थे। उन लड़कों को पुस्तक, स्लेट, पेनसिल आदि भी स्कूल की ओर से दी जाती थी। दूसरा स्कूल उन्होंने किसानों के लिये खोला था जिसमें रात को पढ़ाई होती थी। और तीसरी पाठशाला लड़कियों के लिये खोली थी। उन्होंने एक अस्पताल भी खोला था जिसमें दवाओं के सिवाय रोगियों को साबूदाना आदि पथ्य

की वस्तुएँ भी बिना दाम मिलती थीं, उन सभों के लिये अपने रुपए से भूमि मोल ली, घर बनवाए, और महीने महीने साढ़े पाँच सौ रुपए के लगभग, जो उनमें खर्च होता, अपने पास से देते रहे। सन् १८५४ ई० में उनका वेतन डेढ़ सौ से तीन सौ हो गया था और पुस्तकों की बिक्री से भी पाँच चार सौ रुपए महीने की बचत होने लगी। यदि ऐसे समय में वे चाहते तो बहुत कुछ बटोर लेते परंतु जो कुछ उनकी आमदनी थी वे सब की सब परोपकार में लगा देते थे। उनकी दयावती माता ने उन्हें ऐसी ही शिक्षा दी थी। विद्यासागर की माँ से एक दिन हैरिसन साहब ने (जिनके नाम से कलकत्ते की प्रसिद्ध सड़क "हैरिसन रोड" बनी है) पूछा था कि "माँ जी ! तुम्हारे पास कितना रुपया है ?" उत्तर मिला "चार घड़ा।" फिर साहब ने पूछा "वे घड़े कहाँ हैं ?" इस पर उन्होंने अपने चारों लड़कों को दिखलाकर कहा कि "ये ही हमारे धन हैं, और दूसरे धन का हमें काम नहीं है।" यह उत्तर सुन साहब प्रसन्न हुए। वह उदार-चरित्रा रमणी-रत्न जब काशी-वास करने के लिये काशी में आकर रही थीं तब एक दिन भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने उनके हाथ में चाँदी का कड़ा देखकर पूछा था कि "माँ जी ! इतने बड़े विद्यासागर की माँ के हाथ में चाँदी का कड़ा शोभा नहीं देता।" उस पर बुड्ढी ने हँसकर कहा "बेटा, विद्यासागर की माँ के हाथ की शोभा चाँदी सोने का कड़ा नहीं हो सकता, इन हाथों की तो शोभा भूखों को खिलाना है। देखो जब अकाल पड़ा था तब इन्हीं हाथों से खिचड़ी बना बनाकर नित्य हजारों भूखों को खिलाती थी।" सचमुच सन् १८६६ ई० के अकाल में विद्यासागर ने जैसा दान किया था, बड़े बड़े राजाओं के किए भी वैसा न हो सका।

सन् १८५५ ई० में गवर्नमेंट की यह इच्छा हुई कि गाँव गाँव में बँगला और अँगरेजी की पाठशालाएँ खोली जायँ। बँगला पाठ-शालाओं में किस रीति से शिक्षा दी जाय, इस पर रिपोर्ट लिखने के लिये विद्यासागर से कहा गया। जब उन्होंने रिपोर्ट लिख कर दी तब उसे देख अफसर लोग ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्हें प्रिंसपल पद के सिवाय असिस्टेंट इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स का पद भी मिला जिसके कारण दो सौ रुपया महीना उनका और बढ़ गया और फिर उस समय उन्हें सब मिलाकर पाँच सौ रुपए महीने मिलने लगे। उसी साल उनके उद्योग से पहले पहल "नार्मल स्कूल" स्थापित हुआ और फिर तो उनके उद्योग से बहुतेरे स्कूल खुले। स्कूलों के देखने के लिये उन्हें मुफस्सिल में घूमना पड़ता था। उस अवसर में वे बराबर जिमीदारों और धनिकों को उभाड़कर पाठ-शालाएँ स्थापित कराते। प्रायः ऐसा हुआ है कि आप पालकी पर कहीं जा रहे हैं और रास्ते में किसी थके हुए दुखी रोगी को पड़े बिलखते देखा तो चट पालकी से उतर पड़े उसे अपनी पालकी में डालकर चट्टी तक पहुँचा आए और आप साथ पैदल गए। फिर वहाँ पहुँचकर उसके खाने पीने का पूरा पूरा सुभीता कर तब जहाँ जाना होता वहाँ जाते। वे बराबर यात्रा के समय रुपए और रेजगारियाँ अपने पास रखते और किसी याचक को विमुख नहीं जाने देते थे। उन्होंने कितने ही अनाथ लड़कों को अपने साथ कलकत्ते लाकर उनके पढ़ने का सुभीता कर दिया था। वे समय समय पर कितने ही भले आदमियों को गुप्त दान देकर उन्हें दुःख से बचाते थे।

एक दिन विद्यासागर किसी मित्र के साथ सड़क पर टहल रहे थे, इतने में सामने से एक ब्राह्मण रोता हुआ आ निकला।

विद्यासागर ने उससे रोने का कारण पूछा किंतु ब्राह्मण ने उनका वेश देखकर अपने रोने का कारण बताना व्यर्थ समझकर कुछ न कहा। पीछे उनके विशेष आग्रह करने पर कहा कि "महाशय, हमने एक महाजन से रुपए उधार लेकर कन्या का विवाह किया था, पर ठीक वादे पर हम रुपया न दे सके, अब उसने हमारे ऊपर दो हजार चार सौ रुपए की नालिश की है जिसकी परसों तारीख है।" यह सुन विद्यासागर ने ब्राह्मण से उसके घर का पता पूछ लिया और वह चला गया। पीछे विद्यासागर ने जाँच की तो ब्राह्मण की बात सच निकली। तब उन्होंने दो हजार चार सौ रुपए ब्राह्मण के नाम से अदालत में जमा कर दिए। ब्राह्मण ने कचहरी में जाकर सुना कि किसी ने कुल रुपए जमा करा दिए हैं। यह अद्भुत कौतुक देख उसका चित्त कैसा गद्गद हुआ होगा इसे वह ब्राह्मण ही जानता था। फिर उसने उस महापुरुष का नाम जानना चाहा जिसने रुपए जमा कराए थे पर पता न लगा। अंत को वह दीन ब्राह्मण कृतज्ञ हृदय से गद्गद कंठ हो अपने गुप्तदानी को असंख्य आशीर्वाद देता हुआ घर लौट आया। निदान विद्यासागर की दया की सीमा न थी। जिस गाँव में वे जा पड़ते वहाँ के लोग उनके दर्शन को दौड़ आते और भीड़ लग जाती थी।

दूसरों के दुख से दुखी होनेवाले विद्यासागर के हृदय से हिंदू-बाल विधवाओं का दुःख नहीं देखा गया। सन् १८५४ ई० की २८ जनवरी को उन्होंने "विधवा-विवाह होना उचित है कि नहीं" इस नाम की एक पुस्तक बनाकर प्रकाशित की। फिर तो सारे हिंदुस्तान में इस बात का कोलाहल मच गया। इस नई और समाज-विरुद्ध बात के कहने के लिये उन्हें बड़ी बड़ी गालियाँ खानी पड़ीं। यहाँ तक कि कुछ लोग उनके मार डालने की चेष्टा में भी

फिरते थे। पर दृढ़-प्रतिज्ञ विद्यासागर ने जो प्रतिज्ञा की उससे जरा न हटे। उन्होंने पूरा परिश्रम कर बहुत से विरोधियों को अपने पक्ष में किया, सरकार से इस विषय का कानून पास कराया, और कई एक बाल-विधवाओं का विवाह अपने सामने कराया, यहाँ तक कि अपने पुत्र का विवाह भी एक विधवा कन्या से कर दिया। लोग कहते हैं कि इस उद्योग में उन पर पचास साठ हजार रुपयों का ऋण हो गया था।

सन् १८५५ ई० में कलकत्ता युनिवर्सिटी स्थापित हुई और विद्यासागर उसके फेलो चुने गए। उस समय संस्कृत उठा देने के लिये युनिवर्सिटी ने प्रस्ताव किया था, सिनेट के सब लोग उसी ओर थे किंतु अकेले विद्यासागर के उद्योग और युक्तियों से वह प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ।

सिविलियनों की परीक्षा के लिये लार्ड डलहौजी ने जो "सेंट्रल कमिटी" स्थापित की थी विद्यासागर उसके भी सभासद बनाए गए थे।

सन् १८५६ ई० में "एडुकेशन कौंसिल" उठकर उसके स्थान में "पबलिक इंस्ट्रकशन" स्थापित हुआ और डाइरेक्टर का पद बनाया गया। पहले पहल यंग साहब सिविलियन डाइरेक्टर हुए। उन्हें विद्यासागर ने बंगाल के छोटे लाट हालिडे साहब के कहने से कई महीने तक शिक्षा-विभाग का काम सिखलाया था, इस कारण यंग साहब गुरु की भाँति उनका आदर करते थे। छोटे लाट हालिडे साहब भी विद्यासागर को बहुत मानते थे। लाट साहब प्रति बृहस्पतिवार को उन्हें अपने पास बुलाते और बहुतेरी बातों में उनसे सलाह लिया करते थे। वे लाट साहब की कोठी में मोटे कपड़े की चादर और चटी जूता पहिरकर जाते थे। सन् १८५७ ई० में उन्होंने छोटे लाट के कहने से कई जगह लड़कियों की

पाठशालाएँ स्थापित कीं किंतु जब उन पाठशालाओं के खर्च का बिल बनकर डाइरेक्टर साहब के पास गया तो उन्होंने रुपए देने अस्वीकार किए। तब विद्यासागर ने यह हाल लाट साहब से कहा। उन्होंने उत्तर दिया कि "तुम नालिश कर दो" किंतु विद्यासागर कचहरी के नाम से ऐसे दूर भागते थे कि उन्होंने ऋण करके सब खर्च अपने पास से दे दिया पर लाट साहब के कहने से नालिश न की। विद्यासागर और डाइरेक्टर साहब में पहले ही से कुछ अनबन चली आती थी, किंतु बिल के पचड़े से उनका जी बहुत दुखी हो गया था, उनकी ऐसी इच्छा न थी कि ऐसे संकीर्ण-हृदय अफसर के नीचे काम करें, बस चट उन्होंने पाँच सौ रुपए महीने की नौकरी पर लात मार इस्तीफा दे ही दिया। छोटे लाट हालिडे साहिब आदि सरकारी प्रधान कर्मचारियों तथा बंधु-बांधवों ने उन्हें बहुत कुछ समझाया पर प्रतिज्ञा-वीर विद्यासागर ने किसी की एक न सुनी। अपने एक मित्र के खेद प्रकाश करने पर उन्होंने कहा था कि "भाई! आज इस नौकरी छोड़ने पर भी हमें अपनी पुस्तकों की बिक्री की बहुत कुछ आमदनी है किंतु पहले जब हमने संस्कृत कालिज के असिस्टेंट सेक्रेटरी का पद छोड़ा था उस दिन हमारे पास क्या था?" निदान सबके मना करने पर भी उन्होंने नौकरी छोड़ दी। उस समय पुस्तकों की बिक्री से उन्हें अच्छी आमदनी थी पर ऋण का बोझ भी उनके सिर बहुत था। सब कुछ हुआ किंतु उनके दान का व्यय कभी भी कम न हुआ। कितने ही लोगों को हजार हजार पाँच पाँच सौ रुपए देकर उनके घरों को नीलाम होने से बचा दिया था। विद्यासागर ने ऋण लेकर मेघनादवध महाकाव्य के प्रणेता, बंगभाषा के प्रसिद्ध कवि, माइकेल मधुसूदन दत्त को दस हजार रुपए दिए थे। यदि उस समय विद्यासागर ने उसकी सहायता न की होती तो बंग-

भाषा का वह अद्वितीय कवि विलायत ही में मर गया होता। कितने ही भलेमानुसों के परिवार को वे तीस तीस चालीस चालीस रुपए महीने देते थे। यह सब खर्च कहाँ से होता था? कर्ज लेकर! यह विद्यासागर ही का काम था कि वे दूसरों को ऋण से बचाने के लिये आप ऋण के बोझ से दबे जाते थे, तिस पर उस ब्राह्मण संतान की और भी निस्पृहता सुनिए। एक समय आप बर्दवान देखने गए थे, उनके आने का समाचार पाते ही महाराज बर्दवान ने बड़े आदर से उन्हें बुलाया और बिदाई में पाँच सौ रुपए और एक दुशाला उनके आगे रखा, पर विद्यासागर ने वह भेट नहीं ली और कहा कि "महाराज, ये रुपए गरीब ब्राह्मण पंडितों को दीजिए क्योंकि हम दान नहीं लेते"।

जिस गाँव (बीरसिंह) में विद्यासागर रहते थे वह गाँव महाराज बर्दवान का था। उन्होंने बहुत चाहा कि वह गाँव विद्यासागर की भेंट कर दें पर उन्होंने न लिया और कहा कि "महाराज, हम उस समय गाँव लेंगे जब हमारी ऐसी अवस्था हो जायगी कि हम अपने पास से सब रैयतों की मालगुजारी दे सकेंगे।" यह अद्भुत उत्तर सुन महाराज सन्नाटे में आ गए।

विद्यासागर के अन्न से पढ़ पढ़कर कितने आदमी अमीर हो गए और विद्यासागर के नौकर रखवाए हुए कितने लोग बड़े बड़े पदों पर पहुँचे इसका कोई ठिकाना नहीं है।

विद्यासागर को पचास साठ हजार रुपयों का देना हो गया था, पर मरने के समय उन्होंने एक पैसा भी देना नहीं छोड़ा था। एक समय कई लोगों ने यह प्रस्ताव किया था कि "विद्यासागर का यह देना विधवा-विवाह के कारण हुआ है इसलिये चंदा करके यह दे दिया जाय" पर विद्यासागर ने यह बात स्वीकार न की और अपना

देना अपने ही माथे रखा। इसी लिये तेरह हजार रुपए पर अपना प्रेस बेच डाला। वे हिसाब के ऐसे साफ थे कि देनदारों को बुला बुलाकर चुकाते थे। उन्हें गवर्नमेंट के भी पाँच हजार रुपए देने थे। उन्होंने गवर्नमेंट से पुस्तकें छापने के लिये ली थीं। गवर्नमेंट के यहाँ वह रकम खर्च खाते पड़ गई थी इसी से वह कभी उनसे माँगी नहीं गई और इधर पुस्तकें भी न छपीं। फिर बहुत दिन पीछे विद्यासागर ने आपही पत्र लिखकर वे रुपए गवर्नमेंट के पास भेज दिए थे।

प्रसिद्ध अँगरेजी समाचारपत्र "हिंदू पेट्रियट" के सुयोग्य संपादक बाबू हरिश्चंद्र मुकुर्जी के मरने पर इस पत्र का अधिकार बाबू कालीप्रसन्नसिंह ने पाँच हजार रुपए पर खरीद लिया था, पर जब उनसे वह पत्र न चल सका तो उन्होंने उसका भार विद्यासागर को सौंप दिया। विद्यासागर जैसे आप गुणी थे वैसे ही गुणग्राहक भी थे। उन्होंने "बृटिश इंडियन ऐसोसिएशन" के क्लार्क बाबू कृष्णदास पाल को होनहार और योग्य देखकर वह पत्र उन्हें सौंप दिया। उसी पत्र के द्वारा एक साधारण क्लर्क कृष्णदास दिन पाकर आनरेबुल राय कृष्णदास पाल बहादुर सी० आई० ई० हुए थे।

एक दुखी ब्राह्मण के पालन के लिये विद्यासागर ने "सोमप्रकाश" नामक बँगला साप्ताहिक पत्र निकाला, जिसे पीछे से उन्होंने पंडित द्वारकानाथ विद्याभूषण को दे दिया था। उस पत्र का जैसा आदर बंग भाषा में हुआ और उसने जैसी सेवा बँगला साहित्य की की वैसी दूसरे पत्रों से होनी कठिन है।

सन् १८६४ ई० में उन्होंने कलकत्ते में "हिंदू मेट्रापालिटन इंस्टिट्यूशन" नाम का स्कूल खोला और धीरे धीरे उसे सन् १८७२ ई० में कालिज कर दिया। वह कालिज केवल देशी लोगों ही के प्रबंध

से चलता था, और उसने कई बार प्रेसिडेंसी कालिज से बढ़कर परीक्षा का फल दिखलाया। विद्यासागर ने अपने उद्योग और प्रबंध से यह बात प्रत्यक्ष दिखला दी कि हिंदुस्तानी लोग भी पूरे तौर से सब काम चला सकते हैं। सरकारी कालिज में फीस ज्यादे देनी पड़ती थी जिससे दीन दुखियों के लड़के उसमें नहीं पढ़ सकते थे, इसलिये विद्यासागर ने अपने कालिज की फीस बहुत कम रखी। तिस पर भी बहुतेरे गरीब लड़कों की फीस वह माफ कर देते थे। उस कालिज से बंगाल में उच्च शिक्षा के प्रचार करने में बड़ा लाभ हुआ। पहले तो विद्यासागर को उस कालिज में अपने पास से कुछ रुपए लगाने पड़ते थे पर अंत में वह अपनी आमदनी से आप चलने लगा। पर विद्यासागर उसकी आमदनी में से कभी कुछ न लेते वरन् उसका काम नौकरों की तरह करते थे।

कलकत्ते में जितने सरकारी या बेसरकारी काम होते थे उन सभी कामों में विद्यासागर की सहायता प्रायः ली जाती थी। हिंदू धर्मशास्त्र के संबंध की कोई बात होती या कोई कानून बननेवाला होता तो उनकी सहायता अवश्य ली जाती थी। निदान सरकारी नौकरी छोड़ने पर भी सरकार उन्हें नहीं छोड़ती थी। एक बार मिस मेरी कारपेंटर, डाइरेक्टर साहब को साथ ले, लड़कियों की पाठशाला देखने गई थीं। विद्यासागर को भी उन्होंने अपने साथ लिया था, लौटती बेर गाड़ी उलट गई और विद्यासागर के कलेजे में चोट लगी। वह देर तक अचेत पड़े रहे तथा बड़ी चिकित्सा करने पर कुछ दिनों में अच्छे हुए। बस उसी समय से उनका स्वास्थ्य बिगड़ा, आबहवा बदलने के लिये उन्हें फरासडाँगा जाना पड़ा फिर वहाँ से बर्दवान आए। वहाँ उस समय बड़े जोर से मलेरिया बुखार फैला हुआ था। यह देख दयासागर विद्यासागर

अपना दुख भूल गए और वहाँ हजारों रुपए खर्च कर अस्पताल खोल दिया। फिर उन्होंने गवर्नमेंट तथा रईसों की सहायता से कई अस्पताल खोलवाए तथा दीन दुखियों के दवा पथ्य और कपड़े का प्रबंध किया। वह अपना रोग भूलकर दूसरे रोगियों की सेवा अपने हाथ से करते थे। एक दिन किसी बड़े दुबले भिखमंगे लड़के ने विद्यासागर से एक पैसा माँगा। उन्होंने पूछा कि "जो हम चार पैसा दें तो तुम उन पैसों का क्या करोगे?" लड़के ने समझा कि ये हँसी करते हैं, बोला "आप तो ठट्ठा करते हैं"। इस पर उन्होंने कहा "हम ठट्ठा नहीं करते, सच सच बतलाओ।" लड़का बोला "दो पैसे का दाना लेंगे और दो पैसे माँ को देंगे" विद्यासागर ने पूछा "और जो हम दो आने दें तो?" यह सुन लड़का ठठोल-बाजी समझकर चलने लगा तब उन्होंने उसका हाथ पकड़ लिया और उसे उत्तर देना पड़ा। वह बोला "चार पैसे का चावल लेंगे और चार पैसे माँ को देंगे।" विद्यासागर ने फिर पूछा "और जो चार आने दें तो?" लड़के ने कहा "दो आने का चावल लेंगे जिससे दो दिन की छुट्टी हो जायगी और दो आने का आम लेकर बेचेंगे। उससे दो आना लाभ होगा। इसी तरह जितने दिन चल सकेगा चलावेंगे।" यह सुन करुणामय विद्यासागर ने उसे एक रुपया दिया और वह उसे ले आशीर्वाद देता चला गया। दो वर्ष पीछे फिर विद्यासागर का बर्दवान जाना हुआ तब एक मोटे ताजे लड़के ने आकर हाथ जोड़ कहा "दीनबंधु! हमारी दूकान को अपने चरण से पवित्र कीजिए"। विद्यासागर ने कहा—"हम तो तुम्हें पहिचानते भी नहीं, तुम्हारी दुकान पर किस नाते से चलें?" लड़के ने कहा "दयामय, हम वही हैं जिसे आपने एक पैसा माँगने पर एक रुपया दिया था। हमने उस रुपए में से दो आने के चावल लिए और

चौदह आने के आम लेकर बेचे, उससे आपके पुण्य प्रताप से बराबर लाभ होता गया। अब हमने बिसाती की दूकान कर ली है और आपके चरणों की कृपा से माँ के साथ सुख से हमारा दिन कटता है।" यह सुन विद्यासागर बहुत ही प्रसन्न हुए और फिर उन्होंने उस गरीब बालक की सहायता की।

विद्यासागर जो प्रतिज्ञा कर लेते उससे कभी नहीं हटते थे। किसी बात पर दुखी होकर उन्होंने अपनी जन्मभूमि (बीरसिंह गाँव) में जाना छोड़ दिया तो फिर वे जन्म भर वहाँ न गए। एक समय वे अपनी संस्कृत डिपाजिटरी के प्रबंध से अप्रसन्न होकर लोगों से बोले कि जो कोई इसे ले तो हम देकर छुट्टी पावें। इस पर एक महाशय ने कहा कि जो आप ऐसा ही किया चाहते हैं तो हमें दे दीजिए। यह सुन विद्यासागर ने प्रसन्नता के साथ उन्हें डिपाजिटरी देना स्वीकार किया। फिर कई लोगों ने विद्यासागर को डिपाजिटरी के लिये छ हजार रुपए तक देने को कहा पर सत्य-वीर विद्यासागर का मन जरा न डोला और उन्होंने बिना कुछ लिए ही जिससे पहले प्रतिज्ञा की थी उसे डिपाजिटरी दे डाली।

बंगाल में कुलीन ब्राह्मण के बहुत विवाह होते हैं, यहाँ तक कि एक एक मनुष्य अस्सी नब्बे ब्याह तक कर डालते हैं, और विवाह पीछे अपनी स्त्रियों की सुधि तक नहीं लेते। इस घोर अत्याचार को देख दयासागर विद्यासागर से न रहा गया और उन्होंने कई पुस्तकें इस विषय पर लिख डालीं। चारों ओर से आंदोलन मचवाया और बड़े बड़े लोगों के हस्ताक्षर करा कर गवर्नमेंट की सेवा में मेमोरियल भेजे। विद्यासागर के बड़े यत्न करने पर भी कानून तो न बना पर उस आंदोलन का फल यह हुआ कि यह कुरीति बहुत कम हो गई।

सन् १८७२ ई० में कलकत्ते में "हिंदू फैमिली आनुइटी फंड" स्थापित हुआ। इस फंड में कुछ महीना देने से मरने पर उसके परिवारवालों को इस फंड से मासिक सहायता दी जाती है। विद्यासागर ने भी इसके स्थापित होने में बहुत कुछ सहायता की थी और तीन वर्ष तक वह, महाराज ज्योतींद्रमोहन ठाकुर, आनरेबुल बाबू द्वारकानाथ इसके ट्रस्टी रहे। किंतु पीछे इसके प्रबंध से असंतुष्ट होकर उन्होंने इसका संबंध छोड़ दिया। जब विद्यासागर से इस फंड से सरोकार छोड़ने का कारण पूछा गया तो उन्होंने जिनके जिनके जो जो दोष थे वे सब साफ साफ कह दिए। वे सच कहने में भी किसी का संकोच न करते और न किसी से डरते थे। विद्यासागर से और उस समय के लेफ्टिनेंट गवर्नर कैम्बेल साहब से एक साधारण बात पर झगड़ा हो गया। इस पर निडर होकर उन्होंने लाट साहब की भूल पत्रों में छपवा दी। उस झगड़े के कारण उन्हें बहुत हानि सहनी पड़ी, उनकी बहुतेरी पुस्तकें कोर्स से उठा दी गईं जिससे आमदनी भी बहुत कम हो गई पर स्वाधीन-चित्त विद्यासागर ने इन बातों की कुछ भी चिंता न की।

कलकत्ते के कई बड़े बड़े लोगों ने विधवा-विवाह में सहायता देने के लिये विद्यासागर से प्रतिज्ञा की थी पर समय पर सब निकल गए। अमीरों का ऐसा ओछापन देखकर विद्यासागर ने उन लोगों से सारा संबंध छोड़ दिया। उन्होंने अपने दामाद को कालिज में प्रबंध करने के लिये रखा था पर उनके किसी काम से वह ऐसे अप्रसन्न हुए कि दामाद के नाते का न ख्याल कर निःसंकोच उन्हें नौकरी से छोड़ा दिया। वह न आप झूठ बोलते और न झूठे से किसी तरह का संबंध रखते थे। झूठ और झूठ बोलने-वालों से उन्हें यहाँ तक चिढ़ हो गई थी कि वे पिछली अवस्था

में कलकत्ते में बहुत कम रहते और सौंताल परगने के "कर्मटाँड" नामक स्थान में एक बँगला बनवाकर वहीं बड़ी ही सादी चाल से रहा करते थे। वहाँ पर जंगली सौंताल लोग उनके सखा थे, उन गँवारों का सच्चा और निष्कपट व्यवहार विद्यासागर को बहुत अच्छा लगता था। वे लोग जो कभी रुष्ट होकर उन्हें गाली भी दे देते तो उन्हें मीठी जान पड़ती। निदान उन सीधे सादे सच्चे जंगली लोगों के बीच में रहकर विद्यासागर बड़े सुख से अपना समय बिताते थे।

सन् १८७५ ई० में उन्होंने अपना वसीयतनामा लिखा जिससे मरने के पीछे भी उनकी उदारता ने उनका साथ न छोड़ा। जिन कुटुम्बवालों या दूसरे असहायों को वे जो महीना देते थे उतने ही महीने देने का अपने मरने के पीछे भी उत्तम प्रबंध उस वसीयत-नामे के द्वारा कर गए। उसमें लगभग एक हजार रुपए प्रति महीने बाँटने की सारी व्यवस्था लिखी है।

सन् १८८० ई० में विद्यासागर के उत्तम गुणों पर रीझकर गवर्नमेंट ने उन्हें सी० आई० ई० की पदवी प्रदान की।

सन् १८९१ ई० में (बारहवीं श्रावण की रात को दो बज के अठारह मिनट पर) उन्होंने इस असार संसार को छोड़ा। आज उनका नाशवान शरीर इस नश्वर संसार में नहीं है पर उनकी अचल कीर्ति ज्यों की त्यों विराजमान है और सदैव रहेगी। बीमारी में उनकी बहुत कुछ दवाएँ की गईं; सड़क पर गाड़ी घोड़े का शब्द न हो इसलिये उस पर सूखी घास बिछाई गई थी। म्युनिसिप्यालिटी ने अपनी स्कैवेंजर गाड़ी का उधर से आना जाना बंद कर दिया था। डाक्टर साल्जर आदि मिलकर दवा करते थे पर एक ने भी काम न किया, क्योंकि उनके दिन पूरे हो गए थे, इसलिये वे सारे

भारतवासी और विशेष कर बंगालियों को रुलाकर चल बसे। उनके मरने पर उनके शोक प्रकाश करने के लिये सैकड़ों ही सभाएँ हुईं और स्मारक चिह्न स्थापन करने के प्रस्ताव हुए। २७ अगस्त सन् १८९१ ई० को कलकत्ता टाउन-हाल में जो शोक प्रकाश के लिये सभा हुई थी उसके सभापति स्वयं बंगाल के छोटे लाट सर चार्ल्स इलियट हुए थे। भारतवर्ष के हिंदी, अँगरेज़ी, सरकारी, बे-सरकारी सभी समाचारपत्रों ने उनका गुण गा गाकर शोक प्रकाश किया था। बँगला के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवियों ने उनके शोक में कविताएँ लिखी थीं, और कलकत्ते के कितने ही बाजार तथा सरकारी बे-सरकारी सब स्कूल और कालिज बंद हुए थे। कितने ही स्थानों में कितने ही उनके स्मारक चिह्न स्थापित किए गए पर कलकत्ते का स्मारक चिह्न आज तक बनता ही है। हाय हिंदुस्तानी भाइयों ने अपने स्वाभाविक गुण गुण-ग्राहकता को बिलकुल ही भुला दिया कि ऐसे आदरणीय पुरुष की कुछ कद्र न की। अस्तु, कोई स्मारक स्थापन करे वा न करे, विद्यासागर की अटल कीर्ति ही उनका अचल स्मारक है। जब तक बंग भाषा पृथ्वी पर रहेगी, जब तक दया और उदारता का आदर संसार में रहेगा, और जब तक विद्यासागर की पुस्तकों की एक चिट भी बची रहेगी तब तक वह अमर रहेंगे और उनका पवित्र नाम आदर के साथ लिया जायगा।

बंग देश में विद्यासागर के नाम का इतना आदर है कि गाँव गाँव गली गली घर घर स्त्रियाँ भी गँवारू गीतों में उनका गुण गान करती हैं। बंग देश में एक चाल के किनारे की धोती बनती है उसका नाम "विद्यासागर पाड़" है। छापेखानों में अक्षरों के रखने की एक नई चाल उन्होंने चलाई थी, वह आज तक "विद्यासागर सार्ट" के नाम से प्रसिद्ध है और बरती जाती है।

विद्यासागर के विमल चरित्र में लोगों के सीखने योग्य बहुत सी बातें हैं। भाइयो! मनुष्य अपने बाहुबल से आप ही क्योंकर बढ़ सकता है, यह देखना हो तो विद्यासागर का चरित देखो; सत्य और धर्म के पथ पर चलकर मनुष्य कैसे सुखी और कीर्तिमान हो सकता है, यह जानना हो तो विद्यासागर का चरित्र पढ़ो, दृढ़ता के साथ काम करने से मनुष्य असंभव को कैसे संभव कर सकता है यह सीखना हो तो विद्यासागर का चरित्र पढ़ो, सरकारी प्रियपात्र होकर भी मनुष्य किस भाँति अपने देश की भलाई कर सकता है, यह समझना हो तो विद्यासागर का चरित्र सीखो; और बाहरी चमक दमक को दूरकर उदारता, दया तथा सचाई के गुणों से मनुष्य क्योंकर शोभायमान और आदर का पात्र हो सकता है, यह हृदयंगम करना हो तो विद्यासागर का चरित्र ध्यान दे सोचो। सत्य, दया, दृढ़ता, और परोपकार आदि गुण विद्यासागर के जीवन के मूल थे। परमेश्वर करे प्रत्येक भारतवासी जन इन गुणों को अपना जीवन-मूल बनाकर विद्यासागर का अनुकरण करते हुए इस देश का मंगल करें।

---

(६) भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र का जीवनचरित्र*

पिता और पूर्व पुरुष

परमेश्वर नास्तिकों का मुँह बंद करने और अपना अस्तित्व प्रमाणित करने ही के लिये कभी कभी पृथ्वी पर ऐसे लोगों को जन्माता है जिनकी अद्‌भुत प्रतिभा देखकर लोग आश्चर्य में आ जाते हैं। हमारे चरित्रनायक भी वैसे ही एक पुरुषरत्न थे कि जिनके चरित्र में

---

* "खड्गविलास" यंत्रालय की ढील से उकताए हुए मित्रों के आग्रह से मैंने पूज्य भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी के जीवनचरित्र की बातें जो मुझे याद आईं, उन्हें "सरस्वती" पत्रिका द्वारा चार वर्ष हुए प्रकाशित किया था, तब से प्रायः लोगों का आग्रह उसे पुस्तकाकार छापने का होता रहा परंतु अब तक उसका अवसर न आया। इधर गत कार्तिक मास में "दिल्ली दर्बार चरितावली*" के लेखक जगदीशपुर ज़िला शाहाबाद-निवासी बाबू हरिहरप्रसादजी काशी आए और उन्होंने अत्यंत ही आग्रह करके अपने सामने ही छपने का प्रबंध कराया अतएव इसके छपने के मूल कारण उक्त महाशय ही हैं, इसलिये मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

इस छोटे ग्रंथ में जहाँ तक सामग्री मुझे मिली, मैंने उसका दिग्दर्शन मात्र करा दिया है। संभव है कि बहुतेरी आवश्यक बातें इसमें छूट गई हों, क्योंकि मेरे पास जो कुछ सामग्री थी उसमें से अधिकांश "खड्गविलास" यंत्रालय के स्वामी स्वर्गवासी बाबू रामदीनसिंहजी जीवनी प्रकाश करने की इच्छा

---

* इस ग्रंथ में भारत-सम्राट् महाराजाधिराज सप्तम एडवर्ड के राज्याभिषेक महोत्सव के उपलक्ष में जो दिल्ली में दर्बार हुआ था उसका वृत्त दिल्ली के इतिहास सहित सरल हिंदी भाषा में वर्णित है। उक्त ग्रंथ बाबू साहब के पास बाबू गुलाबचंद्रजी की कोठी, दौलत-गंज-छपरा इस पते से मिलता है।

ईश्वर की ईश्वरता का साक्षात् प्रमाण मिलता है। ऐसे लोगों के जीवनचरित्र के पढ़ने से लोग बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं, क्योंकि उनका चरित्र लोगों को एक अच्छा रास्ता दिखलाता और संसार में यश कमाने का अच्छा उपदेश देता है।

जगत्-प्रसिद्ध कविश्रेष्ठ गिरिधरदास, प्रसिद्ध नाम बाबू गोपाल चंद्र, का जन्म काशी में मिती पौष कृष्ण १५ सं० १८९० को हुआ था और मृत्यु मिती वैशाख सु० ७ सं० १९१७ को। उन्होंने इस २६ वर्ष ४ महीने ७ दिन की ऐसी छोटी अवस्था में कितने बड़े काम किए हैं, यह देखकर आश्चर्य होता है। हिंदुस्तान में जिस अवस्था में धनवानों के लड़कों को पूरी तरह पर बात करने का भी ज्ञान नहीं होता और जिस भयानक अवस्था के वर्णन में उचित रूप से कहा गया है कि—

से ले गए थे। "सरस्वती" में जो जीवनी छपी थी उसके पीछे और जिन बातों का पता लगा वे इसमें बढ़ा दी गई हैं। आशा है कि इससे हिंदी और पूज्य भारतेंदु के प्रेमियों को कुछ आनंद प्राप्त होगा।

पूज्य भारतेंदुजी की जीवनी लिखना मुझे उचित न था, इसमें आत्मश्लाघा का दोषी बनना पड़ता है, परन्तु यह सोचकर कि यदि और लोगों की भाँति आलस्य में, वे बातें जो मुझे विदित हैं लिखने से रह गईं और मेरा शरीर भी न रहा तो उनका पता लगना भी दुर्घट हो जायगा और यह लालसा मेरी मन की मन ही में रह जायगी, इसलिये मैंने यह धृष्टता की है। आशा है कि सज्जन क्षमा करेंगे।

हर्ष की बात है कि हिंदीहितैषी बाबू रामदीनसिंहजी के योग्य पुत्र बाबू रामरणविजयसिंह का ध्यान अपने पिता की इस इच्छा को पूरा करने की ओर गया है। आशा है कि वे अपने पिता की संगृहीत सामग्रियों से इस जीवनी की पूर्ति करेंगे।

"भारतमित्र"-संपादक सुहृद्वर बाबू बालमुकुंद गुप्त भी एक जीवनी लिखनेवाले हैं। यदि उक्त दोनों जीवनियों में कुछ भी सहायता मेरी लिखी इस जीवनी से मिलेगी तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

[संवत् १९६१

"यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता ।
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ॥"

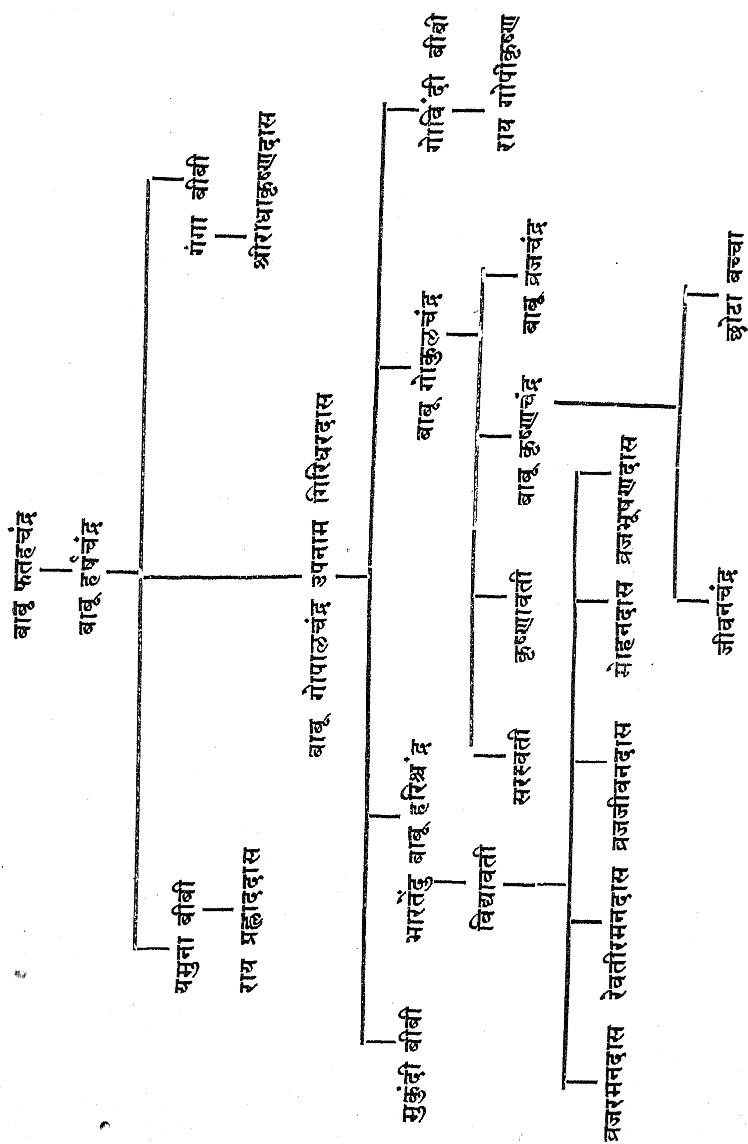
उस अवस्था में इस प्रांत के प्रसिद्ध सेठ हर्षचंद्र के एकमात्र पुत्र गोपालचंद्र ने बचपन में ही पितृहीन होकर भी विद्वत्ता और सच्चरित्रता का ऐसा उदाहरण छोड़ा है कि जिसे देखकर ईश्वर की महिमा स्मरण आती है। इसके पहले कि हम इनका कुछ चरित्र लिखें, इनके सुप्रसिद्ध वंश का बहुत ही संक्षेप से वर्णन कर देना उचित समझते हैं, जिसमें हमारे पाठकों को इनका और इनके पुत्र हिंदी-प्रेमियों के एकमात्र प्रेमाराध्य भारतेंदु हरिश्चंद्र का पूरा परिचय मिल जाय।

भारतेंदु जी स्वरचित "उत्तरार्द्ध भक्तमाल" में निज वंश-परंपरा यों वर्णन करते हैं—

"वैश्य अग्र-कुल मैं प्रगट बालकृष्ण कुल पाल।
ता सुत गिरिधरचरनरत, वर गिरधारीलाल ॥ १ ॥
अमीचंद तिनके तनय, फतेचंद ता नंद।
हरखचंद जिनके भए, निज कुल सागर चंद ॥ २ ॥
श्री गिरिधर गुरु सेइके, घर सेवा पधराइ।
तारे निज कुल जीव सब, हरि पद भक्ति दृढ़ाइ ॥ ३ ॥
तिनके सुत गोपाल ससि, प्रगटित गिरिधरदास।
कठिन करम गति मेटि जिन, कीनो भक्ति प्रकास ॥ ४ ॥
मेटि देव देवी सकल, छोड़ि कठिन कुल रीति।
थाप्यो गृह मैं प्रेम जिन, प्रगटि कृष्ण पद प्रीति ॥ ५ ॥
पारवती की कूख सों, तिन सों प्रगट अमंद।
गोकुलचंदाग्रज भयो, भक्त-दास हरिचंद ॥ ६ ॥"

वंश-वृक्ष

- राय बालकृष्ण
  - फ़क़ीरचंद
    - हरिबिलास
    - सूरतसिंह
      - रूपचंद
      - अनूपचंद
      - शोभाचंद
  - लक्ष्मीराम
    - गिरिधारीलाल
      - सेठ अमीचंद
        - राजा गोविंदचंद
        - राय रत्नचंद बहादुर
          - बाबू रायचंद
            - गोपीचंद
        - डालचंद
        - मोहनचंद
        - विष्णुचंद
          - नान्हकचंद
        - राय हुकुमचंद
        - सीतलचंद
        - राजा आनंदचंद
        - पूर्णचंद
      - चंद्रविलास
  - दलपतराय
    - खिरोधरलाल


बाबू फतहचंद
बाबू हर्षचंद
गंगा बीबी
श्रीराधाकृष्णदास
यमुना बीबी
राय प्रह्लाददास
बाबू गोपालचंद उपनाम गिरिधरदास
गोविंदी बीबी
राय गोपीकृष्ण
बाबू गोकुलचंद
बाबू व्रजचंद
बाबू कृष्णचंद
छोटा बच्चा
जीवनचंद
मुकुंदी बीबी
भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र
विद्यावती
सरस्वती
कृष्णावती
व्रजरमनदास
रेवतीरमनदास
व्रजजीवनदास
मोहनदास
व्रजभूषणदास

दिल्ली के शाही घराने से इनके प्रतिष्ठित पूर्वजों का बहुत ही घनिष्ठ संबंध था। जब शाहजहाँ का बेटा शाह शुजा सन् १६५० के लगभग विशाल बंगाल का सूबेदार होकर आया, तब इनके पूर्वज भी उसके साथ दिल्ली छोड़ बंगाल में चले आए, और जैसे जैसे मुसलमानी राजधानी बंगाल में बदलती गई वैसे वैसे ये लोग भी अपना प्रवासस्थान परिवर्तन करते गए। राजमहल और मुर्शिदाबाद में अब तक इनके पूर्वजों के उच्च प्रासादों के अवशिष्ट चिह्न पाए जाते हैं। इसी विशाल वंश के सेठ बालकृष्ण के प्रपौत्र तथा सेठ गिरिधारीलाल के पुत्र सेठ अमीचंद के समय में इस देश में अँगरेजों का राजत्वकाल प्रारंभ हुआ। उस समय अँगरेजों के सहायकों में से ये भी एक प्रधान सहायक थे। उस समय इनका इतना मान था कि इनके दस बेटों में से तीन को "राजा" और एक को "रायबहादुर" की पदवी प्राप्त थी। इन पुत्रों में से वंश केवल बाबू फतहचंद्र का चला। सेठ अमीचंद का वृत्तांत इतिहासों में इस प्रकार प्रसिद्ध है।

सेठ अमीचंद

सेठ अमीचंद का चार लाख रुपया कलकत्ते में लूटा गया था, और भी बहुत कुछ हानि हो गई थी; परंतु नव्वाब की ओर से उसकी कुछ भी रक्षा न हुई। निदान यों ही देश को दुखित देख जब लोगों ने अँगरेजों की शरण ली तो ये भी उनमें एक प्रधान पुरुष थे। इनसे अँगरेजों से यह दृढ़ प्रतिज्ञा हो गई थी कि सिराजुद्दौला के कोष से जो द्रव्य प्राप्त होगा उसमें से पाँच रुपया सैकड़ा तुम्हें मिलेगा, और दो प्रतिज्ञापत्र लिखे गए। लाल कागज पर जो लिखा गया उस पर सेठ अमीचंद को ५) रुपया सैकड़ा देने को लिखा गया था, परंतु सफेद कागज पर जो लिखा गया था उस पर इनका नाम

तक न लिखा गया। जब हस्ताक्षर होने के हेतु कौंसिल में ये पत्र उपस्थित हुए तो 'एडमिरल' ने लाल कागज पर हस्ताक्षर करना सर्वथा अस्वीकार किया पर कौंसिलवालों ने उनका हस्ताक्षर बना लिया। बंगाल-विजय के पश्चात् जब खजाना सहेजा गया तब डेढ़ करोड़ रुपया निकला। सेठ अमीचंद ने तीस पैंतीस लाख रुपया मिलने का हिसाब जोड़ रक्खा था। जब प्रतिज्ञापत्र पढ़ा गया और इनका नाम तक न निकला तो इन्होंने उस षड्चक्र से घबराकर कहा "साहब, वह लाल कागज पर था"। लार्ड क्लाइव ने उत्तर दिया "यह आपको सब्जबाग दिखाने को था। असिल यही सफेद है"। सेठ अमीचंद इस वाक्य के व्याघात से मूर्च्छित होकर गिर पड़े। लोग उन्हें पालकी में डालकर घर लाए। इसी प्रबल पीड़ा से डेढ़ वर्ष के पश्चात् वे परमधाम सिधारे।

राजा शिवप्रसाद लिखते हैं कि "अफसोस है, क्लाइव ऐसे आदमी से ऐसी बात जहूर में आवे; पर क्या करें, ईश्वर को मंजूर है कि आदमी का कोई काम बेऐब न रहे। इस मुल्क में अँगरेजी अमल्दारी की सचाई में, जो मानों धोबी की धोई हुई सफेद चादर रही है, केवल उसी अमीचंद ने उसमें एक छोटा सा धब्बा लगा दिया है *"।

---

* मीर जाफर, अमीचंद (अमियचंद्र) ("A man of vast wealth") और खोजा वजीद ये तीन जन थे कि जिनकी सहायता से पलासी युद्ध में अँगरेज विजयी हुए। मीर जाफर (सेनापति) को नवाब बनाने की लालच दी गई और सेठ अमीचंद को उनका बहुत रुपया, जिसे सिराजुद्दौला ने अन्याय से ले लिया था, युद्ध जीतने और कोष पाने पर देने का वादा किया गया। पीछे रुपया देख क्लाइव लोभ में आ गया। इसी लोभ ने हेस्टिंग्स का नाम चिरस्मरणीय बनाया और इसी ने यह हत्या करा कल्पांत के लिये उनके और शुभ्र अँगरेजी राज्य के नाम में कलंक लगा दिया। कितने अँगरेज-इतिहासलेखकों ने यद्यपि एक स्वजाति की करनी को बड़ी बड़ी बातें बना

सेठ अमीचंद उस समय कलकत्ते के प्रधान महाजनों में थे, इनका इतिहास बाबू अक्षयकुमार मैत्र ने "सिराजुद्दौला" नामक ग्रंथ में लिखा है, हम उसी को यहाँ उद्धृत करते हैं।

"हिंदू वणिकों में उमाचरण का नाम अँगरेजों के इतिहास में उमीचाँद (अमीचंद) कहकर प्रसिद्ध है। अँगरेज ऐतिहासिकों ने इन्हें लोक-समाज में धूर्तता की मूर्ति कहकर प्रसिद्ध करने में कोई बात उठा नहीं रखी है और लार्ड मेकाले ने तो इन्हें "धूर्त बंगाली" कहने में कुछ भी आगा पीछा नहीं किया है, परंतु ये बंगाली नहीं थे, ये पश्चिम देशीय हिंदू वणिक थे। केवल बंगाल बिहार में वाणिज्य करने के लिये बंगाल में रहते थे। इन्हें केवल वणिक कहने से इनका पूरा परिचय नहीं होता। इनकी नानाविध सामानों से सुसज्जित राजपुरी, इनका कुसुमदाम-सज्जित प्रसिद्ध पुष्पोद्यान (बाग़), इनका मणिमाणिक्य से भरा इतिहास में प्रसिद्ध राजभण्डार, इनका हथियारबंद सैनिकों से घिरा हुआ सुंदर सिंहद्वार देखकर दूसरे की कौन कहे, अँगरेज़ लोग भी इन्हें एक बड़ा राजा कहकर मानते थे*। सेठों में जैसे जगतसेठ थे वणिकों में वैसे ही इनका

गोपन रखना चाहा है तथापि कितने न्यायशीलों ने क्लाइव को साफ दोषी ठहराया है। अधर्म सभी स्थल और सभी समय अधर्म है। राज सेक्रेटरी T. Talboys Wheeler कहते हैं :—"But the action of Clive, although it did not put a penny in his pocket, has been condemned to this day as a stain upon his character as an English gentleman."

* The extent of his habitation, divided into various departments, the number of his servants continually employed on various occupations, and a retinue of armed men in constant pay, resembled more the state

मान और पद-गौरव नवाब के दर्बार में था। अँगरेज वणिक् जब विपद में पड़ते तभी इनके शरणापन्न होते थे, और कई बार केवल इन्हीं की कृपा से इनकी लज्जा-रक्षा होने का कुछ कुछ प्रमाण पाया जाता है*।

अँगरेज लोग केवल इन्हीं की सहायता पाकर बंगाल देश में अपना वाणिज्य फैला सके थे। इन्हीं की सहायता से गाँव गाँव में अँगरेज लोग दादनी देकर रुई और कपड़े लेकर बहुत कुछ धन उपार्जन करते थे। यह सुविधा न मिलती तो इस अपरिचित विदेश में अँगरेजों को अपनी शक्ति फैलाने का अवसर मिलता कि नहीं इस में संदेह होता है। परंतु देशी लोगों के साथ जान पहिचान हो जाने पर दैव-कोप से अँगरेज लोग इनकी उपेक्षा करने लगे। जिस समय सिराजुद्दौला गद्दी पर बैठे उस समय अँगरेज लोग अमीचंद का उतना विश्वास नहीं करते थे। इन दोनों के मन में जो मैल आ गई थी वह धीरे धीरे बहुत ही दृढ़ हो गई।

उस समय इस देश के लोगों की प्रकृति ऐसी सरल थी कि वे अँगरेजों का अध्यवसाय, अकुतोभयता और विद्या-बुद्धि देखकर बे-खटके विश्वास करके उनके पक्षपाती हो गए थे। इसी से अँगरेजों का रास्ता इस देश में सुगम हो गया था।

अँगरेजों के उद्धतपने से चिढ़कर नवाब सिराजुद्दौला ने यद्यपि यह निश्चय कर लिया था कि एक न एक दिन इनको दबाने का

---

of a prince, than the condition of a merchant—ORME, VOL. II, 50.

* He had acquired so much influence with the Bengal Government, that the Presidency, in times of difficulty, used to employ his mediation with the Nowab—ORME, VOL. II, 50.

उपाय करना होगा, परंतु एक बेर और दूत भेजकर समझाना उचित जानकर चर देश के राजा राय रामसिंह पर दूत भेजने का भार दिया। अँगरेज लोग नवाब से ऐसे सशंकित थे कि इनका कोई मनुष्य कलकत्ते में घुसने नहीं पाता था, इसलिये राय रामसिंह ने अपने भाई को फेरीवाले के छद्मवेष में एक डोंगी पर बैठाकर कलकत्ते भेजा। वह सेठ अमीचंद के यहाँ ठहरा और उन्हीं के द्वारा अँगरेजों के पास नवाब का सँदेसा लेकर उपस्थित हुआ, पर अँगरेजों ने उसकी कुछ बात न मानकर बड़े अनादर के साथ उसे निकाल दिया। यद्यपि बाहरी बनाव सेठ अमीचंद का अँगरेजों से था, परंतु भीतर से अँगरेज लोग इनसे बहुत ही चिढ़े हुए थे। इस घटना के विषय में उन लोगों ने लिखा है कि "एक राजदूत आया तो था पर वह नवाब सिराजुद्दौला का भेजा दूत है यह हम लोग कैसे समझ सकते थे? वह एक साधारण फेरीवाले के छद्मवेष में आकर हम लोगों के सदा के शत्रु अमीचंद के यहाँ क्यों ठहरा था। अमीचंद के साथ हम लोगों का झगड़ा था इससे हम लोगों ने समझा था कि अपनी बात बढ़ाने के लिये ही इन्होंने यह कौशलजाल फैलाया है, इसी लिये राजदूत की उपेक्षा की गई थी। जो कहीं तनिक भी हम लोग जानते कि स्वयं नवाब सिराजुद्दौला ने दूत भेजा है तो हम लोग क्या पागल थे कि उसका ऐसा अपमान करते?" निदान अँगरेज लोग हरएक बात में सब दोष इन पर डालकर अपने बचाव का रास्ता निकाल लेते थे, परंतु वास्तविक बात और ही थी। यदि उन्हें यह निश्चय था कि यह कौशलजाल अमीचंद का है तो वे कासिम बाजार में वाट्स साहब को क्यों लिखते कि वहाँ सावधान रहें और देखें कि दूत को निकाल देने का क्या फल नवाब के दर्बार में होता है?*

* The Governor returning next day summoned

अँगरेजों के इन उद्धत व्यवहारों से चिढ़कर सिराजुद्दौला ने कलकत्ते पर चढ़ाई की। अमीचंद के मित्र राजा राय रामसिंह ने गुप्त पत्र लिखकर एक दूत के हाथ अमीचंद के पास भेजा कि वह तुरंत कलकत्ते से हट जायँ जिसमें उन पर कोई आपत्ति न आवे परंतु वह पत्र बीच ही में दूत को धमकाकर अँगरेजों ने ले लिया। इसका कुछ भी समाचार अमीचंद को न विदित हुआ। अँगरेजों ने तुरंत सेना भेजकर इन्हें बंदी किया और कारागार को ले चले। सारे नगर के लोग हाहाकार करने लगे।

"अमीचंद के यहाँ उनके एक संबंधी हजारीमल्ल कार्य्याध्यक्ष थे। उन्होंने डरकर धन, रत्न और परिवार के लोगों को लेकर भागने का विचार किया। अँगरेजों से यह न देखा गया। श्रेणी की श्रेणी अँगरेजी सेना आने और अमीचंद के घर को घेरने लगी। इनका जमादार एक सद्वंश-जात क्षत्रिय था, वह इनके नौकर बरकंदाजों तथा और नौकरों को इकट्ठा करके रक्षा का उपाय करने लगा। फिरंगियों ने आकर सिंहद्वार पर हाथाबाहीं आरम्भ की। लहू की नदी बहने लगी। अंत में इनके बर्कंदाज न ठहर सके। एक एक करके बहुतेरे भूतलशायी हो गए, जहाँ तक मनुष्य का साध्य था इन लोगों ने किया। फिरंगियों की सेना महा कोलाहल के साथ जनाने में घुसने लगी। अब तो जमादार का रक्त उबलने लगा। हैं!

---

a council, of which the majority being prepossessed against Omichand concluded that the messenger was an engine prepared by himself to alarm them and restore his importance.. but letters were despatched to Mr. Watts, instructing him to guard against any evil consequences from this proceeding—ORME, VOL. II, 54.

जिस आर्यमहिला के अंतःपुर में भगवान् सूर्यनारायण अत्यंत आदर के साथ प्रवेश करते हैं वहाँ म्लेच्छ-सेना का पदस्पर्श होगा? जिस मालिक के परिवार के निष्कलंक कुल की, अवगुंठनवती कुल-कामिनियों को पर-पुरुष की छाया भी नहीं छू सकी है उनकी पवित्र देह म्लेच्छों के हाथ से कलंकित होगी? इससे तो हिंदू बालाओं को मौत की गोद ही कोमल फूल की सेज है; यह प्राचीन हिंदू गौरव-नीति तुरंत जमादार के हृदय में उदय हुई। उसने कुछ भी आगा-पीछा न सोचकर चट एक बड़ी चिता जला दी और फिर क्या किया—फिर एक एक करके प्रभु-परिवार की १३ स्त्रियों का सिर धड़ से अलग कर वह चिता में डालता गया और अंत में उसी सतीशोणित-भरी तलवार को अपने कलेजे में घुसाकर आप भी वहीं लोट गया। अनुकूल वायु पाकर उस चिता-ज्वाल ने चारों ओर अपनी लोल जिह्वा से लपलपाकर उस राजपुरी को सिंहद्वार तक अपने पेट में डाल लिया! फिरंगी लोग उठाकर जमादार को बाहर लाए, परंतु घर के भीतर न घुस सके। अमीचंद का इन्द्रभवन श्मशान-भस्म से भर गया! केवल इस शोक समाचार को आमरण कीर्तन करने के लिये ही उस बूढ़े जमादार की प्राण वायु न निकली।"*

अँगरेजों की अंत में हार हुई। नवाब की सेना ने कलकत्ते पर अधिकार किया। सेनापति हालवेल साहब अँगरेजों के किले

---

* The head of the peons, who was an Indian of a high caste, set fire to this house, and in order to save the women of the family from the dishonour of being exposed to strangers, entered their apartments, and killed, it is said, thirteen of them with his own hand, after which he stabbed himself but, contrary to his intention, not mortally—ORME IV, 60.

की रक्षा के उपाय करने लगे पर कोई उपाय चलता न देखकर अंत में फिर अँगरेजों के गाढ़े समय के मीत अमीचंद के शरण में गए; बहुत कुछ रोए गाए। दयार्द्र-चित्त अमीचंद ने अँगरेजों के दुष्ट व्यवहार का विचार न करके उन्हें आश्वासन दिया और नवाब के सेनापति राजा मानिकचंद के नाम पत्र लिखकर हालवेल साहब को दिया। पत्र में लिखा कि "बस अब बहुत शिक्षा हो चुकी, अब जो आज्ञा नवाब देंगे अँगरेज लोगव ही करेंगे" आदि*। हालवेल साहब ने उस पत्र को किले के बाहर गिरा दिया। किसी ने उसे ले लिया पर कुछ उत्तर न आया (कदाचित् नवाब तक नहीं पहुँचा)। संध्या को अँगरेजों की सेना ने पश्चिम का फाटक खोल दिया। नवाब की सेना किले में घुस आई और बिना युद्ध जितने अँगरेज थे सब पकड़े गए। नवाब ने किले में दर्बार किया। अमीचंद और कृष्णवल्लभ को ढूँढने की आज्ञा दी। दोनों साम्हने लाए गए। नवाब ने कुछ क्रोध प्रकाश न करके दोनों का यथोचित आदर किया और बैठाया।

जो अँगरेज बंदी हुए थे वे एक कोठरी में रात को रक्खे गए। १४६ अँगरेज थे और १८ फुट की कोठरी में रक्खे गए थे। इनमें से १२३ रात भर में दम घुटकर मर गए। यह घटना अँगरेजों में अंधकूप हत्या के नाम से प्रसिद्ध है। इस कोठरी का नाम ब्लैक-होल (Black-hole) प्रसिद्ध है। यह सब बात सिवाय हालवेल साहब के किसी अँगरेज या मुसलमान ऐतिहासिक ने नहीं लिखी है इसलिये अक्षय बाबू इसकी सत्यता में बड़ा संदेह करते हैं। हालवेल साहब अनुमान करते हैं कि जो निर्दय व्यवहार अमीचंद के साथ किया गया था उसी का बदला लेने के लिये उन्होंने राजा मानिकचंद से कहकर अँगरेजों की यह दुर्गति कराई थी, परंतु धन,

---

* Halwell's India tracts, page 330.

कुटुंब सब नष्ट होने पर भी जो सिफारशी चिट्ठी अमीचंद ने राजा मानिकचंद के नाम लिख दी थी उसकी बात हालवेल साहब भूल गए !* परंतु अमीचंद के साथ जो अन्याय बर्ताव किया गया था उसे हालवेल को भी मानना पड़ा है ।†

हारने पर भी अँगरेजों ने कलकत्ते की आशा नहीं छोड़ी । पलता में डेरा डाला । मद्रास से सहायता माँगी । वहाँ से सहायता आने का समाचार मिला । इधर सिराजुद्दौला ने भी फिर शान्तरूप धारण किया । जहाज पर कौंसिल बैठी, उसी समय आरमनी वणिक के द्वारा अमीचंद का पत्र अँगरेजों को मिला जिसमें लिखाथा "मैं जैसा सदा से था वैसा ही अँगरेजों का भला चाहनेवाला अब भी हूँ । आप लोग राजा राजवल्लभ, राजा मानिकचंद, जगतसेठ, ख्वाजा वजीद आदि जिससे पत्र व्यवहार करना चाहें उसका मैं प्रबंध कर दूँगा । और आपके पास उत्तर ला दूँगा ।"‡ अँगरेज लोग इतिहास लिखने के समय अमीचंद के सिर चाहे जैसी कटूक्ति करें वा उसे दोषी ठहरावें परंतु ऐसे कठिन समयों में उनकी

---

* Halwell's India tracts, page 330.

† But that the hard treatment, I met with, may truly be attributed in a great measure to Omichand's suggestion and insinuations I am well assured from the whole of his subsequent conduct, and this further confirmed me in the three gentlemen selected to be my companions, against each of whom he had conceived particular resentment and you know Omichand can never forgive—Halwell's letter.

‡ Consulations on board the Rhomia Schooner, Fulta August 22, 1756.

सहायता वे बड़े हर्ष से लेते रहे हैं और केवल संदेह ही संदेह पर अपना काम निकल जाने पर उनके साथ असद्व्यवहार करते रहे हैं। यदि इनकी सहायता न मिलती तो नवाब के दर्बार या राजा मानिकचंद प्रभृति तक उनके पत्र भो नहीं पहुँच सकते थे। जो राजा मानिकचंद अँगरेजों के खून के प्यासे थे वे केवल अमीचंद के उद्योग से अँगरेजों का दम भरने लगे।*

जगतसेठ और अमीचंद हर एक प्रकार से अँगरेजों की मंगल-कामना नवाब के दर्बार में करने लगे। अमीचंद ने लिखा कि "नवाब के डर से कोई बोल नहीं सकता है पर ख्वाजा वजीद आदि प्रसिद्ध सौदागर लोग अँगरेजों के फिर आने के लिये उत्सुक हैं।"†

निदान फिर अँगरेजों का कलकत्ते में प्रवेश हुआ। अब नवाब की इच्छा अँगरेजों से संधि कर लेने की हुई। वह स्वयं कलकत्ते आए और अमीचंद के बाग में दर्बार हुआ। अँगरेजों के दो प्रति-निधि आए और संधि की बातें निश्चित हुईं।‡ परंतु कुचक्रियों ने

* Omichand and Manik Chand were at this time in friendly correspondence with the English. They negotiated at this time between the Nawab and the English understanding how to run with the bore and keep with the hound—Read Long.

† Omichand writes from Chunsura that Coja Wafid and other merchants would be glad to see the English return were it not for the fear of the Nawab—Read Long.

‡ February 4, 1757, at seven in the evening the Subah gave them audience in Omichand's garden, where he affected to appear in great state, attended by the best looking men amongst his Officers,

अँगरेजों को भड़का दिया, अनायास रात को अँगरेजों की तोप छूटने लगी। नवाब पहले तो घबड़ाए पर अंत में अपने मंत्रियों तथा सेनापति मीर जाफर की चाल समझ गए। ऐसे विश्वासघाती लोगों के भरोसे अँगरेजों से लड़ना उचित न समझकर वहाँ से पीछे लौट आए और दूसरे स्थान पर डेरा डालकर अँगरेजों से संधि की बात करने लगे। अंत में संधि हो गई। इस संधि के द्वारा वाणिज्य का अधिकार मिला, कलकत्ते में किला बनाने और टकसाल खोलने की आज्ञा मिली और कलकत्ते की लूट में जो हानि अँगरेजों की हुई थी वह नवाब ने देना स्वीकार किया।

संधि के विरुद्ध सिराजुद्दौला के आदेश के विपरीत अँगरेजों ने फरासीसियों के किले चंदननगर पर चढ़ाई की। एक तो फरासीसी भी दृढ़ थे, दूसरे महाराज नंदकुमार भारी सेना लिए पास ही डेरा डाले थे। सामने पहुँचकर अँगरेजों को महा कठिनता हुई परंतु उस समय भी सेठ अमीचंद ही काम आए। उन्होंने जाकर नंदकुमार को समझाया और वह वहाँ से हट गए। अँगरेजों की जय हुई।*

सिराजुद्दौला अँगरेजों की इस धृष्टता पर बहुत ही चिढ़ गए। फिर अँगरेजों को दंड देने के लिये तयारियाँ होने लगीं, परंतु इस समय तक सारा देश सिराजुद्दौला के अत्याचार से दुखित था, नवाब के सभी मंत्री विरुद्ध हो रहे थे। गुप्त मंत्रणा होकर

hoping to intimidate them by so warlike an assembly. ——Strafton's Reflections.

* Nuncoomer had been bought by Omichand for the English and on their approach the troops of Sirajudoulah were withdrawn from Chandannagar—Thomson's History of the British Empire, Vol. I., p. 223.

एक गुप्त संधिपत्र लिखा गया। इसमें ईस्ट इंडिया कंपनी को एक करोड़, कलकत्ते के अँगरेज और आरमनी वणिकों को ७० लाख और सेठ अमीचंद को ३० लाख रुपया मिलने की बात थी। इनके सिवाय और जिनको जो मिलना था वह अलग फर्द पर लिखा गया। संधिपत्र का मसौदा भेजने के समय वाटसन साहब ने लिखा था कि 'अमीचंद जो चाहते हैं उसको देने में आगा-पीछा करने से काम न बनेगा, वह सहज मनुष्य नहीं है सब भेद नबाव से खोल देगा तो कोई काम भी न होगा।' बस इसी पर अँगरेज लोग अमीचंद से चिढ़ गए, और उनके सारे उपकारों को भुलाकर जाली संधिपत्र बनाया और अमीचंद को धोखा दिया। पलासी की लड़ाई, अँगरेजों की विजय और सेठ अमीचंद को प्रतारित करने का इतिवृत्त इतिहासों में प्रसिद्ध ही है। अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिये अँगरेज इतिहासिकों ने सारा दोष अमीचंद पर थोपकर यथेष्ट गालिप्रदान की उदारता दिखलाई है परंतु विचार कर देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये आदि से अंत तक अँगरेजों के सहायक रहे और उनके हाथ से अनेक अन्याय्य बर्ताव होने पर भी उनके हित साधन से उन्होंने मुँह न मोड़ा और अँगरेज लोग केवल संदेह कर करके सदा इनका अनिष्ट करते रहे, परंतु यह संदेह केवल अपने को दोषमुक्त करने के लिये था वास्तव में इनके भरोसे और विश्वास पर ही इनका सब काम चलता था। कसम खाकर मीर जाफर ने संधिपत्र पर हस्ताक्षर किया परंतु अँगरेजों को विश्वास नहीं हुआ, जब जगतसेठ और सेठ अमीचंद ने जमानत किया तब अँगरेजों को विश्वास हुआ।*

---

* "जामिन उसके वही दोनों महाजनान मजकूर हुए" मुताखरीन का उर्दू अनुवाद।

बाबू फतहचंद

सेठ अमीचंद के पुत्र सुयोग्य सेठ फतहचंद इस घटना से अत्यंत उदास होकर काशी चले आए। इनका विवाह काशी के परम प्रसिद्ध नगरसेठ गोकुलचंद साहू की कन्या से हुआ। सेठ गोकुल-चंद के पूर्वजों ने काशी के वर्तमान राज्यवंश को काशी का राज्य, मीर रुस्तमअली को पदच्युत कराके, अवध के नव्वाब से प्राप्त कराने में बहुत कुछ उद्योग किया था और तभी से वे उस राज्य के महाजन नियत हुए, तथा प्रतिष्ठापूर्वक उन्हें "नौपति" की पदवी प्राप्त हुई।

जिन नौ महाजनों ने उस समय काशिराज के मूल पुरुष राजा मनसाराम को राज्य दिलाने में सब प्रकार सहायता दी थी, उन्हें नौपति की उपाधि दी गई थी। यह "नौपति" पदवी अब तक प्रसिद्ध है, परंतु अब उन नवों वंशों में केवल इसी एक वंश का पता लगता है। और उसी समय से इनके यहाँ विवाहादि शुभ कर्म्मों, तथा शोकसमय शोकसंमिलन तथा पगड़ो बँधवाने के हेतु, स्वयं काशिराज उपस्थित होते हैं। यह मान इस वंश को अब तक प्रतिष्ठापूर्वक प्राप्त है। सेठ गोकुलचंद के और कोई संतान न होने के कारण बाबू फतहचंद उनके भी उत्तराधिकारी हुए*।

---

* ये हनुमान जी के बड़े भक्त थे। प्रति मंगलवार को काशी भदैनी हनुमानघाट वाले बड़े हनुमान जी के दर्शन को जाया करते थे। काशी में बड़े हनुमान जी का मंदिर परम प्राचीन और प्रसिद्ध है। यहाँ केवल एक विशाल प्रस्तरमूर्त्ति हनुमान जी की है। एक दिन इन्हें जो प्रसाद में माला मिली वह पहिरे हुए घर चले आए। यहाँ आकर जो माला उतारी तो उसमें से एक हनुमानजी की स्वर्णप्रतिमा छोटी सी अंगुष्ठ प्रमाण गिर पड़ी। उसी समय से इस प्रतिमा की सेवा बड़ी भक्ति से होने लगी और अब तक इस वंश में कुलदेव यही महावीर जी हैं। यह मूर्त्ति साधारण हनुमान जी की भाँति नहीं है, वरंच बिलकुल वानराकृति है और एक हाथ में लड्डू लिए हुए हैं।

फारसी में एक ग्रंथ ता: २८ सफर सन् १२५४ हिज्री का लिखा है जिसमें गवर्नर-जेनरल की ओर से प्रधान राजा महाराजा और रईसों को जैसे कागज और जिस प्रशस्ति से पत्र लिखा जाता था उसका संग्रह है उसमें इनकी प्रशस्ति यों लिखी है।

بابو فتح چند ساھر—بابو صاحب مہربان دوستان سلامت
خاتمہ—کاغذ افشان مہر خورد

अर्थात् बाबू साहब मेहरबान दोस्तान सलामत (अंत) विशेष —कागज सोनहले छिड़काव का छोटी मोहर

बाबू फतहचंद ने अँगरेजों को राज्यादि के प्रबंध करने में बहुत कुछ सहायता दी थी। सुप्रसिद्ध "दवामी बंदोवस्त" के समय डंकन साहब ने इनकी सहायता का पूर्ण धन्यवाद दिया है। इनके काशी आ बसने के कुछ काल उपरांत इनके बड़े भाई राय रत्नचंद बहादुर भी मुर्शिदाबाद से यहाँ ही चले आए। उनके साथ डंका, निशान, संतरी का पहरा, माही मरातिब नकीब आदि रियासत के पूरे ठाठ थे।

राय रत्नचंद बहादुर ने रामकटोरेवाले बाग में आकर निवास किया। वहाँ इनके श्रीठाकुर जी, जिनका नाम श्री लालजी है, अब तक वर्तमान हैं। यही बाग काशी जी में इस वंश का पहला स्थान समझा जाता है तथा अब तक प्रत्येक विवाह और पुत्रोत्सव के पीछे डीह डीहवार (गृह देवता) की पूजा यहीं होती है। प्रतीत होता है कि ये उस समय तक श्रीसंप्रदाय के अनुयायी थे, क्योंकि ठाकुर जी की मूर्ति तथा सामने गरुड़स्तंभ और मंदिर के ऊपर चक्र-स्थापन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत है। इस वंश में "नकीब" की प्रथा बाबू गोपालचंद तक थी। बाबू फतहचंद का व्यवहार देन लेन का था।

बाबू हर्षचंद

बाबू फतहचंद के एकमात्र पुत्र बाबू हर्षचंद हुए। ये काशी में काले हर्षचंद के नाम से प्रसिद्ध हैं और इनके प्रशंसनीय गुणानुवाद अब तक साधारण जन तथा स्त्रियाँ ग्राम्यगीतों में गाया करती हैं।

बाबू हर्षचंद के बाल्यकाल ही में इनके पूजनीय पिता ने परलोक प्राप्त किया। लोगों ने इनकी उमंग का अच्छा अवसर उपस्थित देख इन्हें राय रत्नचंद बहादुर से लड़ा दिया। परंतु ज्योंहीं इन्होंने धूर्तों की धूर्त्तता समझी, चट पितृव्य के पावों पर जा गिरे और अपराध क्षमा कराकर प्रेमपल्लव को प्रवर्धित किया। राय रत्नचंद के बेटे बाबू रायचंद निस्संतान मरे। इससे उनकी भी संपूर्ण संपत्ति के उत्तराधिकारी ये ही हुए।

इनका सम्मान काशी में कैसा था इसी से समझ लीजिए कि, सन् १८४२ में गवर्नमेंट ने आज्ञा दी कि काशी की प्राचीन तौल की पंसेरियाँ उठा कर अँगरेजी पंसेरी जारी हो। काशी के लोग बिगड़ गये और हरताल कर दी; तीन दिन तक हरताल रही; अंत में उस समय के प्रसिद्ध कमिश्नर गबिंस साहब ने बाबू हर्षचंद (सरपंच), बाबू जानकीदास और बाबू हरीदास साहू को पंच माना। काशी के लोगों ने भी इसे स्वीकार किया। बाग सुंदर-दास में बड़ी भारी पंचायत हुई और अंत में यही फैसला हुआ कि तिलोचन आदि की पंसेरियाँ ज्यों की त्योंही जारी रहें। गबिंस साहब भी इससे सम्मत हुए और नगर में जय जयकार हो गया। इस बात के देखनेवाले अब तक जीवित हैं कि जिस समय पुरानी पंसेरियों के जारी रहने की आज्ञा लेकर उक्त तीनों महाशय हाथी पर सवार होकर चले, बीच में बाबू हर्षचंद बैठे थे, मोरछल होता

था, बाजे बजते थे, सारे शहर की खिलकत साथ थी और स्त्रियाँ खिड़कियों से पुष्पवर्षा करती थीं, तथा इस सवारी को लोगों ने इसी शोभा के साथ नगर में घुमाया था।

बुढ़वामंगल के प्रसिद्ध मेले को उन्नति देनेवाले यही थे। पहले लोग वर्ष के अंतिम मंगल को, जिसे बूढ़ा मंगल कहते थे, दुर्गाजी के दर्शनों को नाव पर सवार होकर जाया करते थे। धीरे धीरे उन नावों पर नाच भी कराने लगे और अंत में बाबू हर्षचंद तथा काशि-राज के परामर्शानुसार बुढ़वामंगल का वर्तमान रूप हुआ और मेला चार दिन तक रहने लगा। मैंने कई बेर काशिराज महाराज ईश्वरी-प्रसाद नारायणसिंह बहादुर को भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र से कहते सुना है कि इस मेले का दूलह तो तुम्हारा ही वंश है। इनके यहाँ बुढ़वामंगल का कच्छा बड़ी ही तैयारी के साथ पटता था और बड़े ही मर्यादापूर्वक प्रबंध होता था। बिरादरी में नाई का नेवता फिरता था और सब लोग गुलाबी पगड़ी और दुपट्टे तथा लड़कों को गुलाबी टोपी दुपट्टे पहिनाकर ले जाते थे। नौकर आदि भी गुलाबी ही पगड़ी दुपट्टे पहिनते थे। जिनके पास न होता उनको यहाँ से मिलता। गंगाजी के पार रेत में हलवाईखाना बैठ जाता और चारों दिन वहीं बिरादरी की जेवनार होती। काशिराज हर साल मोरपंखी पर सवार हो इनके कच्छे की शोभा देखने आते। यह प्रथा ठीक इसी रीति पर बाबू गोपालचंद्र के समय तक जारी रही।

ये काशिराज के महाजन थे तथा और बहुतेरे प्रबंध उस रियासत के इनके सुपुर्द थे। राज्य की अशर्फियाँ इनके यहाँ रहती थीं और उनकी अगोरवाई मिलती थी। काशिराज इन्हें बहुत ही मानते थे, राजकीय कामों में प्रायः इनकी सलाह लिया करते थे।

बुढ़वामंगल की भाँति होली का उत्सव भी धूम धाम से होता और बिरादरी की जेवनार, महफिल होती। वर्ष में अपने तथा बाबू गोपालचंद्र के जन्मदिवस को भी ये महफिल जेवनार करते।

बिरादरी में इनका ऐसा मान्य था कि लोग बड़े बड़े प्रतिष्ठित और धनिकों के रहते भी इन्हें अपना चौधरी मानते थे और यह प्रतिष्ठा इस वंश को आज तक प्राप्त है।

चौखम्भास्थित अपने प्रसिद्ध भवन में इन्होंने ही सुंदर दीवान-खाना बनवाया था। सुनते हैं कुछ ऐसा विवाद उस समय उप-स्थित हो गया था कि जिसके कारण इस बड़े दीवानखाने की एक मंजिल इन्होंने एक रात्रि में तैयार कराई थी।

उस समय इनकी सवारी प्रसिद्ध थी। जब ये घर के बाहर कहीं जाते, बिना जामा और पगड़ी पहिने न जाते, तामजाम पर सवार होकर जाते, नकीब बोलता जाता। आसा, बल्लम, छड़ी, तलवार, बंदूक आदि बाँधे पचास साठ सिपाही साथ में होते। यह प्रथा कुछ कुछ बाबू गोपालचंद्र तक थी।

ये गोस्वामी श्री गिरिधरजी महाराज के शिष्य हुए। श्री गिरिधरजी महाराज की विद्वत्ता तथा अलौकिक चमत्कार शक्ति लोकप्रसिद्ध है। श्री गिरिधरजी महाराज इन पर बहुत ही स्नेह रखते थे, यहाँ तक कि इनकी बेटी श्रीश्यामा बेटी जी इन्हें भाई के तुल्य मानतीं और भाईदूज को तिलक काढ़ती थीं। जिस समय श्री गिरिधरजी महाराज श्रीजी द्वार से श्री मुकुंदराय जी को पधराकर काशी लाए, सब प्रबंध इन्हीं को सौंपा गया था। बड़ी धूम धाम से बारात सजा कर श्री मुकुंदरायजी को नगर के बाहर से पधरा लाए थे। इसका सविस्तर वर्णन उक्त महाराज की लिखाई "श्री मुकुंदराय जी की वार्ता" में है। जब कभी महाराज बाहर पधारते,

मंदिर इन्हीं के सुपुर्द कर जाते। उक्त महाराज तथा श्रीश्यामा बेटी जी के लिखे मुख्तारनामा आम इनके तथा बाबू गोपालचंद्र जी के नाम के अब तक रक्षित हैं।

इन्होंने उक्त महाराज की आज्ञा से अपने घर में श्री वल्लभकुल के प्रथानुसार ठाकुरजी की सेवा पधराई और उनके भोग राग का प्रबंध राजसी ठाठ से किया। ठाकुरजी की परम मनोहर मूर्ति, युगल जोड़ी, धातु विग्रह है, तथा नाम "श्री मदन मोहन जी" है। वर्तमान शैली से सेवा होते हुए ८५ वर्ष से अधिक हुआ; परंतु सुनते हैं कि ठाकुर जी और भी प्राचीन हैं। पहले इनकी सेवा गोकुलचंद्र साह के यहाँ होती थी। बाबू हरिश्चंद्र और बाबू गोकुलचंद्र में जिस समय हिस्सा हुआ, उस समय एक बाग, बड़ा मकान, एक बड़ा ग्राम माफी और पचास हजार रुपया ठाकुर जी के हिस्से में अलग कर दिया गया और ठाकुर जी का महा प्रसाद नित्य ब्राह्मण वैष्णव तथा सद्गृहस्थ लेते हैं।

इनके दो विवाह हुए थे। प्रथम चम्पतराय अमीन की बेटी से। चम्पतराय का उस समय बड़ा जमाना था। सुनते हैं कि वे इतने बड़े आदमी थे कि सोने के थाल में भोजन करते थे। जिस समय चम्पतराय की बेटी ब्याह कर आईं तो यहाँ उन्हें मामूली बर्तन बर्तने पड़े। इस पर उन्होंने कहा "हाय, अब हमको इन बर्तनों में खाना पड़ेगा"। अब एक चम्पतराय अमीन के बाग के अतिरिक्त और कोई चिह्न इनका नहीं है। इनसे बाबू हर्षचंद को कोई संतान नहीं हुई। दूसरा विवाह इनका बाबू वृंदावनदास की कन्या श्यामा बीबी से हुआ। इन्हीं से इनको पाँच संतान हुईं, जिनमें से दो कन्या तो बचपन ही में मर गईं, शेष तीन का वंश चला। यह बाबू वृंदावनदास भी उस समय के बड़े धनिकों में थे,

परंतु पीछे इनका भी वह समय न रहा। इनके दो बाग थे, एक मौजा कोल्हुआ पर और दूसरा मुहल्ला नाटीइमली पर। ये दोनों बाग बाबू हर्षचंद को मिले। बाबू वृंदावनदास को हनुमान जी का बड़ा इष्ट था। इनके स्थापित हनुमान जी अब तक नाटीइमली के बाग में हैं।

एक समय श्री गिरिधरजी महाराज को चालीस सहस्र रुपए की आवश्यकता हुई। उन्होंने बाबू हर्षचंद से कहा कि इसका प्रबंध कर दो। उन्होंने कहा महाराज इस समय इतना रुपया तो प्रस्तुत नहीं है। कोल्हुआ और नाटीइमली का बाग मैं भेट कर देता हूँ, इसे बेच कर काम चला लीजिए। श्री महाराज का ऐसा प्रताप था कि एक कोल्हुआ का बाग चालीस हजार में बिक गया और नाटीइमली का बाग बच गया। इस बाग का नाम महाराज ने मुकुंदविलास रक्खा। यह अद्यावधि मंदिर के अधिकार में है और काशी के प्रसिद्ध बागों में एक है। इस वंश से इस बाग से अब तक इतना सम्बन्ध शेष है कि काशी के प्रसिद्ध भरतमिलाप के मेले में इसी बाग के एक कमरे में बैठ कर इस वंश के लोग भगवान् का दर्शन करते हैं और इसमें भगवान् का विमान ठहरता है, तथा इस वंशवाले जाकर पूजा आरती करते, भोग लगाते और १) भेट करते हैं। दो दिन और भी श्रीरामचंद्र जी की पहुनई होती है। एक दिन बाग रामकटोरा में और एक दिन चौकाघाट पर जिस दिन हनुमान जी से भेट होती है।

यहाँ पर इस रामलीला का संक्षिप्त इतिहास लिख देना भी हम उचित समझते हैं। जब काशी में जंगल बहुत था (बनकटी के समय), उस समय यहाँ एक मेघा भगत रहते थे। उन्हें श्री भगवान् के दर्शन की बड़ी लालसा हुई। उन्होंने अनशन व्रत लिया।

एक दिन रामचंद्र जी ने स्वप्न में आज्ञा दी कि इस कलियुग में इस चाक्षुष जगत में हमारा प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो सकता। तुम हमारी लीला का अनुकरण करो। उसमें दर्शन होगा; तथा धनुष बाण वहाँ प्रत्यक्ष छोड़ गए, जिसकी पूजा अब तक होती है। मेघा भगत ने लीला आरम्भ की और उनकी मनोवासना पूरी हुई। यह लीला चित्रकूट की लीला के नाम से प्रसिद्ध हुई। जिस दिन श्री रामचंद्र की झलक मेवा भगत को झलकी थी, वह भरतमिलाप का दिन था और तभी से यह दिन परम पुनीत समझा गया, तथा अब तक लोगों का विश्वास है कि उस दिन रामचंद्र जी की झलक आ जाती है। इस लीला के पीछे गोस्वामी तुलसीदास जी ने लीला आरम्भ की, जो अब अस्सी पर तुलसीदासजी के घाट पर होती है, और उसके पीछे लाट भैरो की लीला आरम्भ हुई। इस लाट भैरो की लीला में 'नककटैया' (शूर्पनखा की नाक काटने की लीला) मसजिद के भीतर होती है, जो मुसलमानों की अमलदारी से चली आती है, और प्रायः जिसके लिये काशी में हिंदू मुसलमानों में झगड़ा हुआ है। निदान मेरी समझ में रामलीला की प्रथा सर्वप्रथम संसार में मेवा भगत ने आरम्भ की। इस लीला की यहाँ प्रतिष्ठा बहुत ही अधिक है। सब महाजन लोग इसमें चिट्ठा भरते हैं और प्रतिष्ठित लोग बिना कुछ लिए सब सेवा करते हैं। इस चिट्ठे का आरम्भ पहले बाबू जानकीदास और उक्त बाबू हर्षचंद के वंशवाले करते हैं और फिर नगर के सब महाजन यथाशक्ति लिखते हैं। पहले तो विजया दशमी के दिन यहाँ के बड़े बड़े महाजन, रात्रि को जब विमान उठता था, जामा पगड़ी पहिर कर कन्धा लगाते थे। अब तक भी बहुत लोग कन्धा देते हैं। विजया दशमी और भरत-मिलाप में अब तक प्राचीन मर्यादावाले लोग पगड़ी पहिन

कर दर्शन को जाते हैं। भरतमिलाप यहाँ के प्रसिद्ध मेलों में है। सारा शहर सूना हो जाता है और भरतमिलाप के स्थान से लेकर 'अयोध्या' तक, जिसमें लगभग आधी मील का अंतर होगा, मनुष्य ही मनुष्य दिखाई देते हैं। भरतमिलाप ठीक गोधूली के समय होता है। इस दिन दर्शनों के लिये काशिराज भी आया करते हैं।

सुनते हैं, एक समय किसी अँगरेज हाकिम ने कहा कि हनुमान जी तो समुद्र पार कूद गए थे; तब हम जानें जब तुम्हारे हनुमान जी वरुणा नदी पार कूद जायँ। हनुमान जी चट कूद गए, परंतु उस पार जाते ही उनका प्राणांत हो गया। उस अँगरेज की सार्टिफिकेट अब तक महंत के पास है।

बाबू हरिकृष्णदास टकमाली ने अपने ग्रंथ "गिरिधर चरितामृत" में उनका चरित्र वर्णन करते समय लिखा है कि ये कविता भी करते थे, परंतु अब तक इनकी कविता हम लोगों के देखने में नहीं आई।

इनका स्वभाव बड़ा ही अमीरी और नाजुक था, जनाने मर्दाने सब घरों में फौवारे बने थे। गर्मियों में जहाँ वह बैठते, फौवारे छूटा करते। एक दिन बाबू जानकीदास ने कहा कि आप बीमा का रोजगार क्यों नहीं करते, यह बिना गुठली का मेवा है। इन्होंने उत्तर दिया "सुनिए बाबू साहब, हम ठहरे आनंदी जीव, अपनी जान को बखेड़े में कौन फँसावे, सावन भादों की अँधेरी रात में आनंद से सोए हैं, पानी बरस रहा है, हवा के झोंके आ रहे हैं, उस समय ध्यान आया नावों का, प्राण सूख गया, बिचारा इस समय हमारी दस नावें गंगाजी में हैं, कहीं एक भी डूबी तो दस हजार की ठुकी, चलो सब आनंद मिट्टी हुआ"।

जौनपुर के राजा शिवलाल दूबे से इनसे बहुत ही स्नेह था, नित्य मिलने और हवा खाने जाने का नियम था।

सन् १८६० ई० में गवर्मेंट ने इनकम टैक्स लगाया था और काशी से सवा लाख रुपया वसूल करने की आज्ञा दी थी। इसके प्रबंध के लिये एक कमिटी बनाई गई थी जिसका प्रबंध इनके हाथ में था।

गोपालमंदिर के दोनों नकारखाने इन्हीं के यहाँ से बने हैं। एक तो बाबू गोपालचंद्र के जन्म पर बना था और दूसरा बाबू हरिश्चन्द्र के जन्म पर।

हम श्री मुकुंदरायजी के मंदिर तथा श्री गिरिधर जी महाराज के विषय में ऊपर लिख चुके हैं परंतु कुछ आवश्यक बातें और भी लिखने को रह गई हैं।

जिस समय मंदिर बनकर तैयार हुआ और श्री मुकुंदरायजी यहाँ पधारे, यहाँ के महाजनों ने, जिनमें ये प्रधान थे, विचार किया कि इस मंदिर के व्यय-निर्वाहार्थ कुछ प्रबंध होना चाहिए। सभों ने सम्मति करके एक चिट्ठा खड़ा किया और सवा पाँच आना सैकड़ा मंदिर सब व्यापारी काटने लगे। यह कमखाब बाफता आदि यावत् बनारसी कपड़े, गोटे पट्ठे और जवाहिरात इत्यादि पर कटता था। यह चिट्ठा बहुत दिनों तक चलता रहा और हिंदू मुसलमान सभी व्यापारी इसे देते रहे परंतु श्री गिरिधर जी महाराज के पीछे यह शिथिल हो चला है। अब तक सवा पाँच आने सैकड़े सब व्यापारी काट तो लेते हैं परंतु कोई मंदिर में देता है, कोई नहीं और कोई उसे दूसरे ही धर्मार्थ कार्य में लगा देता है।

श्री गिरिधर जी महाराज का ऐसा शुद्ध चरित्र और चमत्कार था कि काशी ऐसी शैव नगरी में उन्हीं का प्रताप था जो वैष्णवता की जड़ जमी और इस मंदिर की इतनी उन्नति बिना किसी राज्याश्रय के हुई, परंतु इनका स्वभाव इतना सादा था कि आत्मोत्कर्ष और आत्मसुख की ओर इनका तनिक भी ध्यान न था।

बाबू हर्षचंद्र ने बहुत तरह से निवेदन किया कि जैसे श्री वल्लभकुल के अन्यान्य प्रतापी गोस्वामी बालकों का जन्मदिनोत्सव होता है वैसे ही आपका भी हो, परंतु महाराज इसे स्वीकार नहीं करते थे। जब बहुत दिनों तक यह आग्रह करते रहे तब महाराज ने स्वीकार किया परंतु इस प्रतिबंध के साथ कि इस उत्सव पर हम मंदिर से कुछ व्यय न करेंगे। निदान पौष कृष्ण तृतीया को महाराज के जन्मदिन का उत्सव होने लगा, श्री गोपाल लाल जी, श्री मुकुंदराय जी तथा श्री गोपीनाथ जी का साठन का बागा (वस्त्र) श्री गिरिधर जी महाराज का बागा सब यहीं से जाता और वहीं धराया जाता, तथा महाराज के केसर स्नान में भोग, निछावर, आरता तथा भेट आदि इन्हीं की ओर से होता है। अब यह उत्सव श्री मुकुंदराय जी के घर के सब सेवक मानते हैं।

सन् १८३४ ई० में गवर्मेंट की ओर से महाजनों से व्यापार की अवस्था और सोना चाँदी की बिक्री की कमी का कारण पूछा गया था। उन प्रश्नों का जो उत्तर बाबू हर्षचंद्र ने दिया था, वह पुराने कागज़ों में मुझे मिला। उससे देश-दशा का ज्ञान होता है इसलिये उसका अनुवाद यहाँ प्रकाशित करता हूँ।

१ प्रश्न—सन् १८१९ से चाँदी और सोने की ख़रीद कम हुई है या अधिक और इसका कारण क्या है?

उत्तर—सन् १८१९ से चाँदी और सोने की खरीद बहुत कम हो गई है। चाँदी की खरीद में कमी का कारण यह है कि जब बनारस में टकसाल जारी थी, चाँदी का लेन देन जारी था, इससे भाव भी उसका महँगा था और जब से टकसाल बंद हुई तब से इसकी बिक्री कम हो गई इससे भाव भी गिर गया।

सोने की खरीद कम होने का कारण यह है कि उस समय इस प्रांत के लोग सुखी थे और देहाती लोग भी बड़ा लाभ उठाते थे इसलिये सोने की बाहरी खरीदारी अधिक होती थी और भाव भी महँगा था। और अब चारों ओर दरिद्रता फैल गई है तो सोने की खरीद कहाँ से हो?

२प्रश्न—क्या कोई ऐसा दस्तूर नियत हुआ है जिससे चाँदी सोने का लेन देन कम होकर हुंडी और किसी दूसरे प्रकार का एवज मवावज: जारी हुआ है?

उत्तर—सोने चाँदो के बदले में कोई दस्तूर हुंडो का जारी नहीं हुआ है, व्यापार की कमी कि जिसका कारण चौथे प्रश्न के उत्तर में लिखा जायगा और भाव के गिरने से यह कमी हुई है।

३प्रश्न—टकसाल बंद होने से बाहरी सोने चाँदी की आमदनी कम हो गई है या नहीं?

उत्तर—टकसाल बंद हो जाने से एकबारगी बाहरी आमदनी सोने चाँदी की कम हो गई है।

४प्रश्न—इस बात पर विचार करके लिखिए कि सन् १८१३ व १८१४ से अब तक भाव हुंडियावन का बड़े बड़े देसावरों में पर्ता फैलाने से कमी के कारण व्यापार में अंतर पड़ा है, या सन् १८१८ व १८१९ में सोने चाँदो की आमदनी की कमी से?

उत्तर—सन् १८१३ से १८२० व १८२२ तक इस प्रांत के लोग बड़ा लाभ उठाते थे और हर तरह का रोजगार जारी था। और भाव हुंडियावन उस सन् से अब कम नहीं है। वरन् अधिक है, यद्यपि उन सनों में बनारस के पुराने सिक्के की चलन थी जिसकी चाँदी में बट्टा नहीं था। जबसे

फर्रुखाबादी सिक्का चला उसके बट्टा के कारण हुंडियावन का भाव हर देसावर में बढ़ गया। हाँ, इन दिनों अवश्य फर्रुखाबादी सिक्का जारी रहने पर भी भाव हुंडियावन गिर गया है। रोजगार की कमी के कारण नीचे निवेदन करता हूँ।

१—परम उपकारी कंपनी बहादुर की सरकार से कि जो उपकार का भंडार और प्रजा-पोषण की खानि है सूद की कमी हो गई कि सन् १८१० तक सब लोग सर्कार में रुपया जमा करके छ रुपया सैकड़ा वार्षिक सूद लेते थे अब पाँच रुपया से होते होते चार रुपए तक नौबत पहुँच गई। प्रजा का काम कैसे चले?

२—अँगरेज साहबों के कारबार बिगड़ जाने से, कि जिनकी ओर से हर जिले में नील की बड़ी खेती होती थी और उससे जमींदारों को बड़ा लाभ होता था, जमींदारों को कष्ट है और खेती पड़ी रह गई।

३—अदालत के अप्रबंध और रुपए के वसूल होने में अदालत के डर के कारण कारबार देन लेन महाजनी कि जिससे सूद का अच्छा लाभ था एकदम बंद हो गया।

४—साहब लोगों के बहुत से हाउस बिगड़ जाने से बहुतेरे हिंदुस्तानियों के काम, लाखों पया मारे जाने के कारण, बंद हो जाने से दूसरा काम भी नहीं कर सकते।

५—विलायत से, असबाब आने और सस्ता बिकने के कारण यहाँ के कारीगरों का सब काम बंद और तबाह हो गया।

६—सर्कार की ओर से, इस कारण से कि विलायत में रुई पैदा न हुई, यहाँ से रुई की खरीद हुई इससे भी कुछ लाभ था पर वह भी बंद हो गया।

इन्हीं कारणों से रोजगार में कमी हो गई है।

५ प्रश्न—चलन के रुपया के रोजगार के काम में आमदनी कलकत्ता से होती है या नहीं? यदि होती है तो उसका खर्च अनुकूल और प्रतिकूल समय में क्या पड़ता है?

उत्तर—कलकत्ता से बहुत रुपया चलान नहीं आता और यदि कुछ रुपया आता है तो लाभ नहीं होता वरंच बीमा और सूद की हानि के कारण घाटा पड़ता है इसी से रुपए के बदले में हुंडी का आना जाना जारी है।

द० बाबू हर्षचंद्र

ता० २९ जूलाई सन् १८३४

एक बेर यह श्री जगन्नाथ जी के दर्शन को पुरी गए थे। तब तक रेल नहीं चली थी, अतएव खुशकी के रास्ते गए थे। बंगाल के प्रसिद्ध लाला बाबू* से इनके वंश से, मुर्शिदाबाद ही से, बहुत

---

* इस वंश के अधिष्ठाता दीवान गंगागोविंद सिंह थे जो कि वारेन हेस्टिंग्ज के बनियाँ थे और बड़ी संपत्ति छोड़ मरे थे। बंगाल में ये पाइक-पाड़ा के राजा के नाम से प्रसिद्ध हैं। परंतु इनका मुख्य वासस्थान मौजा काँदी जिला मुर्शिदाबाद है। इन्होंने अपनी माता के श्राद्ध में २० लाख रुपया व्यय किया था और उसमें समग्र बंगाल के राजा महाराजा आए थे। ऐसा श्राद्ध कभी नहीं हुआ था। इनके वंश में राजा कृष्णचंद्र सिंह, प्रसिद्ध नाम लाला बाबू, हुए। उन्होंने अपने राज्यैश्वर्य को छोड़कर श्री वृंदावन में वास किया। वहाँ वे मधुकरी माँगकर खाते थे। इन्होंने श्री ठाकुरजी का मंदिर और वैभव काँदी और श्री वृंदावन में बहुत बढ़ाया (See Growse's Mathura)। इनके विषय में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र जी अपने उत्तरार्द्ध भक्तमाल में लिखते हैं—

लाला बाबू बंगाल के वृंदावन निबसत रहे।
छोड़ि सकल धन धाम वास ब्रज को जिन लीनो॥

संबंध था। एक दिन ये उनके यहाँ मेहमान हुए। वहाँ इनके ठाकुर श्री कृष्णचंद्र जी का बहुत भारी मंदिर और वैभव है। सुना है कि इनके पहुँचते ही उनकी ओर से श्री ठाकुर जी का बालभोग महाप्रसाद आया जो कि सौ चाँदी के थालों में था। सब प्रसाद फलाहारी था और एक सौ ब्राह्मण लाए थे, जो सबके सब एक ही रंग का पीतांबर उपरना पहिरे हुए थे।

इनका नाम तैलंग देश में बहुत प्रसिद्ध है। जो बड़ा दीवान-खाना इन्होंने बनवाया, उसके ऊपर एक छोटा मंदिर भी श्री ठाकुर जी का है। उस पर स्वर्णकलश लगे हुए हैं। उसी से सारे तैलंग देश में इनका नाम नवकोटि नारायण* नाम से प्रसिद्ध हो गया है और यावत् तैलंगी लोग इस कलश के दर्शनार्थ आते और हाथ जोड़ जाते हैं। यह बात काशी के यावत् यात्रा-वालों को विदित है; जहाँ उन्होंने नवकोटि नारायण का नाम लिया, वह यहाँ ले आए।

बाबू हर्षचंद्र एक वसीयतनामा लिख गए थे जिसके द्वारा कोठी के प्रबंध का भार बिंजीलाल को सौंप गए थे। बाबू गोपालचंद्र की अवस्था उस समय केवल ११ वर्ष की थी। बिंजीलाल प्रबंध

माँगि माँगि मधुकरी उदर पूरन नित कीनो।
हरि-मंदिर अति रुचिर बहुत धन दै बनवायो॥
साधु संत के हेत अन्न को सत्र चलायो।
जिनकी मृत देहहु सब लखत ब्रज रज लोटत फल लहे॥

* तैलंग देश में कोई नवकोटि नारायण बड़े धनिक हो गए हैं। इन्हें वहाँ के लोग एक अवतार मानते हैं और इनके विषय में नाना किंवदंतियाँ उस देश में प्रसिद्ध हैं। इनका पूरा इतिहास Indian Antiquary में छपा है।

करने लगे परंतु प्रबंध संतोषदायक न हो सका और उस समय जैसी कुछ क्षति इस घर की हुई वह अकथनीय है। उस समय काशी के रईसों में बड़ा मेल था। बाबू वृंदावनदास (बाबू गोपालचंद्र के मातामह) ने राय खिरोधर लाल की सहायता से कोठी में ताला बंद कर दिया और अदालत में कोठी के प्रबंध के लिये दर्खास्त दी परंतु वसीयतनामा के कारण ये लोग हार गए और प्रबंध बिंजीलाल ही के हाथ में रहा। इस समय कोठी की बहुत कुछ हानि हुई तथा और भी अधिक होती परंतु बाबू गोपालचंद्र की बुद्धि चमत्कारिणी थी। उन्होंने १३ वर्ष की ही अवस्था में अपना कार्य आप सँभाल लिया और फिर किसी की कुछ न गलने पाई।

बाबू गोपालचंद्र

बाबू हर्षचंद्र की बड़ी अवस्था हो गई और कोई पुत्र संतान न हुई। एक दिन यह श्री गिरिधर जी महाराज के पास बैठे हुए थे। महाराज ने पूछा बाबू, आज तुम उदास क्यों हो ? लोगों ने कहा कि इनकी इतनी अवस्था हुई, परंतु कोई संतान न हुई, वंश कैसे चलेगा; इसी की चिंता इन्हें है। महाराज ने आज्ञा की कि तुम जी छोटा न करो। इसी वर्ष तुम्हें पुत्र होगा। और ऐसा ही हुआ। मिती पौष कृष्ण १५, संवत् १८९० को कविकुल-चूड़ामणि बाबू गोपालचंद्र का जन्म हुआ। केवल श्री गिरिधर जी महाराज की कृपा से जन्म पाने और उनके चरणारविंदों में अटल भक्ति होने के कारण ही इन्होंने कविता में अपना नाम गिरिधरदास रखा था।

विवाह

बाबू हर्षचंद्र को एक पुत्र के अतिरिक्त दो कन्या भी हुईं, बड़ी का नाम यमुना बीबी (जन्म भादों ब० ८, सं० १८६२) और छोटी गंगा बीबी (जन्म भादों ब० ४ सं० १८६४)

बाबू हर्षचंद्र ने अपनी तीन संतानों में से दो का विवाह अपने हाथों किया। पहले यमुना बीबी का पीछे बाबू गोपालचंद्र का। गंगा बीबी का विवाह बाबू गोपालचंद्र के समय में हुआ।

यमुना बीबी का विवाह काशी के प्रसिद्ध रईस, राजा पट्टनीमल बहादुर के पौत्र राय नृसिंहदास से हुआ। राजा पट्टनीमल, पटने के महाराज ख्यालीराम बहादुर के पौत्र थे। यह महाराज ख्याली-राम बिहार के नायब सूबेदार थे। इनका सविस्तर वृत्तांत बंगाल और बिहार के इतिहासों में मिलता है। राजा पट्टनीमल ऐसे प्रतापी हुए कि ये छोटी ही अवस्था में पिता से कुछ अप्रसन्न होकर चले आए और फिर लखनऊ गए। वहाँ उस समय अँगरेज गव-मेंट से और नवाब लखनऊ से सुलह की शर्तें तै हो रही थीं। परंतु नवाब के चालाक अनुचरवर्ग कभी कुछ कह देते, कभी कुछ; किसी तरह बात तै न होने पाती। निदान उन शर्तों को तै करने के लिये राजा पट्टनीमल नियत किए गए। इन्होंने पहले ही यह नियम किया कि हम ज़ुबानी कोई बात न करेंगे, जो कुछ हो लिखकर तै हो। अब तो कोई कला उन लोगों की न चलने लगी। नवाब की ओर से राजा साहब के उस्ताद मौलवी साहब भेजे गए। राजा साहब ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया और पूछा क्या आज्ञा है। मौलवी साहब ने एक लाख रुपए की अशर्फियाँ राजा साहब के आगे रख दीं और कहा कि आप नवाब पर रहम करें। हिंदू मुसलमान तो एक ही हैं, ये फरंगी परदेसी

हमारे कौन होते हैं। सुलहनामे में नवाब के लाभ की ओर विशेष ध्यान रखें, अथवा आप इस काम से अलग ही हो जायँ। राजा साहब ने बहुत ही अदब के साथ निवेदन किया कि आप उस्ताद हैं, आपको उचित है कि यदि मैं कोई अनुचित कार्य करूँ तो मुझे ताड़ना दें, न कि आप स्वयं ऐसा उपदेश दें। यह सेवकधर्म-विरुद्ध काम मुझसे कभी न होगा और देशी तथा विदेशी क्या, हमारे लिये तो जब विदेशी की सेवा स्वीकार कर ली, तो फिर वह लाख देशियों से बढ़कर है। निदान मौलवी साहब मुँह ऐसा मुँह लेकर चले आए। कहते हैं कि राजा साहब को आगरे के किले से बहुत धन मिला, जिसका ठीका उन्होंने राय ज्योतिप्रसाद ठीकेदार के साझे में लिया था। उन्होंने मथुरा वृंदावन में दीर्घविष्णु का मंदिर, शिव ताल‍ाब कुंज आदि (See Growse's Mathura), आगरे में शीशमहल, पीली कोठी आदि, दिल्ली में आलीशान मकानात, काशी में कीर्त्तिवासेश्वर का मंदिर, हरतीर्थ, कर्मनाशा का पुल आदि सैकड़ों ही कीर्ति के कामों के अतिरिक्त एक करोड़ की संपत्ति छोड़ी; और इनका पुस्तकालय तथा औषधालय भी बहुत प्रसिद्ध था (भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र लिखित "पुरावृत्तसंग्रह" देखो)। हम राजा साहब के उदार हृदय का उदाहरण दिखाने के लिये केवल एक घटना का उल्लेख करके प्रकृत विषय का वर्णन करेंगे। राजा साहब के मुख्तार बाबू बेनीप्रसाद राजा साहब के किसी कार्यवश कलकत्ते गए थे। वहाँ लाख रुपए पर दस दस रुपए की चिट्ठी पड़ती थी। एक चिट्ठी इन्होंने भी राजा साहब के नाम से डलवाई और राजा साहब को लिख दिया। राजा साहब ने उत्तर में लिखा कि मैं जूआ नहीं खेलता, यह तुमने ठीक नहीं किया; खैर अब तुम इस रुपए को खर्च में लिख दो। संयोगवश वह चिट्ठी राजा साहब के नाम ही

निकल आई और लाख रुपया मिला। बाबू बेनीप्रसाद ने फिर राजा साहब को लिखा। राजा साहब ने उत्तर में लिखा कि हम पहले ही लिख चुके हैं कि हम जूआ नहीं खेलते, अतएव हम जूए का रुपया न लेंगे, तुम्हारा जो जी चाहे करो। उसी रुपए के कारण उक्त बाबू बेनीप्रसाद के वंशधर काशी में बड़े गृह और जमींदारी के स्वामी हैं। इस विवाह में राजा साहब जीवित थे। सुना है कि बड़ी धूम से विवाह हुआ था और बड़ी ही शोभा हुई थी।

यमुना बीबी को कई संतति हुईं, परंतु कोई भी न जीईं। इससे अंत में राय प्रह्लाददास और उनकी कनिष्ठा भगिनी सुभद्रा बीबी अपने ननिहाल में पले। राय प्रह्लाददास इस समय काशी में आनरेरी मजिस्ट्रेट हैं। ननिहाल के संसर्ग से इनकी रुचि संस्कृत की ओर अधिक हुई और ये अच्छी संस्कृत जानते हैं। सुभद्रा बीबी का विवाह काशी के सुप्रसिद्ध धनिक साहु गोपालदास के वंशज बाबू वैद्यनाथप्रसाद के साथ हुआ था। परंतु अब वे दोनों ही पति पत्नी जीवित नहीं है। केवल उनके पुत्र बाबू यदुनाथप्रसाद उनके उत्तराधिकारी हैं।

गंगा बीबी का विवाह प्रबंधलेखक के पिता बाबू कल्यानदास के साथ हुआ। यह विवाह बाबू गोपालचंद्र जी ने किया था। इन्हें दो पुत्र और एक कन्या हुई। ज्येष्ठ पुत्र जीवनदास का बचपन ही में परलोकवास हुआ। कन्या लक्ष्मीदेवी का विवाह बाबू दामोदरदास बी० ए० के साथ हुआ था जो कि नि:संतान ही मर गईं। तीसरा पुत्र इस प्रबंध का लेखक है।

बाबू गोपालचंद्र का विवाह दिल्ली के शाहजादों के दीवान राय खिरोधरलाल की कन्या पार्वती देवी से संवत् १८०० में, हुआ। राय खिरोधरलाल का वंश फारसी में विशेष विद्वान् था और इन्हें

वंशपरंपरागत राय की पदवी दिल्ली दर्बार से प्राप्त थी। राय साहब को एक ही कन्या थी। इधर बाबू हर्षचंद्र को एक ही पुत्र। विवाह बड़ी धूमधाम से हुआ। बाबू हर्षचंद्र के चौखम्भास्थित घर से राय खिरोधरलाल का शिवालास्थित भवन तीन मील से कम नहीं है, परंतु बारात इतनी भारी निकली थी कि वर अपने घर ही था कि बारात का निशान समधी के घर पहुँचा, अर्थात् तीन मील लंबी बारात थी। राय साहब ने भी ऐसी खातिर की थी कि कूओं में चीनी के बोरे छुड़वा दिए थे। यह विवाह काशी में अब तक प्रसिद्ध है।

यह पार्वती देवी अत्यंत ही सुशीला थीं। प्राचीन स्त्रियाँ इनके रूप और गुण की प्रशंसा करते नहीं अघातीं। इन्हें चार संतति हुईं। मुकुंदी बीबी, बाबू हरिश्चंद्र, बाबू गोकुलचंद्र और गोविंदी बीबी।

अपनी संतानों में केवल बड़ी कन्या मुकुंदी बीबी का विवाह इन्होंने काशी के सुप्रसिद्ध रईस बाबू जानकीदास साहु के पुत्र बाबू महावीरप्रसाद के साथ, अपने सामने, किया था।

बाबू हरिश्चंद्र का विवाह शिवाले के रईस लाला गुलाब राय की कन्या श्रीमती मन्नो देवी से, बाबू गोकुलचंद्र का विवाह बाबू हनुमानदास की कन्या श्रीमती मुकुंदी देवी से और श्रीमती गोविंदी बीबी का विवाह पटना के सुप्रसिद्ध नायब सूबा महाराज ख्यालीराम के वंशधर राय राधाकृष्ण राय बहादुर के साथ हुआ। इनके पुत्र राय गोपीकृष्ण बहुत ही योग्य और होनहार थे। बी० ए० पास किया था। २५ ही वर्ष की छोटी अवस्था में गवर्मेंट और प्रजा के परम प्रीतिपात्र हो गए थे, परंतु हाय! निर्दय काल ने इस खिलते हुए कमल को उखाड़ फेंका! इनकी असमय मृत्यु पर सारे पटने में हाहाकार मच गया था। लेफ्टिनेंट गवर्नर बंगाल

ने शोक प्रकाश किया और वृद्ध पिता राय राधाकृष्ण को आश्वासन देने के लिये वे स्वयं आए थे।

राय खिरोधरलाल को श्रीमती पार्वती देवी के अतिरिक्त और कोई संतति न थी इसलिये उनकी स्त्री श्रीमती नन्ही देवी ने दौहित्र बाबू गोकुलचंद्र को अपने पास रखा था और उन्हीं को अपनी संपत्ति का उत्तराधिकारी किया।

श्रीमती पार्वती देवी के मरने पर इनका दूसरा विवाह उसी वर्ष फाल्गुन संवत् १९१४ में बाबू रामनारायण की कन्या मोहन बीबी से हुआ। मोहन बीबी से इन्हें दो संतान हुए। प्रथम पुत्र हुआ। नाम उसका श्यामचंद्र रखा गया था, परंतु तीन ही महीने का होकर मर गया। द्वितीय कन्या हुई जो कि प्रसूतिगृह में ही मर गई मोहन बीबी की मृत्यु संवत् १९३८ के माघ कृष्ण १० को हुई।

बाबू हर्षचंद्र का परलोकवास ४२ वर्ष की अवस्था में संवत् १९०१, मिती बैसाख बदी १३, को हुआ। बाबू गोपालचंद्र की अवस्था उस समय केवल ११ वर्ष ही की थी। कविता की कमनीय कांति का अनुराग बाबू गोपालचंद्र को बाल्यावस्था ही से था। इसी से आप लोग समझ लीजिए कि १३ ही वर्ष की अवस्था में संवत् १९०३ में बृहत् वाल्मीकीय रामायण का भाषा छंदोबद्ध अनुवाद इन्होंने किया, परंतु दुर्भाग्यवश अब इस अनुवाद का पता कहीं नहीं लगता है। केवल अस्तित्व के प्रमाण के लिये ही मानो "बाला-बोधिनी" में इसका एक अंश छपा है। हिंदी और संस्कृत की कविता इनकी प्रसिद्ध है। परंतु कभी कभी उर्दू की भी कविता करते थे। उन्होंने एक "गजल" में लिखा है।

"दास गिरिधर तुम फकत हिंदी पढ़े थे खूब सी,
किस लिये उर्दू के शायर में गिने जाने लगे।"

शिक्षा और चरित्र

पाठक स्वयं विचार सकते हैं कि इतने बड़े धनिक के एकमात्र पुत्र संतान का लालन-पालन कितने लाड़ चाव से हुआ होगा और हमारे देश की स्थिति के अनुसार इनकी सी अवस्था के बालक, जिनके पिता भी बचपन ही में परलोकगामी हुए हों, कैसे सुशिक्षित और सच्चरित्र हो सकते हैं। परंतु आश्चर्य है कि इनके विषय में सब विपरीत ही हुआ। इनका सा विद्वान् और सच्चरित्र ढूँढ़ने से कम मिलेगा। इसका कारण चाहे भगवत्कृपा समझिए, या ऋषितुल्य गुरु श्री गोस्वामी गिरिधर जी महाराज का आशीर्वाद, सहवास और शिक्षा। जो कुछ हो, इनकी प्रतिभा विलक्षण थी। नियमपूर्वक शिक्षा न होने पर भी संस्कृत और भाषा के ये ऐसे विद्वान् थे कि पंडित लोग इनका आदर करते थे। चरित्र इनका ऐसा निर्मल था कि काशी के लोग इन्हें बहुत ही भक्तिभाव से देखते थे, यहाँ तक कि प्रसिद्ध कमिश्नर मिस्टर गबिंस ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि "बाबू गोपालचंद्र परकटा फरिश्ता है"। सन् ५७ के बलवे में रेजिडेंसी के चाँदी सोने के असबाब आसा बल्लम आदि इन्हीं की कोठी में रखे गए थे। क्रोध तो इन्हें कभी आता ही न था, पर जब कोई गोपालमंदिर आदि धर्मसंबंधी निंदा करता तो बिगड़ जाते। राय नृसिंहदास प्रायः चिढ़ाया करते थे। इनके विचार कैसे थे, यह पाठक पूज्य भारतेंदु-जी के निम्नलिखित वाक्यों से, जो उन्होंने 'नाटक' नामक ग्रंथ में लिखे हैं, जान सकते हैं। "विशुद्ध नाटक रीति से पात्र-प्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्य चरण श्री कविवर गिरिधरदास (वास्तविक नाम बाबू गोपालचंद्र जी) का है। मेरे पिता ने बिना अँगरेजी शिक्षा पाए इधर क्यों दृष्टि

दी, यह बात आश्चर्य की नहीं है। उनके सब विचार परिष्कृत थे। बिना अँगरेजी की शिक्षा के भी उनको वर्तमान समय का स्वरूप भली भाँति विदित था। पहले तो धर्म ही के विषय में वे इतने परिष्कृत थे कि वैष्णव व्रत पूर्ण के हेतु अन्य देवता मात्र की पूजा और व्रत घर से उन्होंने उठा दिया था। टामसन साहब लेफ-टिनेंट गवर्नर के समय काशी में पहला लड़कियों का स्कूल हुआ तो हमारी बड़ी बहिन को इन्होंने उस स्कूल में प्रकाश्य रीति से पढ़ने बैठा दिया। यह कार्य उस समय में बहुत कठिन था, क्योंकि इसमें बड़ी ही लोकनिंदा थी। हम लोगों को अँगरेजी शिक्षा दी। सिद्धांत यह कि उनकी सब बातें परिष्कृत थीं और उनको स्पष्ट बोध होता था कि आगे काल कैसा चला आता है।......केवल २७ वर्ष की अवस्था में मेरे पिता ने देहत्याग किया, किंतु इसी अवस्था में ४० ग्रंथ बनाए।" विद्या की इन्हें ऐसी रुचि थी कि बहुत धन व्यय करके बृहत् सरस्वती भवन का संग्रह किया था जिसमें बड़े अलभ्य और अमूल्य ग्रंथों का संग्रह है। डाक्तर राजेंद्रलाल मित्र इस पुस्तकालय का मूल्य एक लाख रुपया दिलवाते थे। इन ग्रंथों का पहाड़ बनाकर उस पर सरस्वती देवी की मूर्ति स्थापन करके आश्विन शुक्ला सप्तमी से तीन दिन तक उत्सव करते थे जो अब तक होता है।

अपने चौखंभास्थित भवन में इन्होंने एक पाईं बाग श्री ठाकुर जी के निमित्त बहुत सुंदर बनवाया था।

बाग रामकटोरा के सामने सड़क पर रामकटोरा तालाब का जीर्णोद्धार बहुत रुपया लगाकर किया था। यह तालाब चारों ओर से पक्का बँधा है। पहले इसमें कटोरे की तरह पानी भरा रहता था पर अब म्यूनिसिपैलटी की कृपा से नल ऊँची हो जाने से पानी

कम आता है। इस तालाब पर एक मंदिर बनवाकर सब देवताओं की मूर्ति स्थापन करने की इच्छा थी पर पूरी न हो सकी। मूर्तियाँ अत्यंत सुंदर बनवाई थीं जो अब तक रखी हैं।

बाग का भी इन्हें शौक था। सन् १८६४ में यहाँ एक ऐग्रीकल्चरल शो (कृषिप्रदर्शिनी) हुई थी उसमें इन्हें इनाम और उत्तम सार्टिफिकेट मिला था।

दिनचर्या

व्यसन इन्हें भगवत्सेवा या कविता के अतिरिक्त कोई भी न था। जाड़े के दिनों में सबेरे तीन बजे से उठते और मंदिर के भृत्यों को बुलवाते; और गर्मी के दिनों में पाँच बजे शौचादि से निवृत्त होकर कुछ कविता लिखते। शौच जाते तब कलम दावात कागज बाहर रखा रहता। यदि कुछ ध्यान आ जाता तो शौच से निकलते ही हाथ धोकर लिख लेते, तब दतुयन करते। कभी घर में श्री ठाकुर जी की सेवा में स्नान करने के पहले श्री मुकुंदराय जी के दर्शन को तामजाम पर बैठकर जाते और कभी अपने यहाँ शृंगार की सेवा में पहुँचकर तब जाते। घर में भी ठाकुर जी की शृंगार की सेवा से निकलकर कविता लिखते, लेखक चार पाँच बैठे रहते और उनको लिखवाते, राजभोग आरती करके दस ग्यारह बजे श्री ठाकुरजी की महाप्रसादी रसोई खाते। भोजनोपरांत कुछ देर दर्बार करते और घर के कामकाज देखते थे फिर दोपहर को कुछ देर सोते। तीसरे पहर को फिर दर्बार लगता। कवि कोविदों का सत्कार करते, कविता की चर्चा रहती, संध्या को हवा खाने जाते, गाड़ी तक तामजाम पर जाते।

रामकटोरावाले बाग में भाँग पीते। शौच होकर घर आते। हवा खाकर आने पर फिर दर्बार लगता। रात्रि को दस बजे तक भोजन करके सोते। सबेरे बिना कम से कम पाँच पद बनाए भोजन न करते। संध्या को सुगंधित पुष्प का गजरा या गुच्छा पास में अवश्य रहता। रात्रि को पलंग के पास एक चौकी पर कागज, कलम, दावात रहती, शमेदान रहता, एक चौकी पर पानदान और इत्रदान रहता। रात्रि को कविता कुछ अवश्य लिखते। स्वभाव हँसोड़ बहुत था, इसलिये जब बैठते, हँसी दिल्लगी होती, परंतु दर्बार के समय नहीं। प्रति एकादशी को जागरण करते। बड़ा उत्सव करते थे।

इनकी एक मौसी थीं। वह स्वभाव की चिड़चिड़ही अधिक थीं और इन्हीं के यहाँ रहती थीं। इन्हें ये प्रायः चिढ़ाया करते थे। इन्हें चिढ़ाने के लिये यह कविता बनाई थी—

घड़ी चार एक रात रहे से उठो घड़ी चार एक गंग नहाइत है।
घड़ी चार एक पूजा पाठ करी घड़ी चार एक मंदिर जाइत है॥
घड़ी चार एक बैठ बिताइत है घड़ी चार एक कलह मचाइत है।
बलि जाइत है ओहि साइत की फिर जाइत है फिर आइत है॥

कवियों का आदर

इनके दर्बार में कवियों का बड़ा आदर होता था। इनके यहाँ से कोई कवि विमुख न फिरता। यद्यपि इनके दर्बारी कवियों का पूरा वृत्तांत उपलब्ध नहीं है, तथापि दो तीन कवियों का जो पता लगा है, वह प्रकाशित किया जाता है।

एक कविजी को (इनका नाम कदाचित् ईश्वर कवि था) एक चश्मे की आवश्यकता थी। उन्होंने एक कवित्त बनाकर दिया। उन्हें तुरंत चश्मा मिला। उस कवित्त का अंतिम चरण यह है—

"खसमामुखो के मुख भसमा* लगाइबे को
एहो धनाधीश हमें चाहत एक चसमा"।

एक कवि जो की यह कविता उपलब्ध हुई है—

परभूलिया छंद

"बैठे हैं विराजो राज मंदिर मों कियो साज
सर्म को साज आसय आजिम अचल है।
दविता को रहे अरि सविता को सागर मों
कविता कमलता के सचिता सबल है॥
कहै कविराज कर जोरे प्रभू गोपालचंद
ए बचन बिचारो मेरो विद्या की विमल है।
बगर बड़ाई कोरु सर सोलताई को
सुभाजन भलाई को सभाजन सकल है॥ १॥

दोहा

जहाँ अधिक उपमेय है छीन होत उपमान।
अलंकार वितरेक को किज्जत तहाँ बिनान॥

जथा—बुध सो विरोधे सकल कलानिधि देखो
दु:पश्य निर्मल सो न आदर सहै।
गुरु से ईस मैं गुरुज्ञान में विलोकियतु
कविता अनेक कविताई को सरस है॥
द्वार आगे हैं राजत गजराज फेरियत
रीझि रीझि दीजियत पायन परसतु (स ?) है।
कहैं संभू महाराज गोपालचंद्र जू धरम-
राज की सभा तें सभा रावरी सरस है॥"

* मुखरा सरस्वती के मुख में भस्म लगाने के लिये अर्थात् कविता लिखने के लिये।

पंडित हरिचरण जी अपने संस्कृत पत्र में लिखते हैं:—

"यशोदागर्भजे देवि चतुर्वर्ग्गफलप्रदे ।
श्रीमद्गोपालचंद्राख्यश्चिरायुष्क्रियतां त्वया ॥
सावर्णिरित्याद्यारभ्य सावर्णिर्भविता मनुः।
इत्यन्तशतसंख्यातं पाठं संकल्प्य दीयताम्"॥

सुप्रसिद्ध कवि सरदार ने इनके बलिरामकथामृत के आदि से "स्तुति प्रकाश" को लेकर उस पर टीका लिखी है। उसमें उक्त कवि ने इनके विषय में जो कुछ लिखा है उसे हम उद्धृत करते हैं।

छप्पै

"विमल बुद्धि कुल बैस बनारस वास सुहावन ।
फतेचंद आनंदकंद जस चंद बढ़ावन ॥
हरषचंद ता नंद मंद बैरी मुख कीने ।
तासुत श्री गोपालचंद कविता रस भीने ॥
दश कथा अमृत बलराम मैं अस्तुति उह भूषन दियो।
तेहि देखि सुबुध सरदार कवि बुधि समान टीका कियो ॥

दोहा

लोक विभू ग्रह संभु सुत रद सुचि भादव मास ।
कृष्णजन्म तिथि दिन कियो पूरन तिलक बिलास ॥"

इस ग्रंथ का कुछ अंश भी हम यहाँ पर उद्धृत करते हैं।

"स्तुति प्रकाशिका कवि सरदार कृत टीका आदि टीका का।

श्री गोपीजनवल्लभाय नमः।

दोहा

सुमन हरष धारे सुमन बरषत सुमन अपार ।
नँद नंदन आनंद भर वंदत कवि सरदार ॥ १ ॥

गिरिधर गिरिधरदास को कियो सुजस ससि रूप ।
तिहि तकि कवि सरदार मन बाढ़ो सिंधु अनूप ।। २ ।।
कुबुधि भूमि लोपित ललित उमग्यो वारि विचार ।
करन लग्यो रचना तिलक उर धरि पवनकुमार ।। ३ ।।
पवनपुत्र पावन परम पालक जन पन पूर ।
अरि घालन सालन सदा दस सिर उर सस सूर ।। ४ ।।

मूल । प्रभु तव वदन चंद सम अमल अमंद ।
तमहारी रतिकारी करत अनंद ।।

टीका प्रभु इति । उक्ति ब्रह्मा की है । प्रभु तुमारो बदन चंद सम अमल अमंद तम हरन रति करन प्रीति करन आनंद करन है । वदन उपमेय चंद उपमान । सम वाचक । अमल । आदिक साधारन धर्म । तातें पूर्णोपमालंकार । प्रश्न । साधारन धर्म का कहावै । जो उपमान उपमेय दोउन में होय । सो अमलता और अमंदता चंद्रमा में दोऊ नाहीं यातें उपमेय में अधिकता आए तें बितरेक काहे न होइ । उत्तर ।। जब क्षीर समुद्र तें चंद्रमा निकरो ता समय अमल अमंद रहो । यातें इहाँ पूरन उपमा होइ है ताको लच्छन । भारतीभूषने ।

दोहा

उपमानरु उपमेय जहँ उपमा वाचक होइ ।
सह साधारन धर्म के पूरन उपमा सोइ ।। १ ।।

जथा । मुख सुखकर निसिकर सरिस सफरी से चल नैन । छीन लंक हरिलंक सी ठाढ़ी ऐनाँ ऐन ।। मुख उपमेय सुखकर धर्म निसिकर उपमान । सरिस वाचक । पुनः सफरी उपमान । से वाचक । चल धर्म । नैन उपमेय । पुनः छीन धर्म लंक उपमेय हरिलंक उपमान । सो वाचक यातें पूर्णोपमा । तहाँ प्रश्न कै ब्रह्मा ने अन्य गुन छोड़ि अलंकार मैं स्तुति करी । ताको अभिप्राय । उत्तर । कंसादि-

कन के त्रासतें अन्य ठाँव दूषन भरि गए एक प्रभु के निकट भूषन रहो। अलंकारप्रियो विष्णुः यह पुरान में लिखते हैं। सो उनको प्रसन्न करनो है यासों अलंकारमय स्तुति करी यद्वा। आगे व्रज में अवतार लेके शृंगार रस प्रधान लीला करनी है तासों भूषन अर्पन करत हैं। पुनः प्रश्न। पूरन उपमा अलंकार तें काहे क्रम बाँधो। उत्तर। षोड़श कला परिपूर्ण अवतार की इच्छा। ग्रंथांतरे।

दोहा

भौंहैं कुटिल कमान सी सर से पैने नैन।
वेधत व्रजवालान हीं बंशीधर दिन रैन॥

इत्यादि जानिए।"

पूज्य भारतेंदुजी इनके मुख्य सभासदों के नाम एक याददाश्त में इस प्रकार लिखते हैं—

पंडित ईश्वरदत्त जी (ईश्वर कवि), सरदार कवि, गोस्वामी दीनदयाल गिरि, कन्हैयालाल लेखक, पंडित लक्ष्मीशंकर व्यास, बाबू कल्यानदास, माधोरामजी गौड़, गुलाबराम नागर और बालकृष्णदास टकसाली।

साधु महात्माओं का समागम

इन पर उस समय के साधु महात्माओं की भी बड़ी कृपा रहती थी और ये भी सदा उन लोगों की सेवा शुश्रूषा में तत्पर रहते थे। एक पुर्जा उस समय का मुझे मिला है जो अविकल प्रकाशित किया जाता है—

"रामकिंकर जी, अयोध्या के महंत जिनका नाम जाहिर है आपने भी सुना होगा, बड़े महात्मा हैं सो राधिकादास जी के स्थान पर तीन चार रोज से टिके हैं अभी उनके साथ सहर में

गए हैं और चाहिए कि दो तीन घड़ी में आपकी भेंट को आवैं क्योंकि राधिकादास जी की जुबानी आपके गुन सुने और सहस्र नाम की पोथी देखी उत्कंठा मालूम होती है और हैं कैसे 'कौपीन-वंतः खलु भाग्यवंतः।'

राधिकादास जी, रामकिंकर जी, तुलाराम जी, भागवतदास जी आदि उस समय बड़े प्रसिद्ध महात्मा गिने जाते थे। इन लोगों से इनसे बहुत स्नेह था, वरंच इन लोगों से भगवत् संबंधी चुहलबाजी भी होती थी। एक दिन इन्हीं में से किसी महात्मा से इन्होंने कहा कि 'भगवान श्रीकृष्णचंद्र में भगवान श्रीरामचंद्र से दो कला अधिक थीं अर्थात् इनमें सोलहों कला थीं।" उक्त महानुभाव ने उत्तर दिया "जी हाँ, चोरी और जारी"। कई महात्माओं की कथा भी धूमधाम से हुई थी।

बुढ़वामंगल

यह हम ऊपर लिख आए हैं कि बाबू हर्षचंद्र के समय से बुढ़वामंगल का कच्छा इनके यहाँ बहुत तयारी के साथ पटता था और बिरादरी में नेवता फिरता था, तथा गुलाबी पगड़ी दुपट्टा पहिरकर यावत बिरादरी और नौकर आदि कच्छे पर आते थे। वैसी ही तयारी से यह मेला बाबू गोपालचंद्र के समय में भी होता था। एक वर्ष कच्छे के साथ के कटर पर संध्या करने के लिये बाबू साहब आए थे और कटर के भीतर संध्या करते थे। छत पर और सब लोग बैठे थे। संध्या करके ऊपर आए, सब लोग ताजीम के लिये खड़े हो गए। इस हलचल में नाव उलट गई और सब लोग अथाह जल में डूब गए। उस समय उसी नाव पर एक नौकर की गोद में बड़ी कन्या मुकुंदी बीबी भी थीं। यह दुर्घटना चौसट्ठी

घाट पर हुई थी। इस घाट पर चतुःषष्टि देवी का मंदिर है और होली के दूसरे दिन यहाँ धुरहडी को बहुत बड़ा मेला लगता है। इस घाट पर अथाह जल है और रामनगर के किले से टकराकर पानी यहाँ आकर लगता है, इससे यहाँ पानी का बड़ा वेग रहता है; उस पर इनको तैरना भी नहीं आता था—और भी आपत्ति यह कि लड़के साथ में। त्राहि भगवन्, उस समय क्या बीती होगी! परन्तु रक्षा करनेवाले की बाँह बड़ी लंबी है। उसने सभों को ऐसा उबारा कि प्राणियों की कौन कहे, किसी पदार्थ को भी हानि न होने पाई। बाबू गोपालचंद्र मेरे पिता बाबू कल्याण-दास से लिपट गए। यह बड़े घबराए कि अब दोनों यहीं रहे। परन्तु साहस करके इन्होंने उनको अपने शरीर से छुड़ाकर ऊपर की ओर लोकाया। सौभाग्यवश नौकाएँ वहाँ पहुँच गई थीं। लोगों ने हाथों हाथ उठा लिया। मुकुंदी बीबी अपनी सोने की सिकरी को हाथ से पकड़े नौकर के गले से चिपटी रहीं। निदान सब लोग निकल आए, यहाँ तक कि जितने पदार्थ डूबे थे वे सब भी निकल आए। एक सोने की घड़ी, चाँदी का चश्मे का खाना और बाँह पर बाँधने का एक चाँदी का यंत्र अब तक उस समय का जल में से निकला हुआ रखा है। कविवर गोपालचंद्र की कवित्वशक्ति उस समय भी स्थगित न हुई और उन्होंने उसी अवस्था में एक पद बनाया। अंतिम पद उसका यह है—

"गिरिधर दास उबारि दिखायो भवसागर को नमूना"।

चार दिन बुढ़वामंगल के अतिरिक्त, होली और अपने तथा पुत्रों के जन्मोत्सव के दिन बड़ा जलसा और बिरादरी की जेवनार कराते थे, कि जिसकी शोभा देखनेवाले अब तक भी वर्तमान हैं, और

कहते हैं वैसी शोभा अब अच्छे अच्छे विवाह की महफिलों में भी नहीं दिखाई देती।

एक बेर ये हाथी से भी गिरे थे और उसी दिन उस हाथी को काशिराज की भेंट कर दिया।

गयायात्रा

बचपन से श्रीठाकुरजी की सेवा और दर्शन का ऐसा अनुराग था कि उन्हें छोड़कर कभी कहीं यात्रा का विचार नहीं करते। केवल पाँच वर्ष की अवस्था में मुंडन कराने के लिये पिता के साथ मथुरा जी गए थे, तथा श्री दाऊजी के मंदिर में मुंडन हुआ था और वहाँ से लौटकर श्री वैद्यनाथ जी गए थे, वहाँ चोटी उतरी थी। स्वतंत्र होने पर कभी कभी चरणाद्रि श्रीमहाप्रभु जी के दर्शन को जाते; परंतु पहले दिन जाते, दूसरे दिन लौट आते। केवल बाबू हरिश्चंद्र के जन्मोपरांत संवत् १९०७ में पितृऋण चुकाने के लिये गया गए थे। गया जाने के लिये बड़ी तयारियाँ हुईं। महीनों पहले से सब पुराणों, धर्मशास्त्रों से छाँटकर एक संग्रह बनवाया गया। रेल थी नहीं, डाक का प्रबंध किया गया। सैकड़ों आदमियों का साथ था। पंद्रह दिन की गया का विचार करके गए, परंतु वहाँ जाने पर प्रभुवियोग ने विकल किया। दिन रात रोवैं, भोजन न करैं, सेवा का स्मरण अहर्निशि रहै। निदान किसी किसी तरह तीन दिन की गया करके भागे रात दिन बराबर चले आए और आकर श्री चरणदर्शन से अपने को तृप्त किया। इस यात्रा में मेरी माता साथ थीं।

ग्रंथ

इनका सबसे पहला ग्रंथ वाल्मीकि-रामायण है, जिसका वर्णन ऊपर हो चुका है। परंतु खेद के साथ कहना पड़ता है कि इनके ग्रंथ ऐसे अस्त-व्यस्त हो गए हैं कि जिनका कुछ पता ही नहीं लगता। केवल पूज्य भारतेंदुजी के इस दोहे से—

"जिन श्रीगिरिधरदास कवि रचे ग्रंथ चालीस।
ता सुत श्रीहरिचंद को को न नवावै सीस" ॥

इतना पता लगता है कि उन्होंने चालीस ग्रंथ बनाए थे, परंतु उनके नाम या अस्तित्व का पता नहीं लगता।

पूज्य भारतेंदु जी ने अपनी याददाश्त में इतने ग्रंथों के नाम लिखे हैं—

१ वाल्मीकि-रामायण (सातो कांड छंद में अनुवाद)। २ गर्गसंहिता। ३ भाषा एकादशी की चौबीसों कथा। ४ एकादशी की कथा। ५ छंदार्णव। ६ मत्स्यकथामृत। ७ कच्छपकथामृत। ८ नृसिंहकथामृत। ९ बावनकथामृत। १० परशुरामकथामृत। ११ रामकथामृत। १२ बलरामकथामृत। १३ बुद्धकथामृत। १४ कल्किकथामृत। १५ भाषा व्याकरण। १६ नीति। १७ जरासंधवध महाकाव्य। १८ नहुषनाटक। १९ भारतीभूषण। २० अद्भुत रामायण। २१ लक्ष्मी नखसिख। २२ रसरत्नाकर। २३ वार्ता संस्कृत। २४ ककारादि सहस्रनाम। २५ गयायात्रा। २६ गयाष्टक। २७ द्वादश दल-कमल। २८ कीर्तन की पुस्तक "स्तुति पंचाशिका" कवि सरदार कृत टीका का वर्णन ऊपर हो चुका है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित संस्कृत स्तोत्रों पर संस्कृत टीका कवि लक्ष्मीराम कृत मुझे मिली हैं—

१ संकर्षणाष्टक। २ दनुजारिस्तोत्र। ३ वाराहस्तोत्र। ४ शिव-स्तोत्र। ५ श्रीगोपालस्तोत्र। ६ भगवत्स्तोत्र। ७ श्रीरामस्तोत्र। ८ श्रीराधास्तोत्र। ९ रामाष्टक। १० कालियकालाष्टक। इनके ग्रंथों के लुप्त होने का विशेष कारण यह जान पड़ता है कि इनके अक्षर अच्छे नहीं होते थे, इसलिये वे स्वयं पुर्ज़ों पर लिखकर सुंदर अक्षरों में नकल लिखवाते और सुंदर चित्र बनवाते थे। तब मूल कापी का कुछ भी यत्न न होता और ग्रंथ का शत्रु वही उसका चित्र होता। मैंने वाल्मीकि-रामायण और गर्गसंहिता की सचित्र कापी बचपन में देखी थी, परंतु उसे कोई महाशय पूज्य भारतेंदु जी से ले गए और फिर उन्होंने इसे न लौटाया। कीर्तन की पुस्तक मुंशी नवलकिशोर के प्रेस से खो गई और "नहुषनाटक" का कुछ भाग "कविवचन-सुधा" प्रथम भाग में छपकर लुप्त हो गया। खेद है कि पूज्य भार-तेंदु जी की असावधानी ने इनको बहुत हानि पहुँचाई।

दशावतार-कथामृत मानो उन्होंने भाषा में पुराण बनाया था। पुराण के सब लक्षण इसमें हैं। बलिरामकथामृत बहुत ही भारी ग्रंथ है। वह ग्रंथ सं० १९०६ से १९०८ तक में पूरा हुआ था। भारतीभूषण अलंकार का अद्भुत ग्रंथ है। अच्छे अच्छे कवि अपने विद्यार्थियों को यह ग्रंथ पढ़ाते हैं। नहुषनाटक भाषा का पहला नाटक है। भाषा व्याकरण-छंदोबद्ध भाषा का व्याकरण अत्यंत सुगम और सरल ग्रंथ है। जरासंधवध महाकाव्य और रसरत्नाकर अधूरे ही रह गए। इन दोनों को पूज्य भारतेंदु जी पूरा करना चाहते थे, परंतु खेद कि वैसे ही रह गए। जरासंधवध महाकाव्य बहुत ही पांडित्यपूर्ण वीररसप्रधान ग्रंथ है। भाषा में यह ग्रंथ एम० ए० का कोर्स होने योग्य है। इसकी तुलना के भाषा में बिरले ही ग्रंथ मिलेंगे। इस ढंग का ग्रंथ केवल कविवर केशवदास कृत रामचंद्रिका ही है।

इनकी कविता की प्रशंसा फ्रांस देश के प्रसिद्ध विद्वान् गार्सिन दी तासी ने अपने ग्रंथ में की है और डाक्तर ग्रिअर्सन तथा बाबू शिवसिंह ने (शिवसिंहसरोज में) इनकी विद्वत्ता को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है।

कविता

इनकी कविता पांडित्यपूर्ण होती थी। इन्हें अलंकारपूर्ण श्लेष, यमक इत्यादि की कविता पर विशेष रुचि थी। परंतु नीति शृंगार और शांत रस की कविता इनकी सरल और सरस भी अत्यंत ही होती थी। हम उदाहरण के लिये कुछ कविताएँ यहाँ उद्धृत करते हैं—

सवैया

सब केसब केसब केसव के हित के गज सोहते सोभा अपार हैं।
जब सैलन सैलन सैलन ही फिरैं सैलन सैलहिं सीस प्रहार हैं॥
गिरिधारन धारन सों पद के जल धारन लै बसुधारन फार हैं।
अरि बारन बारन बारन पै सुर बारन बारन बारन वार हैं॥ १॥

मुकरी

अति सरसत परसत उरज उर लगि करत बिहार।
चिह्न सहित तन को करत क्यों सखि हरि नहिं हार॥१॥

संख्यालंकार

गुरुन को शिष्यन पात्र भूमि देवन को,
मान देहु ज्ञान देहु दान देहु धन सों।
सुत को संन्यासिन को वर जिजमानन को,
सिच्छा देहु भिच्छा देहु दिच्छा देहु मन सों॥
सत्रुन को मित्रन को पित्रन कों जग बीच,
तीर देहु छीर देहु नीर देहु पन सों।

गिरिधर दास दासै स्वामी को अवी को आसु,
रुख देहु सुख देहु दुख देहु तन सों ॥

यथासंख्य

असतसंग, सतसंग, गुन, गंग, जंग कहँ देखि ।
भजहु, सहजु, सीखहु सदा, मज्जहु लरहु विसेखि ॥

अविकृतशब्द श्लेषमूल वक्रोक्ति

मानि कही रमनी सुलै हैं परसत तुव पाय ।
मानिक हार मनी सुलै देहु पतुरियै जाय ॥ १ ॥
मानत जोगहि सुमति बर पुनि पुनि होति न देह ।
जोगी मानहिं जोग को नहिं हम करत सनेह ॥ २ ॥

स्वभावोक्ति

गौनो करि गौनो चहत पिय विदेश बस काजु ।
सासु पासु जोहत खरी आँखि आँसु उर लाजु ॥ १ ॥

समस्यापूर्ति

जीवन यैं सगरे जग को हमतें सब पाप औ ताप की हानी ।
देवन कों अरु पितृन कों नर कों जड़ कों हमहीं सुखदानी ॥
जो हम ऐसो कियो तेहि नीच महा सठ को मति लै अवसानी।
हाय विधाता महा कपटी इहि कारन कूप मैं डोलत पानी ॥१॥
बातन क्यों समुझावति हौ मोहि मैं तुमरो गुन जानति राधे ।
प्रीति नई गिरिधारन सों भई कुंज मैं रीति के कारन साधे ॥
घूँघट नैन दुरावन चाहति दौरति सो दुरि ओट ह्वै आधे ।
नेह न गोयो रहै सखि लाज सों कैसे रहै जल जाल के बाँधे॥२॥

जरासंधवध महाकाव्य से

चले राम अभिराम राम इष धनु टंकारत ।
दीनबंधु हरिबंधु सिंधु सम बल बिस्तारत ॥

जाके दशसत सिरन मध्य इक सिर पर धरनी।
लसति जथा गज सीस स्वल्प सरसप सित बरनी॥
विक्रम अनंत अतँक अधिक सुजस अनंत अनंत मति।
परताप अनंत अनंत गुन लसे अनंत अनंत गति॥१॥

पद

प्रभु तुम सकल गुन के खानि।
हौं पतित तुव सरन आयो पतित-पावन जानि॥
कब कृपा करिहौ कृपानिधि पतितता पहिचानि।
दास गिरिधर करत बिनती नाम निश्चै आनि॥ १॥

खड़ी बोली का पद

जाग गया तब सोना क्या रे।
जो नर तन देवन को दुर्लभ सो पाया अब रोना क्या रे॥
ठाकुर से कर नेह अपाना इंद्रिन के सुख होना क्या रे।
जब बैराग ज्ञान उर आया तब चाँदी औ सोना क्या रे॥
दारा सुपन सदन में पड़ के भार सबों का ढोना क्या रे।
हीरा हाथ अमोलक पाया काँच भाव में खोना क्या रे॥
दाता जो मुख माँगा देवे तब कौड़ी भर दोना क्या रे।
गिरिधरदास उदर पूरे पर मीठा और सलोना क्या रे॥१॥

विदुर नीति से

पावक, वैरी, रोग, रिन सेसहु राखिय नाहिं।
ए थोड़े हू बढ़हिं पुनि महाजतन सों जाहिं॥ १॥

वाल्मीकिरामायण से

पति देवत कहि नारि कहँ और आसरो नाहिं।
सर्ग सिढ़ी जानहु यही वेद पुरान कहाहिं॥ १॥

नीति के छप्पय (स्वहस्त लिखित एक पुर्जे से)

धिक नरेस बिनु देस देस धिक जहँ न धरम रुचि।
रुचि धिक सत्य विहीन सत्य धिक बिनु बिचार सुचि ॥
धिक बिचार बिनु समय समय धिक बिना भजन के।
भजनहु धिक बिनु लगन लगन धिक लालच मन के ॥
मन धिक सुंदर बुद्धि बिनु बुद्धि सुधिक बिनु ज्ञान गति।
धिक ज्ञान भगति बिनु भगति धिक नहिं गिरिधर पर प्रेम अति ॥१॥

मुझे खेद है कि न तो मैंने इनके सब ग्रंथों को पढ़ा है और न इतना अवसर मिला कि उत्तमोत्तम कविता छाँटता। यत्किंचित् उदाहरण के लिये उद्धृत कर दिया और चित्रकाव्य को छापने की कठिनता से सर्वथा ही छोड़ दिया है।

धर्मविश्वास—वैष्णव धर्म पर इन्हें ऐसा अटल विश्वास था कि और सब देव देवियों की पूजा अपने यहाँ से उठा दी थी। भारतेंदु जी ने लिखा है कि "मेटि देव देवी सकल छोड़ि कठिन कुल रीति। थाप्यो गृह में प्रेम जिन प्रगट कृष्ण पद प्रीति ॥" मरने के समय भी घर का कोई सोच न था केवल श्वास भरकर ठाकुरजी के सामने यही कहा था कि "दादा ! तुम्हें बड़ा कष्ट होगा ॥"

रोग और मृत्यु

बचपन से लोगों ने उन्हें भंग पीने का दुर्व्यसन लगा दिया था। वह अति को पहुँच गया था। ऐसी गाढ़ी भाँग पीते थे कि जिसमें सीक खड़ी हो जाय। और अंत में इसी के कारण उन्हें जलोदर रोग हो गया। बहुत कुछ चिकित्सा हुई, परंतु कोई फल न हुआ। कोठी की ताली और प्रबंध राय नृसिंहदास को सौंप गए थे और उन्होंने बाबू गोकुलचंद्र की नाबालगी तक कोठी को सँभाला था।

सं० १९१७ की बैसाख सु० ७ को अंत समय आ उपस्थित हुआ। पूज्य भारतेंदु जी और उनके छोटे भाई बाबू गोकुलचंद्र जी को सीतला जी का प्रकोप हुआ था। दोनों पुत्रों को बुलाकर देखकर बिदा किया। इन लोगों के हटते ही प्राण पखेरू ने पयान किया। चारों ओर अंधकार छा गया, हाहाकार मच गया। पूज्य भारतेंदु जी कहते थे कि "वह मूर्ति अब तक मेरी आँखों के सामने विराजमान है। तिलक लगाए बड़े तकिए के सहारे बैठे थे। दिव्य कान्ति से मुखमंडल दीप्त था, मुख प्रसन्न था, देखने से कोई रोग नहीं प्रतीत होता था। हम लोगों को देखकर कहा कि सीतला ने बाग मोड़ दी। अच्छा अब ले जाव।" इनकी अंत्येष्टि क्रिया एक संबंधी (नन्हू साव) ने की थी।

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म

मि० भाद्रपद शुक्ल ७ (ऋषि सप्तमी) सं० १९०७ ता० ९ दिसंबर सन् १८५० को हुआ, जिस समय इनके पूज्य पिता का वियोग हुआ उस समय इनकी अवस्था केवल ९ वर्ष की थी, परंतु "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" इस लोकोक्ति के अनुसार बालक हरिश्चंद्र ने पाँच छः वर्ष की अवस्था ही में अपनी चमत्कारिणी बुद्धि से अपने कविचूड़ामणि पिता को चमत्कृत कर दिया था। (पिता गोपालचंद्र) बलराम-कथामृत की रचना कर रहे थे; बालक (हरिश्चंद्र) खेलते खेलते पास आ बैठे, बोले हम भी कविता बनावैंगे। पिता ने आश्चर्यपूर्वक कहा तुम्हें उचित तो यही है। उस समय बाणासुरवध का प्रसंग लिखा जा रहा था। बाल-कवि ने तुरंत यह दोहा बनाया—

"लै ब्योंड़ा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर की सैन को, हनन लगे भगवान॥"

पिता ने प्रेमगद्गद होकर प्यारे पुत्र को कंठ लगा लिया और अपने होनहार पुत्र की कविता को अपने ग्रंथ में सादर स्थान दिया और आशीर्वाद दिया "तू हमारे नाम को बढ़ावैगा"। हाय! कहाँ है उनकी आत्मा! वह आकर देखे कि उनके पुत्र ने उनका ही नहीं वरन उनके देश का भी मुख उज्ज्वल किया है!

एक दिन अपने पिता की सभा में कवियों को अपने पिता के 'कच्छपकथामृत' के मंगलाचरण के इस अंश पर—

"करन चहत जस चारु कछु कछुवा भगवान को"

व्याख्या करते देख बालक हरिश्चंद्र भी आ बैठे। किसी ने "कछु कछु वा (उस) भगवान को" यह अर्थ कहा, और किसी ने यों कहा "कछु कछुवा (कच्छप) भगवान को"। बालक हरिश्चंद्र चट बोल उठे "नहीं नहीं बाबू जी, आपने कुछ कुछ जिस भगवान को छू लिया है उसका जस वर्णन करते हैं" (कछुक छुवा भगवान को) बालक की इस नई उक्ति पर सब सभास्थ लोग मोहित हो उछल पड़े और पिता ने सजलनेत्र प्यारे पुत्र का मुख चूमकर अपना भाग्य सराहा।

इनकी बुद्धि बचपन ही से प्रखर और अनुसंधानकारिणी थी। एक दिन पिता को तर्पण करते देख आप पूछ बैठे "बाबू जी पानी में पानी डालने से क्या लाभ?" धार्मिकप्रवर बाबू गोपालचंद्र ने सिर ठोका और कहा "जान पड़ता है तू कुल बोरैगा"। देवतुल्य पिता के आशीर्वाद और अभिशाप दोनों ही एक एक अंश में यथा-समय फलीभूत हुए, अर्थात् हरिश्चंद्र जैसे कुल-मुखोज्ज्वलकारी हुए, वैसे ही निज अतुल पैतृक संपत्ति के नाशकारी भी हुए।

शिक्षा

नौ वर्ष की अवस्था में पितृहीन होकर ये एक प्रकार से स्वतंत्र हो गए। जिनकी स्वतंत्र प्रकृति एक समय बड़े बड़े राजपुरुषों और स्वदेशीय बड़े बड़े लोगों के विरोध से न डरी, उनको बालपन में भी कौन पराधीन रख सकता था, विशेषकर विमाता और सेवकगण? तथापि पढ़ने के लिये वे कालिज में भरती किए गए। यथासमय कालिज जाने लगे। उस समय अँगरेजी स्कूलों में लड़कों के चरित्र पर विशेष ध्यान रखा जाता था। पान खाकर कालिज में जाने का निषेध था। पर परम चपल और उद्धत-स्वभाव ये कब मानने लगे थे, पान का व्यसन इन्हें बचपन ही से था; खूब पान खाकर जाते और रास्ते में अपने बाग (रामकटोरा) में ठहरकर कुल्ला करके तब कालिज जाते। पढ़ने में भी जैसा चाहिए वैसा जी न लगाते, परंतु ऐसा कभी न हुआ कि ये परीक्षा में उत्तीर्ण न हुए हों। एक दो बेर के सुनने और थोड़े ही ध्यान देने से इन्हें पाठ याद हो जाता था और इनकी प्रखर बुद्धि देखकर अध्यापक लोग चमत्कृत हो जाते थे। उस समय अँगरेजी शिक्षा का बड़ा अभाव था। रईसों में केवल राजा शिवप्रसाद अँगरेजी पढ़े थे, अतएव इनका बड़ा नाम था। ये भी कुछ दिनों तक उनके पास अँगरेजी पढ़ने जाया करते थे। इसी नाते ये सदा राजा साहब को 'पूज्यतर, गुरुवर' लिखते और राजा साहब इन्हें प्रियवर, मित्रवर, लिखते थे। तीन चार वर्ष तक तो पढ़ने का क्रम चला। कालिज में अँगरेजी और संस्कृत पढ़ते थे, पर रसिकराज हरिश्चंद्र का झुकाव उस समय भी कविता की ओर था। परंतु वही प्राचीन ढर्रे की शृंगार रस की। उस समय का उनका लिखा एक संग्रह मिला है, जिसमें प्रायः शृंगार ही की

कविताएँ विशेष संगृहीत हैं, तथा स्वयं भी जो कोई कविता की है तो शृंगार या धर्मसंबंधी।

जगदीश-यात्रा—रुचि-परिवर्तन

इसी समय स्त्रियों का आग्रह श्री जगदीश-यात्रा का हुआ। सं० १९२२ (स० १८६४-६५) में ये सकुटुंब जगदीश-यात्रा को चले। यही समय इनके जीवन में प्रधान परिवर्तन का हुआ। बुरी या भली जो कुछ बातें इनके जीवन की संगिनी हुईं, उनका सूत्रपात इसी समय से हुआ। पढ़ना तो छूट ही गया था। उस समय तक रेल पूरी पूरी जारी नहीं हुई थी। उस समय जो कोई इतनी बड़ी यात्रा करते तो उन्हें पहुँचाने के लिये जाति कुटुंब के लोग तथा इष्ट-मित्र नगर के बाहर तक जाते थे। निदान इनका भी डेरा नगर के बाहर पड़ा। नगर के रईस तथा आपस के लोग मिलने के लिये आने लगे। बड़े आदमियों के लड़कों पर प्राय: नगर के अर्थलोलुप लोगों की दृष्टि रहती ही है, विशेषकर पितृहीन बालक पर। अतएव वैसे ही एक महापुरुष इनके पास भी मिलने के लिये पहुँचे। ये वही महाशय थे जिनके पितामह ने बाबू हर्ष-चंद्र की नाबालगी में इनके घर को लुटाया और उन्हीं महापुरुष के पिता ने बाबू गोपालचंद्र की नाबालगी का लाभ उठाया था। और अब इनकी नाबालगी में ये महात्मा क्यों चूकने लगे थे? अत-एव ये भी मिलने के लिये आए। शिष्टाचार की बातें होने पर वे इनको एकांत में लिवा ले गए और उन्हें दो अशर्फियाँ देने लगे। यह देख बालक हरिश्चंद्र अचंभे में आ गए और पूछा "इन अशर्फियों से क्या होगा?" शुभचिंतक जी बोले "आप इतनी बड़ी यात्रा करते हैं, कुछ पास रहना चाहिए"। इन्होंने उत्तर दिया "हमारे

साथ मुनीब गुमाश्ते रुपए पैसे सभी कुछ हैं, फिर इन तुच्छ दो अशर्फियों से क्या होगा ?" शुभचिंतक जी ने कहा "आप लड़के हैं, इन भेदों को नहीं जानते। मैं आपका पुश्तैनी 'नमकखार' हूँ। इसलिये इतना कहता हूँ। मेरा कहना मानिए और इसे पास रखिए। काम लगे तो खर्च कीजिएगा नहीं तो फेर दीजिएगा। मैं क्या आपसे कुछ माँगता हूँ। आप जानते ही हैं कि आपके यहाँ बहू जी का हुक्म चलता है। जो आपका जी किसी बात को चाहा और उन्होंने न दिया तो उस समय क्या कीजिएगा ? कहावत है कि 'पैसा पास का जो वक्त पर काम आवे'।" होनहार प्रबल होती है, इसी से उस धूर्त की धूर्तता के जाल में फँस गए। और उन्होंने उसकी अशर्फियाँ रख लीं। एक ब्राह्मण युवक उनके साथ थे, वही खजांची बने। ऋण लेने का यहीं से सूत्रपात हुआ। फिर तो उनकी तबियत ही और हो गई, मिजाज में भी गरमी आ गई। रानीगंज तक तो रेल में गए, आगे बैलगाड़ी और पालकी का प्रबंध हुआ। बर्दवान में आकर किसी बात पर ये मा से बिगड़ खड़े हुए और बोले "हम घर लौट जाते हैं"। इस पर लोगों ने समझा कि इनके पास तो कुछ है नहीं तो फिर ये जायँगे कैसे ? यह सोचकर लोगों ने उनकी उपेक्षा की। बस चट आप उन ब्राह्मण देवता को साथ लेकर चल खड़े हुए, जिन्हें उन्होंने अशर्फी का खजांची बनाया था। बाजार में आकर एक अशर्फी भुनाई और स्टेशन पर जा पहुँचे। यह समाचार जब छोटे भाई बाबू गोकुलचंद्र को मिला तब वह सजल-नेत्र स्टेशन पर जाकर भाई से लिपट गए। तब तो हरिश्चंद्र का स्नेहमय हृदय सम्हल न सका, उसमें भ्रातृस्नेह उछल पड़ा। दोनों भाई गले लगकर खूब रोए, फिर दोनों डेरे पर लौट आए। लौट तो आए पर उसी समय से इनके हृदय में जो

स्वतंत्रता का स्रोत उमड़ पड़ा वह फिर न लौटा। धीरे धीरे दोनों अशर्फियाँ खर्च हो गई और फिर ऋण का चसका पड़ा। उन्हीं दो अशर्फियों के सूद ब्याज तथा अदला बदली में उक्त पुश्तैनी 'नमक-खार' के हाथ इनकी एक बड़ी हवेली, जो पन्द्रह हजार रुपए से कम की नहीं है, लगी।

इसी समय से इनकी रुचि गद्य-पद्यमय कविता की ओर झुकी। वह एक 'प्रवास नाटक' लिखने लगे। परंतु अभाग्यवश वह अपूर्ण और अप्रकाशित ही रह गया। इसी समय 'झूलत हरीचंद जू डोल' 'हम तो मोल लए या घर के', आदि कविताएँ बनीं और इसी समय इन्होंने बँगला सीखी।

श्री जगन्नाथ जी के सिंहासन पर चिरकाल से भैरव-मूर्ति भोग के समय बैठाई जाती थी। मूर्ख पंडों का विश्वास था कि बिना भैरव-मूर्ति के श्री जगन्नाथ जी की पूजा सांग हो ही नहीं सकती। इन्हें यह बात बहुत खटकी। इन्होंने नाना प्रमाणों से उसका विरोध किया। निदान अंत में भैरव-मूर्ति को वहाँ से हटा ही छोड़ा। 'तहकीकात पुरी की तहकीकात !' इसी झगड़े का फल है।

स्कूल का स्थापन

उस यात्रा से लौटने पर इनकी रुचि कविता और देश-हित की ओर विशेष फिरी। इनको निश्चय हुआ कि बिना पाश्चात्य शिक्षा के प्रचार और मातृभाषा के उद्धार के इस देश का सुधार होना कठिन है। उस समय नगर में कोई पाठशाला न थी। सरकारी पाठशाला या पादरियों की पाठशाला में लड़कों को भेजना और फीस देकर पढ़ाना साधारण लोगों के लिये कठिन था। इसलिये इन्होंने अपने घर पर लड़कों को पढ़ाना आरंभ किया। दोनों

भाई मिलकर लड़कों को पढ़ाते थे। फीस कुछ देनी नहीं पड़ती थी। पुस्तक स्लेट आदि भी बिना मूल्य ही दी जाती थी। इस कारण धीरे धीरे लड़कों की संख्या बढ़ने लगी और इनका भी उत्साह बढ़ा। तब एक अध्यापक नियुक्त कर दिया जो लड़कों को पढ़ाने लगा। परन्तु थोड़े ही दिनों में लड़कों की इतनी संख्या अधिक हुई कि सन् १८६७ ई० में नियमित रूप से "चौखंभा स्कूल" स्थापित किया और उसका सब भार अपने सिर रखा। उसमें अधिकांश लड़के बिना फीस दिए पढ़ने लगे, पुस्तकादि भी बिना मूल्य वितरित होने लगीं, यहाँ तक कि अनाथ लड़कों को खाना कपड़ा तक मिल जाया करता था। इस स्कूल ने काशी ऐसे नगर में अँगरेजी शिक्षा का कैसा कुछ प्रचार किया, यह बात सर्व साधारण पर विदित है। पहले यह 'अपर प्राइमरी' था, किंतु भारतेंदु के अस्त होने पर 'मिडिल' हुआ। थोड़े दिन तक हाई स्कूल भी रहा परंतु सहायता न होने से फिर मिडिल हो गया।

हिंदीउद्धार व्रत का आरंभ, "कविवचनसुधा" का जन्म

मातृभाषा का प्रेम और कविता की रुचि तो बालकपन ही से इनके हृदय में थी। अब उसके भी पूर्ण प्रकाश का समय आया। कवि, पंडित और विद्यारसिकों का समारंभ तो दिन रात ही होता रहता था, परंतु अब यह रुचि 'कविवचनसुधा' रूप में प्रकाश्य रूप से अंकुरित हुई। सन् १८६८ ई० में 'कविवचनसुधा' मासिक पत्र के आकार में निकला। प्राचीन कवियों की कविताओं का प्रकाश ही इसका मुख्य उद्देश्य था। कवि देवकृत 'अष्टयाम', दीनदयाल गिरि कृत 'अनुरागबाग', चंदकृत 'रायसा', मलिक मुहम्मदकृत 'पद्मावत', 'कबीर की साखी', 'बिहारी के दोहे', गिरिधरदासकृत

'नहुषनाटक', तथा शेख सादीकृत 'गुलिस्ताँ' का छंदोमय अनुवाद आदि ग्रंथ अंशतः प्रकाशित हुए। परंतु केवल इतने ही से संतोष न हुआ। देखा कि बिना गद्य-रचना इस समय कुछ उपकार नहीं हो सकता। इस समय और प्रांत आगे बढ़ रहे हैं, केवल यही प्रांत सबसे पीछे है, यह सोच देशभक्त हरिश्चंद्र ने देशहित-व्रत धारण किया और "कविवचनसुधा" को पाक्षिक, फिर साप्ताहिक कर दिया तथा राजनैतिक, सामाजिक आदि आंदोलन आरंभ कर दिया और "कविवचनसुधा" का सिद्धांत-वाक्य यह हुआ—

"खल-गनन सों सज्जन दुखी मति होहिं, हरिपद मति रहै।
उपधर्म छूटैं, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर, नारि नर सम होहिं, जग आनँद लहै।
तजि ग्रामकविता, सुकविजन की अमृत बानी सब कहै॥"

यद्यपि इस समय इन बातों का कहना कुछ कठिन नहीं प्रतीत होता है, परंतु उस अंधपरंपरा के समय में इनका प्रकाश्य रूप से इस प्रकार कहना सहज न था। नव्य शिक्षित समाज को 'हरि-पद मति रहै' कहना जैसा अरुचिकर था, उससे बढ़कर पुराने 'लकीर के फकीरों' को 'उपधर्म छूटैं' कहना क्रोधोन्मत्त करना था। जैसा ही अँगरेज हाकिमों को 'स्वत्व निज भारत गहै, कर (टैक्स) दुख बहै' कहना कर्णकटु था, उससे अधिक 'नारि नर सम होहिं' कहना हिंदुस्तानी भद्र समाज को चिढ़ाना था। परंतु वीर हरिश्चंद्र ने जो जी में ठाना उसे कह ही डाला, और जो कहा उसे आजन्म निबाहा भी। इन्हीं कारणों से वे गवन्मेंट के क्रोध-भाजन हुए, अपने समाज में निंदित हुए और समय समय पर नव्य समाज से भी बुरे बने, परंतु जो व्रत उन्होंने धारण किया उसे अंत तक नहीं छोड़ा, यहाँ तक कि 'कविवचनसुधा' से अपना संबंध छोड़ने पर भी

आजन्म यही व्रत रखा। 'विद्यासुंदर' नाटक की अवतारणा भी इसी समय हुई। नाना प्रकार के गद्यपद्यमय ग्रंथ बनने और छपने लगे। उस समय हिंदी का कुछ भी आदर न था। इन पुस्तकों और इस समाचारपत्र को कौन मोल लेता और पढ़ता? परंतु देश-भक्त उदार हरिश्चंद्र को धन का कुछ भी मोह न था। वह उत्तमोत्तम कागज पर उत्तमोत्तम छपाई में पुस्तकें छपवाकर नाम मात्र को मूल्य रखकर बिना मूल्य ही सहस्राधिक प्रतियाँ बाँटने लगे। उनके आगे पात्र अपात्र का विचार न था; जिसने माँगा उसने पाया, जिसे कुछ भी सहृदय पाया उसे उन्होंने स्वयं दिया। यह प्रथा बाबू साहब की आजन्म रही। उन्होंने लाखों ही रुपए पुस्तकों की छपाई में व्यय करके पुस्तकें बिना मूल्य बाँट दीं और इस प्रकार से हिंदी के प्रेमियों की सृष्टि की और हिंदी पढ़नेवालों की संख्या बढ़ाई।

गवर्न्मेंट मान

इसी समय आनरेरी मैजिस्ट्रेटी का नया नियम बना था। ये भी अपने और मित्रों के साथ आनरेरी मैजिस्ट्रेट (सन् १८७० ई० में) चुने गए। फिर म्युनिसिपल कमिश्नर भी हुए। हाकिमों में इनका अच्छा मान होने लगा। परंतु ये निर्भीक चित्त से यथार्थ बात कहने या लिखने में कभी चूकते न थे और इसी से दूसरे की बढ़ती से जलनेवालों को 'चुगली' करने का अवसर मिलता था। इस समय भारतेश्वरी महारानी विक्टोरिया के पुत्र ड्यूक आफ एडिनबरा भारत-संदर्शनार्थ आए। काशी में इनका महामहोत्सव हुआ। इस महोत्सव के प्रधान सहायक यही थे। इनके घर की सजावट की शोभा आज तक लोग सराहते हैं। स्वयं ड्यूक ने इसकी प्रशंसा की थी। ड्यूक को नगर दिखाने का भार भी इन्हीं पर अर्पित किया

गया था। इस समय सब पंडितों से कविता बनवा और 'सुमनोंजलि' नामक पुस्तक में छपवाकर इन्होंने राजकुमार को समर्पण की थी। इस ग्रंथ पर महाराज रीवाँ और महाराज विजयनगरम् बहादुर ऐसे प्रसन्न हुए थे कि इन्होंने इसके रचयिता पंडितों को बहुत कुछ पारितोषिक बाबू साहब के द्वारा दिया था। इसी समय पंडितों ने भी अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करने के लिये एक प्रशंसापत्र बाबू साहब को दिया था जिसका सार मर्म यह था—

"सब सज्जन के मान को, कारन एक हरिचंद।
जिमि स्वभाव दिन रैन को, कारन एक हरिचंद॥"

बाबू साहब की गुणग्राहकता पंडित-मंडली के इन वाक्यों से प्रत्यक्ष विदित होती है। वास्तव में इन्हें अपनी प्रतिष्ठा का उतना ध्यान न था जितना दूसरे उपयुक्त सज्जनों के सम्मानित करने का।

इस समय ये गवर्न्मेंट के भी कृपापात्र थे। 'कविवचनसुधा', 'हरिश्चंद्रचंद्रिका' और 'बालाबोधिनी' की सौ सौ प्रतियाँ शिक्षा-विभाग में ली जाती थीं। 'विद्यासुंदर' आदि की सौ सौ प्रतियाँ ली गईं। उसी समय ये पंजाब युनिवर्सिटी के परीक्षक नियुक्त हुए।

'कविवचनसुधा' का आदर न केवल इस देश में वरंच योरप में भी होने लग गया था। सन् १८७० ई० में फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् गार्सन दी तासी ने अपने प्रसिद्ध पत्र "ली लैंगुआ डेस हिंदुस्तानिस" में मुक्तकंठ से बाबू साहब और 'कविवचनसुधा' की प्रशंसा की थी।

चंद्रिका और बालाबोधिनी

परंतु देशहितैषी हरिश्चंद्र इन थोथे सम्मानों में भूलकर अपने लक्ष्य से चूकनेवाले न थे। इन्होंने देखा कि बिना मासिक पत्रों के

निकाले और अच्छे अच्छे सुलेखकों के प्रस्तुत किए भाषा की यथार्थ उन्नति न होगी। यह सोच उन्हें केवल 'कविवचनसुधा' से संतोष न हुआ, और सन् १८७३ ई० में "हरिश्चंद्र मैगजीन" का जन्म हुआ। ८ संख्या तक इसकी निकली, फिर यही 'हरिश्चंद्रचंद्रिका' के रूप में निकलने लगा। मैगजीन के ऐसा सुंदर पत्र आज तक हिंदी में नहीं निकला। जैसा ही सुंदर आकार वैसा ही कागज, वैसी ही छपाई और उससे कहीं बढ़कर लेख। उस समय तक कितने ही सुलेखकों को उत्साह देकर बाबू साहब ने प्रस्तुत कर लिया था। मैगजीन के लेख और लेखक आज भी आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। हरिश्चंद्र का 'पाँचवाँ पैगंबर', मुंशी ज्वाला-प्रसाद का 'कलिराज की सभा', बाबू तोताराम का 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न', मुंशी कमलाप्रसाद का 'रेल का विकट खेल', आदि लेख आज तक लोग चाह के साथ पढ़ते हैं। लाला श्रीनिवासदास, बाबू काशीनाथ, बाबू गदाधरसिंह, बाबू ऐश्वर्यनारायण सिंह, पंडित ढुंढिराजशास्त्री, श्रीराधाचरण गोस्वामी, पंडित बदरीनारायण चौधरी, राव कृष्णदेवशरण सिंह, पंडित बापूदेव शास्त्री, प्रभृति विद्वज्जन इसके लेखक थे। इसी समय सन् १८७४ ई० में इन्होंने स्त्रीशिक्षा के निमित्त 'बालाबोधिनी' नाम की मासिक पत्रिका भी निकाली, जिसके लेख स्त्रीजनोचित होते थे। यही समय मानो नवीन हिंदी की सृष्टि का है। यद्यपि भारतेंदु जी ने सन् १८६४ ई० से हिंदी गद्य पद्य का लिखना आरंभ किया था और सन् १८६८ में 'कविवचनसुधा' का उदय हुआ, परंतु इसे स्वयं भारतेंदु जी हिंदी के उदय का समय नहीं मानते। वह मैगजीन के उदय (सन् १८७३ ई०) से ही हिंदी का पुनर्जन्म मानते हैं। उन्होंने अपने 'काल-चक्र' नामक ग्रंथ में लिखा है। "हिंदी नए चाल में ढली (हरि-

श्चंद्री हिंदी *) सन् १८७३ ई० ।" वास्तव में जैसी लालित्यमय हिंदी इस समय से लिखी जाने लगी वैसी पहले न थी।

पेनी रीडिंग

इसी समय इन्होंने 'पेनी रीडिंग' (Penny Reading) नामक समाज स्थापित किया था जिसमें स्वयं भद्र लोग तरह तरह के अच्छे अच्छे लेख लिखकर लाते और पढ़ते थे। मैगजीन के प्रायः सभी अच्छे अच्छे लेख इस समाज में पढ़े गए थे। स्वयं भारतेंदु जी की दो मूर्तियाँ आज तक आँखों के सामने घूमती हैं—एक तो श्रांत पथिक बनकर आना और गठरी पटक पैर फैलाकर बैठ जाना आदि। और दूसरी पाँचवें पैगंबर की मूर्ति। इस समाज के प्रोत्साहन से भी बहुत से अच्छे अच्छे लेख लिखे गए। इसी समय के पीछे 'कर्पूरमंजरी', 'सत्य हरिश्चंद्र' और 'चंद्रावली' की रचना हुई, जो कि सच पूछिए तो हिंदी की टकसाल हैं। जैसा ही अपने ग्रंथों पर इन्हें स्नेह था उससे कहीं बढ़कर इनका प्रेम दूसरे उपयुक्त ग्रंथकारों पर था। कितने ही नवीन और प्राचीन ग्रंथ इनके व्यय से मुद्रित और बिना मूल्य वितरित हुए। वास्तव में यदि हरिश्चंद्र सरीखा उदार-हृदय, रुपए को मिट्टी समझनेवाला, गुणग्राही नायक हिंदी की पतवार को उस समय न पकड़ता और सब प्रकार से स्वार्थ छोड़कर तन मन धन से इसकी उन्नति में न लग जाता, तो आज दिन हिंदी का इस अवस्था पर पहुँचना कठिन था। हरिश्चंद्र ने हिंदी तथा देश के लिये सारे संसार की दृष्टि में अपने को मिट्टी कर दिया।

---

* खेद का विषय है कि (हरिश्चंद्री हिंदी) इतना लेख जो स्वयं भारतेंदु जी ने लिखा था उसे कालचक्र छपने के समय खड्गविलास प्रेस वालों ने छोड़ दिया है।

उदारता—ऋण

उस समय के 'साहित्यसंसार' की कुछ अवस्था आप लोगों ने सुनी। अब कुछ 'व्यावहारिक संसार' में भी हरिश्चंद्र को देख लीजिए। जगदीश यात्रा के पीछे उदारहृदय हरिश्चंद्र का हाथ खुला। हम ऊपर कह ही चुके हैं कि बड़े आदमियों के लड़कों पर धूर्तों की दृष्टि रहती ही है, अतः इन्हें भी लोगों ने घेरा। एक तो यह स्वाभाविक उदार, दूसरे इनका नवीन वयस, तीसरे यह रसिकता के आगार, फिर क्या था, धन पानी की भाँति बहने लगा। एक ओर साहित्यसेवा में रुपए लग रहे हैं, दूसरी ओर दीन दुखियों की सहायता में, तीसरे देशोपकारक कामों के चंदों में, चौथे प्राचीन रीति के धर्मकार्यों में और पाँचवें यौवनावस्था के आनंद-विहारों में। द्रव्य की ओर इनकी दृष्टि न रहने के कारण, इन सभों से बढ़कर अप्रबंध तथा अर्थलोलुप विश्वासघातकों के चक्र ने इनके धन को नष्ट करना आरंभ कर दिया। एक धार से बहने पर तो बड़े बड़े नदी नद सूख जाते हैं, तो फिर जिसके शत धार हों उसका कौन ठिकाना! घर के शुभचिंतकों ने इन्हें बहुत कुछ समझाया, परंतु कौन सुनता था? स्वयं काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण-सिंह बहादुर ने कहा "बबुआ! घर को देखकर काम करो"। इन्होंने निर्भीक चित्त हो उत्तर दिया "हुजूर! इस धन ने मेरे पूर्वजों को खाया है, अब मैं इसे खाऊँगा"। महाराज अवाक्य रह गए। शौक इन्हें संसार के सौंदर्य मात्र ही से था। गाने बजाने, चित्र-कारी, पुस्तक संग्रह, अद्भुत पदार्थों का संग्रह (Museum), सुगंधि की वस्तु, उत्तम कपड़े, उत्तम खिलौने, पुरातत्त्व की वस्तु, लैंप, आलबम, फोटोग्राफ इत्यादि सभी प्रकार की वस्तुओं का ये आदर करते और उन्हें संगृहीत करते थे। इनके पास कोई गुणी

आ जाय तो वह विमुख कभी न फिरता। कोई मनोहर वस्तु देखी और द्रव्य-व्यय के विचार बिना चट उसका संग्रह किया। बालिग होते होते उन्होंने लाखों रुपए व्यय कर डाले। लोगों ने देखा कि इनके हाथ में यदि कुबेर का भंडार भी होगा तो रहने न पावेगा; इसलिये इस घर की रक्षा का उपाय इनका भाग अलग कर देना ही है। अतएव ता० २१ मार्च सन् १८७० ई० को दोनों भाइयों में तकसीमनामा हुआ। जो लाखों रुपए अब तक व्यय हो चुके थे उसे छोड़कर अब जो बचा था उसमें तीन सम भाग हुए, दो दोनों भाइयों का और तीसरा श्री ठाकुरजी का। यह ठाकुर जी लगभग ८०, ९० वर्ष से इनके यहाँ स्थापित हैं और इनकी सेवा श्री वल्लभ-कुलस्थ सेवा की रीति पर होती है। जिसका सारा संसार अपना ही कुटुंब है, और जिसे सारे संसार की संपत्ति भी व्यय करने के लिये थोड़ी है, उसके लेखे वह छोटा भाग क्या था? देखते ही देखते धन घटने और ऋण बढ़ने लगा। थोड़े ही दिनों में सब नकदी धन की इतिश्री हो गई। फिर जायदाद रिहन पड़ने लगीं। बनारस के 'शाइलाकों' ने एक एक देकर तीन तीन की हुँडियाँ लिखवाना आरंभ किया। एक महाशय ने एक कटर (नाव) और कुछ थोड़ा सा रुपया देकर इनसे तीन हजार की हुंडी लिखवा ली, और उसी की सबसे पहले इन पर नालिश हुई। उस समय सुप्रसिद्ध सर सैयद अहमद खाँ बहादुर बनारस के सदरआला थे, उन्हीं के यहाँ नालिश हुई। सैयद साहब सब कुछ वृत्तांत सुन चुके थे। एक रईस के घर का बिगड़ना, विशेषकर भारतहितैषी हरिश्चंद्र का विपद्ग्रस्त होना, उसी व्रत में व्रती सैयद साहब को बहुत क्लेशकर हुआ। उन्होंने चाहा कि महाजन का जितना मूल-धन है उसी की डिक्री दी जाय। यह विचारकर उन्होंने बाबू साहब को आदर के

साथ अपने बगल में बुलाकर आसन दिया और पूछा 'आपने असिल में इनसे कितना रुपया पाया ?' प्रशस्तहृदय सत्यसंध हरिश्चंद्र ने उत्तर दिया 'पूरा रुपया पाया है'। सैयद साहब ने पूछा 'जो कटर इन्होंने लगा दिया है वह कितने का है' ? आप बोले 'जितने का मैंने लेना स्वीकार कर लिया'। सैयद साहब ने टेबुल पर हाथ पटककर कहा 'बाबू साहब, आप भूलते हैं। जरा बाहर घूम आइए; समझ बूझकर उत्तर दीजिए'। बाहर आए तब वकीलों ने, घर के लोगों ने, और इष्ट मित्रों ने बहुत कुछ समझाया कि जितना पाया है आप उतना ही कह दें। इस पर आप चुप रहे। फिर इज-लास पर गए और पूछे जाने पर आपने फिर वही उत्तर दिया। सैयद साहब खेद प्रकाश करने लगे तो आप बोले "सुनिए सैयद साहब ! मैं अपने धर्म और सत्य को साधारण धन के लिये नहीं बिगाड़ने का; मुझसे इस महाजन ने जबर्दस्ती हुंडी नहीं लिखवाई और न मैं बच्चा ही था कि समझता न था; जब कि मैंने अपनी गरज से समझ बूझकर उसका मूल्य तथा नजराना आदि स्वीकार कर लिया, तो क्या अब देने के भय से मैं उस सत्य को भंग कर दूँ ?" धन्य हरिश्चंद्र धन्य ! 'सत्यहरिश्चंद्र' लिखने के उपयुक्त पात्र तुम्हीं थे! ये वाक्य तुम्हारी ही लेखनी से निकलने योग्य थे—

"चंद टरै, सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचंद को, टरै न सत्य विचार ॥"

उनकी यह दृढ़ता और यह सत्यता अंत समय तक रही। वह पास द्रव्य न होने से दे न सकें परंतु अस्वीकार कभी नहीं कर सकते थे। थोड़े ही दिनों में उनकी सारी पैतृक संपत्ति जाती रही और वह धन खोने के कारण 'नालायक' समझे जाने लगे। इनके मातामह की लाखों की संपत्ति थी, जिसके उत्तराधिकारी

यही दोनों भाई थे। इनकी मातामही ने ५ मे सन् १८६२ ई० को इन दोनों भाइयों के नाम अपनी समग्र संपत्ति का वसीयतनामा लिख दिया था। परंतु अब तो ये नालायक ठहरे; इनके हाथ जाने से कोई संपत्ति बच न सकेगी, बड़ों का नाम-निशान मिट जायगा, इसलिये १४ एप्रिल सन् १८७५ ई० को मातामही ने दूसरा वसीयतनामा लिखा, जिसके अनुसार इन्हें कुछ भी अधिकार न देकर सर्वस्व छोटे भाई बाबू गोकुलचंद्र को दिया। निस्पृह हरिश्चंद्र को न पहले वसीयतनामे से संपत्ति पाने का हर्ष था, न इसके अनुसार उसके खोने का खेद हुआ। वकीलों की सम्मति से हिंदू अबीरा स्त्री का इन्हें भागरहित करना सर्वथा कानून के विरुद्ध था, इसमें स्वयं इनकी स्वीकृति की आवश्यकता थी; अतएव २८ अक्तूबर सन् १८७८ ई० को मातामही ने एक बखशीशनामा छोटे भाई बाबू गोकुलचंद्र के नाम लिख दिया और उदारहृदय हरिश्चंद्र ने उस पर अपनी स्वीकृति करके हस्ताक्षर कर दिया। जिस स्वर्गीय हरिश्चंद्र को सुमेरु भी उठाकर किसी दीन दुखी को देने में संकोच न होता, उसे इस तुच्छ संपत्ति को अपने सहोदर छोटे भाई को देना क्या बड़ी बात थी! कहने के साथ हस्ताक्षर कर दिया। इस बखशिशनामे के अनुसार इन्हें केवल चार हजार रुपया मिला था। इस प्रकार थोड़े काल में नगरसेठ हरिश्चंद्र राजा हरिश्चंद्र की भाँति धनहीन हरिश्चंद्र हो गए। 'सत्य हरिश्चंद्र' की रचना के समय पंडित शीतलाप्रसाद त्रिपाठी जी ने सत्य कहा था कि—

"जो गुन नृप हरिचंद में, जगहित सुनियत कान।
सो सब कवि हरिचंद में, लखहु प्रतच्छ सुजान॥"

परंतु इतना होने पर भी इनकी उदारता या इनके अपरिमित व्यय में कभी कमी न हुई। मरने के समय तक ये हजारों ही

रुपए महीने में व्यय करते थे और वह परमेश्वर की कृपा से कहीं न कहीं से आ ही जाते थे। संपत्तिनाश के पीछे ये बीस बाईस वर्ष और जिए, इतने समय में इन्होंने कम से कम तीन चार लाख रुपए व्यय किए, और लाखों ही रुपए ऋण किए, परंतु जिस जगत्पिता जगदीश्वर की संतान के उपकार के लिये इनका धन व्यय होता था उसकी कृपा से न तो कभी इनका हाथ रुका और न मरने के समय ये ऋणी ही मरे।

हिंदी के राजभाषा बनाने का उद्योग

अब फिर साधारण हितकर कार्यों तथा साहित्य-चर्चा की ओर झुकिए। जब विद्यारसिक सर विलियम म्योर की लाटगिरी का समय आया, उस समय हिंदी को राजभाषा बनाने के लिये बहुत कुछ उद्योग किया गया, परंतु सफलता न हुई। ये इस उद्योग में प्रधान थे। सभाएँ की थीं, प्रार्थनापत्र भेजे थे, समाचारपत्रों में आंदोलन किया था। हिंदी के उत्तम ग्रंथों के लिये पारितोषिक देने की व्यवस्था की गई, परंतु उसमें भी सिफारिश का बाजार गर्म हुआ। "रत्नावली", 'उत्तररामचरित्र' आदि के अनुवाद ऐसे भ्रष्ट निकले कि हिंदी साहित्य को लाभ के बदले बड़ी हानि पहुँची। उन अनुवादकों को बहुत कुछ पारितोषिक दिया गया, किंतु उत्तम ग्रंथों की कुछ भी पूछ न की गई। केंपसन साहब उस समय शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर थे, राजा शिवप्रसाद उनके कृपापात्र थे। इधर राजा साहब का हृदय अपने सामने के एक 'छोकरे' की उन्नति से जला हुआ था, उधर बाबू साहब का हृदय 'हाकिमी' अन्याय से कुढ़ गया था; दूसरा एक कारण राजा साहब से इनके विरोध का यह हुआ कि राजा साहब ने फारसी आदि मिश्रित खिचड़ी

हिंदी की सृष्टि करके उसे चलाना चाहा, और बाबू साहब ने शुद्ध हिंदी लिखने का मार्ग चलाया और सर्व साधारण ने इसी को रुचि के साथ ग्रहण किया। अब इसे रोकने और उसे चलाने का उपाय गवर्न्मेंट की शरण बिना असंभव जान राजा साहब ने हाकिमों को उधर ही झुकाया। यही एक प्रधान कारण उस समय हिंदी राजभाषा न होने का भी हुआ था। यदि भाषा का झगड़ा न होकर अक्षरों ही का होता तो संभव था कि सफलता हो जाती।

इसके पीछे एजूकेशन कमीशन के समय भी इन्होंने बड़ा उद्योग किया था। वे प्रयाग हिंदू समाज के पूरे सहायक थे जिसने इस विषय में बड़ा उद्योग किया था।

गवर्न्मेंट का कोप

बाबू साहब का स्वभाव कौतुकप्रिय और रहस्यमय तो था ही। इन्होंने तरह तरह के पंच लिखने आरंभ किए। इधर हाकिमों के कान भरे जाने लगे। एक लेख 'लेवी प्राणलेवी' तो निकला ही था, जिसमें लेवी दर्बार में हिंदुस्तानी रईसों की दुर्दशा का वर्णन था; दूसरा एक 'मर्सिया' निकला जिसका कटाक्ष सर विलियम म्योर पर घटाया गया। बस, फिर क्या था, बरसों की भरी भराई बात निकल पड़ी, गवर्न्मेंट की कोपदृष्टि इन पर पड़ी। इस लेख के कारण 'कविवचनसुधा', जो गवर्न्मेंट लेती थी वह, बंद किया गया। 'हरिश्चंद्रचंद्रिका' यह कहकर बंद की गई कि इसमें 'कवि-हृदय-सुधाकर' ऐसा घृणित ग्रंथ छपता है। उक्त ग्रंथ में एक यती और वेश्या का संवाद है। एक योग, ज्ञान आदि की बड़ाई करता और दूसरा भोग-विलास की। अंत में जय यती की हुई। यह उपदेशमय ग्रंथ कुरुचि-उत्पादक समझा गया। 'बालाबोधिनी' यह

कहकर बंद की गई कि आवश्यकता नहीं है। अँगरेजों में चारों ओर इन्हें डिसलायल (राजविरोधी) कहकर धारणा होने लगी। इनका स्वाधीन और उन्नत हृदय इस लांछना को सहन न कर सका। पहले तो इन्होंने उद्योग किया कि इस अनुचित विचार को दूर करावें, परंतु इसमें कृतकार्य न होने पर इन्होंने राजपुरुषों से सारा संबंध छोड़ना ही उचित समझा; क्योंकि जिस व्रत को इन्होंने धारण किया था उसमें हाकिम-समागम से बहुत कुछ बाधा पड़ती थी। आनरेरी मैजिस्ट्रेटी आदि सरकारी कामों को छोड़ अपने उदार उद्देश्यों की ओर लगे। वास्तव में जिन लोगों ने इनको अपदस्थ करना चाहा था, उन्होंने इस देश तथा स्वयं उनके साथ बड़ा उपकार किया; क्योंकि यदि यह घटना न होती तो ये न तो 'भारतनक्षत्र' (स्टार आफ इंडिया) के बदले में 'भारतेंदु' (मून आफ इंडिया) होते, और न सच्चे सहृदय हरिश्चंद्र को पाकर यह देश ही इतना लाभ उठा सकता।

राजभक्ति

यहाँ कुछ विचार इसका भी करना आवश्यक है कि ये राज-द्रोही थे या राजभक्त। यदि इनके लिखे 'भारतदुर्दशा' नाटक को विचारपूर्वक देखा जाय तो इस प्रश्न का उत्तर सहज में मिल सकता है। उसमें स्पष्ट दिखला दिया है कि हाकिम लोग राज-द्रोह उसे समझे हैं जो वास्तविक राजभक्ति है। केवल 'कर दुख बहै' इतना कहना ही राजद्रोह का चिह्न समझा जाता है। इस बात को राजा शिवप्रसाद ने मुक्त कंठ से अपनी जुबिली की वक्तृता में कह दिया है; परंतु राजभक्त भारतहितैषी हरिश्चंद्र ऐसा कहना पूरी राजभक्ति का चिह्न समझते थे। वह प्रजा के दुःखों को राजा

के कानों तक पहुँचाना राजहित समझते थे। जो व्यक्ति 'भारत-जननी,' 'भारतदुर्दशा' ग्रंथों में, जिनमें उसके राजनैतिक विचार स्पष्ट रूप से वर्णित हैं, मुक्तकंठ से यों कहता है—

"पृथ्वीराज जयचंद कलह करि यवन बुलायो।
तिमिरलंग चंगेज आदि बहु नरन कटायो॥
अलादीन औरंगजेब मिलि धरम नसायो।
विषय वासना दुसह मुहम्मदसह फैलायो॥
तब लौं बहु सोए वत्स तुम जागे नहिं कोऊ जतन।
अब तौ रानी विक्टोरिया, जागहु सुत भय छाँड़ि मन॥"

क्या वह कभी भी राजद्रोही हो सकता है जो यह कहकर—

"अँगेरज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात यहै अति ख्वारी॥"

अपने देशवासियों को व्यापार की उन्नति करने को उत्तेजित करता है? इनके बलिया आदि के व्याख्यान, कविता, नाटक, लेखादि जिसे देखिएगा, उसमें ब्रिटिश शासन से भारत के कल्याण का प्रमाण मिलेगा। हाँ, इनकी बुद्धि में जो बातें प्रबंध की त्रुटि के विषय की आतीं, उन्हें ये मुक्तकंठ से कह डालते और इस सुखमय शासन का वास्तविक लाभ जो अभागे भारतवासी नहीं उठाते, उस पर अवश्य परिताप करते थे। राजभक्त हरिश्चंद्र अपनी सर्कार के दुःख और सुख को अपना दुःख और सुख मानते थे। कौन ऐसा अवसर था जब राजा के दुःख में दुःख और सुख में सुख इन्होंने नहीं प्रकाश किया। ड्यूक आए तब इन्होंने महामहोत्सव किया और 'सुमनों-जलि' भेंट की। प्रिंस आफ वेल्स आए तब भारत की यावत् भाषाओं में कविता बनवाकर 'मानसोपायन' भेंट किया। इँगलैंड की रानी ने जब भारत की सम्राज्ञी का पद ग्रहण किया, तब भी उन्होंने महा-

महोत्सव किया और 'मनोमुकुलमाला' अर्पण की। काबुल-विजय पर 'विजयवल्लरी' बनी, मिस्र-विजय पर 'विजयिनी विजय वैजयंती' उड्डीयमाना हुई, प्रिंस या महारानी कोई राजपरिवार में रुग्न हुए तब उनकी आरोग्य कामना के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई, कविता बनी। जब महारानी किसी दुष्ट की गोली से बचीं तब इन्होंने महामहोत्सव मनाया, जिसकी सराहना स्वयं भारतेश्वरी ने की। जातीय संगीत (National Anthem) के लिये जो प्रतिष्ठित कमेटी बनी, उसके ये सभ्य हुए और उसका इन्होंने अनुवाद किया। ड्यूक आफ अलबेनी की मृत्यु पर इन्होंने शोकप्रकाशक महासभा की। प्रति वर्ष महारानी की वर्षगाँठ पर ये अपने स्कूल का वार्षिकोत्सव करते थे। निदान भारतेश्वरी के कोई सुख या दुःख का ऐसा अवसर न था जब इन्होंने अपनी सहानुभूति न प्रकाश की हो। हाँ साथ ही ये 'भारत-भिक्षा' ऐसे ग्रंथों के द्वारा अपनी उदार सरकार से 'भिक्षा' अवश्य माँगते थे; वह चाहे भले ही राजद्रोह समझा जाय। यों तो विरोधियों को ड्यूक आफ अलबेनी के अकाल ग्रसित होने पर इनका शोक-प्रकाशक सभा करना भी राजद्रोह सुझाई पड़ा। उन महापुरुषों ने सभा को अपरिणामदर्शी हाकिम की सहायता से रोक दिया, जिसके लिये भारतेंदु से राजा शिवप्रसाद के द्वारा काशिराज से भी झगड़ा हो गया और बड़े बखेड़े के पीछे तब फिर से सभा हुई। हम इनकी राजभक्ति के विषय में और कुछ नहीं कहा चाहते, वरन् इसका विचार पाठकों के ही उदार और न्यायपूर्ण निर्णय पर छोड़ते हैं।

समाज सुधार

हमारे पाठकों ने इन्हें उस समय के साहित्य-संसार, व्यावहारिक वा पारिवारिक संसार और राजकीय संसार में देखा, अब कुछ सामाजिक

संसार में भी देखें। इन्होंने हिंदू समाज की वैश्य-अग्रवाल जाति में जन्म ग्रहण किया था और धर्म श्रीवल्लभीय वैष्णव था। जो समय इनके उदय का था वह इस प्रांत में एक विलक्षण संधि का समय था। एक ओर पुरानी लकीर के फकीरों का जोर, दूसरी ओर नव्य समाज की नई रोशनी का विकास। पुराने लोग पुरानी बातों से तिलमात्र भी हटने से चिढ़ते और नास्तिक, किरिस्तान, भ्रष्ट आदि की पदवी देते; नए लोग एकबारगी पुराने लोगों और पुरानी रीति नीति को रसातल भेज, ईश्वर के अस्तित्व में भी संदेह करनेवाले थे। हरिश्चंद्र इन दोनों के बीच विषम समस्या में पड़े। प्राचीन मर्यादावाले बड़े घराने में जन्म लेने के कारण प्राचीन लोग इन्हें जामा पगड़ी पहिना तिलक लगाकर परंपरागत चाल की ओर ले जाना चाहते थे। और नवीन संप्रदाय इनकी बुद्धि का विकास तथा रुचि का प्रवाह देखकर इनसे प्राचीन धर्म और प्राचीन संप्रदाय को तिरस्कृत करने की आशा करते थे। परंतु दोनों ही अंशतः निराश हुए। इनका मार्ग ही कुछ निराला था। इन्हें गुण से प्रयोजन था, ये सत्य के अनुगामी थे। किसी का भी क्यों न हो, दोष देखा और मुक्तकंठ हो कह दिया; असत्य का लेश आया और पूर्ण विरोधी हुए। हिंदू जाति, हिंदू धर्म, हिंदू साहित्य इनको परम प्रिय था। श्रीवल्लभीय वैष्णव संप्रदाय के पूरे अनुगामी थे। जाति-भेद को मानकर अपनी वैश्य जाति के ऊपर पूर्ण प्रेम रखते थे; परंतु साथ ही बुरी बातों की निंदा डंके की चोट कर देते थे; निःशंक होकर ऐसे ऐसे वाक्य लिख देते थे—

"रचि बहु बिधि के वाक्य पुरानन माहिं घुसाए।
शैव शाक्त वैष्णव अनेक मत प्रगट चलाए॥

... ...

विधवा ब्याह निषेध कियो विभिचार प्रचार्‌यो॥

रोकि विलायत गमन कूप-मंडूक बनायो।
औरन को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो॥
बहु देवी देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सों सब विमुख किए हिंदुन घबराई॥
अपरस सोल्हा छूत रचि भोजन प्रीति छुड़ाय।
किए तीन तेरह सबै चौका चौका लाय''॥

''वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'' में लिख दिया—

''पियत भट्ट के ठट्ट अरु गुजरातिन के बृंद।
गौतम पियत अनंद सों पियत अग्र के नंद॥''

''प्रेमयोगिनी'' में मंदिरों तथा तीर्थवासी ब्राह्मणों आदि का रहस्योद्घाटन पूरी रीति पर कर दिया। ''अँगरेज-स्तोत्र'' लिखा, जिसका अपढ़ समाज में उलटा फल फला कि यह तो 'किरिस्तान' हो गए। जैनमंदिर में जाने के कारण लोग नास्तिक, धर्मबहिर्मुख कहकर निंदा करने लगे (इसी पर ''जैन-कुतूहल'' बना)। नवीन वयस, रसिकतामय स्वभाव, विलासप्रियता, परम स्वतंत्र प्रकृति—निदान चारों ओर से लोग इनकी चाल व्यवहार पर आलोचना करते और कटाक्षों और निंदा की बौछारों का ढेर लगा देते थे। कोई कहता ''दुइ चार कवित्त बनाय लिहिन, बस हो गया''; कोई कहता ''पढ़िन का है...दुइ चार बात सीख लिहिन, किरिस्तानी मते की''। ऐसी बातों से हरिश्चंद्र का हृदय व्यथित होता था। उन्होंने निज चरित्र तथा उस समय की अवस्था दिखाने के लिये ''प्रेम-योगिनी'' नाटक लिखना आरंभ किया था जो अधूरा ही रह गया, परंतु उस उतने ही से उस समय का बहुत कुछ पता लगता है। उसमें इन्होंने अपने मन का क्षोभ दिखलाया है। इस इतने विरोध और निंदावाद पर भी आश्चर्य की बात

यह है कि लोग इन्हें अजातशत्रु कहते हैं और यह उपाधि इनकी सर्ववादिसम्मत है।

आदि कविता

अब हम संक्षेपतः इनके उन कामों का वर्णन करते हैं जिन्होंने इन्हें लोकप्रिय बनाया। यह हम ऊपर कह ही आए हैं कि इन्होंने अत्यंत बाल्यावस्था से कविता करनी आरंभ की थी। अब इनकी कुछ आदि कविताएँ उद्धृत करते हैं। सबसे पहला पद यह बनाया—

"हम तो मोल लिए या घर के।
दास दास श्री वल्लभकुल के चाकर राधावर के॥
माता श्री राधिका पिता हरि बंधु दास गुनकर के।
हरीचंद तुमरे ही कहावत, नहिं विधि के नहिं हर के॥"

सबसे पहली सवैया यह है—

"यह सावन सोक नसावन है, मन भावन यामें न लाजै भरो।
जमुना पैं चलौ सु सबै मिलि कै, अरु गाइ बजाइ के सोक हरो॥
इमि भाषत हैं हरिचंद पिया, अहो लाड़िली देर न यामें करो।
बलि झूलो झुलाओ झुको उझको, एहि पाखैं पतिव्रत ताखैं धरो॥"

सबसे पहली ठुमरी यह बनाई—

"पछितात गुजरिया घर में खरी॥
अब लग श्यामसुंदर नहिं आए दुखदाइन भई रात अँधरिया।
बैठत उठत सेज पर भामिनि पिया बिना मोरी सूनी सेजरिया॥"

सबसे पहले अपने पिता का बनाया ग्रंथ "भारतीभूषण" शिला-यंत्र (लीथोग्राफ़) में छपवाया। सब से पहला नाटक "विद्यासुंदर" बनाया।

नवीन रसों की कल्पना

इनकी बुद्धि का विकास अत्यंत अल्प वय में ही पूरा पूरा हो गया था। संस्कृत में कविता रचने की सामर्थ्य थी, समस्यापूर्ति बात की बात में करते थे। उस समय की इनकी समस्याएँ "कवि-वचन सुधा" तथा मेगजीन में प्रकाशित हुई हैं जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है। सबसे बढ़कर आश्चर्य की घटना सुनिए। पंडित ताराचरण तर्करत्न काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह बहादुर के सभा-पंडित थे, कविताशक्ति इनकी परम आदरणीय थी। ऐसे कवि इस समय कम होते हैं। विद्वान् ऐसे थे कि स्वामी दयानंद सरस्वती सरीखे विद्वान् से इनका शास्त्रार्थ प्रसिद्ध है। उन पंडितजी ने "शृंगाररत्नाकर" नामक संस्कृत में शृंगाररस-विषयक एक काव्य-ग्रंथ काशिराज की आज्ञा से संवत् १९१९ (सन् १८६२) में बनाकर छपवाया है। उस समय बालक हरिश्चंद्र की अवस्था केवल १२ वर्ष की थी, परंतु इस बालकवि की प्रखर बुद्धि ने प्रौढ़ कवि तर्करत्न को मोहित कर लिया था, उन्हें भी इनकी युक्ति-युक्त उक्तियों को आदर के साथ मान्य करके अपने ग्रंथ में लिखना पड़ा था। साहित्यकारों ने सदा से नव ही रसों का वर्णन किया है, परंतु हरिश्चंद्र की सम्मति में ४ रस और अधिक होने चाहिएँ। वात्सल्य, सख्य, भक्ति और आनंद रस अधिक मानते थे। इनका कथन था कि इन चारों का भाव शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शांत, इन नवों रसों में से किसी में समाविष्ट नहीं होता, अतएव इन चारों को पृथक् रस मानना चाहिए। इनके अकाट्य प्रमाणों से मुग्ध होकर तर्करत्न महाशय ने अपने उक्त ग्रंथ में लिखा है "हरिश्चंद्रस्तु वात्सल्यसख्यभक्त्यानंदाख्यमधिकं रस-चतुष्टयं मन्यते"। आगे चलकर इन्होंने उदाहरण भी दिए हैं। यों ही

श्रृंगार रस में भी ये अनेक सूक्ष्म भेद मानते थे, जैसे ईर्षामान के दो भेद, विरह के तीन, श्रृंगार के पाँच, नायिका के पाँच, और गर्विता के आठ; यों ही कितने ही सूक्ष्म विचार हैं जिनको तर्करत्न महाशय ने सोदाहरण इनके नाम से अपने उक्त ग्रंथ में मानकर उद्धृत किया है। इनके इन नए मतों पर उस समय पंडितमंडली में बहुत कुछ लिखा-पढ़ी हुई थी, इसका आंदोलन कुछ दिनों तक, सुप्रसिद्ध "पंडित" पत्र में, जो "काशी-विद्या-सुधानिधि" के नाम से संस्कृत कालेज से निकलता है, चला था। खेद का विषय है कि इस विषय का पूरा निराकरण वह किसी अपने ग्रंथ में न कर सके। उनकी इच्छा थी कि अपने पिता के अधूरे ग्रंथ "रसरत्नाकर" को पूरा करें और उसी में इस विषय को लिखें। इसे उन्होंने आरंभ भी किया था और नाम मात्र को थोड़ा सा "हरिश्चंद्र मैगजीन" के ७-८ अंक में प्रकाशित भी किया था कि जिसको देखने ही से बटुए के एक चावल की भाँति पूरे ग्रंथ का पता लगता है। परंतु उनकी यह इच्छा मन की मन ही में रह गई और इसमें उन्होंने अपने उस बड़े दोष को प्रत्यक्ष कर दिखाया जिसे स्वयं ही "चंद्रावली नाटिका" की प्रस्तावना में पारिपार्श्वक के मुख से कहलाया था कि "वह तो केवल आरंभ-शूर है"। बाबू साहब ने इन रसों का कुछ संक्षिप्त वर्णन अपने "नाटक" नामक ग्रंथ में किया है। अस्तु, जो कुछ हो, परंतु ऐसे गंभीर विषय पर एक १२ वर्ष के बालक का मत प्रकाश करना और एक बड़े पंडित को मना देना क्या आश्चर्य की बात नहीं है?

काशी में होमियोपैथिक का प्रचार

होमियोपैथिक चिकित्सा का नाम तक काशी में कोई नहीं जानता था; पहले पहल इन्होंने ही अपने घर में इसे आरंभ किया

और इसके चमत्कारिक गुणों से मोहित हो "होमियोपैथिक दातव्य चिकित्सालय" (सन् १८६८) स्थापित कराया, जिसमें बराबर तन मन धन से ये सहायता देते रहे। इस चिकित्सालय में १२०) वार्षिक चंदा सन् १८६८ से ७३ तक देते रहे। बाबू लोकनाथ मैत्र बंगाल के प्रसिद्ध होमियोपैथिक चिकित्सक थे, वही पहले डाक्तर काशी में आए और उनसे भारतेंदु जी से बड़ा बंधुत्व था। इनके पीछे डाक्तर ईश्वरचंद्र राय चौधरी इनके चिकित्सक थे। अंत में भी इन्हीं की दवा होती थी। इन्हें भारतेंदु जी सदा नागरी अक्षर और बंग-भाषा में पत्र लिखा करते थे।

"कविता-वर्द्धिनी सभा"

"कविता-वर्द्धिनी सभा" वा कवि सभा का जन्म संवत् १६२७ में हुआ था जिससे कितने ही गुणियों का मान बढ़ाया जाता था और कितने ही कवियों को प्रशंसापत्र दिए जाते थे, कितने ही नवीन कवि प्रोत्साहित करके बनाए जाते थे। पंडित अंबिकादत्त व्यास साहित्याचार्य को "पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवी रहौ विकटोरिया रानी" पूर्ति पर प्रशंसापत्र तथा सुकवि की पदवी दी गई थी, जिसका प्रभाव उक्त पंडित जी पर कैसा कुछ हुआ यह उनके चरित्रालोचन ही से प्रगट है। उस समय कवियों का अभाव नहीं था; सेवक, सरदार, नारायण, हनुमान, दीनदयाल गिरि, दत्त (पंडित दुर्गादत्त गौड़), द्विज मन्नालाल, आदि अच्छे अच्छे कवि जीवित थे; प्रायः सभी आते और विलक्षण समागम होता था। इससे जो प्रशंसापत्र दिया जाता था वह यह था—

प्रशंसापत्र

यह प्रशंसापत्र को कवि सभा की ओर से इस हेतु दिया जाता है कि आज की समस्या को (जो, पूर्ण करने के हेतु दी गई थी) इन्होंने उत्तमता से पूर्ण किया और दत्त विषय की कविता इनने प्रशंसा के योग्य की है इस हेतु मिती की काव्यवर्द्धिनी सभा के सभापति, सभाभूषण, सभासद और लेखाध्यक्षों ने अत्यंत प्रसन्नतापूर्वक आदर से इनको यह पत्र दिया है।

मि० संवत् १६२७

ह० ह०

सभापति लेखाध्यक्ष

मुशायरा

यद्यपि ये हिंदी के जन्मदाता और उर्दू के शत्रु कहे जाते हैं, परंतु गुण ग्रहण करने में शत्रु मित्र का विचार नहीं करते थे। उर्दू कवियों के प्रोत्साहन के लिये सन् १२८४ हिज्री (सन् १८६६ ई०) में इन्होंने "मुशाइरा" स्थापित किया था, जिसमें उस समय के शाइर इकट्ठे होते और समस्या-पूर्ति करते। स्वयं बाबू साहब भी कविता (उर्दू) करते थे। अपना नाम उर्दू कविता में "रसा" (पहुँचा हुआ) रखते थे।

धर्मसभा तथा तदीय समाज

काशिराज महाराज की ओर से काशी में "धर्मसभा" संस्थापित हुई थी। इसके द्वारा परीक्षाएँ होती थीं, अनेक धर्म-कार्य होते थे, इसके ये संपादक और कोषाध्यक्ष नियुक्त हुए थे।

संवत् १९३० में इन्होंने "तदीय समाज" स्थापित किया था। यद्यपि यह समाज प्रेम और धर्म संबंधी था, परंतु इससे कई एक बड़े बड़े काम हुए थे। इसी समाज के उद्योग से दिल्ली दर्बार के समय गवर्न्मेंट की सेवा में सारे भारतवर्ष की ओर से कई लाख हस्ताक्षर कराके गोवध बंद करने के लिये अर्जी गई थी। गोरक्षा के लिये 'गोमहिमा' प्रभृति ग्रंथ लिखकर बराबर ही आंदोलन मचाते रहे। लोग स्थान स्थान में 'गोरक्षिणी सभाओं' तथा गोशालाओं के स्थापित होने के सूत्रधार मुक्तकंठ से इनको और स्वामी दयानंद सरस्वती को मानते हैं। इस समाज ने हजारों ही मनुष्यों से प्रतिज्ञा लेकर मद्य और मांस का व्यवहार बंद कराया था। उस समय तक यहाँ कहीं Total Abstinence Society का जन्म भी नहीं हुआ था। इस समाज की ओर से हजारों पुस्तकें दो प्रकार की चेक बही की भाँति छपवाकर बाँटी गई थीं, जिनमें से एक पर दो साक्षियों के सामने शपथपूर्वक प्रतिज्ञा लिखाई जाती थी कि मैं इतने काल तक शराब न पीऊँगा और दूसरे पर मांस न खाने की प्रतिज्ञा थी। कुछ दिन तक इसका बड़ा जोर था। इस समाज ने बहुत से लोगों से प्रतिज्ञा कराई थी कि जहाँ तक संभव होगा वे देशी पदार्थों ही का व्यवहार करेंगे। स्वयं भी इस प्रतिज्ञा का पालन यथासाध्य करते रहे। इस समाज से "भगवद्भक्ति-तोषिणी" मासिक पत्रिका भी निकली थी जो थोड़े ही दिन चलकर बंद हो गई। इस समाज के नियमादि विशेष रोचक हैं इसलिये प्रकाशित किए जाते हैं।

इस समाज को मि० श्रावण शुक्ल १३ बुधवार सं० १९३० को आरंभ किया था। इसके नियम ये थे—

१ श्री तदीय समाज इसका नाम होगा।

२ यह प्रति बुधवार को होगा।

३ कृष्णपक्ष की अष्टमी को भी होगा।

४ प्रत्येक वैष्णव इस समाज में आ सकते हैं परंतु जिनका शुद्ध प्रेम होगा वे इसमें रहेंगे।

५ कोई आस्तिक इस समाज में आ सकता है पर जब एक सभासद उसके विषय में भली भाँति कहेगा।

६ जो कुछ द्रव्य समाज में एकत्रित होगा धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया जायगा।

७ समाज क्या करेगा—

(क) समाज का आरंभ किसी प्रेमी के द्वारा ईश्वर के गुणानुवाद से होगा।

(ख) गुरुओं के नामों का संकीर्तन होगा।

(ग) एक वक्ता कोई सभासद गत समाज के चुने हुए विषय पर कहेगा।

(घ) एक अध्याय श्री गीता जी का और श्रीमद्भागवत दशम का एक अध्याय, पढ़े जायँगे।

(ङ) समाज की समाप्ति में नाम-संकीर्तन होगा और दूसरे समाज के हेतु विषय नियत किया जायगा और अंत में प्रसाद बँटेगा।

८ इसके और भी क्रम सामाजिकों की आज्ञा से बढ़ सकते हैं।

९ यद्यपि इस समाज से जगत् और मनुष्यों से कुछ संबंध नहीं तथापि जहाँ तक हो सकेगा शुद्ध प्रेम की वृद्धि करेगा और हिंसा के नाश करने में प्रवृत्त होगा।

इसके ये महाशय सभासद थे, १ श्री हरिश्चंद्र २ राजा भरतपूर (राव श्री कृष्णदेवशरण सिंह,—अच्छे कवि और विद्वान् थे)

३ श्री गोकुलचंद्र ४ दामोदर शास्त्री (संस्कृत हिंदी के प्रसिद्ध कवि) ५ तिलवणकर (?) ६ तारकाश्रम (अच्छे विरक्त थे) ७ प्रयागदत्त (सच्चरित्र ब्राह्मण थे) ८ शुकदेव मिश्र (श्री गोपाललाल जी के मंदिर के कीर्तनिया) ९ हरीराम (प्रसिद्ध वीणाकार वाजपेयी जी) १० व्यास गणेशराम जी (श्रीमद्भागवत के अच्छे वक्ता थे, बड़े उत्साही थे, भागवत सभा, कान्यकुब्ज पाठशाला के संस्थापक थे) ११ कन्हैया-लाल जी (बाबू गोपालचंद्र जी के सभासद) १२ शाह कुंदनलाल जी (श्री वृंदावन के प्रसिद्ध कवि और महानुभाव) १३ मिश्र राम-दास (?) १४ बाबा जी (?) १५ विट्ठल भट्ट जी (बड़े विद्वान् और भावुक वक्ता थे) १६ गोरजी (प्रसिद्ध तीर्थोद्धारक गोरजो दीक्षित) १७ रामचंद्र पंत (?) १८ रघुनाथ जी (जंबू राजगुरु बड़े विद्वान् और गुणी थे) १९ शीतल जी (काशी गवर्नमेंट कालिज के सुप्रसिद्ध अध्यापक, पंडित-मंडली में मुख्य और संस्कृत हिंदी के कवि) २० बेचनजी (गवर्नमेंट कालिज के प्रधानाध्यापक, पंडित मात्र इन्हें गुरुवत् मानते थे और अग्रपूजा इनकी होती थी, महान् विद्वान् और कवि थे) २१ बीसू जी (काशी के प्रसिद्ध रईस, परम वैष्णव और सत्संगी) २२ चिंतामणि (कविवचन-सुधा के संपादक) २३ राघवाचार्य (बड़े गुणी थे) २४ ब्रह्मदत्त (परम विरक्त ब्राह्मण थे) २५ माणिक्यलाल (अब डिपटी कलकटर हैं) २६ रामायण-शरण जी (बड़े महानुभाव थे, समग्र तुलसी-कृत रामायण कंठ थी, पचासों चेले लिए रामायण गाते फिरते थे, बड़े सुकंठ थे, काशिराज बड़ा आदर करते थे, काशी के प्रसिद्ध महात्माओं में थे) २७ गोपालदास २८ वृंदावन जी २९ बिहारीलाल जी ३० शाह फुंदनलाल जी (शाह कुंदनलाल जी के भाई, बड़े महानुभाव थे) ३१ पंडित राधाकृष्ण, लाहौर (पंजाब केशरी महाराज रणजीतसिंह

के गुरु पंडित मधुसूदन के पौत्र, लाहौर कालिज के चीफ पंडित) ३२ ठाकुर गिरिप्रसाद सिंह (बेसवाँ के राजा, बड़े विद्वान् और वैष्णव थे) ३३ श्री शालिग्रामदास जी लाहौर (पंजाब में प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं, सुकवि थे) ३४ श्री श्रीनिवासदास लाहौर ३५ परमेश्वरीदत्त जी (श्रीमद्भागवत के प्रसिद्ध वक्ता थे) ३६ बाबू हरिकृष्ण दास (श्री गिरिधरचरितामृत आदि ग्रंथों के कर्त्ता) ३७ श्री मोहन जी नागर ३८ श्री बलवंतराव जोशी ३९ व्रजचंद्र (सुकवि हैं) ४० छोटूलाल (हेडमास्टर हरिश्चंद्र स्कूल) ४१ रामू जी।

इसमें बिना आज्ञा कोई नहीं आने पाता था। काशी के प्रसिद्ध जज पंडित हीराचंद चौबे जी के वंशधर पंडित लोकनाथ जी ने जो स्वयं बड़े कवि थे, नाथ नाम रखते थे, टिकट मिलने के लिये यह दोहा लिखा था।

"श्री व्रजराज समाज को तुम सुंदर सिरताज।
दीजै टिकट नेवाज करि नाथ हाथ हित काज ॥"

(२२ जनवरी १८७४)

स्वयं इस समाज में तदीय नामांकित अनन्य वीर वैष्णव की पदवी ली थी। उसका प्रतिज्ञा-पत्र यहाँ प्रकाशित होता है —

"हम हरिश्चंद्र अगरवाले श्री गोपालचंद्र के पुत्र काशी चौखंभा महल्ले के निवासी तदीय समाज के सामने परम सत्य ईश्वर को मध्यस्थ मानकर तदीय नामांकित अनन्य वीर वैष्णव का पद स्वीकार करते हैं और नीचे लिखे हुए नियमों का आजन्म मानना स्वीकार करते हैं।

१ हम केवल परम प्रेममय भगवान् श्री राधिकारमण का ही भजन करेंगे।

२ बड़ो से बड़ी आपत्ति में भी अन्याश्रय न करेंगे।

३ हम भगवान् से किसी कामना के हेतु प्रार्थना न करेंगे और न किसी और देवता से कोई कामना चाहेंगे।

४ जुगल स्वरूप में हम भेद दृष्टि न देखेंगे।

५ वैष्णव में हम जाति-बुद्धि न करेंगे।

६ वैष्णव के सब आचार्य्यों में से एक पर पूर्ण विश्वास रखेंगे परंतु दूसरे आचार्य्य के मत विषय में कभी निंदा वा खंडन न करेंगे।

७ किसी प्रकार की हिंसा वा मांस भचण कभी न करेंगे।

८ किसी प्रकार की मादक वस्तु कभी न खायँगे न पीयेंगे।

९ श्रीमद्भगवद्गीता और श्री भागवत को सत्य शास्त्र मानकर नित्य मनन शीलन करेंगे।

१० महाप्रसाद में अन्न बुद्धि न करेंगे।

११ हम आमरणांत अपने प्रभु और आचार्य पर दृढ़ विश्वास रखकर शुद्ध भक्ति के फैलाने का उपाय करेंगे।

१२ वैष्णव मार्ग के अविरुद्ध सब कर्म करेंगे और इस मार्ग के विरुद्ध श्रौत स्मार्त वा लौकिक कोई कर्म न करेंगे।

१३ यथाशक्ति सत्य शौच दयादिक का सर्वदा पालन करेंगे।

१४ कभी कोई वाद जिससे रहस्यउद्घाटन होता हो अनधिकारी के सामने न कहेंगे। और न कभी ऐसा वाद अवलंबन करेंगे जिससे आस्तिकता की हानि हो।

१५ चिह्न की भाँति तुलसी की माला और कोई पीत वस्त्र धारण करेंगे।

१६ यदि ऊपर लिखे नियमों को हम भंग करेंगे तो जो अपराध बन पड़ेगा हम समाज के सामने कहेंगे और उसकी क्षमा चाहेंगे और उसकी घृणा करेंगे ।

मिती भाद्रपद शुक्ल ११ संवत् १९३०

हरिश्चंद्र

साक्षी

पं० बेचनराम तिवारी	हस्ताक्षर तदीय नामांकित अनन्य
पं० ब्रह्मदत्त	वीर वैष्णव
चिंतामणि	यद्यपि मैंने लिख दिया है तथापि
दामोदर शर्मा	इसकी लाज तुम्हीं को है
शुकदेव	(निज कल्पित अक्षर में)
नारायणराव	मुहर तदीय समाज
माणिक्यलाल जोशी शर्मा	

लोक-हितकर सभा आदि

इस समाज के अतिरिक्त "हिंदी डिबेटिंग क्लब", "यंग मेंस एसोसिएशन", "काशी सार्वजनिक सभा", "वैश्यहितैषिणी सभा", अदालतों में हिंदी जारी कराने के लिये सभाएँ आदि कितनी ही सभा सोसाइटिएँ इन्होंने स्थापित की थीं कि जिनका अब पूरा पूरा पता तक नहीं लगता ।

इन अपनी सभा सोसाइटियों के अतिरिक्त जितने ही देशहितकर तथा लोकहितकर कार्य होते थे सभों में ये मुख्य सहायक रहते थे। "बनारस इंस्टिट्यूट" के ये संस्थापकों में से थे। इस 'इंस्टिट्यूट' में इनसे और राजा शिवप्रसाद से प्रायः चोट चलती थी। "कारमाइकल लाइब्रेरी" तथा "बाल-सरस्वती-भवन" के

संस्थापन में प्रधान सहायक थे; हजारों ही ग्रंथ दिए थे। "काशी-पत्रिका", "भारतमित्र", "मित्रविलास", "आर्यमित्र" आदि यावत् प्राचीन हिंदी पत्रों को प्रोत्साहन तथा लेखादि सहायता द्वारा जन्म देने के ये प्रधान कारण थे। खानदेश के अकाल में सहायता देने के लिये ये बाजार में खप्पर लेकर भीख माँगते फिरे थे, हजारों ही रुपए उगाह कर भेजे थे। काशी के कंपनी बाग में लोगों के बैठने को लोहे की बेंचें अपने व्यय से रखवाई थीं। मणिकर्णिका कुंड में हजारों यात्री गिरा करते थे, उसमें लोहे का कटघरा अपने व्यय से लगवा दिया। माधोराय के प्रसिद्ध धरहरे पर छड़ नहीं लगे थे, जिससे कभी कभी मनुष्य गिरकर चूर हो गए हैं, उस पर छड़ अपने व्यय से लगवाया। इन कामों के लिये म्यूनिसिपैलिटी ने धन्यवाद दिया था। म्यो मेमोरिअल में १५००) रु० दिया था। फ्रांस और जर्मन की लड़ाई का इतिहास तथा सर विलियम म्योर की जीवनी, गोरक्षा पर उपन्यास आदि कितने ही ग्रंथरचना के लिये पारितोषिक नियत किया था। प्रातःस्मरणीया मिस मेरी कारपेंटर के स्त्रीशिक्षा संबंधी उद्योग में प्रधान सहायक थे। विवाह आदि में अपव्ययता कम करने के आन्दोलन के सहकारी थे। मिस्टर शेरिंग, डाक्तर हार्नली, डाक्तर राजेंद्रलाल मित्र, पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर प्रभृति कितने ही ग्रंथकारों के कितने ही ग्रंथों की रचना में ये सहायक रहे हैं, जिन्हें उन्होंने निज ग्रंथों में धन्यवादपूर्वक स्वीकार किया है। थिआसोफिकल सोसाइटी के संस्थापक कर्नेल आलकाट और मैडेम ब्लेवेट्स्की का काशी में जब जब आना हुआ तब तब ये उनके सहायक रहे। अपने स्कूल के छात्र दामोदरदास के बी० ए० पास करने पर सोने की घड़ी और काशी संस्कृत कालेज से आचार्य परीक्षा में पहले पहल जितने लड़के पास हुए थे सभों को घड़िएँ

पारितोषिक दी थीं। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रांतों में जितनी लड़कियाँ अँगरेजी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुई थीं सभों को शिक्षाविभाग द्वारा साड़िएँ पारितोषिक दी थीं। इनमें से कलकत्ता बेथुन कालेज की लड़कियों को जो साड़िएँ भेजी गई थीं उन्हें श्रीमती लेडी रिपन ने अपने हाथ से बाँटा था। बंगाल के डाइरेक्टर सर आलफ्रेड क्राफ्ट साहब ने लिखा था कि जिस समय श्रीमती ने हर्षपूर्वक यह आपका उपहार कन्याओं को दिया था, उस समय आनंदध्वनि से सभास्थल गूँज उठा था। ब्राह्म विवाह पर जिस समय कानून बन रहा था उस समय इन्होंने जो सहायता दी थी उसके लिये उक्त समाज के नेता स्वर्गीय केशवचंद्र सेन ने अपने पत्र द्वारा हृदय से इन्हें धन्यवाद दिया था। सन् १८८३ ई० में भारतबंधु लार्ड रिपन के समय में जो इलबर्ट बिल का आंदोलन उठा था उसे इन्होंने अपने "काल-चक्र" में "आर्यों में ऐक्य का संस्थापन (इलबर्ट बिल) सन् १८८३" लिखा था। वास्तव में उसी समय से हिंदुस्तानियों में कुछ ऐक्य का बीजारोपण हुआ। उस समय सुप्रसिद्ध बाबू सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने एक "नैशनल फंड" स्थापित किया था, उसके लिये वह काशी भी आए थे; ये उसके प्रधान सहायक हुए और बाबू सुरेंद्रनाथ को एक "ईवनिंग पार्टी" भी दी थी। इसके पीछे ही "नैशनल कांग्रेस" का जन्म हुआ, अतः यह आंदोलन भी उसी में विलीन हो गया। जिस समय सर विलियम म्योर के स्वागत में काशी में गंगातट पर रोशनी हुई थी उस समय इन्होंने एक नाव पर Oh Tax और दूसरी पर—

"स्वागत स्वागत धन्य प्रभु, श्री सर विलियम म्योर।
टिकस छोड़ावहु सबन को, बिनय करत कर जोर ॥"

यह रोशनी में लिखवाया था। निदान जितने ही देश-हितकर तथा लोक-हितकर कार्य होते सभी में ये जी-जान से सहायक होते थे।

श्री मुकुंदराय जी के छप्पन भोग के उत्सव के निमित्त ११००) रु० की सेवा की थी। स्ट्रेंजर्स होम, सोलजर्स सोसाइटी, जौनपुर की बाढ़ की सहायता, आदि जो अवसर आते उनमें ये मुक्तहस्त हो सहायता करते थे।

प्रसिद्ध बंग कवि हेमचंद्र बनर्जी, राजकृष्ण राय, द्वारिकानाथ विद्याभूषण, बंकिमचंद्र चटर्जी, पंजाब यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार तथा हिंदी के सुलेखक नवीनचंद्र राय, हिंदू-पेट्रियट-संपादक कृष्णदास पाल, रईस-रैयत-संपादक डाक्टर शंभुचंद्र मुकर्जी, पूना-सार्वजनिक सभा के संस्थापक गणेश वासुदेव जोशी, बंबई के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर भाऊ दाजी और पंजाब के प्रसिद्ध रईस और विद्यारसिक सर अतरसिंह भदौड़िया आदि से इनसे विशेष स्नेह था और इनके कामों में वे बराबर सहायक होते थे।

गुणियों का आदर

यह हम ऊपर कह आए हैं कि गुणियों का आदर और गुण-ग्राहकता इनका स्वभाव था। काशी में कोई गुणी आकर इनसे आदर पाए बिना नहीं जाता था। कवियों के तो ये कल्पतरु थे। कवि परमानंद को बिहारी सतसई के संस्कृत अनुवाद करने पर ५००) पारितोषिक दिया था। महामहोपाध्याय पंडित सुधाकर द्विवेदीजी को निम्नलिखित दोहे पर १००) और अँगरेजी रीति पर अपनी जन्मपत्री बनवाकर ५००) दिया था—

"राजघाट पर बँधत पुल जहँ कुलीन की ढेर।
आज गए कल देख के आजहि लौटे फेर॥"

इस प्रकार से कितनों का क्या क्या सत्कार किया इसका ठिकाना नहीं। परंतु कुछ गुणियों के गुण का यहाँ पर वर्णन करना परमावश्यक है, क्योंकि ऐसे अद्भुत गुणों का भारतवासियों में होना

परम गौरव की बात है। अब वे गुणी नहीं हैं, परंतु उनकी कीर्ति इतिहास में रहनी चाहिए। सुप्रसिद्ध विद्वान् भारतमार्तंड श्री गट्टू-लालजी की विद्वत्ता, आशु कविता और शतावधान आदि आश्चर्य शक्तियाँ जगत्-प्रसिद्ध हैं, उसका वर्णन निष्प्रयोजन है। इन गट्टू-लालजी के सम्मान में इन्होंने काशी में महती सभा की थी, जिसमें यूरोपीय विद्वान् भी आकर अचंभित हुए थे। एक दक्षिणी विद्वान् आए थे, इनका नाम नारायण मार्तंड था; इनकी गणित में विलक्षण शक्ति थी; गणित के ऐसे बड़े बड़े हिसाब, जिनको अच्छे अच्छे विद्वान पाँच चार दिन के परिश्रम में भी नहीं कर सकते उन्हें, यह पाँच मिनिट के भीतर करते थे और विशेषता यह थी कि उसी समय कोई उनके साथ ताश खेलता, कोई शतरंज, कोई चौसर, कोई उनको बकवाता और तरह तरह के प्रश्न करता जाता परंतु इन सब कामों के साथ ही वह मन ही मन हिसाब भी कर डालते और वह हिसाब अभ्रांत होता। इनका बाबू साहब के कारण काशी में बड़ा आदर हुआ। काशिराज ने भी इन्हें आदर दिया था। एक मद्रासी ब्राह्मण वेंकट सुप्पैयाचार्य आए थे, इनका गुण दिखाने के लिये अपने बाग रामकटोरा में सभा की थी। उसमें बनारस कालिज के प्रिंसिपल ग्रिफिथ साहब तथा अन्य यूरोपीय और देशीय सज्जन एकत्र थे। धनुर्विद्या के आश्चर्य गुण इन्होंने दिखाए। अपनी आँखों में पट्टी बाँधकर उस तीक्ष्ण तीर से जिससे लोहे की मोटी चादरों में छेद हो जाय, एक व्यक्ति की आँख पर तिनका बाँधकर उसमें मोम से दुअन्नी चपकाकर केवल शब्द पर बाण मारा, दुअन्नी उड़ गई और तिनका ज्यों का त्यों रहा; जैसे अर्जुन ने महाभारत में जयद्रथ का सिर तीरों के द्वारा उड़ाकर उसके पिता के हाथ में गिराया था, वैसे ही इन्होंने एक नारंगी को तीरों के द्वारा उड़ाया

और लगभग तीस चालीस कोस की दूरी पर खड़े एक मनुष्य के हाथ में गिरा दिया; अँगूठी को कूए में फेंककर बीच ही से तीरों के द्वारा रहट की भाँति उसे बाहर ला गिराया; निदान ऐसे ही आश्चर्य तमाशे किए थे। यूरोपियनों ने मुक्तकंठ हो कहा था कि महाभारत में लिखी बातें इसको देखकर सच्ची जान पड़ती हैं। एक पहलवान तुलसीदास बाबा आए थे, इनका कौतुक नार्मल स्कूल में कराया था। हाथी बाँधने का सूत का रस्सा पैर के अँगूठे में बाँधकर तोड़ डालते, मोटे से मोटे लोहे के रंभों को मोम की बत्ती की तरह दोहरा कर देते, दो कुर्सियों पर लेटकर छाती को अधड़ में रखकर उस पर छ इंच मोटा पत्थर तोड़वा डालते, नारियल को जटा सहित सिर पर मारकर तोड़ डालते, निदान मानुषी पौरुष की पराकाष्ठा थी। पंडितवर बापूदेव शास्त्री जी को नवीन पंचांग की रचना पर दुशाले आदि से पुरस्कृत किया था।

प्रसिद्ध वीणकार हरीराम वाजपेयी कितने ही दिनों तक इनसे ५०) रु० मासिक पाते रहे। निदान अपने वित्त से बाहर गुणियों का आदर करते। इनके अत्यन्त कष्ट के समय में भी कोई गुणी इनके द्वार से विमुख न जाता।

पुरातत्त्व

पुरातत्त्व के अनुसंधान की ओर इनकी पूरी रुचि थी। इनके द्वारा डाक्टर राजेंद्रलाल मित्र को बहुत कुछ सहायता मिलती थी। इनके आविष्कृत कितने ही लेख "एशियाटिक सोसाइटी" के 'जर्नल तथा प्रोसीडिंग' में छपे हैं। इनके पुस्तकालय की प्राचीन पुस्तकों से उक्त सोसाइटी को बहुत कुछ सहायता मिलती थी। गवर्नमेंट द्वारा प्रकाशित संस्कृत-ग्रंथों की सूची तथा पुरातत्त्व संबंधी ग्रंथ इन उपकारों के बदले गवर्नमेंट इन्हें उपहार देती थी। इन्होंने एक

अत्यंत प्राचीन भागवत को 'एशियाटिक सोसाइटी' में उपस्थित करके इस बात का निर्णय करा दिया कि श्रीमद्भागवत बोपदेव कृत नहीं है। प्राचीन सिक्कों और अशर्फियों का संग्रह भी अमूल्य किया था, परंतु खेद का विषय है कि किसी लोभी ने उसे चुराकर उनको अत्यंत ही व्यथित कर दिया। अब भी पैसे रुपए तथा स्टांप का अच्छा संग्रह है। पुरातत्त्व विषयक अनेक लेख भी लिखे हैं।

परिहास-प्रियता

परिहास-प्रियता भी इनकी अपूर्व थी। अँगरेजी में पहली अप्रैल का दिन मानों होली का दिन है। उस दिन लोगों को धोखा देकर मूर्ख बनाना बुद्धिमानी का काम समझा जाता है। इन्होंने भी कई बेर काशीवासियों को योंही छकाया था। एक बेर छाप दिया कि एक यूरोपीय विद्वान् आए हैं जो महाराज विजया-नगरम् की कोठी में सूर्य्य चंद्रमा आदि को प्रत्यक्ष पृथ्वी पर बुलाकर दिखलावेंगे। लोग धोखे में गए और लज्जित होकर हँसते हुए लौट आए। एक बेर प्रकाशित किया कि एक बड़े गवैए आए हैं, वह लोगों को 'हरिश्चंद्र स्कूल' में गाना सुनावेंगे। जब हजारों मनुष्य इकट्ठे हो गए तब पर्दा खुला। एक मनुष्य विचित्र रंगों से मुख रँगे, गदहा टोपी पहिने, उलटा तानपूरा लिए, गदहे की भाँति रेंक उठा। एक बेर छाप दिया था कि एक मेम रामनगर से खड़ाऊँ पर चढ़कर गंगा पार उतरेगी। इस बेर तो एक भारी मेला ही लग गया था। परंतु संध्या को कोलाहल मचा कि "एप्रिल फूल्स"। लड़कपन में भी अपने घर के पीछे अँधेरी गली में फासफरस से विचित्र मूर्त्ति और विचित्र आकार लिखकर लोगों को डरवाते थे। मित्रों के साथ नित्य के हास-परिहास उनके परम मनोहर होते थे। श्री

जगन्नाथ जी को जो फूल की टोपी पहिनाई जाती है वह इतनी बड़ी होती है कि मनुष्य उसमें छिप जाय। इन्होंने यह कौतुक किया कि आप तो टोपी में छिप गए और छोटे भाई बाबू गोकुलचंद्र ने लोगों से कहा कि श्री जगदीश का प्रत्यक्ष प्रभाव देखो कि टोपी आप से आप चलती है, बस टोपी चलने लगी। लोग देखकर अचंभे में आ गए। अंत में आपने टोपी उलट दी तब लोगों को भेद खुला।

उदारता—धन के बिना कष्ट

इनकी उदारता जगत्-प्रसिद्ध है। हम केवल दो चार बातें उदाहरण स्वरूप यहाँ लिखते हैं। हिस्सा होने के थोड़े ही दिन पीछे महाराज बितिया के यहाँ से इनके हिस्से का छत्तीस हजार रुपया वसूल होकर आया। इन्होंने उसको अपने दर्बारी एक मुसाहिब के यहाँ रख दिया। कुछ थोड़ा बहुत द्रव्य उसमें से आया था कि उन्होंने रोते हुए आकर कहा "हुजूर! मेरे यहाँ चोरी हो गई। आपके रुपए के साथ मेरा भी सर्वस्व जाता रहा"। उनके रोने चिल्लाने से घबराकर इन्होंने कहा 'तो रोते क्या हो? गया सो गया, यही गनीमत समझो कि चोर तुम्हें उठा न ले गए"। चलिए मामला तै हुआ। लाख लोगों ने चाहा कि इन्हें तंग करके रुपया वसूल किया जाय, परंतु भारतेंदु जी ने कुछ न किया और कहा "चलो, बिचारा गरीब इसी से कमा खायगा"। कुछ करने की कौन कहे, उन्हें अपनी मुसाहिबी से भी नहीं निकाला। उक्त व्यक्ति एक दिन इतना बढ़ा कि लखपति हो गया। कुछ दिनों पीछे जब द्रव्याभाव हो गया था और प्राय: कष्ट उठाया करते थे उस अवस्था में एक दिन बहुत से पत्र और पैकेट लिखकर रखे थे कि उनके एक मित्र के छोटे भाई (लाला जगदेवप्रसाद

गौड़) उनसे मिलने आए। उन्होंने पूछा "बाबू साहब ! ये सब पत्र डाक में क्यों नहीं गए ?" उत्तर मिला "टिकट बिना"। उक्त महाशय ने २) रु० के टिकट मँगाकर उन सभों को डाक में छुड़-वाया। उस २) को भारतेंदु महोदय ने उन्हें कम से कम दस बेर दिया; उक्त महाशय का कथन है कि "जब मैं मिलने गया २) रु० टिकटवाला मुझे दिया; मैंने लाख कहा कि मैं कई बेर यह रुपया पा चुका हूँ, पर उन्होंने एक न माना। कहा तुम भूल गए होगे; मैंने विशेष आग्रह किया तो बोले अच्छा, क्या हुआ; लड़के तो हौ, मिठाई ही खाना"। एक आलबम चित्रों का इन्होंने अत्यंत ही परिश्रम के साथ संग्रह किया था, जिसमें बादशाहों, विद्वानों, आचार्यों आदि के चित्र बड़े व्यय और परिश्रम से संग्रह किए थे। एक शाहजादे महाशय उस आलबम की एक दिन बड़ी ही प्रशंसा करने लगे। आपने कहा कि "जो यह इतना पसंद है तो नजर है"। बस फिर क्या था, उक्त महोदय ने उठकर लंबी सलाम की और लेकर चलते बने। उदार-हृदय हरिश्चंद्र को कभी किसी पदार्थ को देकर दुःख होते किसी ने नहीं देखा, परंतु इस आल-बम का उन्हें दुःख हुआ। पीछे वह इसका मूल्य ५००) रु० तक देकर लेना चाहते थे, परंतु न मिला। एक दिन आप कहीं से एक गजरा फूलों का पहिने आ रहे थे। एक चौराहे पर उसे लपेटकर रख दिया। जो नौकर साथ में था उसे कुछ संदेह हुआ। वह इन्हें पहुँचाकर फिर उसी चौराहे पर लौट आया, तो उस गजरे को ज्यों का त्यों पाया। उठाकर देखा तो उसमें पाँच रुपए लपेटकर रखे हुए थे। एक दिन जाड़े की ऋतु में रात को आप आ रहे थे। एक दीन दुःखी सड़क के किनारे पड़ा ठिठुर रहा था। दयार्द्रचित्त हरिश्चंद्र से यह उसका दुःख न देखा

गया; बहुमूल्य दुशाला जो आप ओढ़े हुए थे उस पर डाल चुपचाप चले आए। ऐसा कई बार हुआ है। एक दिन मोतियों का कंठा पहिनकर गोस्वामी श्री जीवनजी महाराज (मुंबईवाले) के दर्शन को गए। महाराज ने कहा "बाबू! कंठा तो बहुत ही सुंदर है"। आपने चट उसे भेंट कर दिया। कितने व्यक्तियों को हजारों रुपए के फोटोग्राफ उतारने के सामान, तथा जादू के तमाशे के सामान लेकर दे दिए कि जिनसे वे आज तक कमाते खाते हैं। निदान कितने ही उदाहरण ऐसे हैं जिनका पता लगाना या वर्णन करना असंभव है। लिफाफे में नोट रखकर या पुड़िया में रुपया बाँधकर चुपचाप देना तो नित्य की बात थी। कोई व्यक्ति दो चार दिन भी इनके पास आया और इन्हें उसका खयाल हुआ; आप कष्ट पाते परंतु उसे अवश्य कुछ न कुछ देते। यह अवस्था इनकी मरने के समय तक थी। सन् १८७० में इन्होंने अपना हिस्सा अलग करा लिया था, परंतु चार ही पाँच वर्ष में जो कुछ पाया सब खो बैठे। लगभग १४, १५ वर्ष वह इस पृथ्वी पर इस प्रकार से रहे कि न तो इनके पास कोई जायदाद थी और न कुछ द्रव्य। कभी कभी यह अवस्था तक हो गई है कि चबैना खाकर दिन काट दिया, परंतु उदार-प्रकृति वीर हरिश्चंद्र की दातव्यता कभी बंद नहीं हुई। आज पैसे पैसे के लिये कष्ट उठा रहे हैं, और कल कहीं से कुछ द्रव्य आ जाय तो फिर उसकी रक्षा नहीं; वह भी वैसे ही पानी की भाँति बहाया जाता, दो ही तीन दिन में साफ हो जाता। धनहीनता से बहुत कुछ कष्ट पाने पर भी इन्हें धन न रहने का कुछ दुःख न होता, सिवाय उस अवस्था के जब कि हाथ में धन न रहने से किसी दयापात्र वा किसी सज्जन का क्लेश दूर न कर सकते, अथवा कोई धनिक इनके आगे अभिमान करता। ऋण इनके जीवन का साथी

था। ऋण करना और व्यय करना। परंतु आश्चर्य यह है कि न तो मरने के समय अपने पास कुछ छोड़ मरे और न कुछ भी उचित ऋण देने बिना बाकी रह गया! इनकी इस दशा पर महाराज काशिराज ने जो दोहा लिखा था हम उसे उद्धृत कर देते हैं—

"यद्यपि आपु दरिद्र सम, जानि परत त्रिपुरार।
दीन दुखी के हेतु सोइ, दानी परम उदार॥"

लेखनशक्ति

लेखनशक्ति इनकी आश्चर्य थी, कलम कभी न रुकता। बातें होती जाती हैं कलम चला जाता है। डाक्तर राजेंद्रलाल मित्र ने इनकी यह लीला देखकर इनका नाम Writing Machine (लिखने की कल) रखा था। उर्दू अँगरेजीवालों से कई बेर बाजी लगाकर हिंदी लिखने में जीता था। सबसे बढ़कर आश्चर्य यह था कि इतना शीघ्र लिखने पर भी अक्षर इनके बड़े सुंदर और साँचे में ढले से होते थे। नागरी और अँगरेजी के अक्षर बहुत सुंदर बनते थे। इनके अतिरिक्त महाजनी, फारसी, गुजराती, बँगला और अपने बनाए नवीन अक्षर लिख सकते थे। कलम, दावात और कागजों का बस्ता सदा उनके साथ चलता था। दिन भर लिखने पर भी संतोष न था; रात को उठ उठकर लिखा करते। कई बार ऐसा हुआ कि रात को नींद खुली और कुछ कविता लिखनी हुई, कलम दावात नहीं मिली तो कोयले या ठीकरे से दीवार पर लिख दिया; सबेरे हम लोग उसकी नकल कर लाए। कितनी ही कविता स्वप्न में बनाते थे, जिनमें से कभी कभी कुछ याद आने से लिख भी लेते थे। 'प्रेमतरंग' में एक लावनी ऐसी छपी है। इस लावनी को विचारपूर्वक देखिए तो सपने की कविता और जागने पर पूर्ति

जो की है वह स्पष्ट विदित होती है। कागज कलम दावात का कुछ विशेष विचार न था। समय पर जैसी ही सामग्री मिल जाय वही सही। टूटे कलम से तथा कुछ न प्राप्त होने पर तिनके तक से लिखा करते थे, परंतु अक्षर की सुघरता नहीं बिगड़ती थी।

आशु कविता

कविताशक्ति इनकी विलक्षण थी। कई बेर घड़ी लेकर परीक्षा की गई कि चार मिनट के भीतर ही समस्यापूर्ति कर लेते थे। बड़े बड़े समाजों और बड़े बड़े दर्बारों में इस प्रकार समस्यापूर्ति करना सहज न था। इतने पर आधिक्य यह कि किसी से दबते न थे, जो जी में आता था उसे प्रकाश कर देते थे। उदयपुर महाराणाजी के दर्बार में बैठकर निम्न लिखित समस्यापूर्ति का करना कुछ सहज काम न था—

राधाश्याम सेवैं सदा वृंदावन बास करें,
रहैं निहचिंत पद आस गुरुवर के।
चाहैं धनधाम ना आराम सों है काम,
हरिचंदजू भरोसे रहैं नंदराय घर के॥
एरे नीच धनी! हमें तेज तू दिखावे कहा,
गज परवाही नाहिं होंय कबौं खर के।
होइ लै रसाल तू भलेई जगजीव काज,
आसी ना तिहारे ये निवासी कल्पतरु के॥ १॥

काशिराज के दर्बार में एक समस्या किसी ने दी थी; किसी से पूर्ति न हुई; ये आ गए। महाराज ने कहा "बाबू साहब, इस समस्या की पूर्ति आप कीजिए, किसी कवि से न हो सकी"। इन्होंने तुरंत लिखकर सुना दी, मानों पहले ही से याद थी। कवियों

को बुरा लगा। एक बोल उठे "पुराना कवित्त बाबू साहब को याद रहा होगा"। बस इन्हें क्रोध आ गया, दस बारह कवित्त तुरंत बनाते गए और कवि जी से पूछते गए "क्यों कवि जी! यह भी पुराना है न?" अंत में काशिराज के बहुत रोकने पर रुके। इनके इन्हीं गुणों से काशिराज इन पर मोहित थे। इनसे अत्यंत स्नेह करते थे। काशिराज को सोमवार का दिन घातवार था, उस दिन वह किसी से नहीं मिलते थे। एक बेर इन्होंने भी लिख भेजा कि "आज सोमवार का दिन है इससे मैं नहीं आया"। काशिराज ने उत्तर में यह दोहा लिखा—

"हरिश्चंद्र को चंद्र दिन तहाँ कहा अटकाव।
आवन को नहिं मन रह्यौ इहै बहाना भाव॥"

इसके अक्षर अक्षर से स्नेह टपकता है। सुप्रसिद्ध गट्टूलाल जी इनकी समस्यापूर्ति पर परम प्रसन्न हुए थे। वृंदावनस्थ श्रीशाह कुंदनलालजी की समस्या पर इनकी पूर्ति और इनकी समस्या पर उनकी पूर्ति देखने योग्य है। काशिराज के पौत्र के यज्ञोपवीत के उपलक्ष में "यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं" पर कई श्लोक बड़े धूमधाम के कोलाहल के समय बात की बात में बनाए थे। केवल समस्यापूर्ति ही तत्काल नहीं करते थे, ग्रंथ-रचना में भी यही दशा थी। 'अंधेर नगरी' एक दिन में लिखी गई थी। 'विजयिनी विजय-वैजयंती' टाउनहाल की सभा के दिन लिखी गई थी। बलिया का लेकचर और हिंदी का लेकचर (पद्यमय) एक दिन में लिखा गया। ऐसे ही इनके प्रायः काम समय पर ही हुआ करते थे, परंतु आश्चर्य यह है कि उतनी शीघ्रता में भी त्रुटि कदाचित् ही होती रही हो। देशहित नसों में भरा हुआ था। कदाचित् ही कोई ग्रंथ इनके ऐसे होंगे जिसमें किसी न किसी प्रकार से इन्होंने देशदशा पर

अपना फफोला न निकाला हो। कहाँ धर्मसंबंधी कविता "प्रबोधिनी" और कहाँ "बरसत सब ही बिधि बेबसी अब तौ जागौ चक्रधर"। अपने बनाए ग्रंथों में निम्नलिखित ग्रंथ इन्हें विशेष रुचते थे।

काव्य—प्रेमफुलवारी

नाटक—सत्यहरिश्चंद्र, चंद्रावली

धर्म संबंधी—तदीयसर्वस्व

ऐतिहासिक—काश्मीर कुसुम (इसमें बड़ा परिश्रम किया था)

देशदशा—भारतदुर्दशा।

एक दिन एक कवित्त बनाया, जिसके भावों के विषय में उनका विचार यह था कि ये नए भाव हैं; परंतु मैंने इन्हीं भावों का एक कवित्त एक प्राचीन संग्रह में देखा था; उसे दिखाया; इन्होंने तुरंत उस अपने कवित्त को (यद्यपि उसमें प्राचीन कवित्त से कई भाव अधिक थे) फाड़ डाला और कहा "कभी कभी दो हृदय एक हो जाते हैं। मैंने इस कवित्त को कभी नहीं देखा था, परंतु इस कवि के हृदय से इस समय मेरा हृदय मिल गया, अतः अब इस कवित्त के रहने की कोई आवश्यकता नहीं"। वह प्राचीन कवित्त यह था—

जैसी तेरी कटि है तू तैसी मान करि प्यारी,
जैसी गति तैसी मति हिय तें बिसारिए।
जैसी तेरी भौंह तैसे पन्थ पैं न दीजै पाँव,
जैसे नैन तैसिए बड़ाई उर धारिए॥
जैसे तेरे ओंठ तैसे नैन कीजिए न, जैसे,
कुच तैसे बैन मुख तें न उचारिए।
एरी पिकबैनी! सुन प्यारे मन मोहन सों,
जैसी तेरी बेनी तैसी प्रीति बिसतारिए॥ १॥

उनका कथन था कि "जैसा जोश और जैसा जोर मेरे लेख में पहले था वैसा अब नहीं है; यद्यपि भाषा विशेष प्रौढ़ और परिमार्जित होती जाती है, तथापि वह बात अब नहीं है"। वास्तव में सन् ७३-७४ के लगभग के इनके लेख बड़े ही उमंग से भरे और जोश-वाले होते थे। यह समय वह था जब कि ये प्रायः रामकटोरा के बाग में रहते थे। अस्तु, इनकी इस अलौकिक शक्ति तथा इनके ग्रंथों की रचना पर आलोचना की जाय तो एक बड़ा ग्रंथ बन जाय।

ग्रंथ-रचना

यह हम पहले कह आए हैं कि जिस समय इन्होंने हिंदी की ओर ध्यान दिया, उस समय तक हिंदी गद्य में कुछ न था। अच्छे ग्रंथों में केवल राजा लक्ष्मणसिंह का शकुंतलानुवाद छपा था और राजा शिवप्रसाद के कुछ ग्रंथ छपे थे। इन्होंने पहले पहल शृंगार-रस की कविता करनी आरंभ की और कुछ धर्म संबंधीय ग्रंथ लिखे। उस समय कुछ निज रचित और कुछ दूसरों के लिखे ग्रंथ तथा कुछ संग्रह इन्होंने छपवाए। 'कार्तिक कर्म विधि', 'मार्गशीर्ष महिमा', 'तहकीकात पुरी की तहकीकात', 'पंचकोशी के मार्ग का विचार', 'सुजान शतक', 'भागवतशंका निरासवाद' आदि ग्रंथ सन् १८७२ के पहले छपे। इसी समय 'फूलों का गुच्छा' लावनियों का ग्रंथ बनाया। उस समय बनारस में बनारसी लावनीबाज की लावनियों की बड़ी चर्चा थी। उसी समय 'सुंदरी तिलक' नामक सवैयों का एक छोटा सा संग्रह छपा। तब तक ऐसे ग्रंथों का प्रचार बहुत कम था। इस ग्रंथ का बड़ा प्रचार हुआ, इसके कितने ही संस्करण हुए, बिना इनकी आज्ञा के लोगों ने छापना और बेचना आरंभ किया, यहाँ तक कि इनका नाम

तक टाइटिल पर से छोड़ दिया। परंतु इसका उन्हें कुछ ध्यान न था। अब एक संस्करण खड्गविलास प्रेस में हुआ है जिसमें चौदह सौ के लगभग सवैया हैं; परंतु इन सवैयों का चुनाव भारतेंदुजी की रुचि के अनुसार हुआ या नहीं यह उनकी आत्मा ही जानती होगी। 'प्रेमतरंग' और 'गुलजारपुरबहार' के भी कई संस्करण हुए, जो एक से दूसरे नहीं मिलते, जिनमें से खड्गविलास प्रेस का संस्करण सबसे बढ़ गया है। इस प्रकार कुछ काल तक चलने पर ये यथार्थ में गद्य-साहित्य की ओर झुके। 'मैगजीन' के प्रकाश के अतिरिक्त पहले नाटकों ही की ओर रुचि हुई। सन् १८६८ ई० में रत्नावली नाटिका का अनुवाद आरंभ किया था, पर वह अधूरा रह गया। इससे भी पहले 'प्रभास नाटक' लिखते थे, वह भी अधूरा ही रह गया। सबसे पहला नाटक 'विद्या सुंदर', फिर 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', फिर 'धनंजयविजय' और फिर 'कर्पूरमंजरी'। 'कर्पूरमंजरी' की भाषा सरल भाषा की टकसाल कहने योग्य है। इसी समय 'प्रेमफुलवारी' भी बनी। इस समय वास्तव में ये 'प्रेम-फुलवारी' के पथिक थे, अतः इसकी कविता भी कुछ और ही हुई है। इसके पीछे 'सत्य हरिश्चंद्र' और 'चंद्रावली नाटिका' बनी और पूरे नाटकों में से सबसे अंतिम 'नीलदेवी' तथा 'अंधेर नगरी' हैं और अधूरे में 'सती प्रताप' तथा 'नवमल्लिका'। 'नवमल्लिका' को महा नाटक बनाना चाहते थे और उसके पात्रों तथा अंकों की सूची बना ली थी, परंतु मूल नाटक थोड़ा ही सा बना था कि रह गया। हिंदी नाटकों के अभिनय कराने का भी इन्होंने बहुत कुछ यत्न किया; स्वयं भी सब सामान किया था और भी कई कंपनियों को उत्साहित कर अभिनय कराया था। इनके बनाए 'सत्य हरि-श्चंद्र', 'वैदिकी हिंसा', 'अंधेरनगरी' और 'नीलदेवी' का कई बेर

कई स्थानों पर अभिनय हुआ है। उपन्यासों की ओर पहले इनका ध्यान कम था। इनके अनुरोध और उत्साह से पहले पहल 'कादंबरी' और 'दुर्गेशनंदिनी' का अनुवाद हुआ। स्वयं एक उपन्यास लिखना आरंभ किया था जिसका कुछ अंश 'कवि-वचनसुधा' में छपा भी था। नाम उसका था 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती'। इसमें वह अपना चरित्र लिखना चाहते थे। अंतिम समय में इस ओर ध्यान हुआ था। 'राधा रानी', 'स्वर्णलता' आदि का उन्हीं के अनुरोध से अनुवाद हुआ। 'चंद्रप्रभा और पूर्णप्रकाश' को अनुवाद कराके स्वयं शुद्ध किया था। 'राणा राजसिंह' को भी ऐसा ही करना चाहते थे। अनुवाद पूरा हो गया था, प्रथम परिच्छेद स्वयं नवीन लिखा, आगे कुछ शुद्ध किया था। नवीन उपन्यास 'हमीरहठ' बड़े धूम से आरंभ किया था, परंतु प्रथम परिच्छेद ही लिखकर चल बसे। इनके पीछे इसके पूर्ण करने का भार स्वर्गीय लाला श्रीनिवासदासजी ने लिया और उनके परलोक-गत होने पर पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने; परंतु संयोग की बात है कि ये भी कैलासवासी हुए और कुछ भी न लिख सके। यदि भारतेंदुजी कुछ दिनों और भी जीवित रहते तो उपन्यासों से भाषा के भंडार को भर देते; क्योंकि अब उनकी रुचि इस ओर फिरी थी। यहाँ पर हमें यह भी लिख देना आवश्यक जान पड़ता है कि इनके ग्रंथों में तीन प्रकार के ग्रंथ हैं—(१) आदि से अंत तक अपने लिखे, (२) कुछ अपना लिखा और कुछ दूसरों से लिखवाया ("नाटक" नामक पुस्तक में ऐसा ही है), (३) दूसरे से अनुवाद कराया स्वयं शुद्ध किया हुआ (गो-महिमा, चंद्रप्रभा-पूर्णप्रकाश आदि)। इनके अतिरिक्त कुछ ग्रंथ ऐसे हैं जो उन्होंने अधूरे छोड़े थे और फिर औरों के द्वारा पूरे होकर छपे। (दुर्लभ-

बंधु, सतीप्रताप, राजसिंह आदि)। एकाध ऐसे भी हैं जो उनके हुई नहीं हैं, धोखे से प्रकाशक ने उनके नाम से छाप दिए (माधुरी रूपक)। पहले को छोड़ शेष ग्रंथों की भाषा आदि में जो भिन्नता कहीं कहीं पाई जाती है वह स्वाभाविक है। 'चंद्रावली नाटिका' में अपने तरंग के अनुसार कहीं खड़ी बोली और कहीं ब्रजभाषा लिखकर कवियों की स्वेच्छाचारिता प्रत्यक्ष कर दी। इसको पूरी पूरी ब्रजभाषा में इनके मित्र राव श्रीकृष्णदेवशरणसिंह (राजा भरतपुर) ने किया था और संस्कृत अनुवाद पंडित गोपाल शास्त्री उपासनी ने। इस नाटिका के अभिनय की इनकी बड़ी इच्छा थी, परंतु वह जी ही में रह गई। एक बेर लिखने के पीछे उसे ये पुनर्वार लिखते कभी नहीं थे और प्रायः प्रूफ के अतिरिक्त पुनरावलोकन भी नहीं करते थे, तथाच प्रूफ में भी प्रायः कापी से कम मिलाते थे, यों हीं प्रूफ पढ़ जाते थे। इन कारणों से भी कहीं कहीं कुछ भ्रम हो जाना संभव है। अस्तु, फिर प्रकृत विषय की ओर चलिए। धर्म संबंधीय ग्रंथों की ओर तो इनकी रुचि बचपन ही से थी; 'कार्तिक कर्म विधि', 'कार्तिक नैमित्तिक कर्म विधि,' 'मार्गशीर्ष महिमा', 'वैशाख माहात्म्य', 'पुरुषोत्तम मास विधान', 'भक्ति सूत्र वैजयंती', 'तदीय सर्वस्व' आदि ग्रंथ प्रमाण हैं। धर्म के साथ ऐतिहासिक खोज पर भी ध्यान था, ('वैष्णवसर्वस्व' 'वल्लभीयसर्वस्व' आदि) इस इच्छा से कि नाभाजी के 'भक्तमाल' में जिन भक्तों का नाम छूटा है या जो उनके पीछे हुए हैं उनके चरित्र संग्रह हो जायँ, 'उत्तरार्ध भक्तमाल' बनाया। धर्म के विषय में उनके कैसे विचार थे इसका कुछ पता 'वैष्णवता और भारतवर्ष' से लग सकता है। धर्मविषयक जानकारी इनकी अगाध थी। एक बेर स्वयं कहते थे कि इस विषय पर यदि कोई सुननेवाला

उपयुक्त पात्र मिले तो हम भारतीय धर्म के रहस्यों पर दो वर्ष तक अनवरत व्याख्यान दे सकते हैं। संस्कृत तथा भाषा के कवियों के जीवनचरित्र भी इन्हें बहुत विदित थे। सब धर्मों की नामावली तथा उनके शाखा प्रशाखा का वृक्ष, तथा सब दर्शनों और सब संप्रदायों के ब्रह्म, ईश्वर, मोक्ष, परलोक आदि मुख्य मुख्य विषयों पर मतामत का नक्शा वह बनाते थे जो अधूरा अप्रकाशित रह गया। इस थोड़े ही लिखे ग्रंथ से उनकी जानकारी और विद्वत्ता का पूर्ण परिचय मिलता है। यह सब अधूरे और अप्रकाशित ग्रंथ 'खड्ग-विलास प्रेस' सेवन कर रहे हैं, संभव है कि किसी समय रसिक समाज का कौतूहल निवारण कर सकें। इतिहास और पुरातत्त्वानुसंधान की ओर इनका पूरा पूरा ध्यान रहा। जिस विषय को लिखा पूरी खोज और पूरे परिश्रम के साथ लिखा। 'काश्मीर कुसुम', 'बादशाह दर्पण', 'कवियों के जीवनचरित्रादि' इसके प्रमाण हैं। भाषारसिक डाक्तर ग्रिअर्सन ने इनके इस गुण पर मोहित होकर इन्हें स्पष्ट ही "The only critic of Northern India" लिखा है। इतिहास की ओर इनका इतना अधिक झुकाव था कि नाटक, कविता तथा धर्मसंबंधी ग्रंथादि में जहाँ देखिएगा कुछ न कुछ इसका लपेट अवश्य पाइएगा। कविता के विषय में हम ऊपर कई स्थलों पर बहुत कुछ लिख चुके हैं। यहाँ केवल इतना ही लिखना चाहते हैं कि शृंगार-प्रधान भगवल्लीला के अतिरिक्त इनका उरझान जातीय गीत की ओर अधिक था। यदि विचार कर देखा जाय तो क्या धर्मसंबंधी, क्या राजभक्ति (राजनैतिक), क्या नाटक क्या स्फुट प्राय: सभी चाल की कविता में जातीयता का अंश वर्तमान मिलेगा। हृदय का जोश उबला पड़ता है, विषाद की रेखा अलक्षित भाव से वर्तमान है, नित्य के ग्राम्य गीत (कजली,

होली, आदि) में भी जातीय संगीत प्रचलित करना चाहते थे। "काहे तू चौका लगाए जयचँदवा", "टूटे सोमनाथ के मंदिर केहू लागै न गुहार", "भारत में मचो है होरी", "जुरि आए फाके मस्त होरी होय रही", आदि प्रमाण हैं। इस विषय में एक सूचना भी दी थी कि ऐसे जातीय संगीत लोग बनावें, हम इनका संग्रह छापेंगे। उर्दू की स्फुट कविता के अतिरिक्त हास्यमय "कानून ताजीरात शौहर" बनाया, बँगला में स्फुट कविता के अतिरिक्त "विनोदिनी" नाम की पुस्तिका बनाई थी, संस्कृत में "श्रीसीतावल्लभ-स्तोत्र" आदि बनाए, अँगरेजी में एज्यूकेशन कमीशन की साक्षी ग्रंथ रूप में लिखी (स्फुट कविता मेगजीन में छपी है), भक्तसर्वस्व गुजराती अक्षरों में छपा, गुजराती कविता इनकी बनाई "मानसोपायन" में छपी है, पंजाबी कविता "प्रेमतरंग" में छपी है, महाराष्ट्री में "प्रेमयोगिनी" का एक अंक ही लिखा है। शरीर की रुग्नता के कारण एक वर्ष कार्तिकस्नान नहीं कर सके तो नित्य कुछ कविता बनाई, उसका नाम "कार्तिकस्नान" रखा। राजनैतिक, सामाजिक तथा स्फुट विषयों पर ग्रंथ और लेख जो कुछ इन्होंने लिखे थे और उन पर समय समय पर जो कुछ आंदोलन होता रहा या उनका जो प्रभाव हुआ उसका वर्णन इस छोटे से लेख में होना असंभव है। हम तो इस विषय में इतना भी लिखना नहीं चाहते थे, किंतु हमारे कई मित्रों ने आग्रह करके लिखवाया। वास्तव में यह विषय ऐसा है कि उनके प्रत्येक ग्रंथ का पृथक् पृथक् वर्णन किया जाय कि वे कब बने, क्यों बने, कैसे बने, क्या उनका प्रभाव हुआ, कितने रूप उनके बदले, कितने संस्करण हुए और उनमें क्या क्या परिवर्तन हुए और अब किस रूप में हैं तब पाठकों को पूरा आनंद आ सकता है। अस्तु, हमने मित्रों के आग्रह से आभास मात्र दे दिया।

हिंदी तथा वैष्णव परीक्षा

हिंदी की एक परीक्षा इन्होंने प्रचलित की थी जो थोड़े ही दिन चलकर बंद हो गई। इस पर एक रिपोर्ट इन्होंने राजा शिवप्रसाद इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स के नाम लिखी थी जो देखने योग्य है। उस रिपोर्ट से इनके हृदय की उमंग और हिंदी यूनीवर्सिटी बनाने की वासना तथा देशवासियों के निरुत्साह से उदासीनता प्रत्यक्ष झलकती है। एक परीक्षा वैष्णव ग्रंथों की भी जारी करना चाहा परंतु कुछ हुआ नहीं। उसकी सूचना यहाँ प्रकाशित होती है।

श्रीमद्वैष्णवग्रंथों में

परीक्षा

वैष्णवों के समाज ने निम्नलिखित पुस्तकों में तीन श्रेणियों में परीक्षा नियत की है और १५०) प्रथम के हेतु और १००) द्वितीय के हेतु और ५०) तृतीय के हेतु पारितोषिक नियत है। जिन लोगों को परीक्षा देनी हो, काशी में श्रीहरिश्चंद्र गोकुलचंद्र को लिखें। नियत परीक्षा तो सं० १९३२ के वैशाख शुक्ल ३ से होगी पर बीच में जब जो परीक्षा देना चाहे दे सकता है।

श्रेणी	श्रीनिंबार्क	श्रीरामानुज	श्रीमध्व	श्रीविष्णुस्वामि
प्रविष्ट	वेदांत-रत्नमंजूषा, वेदांत-रत्न-माला, सुरद्रुम-मंजरी	यतींद्रमतदीपिका, शत-दूषणी	वेदांत-रत्न-माला, तत्त्व-प्रकाशिका	षोड़श ग्रंथ, षोड़श वाद, संप्रदाय-प्रदीप

श्रेणी	श्रीनिंबार्क	श्रीरामानुज	श्रीमध्व	श्रीविष्णुस्वामि
प्रवीण	वेदांत-कौस्तुभ और प्रभा, षोड़शी-रहस्य, पंचकालानुष्ठान	श्रुति-सूत्र-तात्पर्य्य-निर्णय, प्रस्थान-त्रय का भाष्य	भाष्य सुधा, न्यायामृत	विद्वन्मंडन, स्वर्णसूत्र, निबंध आवर्णभंग वाप्रहस्त, पंडितकरभिंदिपाल, बहिर्मुख मुख-मर्द्दन
पारंगत	अध्यास गिरिवज्रसेतुका, जाह्नवी-मुक्तावली	वेदांताचार्य्य का लघु भाष्य, बृहच्छतदूषणी	सहस्रदूषिणी	अणु भाष्य, भाष्य-प्रदीप, भाव्यप्रकाश, प्रमेय रत्नार्णव*

भारतेंदु की पदवी

इनके गुणों से मोहित होकर इनका कैसा कुछ मान देशीय और विदेशीय सज्जन इनके सामने तथा इनके पीछे करते थे यह लिखने की आवश्यकता नहीं। हम केवल दो चार बातें इस विषय में लिख देना चाहते हैं। सन् १८८० ई० के 'सारसुधानिधि' में एक लेख छपा कि इन्हें 'भारतेंदु' की पदवी देनी चाहिए। इसको एक स्वर से सारे देश ने स्वीकार कर लिया और सब लोग इन्हें भारतेंदु लिखने लगे, यहाँ तक कि भारतेंदुजी इनका उपनाम ही हो गया। इस पदवी को न केवल इस

* यदि रश्मि में परीक्षा दे तो २००) रु० पारितोषिक मिले।

देश के लोगों ही ने स्वीकार किया, वरंच योरप के लोग भी बराबर इन्हें भारतेंदु लिखने लगे। विलायत के विद्वान् इन्हें मुक्तकंठ से Poet Laureate of Northern India (उत्तरीय भारत के राज-कवि) मानते और लिखते थे। एज्यूकेशन कमीशन के साक्षी नियुक्त हुए। लार्ड रिपन के समय में राजा शिवप्रसाद से बिगड़ने पर हजारों हस्ताक्षर से गवर्नमेंट की सेवा में मेमोरियल गया था कि इनको लेजिस्लेटिव कौंसिल का मेंबर चुनना चाहिए। बलिया-निवासियों ने इनके बनाए सत्यहरिश्चंद्र नाटक का अभिनय किया था, उस समय इन्हें भी बुलाया था। बलिया में इनका बड़ा सत्कार हुआ था, इनका स्वागत धूमधाम से किया गया था, ऐड्रेस दिया गया था। इनके इस सम्मान में स्वयं जिलाधीश राबर्ट्स साहब भी सम्मिलित थे। इनकी बीमारियों पर कितने ही स्थानों पर प्रार्थनाएँ की गई थीं, आरोग्य होने पर कितने ही जलसे हुए थे, कितने 'कसीदे' बने थे और ऐसी ही कितनी ही बातें हैं।

नए चाल के पत्र

हिंदी में कितने ही चाल के पत्र, कितनी ही चाल की नई बातें इन्होंने चलाईं। प्रति वर्ष एक छोटी सी सादी नोट बुक छपवाकर अपने मित्रों में बाँटते थे जिस पर वर्ष की अँगरेजी जंत्री रहती थी और "हरिश्चंद्र को न भूलिए," "Forget me not" छपा रहता तथा; और भी तरह तरह के प्रेम तथा उपदेश-वाक्य छपे रहते थे। जब से इन्होंने १०० वर्ष की जंत्री (वर्षमालिका) छपवाकर प्रकाशित की तब से इसका छपना बंद हुआ। इस नोटबुक की कमिश्नर कारमाइकल साहब ने बड़ी सराहना की है। पत्रों के

लिये प्रत्येक वार के अनुसार जुदा जुदा रंग के कागज पर जुदा जुदा शीर्षक छापकर काम में लाते थे। यथा—

रविवार को गुलाबी कागज पर—

"भक्त कमल दिवाकराय नमः"

"मित्र पत्र बिनु हिय लहत छिनहूँ नहिं विश्राम।
प्रफुलित होत न कमल जिमि बिनु रवि उदय ललाम॥"

सोमवार को श्वेत कागज पर—

"श्रीकृष्णचंद्राय नमः"

"बंधुन के पत्रहिं कहत अर्ध मिलन सब कोय।
आपहु उत्तर देहु तौ पूरो मिलनो होय॥"

सोमवार का यह दोहा भी छपवाया था—

"ससिकुल कैरव सोम जय, कलानाथ द्विजराज।
श्री मुखचंद्र चकोर श्री, कृष्णचंद्र महराज॥"

मंगल को लाल कागज पर—

"श्रीवृंदावनसार्वभौमाय नमः"

"मंगलं भगवान् विष्णु मंगलं गरुड़ध्वजम्।
मंगलं पुंडरीकाक्षं मंगलायतनं हरिम्॥"

बुध को हरे कागज पर—

"बुधराधितचरणाय नमः"

"बुध जन दर्पण में लखत दृष्ट वस्तु को चित्र।
मन अनदेखी वस्तु को यह प्रतिबिंब विचित्र॥"

गुरुवार को पीले कागज पर—

"श्रीगुरु गोविंदाय नमः"

"आशा अमृत पात्र प्रिय विरहातप हित छत्र।
वचन चित्र अवलंबप्रद कारज साधक पत्र॥"

शुक्रवार को सफेद कागज पर—

"कविकीर्तियशसे नमः"

"दूर रखत कर लेत आबरन हरत रखि पास ।
जानत अंतर भेद जिय पत्र पथिक रसरास ॥"

عقدہ کشا ہے حال دل دوسدار ہے
تقریر کی تصویر ہے ھجرت میں یار ہے

शनिवार को नीले कागज पर—

"श्रीकृष्णाय नमः"

"और काज सनि लिखन मैं होइ न लेखनि मंद ।
मिलै पत्र उत्तर अवसि यह बिनवत हरिचंद ॥"

इनके अतिरिक्त और भी प्रेम तथा उपदेशवाक्य छपे हुए कागजों पर पत्र लिखते थे । इनके सिद्धांत वाक्य अर्थात् माटो निम्नलिखित थे—

(१) "यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः"
(२) "भक्त्या त्वनन्यया लभ्यो हरिरन्यद्विडंबनम्"
(३) "The Love is heaven and heaven is love"

इन्होंने सिद्धांत चिह्न अर्थात् मोनोग्राम भी बनाए थे ।

लिफाफों के ऊपर पत्र के आशय को प्रगट करनेवाले वाक्यों के 'वेफर' छपवा रखे थे, जिन्हें यथोचित साट देते थे । इन पर "उत्तर शीघ्र", "जरूरी", "प्रेम" आदि वाक्य छपे थे । ऐसी कितनी ही तबीयतदारी की बातें रात दिन हुआ करती थीं ।

स्वभाव

स्वभाव इनका अत्यंत कोमल था, किसी का दुःख देख न सकते थे। सदा प्रसन्न रहते थे। क्रोध कभी न करते। परंतु जो कभी क्रोध आ जाता तो उसका ठिकाना भी न था। जिन महाराज काशिराज का इन पर इतना स्नेह था और जिन पर ये पूर्ण भक्ति रखते थे, तथाच जिनसे इन्हें बहुत कुछ आर्थिक सहायता मिलती थी, उनसे एक बात पर बिगड़ गए और फिर यावज्जीवन उनके पास न गए। महारानी विक्टोरिया के छोटे बेटे ड्यूक आफ आलबेनी की अकाल-मृत्यु पर इन्होंने शोक-समाज करना चाहा। साहब मैजिस्ट्रेट से टाउनहाल माँगा। उन्होंने आज्ञा दी, सभा की सूचना छपकर बँट गई, परंतु दिन के दिन राजा शिवप्रसाद ने साहब मैजिस्ट्रेट से न जाने क्या कहा-सुना कि उन्होंने सभा रोक दी और टाउनहाल देना अस्वीकार किया; लोग आ आकर फिर गए। लोगों को बड़ा क्रोध हुआ और दूसरे दिन बनारस-कालिज में कुछ प्रतिष्ठित लोगों ने एक कमेटी की जिसमें निश्चय हुआ कि शोक-समाज कालिज में हो। मैजिस्ट्रेट की कार्रवाई की रिपोर्ट गवर्नमेंट में की जाय और राजा शिवप्रसाद को किसी सभा सोसाइटी में न बुलाया जाय। साहब मैजिस्ट्रेट को समाचार मिला। उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की और आग्रह करके सभा टाउनहाल में कराई। राजा साहब बिना निमंत्रण भी उस सभा में आए और उन्होंने कुछ कहना चाहा, परंतु लोगों ने इतना कोलाहल किया कि वह कुछ कह न सके। इस पर चिढ़कर राजा साहब ने काशिराज से इनको पत्र लिखवाया कि आपने जो राजा साहब का अपमान किया यह मानो हमारा अपमान हुआ, इसका कारण क्या है? महाराज का अदब करके इसका उत्तर तो कुछ न लिखा, परंतु जुबानी कहला भेजा कि

महाराज के लिये जैसे हम वैसे राजा साहब, हमारे अपमान से महाराज ने अपना अपमान न माना और राजा साहब के अपमान को अपना समझा, तो अब हम आपके दरबार में कभी न आवेंगे। यद्यपि ये अत्यंत ही नम्र स्वभाव के थे और अभिमान का लेश भी न था, परंतु जो कोई इनसे अभिमान करता तो ये सहन न कर सकते। शील इनका सीमा से बढ़ा हुआ था। कोई कितनी भी हानि करे, ये कभी कुछ न कह सकते और न उसको आने से रोकते। एक महापुरुष प्राय: चीजें उठा ले जाया करते। जब पकड़े जाते तब दुर्गति करके इनके अनुज बाबू गोकुलचंद्र ड्योढ़ी बंद कर देते। परंतु जब भारतेंदुजी बाहर से आने लगते यह साथ ही चले आते। यों ही बीसों बेर हुआ, अंत में भारतेंदुजी ने भाई से कहा कि "भैया, तुम इनकी ड्योढ़ी न बंद करो, यह शख्स कद्र करने के योग्य है, इसकी बेहयाई ऐसी है कि इसे कलकत्ता के 'अजायबखाने' में रखना चाहिए।" निदान फिर उनके लिये अविमुक्त द्वार ही रहा। इन्होंने अपने स्वभाव को एक कवित्त में स्वयं कहा है, उसी को हम उद्धृत करते हैं। इस पर विचार करने से उनकी प्रकृति तथा चरित्र का पूरा पता लग सकता है—

सेवक गुनीजन के चाकर चतुर के हैं,
कविन के मीत चित हित गुन गानी के।
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों,
हरीचंद नगद दमाद अभिमानी के॥
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह नेही
नेह के दिवाने सदा सूरत-निवानी के।
सरबस रसिक के सुदास दास प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के॥

हमारे इस लेख में ऊर्ध्वोक्त स्वभावों का बहुत कुछ परिचय पाठक पा चुके हैं। गुनीजन की सेवा, चतुरों का सम्मान, कवियों की मित्रता, नम्रता तथा उग्रता, लापरवाही आदि गुणों के विषय में कुछ विशेष कहना व्यर्थ है। अब केवल उक्त पद के अंतिम भाग की समालोचना शेष है। "दिवाने सदा सूरत-निवानी के" यही एक विषय है जिस पर तीव्र आलोचना हो सकती है और इसी को कोई भूषण तथा कोई दूषण की दृष्टि से देखते हैं, तथाच इनके जीवन-चरित्ररचना में यही एक प्रधान बाधक विषय रहा। वास्तव में ऐसा कोई सभ्य देश नहीं है जो सौंदर्योपासक न हो, परंतु इसकी मात्रा का कुछ बढ़ जाना ही भूषण से दूषण तथा मनुष्य को कष्ट-कर होता है, और गुलाब में काँटे की तरह खटकता है। इस विषय को सोचकर उनके प्रेमी उनके चरित्र-संकलन में कुछ संकुचित होते हैं, परंतु उस महानुभाव उदार चरित्र को इसका कुछ भी संकोच न था, क्योंकि शुद्ध हृदय, शुद्ध प्रेम जो जी में आया सच्चे जी से किया। हम लोग आगा पीछा जितना चाहें करें, परंतु उन्होंने जैसे ही यहाँ इन वाक्यों को साभिमान कहा है, वैसे ही इसके भीतर जो कुछ दुखदायकता वा दूषण है उसे भी इस दोहे में स्पष्ट कह दिया है—

"जगत जाल में नित बँध्यो परयो नारि के फंद।
मिथ्या अभिमानी पतित झूठो कवि हरिचंद॥"

अस्तु, इस विषय में हम केवल एक घटना का उल्लेख करके इसको यहीं छोड़ेंगे। एक दिन अपने कुछ अंतरंग मित्रों के साथ बैठे थे और एक वारविलासिनी भी वर्तमान थी। उसने कुछ ऐसे हावभाव कटाक्ष से देखा कि इन्हें कुछ नवीन भाव स्फुरण हुआ और तुरंत एक कविता बनाई, और उसे उन मित्रों को सुनाकर कहा कि

"हम इन सभों का सहवास विशेष कर इसी लिये करते हैं। कहिए यह सच्चा मजमून कैसे लब्ध हो सकता था ?" निदान जो कुछ हो, उनके इस आचरण का भला या बुरा फल उन्हीं के लिये था, दूसरों को उससे कोई लाभ नहीं। वह संसार को क्या समझते थे और उनके आचरण किस अभिप्राय के होते थे इसे उन्हीं के वाक्य कुछ स्पष्ट कर सकते हैं। "प्रेमयोगिनी" के नांदी-पाठ में कहते हैं—

"जिन तृन सम किय जानि जिय, कठिन जगत जंजाल।
जयतु सदा सो ग्रंथ कवि, प्रेमजोगिनी बाल॥"

आगे चलकर उसी नाटिका में सूत्रधार कहता है—

"क्या सारे संसार के लोग सुखी रहें और हम लोगों का परम-बंधु, पिता, मित्र, पुत्र, सब भावनाओं से भावित, प्रेम की एक मात्र मूर्ति, सौजन्य का एक मात्र पात्र, भारत का एक मात्र हित, हिंदी का एक मात्र जनक, भाषा नाटकों का एक मात्र जीवनदाता हरिश्चंद्र ही दुखी हो ? (नेत्र में जल भरकर) हा सज्जन-शिरोमणि ! कुछ चिंता नहीं; तेरा तो बाना है कि कितना भी दुःख हो उसे सुख ही मानना। लोभ के परित्याग के समय नाम और कीर्ति तक का परित्याग कर दिया है और जगत् से विपरीत गति चल के तूने प्रेम की टकसाल खड़ी की है। क्या हुआ जो निर्दय ईश्वर तुझे प्रत्यक्ष आकर अपने अंक में रखकर आदर नहीं देता और खल लोग तेरी नित्य एक नई निंदा करते हैं और तू संसारी वैभव से सुचित नहीं है; तुझे इससे क्या; प्रेमी लोग जो तेरे हैं और तू जिन्हें सरवस है, वे जब जहाँ उत्पन्न होंगे तेरे नाम को आदर से लेंगे और तेरी रहन सहन को अपनी जीवनपद्धति समझेंगे। (नेत्र से आँसू गिरते हैं)

मित्र ! तुम तो दूसरों का अपकार और अपना उपकार दोनों भूल जाते हो, तुम्हें इनकी निंदा से क्या ? इतना चित्त क्यों क्षुब्ध करते हो ? स्मरण रखो ये कीड़े ऐसे ही रहेंगे और तुम लोकवहिष्कृत होकर भी इनके सिर पर पैर रखके बिहार करोगे। क्या तुम अपना वह कवित्त भूल गए—'कहैंगे सबैही नैन नीर भरि भरि पाछें प्यारे हरिचंद की कहानी रहि जायगी' ? मित्र ! मैं जानता हूँ कि तुम पर सब आरोप व्यर्थ है।"

अस्तु, अब इस विषय में अधिक न लिखकर इसका विचार हम सहृदय पाठकों ही पर छोड़ते हैं। अब अंतिम पद पर "सरबस रसिक के, सुदास दास प्रेमिन के सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा-रानी के" ध्यान दीजिए। जिसका यह साभिमान वाक्य है—

"चंद टरै सूरज टरै टरैं जगत के नेम।
पै दृढ़ श्री हरिचंद को टरै न अविचल प्रेम॥"

उसकी रसिकता और प्रेम का क्या कहना है। इनका हृदय प्रेमरंग से रँगा हुआ था। प्रायः देखा गया है कि जिस समय उनके हृदय में प्रेम का आवेश आता था, देहानुसंधान न रह जाता। उस प्रेमावस्था में कितने पदार्थ लोग इनके सामने से उठा ले गए हैं, इन्हें कुछ भी सुधि नहीं। आहा ! सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा-रानी के, इसमें कितनी धृष्टता और कितना अदब भरा हुआ है ! इसे लिखने का अधिकार उसी को हो सकता है जो पुकारकर यह कहता हो—

"श्रीराधा माधव युगल प्रेम रस का अपने को मस्त बना,
पी प्रेम पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मज़ा।
इतबार न हो तो देख न ले क्या हरीचंद का हाल हुआ;
पी प्रेम पियाला भर भर कर कुछ इस मै का भी देख मज़ा॥"

निदान इनकी रसिकता, अनन्यता तथा भगवद्भक्ति इनके प्रत्येक पद और ग्रंथ से झलकती है तथाच इस विषय में ऊपर भी लिखा जा चुका है, अत: यहाँ इतने ही पर विश्राम लेते हैं।

संतति

संतति इन्हें तीन हुईं, दो पुत्र और एक कन्या। पुत्र दोनों शैशवावस्था ही में जाते रहे। कन्या के ईश्वरानुग्रह से पाँच पुत्र विद्यमान हैं परंतु आप स्वर्ग-गामिनी हो गईं।

रोग

भारत-गौरव, हिंदूपति, मेवाड़-नरेश महाराणा सज्जनसिंह का इन पर अत्यंत स्नेह था और वह बहुत काल से इनसे मिलने को उत्सुक थे। अत: उनके आग्रह और श्रीनाथजी के दर्शन की लालसा से सन् १८८२ ई० में उदयपुर गए। वहाँ से लौटने पर बीमार हुए, श्वास कास और ज्वर का वेग हुआ, जीवन का संशय हो गया। इसी बीच एक दिन बड़े जोर से हैजा हुआ, सर्वांग ऐंठ गया, घड़ी साइत का ठिकाना न रहा; परंतु अभी परमेश्वर को इनसे कुछ कार्य कराने शेष थे, इस समय कराल काल से छुट्टी पाई, इसी समय "नाटक" नामक ग्रंथ की पूर्ति की, उसके समर्पण में स्वयं लिखते हैं—

"नाथ! आज एक सप्ताह होता कि मेरे इस मनुष्यजीवन का अंतिम अंक हो चुकता। किंतु न जाने क्या सोचकर और किस पर अनुग्रह करके उसकी आज्ञा नहीं हुई.......................
यद्यपि संसार के कुरोगों से मन प्राण तो नित्य ग्रस्त थे ही, किंतु चार महीने से शरीर से भी रोगग्रस्त तुम्हारा—हरिश्चंद्र—......"

रोग पूरा पूरा निवृत्त न होने पाया, चलने फिरने लगे कि फिर शरीर की चिंता कौन करता है, अविरल लिखने पढ़ने का परिश्रम चलने लगा। योंही कुछ दिनों लस्टम फस्टम चले, कि मरने से एक वर्ष पहले श्वास और खाँसी का वेग बढ़ा; समझा कि दमा हो गया है। शरीर नित्य नित्य क्षीण होने लगा, यहाँ तक कि थोड़े दिन पहले चलने फिरने की शक्ति इतनी घट गई कि पालकी पर बाहर निकलते थे। लोग दमा के धोखे में रह गए, वास्तव में क्षय रोग हो गया था। अधिक पान खाने के कारण कफ के साथ रक्त का तो पता लगता न था, केवल श्वास कास की दवा होती थी। निदान अंतिम समय बहुत निकट आने लगा। मरने से महीना डेढ़ महीना पहले इनका हृदय कुछ शांत रस की ओर अधिक फिर गया था। "हरिश्चंद्र चंद्रिका" की अंतिम संख्याओं में प्रकाशित शांतरस की कविता सब इसी समय की बनी हुई हैं। जहाँ तक मुझे स्मरण आता है, निम्नलिखित पद के पीछे कोई कविता नहीं की—

"डंका कूच का बज रहा मुसाफिर जागो रे भाई।
देखो लाद चले पंथी सब तुम क्यों रहे भुलाई॥
जब चलना ही निहचै है तो लै किन माल लदाई।
हरीचंद हरि पद बिनु नहिं तो रहि जैहो मुँह बाई॥"

इसी समय प्रायः नित्य ही, वह पद्माकर कवि का निम्नलिखित कवित्त कहते और घंटों तक रोते रह जाते थे,—

"व्याध हूँ ते बिहद, असाधु हौं अजामिल लौं,
ग्राह तें गुनाही, कहो तिन में गिनाओगे।
स्योरी हौं, न शूद्र हौं, न केवट कहूँ को त्यों,
न गौतमी तिया हौं जापै पग धरि आओगे॥

राम सों कहत पदमाकर पुकारि तुम,
मेरे महापापन को पार हूँ न पाओगे।
झूठो ही कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी,
(नाथ!) हौं तो साँचो हूँ कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे"॥

मृत्यु

धीरे धीरे, सन् १८८४ समाप्त हुआ। सन् १८८५ आया। दूसरी जनवरी को एकाएक भयानक ज्वर आया, ज्वर आठ पहर भोगकर उतरा कि पसली में दर्द उठा, इस दर्द में डाक्तर लोग जीवन का संशय करते थे, परंतु राम राम करते यह दर्द दूर हुआ, फिर आशा हुई। तीसरे दिन खाँसी बड़े जोर से आरंभ हुई, बलगम का बड़ा वेग रहा, कफ में रुधिर दिखाई पड़ा, बड़ा कष्ट हुआ, परंतु इससे भी छुटकारा मिला। ता० ६ जनवरी को सबेरे शरीर बहुत स्वस्थ रहा। जनाने से मजदूरिन खबर पूछने आई, आपने हँसकर कहा "हमारे जीवन नाटक का प्रोग्राम नित्य नया नया छप रहा है; पहले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खाँसी की सीन हो चुकी, देखैं लास्ट नाइट कब होती है"। उसी दिन दोपहर को एक दस्त आया, काला मल गिरा, उसी समय से कुछ श्वास बढ़ा। बस उसी समय से उन्होंने संसार की ओर से मन को फेरा, घर का कोई सामने आता तो मुँह फेर लेते। दो बजे दिन को अपने भ्रातुष्पुत्र कृष्णचंद्र को बुलाया। कहा, अच्छे कपड़े पहिनकर आओ। कपड़े पहिनकर आने पर कहा "नहीं, इससे भी अच्छे कपड़े पहिन आओ।" तुरंत आज्ञा पालन हुई; आप आरामकुर्सी पर लेटे और बच्चे को गोद में बिठाकर अंगूर खिलाए, फिर दोनों हाथ उसके सिर पर रख कुछ देर तक ध्यानावस्थित रहे और तब

उसे विदाकर कहा "जाओ खेलो"। इसके पीछे सांसारिक माया से कुछ वास्ता न रखा। श्वास बढ़ता ही गया, बेचैनी से नींद आने की इच्छा वैद्य डाक्तरों से प्रगट करते रहे। धीरे धीरे रात को नौ बज गए—समय आन पहुँचा—एकाएकी पुकार उठे "श्रीकृष्ण! राधाकृष्ण! हे राम! आते हैं, मुख दिखलाओ"। कंठ कुछ रुकने लगा, कुछ दोहा सा कहा, परंतु स्पष्ट न समझाई दिया; केवल इतना समझ में आया "श्रीकृष्ण......सहित स्वामिनी"—बस गरदन झुक गई, पौने दस बजे इस भारत का मुखोज्ज्वलकारी भारतेंदु अस्त हो गया, चारों ओर अंधकार छा गया। बस, लेखनी अब उस दुःखमय कथा को लिख नहीं सकती।

शोकप्रकाश

भारतवर्ष के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक हाहाकार मच गया। काशी का तो कहना ही क्या था, पेशावर से लेकर नैपाल तक और कलकत्ते से लेकर बंबई तक सैकड़ों ही स्थानों में शोक-समाज हुए। शोकप्रकाशक तार और पत्रों का ढेर लग गया, कितने ही समाचारपत्रों की ओर से अनियत पत्र प्रकाशित हुए, कितने ही शोकपत्र जन साधारण की ओर से वितरित हुए। हिंदी समाचारपत्रों का तो कहना ही क्या था, महीनों तक कितनों ही ने शोकचिह्न धारण किया; कितने ही शोकलेख, कितनी ही शोक-कविता, कितनी ही शोकसमस्या छपीं, कितने ही चित्र छपे, कितने ही जीवनचरित्र छपे। अँगरेजी, उर्दू, बँगला, गुजराती, महाराष्ट्री के कोई पत्र नहीं थे जिन्होंने हार्दिक शोक प्रकाश न किया हो। चारों ओर कितने ही दिनों तक शोक ही शोक छाया रहा। भारत-वर्ष में बहुतेरे बड़े बड़े लोग मरे और बहुत कुछ लोगों ने किया,

परंतु ऐसा हार्दिक शोक आज तक किसी के लिये प्रकाशित नहीं हुआ। शत्रु भी इनकी मृत्यु पर अश्रुवर्षण करते थे, मित्रों की कौन कहे। राजा शिवप्रसाद से आजन्म इनसे झगड़ा चला, परंतु जिस समय वह मातमपुर्सी को आए थे आँखों में आँसू भरे हुए थे, और कहते थे कि "हाय! हमारा मुकाबिला करनेवाला उठ गया!" पंडित लोग यह कहकर रोते थे कि क्या फिर वैश्यकुल में कोई ऐसा जन्मेगा जिससे हम लोग धर्मशास्त्र की व्यवस्था पर सलाह लेने जायँगे! निदान इनका शोक अकथनीय था। इस विषय में लाहौर के "मित्रविलास" ने जो कुछ लिखा था उसका कुछ अंश हम प्रकाशित किए देते हैं, इसी से उस समय के शोक का पता लग जायगा—

'हाय हरिश्चंद्र! तू हम लोगों को छोड़ जायगा इस बात का तो किसी को ध्यान मात्र भी न था, और अभी तक भी तेरा नाम स्मरण करके यह निश्चय नहीं होता है कि कलम दावात लिए, 'बस्ता' सामने धरे उसमें से कागज रूपी बिखड़े रत्नों को हास्यमुख के साथ एक लड़ी में पिरो रहा है और सोच रहा है कि किस आशावान की झोली इससे भरूँ! 'गोदड़ो में लाल' सुना करते थे परंतु देखे तेरे ही पास। हा! अब कौन उनको परख सकेगा और कौन उनकी माला बनावेगा?

"प्यारे हरिश्चंद्र! काशी में, जहाँ और बड़े बड़े तीर्थ हैं, वहाँ तू भी एक तीर्थ स्वरूप ही था। काशी जी में जाकर और तीर्थ पीछे स्मरण होते हैं, तू पहले मन में स्थान कर लेता था। और तीर्थों पर पाधा पुरोहित घाटियों को प्रसन्न करने, अपनी नामवरी कमाने वा दान दक्षिणा देने को यात्री लोग जाते हैं, पर तेरे पास सब भिक्षा ही के लिये आते थे, और किसकी भिक्षा?

प्रेम की भिक्षा, दर्शन की भिक्षा, सत्परामर्श की भिक्षा ! तेरे दर्वाजे से कभी कोई विमुख नहीं गया; तू इस संसार में इसलिये नहीं आया था कि अपना कुछ बना जावे, किंतु इसलिये आया था कि बना बनाया भी दूसरों को सौंप दे और उनका घर भरे। तेरे चरित्रों से स्पष्ट दिखाई देता था कि तू हर घड़ी इस संसार को छोड़ने ही का ध्यान रखता था। और इसी लिये किसी संसारी लोगों की दृष्टि में तेरी अपनी वस्तु की तूने कभी रत्तीमात्र भी पर्वा न की। यश कमाने तू आया था, वह तुझसा दूसरा कौन कमावेगा। शेष सब पदार्थों का आना जाना तूने तुल्य और एक सा समझ रखा था।

"प्यारे हरिश्चंद्र ! आपके यह संसार त्यागने पर लोग शोक-प्रकाश कर रहे हैं। परंतु हम पर यह सामर्थ्य नहीं है। आपके हमें छोड़कर चले जाने से जो कुछ हम पर बीत रही है, हम जानते नहीं कि तुम्हें किस नाम से पुकारें, हमें जो कुछ शोक है वह ऐसा पर्दों के पर्दों में छिपा हुआ है कि उसका प्रकाश करना हमारे लिये असंभव है। यह महाशय भाषा के उत्तम कवि थे इस प्रकार के वाक्य लिखकर जो लोग आपके बिछोड़े पर शोक प्रगट करते हैं, वह हमारे कलेजे के टुकड़े उड़ाते हैं, वह हमारे प्यारे हरिश्चंद्र की हतक करते हैं, हमसे यह सहन नहीं हो सकता। हम कहते हैं कि जो लोग प्यारे भारतेंदु के विषय में इतना ही जानते हैं वह चुप रहें, ऐसे फीके वाक्य कहकर हरिश्चंद्र और भारतेंदु के चकोरों को दुःख न दें।"

इनके स्मारक-चिह्न स्थापन की चर्चा चारों ओर होने लगी, परंतु जैसा हतभाग्य यह देश है वैसा कोई देश नहीं। चार दिन का हौसला यहाँ होता है, फिर तो कोई ध्यान भी नहीं रहता। फिर

भी यह हरिश्चंद्र ही थे कि जिनके स्मारक की कुछ चर्चा तो हुई। नाम मात्र के लिये कानपूर और अलीगढ़ भाषासंवर्धिनी सभा में "हरिश्चंद्र पुस्तकालय" स्थापित हुए परंतु वास्तविक स्मारक उदयपुर में "हरिश्चंद्रार्य विद्यालय" हुआ जो आज तक वर्तमान है और जिसमें कुछ द्रव्य भी संचित है कि जिससे उसके चले जाने की आशा है। काशी में इनका स्थापित जो स्कूल है वह उस समय "चौक स्कूल" कहलाता था, परंतु इनकी मृत्यु पर उसके पारितोषिक वितरण के उत्सव में राजा शिवप्रसाद ने प्रस्ताव किया कि 'इस स्कूल का नाम अब से इसके संस्थापक बाबू हरिश्चंद्र के स्मारक स्वरूप "हरिश्चंद्र स्कूल" होना चाहिए। सभापति मिस्टर ऐडम्स (कलेक्टर) ने इसका अनुमोदन किया और तब से यह स्कूल "हरिश्चंद्र एडेड-स्कूल" कहलाता है। हिंदी समाचार पत्रों की ओर से "मित्रविलास" के प्रस्ताव पर इनके नाम से "हरिश्चंद्र संवत्" चला। उदयपुर में कई वर्ष तक इनके श्राद्ध-समय में "हरिश्चंद्र सभा" होती रही, जिसमें इनके विषय में भाषा तथा संस्कृत कविता पढ़ी जाती थी। दमोह जिला गया से कुछ दिनों तक "हरिश्चंद्र कौमुदी" मासिक पत्रिका निकलती थी। "खड्गविलास प्रेस" बाँकीपुर से "हरिश्चंद्र कला" प्रकाशित हुई, जिसमें पहले तो उनके प्रायः सब ग्रंथ शृंखला के साथ छपे, फिर उनके संग्रहीत तथा मनोनीति ग्रंथ छपते रहे। हिंदी समाचारपत्रों में प्रकाशित शोकप्रकाश तथा और शोक कविताओं के संग्रह का "हरिश्चंद्र शोकावली" नामक एक अच्छा ग्रंथ छपा। लखनऊ से एक सौ वर्ष की जंत्री "भारतेंदु शताब्दी" नामक छपी और सन् १८८८ ई० में कविवर श्रीधर पाठकजी ने "श्रीहरिश्चंद्राष्टक" प्रकाशित किया, जिसके अंतिम छप्पय के साथ हम भी इस प्रबंध को समाप्त करते हैं।

"जब लौं भारतभूमि मध्य आरजकुल बासा।
जब लौं आरजधर्म माहिं आरज विश्वासा॥
जब लौं गुन-आगरी नागरी आरजबानी।
जब लौं आरजबानी के आरज अभिमानी॥
तब लौं यह तुम्हरो नाम थिर, चिरजीवी रहिहै अटल।
नित चंद सूर सम सुमिरिहैं हरिचंदहु सज्जन सकल॥"

ग्रंथों की सूची

१ नाटक

१ प्रवास नाटक (अपूर्ण, अप्रकाशित)
२ सत्य हरिश्चंद्र
३ मुद्राराक्षस
४ विद्या सुंदर
५ धनंजय विजय
६ चंद्रावली
७ कर्पूर मंजरी
८ नीलदेवी
९ भारत दुर्दशा
१० भारत जननी
११ पाषंड विडंबन
१२ वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति
१३ अंधेर नगरी
१४ विषस्य विषमौषधम्
१५ प्रेम योगिनी (अपूर्ण)
१६ दुर्लभ बंधु (अपूर्ण)
१७ सती प्रताप (अपूर्ण)
१८ नव मल्लिका (अपूर्ण, अप्रकाशित)
१९ रत्नावली (अपूर्ण)
२० मृच्छकटिक (अपूर्ण, अप्रकाशित, अप्राप्य)

२ आख्यायिका वा उपन्यास

१ रामलीला (गद्य-पद्य)
२ हमीरहठ (असंपूर्ण अप्रकाशित)
३ राजसिंह (अपूर्ण)

---

१ (नंबर १६, २० बहुत कम लिखे गए)।

४ एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती (अपूर्ण)
५ सुलोचना
६ मदालसोपाख्यान
७ शीलवती
८ सावित्री चरित्र

३ काव्य

१ गीत गोविंदानंद (गाने के पद्य)
२ प्रेम माधुरी (शृंगार रस के कवित्त सवैया)
३ प्रेमफुलवारी (गाने के पद्य)
४ प्रेममालिका (तथैव)
५ प्रेमप्रलाप (तथैव)
६ प्रेमतरंग (तथैव)
७ मधुमुकुल (तथैव)
८ होली (तथैव)
९ मानलीला (तथैव)
१० दानलीला (तथैव)
११ देवी छद्म लीला (तथैव)
१२ कार्तिक स्नान (तथैव)
१३ विनय पचासा (तथैव)
१४ प्रेमाश्रुवर्षण (कवित्त सवैया)

२ (सुलोचना और सावित्री चरित्र में संदेह है ।)

१५ प्रेम सरोवर (दोहे-अपूर्ण)
१६ फूलों का गुच्छा (लावनी)
१७ जैन कुतूहल (गाने के पद्य)
१८ सतसई शृंगार (बिहारी के दोहों पर कुंडलिया—अपूर्ण)
१९ नए जमाने की मुकरी
२० विनोदनी (बँगला)
२१ वर्षाविनोद (गाने के पद्य)
२२ प्रातसमीरन (वंग छंद)
२३ कृष्णचरित्र
२४ उरहना (गाने के पद्य)
२५ तन्मय लीला (गाने के पद्य)
२६ रानी छदम लीला (तथैव)
२७ चित्र काव्य
२८ होली लीला

४ स्तोत्र

१ श्रीसीतावल्लभ स्तोत्र (संस्कृत पद्य)
२ भीष्मस्तवराज

३ (नंबर १०,११,१२,२०,२३ २५,२६,२७,२८, २९, यह सब बहुत छोटे काव्य हैं; नंबर १४, २२, २४ हरिश्चंद्र कला के संपादक ने संग्रह किया है ।)

३ सर्वोत्तम स्तोत्र
४ प्रातस्मरण मंगल-पाठ
५ स्वरूप चिंतन
६ प्रबोधिनी
७ श्रीनाथाष्टक

५ अनुवाद या टीका

१ नारदसूत्र
२ भक्तिसूत्र वैजयंती
३ तदीय सर्वस्व
४ अष्टपदी का भाषार्थ
५ श्रुति रहस्य
६ कुरान शरीफ का अनुवाद (गद्य अपूर्ण)
७ श्री वल्लभाचार्यकृत चतुश्श्लोकी
८ प्रेमसूत्र (अपूर्ण)

६ परिहास

१ पाँचवें पैगंबर (गद्य)
२ स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन (गद्य)
३ सबै जाति गोपाल की (गद्य)
४ बसंत जा (गद्य)
५ वेश्या स्तोत्र (पद्य)
६ अँगरेज स्तोत्र (गद्य)
७ मदिरास्तवराज (गद्य पद्य)
८ कंकड़ स्तोत्र
९ बकरी विलाप (पद्य)
१० स्त्री दंड संग्रह (कानून ताजीरात शौहर उर्दू-गद्य)
११ परिहासिनी (गद्य)
१२ फूल बुझौवल (पद्य)
१३ मुशाइरा (गद्य पद्य)
१४ स्त्री-सेवा-पद्धति (गद्य)
१५ रुद्री का भावार्थ (गद्य)
१६ उर्दू का स्यापा (पद्य)
१७ मेला झमेला (गद्य)
१८ बंदर सभा (अपूर्ण)

७ धर्म संबंधीय इतिहास तथा चिह्नादि वर्णन

१ भक्त सर्वस्व
२ वैष्णव सर्वस्व
३ वल्लभीय सर्वस्व
४ युगल सर्वस्व
५ पुराणोपक्रमणिका

---

४ (यह सब छोटे छोटे काव्य हैं ।)
५ (नंबर ४ ,५, ७ बहुत ही छोटे हैं ।)

६ (प्रायः यह सभी छोटे छोटे लेख वा काव्य हैं ।)

६ उत्तरार्ध भक्तमाल
७ भारतवर्ष और वैष्णवता

८ माहात्म्य

१ गो महिमा (. संग्रह-गद्य)
२ कार्तिक कर्म विधि (गद्य)
३ कार्तिक नैमित्तिक कर्म विधि (गद्य)
४ वैशाख स्नान विधि (गद्य)
५ माघ स्नान विधि (गद्य)
६ पुरुषोत्तम मास विधि (गद्य)
७ मार्गशीर्ष महिमा (पद्य)
८ उत्सवावली (गद्य)
९ श्रावण कृत्य (गद्य)

९ ऐतिहासिक

१ काश्मीर कुसुम
२ बादशाह दर्पण
३ महाराष्ट्र देश का इतिहास
४ उदयपुरोदय
५ बूँदी का राजवंश
६ अग्रवालों की उत्पत्ति
७ खत्रियों की उत्पत्ति
८ पुरावृत्त संग्रह
९ पंच-पवित्रात्मा
१० रामायण का समय
११ श्रीरामानुज स्वामी का जीवनचरित्र
१२ जयदेवजी का ,,
१३ सूरदासजी का ,,
१४ कालिदास का ,,
१५ विक्रम और विल्हण का ,,
१६ काष्ठजिह्वास्वामी का ,, (अप्रकाशित)
१७ पंडित राजाराम शास्त्री का ,,
१८ श्री शंकराचार्य का ,,
१९ श्रीवल्लभाचार्यजी का ,,
२० नेपोलियन का ,,
२१ जज द्वारकानाथ मित्र का ,,
२२ लार्ड म्यो का ,,
२३ लार्ड लारेंस का ,,
२४ जार का (संक्षिप्त) ,,
२५ कालचक्र
२६ सीतावट-निर्णय
२७ दिल्ली दर्बार दर्पण

१० राजभक्ति-सूचक

१ भारत वीरत्व
२ भारत भिक्षा

---

१ (जीवनचरित्रों में कई एक बहुत छोटे हैं ।)

३ मुँह दिखावनी

४ मानसोपायन (संग्रह)

५ मनो-मुकुल-माला

६ लुइसा विवाह वर्णन

७ राजकुमार-विवाह वर्णन

८ विजयिनी-विजय-वैजयंती

९ सुमनोंजलि (संग्रह)

१० रिपनाष्टक

११ विजय वल्लरी

१२ जातीय संगीत, National Anthem का अनुवाद

१३ राजकुमार सुस्वागतपत्र (गद्य)

११ स्फुट ग्रंथ, लेख तथा व्याख्यान आदि

१ नाटक (नाटक के भेद इतिहास आदि का वर्णन)

२ हिंदी भाषा

३ संगीतसार

४ कृष्णपाक

५ हिंदी व्याकरण

६ शिक्षा कमीशन में साक्षी (अँगरेजी)

---

१० (नंबर ३, ६, ७, ८, १२, १३, बहुत छोटे हैं ।)

७ तहकीकात पुरी की तहकीकात

८ प्रशस्ति संग्रह

९ प्रतिमा-पूजन-विचार

१० रस-रत्नाकर (असंपूर्ण)

११ व्याख्यान

१ खुशी, २ हिंदी (दोहों में), ३ भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है ?

१२ यात्रा

१ मेवाड़-यात्रा, २ जनकपुर-यात्रा, ३ सरयूपार की यात्रा, ४ वैद्यनाथ-यात्रा ।

१३ ज्योतिष

१ भूगोल संबंधी बातें, २ भंडरी, ३ वर्षमालिका, ४ मध्याह्नसारिणी, ५ मूक प्रश्न ।

१४ ऐतिहासिक

१ वृत्त संग्रह, २ राजा जनमेजय का दानपत्र, ३ मंगलीश्वर का दानपत्र, ४ मणिकर्णिका, ५ काशी, ६ पंपासर का दानपत्र, ७ कन्नौज, ८ नागमंगला का दानपत्र, ९ चित्रकूटस्थ रमाकुंड-प्रशस्ति, १० गोविंददेवजी के

मंदिर की प्रशस्ति, ११ प्राचीन काल का संवत्-निर्णय, १२ शिवपुर का द्रौपदीकुंड।

१५ प्रबंध

१ भ्रूणहत्या, २ हाँ हम मूर्ति-पूजक हैं (असंपूर्ण, अप्रकाशित), ३ दुर्जनचपेटिका, ४ ईशूखृष्ट और ईशकृष्ण, ५ शब्द में प्रेरक शक्ति, ६ भक्ति ज्ञानादिक से क्यों बड़ी है? ७ पबलिक ओपीनियन, ८ बंगभाषा की कविता, ९ विनय पत्र, १० कुरान-दर्शन।

१६ कौतुक

१ इंद्रजाल, २ चतुरंग।

१७ स्त्रीशिक्षा के लेख

१ लाजवंती, २ पतिव्रत, ३ कुलवधू जनों को चितावनी, ४ स्त्री, ५ वर्षा, ६ सती-चरित्र(?), ७ राम सीता संवाद (?), ८ लवली और मालती संवाद (?), ९ वसंत और कोकिला (?), १० सरस्वती और सुमति का संवाद (?), ११ प्रेमपथिक (?)

१८ छोटे छोटे लेख आदि

१ मित्रता, २ अपव्यय, ३ किसका शत्रु कौन है ? ४ भूकंप, ५ नौकरों को शिक्षा, ६ बुरी रीतें, ७ सूर्योदय, ८ आशा, ९ लाख लाख बात की एक एक बात, १० बुद्धिमानों के अनुभूत सिद्धांत, ११ भगवत् स्तुति, १२ अंकमय जगत्-वर्णन, १३ ईश्वर के वर्तमान होने के विषय में, १४ इँगलैंड और भारतवर्ष, १५ वज्राघात से मृत्यु, १६ त्यौहार, १७ होली, १८ वसंत, १९ लेवी प्राण लेवी, २० मर्सिया।

(कविवचनसुधा के लेख तथा स्फुट कविता का पूरा पता नहीं मिला। जिन लेखों पर(?) चिह्न है उनमें संदेह है कि इनके लिखे हैं वा दूसरों के।)

१२ संपादित, संगृहीत वा उत्साह देकर बनवाए

१ ऊर्ध्वपुंड्र मार्तंड (संस्कृत)

२ कजली मलार संग्रह (काष्ठ-जिह्वास्वामी कृत)
३ चैती घाटो संग्रह (तथैव)
४ श्री सीताराम विवाह मंगल (तथैव)
५ मुकरी (काशिराज कृत)
६ सुंदरीतिलक (सवैयों का संग्रह)
७ श्री राधा-सुधा-शतक (हठी कृत कवित्त)
८ सुजान शतक (घनआनंदजी कृत सवैया कवित्त संग्रह)
९ कवि-हृदय-सुधाकर(चंद्रिका में छपा)
१० गुलजारे पुरबहार (गजलों का संग्रह)
११ नई बहार (होली में गाने के पद्य)
१२ चमनिस्ताने-हमेश: बहार (चार भाग, नाना काव्य संग्रह)
१३ रसबरसात (वर्षा में गाने के पद्य)
१४ कौशलेश कवितावली (चंद्रिका में प्रकाशित)
१५ बुढ़वा मंगल (संस्कृत हिंदी में परिहास)
१६ रामार्या (संस्कृत पद्य)
१७ जरासंध-वध महाकाव्य (पद्य)
१८ भागवत-शंका-निरासवाद (संस्कृत पद्य)
१९ पंचक्रोशी के मार्ग का विचार (गद्य)
२० मलारावली (पद्य)
२१ भारतीभूषण (पद्य)
२२ रामायण-परिचर्या -परिशिष्ट प्रकाश (गद्य-पद्य)
२३ कविवचनसुधा (पावस की कविता संग्रह)
२४ कादंबरी (गद्य उपन्यास)
२५ दुर्गेशनंदिनी (गद्य उपन्यास)
२६ सरोजिनी (गद्य नाटक)
२७ आनरेरी मैजिस्ट्रेटी के नियम (अँगरेजी)
२८ शृंगारसप्तशती (बिहारी के दोहों का संस्कृत अनुवाद)
२९ भंग दर्भङ्ग (गद्य)

३० गदाधर भट्ट जी की वाणी (पद्य)
३१ रास-पंचाध्यायी (पद्य)
३२ लालित्यलता (पद्य)
३३ श्री वल्लभ-दिग्विजय (गद्य)
३४ साहित्यलहरी (गद्य-पद्य)
३५ गजलियात (उर्दू पद्य)
३६ वसंत होली (पद्य)
३७ भाषा व्याकरण (पद्य)
३८ पूर्ण प्रकाश चंद्रप्रभा (गद्य उपन्यास)
३९ राधारानी (गद्य उपन्यास)
४० राग संग्रह (पद्य)
४१ गुरु सारणी (पद्य)
४२ होरी संग्रह (पद्य)
४३ प्रदोष में त्रिदेव पूजन (गद्य)
४४ प्रांतर प्रदर्शन (गद्य)
४५ कलिराज की सभा (गद्य)
४६ कीर्तिकेत नाटक (गद्य)
४७ मार्टिन वाल्डेक के भाग्य (गद्य)
४८ तप्ता संवरण नाटक (गद्य)
४९ गुणसिंधु (गद्य)
५० अद्भुत अपूर्व स्वप्न (गद्य)
५१ एक शोकसंवाद (गद्य)
५२ बाल्यविवाह प्रहसन (गद्य)
५३ धैर्यसिंधु (गद्य)
५४ प्रह्लाद नाटक (गद्य)
५५ रेल का विकट खेल (गद्य)
५६ प्रसन्नकरुणाकर (संस्कृत)
५७ सुलभ रसायन संक्षेप
५८ धूर्त समागम प्रहसन (संस्कृत)
५९ ध्यानमंजरी (पद्य)
६० विद्याचंद्रोदय (गद्य)
६१ भाषा गीतगोविंद (पद्य)
६२ विजय पारिजात महानाटक (संस्कृत)
६३ श्री वृंदावन सत (ध्रुवदास-कृत)
६४ गुरुकीर्तिकवितावली (पद्य)
६५ ग्राम पाठशाला नाटक(गद्य)
६६ मालती (गद्य)
६७ बिजुली (गद्य)
६८ शास्त्रपरिचायिका (गद्य)
६९ शिशुपालन (गद्य)
७० श्री बदरिकाश्रमयात्रा (संस्कृत)
७१ माधुरी (रूपक गद्य)
७२ ज्योतिर्विद्या (गद्य)

७३ शरद ऋतु की कहानी (गद्य)
७४ प्रेमपद्धति॰ (घनआनंद कृत, पद्य)
७५ प्रेम दर्शन (देव कृत, पद्य)

(जो जो ग्रंथ स्मरण आए या उत्तम लेख चंद्रिका, बाला-बोधिनी में मिले लिखे गए हैं। कविवचनसुधा में प्रकाशित ग्रंथ या लेखों का पता नहीं मिला।)

(७) सूरदास※

महामोह मद छाइ, अंधकार सब जग कियो ।
हरि-जस सुभ फैलाइ, सूर सूर-सम तम हर्यो ।।

भाषा कविता रूपी आकाश में सूर रूपी सूर्य ने प्रकाश कर, अविद्या और धर्म-बहिर्मुखता रूपी घोर अंधकार का नाश कर, उड़-गन रूपी प्राचीन प्राकृत कवियों की जगमगाहट को तेजोहीन कर दिया। अतएव लोगों ने उस अद्भुत प्रकाश से मोहित हो—

"सूर सूर, तुलसी ससी उड़गन केसोदास ।
अब के कवि खद्योतसम जहँ तहँ करत प्रकास" ।।

यों कहकर अपने पूर्व के मनोहारी गगन-बिहारी नक्षत्र रूपी प्राचीन कवियों को मानो भुला दिया। जैसे सूर्य के प्रकाशित होने पर कोई भी नक्षत्र-माला को स्मरण नहीं करता और सभी उस नैश-गगन की भयानकता को अपनी जगमगाहट से मिटाकर शोभायमान करनेवाली नक्षत्रावली को, जिसने थोड़े ही काल पहले घोर अंधकार को भेद कर कुछ सहारा दे रखा था, भुला देते हैं वैसे ही भारत-वासियों ने अपने हृदय-पटल से प्राचीन कवियों को ऐसा भुला दिया कि अब कबीर, मलिक मुहम्मद प्रभृति दो चार गिने हुए कवियों के अतिरिक्त पता ही नहीं लगता कि सूरदास के पहले भाषा के और भी कवि थे या नहीं।

हमारे देश के विद्या-रसिकों का ध्यान समय वा इतिहास की ओर बहुत कम रहा। वे लोग केवल गुणों ही को ग्रहण करते,

---

※ यह लेख नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ४ संवत् १९५७ में प्रकाशित हुआ था।

गुणों ही की खोज करते और गुणों ही पर मोहित हो गुणों के रूप तक को भुला देते थे। किंतु अब पाश्चात्य सभ्यता के प्रचार होने पर पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि इतिहास की ओर पड़ी और तब उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं की खोज करना आरंभ किया और अनुमान तथा अनुसंधान से बहुत कुछ पता लगाया। अब हम भारतवासियों को भी उन्हीं के अनुमान पर निर्भर कर अपने पूर्वजों का इतिहास जानना और मानना पड़ता है। इन विद्वानों ने अनुसंधान से भाषा कविता और कवियों के विषय में यह निश्चय किया है कि लगभग एक सहस्र वर्ष पहले पृथिवीराज के समय में हिंदी भाषा का वही रूप था जो कवि चंद ने अपने रायसा में लिखा है और यही कवि चंद ही भाषा का प्रथम कवि गिना गया। परंतु कुछ काल पीछे कविराजा श्यामलदानजी के अकाट्य प्रमाणों के दर्साने पर बहुतों का मत यह हुआ कि चंदरायसा बहुत पीछे का बना है। अब भाषा के प्रथम कवि कबीर और मलिक मुहम्मद जायसी ही गिने जाने लगे और उस समय की वही भाषा मानी जाने लगी, परंतु मेरे अनुमान में ऐसा नहीं है। मैं अनुमान करता हूँ कि भाषा यहाँ की सदा से भिन्न भिन्न रही है। जो कवि जिस प्रांत का रहनेवाला था उसने उसी प्रांत की भाषा में कविता की थी। इन कवियों (कबीर, मलिक मुहम्मद जायसी) के अतिरिक्त भाषा में बहुतेरे अच्छे कवि हो गए थे और बहुत से उत्तमोत्तम ग्रंथ बने थे जो कि अब भी खोज करने पर मिल सकते हैं। परंतु सूर और तुलसी रूपी "सूर-शशि" ने उदय होकर अपने प्रकाश में सबको विलीन कर लिया और लोग शुष्क वेदांत तथा प्राकृत कथाओं की व्यर्थ उलझन से श्रमित होकर भक्तिरस के अगाध समुद्र में निमग्न हो गए और सांसारिक कविताओं को भूल गए।

हिंदू राजाओं के समय में अधिक ध्यान संस्कृत की ओर था। उस समय के संस्कृत ग्रंथ बहुतेरे प्रचलित हैं। परंतु भाषा कवियों की तादृश पूछ भी न थी यहाँ तक कि राजा भोज के समय में कुछ चर्चा भाषा कविता की चली परंतु विदेशीय आक्रमणों में विद्या-चर्चा उठ ही गई और प्राचीन ग्रंथों पर जो कुछ बीती वह इतिहास के अंक पर चिरकाल तक अंकित रहेगी। जब मुसलमानों का राज्य स्थिर हुआ और कुछ दिन वह लोग यहाँ रह गए तो उनका भी ध्यान इस ओर पड़ा परंतु वह लोग हिंदू-द्वेषी थे अतएव धर्म-ग्रंथों का प्रचार उन्हें सह्य न था, अतएव प्राकृत चरित्रों ही के आधार पर कविता और काव्य होने लगे जिसके बहुतेरे प्रमाण विद्यमान हैं। परंतु भारतवासियों की रुचि चिरकाल से धर्म की ओर रही, उनका जीवन ही धर्ममय रहा, फिर वे प्राकृत चरित्रों की चाहना क्योंकर करते? संस्कृत साहित्य इसके प्रमाणीभूत हैं। भाषा में गोस्वामी तुलसीदासजी लिखते हैं—

भनिति विचित्र सुकविकृत जोऊ। रामनाम बिनु सोह न सोऊ॥
विधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥
सब गुन रहित कुकविकृत बानी। रामनाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही॥
(बालकांड दोहा १० वाँ)

विचार करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि पूर्व कवियों की कविताओं ही पर लक्ष्य है जो कि भगवच्चरित्र न होने के कारण लोक-सम्मानित न थीं। गोस्वामीजी फिर लिखते हैं—

मनिमानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई॥
तैसेहि सुकवि कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं॥

भगति हेतु विधि भवन विहाई। सुमिरत सारद आवति धाई ॥
रामचरित सर बिनु अन्हवाएँ। सो श्रम जाइ न कोटि उपाएँ ॥
कवि कोविद अस हृदय बिचारी। गावहिं हरिजस कलिमलहारी ॥
कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिरधुनि गिरा लगत पछिताना ॥
(बालकांड ११वाँ दोहा)

फिर गोस्वामीजी लिखते हैं—

"कलि के कबिन्ह करौं परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा ॥
जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बषाने ॥
भए जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवों सबहिं कपट सब त्यागे ॥"
(बालकांड १४वाँ दोहा)

इसका एक प्रमाण यह भी है कि कबीर ने यद्यपि अधिकतर वेदांत ही कथन किया परंतु हरि-संबंध आ जाने से प्राचीन कवियों की कविता में सबसे अधिक सम्मान तथा प्रचार इन्हीं की कविता का हुआ। मलिक मुहम्मद जायसी की कविता का कुछ आदर उसकी सुंदर कविता तथा प्रसिद्ध आर्य चरित्र होने के कारण हुआ परंतु दूसरी कविता, ग्रंथों, तथा कवियों के नाम तक को लोग नहीं जानते। एशियाटिक सोसाइटो के लिये भाषा ग्रंथों की खोज करने के समय मुझे "पद्मावत" से पहले के दो ग्रंथ पूज्य भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के सरस्वती-भवन में मिले, जिनमें एक "हफ़ सहेली" कवि सादन लकड़हारा कृत, दूसरा "मृगावती" कवि कुतबन कृत। आज दिन इन ग्रंथों का कोई नाम भी नहीं जानता। इन ग्रंथों में इनके पूर्व के संमन आदि कई कवियों के नाम मिलते हैं और खोज की जाय तो राजपुताना, व्रज तथा वैसवारा आदि प्राचीन कवि-निवास-स्थानों में कितने ही ग्रंथ इनसे भी प्राचीन और उत्कृष्ट

निकलेंगे परंतु उनका नाम भी कोई नहीं जानता। मेरे अनुमान में इसका कारण प्राकृत कविता का ही आधिक्य है।

भाषा के विषय में विचार कीजिए तो भिन्न भिन्न प्रांतों की भिन्न भाषा होना ही प्रमाणित होता है। अमीर खुसरो ने अलाउद्दीन खिलजी (सन् १३०० ई०) के समय में उर्दू भाषा की सृष्टि की; उनकी भाषा का नमूना देखिए—

"सनम् जद् (जब) याद आता है। चश्म दर्या बहाता है॥"
"जल का उपजा जल में रहै। आँखों देखा खुसरो कहै॥"
"आदि कटे तें सब को पारै। मध्य कटे तें सबको मारै।
अंत कटे तें सब को मीठा। कह खुसरो मैं आँखों दीठा॥"
(काजल)

"खालिक, बारी—सिरजनहार। वाहिद, एक-बड़ा करतार।
रसूल पैगंबर, जान बसीठ। यार, दोस्त, बोले जा ईठ॥"

संवत् १६०० के लगभग की पद्मावत की कविता—

"सुआ काल होइ लेगा पीऊ। पिउ नहिं जात जात बरु जीऊ॥"

" हफ्त सहेली " और "मृगावती" की भाषा में इससे कुछ ही अंतर है। अब इसी समय संवत् १५९८ के बने ग्रंथ "हित-तरंगिणी" की भाषा देखिए—

"चरन कमल की विमल छवि जौ झलकै उर माहिं।
तौ कविता सविता-सहस कवि-मुख तें सरसाहिं॥"

यह कैसी विशुद्ध व्रजभाषा है, कैसी सुंदर भावमय कविता है! उक्त "हिततरंगिणी" में कवि कृपाराम लिखते हैं—

बरनत कवि सिंगार रस, छंद बड़े विस्तारि।
मैं बरन्यो दोहान बिच, यातें सुघर बिचारि॥

ग्रंथ अनेक पढ़े प्रथम, पुनि बिचारि के चित्त।
मैं बरन्यों सिंगार रस, सजन तिहारे हित्त॥

निदान सुंदर भाषा, सुंदर भावों और सुंदर लक्षणों से पूरित अनेक ग्रंथ श्रीसूरदासजी के प्रथम विद्यमान थे, परंतु इन सभों के रहते भी सूर ने कुछ ऐसा मोहिनी-जाल फैलाया, और लोगों के चित्त को ऐसा लुभाया कि लोगों के मुख से प्राचीनों को भुलाकर अपने को आदि कवि कहला ही लिया। सूर के पदों ने कुछ ऐसा लोगों के हृदय को बेधा कि व्याकुल हो लोग सभी भूल गए। किसी ने खूब कहा है—

"किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद सुन्यो, जो अस विकल सरीर॥"

अस्तु—अब हम ऐसे महानुभाव, भाषा-कवि-कुल-चूड़ामणि, भाषा-कविकुल-गुरु श्रीसूरदासजी के चरित्र-वर्णन में प्रवृत्त होते हैं।

जाति और पूर्व पुरुष

सूरदासजी का चरित्र संसार में "भक्तमाल" * और "चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता"†. के आधार ही पर प्रसिद्ध था। "चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता" में इन्हें जाति के सारस्वत ब्राह्मण बाबा रामदास के बेटे लिखा है और इसी के अनुसार ये सारस्वत ब्राह्मण बाबा रामदास के बेटे प्रसिद्ध थे। इससे बढ़कर इनका

* भक्तमाल—नारायणदास उपनाम नाभाजी कृत जो सं० १७०० के लगभग बनी।

† चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता—श्रीगोस्वामि गोकुलनाथजी कृत, जिनका जन्म सं० १६०८ में हुआ था और जिन्होंने इस ग्रंथ में अपने पितामह श्री महाप्रभु वल्लभाचार्य्य के ८४ शिष्यों का वर्णन किया है, जिनमें एक सूरदास जी भी हैं।

पूर्व वृत्तांत कुछ भी नहीं मिलता था, परंतु पूज्यपाद भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी का ध्यान इनके बनाए "साहित्यलहरी" नामक ग्रंथ के निम्नलिखित पद पर पड़ा जिसमें सूरदासजी ने अपना वृत्तांत आप लिखा है। उस पर भारतेंदुजी ने एक लेख सन् १८७८ में अपनी "हरिश्चंद्रचंद्रिका" में छपवाया और तभी से पुरातत्ववेत्ताओं का ध्यान इस ओर खिंचा और अब सूरदासजी जाति के भाट और प्रसिद्ध कवि चंद के वंशधर गिने जाने लगे।

"प्रथम ही पृथु यज्ञ* तें भे प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप ॥
पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय ॥
पारि पायँन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।
तासु बंस प्रसंस में भौ चंद चारु नवीन ॥
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हें ज्वाला देस।
तनय ताके चार कीनो प्रथम आप नरेस ॥
दूसरे गुनचंद ता सुत सीलचंद सरूप।
बीरचंद प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप ॥
रंथभौर हमीर भूपति संग खेलत जाय।
तासु वंस अनूप भो हरिचंद अति विख्याय ॥
आगरे रहि गोपचल में रहौ तासुत बीर।
पुत्र जनमे सात ताके महाभट गंभीर ॥
कृष्णचंद्र, उदारचंद, जु रूपचंद सुभाइ।
बुद्धिचंद प्रकाश चौथे चंद भे सुखदाइ ॥

---

* प्रायः लोगों ने इसे 'प्रथ जगात' लिखा है।

देवचंद प्रबोध संसृतचंद ताको नाम।
भयो सप्तो नाम सूरजचंद मंद निकाम ॥
सो समर करि स्यहि सेवक गए विधि के लोक।
रहो सूरजचंद दृग तें हीन भर वर सोक ॥
परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार।
सातएँ दिन आइ जदुपति कीन आपु उधार ॥
दियो चख दै कही सिसु सुनु माँगु बर जो चाइ।
हौं कही प्रभु भगति चाहत सत्रुनास सुभाइ ॥
दूसरो ना रूप देखौं देखि राधा-स्याम।
सुनत करुनासिंधु भाषो 'एवमस्तु' सुधाम ॥
प्रबल दच्छिन विप्रकुल तें सत्रु ह्वै हैं नास।
अखिल बुद्धि विचारि विद्यामान मानै सास ॥
नाम राखे मोर सूरजदास सूर सु स्याम।
भए अंतर्धान बीते पाछली निसि जाम ॥
मोहि पन सो इहै ब्रज की बसे सुख चित थाप।
थापि गोसाईं करी मेरि आठ मद्धे छाप ॥
विप्र प्रथु जगात को है भाव भूरि निकाम।
सूर है नँदनंदजू को मोल लयो गुलाम ॥ १ ॥"

इस पद में सूरदासजी लिखते हैं कि पहले पृथुयज्ञ से इस वंश के मूल पुरुष ब्रह्मराव हुए, जो बड़े सिद्ध और देवप्रसादलब्ध थे, और जिन्हें देवी ने स्वयं दूध पिलाया था। इनके वंश में चंद हुआ, जिसे महाराज पृथ्वीराज ने ज्वालादेश दिया। इनके चार बेटे हुए जिनमें से सबसे बड़ा राजा हुआ। दूसरा गुणचंद्र उसका बेटा सीलचंद्र उसका बीरचंद्र। यह बीरचंद्र रणथंभौर के प्रसिद्ध राजा हम्मीर के साथ खेलता था। इसके वंश में हरिचंद हुआ।

उसका बेटा जो वीर था आगरे रहकर फिर गोपचल में रहा। उसको सात बेटे बड़े शूरवीर हुए (१) कृष्णचंद्र (२) उदारचंद (३) रूपचंद (४) बुद्धिचंद (५) देवचंद (६) संसृतचंद (७) सूरजचंद। ये (छओं भाई सूरदास के) शाह (बादशाह दिल्ली) की चाकरी में युद्ध में लड़कर मारे गए। केवल मैं सूरजचंद आँखों का अंधा बच रहा। मैं कूएँ में गिर पड़ा। सात दिन उसी में पड़ा पुकारता रहा पर किसी ने पुकार न सुनी। सातएँ दिन स्वयं श्रीयदुपति भगवान् ने आकर उद्धार किया* और मुझे आँख देकर कहा पुत्र वर माँग। मैंने कहा कि प्रभो! मैं आपकी भक्ति चाहता हूँ और शत्रु का नाश हो तथा राधाश्याम का रूप देखकर अब और किसी का रूप न देखूँ। करुणासिंधु भगवान ने कहा ऐसा ही होगा। दक्षिण के प्रबल ब्राह्मण † कुल से तेरे शत्रुओं का नाश होगा और तू सब विद्या में निपुण होगा। मेरा

---

* भगवद्दर्शन के विषय में लोकप्रसिद्ध बात यह है कि जब भगवान् ने हाथ पकड़कर सूरदास जी को कुएँ से निकाला तब इनके कोमल करस्पर्श से सूरदासजी को संदेह हुआ कि यह भगवान् का श्री हस्त-कमल है, उन्होंने हाथ पकड़ लिया। भगवान् हाथ छोड़ाकर चले तब सूरदासजी ने कहा—

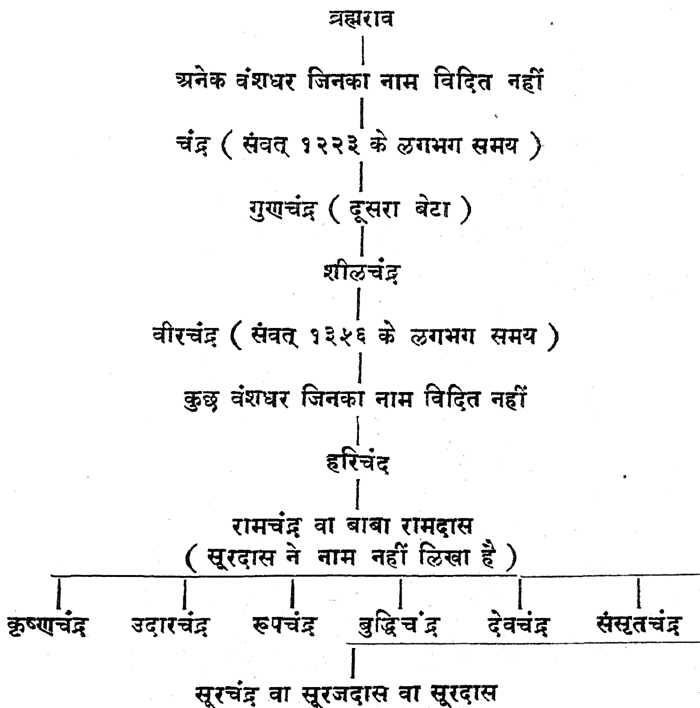
"कर छुटकाए जात हो दुर्बल जानि के मोहि।
हृदय सों जब जाहुगे मर्द बखानौं तोहि ॥"

इस पर भगवान् ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया।

† भारतेंदुजी ने अनुमान किया है कि शत्रुओं के नाश से यदि लौकिक अर्थ लिया जाय तो मुगलों का नाश तो ब्राह्मण पेशवाओं के द्वारा हुआ और अलौकिक अर्थ लिया जाय तो काम क्रोधादि शत्रुओं का नाश ब्राह्मण श्री वल्लभाचार्य्य से हुआ। मैं इसी दूसरे अनुमान को ठीक समझता हूँ, क्योंकि भगवद्दर्शन पाकर फिर सूरदासजी को लौकिक कामना कोई रह न गई यहाँ तक कि आँख तक न चाही। दूसरे आईन अकबरी से इनके पिता का अकबर के दर्बार में रहना सिद्ध है फिर वह उनके शत्रु क्योंकर हो सकते हैं।

नाम सूरजदास सूर और सूरश्याम रखकर पिछली रात बीते भगवान् अंतर्धान हो गए। तब से मैं पण करके सुख से व्रज में रहने लगा। गोस्वामीजी ने अष्टछाप में मुझे थापा। प्रथुजगात (यज्ञ से उत्पन्न) का ब्राह्मण सब प्रकार से निकम्मा यह (मैं) सूर (सूरदास) नंदनंदनजी का मोल लिया गुलाम है।

इस लेख के अनुसार सूरदासजी की वंशावली इस प्रकार हुई—



अब प्रथम विचार इनकी जाति का करना चाहिए। इस पद की आलोचना करने से यह स्पष्ट प्रगट है कि ये प्रसिद्ध कवि चंद के वंश में (जो कि भाट था) उत्पन्न हुए थे और मूलपुरुष इनके

ब्रह्मराव हुए। अब भाटों की वंशावली देखने से जान पड़ता है कि एक जाति भाटों की ब्रह्मभट्ट नाम से है, जिसकी उत्पत्ति "ब्रह्मभट्ट-प्रकाश" नामक ग्रंथ में इस प्रकार से वर्णित है—"अग्नि में ब्रह्माजी के वीर्य का हवन होने से भृगु, अंगिरा और कवि ये ३ ऋषि उत्पन्न हुए" (महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ८५ श्लोक १०६)। कवि के ८ बेटे—यथा कवि, काव्य, धृष्णु, बुद्धिमान्, उशना, भृगु, विरज, काशी, धर्मवित्त और उग्र—हुए (म० भा० अ० प० अ० ८५ श्लोक १३३)। कविवंशी ब्रह्मभट्ट से प्रगट हुए हैं और कुछ ब्रह्मभट्टों की उत्पत्ति ब्रह्मराव से भी, जो कि ज्वाला देश में विशेष रहते हैं, हुई है। ब्रह्मराव भी ब्रह्माजी के यज्ञ से पैदा हुआ था और उसने ब्रह्माजी को स्तुति से राजी करके ब्रह्मराव नाम पाया। (स्कंद पुराण)

"ब्रह्मभट्टों का आचार व्यवहार कान्यकुब्ज, गौड़ और सारस्वत ब्राह्मणों से मिलता हुआ है"। (रिपोर्ट मर्दुमशुमारी, बाबत सन् १८९१ ई० पृष्ठ ३५९ देखो)

इसके अतिरिक्त किसी कवि ने बंदीजनों की प्रशंसा में यह कवित्त कहा है—

प्रथम विधाता तें प्रगट भए बंदीजन
पुनि पृथुयज्ञ तें प्रकाश सरसात है।
माने सूत सौनकन सुनत पुरान रहे
यश को बखाने महा सुख बरसात है॥
चंद चौहान के केदार गोरीसाहिजू के
गंग अकबर के बखाने गुनगात है।
काग कैसे मास अजनास धन भाटन को
लूटि धरै जाको खुरा खोज मिटि जातु है॥

(शिवसिंह-सरोज, गंग कवि का वर्णन देखो।)

निदान इन लेखों से स्पष्ट विदित है कि ब्रह्मभट्ट जाति ब्रह्मराव से उत्पन्न हुई। ये लोग अपने को ब्राह्मण मानते हैं। ज्वाला देश इनका मुख्य स्थान है तथा इनके आचार व्यवहार सारस्वत आदि ब्राह्मणों के से होते हैं। स्वयं सूरदासजी ने ही अपने पद में लिखा है कि "विप्र प्रथु जगात को है" ऐसी दशा में इनका सारस्वत ब्राह्मण "चौरासी वार्ता" में लिखा जाना वा लोकप्रसिद्ध होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है, परंतु वास्तव में सूरदासजी ब्रह्मभट्ट जाति के थे।

इनके पूर्व पुरुषों में ब्रह्मराव के पीछे और प्रसिद्ध कवि चंद के पहले और किसी का पता इनकी कविता से नहीं लगता। चंद के रायसे में चंद के पिता का नाम वेण मिलता है। चंद का पृथ्वीराज से ज्वालादेश पाना तथा उसके बड़े पुत्र को भी वह राज्य प्राप्त होना सूरदासजी की ऊर्ध्वोक्त कविता से पाया जाता है, परंतु चंदकृत पृथ्वीराज रायसे से केवल इतना ही पता लगता है कि इनके पुर्खा पंजाब देश के रहनेवाले थे। यह स्वयं पंजाब प्रायः जाया करते थे और एक बेर देवी जालंधरी के मंदिर में बंद हो गए थे। सूरदासजी ने चंद के चार बेटे होना लिखा है जिनमें बड़ा राजा हुआ और छोटे गुणचंद्र के वंश में सूरदास हुए। परंतु रायसे से चंद को दस बेटे होने का पता लगता है जिनके नाम ये हैं—(१) सूर (२) सुंदर (३) सुजान (४) जल्ह (५) वल्ह (६) बलिभद्र (७) केहरि (८) बीरचंद (९) अवधूत अर्थात् योगिराज और (१०) गुणराज। (पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या प्रकाशित "पृथ्वीराज रासो" आदि पर्व के पृष्ठ ७ में टिप्पणी देखो) संभव है कि यही अंतिम गुणराज ही सूरदासजी के पूर्व पुरुष गुणचंद हों। राज, राय, चंद आदि का कविता में बदल जाना कोई आश्चर्य की बात

नहीं है। प्रसिद्ध कवि केशवदास ने ही अपने को कविता में कहीं केशवदास और कहीं केशवराय लिखा है। कवि चंद तथा इनके बनाए "पृथ्वीराज रायसा" के विषय में इन दिनों पुरातत्त्ववेत्ता विद्वानों में विवाद चल रहा है। कोई कहता है कि पृथ्वीराज के समय में कोई चंद नहीं हुआ और रायसा जाली है, यह ग्रंथ विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी में बना और कोई कहता है कि चंद और रायसा दोनों सच्चे हैं और इसमें लिखी घटनाएँ ऐतिहासिक हैं। इस विषय में सन् १८८६ और १८८७ ई० में महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदानजी तथा पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या से खूब ही झगड़ा हुआ था। कविराजाजी के मत में रायसा जाली है और पंड्याजी उसे सच्चा कहते हैं। दोनों महाशयों के लेख हिंदी और अँगरेजी में (जर्नल एशियाटिक सोसायटी के अतिरिक्त) पुस्तकाकार छपे थे। जो कुछ हो, रायसे के विरोधियों की सप्रमाण युक्तियों के देखने से भ्रम अवश्य हो जाता है। परंतु इस विषय की बहुत कुछ आलोचना करने पर मेरा अनुमान कहता है कि पृथ्वीराज के समय में चंद का होना निश्चित है परंतु रायसे का वर्तमान रूप चंद-रचित नहीं है वरंच बहुतेरे अंश तो चंद-रचित हैं और बहुतेरे पीछे से जोड़े हुए हैं। रायसे के विरोधी लोग संवत् १५०० के लगभग के बने "हम्मीर काव्य" में रायसा का नाम न पाकर तथा रायसे में वर्णित पृथ्वीराज-चरित्र-वर्णन में पार्थक्य देखकर अनुमान करते हैं कि इस समय तक रायसा नहीं बना था, तथाच संवत् १७२२ की खुदी हुई राजसमुद्र की प्रशस्ति में रायसा का वर्णन आने से इसके पूर्व इसका बनना अनुमान करते हैं। बाबू रामनारायणजी ने निज रचित "पृथ्वीराजचरित्र" ग्रंथ की भूमिका में इस विषय में लिखा है कि "उदयपुर राज्य के विक्टोरिया हाल के पुस्तका-

लय में रायसे की जिस पुस्तक से मैंने यह सारांश लिया है उसके अंत में यह लेख लिखा है कि चंद के छंद जगह जगह पर बिखरे हुए थे जिनको महाराणा अमरसिंहजी ने एकत्र कराया। महाराणा कुंभकर्ण के पीछे, जिन्होंने सं० १४९० से सं० १५२५ तक चित्तौड़ पर राज्य किया था, मेवाड़ की राजगद्दी पर अमरसिंहजी नाम के दो महाराणा हुए हैं। प्रथम तो महाराणा प्रतापसिंहजी के पुत्र, जिन्होंने संवत् १६५३ से सं० १६७६ तक राज्य किया, और दूसरे महाराणा राजसिंहजी के पौत्र व महाराणा जयसिंहजी के पुत्र थे जिन्होंने संवत् १७५६ से सं० १७६८ तक राज्य किया। तो जिन अमरसिंहजी ने रायसा के पृथक् पृथक् भागों को एकत्र कराया वे पहले ही अमरसिंहजी थे, दूसरे नहीं क्योंकि दूसरे अमरसिंहजी के राज्यशासन के पूर्व की लगी हुई राजनगर की प्रशस्ति में भाषा रायसा पुस्तक से उद्धृत किया हुआ वर्णन मिलता है।" इस लेख से स्पष्ट विदित होता है कि महाराणा अमरसिंहजी के पहले से चंद के बिखरे हुए छंद मिलते थे और निःसंदेह वे प्रामाणिक समझे जाते थे तभी उनका संग्रह कराया गया और ग्रंथ बनाया गया, तो क्या ऐसी दशा में यह संभव नहीं है कि उनमें बहुत से कपोल-कल्पित छंद ऐसे मिल गए हों जो रायसे में लिखित ऐतिहासिक घटनाओं को अप्रामाणिक सिद्ध करते हैं? क्या यह असंभव है कि जिन छंदों का सैकड़ों वर्ष से परम आदर था और जो उस समय पृथ्वीराज के समय के कहकर प्रसिद्ध थे उनमें से सभी कपोल-कल्पित थे, कोई प्रामाणिक और असली चंद के बनाए नहीं थे? इसके अतिरिक्त रायसे की भाषा से यह सिद्ध होता है कि यह कई समय और कई कवियों की बनाई है, क्योंकि इसकी एकसी भाषा नहीं है। सूरदासजी ने चंद से लेकर अपने तक पाँच पूर्व पुरुषों का नाम लिखा है और इनके

सिवाय बीरचंद के पीछे कुछ लोगों का नाम नहीं लिखा है। क्या इससे यह अनुमान नहीं होता कि सूरदासजी से सैकड़ों ही वर्ष पहले चंद कवि हुए थे ? सूरदासजी का समय लगभग संवत् १५५० से संवत् १६५० तक निश्चय होता है अतएव संवत् १३२३ और संवत् १२४९ के बीच में (जो समय पृथ्वीराज के जन्म और मरण का निश्चित हुआ है) चंद का होना कुछ असंभव नहीं है। निदान मेरे अनुमान में इन प्रमाणों से कविचंद अवश्य पृथ्वीराज के समय में हुए थे और सूरदासजी इनके वंशधर थे। मुझे पता लगा कि चंद कवि के वंशवाले राज्य बूँदी के लाखैरी नामक गाँव में रहते हैं। इनका पता लगाने के लिये मैंने "सर्वहित" पत्र के पूर्व संपादक पंडित लज्जाराम शर्माजी को लिखा। उन्होंने उनका पता लगाकर लिखा कि "चंद बरदाई के वंश के भाट लाखैरी में इस समय हरसाई नाम के हैं, यह पुस्तक का पूजन नहीं करते.........। चंद की वंशावली ठीक ठीक मालूम नहीं, और न कुछ साल संवत् विदित है।" चंद के बेटे गुणचंद्र, उनके शीलचंद्र और उनके वीरचंद्र। इन वीरचंद्र के विषय में सूरदासजी लिखते हैं कि रणथंभौर के प्रसिद्ध राजा हम्मीर के ये बाल्यसखा थे, परंतु और किसी इतिहास से इनका पता नहीं लगता। इसी वंश के एक सारंगधर का हम्मीर के दर्बार में होना पाया जाता है। इन्हीं सारंगधर ने हम्मीर रायसा और हम्मीर काव्य बनाया था तथा अनेक लोग अनुमान करते हैं कि संस्कृत का प्रसिद्ध ग्रंथ "शार्ङ्गधरपद्धति" भी इन्हीं का बनाया है। (डाक्तर ग्रिअर्सन रचित The modern vernacular of Hindustan में कवि सारंगधर का वर्णन देखो।) संभव है कि सारंगधर ही का दूसरा नाम वीरचंद रहा हो वा इस वंश के कई मनुष्य वीर हम्मीर के कृपापात्र रहे हों। निदान सूरदास-

जी के पूर्वजों का हम्मीर के दर्बार में रहना सिद्ध है। हम्मीर का समय संवत् १३५७ तक मुंशी देवीप्रसाद अनुमान करते हैं। वीरचंद के पीछे कुछ लोगों का नाम सूरदासजी ने छोड़ दिया है, क्योंकि लिखा है कि "तासु वंस अनूप भो हरिचंद अति विख्यात।" सूरदासजी इन हरिचंद को अत्यंत विख्यात लिखते हैं परंतु इतिहासों से कहीं इनका पता नहीं लगता। डाक्टर ग्रिअर्सन और "शिवसिंहसरोज"कार एक हरिचंद बरसानेवाले और एक हरिचंद चर्खारीवाले लिखते हैं परंतु अनुमान से ये लोग सूरदास जी के पूर्वज नहीं जान पड़ते। इन हरिचंद के बेटे अर्थात् अपने पिता का नाम नहीं लिखा है, केवल इनके विशेषण में इन्हें वीर कहा है और इनका आगरे रहकर फिर गोपचल में रहना वर्णन किया है, परंतु 'वार्ता' आदि धर्मसंबंधी ग्रंथों में तथा आईन अकबरी आदि ऐतिहासिक ग्रंथों में सूरदास के पिता का नाम बाबा रामदास लिखा है। अतएव सूरदासजी के पिता का नाम रामचंद वा रामदास अवश्य था। राजपुताने या पंजाब से संबंध छोड़कर यह आगरे आ रहे थे। जान पड़ता है ये केवल कवि या गवैए ही नहीं थे वरंच वीर सिपाही भी थे, और राजदर्बार में नियुक्त रहते थे। चंद इत्यादि इनके पूर्वजों की वीरता तो प्रसिद्ध ही है परंतु ये स्वयं भी वीर थे जैसा कि सूरदासजी लिखते हैं। इनके सात बेटों को भी सूरदासजी "महाभट गंभीर" विशेषण देकर छः का बादशाह के लिये युद्ध करके मारा जाना लिखते हैं। इसकी पुष्टि "आईन अकबरी" से भी होती है। "आईन अकबरी" में अकबर के दर्बार के गवैयों की सूची में बाबा रामदास को ग्वालेरी लिखा है और सूरदास को बाबा रामदास का बेटा लिखा है। बाबा रामदास का नंबर २ है और सूरदास का १६—

मिस्टर ब्लाकमैन साहब अपने "आईने अकबरी" के अनुवाद में (See Blochman's Aini-Akbari, Vol. I, page 612, Calcutta Edition of 1873) बाबा रामदास पर नोट देकर लिखते हैं— "Note—Badoni (II. 42) says Ram Das came from Lakhnau. He appears to have been with Bairam Khan during his rebellion and he received once from him one lakh of tankahas, empty as Bairam's treasure chest was. He was first at the court of Islam Shah and is looked upon as second only to Tansen. His son, Sur Das, is mentioned below." इस लेख से जान पड़ता है कि बाबा रामदास पहले दिल्ली के बादशाह इसलाम शाह के दर्बार में थे जो कि सन् १५४५ ई० में गद्दी पर बैठा और सन् १५५३ ई० में मरा (संवत् १६०२—१६१०)। फिर बादशाह हुमायूँ के राज्य पाने पर यह उनके वजीर बैराम खाँ के पास रहने लगे और जब संवत् १६१६-१७ में बैराम खाँ हुमायूँ के बेटे अकबर से बागी होकर लड़ा था उस समय भी ये उसके साथ थे।

सूरदासजी का समय

सूरदासजी का समय निर्णय करना कोई बहुत कठिन बात नहीं है, क्योंकि "आईन अकबरी" से यह सिद्ध है कि अकबर के समय में सूरदासजी थे तथा वल्लभाचार्य महाप्रभु के सेवक * होना स्वयं सूरदासजी अपनी कविता में लिखते हैं और श्री गोसाईंजी

---

* सूरसागर सारावली सूरदासजी रचित—११०२ संख्या का पद "श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो।"

(गोस्वामि श्री विट्ठलनाथजी) के समय में इनका* वर्त्तमान रहना भी उन्हीं की कविता से सिद्ध है, अतएव श्री वल्लभाचार्यजी के जन्म से लेकर श्री गोसाईं विट्ठलनाथजी के परम-धाम पधारने के समय के मध्य का समय ही श्री सूरदासजी का समय है। श्री वल्लभाचार्यजी का जन्म मि० वैशाख कृष्ण ११ संवत् १५३५ और अंतर्धान मि० आषाढ़ शु० ३ संवत् १५८७ और गोस्वामी श्री विट्ठलनाथ जी का जन्म मि० पौष कृष्ण ९ संवत् १५७२ और अंतर्धान मि० माघ कृष्ण ७ संवत् १६४२ को हुआ। अतएव संवत् १५३५ से लेकर संवत् १६४२ तक १०७ वर्ष के भीतर ही सूरदासजी का जन्म और मरण-काल निश्चय है, क्योंकि 'वार्ता' आदि के देखने से यह निश्चय है कि सूरदासजी की मृत्यु गोस्वामी विट्ठलनाथजी के समय में हुई अतएव संवत् १६४२ के पूर्व इनका अंत समय निश्चय होने से लाख दीर्घायु होने पर भी संवत् १५३५ के पीछे ही सूरदासजी का जन्म होना ही संभव है।

सूरदासजी ने जो सूरसागर नामक ग्रंथ श्री भागवत का आशय लेकर बनाया है वह एक ही समय एक शृंखला से नहीं बनाया वरंच बहुत दिनों तक बहुत से पद बन जाने पर उन सभों को क्रम से लगाकर और शृंखलाबद्ध करने के लिये और भी

* पूर्व लिखित पद में स्वयं लिखा है "थापि गोसाईं करी मेरी आठ मद्धे छाप।" गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने "अष्ट छाप" की थापना की, इनमें चार कवि श्री वल्लभाचार्य्य के सेवक अर्थात् सूरदास, परमानंददास, कृष्णदास और कुंभनदास और चार अपने सेवक अर्थात् छीत स्वामी, गोविंद स्वामी, नंददास और चतुर्भुजदास थे। सूरदासजी का ऊपर लिखा पद साहित्यलहरी में मिलता है। इस ग्रंथ को उन्होंने संवत् १६०७ में बनाया था अतएव "अष्टछाप" का संस्थापन संवत् १६०७ के पूर्व हो गया था।

दोहा चौपाई आदि कविता रचकर ग्रंथाकार बना दिया है परंतु इसके बनाने के पीछे सूरसागर सारावली बनाया है। इस सूर-सागर सारावली को उन्होंने एक लाख पद बनाने के पीछे अपनी सरसठ वर्ष की अवस्था में बनाया था, जैसा कि उनके इन पदों से विदित होता है—

"गुरु प्रसाद होत यह दर्शन सरसठ बरस प्रवीन।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन॥१००२॥
दरसन दियो कृपा करि मोहन नेग दियो बरदान।
आगम कल्प रमन तुव ह्वै है श्री मुख कही बखान* ॥१००७॥

....

कर्म योग पुनि ज्ञान उपासन सबही भ्रम भरमायो।
श्री वल्लभगुरु तत्त्व सुनायो लीला भेद बतायो॥ ११०२॥
ता दिन तें हरिलीला गाई एक लक्ष पद बंद।
ताको सार सूरसारावलि गावत अति आनंद॥ ११०३॥
तब बोले जगदीश जगत गुरु सुनो सूर मम गाथ।
तू कृत मम यश जो गावैगो सदा रहै मम साथ॥ ११०४॥

अब यह निश्चय हुआ कि सूरदासजी ने श्री वल्लभाचार्यजी से दीक्षा लेने के पीछे उन्हीं के उपदेशानुसार लीलाभेद से सूर-सागर एक लाख पदों में बनाया, तथा वल्लभाचार्यजी के सेवक होने के पूर्व कर्मकांड तथा वेदांतादि ज्ञान उपासना में भी सूरदास-जी बहुत भटक चुके थे, इससे ये श्री वल्लभाचार्यजी से अवस्था में भी कुछ कम ही जान पड़ते हैं। सूरदासजी ने दृष्टकूट अर्थात् चित्र काव्यों का संग्रह "साहित्य लहरी" नामक एक ग्रंथ संवत्

* भगवान् के दर्शन पाने का वर्णन सूरदास जी ने अपने "प्रथम ही पृथु जन्म" वाले पद में भी किया है।

१६०७ * में बनाया है। इस ग्रंथ के पद जहाँ तक मैंने ढूँढ़े सूर-सागर में नहीं मिले। इससे यह अनुमान होता है कि यह ग्रंथ सूर-सागर के पीछे बना, नहीं तो इसके पद भी उसमें अवश्य आ जाते, अतएव यदि साहित्यलहरी और सूरसागर-सारावली का समय पास ही पास माना जाय तो संवत् १६०७ से ६७ वर्ष निकाल देने से संवत् १५४० के लगभग सूरदासजी के जन्म का समय निश्चय होता है, परंतु यह संभव है कि सूरसागर समाप्त करने के कुछ काल पीछे सारावली बनाई हो और साहित्यलहरी उसके पहिले ही बन चुकी हो। इसलिये इनका जन्मकाल संवत् १५४० से संवत् १५५० तक में मानते हैं।

सूरदासजी के पदों की बड़ी संख्या ही उन्हें दीर्घायु बतलाती है। इसके अतिरिक्त ऊपर हम ६७ वर्ष की अवस्था में सूरसागरसारावली का बनाना सिद्ध कर चुके हैं, इसके अतिरिक्त उनकी निज रचित निम्न लिखित कविता से भी सिद्ध होता है कि तीसरी अवस्था तक वे इधर उधर ही घूमते रहे—

"बिनती करत मरत हौं लाज।
नख सिख लौं मेरी यह देही है पाप की जहाज॥
और पतित आवत न आँखि तर देखत अपनो साज।
तीनो पन भरि ओर निबाह्यो तऊ न आयो बाज॥"

---

* मुनि पुनि रसन के रसलेष।
दशन गौरीनन्द (१६०७) को लिखि सुबल संबत पेष।
नंदनंदन मास छै तें हीन तृतिया बार।
नंदनंदन जनम ते हैं बाण सुख आगार॥
त्रितय रिच्छ सुकरम योग विचारि सूर नवीन।
नंदनंदनदास हित साहित्यलहरी कीन॥ १०६॥
(साहित्यलहरी—पृष्ठ १०१ खड्गविलास प्रेस बाँकीपुर से प्रकाशित)

"आछो गात अकारथ गारयो ।
करी न प्रीति कमललोचन सों जन्म जुवा ज्यों हारयो ।।
निसि दिन विषय विलासनि विलसत फूटि गई तब चारयो ।
अब लाग्यो पछितान पाइ दुख दीन दई को मारयो ।।
कामी कुटिल कुचाल कुदर्शन कौन कृपा करि तारयो ।
तातें कहत दयालु देव मुनि काहे सूर विसारयो ।।"

"मेरो मन मतिहीन गुसाईं ।
सब सुखनिधि पदकमल छाँड़ि श्रम करत स्वान की नाईं ।।
फिरत वृथा भाजन अवलोकत सूने सदन अज्ञान ।
तिहिं लालच कबहूँ कैसेहूँ तृप्ति न पावत प्रान ।।
जहँ जहँ जात तहीं भय त्रासत आस लकुटि पद त्रान ।
कौर कौर कारन कुबुद्धि जड़ किते सहत अपमान ।।
तुम सर्वज्ञ सकल विधि पूरन अखिल भुवन निजनाथ ।
तिन्हैं छाँड़ि यह सूर महा सठ भ्रमत भ्रमनि के साथ ।।"

"अपनी भक्ति देहु भगवान ।
कोटि लालच जो दिखावहु नाहिनै रुचि आन ।।
जरत ज्वाला गिरत गिर तें सुकर काटत सीस ।
देखि साहस सकुच मानत राखि सकत न ईस ।।
जा दिना तें जन्म पायों यहै मेरी रीति ।
विषय बिष हठि खात नाहीं टरत करत अनीति ।।
थके किंकर यूथ यम के टारे टरत न नेक ।
नरक कूपनि* जाइ यमपुर परयो बार अनेक ।।
नहिनै काँचौ कृपानिधि करौ कहा रिसाइ ।
सूर तबहुँ न सरन छाँड़ै डारिहै कढ़राइ ।।"

* इस पद में भी कूएँ में गिरने की सूचना दी है ।

"दीनानाथ अब बार तुम्हारी।
पतित उधारन विरद जानि कै बिगरी लेहु सँवारी ॥
बालापन खेलत ही खोयो युवा विषय रस माते।
वृद्ध भए सुधि प्रगटी मोकों दुखित पुकारत तातें ॥
सुतनि* तज्यो तिय तज्यो भ्रात तजि तन त्वच भई जु न्यारी।
श्रवन न सुनत चरन गति थाकी नैन भए जलधारी ॥
पलित केस कफ कंठ विरोध्यो कल न परी दिन राती।
माया मोह न छाड़ै तृष्णा ए दोऊ दुख दाती ॥
अब या व्यथा दूरि करिबे को और न समरथ कोई।
सूरदास प्रभु करुनासागर तुम तें होइ सु होई ॥"

"हरि हौं महा पतित अभिमानी।
नर पापिन सों बैठि विषम रत भाव भगति नहिं जानी ॥
....
माया मोह लोभ नहिं जामें ऐसो वृंदावन रजधानी।
नवल किशोर जलद तनु सुंदर विसरयो सूर सकल सुखदानी ॥"

"अब के नाथ मोहि उबारि।
मग नहीं भव अंबुनिधि में कृपासिंधु मुरारि ॥
नीर अति गंभीर माया लोभ लहरति रंग।
लए जाति अगाध जल में गहे ग्राह अनंग ॥
मीन इंद्रिय अतिहिं काटति मोट अघ सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत उरझि मोह सिवार ॥
काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम नौका ओर ॥

* जान पड़ता है इन्हें स्त्री, पुत्र भी थे पर सब मर गए थे।

थक्यो बीच बिहाल बिह्वल सुनो करुणामूल ।
श्याम भुज गहि काढ़ि लीजै सूर ब्रज के कूल ॥"

"वादिहि जन्म गयो सिराइ ।
हरि सुमिरन नहिं गुरु की सेवा मधुबन बस्यो न जाइ ॥
अब की बेर मनुष्य देह धरि भजो न आन उपाइ ।
भटकत फिरयो स्वान की नाईं नेक जूठ के चाइ ॥
कबहुँ न रिझए लाल गिरिधरन विमल विमल जस गाइ ।
प्रेम सहित पग बाँधि घुघरू सक्यो न अंग नचाइ ॥
श्री भागवत सुन्यो नहिं श्रवननि नेकहुँ रुचि उपजाइ ।
अनन्य भक्ति न हरि भक्तनि के कबहूँ धोए पाइ ॥
कहा कहूँ जो अद्भुत है वह कैसे कहूँ बनाइ ।
भव अंबोधि नाम निज नौका सूरहिं लेउ चढ़ाइ ॥"

इन पदों तथा "प्रथम ही प्रथु जगात" वाले पद से स्पष्ट प्रगट होता है कि वृद्धावस्था तक शांति के साथ सूरदासजी जमकर ब्रज में नहीं रह सके थे, यद्यपि श्री वल्लभाचार्यजी के शिष्य हो चुके थे, लाखों पद भक्ति रस के बना चुके थे परंतु नियमपूर्वक ब्रजवास नहीं करते थे। अंत में बहुत ही वृद्धावस्था में ब्रज में विरक्त होकर आ बसे और शांत होकर रहे जैसा कि इन पदों से प्रगट होता है—

"मेरी जियै सु ऐसी बनी ।
छाँड़ि गुपाल और जो जाँचौं तौ लाजै जननी ॥
कहा काँच को संग्रह कीजै त्यागि अमोल मनी ।
विष को मेरु कहा लै कीजै अमृत एक कनी ॥
मन बच क्रम सत भाउ कहत हौं मेरे श्याम धनी ।
सूरदास प्रभु तुमरी भक्ति लगि तजी जाति अपनी ॥"*

* जान पड़ता है कि विरक्त हो गए थे ।

"जौ हम भले बुरे तौ तेरे।
तुम्हैं हमारी लाज बड़ाई बिनती सुनु प्रभु मेरे॥
सब तजि तुव सरनागत आयो निज कर चरन गहे रे।
तुम प्रताप बल बहुत न काहू निडर भए घर चेरे॥
और देव सब रंक भिखारी त्यागे बहुत अनेरे।
सूरदास प्रभु तुमरी कृपा तें पायों सुख जु घनेरे॥"

"हमें नंदनंदन मोल लिए।
यम के फंद काटि मुकराए अभय अजात किए॥
भाल तिलक श्रवननि तुलसी दल मेटे अंक विए।
मूँड़े मूँड़ कंठ बनमाला मुद्रा चक्र दिए॥
सब कोउ कहत गुलाम श्याम को सुनत सिरात हिए।
सूरदास को और बड़ो सुख जूठन खाइ जिए॥"

निदान सूरदासजी का वृद्धावस्था में व्रज में आ रहना इन पदों से स्पष्ट है। अब यह देखना चाहिए कि इनके परमधाम जाने का समय कौन है? ऊपर लिखे प्रमाणों से यह विदित होता है कि इनकी अवस्था ८० वर्ष से कम नहीं थी इसलिये संवत् १५४० से संवत् १५५० तक जन्म मानने से लगभग संवत् १६३०—१६४१ के बीच में इनका मृत्युसमय आता है। इस मत की पुष्टि कुछ कुछ प्रसिद्ध कवि व्यासजी के नीचे लिखे पद भी करते हैं। व्यासजी उरछे के रहनेवाले थे और संवत् १६१२ में ४५ वर्ष की अवस्था में श्री वृंदावन आकर श्री हरिवंश गोशाईंजी के शिष्य होकर रहने लगे। (भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र रचित "वैष्णव-सर्वस्व", मिस्टर ग्राउस की "मथुरा" नामक पुस्तक तथा "राजा प्रतापसिंह" सिधुआ, अवध रचित "भक्तकल्पद्रुम" में देखिए।) इनका पीछा जब घरवाले नहीं छोड़ते थे तब इन्होंने भंगी के हाथ का श्री राधा-

वल्लभजी का महाप्रसाद, जो वैष्णवों का जूठा बचा था, खा लिया था। व्यासजी लिखते हैं—

"इतनो है सब कुटुम हमारो।
सैन धना और नामा पीपा कबीर रैदास चमारो ॥
रूप सनातन को सेवक मंगल भट्ट (गंगजल भट्ट—पाठांतर) सुखारो।
सूरदास परमानंद मेहा मीरा भक्ति बिचारी ॥
ब्राह्मन राजपुत्र कुल उत्तम तेऊ करत जाति को गारो।
आदि अंत संतन को सर्वसु राधावल्लभ प्यारो ॥
आसू को हरिदास रसिक हरिवंश न मोहि बिसारो।
यह पथ चलत श्याम श्यामा के व्यासहि बोरौ भावहि तारो ॥"

"साँचे साधु जु रामानंद।
जिन हरि जू सों हित करि जान्यो और जानि दुख दंद ॥
जाको सेवक कबीर धीर अति सुमति सुर सुरानंद।
तब रैदास उपासिक हरि कौ सूर सु परमानंद ॥
उनते प्रथम तिलोचन, नामा, दुख मोचन सुखकंद।
खेम, सनातन भक्ति सिंधुरस, रूप, रघू, रघुनंद ॥
अलि हरिवंशहिं फब्यो राधिका पद पंकज मकरंद।
कृष्णदास हरिदास उपास्यो, वृंदावन को चंद ॥
जिन बिनु जीवत मृतक भए हम सह्यो विपति के फंद।
तिन बिनु उर को सूल मिटै क्यों जिए व्यास अति मंद ॥"

"बिहारहिं स्वामी* बिनु को गावै।
बिनु हरिवंसहिं राधावल्लभ को रस रीति सुनावै ॥

---

* स्वामी—हरिदास स्वामी।

रूप सनातन बिनु को वृंदाविपिन माधुरी पावै ।
कृष्णदास बिनु गिरिधर जू को को अब लाड़ लड़ावै ॥
मीराबाई बिनु को भक्तन पिता जानि उर लावै ।
स्वारथ परमारथ जैमल बिनु को सक बंधु कहावै ॥
परमानंद दास बिनु को अब लीला गाइ सुनावै ।
सूरदास बिनु पद रचना को कौन कबहिं कहि आवै ॥
और सकल साधुन बिनु को अब यह कलिकाल कटावै ।
व्यास दास इन सब बिनु को अब तन की तपनि बुझावै ॥"

ऊपर के पद से स्पष्ट विदित है कि इसमें लिखे महात्माओं से व्यासजी से स्नेह था तथा च इस पद के बनने के समय ये सब लोग काल के गाल में आ चुके थे। स्वामी हरिदासजी का मृत्यु-समय मिस्टर ग्राउस संवत् १८६५ अनुमान करते हैं, हरिवंशजी का जन्म संवत् १५५९, संवत् १५८२ में श्री राधावल्लभजी का स्थापन किया, (वैष्णवसर्वस्व) रूप सनातन गोशाईं ने संवत् १६४७ में गोविंद देवजी का मंदिर बनवाया (मि० ग्राउस की मथुरा)। कृष्णदास सूरदासजी के साथी थे श्री वल्लभाचार्य के शिष्य और श्री नाथजी (गोवर्धननाथ, गिरिधर, देवदमन इत्यादि नामांतर) के मंदिर के अधिकारी थे, मीराबाई का मृत्युसमय लगभग संवत् १६०४, (मुंशी देवीप्रसाद जोधपुर का पत्र) जयमलजी मेरते के राव थे, मीरा जी के भाई लगते थे और संवत् १६२४ में चित्तौर की प्रसिद्ध लड़ाई में मारे गए, परमानंददासजी और सूरदासजी समकालीन थे, निदान इससे यह स्पष्ट है कि सूरदासजी का मृत्युसमय संवत् १६१२ के पीछे और संवत् १६६५ के पहले था, ऐसी दशा में ऊपर लिखे प्रमाणों से संवत् १६३०-४० में सूरदासजी की मृत्यु का समय मानना मुझे असंगत नहीं जान पड़ता। सुप्रसिद्ध विद्वान् पुरातत्त्ववेत्ता डाक्तर ग्रियर्सन ने सूरदास

जी का जन्म संवत् १५४० और मृत्यु संवत् १६२० में होना लोक-परंपरा से सुनकर लिखा है * परंतु वे इस मत का विरोध करते हैं क्योंकि सन् १५९६-९७ ई० (संवत् १६५३-५४) में आईन अकबरी समाप्त हुई, और उससे उस समय सूरदासजी और उनके पिता बाबा रामदास का जीवित रहना संभवत: जाना जाता है परंतु मेरे अनुमान में ऊपर लिखे प्रमाणों को काटकर केवल आईन अकबरी के इस अनुमान पर इस मत को अयुक्त मानना उचित नहीं है क्योंकि आईन अकबरी में उसकी समाप्ति के समय इन लोगों का निश्चय रूप से जीवित रहना नहीं लिखा है, उस समय तक जो लोग अकबर के दर्बार में रह चुके थे या उस समय तक की जो घटनाएँ थीं उन्हीं को उसने लिखा है। यह क्या आवश्यकता है कि जितने गवैयों या गुणियों या राजाओं आदि के नाम उसमें लिखे हैं वे सब उस ग्रंथ की समाप्ति के समय में जीवित ही रहे हों।

इन प्रमाणों के अतिरिक्त हम और दृढ़तर प्रमाण संवत् १६४८ तक सूरदासजी के जीवित रहने का देते हैं। अबुल फजल ने एक ग्रंथ "मुंशियात अबुल फजल†" नाम का बनाया था। इसमें बहुत से पत्रों का संग्रह है। उसके अंत में एक पत्र सूरदास जी के नाम का है जो बादशाह की आज्ञा से सूरदासजी को काशी में अबुल फजल ने लिखा था। इस पत्र का अनुवाद तथा प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी देवीप्रसाद (मुंसिफ जोधपुर) ने इसके विषय में जो कुछ लिखा है उसे हम अविकल उद्धृत करके तब आगे अपना मत लिखेंगे।

* पहले मैंने भी भ्रमवश इस मत की पुष्टि निज प्रकाशित "सूरसागर" की भूमिका में की थी।

† यह हस्तलिखित ग्रंथ मुंशी देवीप्रसाद के पास है, इसे मुंशी नवलकिशोर ने छापा भी है परंतु छपे हुए ग्रंथ में यह पत्र नहीं है।

मुंशी जी लिखते हैं—

" दफ़्तर दोम मुंशियात अबुल फजल के अखीर में एक खत दर्ज है जिसकी सुर्खी यह है कि " दर बनारस बूद " अबुल फजल ने इस खत को बादशाहों की तारीफ से शुरू करके लिखा है कि "खुदाशिनास ब्राह्मण और सहरानशीं जोगी व संन्यासी भी बादशाहों के दुआगो और मोतकिद होते हैं और बादशाह भी इख्लाक दीन और मजहब का लिहाज न रखकर इन खुदादोस्तों का हुक्म उठाते हैं। उन बादशाहों का तो जिक्र ही क्या है जो बुजुर्ग मानवी भी हों और अब तो नौबत बादशाह की (अकबर की) पहुँची है जिनकी खुदापरस्ती और नेकजाती की कुछ हद नहीं है। खुदा ने इनको पेशवाय मानी बनाया है पस हम लोगों से इनकी बुजुर्गी की क्या तारीफ हो सकती है मगर बहुत में से जो कुछ कि थोड़ा सा मैंने समझा है वह यह कि जैसे खुदा ने अगले जमाने में रामचंद्र जी को अह्ले दुनिया में से चुनकर हकशिनासी की अक्ल अता की थी वैसे ही आज खिलअत गिराँमाय: इस बुजुर्ग को अता फर्माया है, लेकिन फर्क यह है कि रामचंद्र एक ऐसे जमाने में थे कि जब नेकी और मेहरबानी शाय: थी और सतजुग था और आज कलजुग है और यह ऐसा बुजुर्ग सूरत व मानी इसी जमाने में है। किसी में अक्ल और गोयाई कहाँ है कि जो इस पेशवाय आफाक के कमालात को समझे और कहे तमाम साकिनान रुब: मसकून व कोह व शहर व जंगल का यह है कि इस हजरत के फर्माने को खुदा का फर्माना समझकर जानोदिल से इसके बजा लाने की कोशिश करें।

मैं आपकी दानिश और फिरासत की शरह पहिले से नेक सीरत और बेगरज आदमियों की जुबानी सुना करता था और गायबान: आपको दोस्त रखता था और अब जो वाजे रास्त व दुरुस्त ब्राह्मणों

से सुना कि आप इस बादशाह वक्त की बुजुर्गी और हक्कानियत का पता लगाकर मोतकिद हकीकी हो गए हैं आपकी दानिश और रयाजत का बखूबी इम्तिहान हो गया। बुजुर्गाने खुदा को फकीरी के लिबास में पहिचान लेना मुश्किल नहीं है जितना कि लिबास तअल्लुक और बादशाही में पहिचानना मुश्किल है और बहुत ऐसे भी दाना लोग होते हैं कि जो जाहिरी बातों पर नजर डालकर मानी से गाफिल हो जाते हैं।

हज्रत बादशाह अनकरीब इलाहाबाद में तशरीफ लावेंगे। उम्मैद है कि आप भी शर्फ मुलाजिमत से मुशर्रफ होकर मुरीद हकीकी हों और खुदा का शुक्र है कि हज्रत भी आपको हक शिनास जानकर दोस्त रखते हैं और जब वह दोस्त रखते हैं तो इस दर्गाह के मुरीदों और मुखलिसों का बेहतर तरीक सिवाय दोस्ती के और क्या होगा। अल्लाह ताला जल्द आपकी दीदार नसीब करे ताकि आपके फैज सुहबत और सखुनान दिलकश से हम भी बहर:वर हों और यह बात कि वहाँ का करोड़ी आपके साथ अच्छा सुलूक नहीं करता है बंद:गान हज्रत को (अकबर को) भी बहुत बुरी लगी है और इस बाब में उसके नाम भी फर्मान अताबआमेज सादिर हुआ है और इस कमतरीन मुरीदान अबुलफजल को भी हुक्म दिया गया है कि आप दो तीन कलमे लिखिए अगर करोरी यानी तहसीलदार मजकूर आपकी नसीहत से बाहर हो तो उसको माजूल कर दें और जिसको आप मुनासिब समझें और जो फकीर व गरीब और तमाम मखलूक का खूब गौर कर सकै उसका नाम लिख भेजैं ताकि अर्ज करके उसको मुकर्रर करा दूँ। गरज कि हजरत बादशाह आपको खुदा से जुदा नहीं जानते हैं इस वास्ते उस जगह के मामिले की तशखीस आपकी राय पर छोड़ी हुई है वहाँ ऐसा

हाकिम चाहिए जो आप का ताबः हो और जिस तौर से कि आप करार दें अमल में लावै आपसे यह ही पूछना ही सच कहना और सच करना है। खत्रियों वगैरह में से जिस किसी को आप मुनासिब समझें कि वह खुदाशिनासी करके गमख्वारी करेगा उसी का नाम लिख भेजें ताकि अर्ज करके रवाना करूँ खुदापरस्त बुजुर्गों को खुदाई कारोबार में नाहकशिनास जाहिरपरस्तों के ताना का अंदेशा नहीं होता है अलहम्दुलिल्लाह कि मसूदाक इसके आपकी जातशरीफ है अल्लाह तआला हमेशः आपके एमाल शाइस्तः को तौफीक दे और हक परस्ती की हालत पर कायम रक्खे। वस्सलाम फकत।"

इस पत्र में तारीख या स्थान जहाँ से पत्र लिखा गया नहीं लिखा है। मुंशी देवीप्रसादजी "अकबरनामा" के अनुसार बादशाह का पहले पहल प्रयाग में आना और किला तथा बाँध बनवाना मिती अगहन सु० ९ संवत् १९४० (७ जीकादः सन् ९९१ हिजरी) को लिखते हैं। वह यह भी लिखते हैं कि उस समय प्रयाग एक कस्बा मात्र था इसके पीछे ही शहर बसा। (अबुलफजल के नौकर होने का समय संवत् १६३१ और राजा वीरसिंहदेव बुँदेले के हाथ से मारे जाने का समय संवत् १६५९ लिखते हैं।) दूसरी बेर बादशाह, शाहजादः सलीम से मिलने के लिये इलाहाबाद को भादो सु० ९ संवत् १६६१ को चले परंतु माता की अस्वस्थता आदि के कारण जा न सके, लौट आए। मुंशीजी अनुमान करते हैं कि इसी दूसरी बेर बादशाह से प्रयाग में मिलने के लिये सूरदासजी को अबुल-फजल ने लिखा होगा, क्योंकि इस समये बादशाह वहाँ जा न सका और सूरदासजी न मिले क्योंकि यदि वे मिलते तो अवश्य अबुल-फजल इसे अकबरनामे में लिखता। दूसरा अनुमान उनका यह है कि यह बनारस के सूरदास कोई दूसरे सूरदास थे क्योंकि पत्र की

लिखावट से ये ब्राह्मण जान पड़ते थे और वे ब्रह्मभट्ट थे और निवास-स्थान दोनों के अलग अलग थे परंतु गुण दोनों के एक ही प्रतीत होते हैं। मैं मुंशीजी के दोनों मतों से विरोध करता हूँ।

मेरे अनुमान में यह दोनों ही सूरदास एक और प्रयाग में सूरदासजी अकबर से संवत् १६४० ही में मिले थे तथा बादशाह के आग्रह पर कुछ गाकर सुनाया था कि जिसके आश्रय पर 'वार्ता' आदि में सूरदासजी का अकबर के यहाँ जाना लिखा है और 'आईने अकबरी' में इनका शाही गवैया होना लिखा गया है।

पत्र के देखने से यह स्पष्ट प्रगट है कि यह सूरदास उस समय अत्यंत ही प्रसिद्ध और सर्वमान्य थे तथा इनकी कविता आदरणीय थी। "सखुनानदिलकश" से इनका अत्यंत मनोरंजक कवि होना स्पष्ट विदित होता है। यह संभव नहीं कि इतने बड़े महात्मा और कवि काशी में कोई रहे हों और उनका नाम निशान तक मिट गया हो! न तो प्रसिद्ध सूरदास के अतिरिक्त काशी के दूसरे सूरदास का नाम कहीं किसी धर्मग्रंथ इतिहासग्रंथ में आया है और न ढूँढ़ने पर भी काशी में कहीं इनका पता लगता है। केवल मात्र बाबू अक्षयकुमार दत्त ने अपनी बँगला पुस्तक "भारतवर्षीय उपासकसंप्रदाय" के पहले भाग में (पृष्ठ ३२ द्वितीय संस्करण) लिखा है कि सूरदास रामानंद के शिष्य थे, इन्होंने सवा लाख पद बनाए थे, यह एक संप्रदाय प्रचारक भी कहे जा सकते हैं क्योंकि जो सब अंधे साधू एकतारा लेकर गाते हुए घूमते फिरते हैं वह सब सूरदासी कहलाते हैं। "प्रवाद है कि काशी से एक कोस उत्तर शिवपुर गाँव में इनकी समाधि है" परंतु बाबू साहब की सभी बातें सवालाख पद बनाने के अतिरिक्त निर्मूल हैं। न तो सूरदास रामानंद के शिष्य थे, न उन्होंने कोई मत चलाया (इसमें संदेह नहीं कि अंधे मात्र को लोग सूरदास कहते हैं

और प्राय: अंधे फकीर गाकर भीख माँगते हैं) और न शिवपुर में कहीं इनकी समाधि ही है। मेरे अनुमान में उन्हीं सूरदासजी का काशी में आना संभव है, क्योंकि उनका प्राय: इधर उधर घूमते रहना हम ऊपर सिद्ध कर चुके हैं। इसके अतिरिक्त श्री वल्लभ संप्रदाय की वार्ताओं को देखने से यह स्पष्ट जाना जाता है कि श्री वल्लभाचार्य जी तथा गोस्वामी विट्ठलनाथजी प्राय: विदेश घूमते रहते थे और उस समय शिष्य-मंडली उनके साथ रहती थी, जिनमें प्राय: गुणी लोग थे। कुंभनदासजी की वार्ता में स्पष्ट लिखा है कि वे अत्यंत ही दरिद्रावस्था में थे अतएव गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी ने आज्ञा दी कि इस बेर तुम हमारी विदेश-यात्रा में साथ चलो तो तुम्हारी जीविका का कुछ प्रबंध करा दिया जाय। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य थी, चुप रहे, साथ में यात्रा की, परंतु श्री गोवर्धननाथ का वियोग असह्य था, रात के समय "किते दिन ह्वै जु गए बिनु देखे" गाते हुए रोते थे। यह समाचार श्री गोशाईंजी को मिला। उन्होंने यह कहकर उन्हें घर लौटाया कि जिसकी एक दिन में यह दशा है वह अधिक दिन विदेश क्योंकर रह सकता है। वास्तव में हरि-सेवा से विमुख रहना कुंभनदासजी को असह्य था। उन्होंने निर्भीक चित्त से अकबर को सुनाया था—

"भक्तन को कहा सीकरी * सों काम।
आवत जात पनहियाँ टूटी बिसरि गयो हरि नाम॥
जिनको मुख देखत दुख उपजत तिनको करनी पड़ी सलाम।
कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम॥"

इसके अतिरिक्त काशी से श्री वल्लभाचार्यजी का विशेष संबंध था। विद्याध्ययनादि यहीं हुआ था। सेठ पुरुषोत्तमदास प्रभृति अनेक

* फतेहपुर सीकरी में प्राय: अकबर धर्मचर्चा किया करता था।

धनिक शिष्य यहीं थे। शास्त्रार्थ यहीं किया था और अंत में परम-धाम को भी यहीं से संन्यासधर्म ग्रहण करके पधारे। यहाँ इनकी तीन बैठकें हैं और इस संप्रदाय के लोग काशी आकर इन स्थानों का, विशेषकर हनुमानघाट पर महाप्रस्थान के स्थान का, दर्शन परम पुनीत समझते हैं। ऐसी अवस्था में यह बहुत ही संभव है कि वे यहाँ आए हों और यहाँ के करोड़ी (तहसीलदार) के अन्याय पर चिढ़कर अकबर को कुछ लिखा हो। यहाँ पर यह भी लिखना असंगत न होगा कि उस समय प्राय: बहुत से खत्री इस संप्रदाय के अनुयायी हो गए थे। क्या आश्चर्य है कि इसी लिये अबुलफजल ने खत्रियों की ओर इंगित किया हो।

"आईनेअकबरी" संवत् १६५३–५४ में बनी। उसमें सूरदासजी का गवैयों में नाम है, परंतु इस पत्र से सूरदासजी का पहले कभी अकबर के यहाँ जाने का पता नहीं लगता, संभवत: प्रयाग में सूरदास जी का शाही दर्बार में जाना और कुछ गाना ही इस लिखे जाने का मूल है। अबुलफजल का दुराग्रह और अकबर को बढ़ाने की चेष्टा अक्षर अक्षर से झलकती है। यहाँ तक कि उसे परमेश्वर के तुल्य बना दिया है। अकबर अपने को जिन हिंदुओं का बड़ा पक्षपाती प्रगट करता था उनके परमाराध्य भगवान् श्री रामचंद्र जी से भी बढ़-कर अपने को लिखवाया है! परंतु इन सभों पर भी सूरदासजी का उस समय कैसा मान था यह इस पत्र से स्पष्ट प्रगट है। यद्यपि वह सूरदासजी को बादशाह का मुरीद (चेला) होने का इशारा करता है तथापि पूरा साहस न करके मुरीद की टीका 'दोस्ती' करता है। ऐसे महानुभाव का एक बेर दर्बार में आ जाना और कुछ गाना अपने ग्रंथों में गवैया लिख लेने के लिये अबुलफजल को यथेष्ट था, तिस पर इनके पिता तो गवैए थे ही। अब यदि मुंशीजी

के मतानुसार संवत् १६६१ में प्रयाग आने को सूरदासजी को लिखा जाना माना जाय तो ऊपर लिखे प्रमाणों से सिद्ध नहीं होता। अकबर के दर्बार में उसकी इस कृपा का धन्यवाद देने के लिये, जो उसने करोड़ी को बदलकर की थी, सूरदासजी का जाना कुछ असंगत नहीं था। इसके अतिरिक्त जो इस पत्र में मुरीद होने या दोस्ती करने को लिखा गया था उसका भी कुछ उत्तर देना उचित था जो कि निम्न-लिखित पद से प्रगट होता है। यह एक प्रसिद्ध बात है तथा 'वार्ता' आदि ग्रंथों में लिखी भी है कि सूरदासजी ने अकबर के दर्बार में जाकर निम्न लिखित पद गाया था—

"नाहिन रह्यो मन में ठौर।
नंदनंदन अछत हिय में आनिए केहि और॥
कहत कथा अनेक ऊधो* लोक लोभ दिखाय।
कहा कहूँ हिय प्रेम पूरित घट न सिंधु समाय॥
चलत बैठत उठत जागत सुपन सोवत रात।
हृदय तें वह मदन मूरति छिन न इत उत जात॥
श्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास।
सूर ऐसे दरस कारन मरत लोचन प्यास॥"

यह भी संभव है कि स्वयं न जाकर इस पत्र के उत्तर में यही पद अबुल फजल के पास लिखकर भेज दिया हो, परंतु यह समय संवत् १६४० को छोड़कर संवत् १६६१ नहीं हो सकता।

सूरदासजी के काशी आने का कुछ कुछ आभास उनके इस पद से भी पाया जाता है—

---

* ऊधो से अबुलफजल को ले सकते हैं जिसने अकबर का सँदेसा सूरदासजी को लिखा था।

"सुवा चलि ता बन को रस पीजै ।
जा बन रामनाम अमृत रस श्रवन पात्र भरि लीजै ।।
को तेरो पुत्र पिता तू काको घरनी घर को तेरो ।
काम कराल स्वान को भोजन तू कहै मेरो मेरो ।।
बड़ी बारानसि मुक्त क्षेत्र है चलि तोको दिखराऊँ ।
सूरदास साधुन की संगति बड़ो भाग्य जो पाऊँ ।।"*

प्रयाग आने का आभास निम्नलिखित पद से पाया जाता है। यह गंगाजी के भगीरथ के द्वारा पृथ्वी पर आने के प्रसंग में मिलता है जहाँ प्रयाग या त्रिवेणी-संगम के वर्णन की कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती ।

"जय जय जय जय माधव बेनी ।
जग हित प्रगट करी करुनामय अगतिन को गति दैनी ।।
जानि कठिन कलिकाल कुटिल नृप संग सजी अघसैनी ।
जनु ता लगि तरवार त्रिविक्रम धरि करि कोप उपैनी ।।
मेरु मूठि वर वारि पाल छिति बहुत वित्त की लैनी ।
सोभित अंग तरंग त्रिसंगम धरी धार अति पैनी ।।"

प्रयाग में (अरइल ग्राम में) श्री वल्लभाचार्य के बड़े पुत्र गोस्वामी श्री गोपीनाथजी का तथा गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी के कई बालकों का जन्मस्थान है ।

जो कुछ हो, अबुलफजल का उक्त पत्र हमारे चरित्रनायक का महत्त्व-सूचक तथा उनके समय आदि के निर्णय में बहुत कुछ सहायक है।

इन प्रमाणों पर विचार करने से सूरदासजी का मृत्युसमय संवत् १६४० के पीछे और संवत् १६४२ के पहले निश्चित होता है, क्योंकि

* बाबा बेनीमाधवदास लिखित तुलसी-चरित में सूरदास के काशी आने और तुलसीदासजी से मिलने का उल्लेख है ।—संपादक

'वार्ता' के अनुसार सूरदासजी की मृत्यु के समय गोस्वामी विट्ठलनाथजी विद्यमान थे जिनका अंतर्धान समय संवत् १६४२ है।

जन्मस्थान तथा वासस्थान

सूरदासजी के, ४३६ पृष्ठ में लिखे, पद के अनुसार इनके पिता आगरा तथा गोपचल में आ बसे थे, इसके अनुसार इनका जन्म गोपचल में होना संभव है। गोपचल* कहाँ है, इसका पता मुझे नहीं लगा। डाक्तर हंटर के गजटियर में इस नाम का कोई स्थान नहीं है, न मिस्टर ग्राउस ने ही व्रज में इस नाम का कोई स्थान लिखा है। संभव है कि कोई अप्रसिद्ध स्थान हो वा अब नाम बदल गया हो। 'वार्ता' में इनका आगरा और मथुरा के बीचो बीच गऊघाट† पर रहना तथा वहीं श्री वल्लभाचार्य का सेवक होना लिखा है। संभव है कि इस स्थान पर जो गाँव बसा रहा हो उसका नाम गोपचल हो। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' की टीका में इनका जन्म दिल्ली के पास सीही गाँव में होना लिखा है (सूरदासजी पर भारतेंदु हरिश्चंद्र का लेख) परंतु गजटियर में ढूँढ़ने पर दिल्ली के पास तो सीही का पता नहीं लगता, हाँ मथुरा नामक पुस्तक में इस सीही गाँव को एक प्रसिद्ध स्थान लिखा है। यह गौड़वा ठाकुरों का वासस्थान है और यहाँ अनेक बड़े मंदिर हैं तथा कार्तिक की पूर्णिमा को दो बड़े मेले लगते हैं। इस सीही गाँव में सूरदासजी का जन्म होना कुछ असंभव नहीं है, क्योंकि गोपचल के नाम से इस स्थान का व्रज में होना ही अनुमान होता है अतएव उसका नामांतर सीही होना या गोपचल और सीही का आस पास होना असंभव नहीं है।

---

* मुंशी देवीप्रसादजी ने गोपचल को ग्वालियर लिखा है।

† गऊघाट आगरा से नौ कोस पर मथुरा की सड़क पर है।

तारीख बदाऊनी के अनुसार संवत् १६०२-१६१० के समय में सूरदासजी के पिता बाबा रामदास का दिल्ली में इसलामशाह के दर्बार में और फिर बैरमखाँ के साथ रहना सिद्ध होता है। संभव है कि सूरदासजी भी इनके साथ रहे हों। इसके पीछे इनका अकबर के दर्बार में जाना आईन अकबरी से पाया जाता है। इसके अतिरिक्त ऊपर प्रकाशित इनके पदों से सूरदास जी का अनेक स्थानों में घूमना और अंत में व्रज में आकर रहना निश्चत होता है। इनके पद तथा 'वार्ता' आदि से व्रज में वृंदावन, मथुरा, गोकुल और गोवर्धन में रहना तथा श्री गोवर्द्धन की तलहटी में परासोली गाँव में मरना लिखा है। यह परासोली सीही के पास ही है और यह भी गोड़वा ठाकुरों का वासस्थान है। 'वार्ता' के अनुसार मरने के समय श्री गोवर्धन पर, श्रीनाथजी के मंदिर से उतरकर, सूरदासजी परासोली चले गए और उसी दिन वहीं मरे।

पहली अवस्था में व्रज से कहीं अन्यत्र रहने और फिर वृंदावन में आ रहने की सूचना, आगे लिखा पद भी देता है—

"धनि यह वृंदाबन की रेनु।
नंदकिसोर चराईं गैयाँ मुखहिं बजाई बेनु॥
मदन मोहन को ध्यान धरै जो अति सुख पावत चैनु।
चलत कहा मन बसति पुरातन जहाँ लैन नहिं दैनु॥
इहाँ रहौ जहँ जूठनि पावै व्रजबासिन के ऐनु।
सूरदास ह्याँकी सरवरि नहिं कल्पवृच्छ सुरधेनु॥"

"आईन अकबरी"कार इनके पिता को ग्वालेरी लिखता है और बदाऊनी उनका लखनऊ से आना बतलाता है परंतु इसका और कहीं प्रमाण ठीक नहीं मिलता। किंतु इसमें संदेह नहीं कि ये बहुत स्थानों में घूमे थे।

———

प्रथमावस्था

सूरदासजी के किसी पद से या कहीं पर उनके चरित्र-वर्णन से यह पता नहीं लगता कि वे प्रथमावस्था में क्या करते थे। केवल इतना ही जाना जाता है कि वे अपने पिता के साथ रहा करते थे और इनके पिता ने इन्हें गान-विद्या तथा फारसी और देशी भाषाओं को पढ़ाया था। ऊपर लिखा जा चुका है कि इनके छः भाई थे और वे सब बादशाह के लिये युद्ध करके मारे गए। इससे जान पड़ता है कि वे लोग सदा से दिल्ली के बादशाह के दर्बार में रहा करते थे। इनके भाई लोग भी किसी बादशाह की सेवा में थे, यह पता नहीं चल सकता कि किस बादशाह की सेवा में थे और किस लड़ाई में मारे गए, क्योंकि सूरदासजी के जन्म से लेकर अकबर के समय तक कई बादशाह हुए और इसमें बहुत कुछ लड़ाई झगड़े और राज्य-परिवर्तन होते रहे। विचार करने से अनुमान होता है कि छः लड़कों के मारे जाने से इनके पिता विरक्त हो गए थे और इसी लिये बाबा कहलाते थे। सूरदासजी अंधे थे तथा सदा से भगवद्भक्त थे इसी लिये उन्होंने भगवद्गुणानुवाद करने में समय बिताया। सूरदासजी की फारसी और संस्कृत की जानकारी उनके पदों से स्पष्ट विदित होती है। इसके अतिरिक्त उस समय के शाही दफ्तरों के नियमों तथा व्यापार आदि के नियमों से भी वे पूर्ण अभिज्ञ थे। यह बात उनके पदों से जानी जाती है। उदाहरण के लिये दो एक पद उद्धृत करते हैं—

"साँचो सो लिखधार कहावै।
काया ग्राम मसाहत करि कै जमा बाँधि ठहरावै॥
मन्मथ करै कैद अपनी में जान जहतिया लावै।
माँड़ि माँड़ि खरिहान क्रोध को फोता भजन भरावै॥

बट्टा काट कसूर भर्म को फरै तलै लै डारै ।
निश्चय एक असल पै राखै टरै न कबहूँ टारै ॥
करि अवारजा नेम प्रीति को असल तहाँ खतियावै ।
दूजी करै दूरि करि दाई तनक न तामैं आवै ॥
मुजमिल जोरै ध्यान कूल का हंसो तहं लै राखै ।
निर्भै रूपै लोभ छाँड़ि कै सोई वारिज राखै ॥
जमा खर्च एकै करि समझै लेखा समुझि बतावै ।
सूर आप गुजरान मुहासिब लै जवाब पहुँचावै ॥"

"हो मन राम नाम को गाहक ।
चौरासी लख जिया योनि में भटकत फिरत अनाहक ॥
भक्ति हाट बैठि तू थिर ह्वै हरि नग निर्मल लेहि ।
काम क्रोध मद लोभ मोह तू सकल दलाली* देहि ॥
करि हियाव सोँ सौज लादि यह हरि के पुर लै जाहि ।
घाट बाट कहुँ अटक होइ नहिं सब कोउ देहिं निबाहि ॥
और बनज में नाहीं लाहा होत मूल में हानि ।
सूर स्वामि को सौदो साँचो कहो हमारो मानि ॥"

कृष्णगढ़ के महाराज नागरीदासजी ने अपने "पदप्रसंगमाला" ग्रंथ में, अनेक महात्माओं के पदों के प्रसंग में सूरदासजी का भी कुछ वर्णन किया है। उसमें उनके विषय में लिखा है कि "दोऊ नेत्र करि हीन एक ब्रजबासी को लरिका ब्रज में सूरदास सो होरी के भड़ौआ बनावै ह्वै हुकिया ताके वास्ते श्री गुसाईं जू सों जाइ लोगनि ने कही तापर श्री गुसाईं जू वा लरिका कों बुलाय वाके भँड़उआ सुने हँसे श्री मुख तें कह्यो जु लरिका तू भगवत जस बखान श्री भागवत के अनुसार प्रथम जनम ही की लीला गाय" इत्यादि परंतु

* दलालों का अत्याचार उस समय भी था।

यह सर्वथा असंभव है क्योंकि श्री गोसाईंजी अर्थात् श्री गोस्वामि विट्ठलनाथजी का समय पीछे है और सूरदासजी श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य हुए थे इसे हम प्रमाणित कर चुके हैं, हाँ यह मान लें कि श्री गुसाईंजी भ्रम से लिख गया है वहाँ पर श्री महाप्रभुजी होना चाहिए तो किसी प्रकार से यह माना जा सकता है। होरी के दो तुकिया भड़ौए इस प्रकार के होते हैं—

"खिसली तोहि देखि अटा तें।
तू जु कहे हो तोहि अधवर लूँगो अब मेरी टूटी है बाँह बरातें॥"
"कब निकसैगो सूक चले चालो।
गोरी ने डोला सजवायो रसिया ने सिकल करगो भालो॥"

परंतु सूरदासजी की कविता में ऐसे भड़ौए मुझे अभी तक कहीं नहीं मिले। अस्तु, प्रथमावस्था तो इनकी इधरउ धर ही घूमते बीती। इसी अवस्था में ये श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य हुए परंतु इसका ठीक पता नहीं लग सकता कि किस समय शिष्य हुए। श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु सबसे पहले संवत् १५४९ में व्रज में आए और श्री गोवर्धन की गुफा से श्री गोवर्धननाथजी (श्रीनाथजी) को निकालकर प्रगट किया और संवत् १५५६ में पूर्णमल्ल खत्री ने श्रीनाथजी का मंदिर बनवाना आरंभ किया जो कि संवत् १५७६ में बनकर तैयार हुआ। इसी समय श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु ने श्रीनाथजी की सेवा का मंडान बाँधा तथा कीर्तन की सेवा कुंभनदासजी को सौंपी। (पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या प्रकाशित "श्री गोवर्धननाथजी की प्रागट्यवार्ता" देखिए) 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में सूरदासजी के प्रसंग में लिखा है कि गऊघाट पर सूरदासजी श्री महाप्रभुजी के सेवक हुए, वहाँ से वे श्री महाप्रभुजी के साथ गोकुल आए, वहाँ बाललीला के पद गाए, इस पर श्री महाप्रभुजी ने सोचा कि श्रीनाथजी

की सेवा का और मंडान तो सब हो गया है केवल कीर्तन का नहीं हुआ है सो सूरदासजी को श्रीजीद्वार लाए और कीर्तन की सेवा सौंपी। परंतु मुझे यह ठीक नहीं जान पड़ता क्योंकि आईन अकबरी से सूरदासजी का अकबर के समय में होना सिद्ध है। अकबर संवत् १६१२ में तख्त बैठा और श्रीनाथजी की सेवा का मंडान हुआ संवत् १५७५ में। यह हो सकता है कि वृद्धावस्था में जब सूरदासजी व्रज आकर रहे हों तब श्री महाप्रभुजी ने अथवा श्री गोसाईंजी ने इन्हें कीर्तन की सेवा सौंपी हो, परंतु इसमें संदेह नहीं कि ये श्री वल्लभाचार्यजी के शिष्य पहले से हो चुके थे। ऊपर प्रकाशित इनके पदों पर विचार करने से यह बात सिद्ध होती है। (देखो "हरि सुमिरन नहिं गुरु की सेवा" आदि) यह तो नाना प्रमाणों से सिद्ध है कि श्री वल्लभाचार्यजी के सेवक होने के पूर्व से ये कविता करते थे परंतु उन्हें शृंखला में लगाना तथा लीलानुसार शृंखलाबद्ध कविता करना यह श्री वल्लभाचार्य के सेवक होने के पीछे किया है। (श्री वल्लभ गुरु तत्त्व सुनायो, लीला भेद बतायो) अतएव यह समय अनुमान से सूरदासजी के ४०-५० वर्ष की अवस्था का प्रतीत होता है। यह भी संभव है कि सूरदासजी अन्यत्र भी घूमते हों और बीच बीच में व्रज में भी आते रहे हों, जैसा पृष्ठ ४६६ में "धनि यह वृंदावन की रेनु" वाले पद में वे लिखते हैं कि "चलत कहा मन बसति पुरातन जहाँ लेन नहिं दैनु।" अर्थात् व्रज में आकर यह पद बनाया था परंतु अपनी पुरानी बस्ती में फिर जाने की इच्छा होती थी।

'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में लिखा है कि सूरदासजी स्वामी थे, गऊघाट पर रहते थे और लोगों को सेवक किया करते थे, परंतु श्री वल्लभाचार्य का दर्शन कर ऐसी भक्ति उमड़ी कि स्वयं उनके शिष्य

हो गए। इससे अधिक इनकी प्रथमावस्था का कहीं कुछ पता नहीं मिलता।

रीवाँधीश महाराज रघुराजसिंह ने (रामरसिकावली में) लिखा है कि एक दिन सूरदासजी की स्त्री ने उनसे कहा कि मेरी परोसिन स्त्रियाँ यह कहकर परिहास करती हैं कि तू किसके लिये श्रृंगार करती है। सूरदासजी ने कहा, एक दिन तू सभों को बुला और सब श्रृंगार कर मेरे सामने आ। स्त्री ने ऐसा ही किया। सूरदासजी ने अपनी स्त्री को देखते ही कहा कि अरे! तैंने आज भाल पर बेंदी क्यों नहीं दी है? यह सुन सब स्त्रियाँ अचंभे में आ गईं।

अकबर के दर्बार में सूरदासजी के जाने के विषय में ऊपर बहुत कुछ लिखा जा चुका है अतएव हम उन सभों का पुनरुल्लेख न कर केवल इस विषय में जो एक बात महाराज रघुराजसिंह ने लिखो है उसी का वर्णन करते हैं। महाराज लिखते हैं कि अकबर ने सूरदासजी से पूछा, तुम कौन हो। उन्होंने कहा, अपनी बेटी से पूछिए। बेटी को जो सूरदासजी का वृत्तांत जान पड़ा तो उसने शरीर ही छोड़ दिया। बहुत पूछने पर प्रगट हुआ कि बादशाह की बेटी श्री राधिकाजी की सहचरी थी। किसी चूक पर म्लेच्छ के घर जन्मी थी और सूरदासजी उद्धव थे। श्रीमती के मान के समय भगवान् की ओर से कुछ कटूक्ति के कारण श्रीमती के शाप से पृथ्वी पर जन्मे।

कवि मियाँसिंह ने भी "भक्तविनोद" में सूरदासजी के ऐसे ही चरित्र वर्णन किए हैं।

ग्रंथ और कविता

"साहित्यलहरी", "सूरसागर" और "सूरसागर-सारावली" के अतिरिक्त और कोई ग्रंथ सूरदासजी का बहुत खोज करने पर भी

नहीं मिलता। लोकपरंपरा से सुना जाता है कि उन्होंने "नल-दमयंती काव्य" भी बनाया था, परंतु उसका कहीं कुछ पता नहीं है। "कविवचनसुधा" में इस ग्रंथ के लिये १००) रु० पारितोषिक देने का एक विज्ञापन पूज्य भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने दिया था परंतु कुछ भी पता न लगा। आश्चर्य यह है कि इनके इतने पदों में से एक भी मनुष्य-गुणानुवाद में नहीं मिलता। यद्यपि इनका तथा इनके पूर्वजों का शाही दर्बार से संबंध पाया जाता है तथापि कहीं किसी की प्रशंसा में सिवाय भगवद्गुणानुवाद के इन्होंने अपनी कविता शक्ति को चरितार्थ न किया, यहाँ तक कि स्वयं अपने भगवत्तुल्य गुरु श्री वल्लभाचार्यजी के गुणानुवाद में भी "भरोसो दृढ़ इन चरणनि केरो" के अतिरिक्त और कोई पद नहीं बनाया है।

"साहित्यलहरी" के पद "सूरसागर" में नहीं मिलते, यद्यपि इस प्रकार के बहुत से पद दृष्टकूट वा श्लेष के सूरसागर में हैं तथापि उसमें के पद इसमें नहीं आए हैं। इससे यह अनुमान होता है कि यह ग्रंथ कहीं से संग्रह नहीं किया वरंच स्वतंत्र ग्रंथ बनाया था। इसका एक प्रमाण यह भी है कि इसके बनाने का समय अलग दिया हुआ है। इस पर जो टीका हुई है वह, ठीक पता नहीं लगता कि, किसकी है। पूज्य भारतेंदुजी ने अनुमान किया था कि यह टीका भी सूरदास ही की है परंतु ऐसा नहीं है क्योंकि इसमें जो दोहे प्रमाण में दिए गए हैं वे "भाषा भूषण" के हैं।

वर्तमान समय में जो "सूरसागर" मिलता है उसमें लगभग ४१२५ पद हैं। बत्तीस अक्षर के अनुष्टुप् छंदों की श्लोकसंख्या लेने से लगभग २६५०० श्लोक होते हैं। लोकपरंपरा से यह प्रसिद्ध है कि "सूरसागर" सवा लाख पदों का संग्रह है। स्वयं सूरदासजी ने भी "सूरसागर-सारावली" में लिखा है "ता दिन तें हरि-

लीला गाई एक लक्ष पद बंद" परंतु इसमें न तो एक लाख पद ही आते हैं और न एक लाख श्लोक ही। मैंने इस संदेह को मिटाने के लिये "सूरसागर" की तीन प्रति संग्रह की और तीनों का मिलान किया। एक पूज्य भारतेंदुजी के "सरस्वती भंडार" की, दूसरी श्रीमान् काशिराज के पुस्तकालय की और तीसरी जानी मलखानचंद की कोठी की; परंतु इन सभों में कुछ पाठांतर तथा पचीस पचास पदों की कमी बेशी के अतिरिक्त कुछ अंतर नहीं पाया। लखनऊ की छपी "सूरसागर" तथा "रागकल्पद्रुम" के "सूरसागर" में भी प्रायः इन्हीं सब पदों में से लिए हुए पद हैं। इससे यह संदेह हो सकता कि सवा लाख पदों की गप ही गप है; वास्तव में सूरसागर इतना ही है। परंतु ऐसा नहीं है क्योंकि एक तो स्वयं सूरदासजी ने एक लाख पद बनाना लिखा है, दूसरे सूरसागर के अतिरिक्त सूरदासजी की और भी बहुतेरी कविता मिलती है, जैसे "साहित्य लहरी" तथा वल्लभ-संप्रदाय के कीर्तन की पुस्तकों में स्फुट पद आदि। इससे यही सिद्ध होता है कि या तो सूरदासजी ने सब मिलाकर सवा लाख पद बनाए जिनमें से सूरसागर इतने ही पदों का संग्रह है या यह कि बड़े सूरसागर से छाँटकर किसी ने सुगमता के लिये यह सूरसागर संग्रह कर लिया है जो संसार में प्रसिद्ध हो गया। कांकरौली के टिकैत श्री गोस्वामी महाराज बालकृष्णलालजी ने मुझसे कहा है कि मेरे यहाँ "सूरसागर" सवा लाख पदों का पूरा ग्रंथ है परंतु मैं जब तक स्वयं उसे न देख लूँ उसके विषय में कुछ नहीं कह सकता। "सूरसागर" संग्रह के विषय में तीन कहावतें प्रसिद्ध हैं, जिनका उल्लेख "भक्तकल्पद्रुम" ने किया है। एक तो यह कि पछत्तर हजार पद बनाकर सूरदासजी की मृत्यु हो गई तब पचीस हजार भगवान् ने बनाकर और सूरश्याम नाम देकर एक लाख पूरे किये, (परंतु

यह असंगत है क्योंकि सूरश्याम नाम सूरदासजो स्वयं लिखते थे, यह उन्हीं के पद से प्रगट है "नाम राखे मोर सूरजदास सूर सुश्याम")। दूसरी यह कि अकबर के वजीर भाषारसिक खानखाना ने सूरसागर संग्रह किया। वे प्रति पद के लिये एक एक अशर्फी देते थे परंतु जब लोग लोभ से झूठे पद बना बनाकर लाने लगे तब उन्होंने तौलना आरंभ किया। जो पद सूरदासजी के होते, वे चाहे बड़े हों या छोटे, तौल में बराबर उतरते और जो झूठे होते वे कितने ही बड़े क्यों न हों हलके हो जाते; तीसरी यह कि अकबर ने पदों का संग्रह किया परंतु झूठे पदों की बहुतायत से संख्या बहुत बढ़ गई तब सब को आग में डाल दिया। जो सूरदासजी के थे, न जले और जो झूठे थे वे जल गए। वास्तव में सूरसागर की रचना से यह स्पष्ट विदित होता है कि यह एक समय में नहीं बना वरंच पीछे से संग्रह करके शृंखला में लगा दिया गया है। मेरे अनुमान में यह संग्रह सूरदासजी ही ने पीछे से कर दिया है, क्योंकि एक तो सारावली में स्पष्ट उन्होंने लिखा ही है, दूसरे एक प्रसंग से दूसरे प्रसंग को मिलाने के लिये उन्होंने जो दोहे आदि बनाकर मिलाए हैं उनसे स्पष्ट जाना जाता है कि यह संग्रह उन्हीं का किया हुआ है— परंतु पीछे से। प्राचीन शैली भी कुछ ऐसी ही जान पड़ती है कि पदों में जो लीला वर्णन करते हैं उनमें पूरा पूरा पूर्वापर संबंध नहीं मिलाते। तुलसीदासजी ने भी प्राय: ऐसा ही किया है—जैसे रामगीतावली में अयोध्याकांड का पहला पद है—"नृप कर जोरि कह्यो गुरु पाहीं। ......राम होहिं युवराज जियत मम यह लालच मन माहीं"। फिर बिना कैकेयी के वर माँगे, बिना राजा के वचन दिए और बिना रामचंद्रजी को वहाँ बुलाए दूसरे ही पद में दशरथजी रामचंद्रजी से कहते हैं कि हमारी बात को मत मानो "सुनहु राम मेरे प्राण पियारे। जारो सत्य बचन श्रुति समता जातें बिछुरत चरण तिहारे।"

नाम के लिये तो "सूरसागर" श्रीमद्भागवत का अनुवाद है परंतु वास्तव में सूरदासजी ने इस ग्रंथ को अपने इच्छानुसार घटाया बढ़ाया है यहाँ तक कि जो लीलाएँ भागवत में नहीं हैं उन्हें दूसरे पुराणों से भी लेकर लिख दिया है। स्वयं भी एक स्थल पर "बावन-पुराण" का नामोल्लेख किया है ("सूरसागर" बंबई पृष्ठ ३६४ पंक्ति २३ "व्यास त्रिपद बावन पुराण कह्यो सूर सोइ गाइ")। एक एक लीला का, कई कई तरह पर, कई कई बेर वर्णन किया है और कहीं लीलाओं को उलट फेर भी कर दिया है, जैसे अहिल्योद्धार की कथा सूरदासजी ने श्रीरामचंद्रजी के वन-गमन पर केवट के प्रसंग में वर्णन की है। निदान सूरदासजी ने किसी के बंधन में न बँधकर स्वेच्छानुसार इसकी रचना की है।

"सूरसागर-सारावली" को सूरदासजी ने एक होली लीला की रीति पर वर्णन किया है "खेलत एहि विधि हरि होरी हो होरी हो वेद विदित यह बात।" इस पद से आरंभ किया है और अंत में होली की समाप्ति के साथ समाप्त किया है, बीच में ११०७ छंदों में "सूरसागर" तथा सृष्टि की यावत् कल्पना संक्षेप से कही है, अर्थात् मानो संसार क्या है एक होली का खेल है। यह सारावली अवश्य ही सूरसागर बनने के पीछे बनी है और इसकी कविता से स्पष्ट है कि यह सूरदासजी ही की रचना है।

सूरदासजी आशुकवि थे। अंधे कवि प्रायः आशुकवि होते ही हैं। प्रमाण में हम लोग भारतमार्तंड श्रीगट्टूलालजी का दर्शन कर ही चुके हैं। सूरदासजी के आशुकवित्व का परिचय "वार्ता" से मिलता है, उनकी कविता धारावाही चलती थी। जब श्री वल्लभाचार्यजी ने इनको आज्ञा दी कि भगवल्लीला कहो तो इन्होंने "ब्रज भयो है महरि के पूत जब यह बात सुनी" यह पद आरंभ किया,

कहते कहते ऐसे प्रेमोन्मत्त हो गए कि कविताधारा बंद ही न होती थी। अंत में श्री महाप्रभुजी ने यह कहकर "सुनु सूर सबनि की यह गति जिन हरिचरण भजे" उन्हें रोका और पद की समाप्ति की। यह पद वल्लभ-संप्रदाय के मंदिरों में भगवान् के जन्म समय, वेद की ऋचाओं की भाँति, अवश्य ही गाया जाता है। इस आशु-कविता के साथ ही विशेषता यह है कि इनकी सहज कविता भी मनो-मुग्धकारी कवित्व गुण से रहित नहीं होती थी। प्रसिद्ध है कि अकबर प्रायः इनके पद सुना करता था। एक दिन तानसेन ने इनका यह पद गाया—

"जसुदा बार बार यह भाखै।
है कोउ ब्रज में हितू हमारो चलत गोपालहिं राखै॥"

बादशाह ने अर्थ पूछा, तानसेन ने कहा कि "जसुदा बार बार (बेर बेर) कहती हैं कि ब्रज में कोई हमारा ऐसा हितकारी है जो गोपाल को मथुरा जाने से रोक दे"। इतने में शेख फैजी आ गए। उनसे पूछने पर उन्होंने कहा "बार बार" अर्थात् रो रो कर कहती हैं। इतने में बीरबल आ गए। उन्होंने कहा "बार बार अर्थात् द्वार द्वार पर जाकर कहती हैं।" इतने में खानखाना आ गए। उन्होंने कहा "बार बार अर्थात् प्रत्येक बाल से (रोम रोम से) कहती हैं"। बादशाह ने कहा कि इसके अर्थ इन लोगों ने कई प्रकार से किए हैं और सब अर्थ कह सुनाया। खानखाना ने कहा "जहाँपनाह! अर्थ तो वही है जो मैंने किया। इन लोगों ने अपने अपने अवस्था-नुसार अर्थ किया था।" बादशाह ने पूछा "अपने अपने अवस्था-नुसार क्या?" खानखाना ने कहा "तानसेन गवैया हैं, इनका स्वभाव एक अंतरा को बार बार गाना है इसलिए इन्होंने यह अर्थ किया। शेख फैजी कवि हैं और कवियों का काम रोने धोने का है

इसलिए इन्होंने यही अर्थ किया और बीरबल ब्राह्मण हैं। इनका काम द्वार द्वार पर जाकर भीख माँगना है इससे इन्होंने ऐसा अर्थ किया।" बादशाह सुनकर हँस दिए और सूरदासजी की कविता को सराहने लगे।

देखिए इस कविता में कैसी बारीकी है—

"पिया बिनु साँपिन कारी रात।
जो कबहूँ कै उअत जुन्हैया डसि उलटी ह्वै जात॥"

बरसात की शुक्लपक्ष की अँधेरी रात में बिरहिनी कहती है कि बिना प्यारे के यह काली रात साँपिन सी है। जब बादल हट जाने से चाँदनी छिटकती है तो साँपिन मानों काटकर उलट जाती है— साँप के नीचे का भाग सफेद होता है और साँप काटकर जब उलट जाता है तभी विष का असर होता है! कैसी स्वाभाविक परंतु हृदय-वेधिनी उक्ति है! धन्य सूरदास! यह तुम्हारे ही हिस्से है! किसी कवि ने ठीक कहा है—

किधौं सूर को सर लग्यो किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद सुन्यो जो अस विकल सरीर॥"

परंतु कवि थोड़ा चूका है। सूर का शर या सूर की पीर केवल दुखदायी ही है परंतु सूर के पद की व्याकुलता के भीतर जो अनिर्वचनीय आनन्द निहित है वह अतुलनीय है—उसकी समता क्या संसार के कोई पदार्थ कर सकता है?

हाँ, जिस कवि ने सूरदासजी को सूर्य की उपमा दी है उसने बहुत ठीक किया है। वास्तव में भाषा-साहित्य-संसार में सूर सूर्य का यदि उदय न होता तो अंधकार ही रहता। सूरदासजी की कविता वास्तव में, सूर्यनारायण की किरणों का सा ही प्रभाव रखती है। जैसे ही ग्रीष्म ऋतु में नारायण की किरणें

प्रखरतर होती हैं वैसे ही इनके दृष्टकूट आदि पांडित्यपूर्ण पद अच्छे अच्छे कवि कोविद और पंडितों के मस्तिष्क को भी अपनी प्रखरता से उत्तप्त कर देते हैं और जैसे ही ग्रीष्म की किरणें जल आकर्षण कर वर्षाऋतु में उनसे संसार को सिंचत कर तृप्त करती हैं वैसे ही ये प्रखर किरणें भी काव्य जगत् के रसों को अपने अंतर में धारण कर उन पर विचार करनेवालों के हृदय को काव्य-सुधा बरसाकर तृप्त करती हैं। जैसे वर्षाऋतु में अपने आकर्षित जीवन से नारायण संसार को सिंचित करते हैं, वैसे ही इनकी सरस-भावमयी कविता अपनी सुधा-वृष्टि से रसिक-जन-मन-मयूर को आह्लादित करती है तथाच परम शुष्कहृदय ज्ञानियों या नास्तिकों के हृदय सरोवर को भी प्रेमजल से परिपूरित कर देती है। और जैसे ही शीत-ऋतु में भगवान् दिवाकर की मधुर किरणें प्राणिमात्र को परम सुखद होती हैं वैसे ही इनकी परम मधुर अथच स्वाभाविक भगवान् की लीला-मयी कविता भक्त-हृदय को शांतिसुख से सुखी करती है। वैज्ञानिकों के मत से सूर्यनारायण की किरणें ही इस सौर जगत् में प्रकाश-वितरण करती हैं, वास्तव में यही प्रभाव भाषा-साहित्य-जगत् में सूरकाव्य-किरणावली का भी है। यह बात आज मानी जाती है ऐसा नहीं है, यह सूरदासजी के समय में भी मानी गई थी। "चौरासी वैष्णवों की बारता" में कृष्णदासजी के प्रसंग में लिखा है कि सूरदासजी ने एक दिन कृष्णदासजी से कहा कि आपकी कविता में मेरी छाया आ जाती है कुछ स्वतंत्र कविता लिखिए। कृष्णदासजी ने दूसरे दिन लाने की प्रतिज्ञा की; रात्रि के समय उन्होंने बड़े परिश्रम से नवीन भाव का एक पद बनाया परन्तु तीन ही तुकें बनीं चौथी रात भर परिश्रम करने पर भी न बनी, हारकर छोड़ दिया तब श्रीनाथजी ने चौथी तुक आप लिख दी। दूसरे दिन सूर-

दासजी को दिखाया। सूरदासजी देखते ही भगवद्वाक्य पहिचान गए और बोले मेरी आपकी होड़ थी, कुछ प्रभु से होड़ नहीं थी।

किसी ने ठीक कहा है कि—

"जो कुछ रही सो सूरज कह गए और रही सो तुलसी।
बाकी बची सो कबिरा कह गए अब जु कहै सो जूठो ॥"

वास्तव में अब कुछ कविता करना मानों उन्हीं सभों का पिष्ट-पेषण मात्र है। रीवाँ-नरेश महाराज रघुराजसिंह ने स्पष्ट ही लिखा है—

"मतिराम, भूषण, बिहारी, नीलकंठ, गंग,
बेनी, शंभु, तोष, चिंतामणि, कालिदास की।
ठाकुर, नेवाज, सेनापति, शुकदेव, देव,
पजन, घनआनँद, सुघनश्यामदास की ॥
सुंदर, मुरारी, बोधा, श्रीपति हूँ, दयानिधि,
युगल, कविंद, त्यों गोविंद, केशवदास की।
भनै रघुराज और कबित्त अनूठो उक्ति
मोहि लगी जूठी जानि जूठी सूरदास की ॥१॥"

किसी कवि ने कहा है—

"उत्तम पद कवि गंग के कविता को बलबीर।
केशव अर्थ गंभीर को सूर तीन-गुन धीर ॥"

प्रबंध अधिक बढ़ने के भय से हम यहाँ केवल उनके दो पदों को उद्धृत करते हैं। एक बाललीला का और दूसरा गोपी-प्रेम-दशा वर्णन का। पाठकगण देखेंगे कि कैसी स्वभावोक्ति है और कैसी प्रेम की पराकाष्ठा वर्णन की है।

"खेलत में को काको गोसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा बरबस ही कत करत रिसैयाँ ॥

जाति पाँति हम तें कछु नाहिन बसत तुम्हारी छैयाँ ।
अति अधिकार जनावत याते॑ अधिक तुम्हारे हैं कछु गैयाँ ॥
रुहठि करै तासों को खेलै रहे पौढ़ि जहँ तहँ सब ग्वैयाँ ।
सूरदास प्रभु खेलाइ चाहत दाँव दयो करि नंददोहैयाँ ॥ १ ॥

"ग्वारिन प्रगट्यो पूरन नेहु ।
दधि भाजन सिरपर धरें कहति गोपालहिं लेहु ॥
बन बीथिन ब्रज पुर गली जहीं तहीं हरि नाँउ ।
समुझाई समुझति नहीं सिख दै विथक्यो गाँउँ ॥
कौन सुनै काके श्रवन काकी सुरत सकोच ।
कौन निडर डर आपको को उत्तम को पोच ॥
प्रेम पिए वर वारुनी बलकत बल न सँभार ।
पग डगमग जित तित धरति मुकुलित अलक लिलार ॥
मंदिर मैं दीपक बरै हो बाहर लखै न कोय ।
तिन्हैं प्रेम परगट भए हो गुप्त कौन पैं होय ॥
लज्जा तरलतरंगिनी गुरुजन गहरी धार ।
दुहुँ कुल कूल तरुनि मिली तिहि तरत न लागी बार ॥
विधि भाजन ओछो रच्यो शोभा सिंधु अपार ।
उलटि मगन तामैं भई तब कौन निकासनिहार ॥
सरिता निकट तड़ाग के हो दीनों कूल उदार ।
नाम मिट्यो सरिता भई तब कौन निवेरै वार ॥
चित आकर्ष्यो नंदसुत मुरली मधुर बजाइ ।
जिहि लज्जा जग लज्जियो सो लज्जा गई लजाइ ॥
प्रेम मगन ग्वालिनि भई सूर सुप्रभु के संग ।
नैन बैन मुख नासिका ज्यों केचुलि तजति भुजंग ॥ १ ॥"

सहृदय पाठक ज्यों ज्यों इस प्रेमसिंधु में डूबेंगे त्यों त्यों ही आनंद-गिरि-शिखर का उच्चतर आसन अधिकार करते जायँगे।

मृत्यु

इनकी मृत्यु के विषय में "चौरासी वैष्णवों की बारता" में लिखा है कि जब सूरदासजी को जान पड़ा कि अब हमारा समय निकट है तब श्री नाथजी के मंदिर से निकलकर परासोली गाँव में चले गए। वहाँ से श्रीनाथजी के मंदिर की ध्वजा का दर्शन होता था। लोगों ने श्री गोशाईं जी से यह समाचार कहा। श्री गोशाईं जी ने वैष्णवमंडली में घोषणा करा दी कि "पुष्टिमार्ग (श्रीवल्लभीय-संप्रदाय) का जहाज डूबता है जिससे जो लेते बने सो ले" और कहा कि "राजभोग आरती करके मैं स्वयं भी आता हूँ।" आरती करके आप भी पधारे। राज भोग आरती सबेरे प्राय: दस ग्यारह बजे तक हो जाती है अतएव यह समय दोपहर के पहले का था। श्री गोशाईं जी को देखकर सूरदासजी ने गद्गद कंठ से कहा—

'देखो देखो हरि जू को एक सुभाय।
अति गंभीर उदार उदधि प्रभु जान शिरोमणि राय॥
राई की सी सेवा को फल मानत मेरु समान।
समुझि दास अपराध सिंधु सम बुंद न एकौ जान॥
बदन प्रसन्न कमल पद संमुख दीखत ही हैं ऐसे।
ऐसे विमुखहु भए कृपा करि जब देखै तब तैसे॥
भक्त विरह कातर करुणामय डोलत पाछे लागे।
सूरदास ऐसे प्रभु को कत दीजै पीठ अभागे॥ १॥"

समवेत वैष्णव-मंडली में से चतुर्भुजदासजी ने सूरदासजी से पूछा "महाराज, आपने लाखों ही पद बनाए परंतु गुरु-चरण (श्री

वल्लभाचार्य) की वंदना में कोई भी पद न कहा, इसका क्या कारण है ?" सूरदासजी ने निम्नलिखित पद कहकर इसका स्पष्ट उत्तर दे दिया कि मैं गुरु और गोविंद में पार्थक्य नहीं देखता, इसलिये जो कविता मेरी हैं सभी गुरु और गोविंद ही की वंदना में हैं—

भरोसो दृढ इन चरणनि केरो ।
श्री वल्लभ-नख-चंद्रछटा बिनु सब जग माँझ अँधेरो ॥
साधन और नाहिं या कलि में जातें होय निवेरो ।
सूर कहा कहै द्विविध* आँधरो बिना मोल को चेरो ॥ १ ॥

भक्त-शिरोमणि सूरदासजी ध्यानमग्न थे। श्री गोशाईंजी ने पूछा कि "सूरदास जी, इस समय चित्त-वृत्ति कहाँ है ?" सूरदासजी बोले—

"बलि बलि बलि हो कुँवरि राधिके नंदसुवन जासों रति मानी ।
वे अति चतुर तुम चतुर-शिरोमनि प्रीति करी कैसे होत है छानी ॥
वे जु धरत तन कनक पीतपट सो तो सब तेरी गति ठानी ।
ते पुनि श्याम सहज वे शोभा अंबर मिस अपने उर आनी ॥
पुलकित अंग अबहिं ह्वै आयो निरखि देखि निज देह सियानी ।
सूर सुजान के बूझे प्रेम प्रकास भयो बिहसानी ॥ १ ॥"

इतने में सूरदासजी के नेत्रों की सजल गति देखकर श्री गोशाईं जी ने पूछा "सूरदासजी, इस समय नयनों की वृत्ति कहाँ है ?" सूरदासजी बोले—

खंजन नैन रूप रस माते ।
अतिसय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते ॥

---

* द्विविध अर्थात् एक पक्ष में तो चतुर्भुजदास के प्रश्न का उत्तर दिया कि द्विविधा न जानने का अंधा हूँ । दूसरे पक्ष में कहा कि मेरी प्रत्यक्ष और हृदय की दोनों ही आँखें फूटी हैं; दोनों तरह से अंधा हूँ ।

चलि चलि जात निकट कानन लौं उलटि फिरत ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके न तरु कबै उड़ि जाते ॥

देखते देखते ही सूरसागर में पुष्टि-मार्ग का सूर जहाज मग्न हो गया। आपमें आप लय हो गए। लौकिक लीला का अनुभव करते करते अलौकिक लीला में प्राप्त हो गए। इस संसार में "भ्रम-निशा" का मिटानेवाला यह अलौकिक सूर्य (सूर) अस्त हो गया, परंतु आश्चर्य यह है कि सूर्य तो अस्त हुआ परंतु अपना प्रकाश छोड़ गया।

स्फुट

यह हम ऊपर कह आए हैं कि लोग सूरदासजी को उद्धवजी का अवतार मानते हैं, कोई कोई इन्हें भगवान् के अष्ट-सखा में से कृष्ण नाम सखा का अवतार मानते हैं। अष्टछाप के आठों महात्माओं को अष्ट-सखा का अवतार माना है। यथा श्री गोस्वामि द्वारिकेशजी महाराज लिखते हैं—

"सूरदास सो तो कृष्ण तोक परमानंद जानो।
कृष्णदास सो ऋषभ छितस्वामि सुबल बखानो ॥
अर्जुन कुंभनदास चत्रभुजदास विशाला।
नंददास सो भोज स्वामि गोविंद श्री दामला ॥
अष्टछाप आठो सखा श्री द्वारिकेस परमान।
जिनके कृत गुणगान करि निज जन होत सुथान ॥ १ ॥"

(पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या प्रकाशित
श्री गोवर्धननाथजी की वार्ता पृष्ठ २४)

सूरदासजी के विषय में नाभाजी ने भक्तमाल में लिखा है—
" सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै ॥

भक्ति (उक्ति—पाठांतर) चोज अनुप्रास बरन अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुकधारी।
प्रतिबिंबित दिव्य दृष्टि हृदै हरिलीला भासी।
जनम करम सुभ रूप सबै रसना सुप्रकासी॥
विमल बुद्धि गुनि और की जो वह गुनि श्रवणनि धरै।"

श्री हरिवंश गोस्वामीजी के शिष्य ध्रुवदासजी ने "भक्तनामावली" ग्रंथ में लिखा है—

"परमानँद अरु सूर मिलि गाई सब ब्रज रीति।
भूलि जाति विधि भजन की सुनि गोपिन की प्रीति॥"

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने "उत्तरार्द्ध भक्तमाल" में लिखा है—

"अघ निकर सूरकर सूर पथ सूर सूर जग मैं उयो॥
वल्लभ सागर, विट्ठल जाहि जहाज बखान्यो।
जग-कवि-कुल मद हर्यो प्रेम नीके पहिचान्यो॥
एक वृत्ति नित सवा लाख हरि पद रचि गाए।
श्री वल्लभ वल्लभ अभेद करि प्रगट जनाए॥
जा पद बल अबलौं नर सकल गाइ गाइ हरि जस जियो।"

इन सूरदासजी के अतिरिक्त चार सूरदासों का और वर्णन ग्रंथों में मिलता है।

(१) प्रसिद्ध सूरदास-मदनमोहन—ये सूरध्वजी ब्राह्मण अकबर के समय में संडीले के चकलेदार थे। श्री वृंदावनवाले श्री मदनमोहनजी इनके इष्ट थे इसी लिये ये अपना नाम सूरदास-मदनमोहन लिखते थे। इनके काव्य भी बहुत अच्छे और प्रसिद्ध हैं।

(२) ध्रुवदासजी ने श्री वृंदावनस्थ संकेतवटनिवासी एक दूसरे सूरदास जी का नामोल्लेख किया है—

" सेयो नीकी भाँति सों श्रो संकेत स्थान ।
रह्यो बड़ाई छाँड़ि कै सूरज द्विज कल्यान ॥"

(३) प्रसिद्ध महात्मा विल्वमंगलजी को भी सूरदास कहते हैं।

(४) महाराज रघुराजसिंह ने "रामरसिकावली भक्तमाला" में एक सूरदास सूर्य के उपासक का वर्णन किया है। इनको सूर्यनारायण ने दर्शन दिया था।

एक सूरज कवि का वर्णन और डाक्टर ग्रियर्सन ने, सूदन कवि के लिखने के अनुसार, किया है परंतु मेरे अनुमान में ये वही प्रसिद्ध सूरदासजी हैं दूसरे कोई नहीं। एक सूरदास (सूर साहब) राधा-स्वामी के नवीन प्रचलित मत में माने जाते हैं। इनके बनाए कुछ पद इस संप्रदाय द्वारा प्रकाशित "संतसंग्रह द्वितीय भाग" में मिलते हैं। कविता के देखने से ये वह प्रसिद्ध सूरदास नहीं जान पड़ते, और कोई पता इनका नहीं मिलता।

"सूरसागर" का आश्रय लेकर संवत् १८०० में व्रजवासी-दास ने "व्रजविलास" नामक प्रसिद्ध ग्रंथ श्री कृष्णचरित्र व्रज-विहार बनाया। यह ग्रंथ गोस्वामी श्री तुलसीदासजी के रामायण के अनुकरण पर बना है और कुछ कुछ उसी की तरह इसका भी प्रचार है। प्राय: कृष्णलीला इसी के आधार पर होती है। व्रजवासीदासजी ने स्वयं लिखा है—

" मोतें यह अति होत ढिठाई। करत विष्णुपद की चौपाई ॥

....

श्री शुकदेव कही हरिलीला। सुनी परीच्छित सब गुणशीला ॥
सूरदास सोइ हरि रस सागर। गायो बहु विधि परम उजागर ॥
फैलि रह्यो सो त्रिभुवन माहीं। गावत सुनत सुगम हरखाहीं ॥
विविधि प्रकार चरित हरि केरे। नामहु बरने सूर घनेरे ॥

सो वह प्रीति रीति सुखदाई। मेरे मन अतिसय करि भाई।
सो तो कथा अमित विस्तारा। मो पैं पायो जात न पारा॥
तामैं व्रजविलास सुखदाई। सो कछु कहिहौं करि चौपाई॥
भाषा की भाषा करौं छमियो कवि अपराध।
जिहिं तिहिं बिधि हरि गाइए कहत सकल श्रुति साध॥"

डाक्तर ग्रियर्सन ने लिखा है कि एक कवि देवी बंदीजन ने भी (जो सन् १६९३ ई० में वर्तमान था) सूरसागर नामक एक ग्रंथ हास्यरस का बनाया था।

वर्तमान समय में प्राय: लोग अपनी "डेढ़ चावल की खिचड़ी" पकाते हैं और अपनी नीरस कविता में सूरदास जी या तुलसीदास-जी का नाम दे देते हैं। अनपढ़ लोग केवल नाम देखकर ही उनका आदर करने लगते हैं। ऐसी बहुतेरी कविता इनके नाम से प्रसिद्ध हैं। इनमें से कोई कोई तो बहुत ही प्रसिद्ध हो गई हैं। जैसे निम्नलिखित पद बहुत ही प्रचलित हो गया है, परंतु इसकी भाषा और भाव स्पष्ट ही कहते हैं कि यह कविता कदापि सूरदासजी की नहीं है—

वैराग जोग कठिन ऊधो हम न करब हो।
कैसे तजब ऐसो देस जटा मुकुट धरब केस
अंग बिभूत लाय जहर खाय मरब हो॥
कैसे धरब अंग चीर मृगछाला धरि सरीर
सुखद सेज छाँड़ि भुइयाँ कैसे परब हो।
जमुना जल अति गंभीर तन मन नहिं धरत धीर
कृष्ण विरह लागि बरुक डूब मरब हो।
एक तो हम दुबल गात दूजे लिखत बिरह बात
सूर श्याम दरस बिना प्रान तजब हो॥

मुझे स्मरण आता है कि मैंने भी बचपन में ऐसी ही एक कविता करके "सूरश्याम" नामांकित कर अपने को कृतकृत्य समझा था।

अब मैं इस प्रबंध को पूज्य भारतेंदुजी के इस महावाक्य के साथ समाप्त करता हूँ—

"निज स्वारथ को धरम दूर या जग सों होई।
ईश्वर पद मैं भक्ति करैं छल बिनु सब कोई॥
खल के विष बैनन सों मत सज्जन दुख पावै।
छुटै राजकर मेघ समय पर जल बरसावै॥
कजरी ठुमरिन सों मोरि मुख सत-कविता सब कोइ कहै।
यह कविबानी बुध बदन मैं रवि ससि लौं प्रगटित रहै॥ ११॥"

[नागरीप्रचारिणी पत्रिका, भाग ४.

(८) हिंदी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास*

दैनिक, साप्ताहिक इत्यादि

जगदीश्वर ने संसार में सब से उत्तम और पुण्यभूमि भारत-भूमि को बनाकर मानो पृथ्वीतल को मुकुट पहिराया। इस मुकुट को अपने मस्तक पर धारण करने के लिये कौन ऐसा प्रतापवान् हुआ जो न ललचाया हो? देवादिकों ने जब इस भूमि में जन्म लेना परम सौभाग्य माना तो मनुष्यों की क्या गिनती? संसार में सबसे उत्तम वस्तु ज्ञान बनाया गया, उसको प्राप्त करने के लिये विद्यासोपान की रचना हुई, परंतु यह अमूल्य पदार्थ किस भाग्यशाली के भाग्य

---

* हिंदी भाषा भारतवर्ष की प्राचीन भाषा है परंतु दुर्भाग्यवश इसका कोई इतिहास न मिलने से ठीक ठीक पता नहीं चलता कि आदि काल कौन है? इतिहास के अभाव ने हमारे देश को बहुत कुछ हानि पहुँचाई। पद्य-रचना का काल जहाँ तक पता लगता है हजार वर्ष से पूर्व ही है, परंतु गद्य-रचना की प्रणाली यद्यपि सैकड़ों वर्ष से प्रचलित है और ज्योतिष, वैद्यक तथा धर्म संबंधी ग्रंथ बहुधा मिलते भी हैं तथापि इसका आदर अँगरेजी राज्य में जब से छापने की विद्या का प्रचार यहाँ हुआ तभी से प्रारंभ हुआ। जगदीश्वर की कृपा से उत्तरोत्तर उसकी उन्नति (यद्यपि बहुत धीरे धीरे) होती जाती है। समाचारपत्रों का प्रचार अभी केवल पचास ही वर्ष से हुआ है परंतु हर्ष का विषय है कि इतने थोड़े काल में भी इसने आशातिरिक्त उन्नति प्राप्त की है। इस समय भाषा में इसका प्रचार भली भाँति होता देख आवश्यक हुआ कि इसके नियम और इतिहास (जो कि अभी सहज में प्राप्त हो सकते हैं) प्रकाशित किए जायँ, अतएव सभा ने यथासाध्य उद्योग करके प्रस्तुत किया और आप लोगों की सेवा में उपस्थित करके आशा करती है कि आप लोग इसमें जो जो त्रुटियाँ रह गई हों उनसे सूचित करें कि दूसरे संस्करण में सुधार दी जायँ। जिन पत्रों का नाम आदि छूट गया हो कृपापूर्वक उससे भी सूचित करें।

में था ? भारत के। इसी भारत के ज्ञानकणों को लेकर आज सारा संसार ज्ञानी बनकर घमंड कर रहा है। यहीं की विद्याजननी संस्कृत के आश्रय पर आज दिन सारे संसार की भाषाओं का जन्म हुआ। इसको विदेशीय विद्वानों ने भी स्वीकार किया है परंतु हाय! आज भारत का वह दिन नहीं है। इसकी अपूर्व शोभा इसकी प्रधान शत्रु हुई। विदेशीय राज्यगण इसके लोभ को संवरण न कर सके, इसे अपने हस्तगत किया परंतु उनको वह बुद्धि कहाँ कि इसके गुणों को समझकर यथावत् आदर करते, इसकी शोभा को बढ़ाने की चेष्टा करते। सभों ने इसके गले पर छूरी ही फेरी। परंतु यहाँ के ऋषितुल्य ब्राह्मणों की कृपा से आज तक भारत की अमूल्य पदार्थ-विद्या का नाश कोई न कर सका। इन महात्माओं ने अपने मुख-गह्वर में छिपाकर इसको परंपरा तक ऐसा रखा कि किसी की दाल गलने न पाई। शूरवीरों का आदर, सती रमणियों का सम्मान तथा विद्वान् पंडितों की गुणग्राहकता की शिक्षा भारत ने भली भाँति पाई थी। भारत के सौभाग्य से इसी गुण का आश्रय लेकर अब तक इस अमूल्य रत्न ने यहाँ रहने का ठिकाना पाया।

यद्यपि संस्कृत भाषा, जो कि सर्वमतसम्मत सब भाषाओं की जननी है, इस देश के गौरव को बढ़ाती थी तथापि विचारकर देखने से प्रतीत होता है कि संस्कृत के सिवाय भी एक भाषा यहाँ सर्व-साधारण स्त्री पुरुष के बोलने की अत्यंत प्रचीन काल से प्रचलित थी। महाराज भोज जो संस्कृत के बड़े अनुरागी थे अनुमान होता है कि उन्हीं के समय में किसी और ही भाषा की (जिसे हम हिंदी कह सकते हैं) प्रधानता हो गई थी क्योंकि उनकी यह आज्ञा थी कि जो संस्कृत न जानता हो, हमारे राज्य में न रहे और थोड़ी थोड़ी बातों पर रीझकर लाखों दे देना इस बात की सूचना देता है कि

उस समय संस्कृत की कमी और हिंदी भाषा की प्रबलता थी परंतु दुर्भाग्यवश हमारे इतिहासों के अभाव ने हमें पूरा समाचार जानने से वंचित रखा है।

भाषा की शोभा साहित्य और साहित्य की शोभा काव्य—इसी मूल पर हमारे यहाँ के विद्वानों ने सब ग्रंथ कविता में रचे और गद्य लिखने को सहज समझकर उसकी ओर ध्यान ही न दिया। संस्कृत ही इसके लिये प्रमाण है। हिंदी भाषा में भी जहाँ तक प्राचीन से प्राचीन और पचास वर्ष पूर्व तक के ग्रंथ मिलते हैं सभी छंदोबद्ध हैं, यदि कहीं कहीं कोई ग्रंथ वैद्यक वा ज्योतिष अथवा साम्प्रदायिक मिलते भी हैं तो सड़ी भद्दी हिंदी वा व्रजभाषा में। अँगरेजी शिक्षा के प्रचार के साथ साथ यह भाव लोगों के हृदय में उदय हुआ कि विना गद्यपद्यात्मक ग्रंथों के भाषा की शोभा नहीं और न वह सर्वसाधारण को बोधगम्य और उपकारी हो सकती है। प्रेमसागर, रानी केतकी की कहानी, आदि ग्रंथों का दर्शन हुआ, राजा शिवप्रसाद ने भी समयानुसार खिचड़ी हिंदी के प्रचार में कलम उठाया परंतु संवत् १९२२ में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी श्री जगदीश-यात्रा को गए। वंगभाषा के सौंदर्य्य और लालित्य को देख इनका चित्त मोहित हो गया और जो सुंदर भाव इनके हृदय में पैतृक संपत्ति-स्वरूप विद्यमान था वह उथल पड़ा और उन्होंने सुंदर ललित लेखों से हिंदी के मृतप्राय शरीर में विलक्षण जीवनी शक्ति संचारित कर दी।

हमारा विषय "हिंदी भाषा के सामयिक पत्र" है परंतु संक्षेप में हिंदी गद्य के विषय में विना इतना कहे संतोष न हुआ अतएव हमारे पाठकगण क्षमा करेंगे।

मिस्टर डिसराइली (I. D'Israeli) अपने ग्रंथ क्यूरीआसिटीज आफ लिटरेचर (Curiosities of Literature) में

लिखते हैं "सामयिक पत्रों के जन्मदाता पारलियामेंट पैरिस के कौन्सेलर 'डेनिस डी सैलो' (Denis de Sallo) हैं। इन्होंने सन् १६६५ ई० में "जरनल डेस स्कवन्स"(Journal des scavans) प्रकाशित किया। दूसरा पत्र सन् १६८४ में बेल साहेब (Bayle) ने ' नावेल्स डी ला रिपबलिक डेस लेट्रोस" (Nouvelles de la Republique des Lettres) निकाला।"

उक्त ग्रंथकार छापने की विद्या के विषय में लिखता है ' यह विद्या चीन से युरोप में आई प्रतीत होती है। पहले वृक्षों के पत्तों पर छापते थे परंतु ठीक क्रम से यह विद्या सन् १४४० से १५०० तक में चली। कैक्सटन (Caxton) और व्यनकिन डी वरडो (Wynkyn de worde) इसके प्रथमाचार्य्य थे। कैक्सटन एक धनिक व्यापारी था, वह सन १४६४ में बादशाह एडवर्ड (Edward IV) की ओर से व्यापार संबंधी संधि करने 'ड्यूक आफ बरगंडी' (Duke of Burgundy) के यहाँ गया था और वहीं से यह विद्या लाया।" इसका विशेष वृत्तांत भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी रचित 'नाटक' नामक ग्रंथ में देखिए।

उक्त ग्रंथकार समाचारपत्रों के विषय में लिखता है कि यह विद्या पहले इटली से चली। पहला पत्र वहाँ की स्वतंत्र गवर्मेंट से 'वेनिशियन' (Venitian) मासिक निकला। परंतु ठीक समाचारपत्रों के रूप में सब से पहला पत्र इँगलैंड से जगत् प्रसिद्ध महारानी एलिजबेथ के समय में, उन्हीं के राजकीय यंत्रालय से, सन् १५८८ ई० में "इंगलिश मरक्युरी" (English Mercurie) नाम का निकला।

इस समय विलायत में समाचार पत्रों की ऐसी उन्नति है कि "हिंदी बंगवासी" के लेख से विदित हुआ कि वहाँ केवल दैनिक पत्र १५२ प्रकाशित होते हैं।

"विलियम डौसन एंड संस" (William Dowson and Sons) ने एक सूची प्रकाशित की है। वे विलायत के इतने समाचार पत्रों के एजेंट हैं।

समाचारपत्र

इँगलैंड — ३४ दैनिक, ६ सप्ताह में दो बेर, २ सप्ताह में तीन बेर, ५७१ साप्ताहिक, २८ पाक्षिक, ११७ मासिक, ७४८ सब मिलकर।

अमेरिका—१२५ साप्ताहिक।

फ्राँस—२१ "

जर्मनी—३३ "

इटली—४ "

स्पेन—३ "

मेगजीन (साहित्य संबंधी मासिक पत्र)

इँगलैंड—७६६ मासिक पत्र, ८ पाक्षिक पत्र, ७१ साप्ताहिक।

अमेरिका—११२ मासिक।

समालोचक आदि (Review, etc.) षट् मासिक इँगलैंड २२

वार्षिक (Directories, Reports, Calenders, Almanacs, etc.) इँगलैंड—३४५

सब मिलाकर २२६८ सामयिक पत्रों के एजेंट केवल "विलियम डौसन एंड संस" हैं।

"नागरी नीरद" लिखता है "१७६ समाचारपत्र बंबई प्रांत में प्रकाशित होबे हैं।" यह हमारा ही हतभाग्य पश्चिमोत्तर देश तथा हिंदी भाषा है जिसमें महादीन दशा में इतने कम पत्र हैं जो उँगलियों पर गिने जायँ।

भारतवर्ष में प्रथम प्रथम यह प्रथा अँगरेजी राज्य के साथ बँगला में चली। इस विषय को उपयोगी समझकर हम संक्षिप्त इतिवृत्त लिखते हैं।

महाभारत के देखने से विदित होता है कि उस समय समाचारदाता लोग नियत रहते थे जो कि समाचार एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया करते थे। भाट और दूत लोग भी समाचारदाताओं का काम करते थे और उन्हें पूरी स्वतंत्रता दी जाती थी। मुसल्मान बादशाहों के समय में भी अखबारनवीस रहा करते थे और बेधड़क सच्ची खबरें लिखा करते थे।

यद्यपि छापने की विद्या का ठीक सिलसिलेवार पता यूरोप ही से लगता है परंतु इसमें संदेह नहीं कि इसका बीज भारतवर्ष में बहुत काल पूर्व से था। मुहर पर अक्षर खोदकर छापना (मुद्रा) यह तो प्राचीन प्रथा चली ही आती थी परंतु अँगरेजों के प्रथम गवर्नर-जेनरल वारेन हेस्टिंग्ज के समय में काशी में एक मुद्रायंत्र (Press) गड़ा हुआ मिला था जो कि अनुमान किया जाता है कि एक हजार वर्ष से कम का गड़ा नहीं था। इसका वृत्तांत डाक्तर जोगेंद्रनाथ घोष अपने लेख में, जो सन् १८७० ई० में "नैशनल सोसाइटी" में पढ़ा गया था, यों लिखते हैं—

An extraordinary discovery was made of a press in India when Warren Hastings was Governor-General. He observed that in the district of Benares a little below the surface of the earth was to be found a structure of a kind of fibrous woolly substance of various thicknesses in horizontal layers. Major Roebuck, informed of this, went out to the

spot where an excavation has been made, displaying the singular phenomenon. In digging somewhat deeper for the purpose of further research, they laid open a vault which, on further examination, proved to be of some size; and to their astonishment they found a pair of printing presses set up in a vault and movable types placed as if ready for printing. Every enquiry was set on foot to ascertain the probable period at which such an instrument could have been placed there, for it was evidently not of modern origin; and from all the Major could collect it appears probable that the press had remained there in the state in which it was found for at least one thousand years.

लार्ड हेस्टिंग्ज के समय में पहले पहल सर चार्ल्स विलकिनसन साहब ने ँगला का टाइप बनाया और पंचानन कर्मकार नामक व्यक्ति को टाइप बनाना सिखलाया। कालीकुमार राय नामक एक व्यक्ति बहुत ही सुंदर अक्षर लिखता था उसी को देखकर बँगला टाइप की सृष्टि हुई। पहले पहल सन् १७७८ में मिस्टर ऐनड्रूज (Andrews) ने हुगली में बँगला प्रेस खोला। बँगला की देखा देखी हिंदी टाइप बना और हिंदी के प्रेस खुले।

भारतवर्ष में सबसे पहला पत्र सन् १७८० में "हिक्कीज गजेट" (Hickey's Gazette) नामक और सन् १७६३ में "इंडियन वर्ल्ड" (Indian World) अँगरेजी में और सन् १८१६ में "बंगला गजेट" नामक प्रकाशित हुआ। इस समय पाश्चात्य

सभ्यता के प्रभाव से भारतवर्ष के प्राय: सब खंडों में सब भाषा के उत्तमोत्तम पत्र प्रकाशित होते हैं।

हिंदी में सबसे पहले सन् १८४५ ई० के जनवरी में राजा शिवप्रसाद की सहायता से "बनारस अखबार" का जन्म हुआ। यह पत्र लिथो में बहुत ही दरिद्र कागज पर छपता था और इसके संपादक गोविंद रघुनाथ थत्ते राजा साहेब के आदेशानुसार इसे लिखते थे। इसका मोटो यह था।

"सुबनारस अखबार यह शिवप्रसाद आधार।
बुधि विवेक जन निपुन को चित हित बारंबार॥
गिरिजापत नगरी जहाँ गंग अमल जलधार।
नेत शुभाशुभ मुकुर को लखो बिचार विचार॥"

इसकी उर्दू में कहीं कहीं हिंदी मिली भाषा और भाव झलकाने को हम इसकी संपादकीय सम्मति के एक अंश को उद्धृत करते हैं। इसी से इसका रूप विज्ञ पाठकगण परख लें—

"यहाँ जो नया पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहेब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओं के मदद से बनता है उसका हाल कई दफा जाहिर हो चुका है। अब वह मकान एक आलीशान बनने का निशान तय्यार हर चेहार तरफ से हो गया बल्कि इसके नकशे का बयान पहिले मुंदर्ज है सो परमेश्वर के दया से साहब बहादुर ने बड़ी तंदेही और मुस्तैदी से बहुत बेहतर और माकूल बनवाया है। देखकर लोग उस पाठशाले के किते के मकानों की खूबियाँ अक्सर बयान करते हैं और उनके बनने के खर्चे का तजवीज करते हैं कि जमा से जियादा लगा होगा और हर तरह से लायक तारीफ के है सो यह सब दानाई साहेब ममदूह की है खर्च से दूना लगावट में मालूम होता है।"

इसके विषय में काशी के अमूल्य रत्न, फारसी भाषा के अद्वितीय पंडित श्रीकाशिराज महाराज के विद्या-गुरु मुंशी शीतलसिंह साहेब ने एक रुबाई बनाई थी।

"बनारस में इक जो बनारस गजट है।
इबारत सब उसकी अजब ऊट पट है॥
मुहर्रिर बिचारा तो है बासलीका।
वले क्या करै वह कि तहरीर भट है॥

इस समय "शिमला अखबार", "मालवा अखबार" आदि पत्र निकलते थे पर मुझे यह नहीं ज्ञात है कि देवनागरी अक्षरों में वा उर्दू में परंतु भाषा उर्दू ही थी।

इस अभाव को दूर करने के अभिप्राय से सन् १८५० ई० में कुछ सुधरे हुए ढंग पर हिंदी भाषा में काशी से बाबू तारामोहन मित्र आदि सज्जनों ने "सुधाकर" नामक हिंदी भाषा का पहला पत्र प्रकाशित किया।

इसी "सुधाकर" पत्र से काशी के प्रसिद्ध ज्योतिषी महामहोपाध्याय पं० सुधाकरजी का नाम सुधाकर हुआ है। पंडितजी के पितृव्य को डाकिये ने ज्योंही सुधाकर पत्र दिया त्योंही घर से समाचार मिला कि आपको भतीजा हुआ। उन्होंने कहा "पुत्र का नाम सुधाकर"।

जब पूज्यपाद भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र हिंदी भाषा को पुनर्जन्म देने में प्रवृत्त हुए और "विद्यासुंदर" आदि कई एक सुंदर सुंदर ग्रंथों की रचना की, "काव्यसमाज" "तदीय समाज" "सार्वजनिक सभा" आदि स्थापित कीं, उस समय उनके हृदय में हिंदी में समाचारपत्र का अभाव खटकने लगा और सन् १८६८ ई० में "कविवचनसुधा" नामक पत्र प्रकाशित किया। सरकार ने भी इस पत्र

की सहायता की और इसकी १०० प्रतियाँ लेने लगी। पहले यह पत्र मासिक पुस्तकाकार प्रकाश हुआ और प्राचीन नवीन कविता के अनेक ग्रंथ छपते रहे; परंतु थोड़े ही दिन पीछे दीन प्रजा के दुःख से इनका हृदय ऐसा दुखा कि इस प्रांत में एक राजकीय पत्र का होना आवश्यक समझ "कविवचनसुधा" को पाक्षिक करके इन्होंने राजा और प्रजा दोनों के उपकारी लेख पूर्ण स्वाधीन भाव से लिखने आरंभ किए। यद्यपि इस समय हाकिमों में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी और ये आनरेरी मैजिस्ट्रेटी आदि पदों से सम्मानित थे परंतु इन सब बातों की कुछ भी चिंता न करके और उस समय इस प्रांत में स्वाधीन-हृदय सुशिक्षित व्यक्तियों की सहायता का अभाव होने पर भी इन्होंने पूर्ण स्वाधीन भाव से राजकीय विषयों पर कलम उठाया। 'कविवचनसुधा' के उद्देश्य कैसे महत् और उदार स्वाधीन भावपूर्ण थे यह आप लोग उसके इस सिद्धांत वाक्य (मोटो) से भली भाँति जान सकेंगे।

"खलगनन सों सज्जन दुखी मति होहिं हरि-पद मति रहै।
उपधर्म्म छूटैं सत्व निज भारत गहै कर दुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर नारि नर सम होहिं जग आनँद लहै।
तजि ग्राम-कविता सुकविजन की अमृत बानी सब कहै"॥

ज्यों ज्यों सर्वसाधारण की सहानुभूति मिलती गई त्यों त्यों सुधा के उत्साह की उन्नति में उत्साह बढ़ता गया और यह साप्ताहिक प्रकाशित होने लगा। थोड़े ही दिनों में इसका गुण सारे संसार में फैल गया और चारों ओर से आदर होने लगा। सन् १८७० ई० में फ्रांस देश के जगत् विख्यात विद्वान् गार्सिन डी टासी (Garcin de Tassy) ने अपने प्रसिद्ध पत्र Le Langue में इसके विषय में लिखा है,—

"Le Babu Harish Chandra, toujours zeli la litterature Hindic, continue a publier soit dans son Kavi Vachan Sudha......... "

Babu Harish Chandra, always zealous for Hindi literature, continues to publish separately Hindi works in his Kavi Vachan Sudha.........

"कविवचनसुधा" का आदर सर्व साधारण में बढ़ता गया और इसके लेख ऐसे ललित होते थे कि यद्यपि हिंदी भाषा के प्रेमी उस समय गिने ही हुए थे तथापि लोग चातक की भाँति टकटकी लगाए रहते थे और हाथों हाथ सब बँट जाता था यहाँ तक कि अब एक फाइल भी कहीं नहीं मिलती है। इस पत्र की ऐसी उन्नति और एक युवा पुरुष का अभ्युदय कई एक शुद्र स्वार्थसाधक महापुरुषों को खटकने लगा। चुगली की बाजार गर्म्म हुई। इसमें जो निष्पक्षपात लेख गवर्नमेंट के हित के वास्ते लिखे जाते थे वे राजद्रोही ठहराए जाने लगे। जो कविता वा पंच हास्य वा श्लेष के छपते थे वे अपमानसूचक ठहराए जाने लगे। इसका फल यह हुआ कि "मर्सिया" शीर्षक एक पंच ज्योंही छपा, 'सर विलियम म्योर' लेफ्टिनेंट गवर्नर को समझाया गया कि यह लेख आपके अपमान और उपहास की नीयत से छपा है। बस झटपट सरकार की सहायता बंद की गई और केंपसन साहब डाइरेक्टर विद्याविभाग ने क्रोधप्रकाशक एक पत्र भेजा। यद्यपि उसके पीछे बहुत कुछ लिखा पढ़ी हुई परंतु वहाँ तो ऐसा रंग जमाया गया था कि वह काहे को उतरना था। उसी समय "हरिश्चंद्रचंद्रिका" और "बालाबोधिनी" की जो सौ सौ कापियाँ गवर्नमेंट लेती थी बंद की गईं जिसका सविस्तर वृत्तांत आगे चलकर मासिक पत्रों के साथ लिखा जायगा।

हम इस विषय में अपनी सम्मति न लिखकर उस सम्मति को प्रकाशित कर देते हैं जो काशी के माननीय आनरेरी मजिस्ट्रेट और श्री महाराज विजयानगरम् की रियासत के सुपरिंटेंडेंट डाक्तर लाजरस साहब ने लिखी है—

At the request of Babu Harish Chandra, I have much pleasure in stating what I know of him. Since I made his acquaintance some years ago, I have always held him in high esteem and regard on account of his many social and public virtues: for about 4 years he was associated with me as an Honorary Magistrate of this city.

As a leading citizen he has ever taken a prominent part in public affairs for which by education, etc., he is well fitted. A boys' school founded by him long ago still exerts an influence for good. As a public writer as well as in social and public life I have always believed him to be thoroughly loyal to the Government. Having an extensive command of the vernacular languages and being no mean poet with a view of humour in his composition he occasionally indulged in a little quiet satire which unfortunately for him gave offence to the then authorities and he has been under ban ever since. The citizens of Benares who one and all have a sincere respect for Babu Harish Chand will

be glad to see the ban removed and the Government once more reposing trust and confidence in him.

(Sd.) E. J. LAZARUS, M.D.

Benares July 15th, 1880.

गवर्नमेंट का ऐसा अनुचित व्यवहार और हाकिमों का ऐसा पतला कान समझकर बाबू हरिश्चंद्रजी ने आनरेरी मजिस्ट्रेटी और म्युनिसिपल कमिश्नरी आदि से इस्तीफा दे दिया और हाकिमों से मिलना और उनकी हाजिरबाशी बिल्कुल छोड़ दी।

यद्यपि सरकार से "सुधा" का तिरस्कार हुआ परंतु देशवासियों में इसका गौरव बढ़ता ही गया। उस समय हिंदी के कई एक सुलेखकों ने इसमें लिखना आरंभ किया और इसके द्वारा ही उनकी लेखनी ने इस देश में गौरव और सम्मान पाया। श्री गोस्वामी राधाचरणजी, बाबू गदाधरसिंह, बाबू काशीनाथ, लाला श्रीनिवासदास, पंडित सरयूप्रसाद, पंडित विहारीलाल चौबे, बाबू तोताराम, मुंशी कमलाप्रसाद, पंडित दामोदर शास्त्री, बाबू ऐश्वर्यनारायणसिंह, बाबा सुमेरसिंहजी, बाबा संतोषसिंहजी, बाबू गोकुलचंद्र, बाबू नवीनचंद्र राय प्रभृति विद्वान् ही मुख्य हैं।

"कविवचनसुधा" में एक बड़ा दोष यह था कि वह नियत समय पर नहीं निकलता था, इस दोष को दूर करने के अभिप्राय से तथा पंडित चिंतामणि के आग्रह से यह पत्र बाबू साहब ने उक्त पंडितजी को दे दिया। यद्यपि यह गुण तो आ गया कि नियत समय पर निकलने लगा परंतु और गुण लुप्त हो गए। पंडित चिंतामणि के हाथ में जाने के कई वर्ष पीछे तक भारतेंदुजी ही मुख्यतः लिखा करते थे, फिर इसके अवैतनिक संपादक व्यास रामशंकर शर्म्माजी रहे परंतु सन् १८८३ ई० में इल्बर्ट बिल के आंदोलन के समय माननीय राजा शिव-

प्रसाद का पक्ष लेने के कारण और इन लोगों के हाथ खींचने पर इस पत्र से साधारण सहानुभूति जाती रही और सन् १८८५ ई० तक तो इसने ऐसा रंग बदला कि अपने जन्मदाता तथा स्वामी भारतेंदुजी के अकालकालग्रसित होने पर, जब कि प्राय: संपूर्ण हिंदी पत्रों ने महीनों तक काला किनारा देकर शोक प्रकाश किया, इसने एक कालम भी काला न किया ! किसी प्रकार से लुड़कता पुड़कता थोड़े दिन और भी यह पत्र चला। अब सन् १८८५ से बंद है।

"कविवचनसुधा" को देखकर हमारे देशवासियों ने कुछ कुछ जाना कि समाचार पत्र क्या है और उससे क्या लाभ है। सन् १८७१ ई० में अलमोड़ा से "अलमोड़ा अखबार" निकला जो अब तक वर्तमान है। यह पत्र फुलिसकेप आकार में कभी एक और कभी १॥ ताव में टाइप के अक्षरों में छपता है परंतु बड़े ही आश्चर्य की बात है कि इतने छोटे पत्र का मूल्य इसके स्वामी ने न जाने किस कारण से ६॥।) रु० रखा है। इस समय में इतना अधिक मूल्य अवश्य इसकी उन्नति का प्रधान अवरोधक है। अधिक मूल्य लेकर पत्र के निर्वाह की अपेक्षा थोड़े मूल्य से अधिक ग्राहक बनाने का प्रयत्न करना श्रेय है।

इसके पीछे सन् १८७२ में कलकत्ते से पहले पहल "हिंदीदीप्ति-प्रकाश" नामक पत्र बाबू कार्तिकप्रसाद ने निकाला। उस समय वहाँ के हिंदुस्तानी, समाज में अखबार किस चिड़िया का नाम है, यह नहीं जानते थे। थोड़े से ऐसे सज्जन थे कि जिन्हें उसकी चाह और कदरदानी थी। घर घर और कोठी कोठी घूम घूम के बाबू साहब ने बड़े परिश्रम से लोगों को ग्राहक बनाया था जिनमें कितने ऐसे थे कि जिन्हें समाचारपत्र पर कुछ भी विश्वास न था, कितने इसे सरकारी पत्र समझते। कोई कहता आनके आठवें दिन सुना

जाया करो तो ग्राहक हों। जिसने जिस तरह ग्राहक होना स्वीकार किया उसी तरह उन्होंने भी स्वीकार किया। धन्य हम लोगों के भाग्य कि कलकत्ते में हिंदी के उत्तम से उत्तम कई पत्र निकले श्रौर अभी हैं श्रौर अब लोग कदर करने लगे। उस समय को स्मरण कर श्रौर आज का दिन देख जो आनंद होता है वह अकथनीय है। इस पत्र की सहायता करने श्रौर उत्साह देने में भारतेंदुजी तथा महाराणी स्वर्णमयी प्रधान थे।

सन् १८७२ में बिहार प्रांत से पंडित केशवराम भट्ट तथा पंडित साधोराम भट्ट के उद्योग से उस प्रांत में पहला साप्ताहिक पत्र "बिहार-बंधु" निकला। इस पत्र की लेखप्रणाली बहुत सुंदर श्रौर प्रौढ़ थी परंतु भाषा खिचड़ी उर्दू विशेष अधिकार किए थी। अब यह पत्र अत्यंत हीनावस्था में मासिक होकर नाम निबाहे जाता है।

सन् १८७४ में हिंदी भाषा के सच्चे प्रेमी स्वर्गवासी लाला श्रीनिवासदास ने दिहली से "सदादर्श" नामक पत्र निकाला परंतु सन् १८७६ में यह पत्र "कविवचनसुधा" में मिला दिया गया।

सन् १८७६ ई० में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की सहायता से बाबू बालेश्वरप्रसाद बी० ए० हेड मास्टर नार्मल स्कूल (अब सेक्रेटरी गवर्नमेंट बोर्ड आफ रेवेन्यू) ने "काशी पत्रिका" साप्ताहिक निकाली। पहले तो इसका ढंग "कविवचनसुधा" ही सा था श्रौर "सत्यहरिश्चंद्र", "कर्पूरमंजरी" आदि कई एक नाटक इसमें छपे परंतु फिर तो उसने अपना ढंग ही बदल दिया श्रौर उसमें स्कूल के छात्रों ही के उपयोगी विषय छपने लगे। फिर भाषा उसकी उर्दू श्रौर अक्षर हिंदी श्रौर अंत में अक्षर भी एक पृष्ठ हिंदी श्रौर एक पृष्ठ उर्दू हो गए। बाबू बालेश्वरप्रसाद ने डिपुटी कलेक्टर होने पर यह पत्र राय बहादुर पंडित लक्ष्मीशंकर मिश्र एम० ए० को दिया जिनके प्रबंध

में यह अब तक छपता है। इस पत्र के ग्राहक अधिकांश स्कूलीय छात्र या शिक्षकगण ही हैं और इसकी लेखप्रणाली भी यथासंभव तदुपयुक्त है, परंतु आक्षेप का विषय है कि इसकी भाषा को हिंदी न कह उर्दू ही कहना उचित है। इस पत्र से चाहे और जो कुछ लाभ हो परंतु बड़ी भारी हानि यह है कि जब यह पत्र केवल विद्यार्थियों के निमित्त प्रकाशित हो रहा है तब इसकी भाषा क्यों न विशुद्ध हिंदी लिखी जाय? क्या हिंदी भाषा का सिखाना कोई अन्याय है?

सन् १८७६ में अलीगढ़ से हिंदी भाषा के परम सहायक बाबू तोतारामजी ने "भारतबंधु" निकाला। उक्त बाबू साहब ने हिंदी की उन्नति के अभिप्राय से "भाषा-संवर्धिनी सभा" की सृष्टि की परंतु हिंदी के दुर्भाग्य और हिंदी-रसिकों की अरसिकता के कारण अब इसका नाम मात्र लेने को बाकी है।

सन् १८७७ हिंदी समाचार पत्रों के इतिहास में स्मरणीय है। इस सन् में कई एक अच्छे अच्छे साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होने लगे जो आज तक सब के सब हिंदी भाषा के गौरव को बढ़ाते हैं।

हिंदी में यथार्थ रूप से कोई पत्र निकलता न देखकर सन् १८७७ में भारतवर्ष की राजधानी कलकत्ता नगर से पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र, पंडित छोटूलाल मिश्र, पंडित सदानंद मिश्र तथा बाबू जगन्नाथ खन्ना के उद्योग से "भारतमित्र" कमिटी बनी और उसके द्वारा "भारतमित्र" पत्र निकला। उसने अपना कर्तव्य पूरा पूरा संपादित किया। जब तक यह पत्र पंडित छोटूलाल मिश्र के हाथ में था तब तक बहुत ही उत्तमता से चला, कभी कभी भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी भी लिखा करते थे। जब से उक्त पंडितजी ने हाथ खींचा, कई संपादक आए और उसके कई रंग बदले। इसके

संपादकों में पंडित हरमुकुंद शास्त्रीजी* ने भी इसे बहुत योग्यता से चलाया। अब इसी वर्ष (१८९३-९४) से यह पत्र बाबू जगन्नाथ-दास अग्रवाल के प्रबंध में आया है और बहुत बड़े डील डौल के स्पष्ट सुंदर कागज पर छपता है। लेख भी सुंदर होते हैं। पंडित रुद्रदत्त (जो पहले "आर्यावर्त" और फिर "हिंदी बंगवासी" के संपादक थे) संपादक हैं। विषय राजनीति प्रधान है।

उसी सन् १८७७ में पंजाब प्रांत में 'मित्रविलास" सब से पहला वरंच हिंदी का एक मात्र साप्ताहिक पत्र पंडित गोपीनाथजी की तेज-पूर्ण लेखनी से निकला। यह आज तक निकलता है और सनातन हिंदू धर्म का पक्ष समर्थन पूरी दृढ़ता के साथ करता है। उक्त पंडितजी ने जो इसका इतिहास लिखा है वह नीचे प्रकाशित किया जाता है।

"मित्रविलास सन् १८७७ ई० से निकला। उस समय पंजाब में हिंदी भाषा का कोई पत्र वर्तमान न था। यह पहला हिंदी साप्ताहिक पत्र है जो निकला। इससे पहले एक उर्दू-हिंदी मासिक पत्रिका "ज्ञानप्रदायिनी" नाम से हमारे मित्रविलास यंत्रालय में छपती थी। उसमें समाचार तथा ब्राह्म धर्म संबंधी लेख होते थे। पर वह बंद हो गई। इसके बाद एक हिंदू-बांधव मासिक पत्र हिंदी-उर्दू का निकला। वह प्रायः ब्राह्म समाज के लेख लिखता था। वह भी बंद हो गया। "मित्रविलास" जब निकला हिंदी का प्रचार पंजाब में बहुत ही कम था, लाभ के लिये नहीं किंतु (हिंदी) भाषा की उन्नति के लिये यह पत्र प्रकाशित किया गया। उस १४ वर्ष के बीच जब से यह पत्र जारी है, सहस्रों रुपए की हानि हो चुकी है परंतु श्री पिताजी को हिंदी की रक्षा अति प्रिय थी, प्रेस

* उक्त पंडितजी हिंदी के बड़े ही अनुरागी और उत्तम लेखक होने पर भी न जाने चिरकाल से कहाँ अंतर्धान से हो रहे हैं।

अपना था इसलिये नुकसान की परवाह न करके हमको उत्तेजना देते रहे कि इसको चलाते जाओ। "मित्रविलास" को जारी करने का मूल कारण श्री भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी की कविवचनसुधा थी। वही एक पहला पत्र था जो कि पिताजी के पास आता था। वे उसे प्रेमपूर्वक पढ़ते थे और श्री भारतेंदुजी के लेखों पर मोहित हो जाते थे। हम दोनों भाई भी वही पत्र पढ़ते थे और हिंदी भाषा का अनूठा ढंग उसी से प्राप्त हुआ। उसी को देखकर उत्साह हुआ कि पंजाब में भी हिंदी भाषा का साप्ताहिक पत्र निकाला जाय। श्री पिताजी ने आज्ञा दी और मैंने तथा ज्येष्ठ भ्राता श्री पं० गोविंद-सहायजी ने इसके संवाददाता का भार ग्रहण किया। कई वर्ष इसी प्रकार व्यतीत हुए परंतु अब ६ वर्ष से मेरे कनिष्ठ भ्राता पं० कन्हैयालाल इसका संपादन करते हैं।

"पहले पहल मित्रविलास लीथो में ही छपना आरंभ हुआ और कई वर्षों तक वैसा ही रहा। उन दिनों सारे भारतवर्ष में केवल दो तीन ही हिंदी के पत्र थे अर्थात् 'कविवचनसुधा', 'विहारबंधु', 'हिंदीप्रदीप' और 'मित्रविलास'। मित्रविलास से पीछे फिर 'भारतमित्र', 'सारसुधानिधि', 'उचित वक्ता', 'भारतजीवन', 'क्षत्रिय पत्रिका' आदि आदि निकले।

"पंजाब में मित्रविलास एक ही साप्ताहिक पत्र है और कोई नहीं। एक और साप्ताहिक पत्र पं० ज्वालादत्तप्रसाद गोस्वामी के अधिकार से छपना आरंभ हुआ था जिसका नाम "भारतहितैषी" था पर वह २, ३ मास निकल बंद हो गया क्योंकि इधर अभी ऐसा जमाना नहीं आया कि हिंदी पत्र निकलने में बिना क्षति के कुछ लाभ हो। इसी से कई पत्र निकले और बंद हो हो गए। एक "भारतदीपिका" नामी साप्ताहिक पत्रिका भी छपनी आरंभ हुई थी पर बंद हो गई।

"मित्रविलास की भाषा को आरंभ ही से बहुत से विख्यात हिंदी लेखकों ने पसंद किया। श्री भारतेंदु हरिश्चंद्रजी इस पर विशेष प्रसन्न थे और सच पूछिए तो यह उसी के सुधा-बीज का अंकुर था। स्वर्गवासी श्रीमान् आर्यकुलकमलदिवाकर श्रीमच्छ्री १०८ महाराजा सज्जनसिंहजी ने मित्रविलास की भाषा की उत्तमता से प्रसन्न होकर २००) इसकी सहायता के लिये भेजा था कि यह टाइप में हो जावे। इनकी इस सहायता से तथा मियाँ मीर के राय बहादुर सेठ रामरत्नजी की सहायता से इस पत्र का सन् १८८७ ई० से टाइप में छपना आरंभ हुआ।

"श्री भारतेंदु हरिश्चंद्रजी के स्वर्गवासी होने पर मित्रविलास ने पूरा पूरा आंदोलन करके उनके नाम का संवत् चलाने का हिंदी पत्रों में अनुरोध किया और इस समय तक मित्रविलास तथा अन्य पत्रों में यह संवत् लिखा जाता है"।

इसी सन् १८७७ ई० में "हिंदी प्रदीप" और "आर्यदर्पण" निकले जिनका वृत्तांत मासिक पत्रों में है।

सन् १८७८ ई० में कलकत्ता से "उचित वक्ता" और "सार-सुधानिधि" का प्रकाश हुआ।

"उचित वक्ता"-संपादक पं० दुर्गाप्रसाद ने इस पत्र की उन्नति पूरी पूरी की। इसमें अच्छे अच्छे विद्वान् लेख लिखा करते थे। स्वयं भारतेंदुजी भी कभी कभी लिखते थे। जब तक यह पत्र रहा, उसने अपने देश और मातृभाषा की सेवा में त्रुटि नहीं की। परंतु कई कारणों से ऐसा सुंदर पत्र बरसों बंद रहा। धन्य है उस परमात्मा को कि जिसकी दया से यह पत्र पुनः सन् १८६४ ई० से अपने पूर्व रूप में प्रकाशित होने लगा है। आशा है कि सुयोग्य संपादक इस पुराने पत्र के प्रौढ़त्व पर सदैव ध्यान रखेंगे और इसके प्रेमी जन

इसकी सहायता से मुँह न मोड़ेंगे। पं० दुर्गाप्रसाद का हिंदी साहित्य पर बड़ा उपकार है।

"सारसुधानिधि" जैसे गौरव और गंभीरता से निकलता था आज तक दूसरा पत्र देखने में न आया। पंडित सदानंद मिश्र संपादक की प्रौढ़ लेखनी का, जिन्हें आनंद मिला है वे सदा उसके लिये तरसा करते हैं। जैसा ही तो कागज और छपाई उत्तम वैसी ही भाषा तथा लेखप्रणाली उज्ज्वल और वैसे ही राजनैतिक सामाजिक आदि उद्देश्य महत्। इस पत्र के गुणों पर रीझकर श्रीमदार्य-कुलकमलदिवाकर श्री महाराणा सज्जनसिंहजी उदयपुराधीश ने पारितोषिक देकर इस पत्र का सम्मान बढ़ाया था परंतु सारसुधानिधि ऐसे परमोत्तम पत्र के बंद हो जाने से हिंदी समाज में अवश्य एक कलंक का धब्बा लगा। यह पत्र कभी भी बंद न होता यदि इसके ग्राहक लोग नियत मूल्य दिए जाते परंतु हिंदी के दुर्भाग्यवश अब हम लोगों को उसका दर्शन दुर्लभ हो गया। आशा है कि पंडितजी इस परमोत्तम पत्र के पुनः प्रकाश करने का उद्योग अवश्य करेंगे।

देशी रजवाड़ों में सबसे पहले इधर हिंदी भाषा के पूर्ण प्रेमी महाराणा श्रीसज्जनसिंह बहादुर ने ध्यान दिया। सन् १८७९ ई० में उदयपुर से बृहदाकार "सज्जनकीर्तिसुधाकर" नामक साप्ताहिक पत्र राज्य के प्रबंध से निकला जो कि आज तक वर्तमान है। हाय! सन् १८८४ ई० में उक्त श्री महाराणा साहब के अकाल काल-ग्रास ने हिंदी भाषा को वह धक्का लगाया जो कभी भूलने का नहीं।

"हिंदोस्थान" पत्र हिंदी साहित्य के इतिहास में सर्वोच्च स्थान पाने की योग्यता रखता है। इसमें राजनैतिक विषय बहुत सुंदरता से लिखे जाते हैं। यद्यपि भाषा में बहुत से संपादकों के उलट फेर से गड़बड़ रहता है तथापि उद्देश्य और उद्योग सराहनीय है। इसके

स्वामी सच्चे देशहितैषी आनरेबुल राजा रामपालसिंह को जितना धन्यवाद दिया जाय थोड़ा है। सहस्रों रुपए की प्रतिवर्ष हानि सहकर भी आप इस पत्र के द्वारा इस देश तथा हिंदी भाषा का उपकार साधन करते हैं।

यह पत्र सन् १८८३ के अगस्त मास से सन् १८८५ के जुलाई मास तक इँगलैंड में प्रकाशित हुआ क्योंकि इसके माननीय संपादक की उस काल में वहाँ ही अवस्थिति थी। सन् १८८३ के अगस्त मास से उसी वर्ष के नवंबर मास तक अँगरेजी और हिंदी दो भाषाओं में यह प्रकाशित होता था और नवंबर के पश्चात् सन् १८८४ के अकटूबर मास तक अँगरेजी, हिंदी और उर्दू में प्रकाशित हुआ। उस समय यह मासिक पत्र था। इसके हिंदी और उर्दू स्तंभों को राजा साहब स्वयं लिखा करते थे और अँगरेजी के स्तंभों को मिस्टर जार्ज ट्यंपल लिखा करते थे जो इस समय भी अँगरेजी हिंदोस्थान के संपादक हैं। सन् १८८४ के नवंबर मास से यह पत्र साप्ताहिक की आकृति में केवल अँगरेजी भाषा में निकलना आरंभ हुआ था, और सन् १८८५ के जुलाई मास तक इँगलैंड ही में प्रकाशित होता रहा।

इसके पश्चात् जब उक्त राजा साहब इँगलैंड से भारतवर्ष को लौट आए तब उन्होंने इस पत्र को हिंदी भाषा में दैनिक की आकृति में कालाकाँकर से निकालना प्रारंभ किया अर्थात् यह पत्र सन् १८८५ के १ नवंबर से आज तक इस देश में हिंदी भाषा में प्रति दिन प्रकाशित होता चला आता है। परंतु सन् १८९१ के जनवरी मास से इस पत्र की एक प्रति अँगरेजी भाषा में प्रति रविवार को प्रकाशित होती है। हिंदी के दैनिक हिंदोस्थान का उक्त राजा साहब स्वयं संपादन करते हैं और अँगरेजी हिंदोस्थान को मिस्टर जार्ज ट्यंपल लिखते हैं। हिंदी हिंदोस्थान के संपादन करने में भिन्न भिन्न समयों

पर निम्नलिखित महाशय सहकारी संपादक होते चले आए हैं (१) बाबू अमृतलाल (२) पंडित मदनमोहन मालवीय बी० ए० (३) बाबू लालबहादुर बी० ए० (४) बाबू शशिभूषण बी० ए० (५) लाला बालमुकुंद और (६) पं० शीतलप्रसाद उपाध्याय।

प्रयाग से "प्रयाग समाचार" सन् १८८३ में और मिर्जापुर से "खिचड़ी समाचार" सन् १८८९ में निकला। दोनों पत्रों की लेखप्रणाली सामयिक पत्रों में जैसी होनी चाहिए प्राय: नहीं होती। इसका कारण शायद संपादकों की असावधानी हो।

सन् १८८५ ई० में कानपुर से पहले पहल दैनिक समाचार पत्र निकला। इसके संपादक परमोत्साही बाबू सीतारामजी थे और नाम "भारतोदय" था। परंतु दुर्भाग्यवश यह पत्र एक वर्ष भी न चलने पाया और अपना नाम इतिहास में छोड़कर चल दिया।

काशी से यद्यपि "आर्यमित्र", "मित्र", "सरस्वती विलास", "गोसेवक" तथा "तिमिरनाशक" आदि कई एक साप्ताहिक पत्र निकले परंतु वे इतने थोड़े दिन रहे और उन्होंने हिंदी की इतनी थोड़ी सेवा की कि उनके वर्णन की कोई आवश्यकता नहीं है। "कवि-वचनसुधा" के पीछे काशी से "भारतजीवन" निकला जो अब तक प्रकाशित होता है और हिंदी भाषा की कुछ न कुछ सेवा किए ही जाता है। यह पत्र ३ मार्च सन् १८८४ ई० को निकला। इसके संपादक बाबू रामकृष्ण वर्मा द्वारा हिंदी की बहुत सी उत्तमोत्तम पुस्तकें छपीं और छपती हैं। इन्होंने हिंदी साहित्य का बहुत उपकार किया और कर रहे हैं।

संवत् १९३२ से "आर्य समाज" की सृष्टि स्वामी दयानंद सरस्वती ने भारतवर्ष में की। इस समाज से यद्यपि धर्म्म से विशेष संबंध रहा और उसके द्वारा सारे देश में धर्म्मविषयक आंदोलन

मच गया तथापि हिंदी भाषा का उपकार इस समाज से भी अवश्य हुआ है। इसकी ओर से दो साप्ताहिक पत्र निकलते हैं। एक अजमेर से "राजस्थान" सन् १८८६ ई० में निकला, दूसरा कलकत्ता से "आर्य्यावर्त" सन् १८८७ में निकला।

रीवाँ राज्य से श्री महाराजकुमार श्रीलाल बलदेवसिंह जी कमैंडर-इन-चीफ रीवाँ राज्य ने सन् १८८७ में "भारत भ्राता" निकाला जो कि अब तक वर्तमान है और अपनी योग्यता से हिंदी के रसिकों का आनंद बढ़ाता है। इस समय देशी रजवाड़ों से जितने पत्र निकलते हैं उनमें यह प्रशंसनीय है।

देशी रजवाड़ों में "सर्वहित" नामक दूसरा पत्र बूँदी से पं० कन्हैयालाल और पंडित मन्नालाल के उद्योग से सन् १८८६ में निकला जो अब तक वर्तमान है। जिस समय यह पत्र प्रकाशित हुआ था उसकी योग्यता को देख बहुत कुछ आशा हुई थी परंतु न जाने क्यों अब दिनों दिन उसकी लेखप्रणाली से उसके संपादक हतोत्साह से मालूम पड़ते हैं। "मारवाड़ गजेट" आदि एकाध पत्र और भी राजपुताना से निकले परंतु उनकी भाषा ऐसी विलक्षण है कि हम उन्हें हिंदी के पत्रों में नहीं गिन सकते।

सन् १८९० में "बँगला बंगवासी" के स्वामी बाबू श्री योगेशचंद्र बसु ने बड़े धूम धाम से "हिंदी बंगवासी" निकाला। उसका बृहदाकार, सुंदर कागज, प्रति संख्या में एक एक चित्र और मनोहर कहानी, उपहार में पुस्तकवितरण आदि गुण हिंदी भाषा के लिये नई बात थी। यह सनातन धर्म्म का पक्ष बड़ी ही सुंदरता और दृढ़ता से करता है। यद्यपि इसमें बँगलापन का दोष तो किंचित् मात्र है तथापि इसके गुण सब दोषों को ढँक देते हैं। यह पत्र अपने ढंग का एक ही है। सच तो यह है कि इस हिंदी बंग-

वासी को निकालने के लिये हम लोग उक्त बाबू साहब के चिरकृतज्ञ हैं। यह उन्हीं का काम है कि उन्होंने हमारे समाज से इस कलंक को मिटाके प्रमाणित कर दिया कि हिंदी समाचार पत्रों के ग्राहक ही नहीं होते। इस समय हिंदी बंगवासी के कई सहस्र ग्राहक हैं। जिन लोगों को यह भ्रम है कि हिंदी समाचार पत्र के ग्राहक नहीं होते वे इनका उदाहरण ग्रहण करें और अपने संदेह को छोड़ें।

बंबई प्रांत ने अब तक हिंदी भाषा की ओर ध्यान नहीं दिया था। परंतु हर्ष का विषय है कि उस प्रांत के उत्साही सज्जनों की दृष्टि इस ओर पड़ी है। एक पत्र सन् १८९३ ई० में "भाषा भूषण" बंबई से निकला था परंतु वह अपनी झलक दिखला अंतर्धान हो गया। दूसरा पत्र "बंबई बैपार सिंधु", जो सन् १८९३ में निकला कुछ दिन तक वर्तमान रहा, न जाने क्यों यह अकालकालग्रसित हुआ।

हिंदी भाषा की दुर्दशा देखकर हिंदी भाषा के प्रसिद्ध कवि चौधरी बदरीनारायणजी ने मिर्जापुर से "नागरी नीरद" नामक साप्ताहिक पत्र सन् १८९३ ई० से निकाला है। यद्यपि इसका आकार छोटा है परंतु इसकी अमृत-वर्षा रसिकों को तृप्त करती है। यदि ग्राहकों की कृपा-दृष्टि रही तो आशा है कि यह पत्र भाषा के गौरव का कारण होगा।

यद्यपि मिर्जापुर से "आर्य पत्रिका" आदि कई एक हिंदी के पत्र निकले और बंद हुए परंतु उनका पूरा इतिहास न मिलने से लिखा न जा सका।

मासिक पत्र

पहले पहल हिंदी में मासिक पत्र स्वरूप से "कविवचनसुधा" सन् १८६८ में निकला जिसका इतिहास ऊपर लिख चुके हैं। जब

"कविवचनसुधा" साप्ताहिक हुआ तो "हरिश्चंद्र मैगजीन" का जन्म भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी के द्वारा सन् १८७३ ई० में डाक्तर लाजरस के मेडिकल हाल प्रेस से हुआ। जैसे सुंदर लेख और जैसा सुंदर कागज और छपाई इस मासिक पत्र की पहला पत्र होने पर भी थी वह अब तक किसी पत्र में नहीं पाई जाती। लोग मैगजीन के देखने को तरसते हैं। स्वयं भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र जी कहते थे कि जैसे उमंग के जोरदार लेख मेरे और मेरे मित्रों के मैगजीन में लिखे गए और छपे वैसे फिर न लिख सके। उसी मैगजीन ने सन् १८७४ में "हरिश्चंद्रचंद्रिका" नाम धारण किया। इसके गुणों से मोहित होकर गवर्नमेंट ने भी १०० प्रतियाँ मोल लेनी स्वीकार कीं परंतु थोड़े ही दिन पीछे कैंपसन साहब डाइरेक्टर ने लिखा कि इस पत्र में "कविहृदयसुधाकर" नामक जो ग्रंथ छपता है वह अश्लील है अतएव आगे से गवर्नमेंट उसकी सौ कापियाँ न खरीदेगी।

"कविहृदयसुधाकर" में एक यति और वेश्या का संवाद है जिसका मूल उपदेशमय और लाभकारी है। परंतु साहब डाइरेक्टर के रँगे हरे चश्मे से उसका रूप मलिन दिखाई दिया पर सर्वसाधारण ने उसका सम्मान किया और दिन दिन इसका आदर और गौरव तथा उत्साह बढ़ता चला गया। यद्यपि असमय प्रकाशित होने का दोष तो इसमें था परंतु इसके गुणों ने इस दोष को भी गुण बना दिया था। ज्यों ज्यों प्रकाश होने में देर होती त्यों त्यों पाठकों की उत्कंठा बढ़ती जाती थी।

उदयपुर राज्य कौंसिल के सेक्रेटरी, भारतेंदुजी के पुराने मित्र, पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने "मोहनचंद्रिका" नामक मासिक पत्र निकालना चाहा। भारतेंदुजी से उन्होंने कहा कि "हरिश्चंद्रचंद्रिका" को यदि आप कृपा करके दें तो "मोहनचंद्रिका"

उसी में निकले। भारतेंदुजी ने हर्षपूर्वक इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और सन् १८८० ई० (संवत् १९३७ मिती चैत्र शुक्ल १) को "मोहनचंद्रिका" सम्मिलित "हरिश्चंद्रचंद्रिका" का पुनः उदय काशी से हुआ। पं० नंदलाल विष्णुलाल पंड्या उसके संपादक थे और वे भारतेंदुजी को घेरकर प्रायः लेख और कविता लिया करते थे परंतु एक ही वर्ष पीछे उसके उदयपुर अंतर्गत नाथद्वारा (संवत् १९३८ में) जाने से इसका रूप ही बदल गया। इसमें संस्कृत का मासिक पत्र "विद्यार्थी" भी मिल गया और इसका संपादन-भार पंडितवर दामोदर शास्त्रीजी पर आया जब कि पंडितजी का उत्साह ढीला पड़ा और चंद्रिका अस्त हुई। उस पर भारतेंदुजी का विशेष स्नेह था इसलिये सन् १८८४ ई० में उन्होंने फिर से काशी से "नवोदिता हरिश्चंद्रचंद्रिका" नाम से उसे निकाला परंतु हम लोगों के दुर्भाग्यवश दो ही महीने पीछे ५ जनवरी सन् १८८५ को भारतेंदु भारत-आकाश से अस्त हो गए और उनके कनिष्ठ भाई बाबू गोकुलचंद्रजी ने पीछे सन् १८८५ में तीसरा नंबर प्रकाशित किया। पंडित मोहनलालजी पंड्या ने न जाने क्या सोचकर एक नोटिस दी कि "बाबू हरिश्चंद्रजी ने हरिश्चंद्रचंद्रिका हमें दी थी अतएव उस पर कानून से हमारा अधिकार है आप लोग उसके छापने का उद्योग न करें"। बस यह चंद्रिका भी अपने चंद्रमा के साथ ही विलीन हो गई।

बाला-पाठशालाओं में प्रचार की इच्छा से गवर्नमेंट के आज्ञानुसार सन् १८७४ ई० में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी ने "बाला-बोधिनी" पत्रिका प्रकाशित की। गवर्नमेंट भी इसकी १०० प्रतियाँ उक्त पाठशालाओं के लिये लेती रही। इसमें बहुत से उपयोगी और सुंदर लेख छपे, स्वर्गवासी बाबू ऐश्वर्यनारायणसिंह, पंडित शीतलप्रसाद त्रिपाठी सरीखे काशी के भूषण उसमें लेख देते थे

परंतु चार वर्ष चलने के पीछे जब गवर्नमेंट की कोपदृष्टि "कविवचन-सुधा" और "हरिश्चंद्रचंद्रिका" पर पड़ी तब "बालाबोधिनी" का लेना भी बंद किया गया। यह पत्रिका केवल गवर्नमेंट के सहारे से चलती थी, बाहरी ग्राहक बहुत ही कम थे इससे उसी समय से बंद हो गई।

"चंद्रिका" और "बालाबोधिनी" का साथ देने और हिंदी भाषा की पुष्टता साधन के अभिप्राय से सन् १८७७ ई० की १ सितंबर को प्रयाग से पंडित बालकृष्ण भट्टजी ने हिंदी भाषा का अद्वितीय पत्र "हिंदी प्रदीप" निकाला। यह पत्र जिस स्वाधीन भाव और गौरव के साथ निकला आज तक वैसे ही अचल स्थिर है। यद्यपि ग्राहकों की कमी तथा नादिहंदी और किसी किसी की कठोर दृष्टि से इस पर कई हवा आईं परंतु यह पंडित बालकृष्ण सरीखे दृढ़ पुरुष के हाथ में रहकर कब हिल सकता था? महाराणा सज्जनसिंहजी ने इस पत्र के गुणों पर रीझकर इसकी अर्थ से सहायता की थी। भारतेंदुजी का प्रेम इस पत्र पर बहुत विशेष था।

इसी सन् १८७७ ई० में शाहजहाँपुर आर्यसमाज से मुंशी बखतावरसिंहजी ने "आर्यदर्पण" निकाला। यह पत्र आर्यसमाज के पक्ष को दृढ़ करता रहा। यह पत्र अब तक प्रकाशित होता है।

सन् १८७८ ई० में फर्रुखाबाद आर्यसमाज की ओर से बाबू कालीचरण ने "भारत-सुदशा-प्रवर्तक" निकाला।

हिंदी भाषा में उत्तम मासिक पत्रों की कमी देखकर और "हरिश्चंद्रचंद्रिका" पर मोहन चंद्रिका की मोहनी छा जाने से दुःखी होकर सन् १८८१ श्रावण संवत् १९३८ से मिर्जापुर के सुप्रसिद्ध पंडित बदरीनारायण चौधरीजी ने "आनंदकादंबिनी" प्रकाशित की। खेद

का विषय है कि यह पत्र थोड़े ही दिनों के पीछे बंद हो गया परंतु उसका स्मरण और आदर आज तक रसिक समाज में होता है।

इसी सन् १८८१ ई० में बाँकीपुर से "खड्गविलास" प्रेस के स्वामी परमोत्साही हिंदी के सच्चे प्रेमी बाबू रामदीन सिंह ने "क्षत्रिय पत्रिका" निकाली। इसमें अच्छे अच्छे लेख छपते थे और भारतेंदुजी प्रायः लेख दिया करते थे।

संवत् १९३९ सन् १८८२ ई० में काशी से साहित्याचार्य पंडितवर अंबिकादत्त व्यास जी ने "वैष्णव पत्रिका" का प्रचार किया यही पत्र कुछ दिनों पीछे २५ फरवरी सन् १८८४ ई० से "पीयूष-प्रवाह" नाम धारण कर प्रकाशित होने लगा जो, हर्ष का विषय है कि, अब तक वर्तमान है।

लाहोर से सन् १८८२ ई० में पंजाब युनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार बाबू नवीनचंद्र राय ने "ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका" निकाली थी। यह ब्राह्म समाज की पुष्टि करती थी परंतु थोड़े ही दिन पीछे बंद हो गई।

संवत् १९४० (सन् १८८३ ई०) में कलकत्ते की धर्मसभा की ओर से पंडित देवीसहायजी ने "धर्मदिवाकर" पत्र निकाला। यह सनातन हिंदू धर्म का मंडन और आर्य्य समाज का खंडन करता रहा। धर्म संबंधी लेख इस पत्र में जैसी गंभीरता और उत्तमता से लिखे जाते थे देखने में कम आए। ऐसे एक पत्र की बड़ी ही आवश्यकता है।

सन् १८८३ ई० १ मार्च को कानपुर से हिंदी के प्रसिद्ध लेखक पंडित प्रतापनारायण मिश्रजी ने "ब्राह्मण" पत्र को जन्म दिया। उस पत्र का आदर हिंदी रसिक-मंडली में बहुत ही हुआ और उसके लेखों की मनोहरता ने सबको मोहित कर लिया यहाँ तक कि स्वयं भारतेंदुजी उसके लेखों से मोहित हो जाते थे, ग्राहकों की अनुदा-

रता से यह पत्र बंद होने ही को था कि इसके गुणों से मोहित होकर बाँकीपुर-निवासी बाबू रामदीन सिंह ने इसे अपने खड्गविलास यंत्रालय में उठा लिया जहाँ से वह अब तक प्रकाशित होता है। खेद की बात है कि इस ग्रंथ के यंत्रालय में रहते ही हिंदी के अमूल्य रत्न पंडित प्रतापनारायणजी अकालकालग्रसित हुए परंतु बाबू रामदीन सिंहजी ने इस पत्र के चलाने की प्रतिज्ञा की है। इसके लिये उन्हें अनेक धन्यवाद हैं।

इसी सन् १८८३ ई० में "भारतेंदु" नामक पत्र को लाहोर के परम उत्साही पंडित ज्वालादत्तप्रसाद जी ने प्रकाशित किया था, केवल दो अंक मात्र छपे थे कि पत्र बंद हो गया। मित्रविलास के एडिटर पंडित गोपीनाथजी उस समय वृंदावन गए थे। श्री राधाचरण गोस्वामीजी ने उनसे एक हिंदी मासिक पत्र निकालने का परामर्श किया तो उन्होंने नवीन पत्र प्रकाश करने के बदले उसी पत्र के चलाने का भार उक्त गोस्वामीजी को दिया। यह पत्र लाहोर से वृंदावन को स्थानांतरित हुआ और नवीन क्रम, नवीन आकार से मि० चैत्र शु० १५ संवत् १९४० को इसका प्रथम अंक निकला। २५० कापियाँ नियमित छपती थीं और २०० बटती थीं। ग्राहक १०० थे मूल्य १।) डाक व्यय सहित सब से प्रथम ही लिया जाता था। यही कारण था कि इसके ग्राहक कम हुए क्योंकि हिंदी समाज में पैसा देकर पत्र लेनेवाले बहुत कम होते हैं। अंक ४ खंड १ में एक ब्रह्मचारीजी (वृंदावन के एक ऐश्वर्यशाली) को शिक्षा लिखी थी, सो बहुत खफा हुए। परंतु संपादक ने धैर्य्य नहीं छोड़ा। इस पत्र में एक लेख बाबू हरिश्चंद्रजी ने दिया था और बाबू काशीनाथ, लाला श्रीनिवासदासजी, नारायण हेमचंद्र, श्रीमती हरि देवी आदि प्रसिद्ध लेखकों के कई लेख छपे और पंडित

श्रीधर पाठकजी मुख्य लेखक थे। शेष अधिकांश संपादक ने लिखा। यह पत्र मि० श्रावण शु० १५ संवत् १९४३ तक नियमित छपता रहा और इसके अधिकांश लेख हिंदी पत्रों में उद्धृत तथा कई अँगरेजी पत्रों में अनुवादित भी होते रहे। सबसे बड़ा कार्य्य इस पत्र ने यह किया कि वृंदावन रेलवे के लिये गवर्नमेंट को उत्तेजित किया और वृंदावन को मथुरा से रेल बन गई। ४ खंड ५ अंक छपकर यह पत्र बंद हो गया और ग्राहकों का मूल्य जो बाकी था उसके बदले "नवभक्तमाल" और "विदेश-यात्रा-विचार" दो ग्रंथ दिए गए। सं० १९४७ में यह पत्र फिर भी निकला और अब १ जनवरी सन् १८९० से ५ अंक छपकर बंद है। आशा है कि हिंदी के रसिक जन उक्त पत्र के पुनः प्रकाशित करने के लिये गोस्वामी जी को उत्साहित करेंगे।

१५ नवंबर सन् १८८३ को जबलपुर से शुभचिंतक निकला पर वह भी शीघ्र ही बंद हो गया।

लखनऊ से जो हिंदी के मासिक पत्र प्रकाशित हुए थे उनका संक्षिप्त इतिहास नीचे प्रकाशित किया जाता है।

"दिनकरप्रकाश" यह पत्र मासिक १६ पृष्ठ का टाइप में छपकर प्रति मास स्थान हाटीराम की चढ़ाई लखनऊ से बाबू रामदास वर्म्मा द्वारा संपादित होकर प्रकाशित होता था—अनेक विषय थे। मूल्य १॥=) वार्षिक सन् १८८३ से आरंभ और सन् १८८८ में समाप्त। कारण वही बेपरवाही।

"कान्यकुब्ज प्रकाश" मासिक—१६ पृष्ठ लिथो छापा गणेशगंज लखनऊ से पं० बलभद्र मिश्र द्वारा प्रकाशित होता था। विषय सामाजिक, सन् १८८४ से १८८६ तक चला, मूल्य ॥।)।

"रसिक पंच" मासिक १६ पृष्ठ का टाइप छापा स्थान बड़ी

कालका स्ट्रीट से पंडित शिवनाथ मिश्र द्वारा संपादित, विषय हास्य, मूल्य ।=) सन् १८८७ से १८८९ तक चला।

"काव्यामृतवर्षिणी" मासिक पत्र लिथो १८ पृष्ठ पंडित शिवदत्त द्वारा संपादित, स्थान गणेशगंज सन् १८८५ से १८८८ तक चला। मूल्य १।।)।

"भारतभानु" मासिक टाइप छापा १६ पृष्ठ—बाबू कन्हैयालाल जैन और बाबू भगवानदास जैन द्वारा संपादित, स्थान हजरतगंज, मूल्य १।) विषय विशेषत: काव्य। ग्राहकों की गड़बड़ से ग्रस्त। १८९१ से १८९३ तक निकला।

"बुद्धिप्रकाश" मासिक लिथो छापा १२ पृष्ठ स्थान अहमदगंज से पंडित चंद्रशेखरजी गोड़े द्वारा संपादित होता था—मूल्य १।) सन् १८८८ से १।। वर्ष तक चला।

स्त्रीशिक्षा विषयक दूसरी पत्रिका "सुगृहिणी" थी। इसे लाहौर के बाबू नवीनचंद्र राय की पुत्री श्री हेमंतकुमारी देवी संपादित करती थीं। इसका जन्म सन् १८८८ ई० में हुआ। यह बात हिंदी के लिये नई थी कि एक स्त्री और वह भी बंगालिन एक हिंदी पत्रिका की संपादिका हों। लेख उसके ब्रह्म समाज के ढंग पर विशेष होते थे।

तीसरी स्त्रीशिक्षा विषयक पत्रिका प्रयाग से मुंशी रौशनलाल बैरिस्टर की स्त्री श्रीमती हरिदेवी ने सन् १८८९ से "भारतभगिनी" नाम की निकाली है जो इस समय तक वर्तमान है।

सन् १८९० ई० से "कृषीकारक" पत्र अमरावती से खेती-सुधारन मंडली के सेक्रेटरी गणेश नारायण घोटबड़ेकर और सखाराम चिमणाजी गोले द्वारा महाराष्ट्री भाषा में संपादित होकर काशी भारतजीवन संपादक बाबू रामकृष्ण वर्म्मा द्वारा हिंदी में अनुवादित

होकर प्रकाशित होता था। पहले इसका अनुवाद शुद्ध हिंदी भाषा में किया जाता था परंतु वाह रे हिंदी के दुर्दिन कि अफसरों की कृपा से इसकी भाषा उर्दू मिली खिचड़ी हो गई और अंत में उसका छपना भी बंद हो गया। अवश्य इस पत्र से किसानी विद्या जाननेवालों को बहुत उपकार पहुँचता था।

सन् १८९३ ई० में हिंदी भाषा के उत्तमोत्तम ग्रंथों को प्रकाशित करने की इच्छा से बाबू देवकीनंदन खत्री और बाबू जगन्नाथदास बी० ए० (रत्नाकर) ने "साहित्यसुधानिधि" प्रकाशित किया। इसमें प्रति मास ५ फार्म ५ ग्रंथों के छपते हैं जो कि ग्रंथ पूरा होने पर अलग निकाल लेने से स्वतंत्र ग्रंथ हो जाते हैं। इस पत्र से हिंदी भाषा की सहायता की बहुत कुछ आशा है, यदि ईश्वर की कृपा से हिंदी के दुर्भाग्य की छाया न पड़ने पावे।

स्फुट

भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के अकालकाल ग्रसित होने पर माघ संवत् १९४१ (जनवरी सन् १८८५ ई०) से "मित्रविलास" के प्रस्तावानुसार हिंदी पत्रों ने "हरिश्चंद्र संवत्" चलाया, बहुतेरे पत्र इस संवत् को अब तक अपने पत्र पर लिखते हैं।

सन् १८८४ ई० में "प्रयाग हिंदू समाज" के उद्योग से "हिंदी-उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य सभा" स्थापित हुई थी और दो वर्ष तक इसका अधिवेशन सफलता के साथ हुआ। इसी के अंतर्गत एक "संपादक समाज" भी बना। दो वर्ष तक इसका भी अधिवेशन हुआ परंतु हिंदी के दुर्भाग्यवश ये समाज ऐसे लुप्त हुए कि फिर कभी इनका स्वप्न भी न आया। "संपादक समाज" का स्थापित होना अत्या-

वश्यक है। आशा करते हैं सुयोग्य हिंदी पत्र-संपादकगण इस ओर अवश्य ध्यान देंगे।

हिंदी के सामयिक पत्रों का पता जहाँ तक लगा है उनकी सूची स्थानांतर में प्रकाशित की गई है। यदि और भी महाशय लोग कृपा-पूर्वक जिन पत्रों का समाचार उन्हें ज्ञात हो लिख भेजेंगे तो वह दूसरे संस्करण में धन्यवाद के साथ प्रकाशित किया जायगा।

सामयिक पत्रों के मुख्य मुख्य नियम

१—सामयिक पत्र वे हैं जो किसी नियत समय पर प्रकाशित हों।

२—सामयिक पत्रों के प्रकाशित होने के ये समय हैं—

(१) दैनिक—जो नित्य प्रकाशित होता हो।

(२) सप्ताह में दो बार—जो सप्ताह के किसी नियमित दो वारों को प्रकाशित होता हो।

(३) साप्ताहिक—जो आठवें दिन प्रकाशित होता हो।

(४) पाक्षिक—जो पंद्रहें दिन प्रकाशित होता हो।

(५) मासिक—जो महीने की किसी तिथि को प्रकाशित होता हो।

(६) त्रैमासिक, षट् मासिक वा वार्षिक—जो उक्त समय पर प्रकाशित होता हो—जैसे किसी सभा आदि का विवरण—अथवा किसी दैनिक, साप्ताहिक के उपयोगी मनोहर लेखों का संग्रह (अँगरेजी में "इंग्लिशमैन" आदि का निकलता है)।

३—सामयिक पत्रों के इतने भेद हैं—

(१) राजनैतिक (Political)—जिसमें राजकीय विषयों ही पर विचार किया जाता हो जैसे—हिंदोस्थान।

(२) धर्म संबंधी (Religious)—जिसमें धर्म संबंधी विषयों पर विचार हो—जैसे मित्रविलास, आर्यावर्त, धर्मदिवाकर।

(३) सामाजिक (Social)—जिसमें समाज-संशोधन पर विशेष ध्यान रहे—जैसे अग्रवालोपकारक आदि ।

(४) साहित्य संबंधी (Literary)—जिसमें गद्य-पद्य-मय लेख तथा ग्रंथ छपें—जैसे साहित्यसुधानिधि, ब्राह्मण आदि ।

(५) पंच—जिसमें हास्यमय लेख छपें—जैसे रसिक पंच ।

(६) वैज्ञानिक (Scientific)—जिसमें किसी विज्ञान शास्त्र अर्थात् कृषि, रसायन आदि पर विचार हो—उदाहरण भाषा में नहीं है ।

(७) समाचार पत्र—जिसमें समाचारों की ओर विशेष लक्ष्य रहे—जैसे हिंदी बंगवासी ।

४—इनमें से राजनैतिक और समाचार पत्र प्राय: दैनिक, साप्ताहिक वा पाक्षिक होते हैं; साहित्य संबंधी, वैज्ञानिक और सामाजिक प्राय: मासिक होते हैं; धर्म संबंधी और पंच सभी प्रकार के होते हैं ।

५—राजनैतिक, पत्रों को निम्नलिखित विषयों पर विशेष ध्यान रखना चाहिए ।

(१) विषय सर्वोपकारी और उदार भाव के हों ।

(२) भाषा नम्र विनीत और गंभीर हो ।

(३) राजा और प्रजा दोनों के लाभ हानि पर समान भाव से विचार किया गया हो—पक्षपातशून्य हो ।

(४) जो बात लिखी जाय उसका पूरा प्रमाण रखता हो ।

(५) व्यर्थ का उत्तेजक न हो—राजभक्ति-पूर्ण हो, सामयिक हो ।

(६) यदि देखता हो कि राजा चूकता है और किसी हाकिम को इस पर आग्रह है उसके विषय में व्यर्थ का भय न करके अत्यंत नम्रता के साथ दृढ़तर प्रमाणों से सिद्ध करके राजा की सेवा में निवेदन करे, परंतु औद्धत्य न आने पावे ।

(७) राजा के मत तथा नियमों को ठीक ठीक प्रजा में प्रचार करना और प्रजा चूकती हो तो उसे सावधान करना।

६—धर्म विषयक और सामाजिक पत्रों का निम्नलिखित विषयों पर ध्यान रहना चाहिए।

(१) अपने अपने पक्ष को दृढ़तर प्रमाणों के साथ पुष्ट करें।

(२) भाषा प्राय: सर्व साधारण के समझने योग्य और बड़ी गंभीरता पूर्ण हो।

(३) अपने अपने मत के ग्रंथों तथा सिद्धांतों को सर्व साधारण में फैलाना तथा अपने संप्रदाय की महत्ता सिद्ध करना।

(४) अपने मत का पक्ष लेकर दूसरे मतवालों पर ऐसा कटाक्ष न करना जिसमें उनके हृदय पर चोट पहुँचे, अथवा झूठे अपवाद किसी मत पर न लगावे।

(५) दूसरे मतवालों के खंडन के समय सभ्यता से बाहर न जाना चाहिए और भटियारों सी लड़ाई न लड़नी चाहिएँ।

(६) किसी व्यक्ति विशेष पर ऐसे कटाक्ष न करने चाहिएँ जिसमें लाइबेल केस हो सके।

७—साहित्य विषयक पत्रों में निम्नलिखित विषय रहने चाहिये।

(१) गद्य, पद्य, लेख, नाटक, उपन्यास, इतिहास, जीवन-चरित्र, प्रहसन, पंच, आदि सब प्रकार के साहित्य संबंधी लेख तथा ग्रंथ।

(२) भाषा जहाँ तक उत्तमोत्तम हो सके।

(३) विषय देशोपकारक हों।

(४) अश्लील काव्य न छपें।

८—वैज्ञानिक पत्रों में विज्ञान संबंधी ग्रंथ तथा लेख ऐसी रीति से लिखे जाने चाहिएँ जिसमें सब लोग लाभ उठा सकें।

९—समाचार पत्रों में ये बातें होनी चाहिएँ—

(१) भाषा सरल हो।

(२) इतने स्तंभ होने चाहिएँ,—

(क) संपादकीय सम्मति।

(ख) संपादकीय लेख (Leader)।

(ग) प्राप्त अर्थात् दूसरे विद्वानों के प्रेरित सर्वोपकारक लेख।

(घ) स्थानिक समाचार।

(च) समाचारावली (१) देशीय (२) विदेशीय।

(छ) तड़ित् समाचार।

(ज) प्रेरित पत्र।

(झ) विज्ञापन।

(३) समाचार पत्रों में प्रायः कविता आदि नहीं छपती।

(४) यद्यपि प्रेरित पत्र के उत्तरदाता संपादक नहीं होते तथापि प्रेरित पत्रों पर बिना विचार किए छपने न देना चाहिए। एक तो संपादक की योग्यता उससे झलकती है, दूसरे उसमें यदि कोई विषय कानून के विरुद्ध होगा तो अवश्य संपादक, प्रकाशक और यंत्राध्यक्ष पहले पूछे जायँगे।

(५) विज्ञापन पर भी विशेष ध्यान रखना चाहिए क्योंकि अश्लील विज्ञापन छापने के कारण कई संपादक दंडित हो चुके हैं।

(६) किसी सज्जन पर झूठा कोई दोषारोप न लगावे नहीं तो राजदंड का भय है।

(७) संपादकीय लेख में वर्तमान समय के उपयोगी किसी राजनैतिक आदि विषय पर संपादक को अपना तथा अपनी बुद्धि के अनुसार अपने देश का मत प्रगट करना चाहिए।

यह लेख न इतना बड़ा हो कि पढ़ने से जी ऊब जाय, न इतना छोटा कि पूरा पूरा अभिप्राय भी व्यक्त न हो सके।

(८) मूल्य इतना रहना चाहिए कि सर्वसाधारण उसे मोल ले सकें। समाचार पत्र जहाँ तक अधिक बिकें उतना ही उनका उद्देश्य सिद्ध होगा।

१०—पंच के साधारण नियम ये होने चाहिएँ—

(१) लेख हास्यमय, भाषा आवश्यकतानुसार पचमेल।

(२) किसी देशोपकारक विषय, अथवा किसी व्यक्ति विशेष पर लक्ष्य करके हास्यमय ढंग से उसके दोषों को दिखलाना।

(३) पंच की धृष्टता क्षमा है परंतु ऐसे शब्द न हों जो अदालत तक जा सकें।

(४) सभ्यता से बाहर न जाने पावे, अश्लील और घृणास्पद न हो जाय।

(५) कहीं पंच को मूर्तिमान् मानकर दूसरे किसी से बातचीत अथवा दो मनुष्यों का वार्तालाप और कहीं यों ही अनर्गल लिखते चले जाते हैं। विचित्राकार चित्र बनाकर भी हास्यमय वाक्य लिखकर अभिप्राय प्रकाश करते हैं।

समाचारपत्रों के वास्ते सर्कारी नियम

("हिंदुस्तान का दंड-संग्रह" से उद्धृत)

दफा २९२—जो कोई मनुष्य निर्लज्जता की पोथी अथवा पुस्तक अथवा कागज अथवा चित्र अथवा विचित्र अथवा मूर्ति अथवा प्रतिमा बेचेगा अथवा बाँटेगा अथवा बेचने को या किराए पर बाहर ले जावेगा या छापेगा अथवा इन कामों का उद्योग करेगा उसको दंड

दोनों में से किसी प्रकार की कैद का जिसकी म्याद तीन महीने तक को हो सकेगी अथवा जरीमाने अथवा दोनों का किया जायगा।

दफा ४०९—जो कोई मनुष्य किसी बात को जो शब्दों से उच्चारण की जाय अथवा जो पढ़े जाने के प्रयोजन से हो अथवा चिह्नों से अथवा प्रत्यक्ष चित्र इत्यादि से किसी मनुष्य के बारे में कोई बात लगावेगा अथवा छापकर प्रगट करेगा इस प्रयोजन से अथवा यह जान मानकर अथवा निश्चय मानने का हेतु पाकर कि इस बात के लगाने से उस मनुष्य के यश को हानि पहुँचेगी तो सिवाय नीचे लिखी हुई छूटों के कहा जायगा कि उसने उस मनुष्य को अपयश लगाया।

विवेचना१—किसी मरे हुए मनुष्य को कोई बात लगाने से भी अपयश लगाना हो सकेगा कदाचित् उस अपयश लगाने से उस मनुष्य के यश को जब कि वह जीता होता हानि पहुँचती और प्रयोजन उसके लगाने से यह हो कि उसके वंशवालों अथवा नगीच के नातेदारों को बुरा लगे।

विवेचना २—किसी कंपनी अथवा समाज को अथवा मनुष्यों के समुदाय को जो कंपनी या समाज की भाँति इकट्ठे हों कोई बात लगानी यह भी अपयश लगाना हो सकेगा।

विवेचना ३—दुअर्थे शब्द कहकर अथवा व्याज-स्तुति करके कुछ बात लगानी यह भी अपयश लगाना हो सकेगा।

विवेचना ४—किसी बात के लगाने से किसी मनुष्य के जिस को हानि पहुँचनी न कहलावेगी जब तक कि उस बात को लगाने से स्पष्ट अथवा लौट फेरकर औरों के नगीच उस मनुष्य की सुचाल अथवा बुद्धिमानी नीचो हो जाय अथवा उसकी जाति या ब्यौहार में बट्टा न लगे अथवा उसकी साखि न बिगड़े अथवा यह बात न समझी

जाय कि उस मनुष्य का शरीर बिगड़ गया है अथवा ऐसी अवस्था में हो गया है जो बहुधा कलंकित गिनी जाती है।

छूट १—किसी मनुष्य के बारे में कोई सच्ची बात लगानी अपयश लगाना न होगा कदाचित् उसका लगाया जाना अथवा प्रगट करना पुरुष के भले के लिये उचित हो और यह देखना कि यह बात सबके भले के लिये थी या न थी उस समय के वर्तमान के अधीन होगी।

छूट २—शुद्ध भाव से विचारांश किसी सर्वसंबंधी नौकर की काररवाई के बारे में अथवा उसके चलन के बारे में वहाँ तक जहाँ तक कि वह चलन उस काररवाई से संबंध रखती हो प्रगट कर देना अपयश लगाना न होगा।

छूट ३—शुद्ध भाव से कुछ विचारांश किसी मनुष्य के चलन के बारे में जो किसी सर्व संबंधी मामले से संबंध रखती हो और उस मनुष्य के चलन व स्वभाव के मध्ये वहाँ तक जहाँ तक कि वह चलन व स्वभाव उस चलन से प्रगट होते हों और उससे अधिक प्रगट न कर देना अपयश लगाना न होगा।

छूट ४—किसी अदालत के हाकिम की काररवाई कोई सच्ची और पक्की खबर अथवा उस काररवाई का परिणाम छापकर प्रगट करना अपयश लगाना न होगा।

विवेचना—जब कोई जस्टिस आफ़ दी पीस (Justice of the peace) अथवा और कोई अहलकार खुली कचहरी में तहकीकात करता हो जो अदालत में किसी मुकदमे का न्याय होने से पहले होनी चाहिए तो वह पिछली छूट के अर्थ में अदालत का हाकिम कहला सकेगा।

छूट ५—शुद्ध भाव से कुछ विचारांश दीवानी अथवा फौजदारी के किसी मुकदमे की व्यवस्था के मध्ये जिसको किसी अदालत के

हाकिम ने निबेड़ा हो अथवा किसी मनुष्य की काररवाई के मध्ये जो उस मुकदमे में पक्षपाती अथवा गवाह अथवा मुख्तार हो अथवा उस मनुष्य के चलने के मध्ये वहाँ तक जहाँ तक कि वह चलन उसी काररवाई से संबंध रखती हो प्रगट कर देना अपयश लगाना न होगा।

छूट ६—शुद्ध भाव से कुछ विचारांश किसी सर्व संबंधी काम के मध्ये जिसको उसके करनेवाले ने सबके विचार के लिये किया हो अथवा कुछ विचारांश उस करनेवाले के चलन के मध्ये वहाँ तक जहाँ तक कि वह चलन उस काम से संबंध रखती हो प्रगट कर देना अपयश लगाना न होगा।

विवेचना—किसी काम का सबके विचार के लिये प्रगट किया जाना कहलावेगा जब कि वह काम स्पष्ट सबके विचारने निमित्त किया जाय अथवा उस काम के करनेवाले की ओर से कोई ऐसा काम हो जिससे उसका सबको विचार के लिये किया जाना समझा जाय।

छूट ७—जिस मनुष्य को दूसरे पर कानून की रीति से अथवा किसी कौल करार के द्वारा जो उस दूसरे के साथ कानूनानुसार हुआ हो कुछ अधिकार प्राप्त हो उसकी ओर से उस दूसरे मनुष्य की काररवाई के मध्ये किसी बात में जिससे उसका नीतिपूर्वक अधिकार संबंध रखता हो शुद्ध भाव से कुदोष लगाया जाना अपयश लगाना न होगा।

छूट ८—शुद्ध भाव से नालिश करना किसी मनुष्य के ऊपर उन मनुष्यों में से किसी के सामने जिनको उस नालिश के विषय में उस मनुष्य पर कानूनानुसार अधिकार हो अपयश लगाना न होगा।

छूट ९—दूसरे के चलन को कुछ बात लगानी अपयश लगाना न होगा कदाचित् लगानेवाले ने यह बात शुद्ध भाव से अपने

अथवा और किसी के स्वार्थ की रक्षा के लिये अथवा सबके भले के लिये लगाई हो।

दफा ५००—जो कोई मनुष्य किसी मनुष्य को अपयश लगावेगा उसको दंड साधारण कैद का जिसकी म्याद दो बरस तक हो सकेगी अथवा जरीमाने का अथवा दोनों का किया जायगा।

दफा ५०१—जो कोई मनुष्य कुछ बात यह जानकर अथवा जानने का अच्छा हेतु पाकर कि यह किसी मनुष्य को अपयश लगानेवाली है छापेगा अथवा खोदकर लिखेगा उसको दंड साधारण कैद का जिसकी म्याद दो बरस तक हो सकेगी अथवा जरीमाने का अथवा दोनों का किया जायगा।

दफा ५०२—जो कोई मनुष्य किसी छपी हुई अथवा खुदी हुई वस्तु को जिसमें कोई अपयश लगानेवाली बात हो यह जान बूझकर कि इसमें ऐसी बात है बेचेगा अथवा बेचने के लिये सामने रखेगा उसको दंड साधारण कैद का जिसकी म्याद दो बरस तक हो सकेगी अथवा जरीमाने का अथवा दोनों का किया जायगा।

दफा ५०५—जो कोई मनुष्य कुछ वृत्तांत अथवा अफवाह अथवा खबर जिसको वह जानता हो कि झूठ है इस प्रयोजन से उड़ावेगा अथवा प्रगट करेगा कि श्रीमती महाराणी की अथवा जहाजी फौज के किसी अफसर अथवा सिपाही अथवा माझी से बगावत करावेगा अथवा इस प्रयोजन से कि सबको डर में अथवा घबराहट में डालेगा और उस उपाय से किसी मनुष्य से कुछ अपराध राज के विरुद्ध अथवा सर्व संबंधी कुशलता के विरुद्ध करावेगा उसको दंड दोनों में से किसी प्रकार की कैद का जिसकी म्याद दो बरस तक हो सकेगी अथवा जरीमाने का अथवा दोनों का किया जायगा।

प्रयोजनीय बातें

जब कोई पुरुष नया पत्र निकालना चाहे तो उसे पत्र प्रकाशित करने की तिथि के कम से कम दस दिन पहले निम्नलिखित निवेदनपत्र उस नगर के मजिस्ट्रेट के पास, आठ आने के दरखास्ती टिकट के साथ, देना होगा।

IN THE COURT OF MAGISTRATE,

BENARES.

The humble petition of A, resident of Muhulla B, Benares City, begs to state that as he intends starting a weekly paper named C from August 16th, 1894, he begs the favour of your kindly taking a declaration from him as an Editor of the paper.

Dated 5th August, 1894. } A

इस पर से मजिस्ट्रेट साहब की आज्ञा नियमित डिकलेरेशन देने की होगी। संपादकों तथा पत्रप्रकाशकों को उचित है कि निम्नलिखित डिकलेरेशन को लिखकर अपने पास रखें जिससे मजिस्ट्रेट साहब की आज्ञा होते ही उसे उपस्थित कर दें अन्यथा विलंब हो जाने की बहुत संभावना है। इस डिकलेरेशन की दो प्रतियाँ संपादक को और दो प्रतियाँ छापनेवाले को देनी होंगी और इन प्रत्येक पत्रों पर तीन दूसरे पुरुषों के हस्ताक्षर होने चाहिए।

I, a resident of Muhulla B, Benares City, do hereby declare that I am the Editor or Printer of the weekly paper named C printed from D Press,

Benares, (or which will be printed from D Press, Benares).

Declared *this day before me,*

5th August, 1894. *Magistrate.*

इस प्रबंध के ठीक कर लेने पर पत्रप्रकाशक को उचित है कि पत्र भेजने का प्रबंध डाकखाने से कर ले। इसके वास्ते जिन नियमों की आवश्यकता है वे नीचे प्रकाशित किए जाते हैं।

समाचार पत्रों के वास्ते डाक संबंधी नियम

भारत गवर्न्मेंट के राजस्व विभाग से जो ६ अक्तूबर सन् १८८१ ई० को नंबर ३४६३ का नियम प्रकाशित हुआ था उसके अनुसार भारतीय डाक विभाग के डाईरेक्टर जेनरल साहब ने निम्नलिखित नियम उन समाचार पत्रों के अग्रिम महसूल जमा करने के बारे में बनाए हैं जिनकी इन नियमों के अनुसार वर्तन करने की इच्छा हो—

आरंभिक नियम

नियम पहला—इस नियमावली में "समाचार पत्र" शब्द से उन सामयिक पत्रों का अभिप्राय है जो किसी ठीक नियमित समय पर निकलते हों और जिनके प्रकाशित होने का समय ३१ दिन से अधिक न हो।

कोई अधिक पत्र वा क्रोड़पत्र, जिस पर उसी समाचार पत्र के छपने की तिथि छपी होगी और जो उसी पत्र के साथ बटेगा, उस समाचार पत्र का भाग समझा जायगा।

समाचार पत्रों का अग्रिम महसूल जमा करने का खुलासा वृत्तांत

नियम दूसरा—किसी समाचार पत्र का स्वामी, प्रबंधकर्ता वा प्रकाशक डाकखाने के साथ किसी नियमित समय के लिये अग्रिम महसूल देने का प्रबंध कर सकता है। यह महसूल समाचार पत्रों की उतनी कापियों पर लिया जायगा जितनी कापियाँ कि वह व्यक्ति उतने समय में भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रांतों में भेजना चाहेगा। तब ये कापियाँ विना किसी प्रकार का डाक का टिकट लगाये भारत-वर्ष के भिन्न-भिन्न प्रांतों में भेजी जायँगी।

नियम तीसरा—तीन महीने के लिये अग्रिम महसूल लिया जायगा किंतु पहली बेर के लिये समय कमती भी हो सकता है पर एक महीने से कम नहीं।

नियम चौथा—महसूल के हिसाब की दर नीचे लिखी जाती है। हिसाब करने के समय पाँचवें और छठें नियमों का भी ध्यान रखा जायगा।

समाचार पत्र की प्रत्येक कापी के लिये जो तौल में तीन तोले से अधिक न हो......१ पैसा।

समाचार पत्र की प्रत्येक कापी के लिये जो तौल में तीन तोले के पार और दस तोले तक हो......२ पैसा।

इससे अधिक प्रत्येक दस तोले वा दस तोले के भाग के लिये ......२ पैसा।

नियम पाँचवाँ—अग्रिम महसूल जमा करने के समय उन समाचार पत्रों का हिसाब, जो बंडलों में बाँधकर डाक द्वारा एजेंटों के पास बिक्री के वास्ते भेजे जाते हैं, ऊपर लिखे हिसाब के आधे दर से किया जायगा।

नियम छठा—उन समाचार पत्रों का महसूल, जो बदले में दूसरे समाचार पत्रों के संपादकों वा प्रबंधकर्त्ताओं के पास बेदाम भेजे जाते हैं, कुछ भी नहीं लिया जायगा।

जिन समाचार पत्रों के स्वामी इन नियमों के अनुसार बर्ताव किया चाहते हैं उन्हें जो जो करना चाहिए उसका वर्णन

नियम सातवाँ—किसी समाचार पत्र के स्वामी, प्रबंधकर्ता अथवा प्रकाशक इस नियम के अनुसार बर्ताव करना चाहें तो उन्हें पहले अपने प्रांत के अर्थात् जहाँ वह पत्र छपता हो वहाँ के मुख्य डाक विभाग के अफसर को पत्र लिखना चाहिए। तब उसे एक छपा हुआ पत्र* दिया जायगा जिससे उसको विदित होगा कि डाकखाना उस बारे में क्या क्या पूछा चाहता है। इस फार्म को सावधानी से भर के उसी अफसर के पास लौटा देना चाहिए। विज्ञप्ति के वास्ते डाक विभाग के मुख्य मुख्य अफसरों के नाम नीचे लिख दिए जाते हैं—

पोस्ट मास्टर जेनरल, बंगाल, कलकत्ता
,, ,, मद्रास, मद्रास
,, ,, बंबई, बंबई
,, ,, उत्तर पश्चिमोत्तर प्रदेश, प्रयाग
,, ,, पंजाब, लाहौर
डिपुटी पोस्ट मास्टर जेनरल बिहार, दानापुर
,, ,, ,, पूर्वीय बंगाल, ढाका

* यह पत्र स्थानीय डाकखाने से मिल सकता है और एकरारनामे को प्रथम निवेदनपत्र के साथ भेजना चाहिए।

डिपुटी पोस्ट मास्टर जेनरल अवध, लखनऊ

,,	,,	,,	मध्य प्रदेश, नागपुर
,,	,,	,,	ब्रिटिश बर्मा, रंगून
,,	,,	,,	राजपूताना, आबू
,,	,,	,,	आसाम, शिलांग
,,	,,	,,	मध्य भारत, इंदौर
,,	,,	,,	सिंध, कराँची

नियम आठवाँ—इस इकरारनामे के साथ उस समाचार पत्र की एक प्रति भेजनी चाहिए और एक विवरण पत्र, जिसमें उन स्थानों का नाम भी लिखा हो जहाँ कापियाँ बिक्री के वास्ते एजेंटों के पास जायँगी और जिन समाचार पत्रों के संपादकों अथवा प्रबंध-कर्त्ताओं को बदले की कापियाँ भेजी जायँगी उनका नाम भी लिखा जाना चाहिए ।

नियम नवाँ—जब डाक विभाग के मुख्य अफसर के यहाँ से विज्ञप्ति दी जायगी कि इकरारनामे में जितना महसूल लिखा है सही है तो वह महसूल उस डाकखाने में जमा कर देना होगा जहाँ वह पत्र छपता है ।

इसके बाद के महसूल जमा करने के नियम

नियम दसवाँ—यदि तिमाही बीतने पर दूसरी तिमाही के लिये महसूल पुनः जमा करने की इच्छा हो तो जिस स्थान पर वह समाचार पत्र छपता हो वहाँ के डाकखाने में उस तिमाही के प्रारंभ होने के सात दिन पहले लिख के इत्तला देनी चाहिए अर्थात् २४ मार्च, २३ जून, २३ सितंबर और २४ दिसंबर को । पर यदि यह

दिन रविवार को या डाकखाने की किसी छुट्टीवाले दिन पड़ जाय तो इनके एक दिन पहले वैसा करना होगा।

नियम ग्यारहवाँ—इस इतलाही के साथ उसी तारीख को (अर्थात् जिसको इतलाही भेजो जाय) एक नया इकरारनामा भेजना चाहिए जिसमें नियमित कालमों में उतने अखबारों की गिनती लिखी हो जो इस इकरारनामे के पूर्व अंतिम समाचार पत्र के भेजने की गिनती हो। उसी के साथ एक नई फिहरिस्त एजेंटों के स्थान और बदले के अखबारों की भी भेजनी चाहिए। किंतु समाचार पत्र की नई प्रति तभी भेजनी चाहिए जब कि आगामी तिमाही के लिये उसके तौल में कोई अदल बदल हुआ हो वा करने का विचार हो।

नियम बारहवाँ—जब इस बात की इत्तला दी जावे कि इस नए इकरारनामे में जो कुछ महसूल लिखा है सही और स्वीकार है तो उतना महसूल उस डाकखाने में जमा कर देना चाहिए जहाँ कि वह पत्र छपता हो।

इन नियमों के अनुसार समाचार पत्र के भेजने की विधि

नियम तेरहवाँ—जो समाचार पत्र इन नियमों के अनुसार भेजे जायँगे उन्हें केवल उसी डाकखाने वा डाकखानों में भेजना चाहिए जिनके नाम इकरारनामे में लिखे हों (इकरारनामा कालम ११ वाँ देखो)। इन समाचार पत्रों को भिन्न थैलों में बंद करना चाहिए और प्रत्येक थैले में जितनी जितनी कापियाँ हों उनकी गिनती एक भिन्न कागज पर लिखकर उन उन डाकखाने के अफसरों के पास, जो वहाँ काम करते हों, दे देना चाहिए। यदि रेलवे

मेल सर्विस के द्वारा रेल स्टेशनों पर समाचार पत्र के भेजने का प्रबंध कर लिया गया हो अथवा किया जावे तो इन नियमों का बर्ताव उस अवस्था में भी करना होगा। यदि विना डाक का टिकट लगाए कोई समाचार पत्र लेटर बाक्स में छोड़ा जायगा तो वह बैरिंग समझा जायगा।

शिमला
ता० ७ अक्टूबर सन् १८८१ ई०

हिंदी भाषा के समाचार पत्रों का सूची-पत्र

नंबर	नाम पत्र	नाम संपादक	स्थान	समय	मूल्य	जन्म-समय	विशेष
१	अग्रवाल उपकारक	लाला किशोरीलाल	आगरा	मा	१।।)	१८८९	
२	अलमोड़ा अखबार	पं० सदानंद सलवाल	अलमोड़ा	सा	६।।।)	१८७१	
३	आनंद कादंबिनी	पं० बदरीनारायण चौधरी	मिर्जापुर	मा	२)	१८८२	बंद
४	आर्य सिद्धांत	पं० भीमसेन	प्रयाग	मा	१।)	१८८७	
५	आर्य दर्पण	मु० बख्तावरसिंह	शाहजहाँपुर	मा	२।।)	१८७७	
६	आर्य विनय		मुरादाबाद	मा	१)		
७	आर्य्यावर्त		कलकत्ता	सा	३।।)	१८८७	
८	आर्य मित्र	बा० भूतनाथ मुकर्जी	काशी	मा	।।।=)	१८९०	बंद
९	आरोग्य दर्पण	पं० जगन्नाथ वैद्य	प्रयाग	मा	२।।)	१८८१	
१०	आरोग्य जीवन	पं० गजानन हर्स्ने	लखनऊ	मा	२।)	१८८९	
११	आरोग्य सुधाकर	पं० मुरलीधर	मुजफ्फरनगर	मा	१।)	१८८९	

१२	इंदु	पं० ज्वालाप्रसाद	लाहौर	मा	१।)	१८९४	
१३	उचित वक्ता	पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र	कलकत्ता	सा	३)	१८७८	
१४	कलकत्ता समाचार	पं० कन्हैयालाल	कलकत्ता	सा	१॥)	१८९४	बंद
१५	कविवचनसुधा	बा० हरिश्चंद्र	काशी	मा-पी सा	६॥)	१८६८	बंद
१६	कवि व चित्रकार	पं० कुंदनलाल	फतेगढ़	त्रिमा	१)	१८९१	बंद
१७	कवि-कुल-कंज-दिवाकर	पं० रामनाथ शुक्ल	बस्ती	मा	१।)	१८८४	बंद
१८	कृषी कारक	बा० सखाराम व बा० गणेशनारायण	अमरावती	मा	३)	१८९०	बंद
१९	कान्यकुब्ज प्रकाश	पं० बलभद्र मिश्र	लखनऊ	मा	१॥)	१८८४	बंद
२०	काव्यामृतवर्षिणी	पं० शिवदत्त मिश्र	लखनऊ	मा	१॥)	१८८५	बंद
२१	कायस्थ कौमुदी	पं० गोकुलानंद	मुजफ्फरपुर	मा	१॥)		
२२	कायस्थ कान्फरेंस प्रकाश	बा० देवीप्रसाद	कानपुर	पा	१॥)	१८९४	
२३	कायस्थ हितैषी		दरभंगा				
२४	काशीपत्रिका	राय बहादुर पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र एम० ए०	काशी	सा	७॥=)	१८७६	
२५	काशी समाचार	बा० बिहारीसिंह	काशी	सा	१॥)	१८८४	बंद

नंबर	नाम पत्र	नाम संपादक	स्थान	समय	मूल्य	जन्म-समय	विशेष
२६	खिचड़ी समाचार	बा० माधोप्रसाद	मिर्जापुर	सा	१॥-)	१८८६	
२७	गोधर्म्म प्रकाश	पं० हरदयाल शर्म्मा	फर्रुखाबाद	मा	१।)	१८८५	
२८	गोरक्षा		नागपुर	मा	१≡)	१८९०	
२९	गोसेवक	पं० जगत् नारायण	काशी	सा		१८९२	बंद
३०	चंपारन चंद्रिका	बा० भुवनेश्वर	चंपारन	सा	२॥)	१८९०	बंद
३१	चंपारन हितकारी		बेतिया	सा	३)	१८८४	बंद
३२	जगत् मित्र	पं० क्षेत्रपाल शर्म्मा	मथुरा	मा	१।)	१८९१	बंद
३३	जयपुर समाचार		जयपुर				
३४	जाट समाचार	बा० कन्हैयालाल सिंह	गुड़गाँव	मा	१.)	१८८९	
३५	जीयालाल प्रकाश	बा० जीयालाल	फर्रुखनगर	सा	२॥)	१८८४	बंद
३६	जैन धर्म्म प्रकाश	रा० रा० बकरामजी रोडे	बर्धा	मा	१)		
३७	जैन	बा० जीयालाल	फर्रुखनगर	सा	२॥)	१८८४	बंद
३८	जैन प्रभाकर	पं० गोपीनाथ	लाहोर	मा	२)	१८९१	

३९	जैन हितैषी	बा० पन्नालाल	मुरादाबाद	मा	१)	१८९२	
४०	तिमिरनाशक	पं० कृपाराम	काशी	सा	२॥)	१८९०	बंद
४१	द्विज पत्रिका	बा० साहबप्रसाद सिंह	बाँकीपुर	मा	॥)	१८९०	
४२	दिनकर-प्रकाश	बा० रामदास वर्म्मा	लखनऊ	मा	१॥≡)	१८८३	बंद
४३	दीपिका	पं० चंद्रशेषर धर मिश्र	रत्नमाला (चंपारन)	मा	बेमूल्य	१८८८	बंद
४४	देवनागरी गजेट	पं० गौरीदत्त	मेरठ	मा	१।)	१८८८	
४५	देशहितैषी		अजमेर	मा	२)	१८८२	बंद
४६	देशी व्यापारी	बा० राधाकृष्ण गुप्त	कलकत्ता	मा	५) ३)	१८८४	बंद
४७	धर्म्मदिवाकर	पं० देवीसहाय	कलकत्ता	मा	१)	१८८३	बंद
४८	धर्म्मप्रचारक	श्री राधाकृष्णदास	काशी	मा	१॥)	१८८५	बंद
४९	धर्म्मसभा पत्र	पं० गौरीशंकर वैद्य	फर्रुखाबाद	मा	यथा-शक्ति	१८८८	बंद
५०	धर्म्मसुधावर्षण	पं० कुलयशस्वी शास्त्री	काशी	मा	१)	१८८८	बंद
५१	धूर्त पंच	पं० दामोदरप्रसाद शर्मा	कलकत्ता	मा	१)	१८९१	बंद
५२	नागरी नीरद	पं० बदरीनारायण चौधरी	मिर्जापुर	सा	२)	१८९३	

नंबर	नाम पत्र	नाम संपादक	स्थान	समय	मूल्य	जन्म-समय	विशेष
५३	पंडित	पं० गोविंदराव बरवे	गिरगाँव	सा व मा	२) ४)	१८९१	
५४	पंडितराज		लाहोर				बंद
५५	प्रजाहितैषी		राजनांदगाँव				बंद
५६	प्रयाग मित्र	पं० जगन्नाथ वैद्य	प्रयाग				बंद
५७	प्रयाग समाचार	पं० देवकीनंदन त्रिपाठी	प्रयाग	सा	१॥–)	१८८३	
५८	प्रेम पत्र	रायबहादुर सालिगराम	आगरा	पा	६)	१८७२	बंद
५९	पीयूषप्रवाह*	पं० अंबिकादत्त व्यास	भागलपुर	मा	॥)	१८८४	
६०	पुष्कर प्रदीप		पुष्कर				बंद
६१	बनारस अखबार	पं० गोविंद रघुनाथ थत्ते	काशी	सा	१२)	१८४५	बंद
६२	ब्रजबासी	आर० एल० बर्म्मन	मथुरा	मा	१॥)	१८९२	बंद
६३	वनिता हितैषी	श्रीमती भाग्यवती	सचेड़ी	मा	॥।)	१८९३	

* पहले सन् १८८३ में "वैष्णव पत्रिका" के नाम से निकलता था ।

६४	बाला बोधिनी	बा० हरिश्चंद्र	काशी	मा	२)	१८७४	बंद
६५	ब्राह्मण	पं० प्रतापनारायण मिश्र	(अब) बाँकीपुर	मा	१)	१८८३	
६६	व्यापार सिंधु	पं० काशीप्रसाद अवस्थी	बंबई	सा	२॥)	१८९३	बंद
६७	व्यापार हितैषी	बा० हनुमानप्रसाद	काशी	सा	१॥)	१८९२	बंद
६८	ब्राह्मण हितकारी	पं० कृपाराम	काशी	मा	१॥)	१८९२	बंद
६९	बिहारबंधु	पं० केशोराम भट्ट	बाँकीपुर	मा	२)	१८७२	
७०	बुद्धि प्रकाश	पं० चंद्रशेखर गौड़	लखनऊ	मा	१॥)	१८८८	बंद
७१	विक्टोरिया सेवक		जब्बलपुर				बंद
७२	विद्या-धर्म्म-दीपिका	पं० चंद्रशेखर	रत्नमाला	मा	≡)	१८८९	बंद
७३	विद्याविलास	पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र	कलकत्ता	मा	५)१)	१८८५	बंद
७४	विद्याविनोद		बाँकीपुर	मा			बंद
७५	विज्ञवृंदावन	श्री नन्हेंलाल गोस्वामी	वृंदावन	पा	१)	१८९२	
७६	वेदप्रचारक	पं० कृपाराम	काशी	मा			बंद
७७	भगवद्भक्तितोषिणी	बाबू हरिश्चंद्र	काशी	मा			बंद
७८	भट्टभास्कर	पं० गौरीशंकर भट्ट	कानपुर	मा	१)	१८९३	
७९	भारतचंद्रोदय	बा० गुरुबक्स सिंह	बिठूर	मा	१)	१८८५	बंद

नंबर	नाम पत्र	नाम संपादक	स्थान	समय	मूल्य	जन्म-समय	विशेष
८०	भारत-जीवन	बा० रामकृष्ण वर्म्मा	काशी	सा	१॥)	१८८४	
८१	भारतोदय	बा० सीताराम	कानपुर	दै	१०)	१८८५	बंद
८२	भारतदर्पण	पं० विश्वनाथ ब्रह्मचारी	कलकत्ता	सा	३)	१८८८	बंद
८३	भारतोद्धारक	पं० मुन्नालाल शर्म्मा	अजमेर	मा	१)	१८८५	बंद
८४	भारतधर्म्मामृत		पुरनिया				बंद
८५	भारतेंदु *	श्रीराधाचरण गोस्वामी	वृंदावन	मा	१)	१८८४	बंद
८६	भारत-पंचामृत		भागलपुर	मा	१)	१८८४	बंद
८७	भारत प्रकाश	पं० बनवारीलाल मिश्र	मुरादाबाद	मा	१)	१८९०	
८८	भारतबंधु	बा० तोताराम	अलीगढ़	सा	७॥)	१८७६	बंद
८९	भारतवर्ष	पं० रामनारायण वाजपेयी	बिठूर	मा	॥)	१८८८	बंद
९०	भारत भ्राता	म०कु०श्री लाल बलदेवसिंह	रीवाँ	सा	२)	१८८७	

※ यह पहले लाहोर से प्रकाशित होता था ।

९१	भारतभगिनी	श्रीमती हरदेवी	प्रयाग	मा	१)	१८८९	
९२	भारत भानु	पं० कन्हैयालाल व बा० भगवानदास	लखनऊ	मा	१॥)	१८९१	बंद
९३	भारतमित्र	पं० रुद्रदत्त	कलकत्ता	सा	२॥)	१८७७	
९४	भारत-सुदशा-प्रवर्तक	बा० गणेशप्रसाद	फर्रुखाबाद	मा		१८७९	
९५	भारत हितैषी		नवगाँव	मा	२॥)	१८८४	
९६	भाषाभूषण	बा० गोपालराम	बंबई	सा	२)	१८९३	बंद
९७	मारवाड़ गजेट		जोधपुर				
९८	मित्र	पं० दामोदर विष्णु सप्रे	काशी	सा	१॥)	१८८८	बंद
९९	मित्रविलास	पं० कन्हैयालाल	लाहोर	सा	३॥)	१८७७	
१००	मोतीचूर	मुं० अमीर हसन	बाँकीपुर	मा			बंद
१०१	रत्न प्रकाश	पं० किशोरलाल नागर	रतलाम	सा	३)	१८६७	
१०२	रसिक पंच	पं० शिवनाथ मिश्र	लखनऊ	मा	।=)	१८८५	बंद
१०३	राजपुताना गजेट		अजमेर	सा	७)		
१०४	राजस्थान समाचार	मुं० समर्थदान जी	अजमेर	सा	३॥)	१८८९	
१०५	रामपताका	पं० राधामोहन शुक्ल	प्रयाग	मा	॥)	१८८९	बंद

नंबर	नाम पत्र	नाम संपादक	स्थान	समय	मूल्य	जन्म-समय	विशेष
१०६	शिक्षक	एम० एल० शुक्ल	मथुरा	मा	१)	१८९१	बंद
१०७	शुभचिंतक	पं० रामगुलाम अवस्थी	जब्बलपुर	सा	२।)	१८८८	
१०८	शुभचिंतक	बा० सीताराम	शाहजहाँपुर	मा	।।।)	१८८३	बंद
१०९	सज्जनकीर्ति-सुधाकर	पं० वंशीधर	उदयपुर	सा	६।।)	१८७९	
११०	सज्जनविनोद	पं० श्रीकृष्णलाल शर्म्मा	आगरा	पा	१।।)	१८९४	
१११	सज्जन-सुधापान	पं० बैजनाथ व्यास	तिलहारा	सा			बंद
११२	सदादर्श	श्रीनिवासदास	दिल्ली	सा	२।।)	१८७४	बंद
११३	सदाचार-मार्तंड	शास्त्री लाल चंद्र	जयपुर	मा	१)	१८८३	बंद
११४	सत्य-प्रकाश		फतेगढ़	मा	१)	१८८५	
११५	सत्यवक्ता	पं० गोपालप्रसाद	हुशंगाबाद	मा	१)	१८९३	
११६	सर्वहित	श्रीयुत हरिवल्लभ	बूँदी	पा	१)	१८८९	
११७	सर्वहितैषी	पं० रामसरूप	मुरादाबाद	मा	।–)	१८९४	
११८	सरस्वती-विलास	पं० नन्हेलाल	नरसिंहपुर	मा	१।।)		बंद

११९	सरस्वती प्रकाश	बा० बनवारीलाल	काशी	मा	।=)	१८९२	बंद
१२०	साकेत जीवन	बा० रामनारायणसिंह	अयोध्या	मा	१)	१८९२	बंद
१२१	सारन सरोज	पं०अवधबिहारीशरण मिश्र	सारन	मा.	१।)		बंद
१२२	सारसुधानिधि	पं० सदानंद जी	कलकत्ता	सा	५।।।)	१८७८	बंद
१२३	सारस्वत-प्रकाश		कलकत्ता	पा	२)	१८८९	बंद
१२४	साहित्य सुधानिधि	बा० देवकीनंदन बा० जगन्नाथदास	काशी	मा	२)	१८९३	
१२५	सुखसंवाद	पं०लक्ष्मणप्रसाद ब्रह्मचारी	लखनऊ	मा	१)	१८८६	बंद
१२६	सुगृहिणी	श्रीमती हेमंतकुमारी	शिलाँग	मा	१)	१८८८	बंद
१२७	सुदरसन चक्र	पं० ठाकुरप्रसाद शर्म्मा	वृंदावन	सा	३)	१८९०	बंद
१२८	सुधाकर	बा० तारामोहन मैत्र	काशी	सा		१८५०	बंद
१२९	सुधासागर	पं० छद्दुमीलाल दूबे	कानपुर	मा	।।।)	१८९३	
१३०	हिंदी दीप्ति प्रकाश	बा० कार्तिकप्रसाद	कलकत्ता	सा	१।।)	१८७२	बंद
१३१	हिंदी प्रदीप	पं० बालकृष्ण भट्ट	प्रयाग	मा	३।=)	१८७७	
१३२	हिंदी बंगवासी	बा० योगेशचंद्र वसु	कलकत्ता	सा	२)	१८९०	
१३३	हिंदोस्थान	राजा रामपालसिंह	कालाकाँकर	दै	१०)	१८८५	

नंबर	नाम पत्र	नाम संपादक	स्थान	समय	मूल्य	जन्म-समय	विशेष
१३४	(श्रा) हरिश्चंद्रचंद्रिका	बा० हरिश्चंद्र	काशी	मा	६)	१८७४	बंद
१३५	(श्री) हरिश्चंद्रकौमुदी	बा० पंचम सिंह	जमोर (गया)	मा	१।)	१८९४	
१३६	हरिश्चंद्रकला	बा० रामदीन सिंह	बाँकीपुर	मा	६।।।)	१८८५	
१३७	क्षत्रिय पत्रिका	बा० रामदीन सिंह	बाँकीपुर	मा	६)	१८८१	
१३८	क्षत्री हितोपदेशक	ठाकुर हरनाथ सिंह	आगरा	मा	१।।)	१८९२	बंद
१३९	ज्ञानप्रदायिनी	बा० नवीनचंद्र राय	लाहोर	मा	।)	१८९२	बंद

नाटक

(१) दुःखिनी बाला

निवेदन

यह सामाजिक रूपक बाल-विवाह, जन्मपत्र-विवाह के होने तथा विधवा विवाह के अशुभ परिणाम को दिखाने के लिये संवत् १९३७ में लिखा गया था। पहले पहल यह संवत् १९३७ में छपा। पहले ग्रंथरचयिता ने इसका नाम विधवा विवाह नाटक रखा था और नायिका का नाम श्यामा था। इस पूर्वरूप के अंतिम दृश्य में श्यामा अपनी सहेली के पर-पुरुष-संबंधी प्रस्ताव को स्वीकार करती है और अंत में गर्भपात करना दिखाया गया है, परंतु जिस रूप में यह प्रकाशित हुआ था उसमें ये बातें बदल दी गई हैं।

संपादक

उपक्रम

यह रूपक मेरा पहला लेख है। इसमें कोई भी गुण नहीं है यह मुझे निश्चय है। तौ भी मैं बालक हूँ मेरी तोतली बोली यद्यपि शुद्ध उच्चारण नहीं होती तथापि वृद्ध लोग इसे प्रसन्न होकर सुनैंगे। और यह भी मेरा साहस केवल श्रीयुक्त पूज्यवर बड़े भैया बाबू हरिश्चंद्रजी के अनुग्रह के प्रभाव से है क्योंकि शंकर-दिग्विजय में लिखा है कि मंडन मिश्र के घर तोता-मैना भी न्याय वेदांत का शास्त्रार्थ करते थे तो हम उनके वात्सल्यभाजन होकर कुछ लिख पढ़ लें इसमें क्या आश्चर्य है? यद्यपि इस क्षुद्र ग्रंथ के विषय में तो उनका नाम लेना भी परिहास करना है तथापि मैं अपने उत्साह को रोक न सका। आशा है कि आप लोग मेरा साहस क्षमा करैंगे।

आप लोगों का कृपाकांक्षी

चौखंभा, बनारस। राधाकृष्णदास,

सानंद निवेदन

मुझको इस बात के प्रकाशित करने में बड़ा ही आनंद होता है कि सर्व सज्जन महाशयों ने इस क्षुद्र लेख को सानंद ग्रहण किया और मेरे उत्साह को बढ़ाया, जिससे कि यह समय आया कि यह रूपक फिर से शोधकर छापा गया। अब मैं इसको आप सर्व सज्जनों के चरणों में अर्पित करके सानंद निवेदन करता हूँ कि आप सब सभ्य महोदयगण इसको स्वीकृत करके मेरा उत्साह द्विगुणित कीजिए।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी १९३९ }

आप लोगों का सेवक
श्रीराधाकृष्णदास।

दूसरे संस्करण का उपक्रम

सभ्य महोदयगण !

आप लोगों के कृपा-कटाक्ष से ईश्वर ने आज फिर यह दिन दिखलाया है कि यह दीन दास इस क्षुद्र ग्रंथ को लेकर आप लोगों की सेवा में उपस्थित हुआ। मैं जहाँ तक सोचता था यही बुद्धि में आता था कि यह ग्रंथ कदापि इस योग्य न होगा कि आप सब सभ्य जनों के समाज में सादर गृहीत हो, क्योंकि मैं सत्य कहता हूँ कि यह मेरा प्रथम (श्रीगणेशाय नमः) लेख है। पहले जो काम मनुष्य करता है निःसंदेह कदापि उत्तम रीति से नहीं होता परंतु आप लोगों ने मेरे इस पहले ही काम की प्रशंसा की और इसको सादर ग्रहण किया, इसका क्या कारण है ? मैं जहाँ तक समझता हूँ ये कारण हैं—एक तो इसकी मधुर तोतली बोली ने आप लोगों के चित्त को प्रसन्न किया, दूसरे इसे अपना ही समझकर इस पर आप लोगों की स्वाभाविक प्रीति हुई, तीसरे अपने दास के उत्साह-वर्द्धनार्थ इसको सादर ग्रहण किया। जो हो, इस व्यर्थ के पचड़े से क्या ? अब काम की बात को देखना चाहिए—इन बातों को जितना आप लोग समझते होंगे वह मैं कभी नहीं समझ सकता।

इसकी समालोचना सब पत्रों ने कृपा करके उत्तम की, इसलिए मैं उन लोगों को धन्यवाद देता हूँ। मुझको यह देखकर बड़ा ही आनंद होता है कि इसकी देखा देखी हिंदी में कई एक दृश्य काव्य इस विषय के बन गए। ईश्वर हम लोगों के परिश्रम को सफल करें और यह कुरीति दूर हो।

आप लोगों का आज्ञाकारी सेवक

चौखंभा—बनारस। राधाकृष्णदास,

दुःखिनी बाला

रूपक

प्रथम दृश्य

(सूत्रधार आता है)

सूत्रधार—आज यह सभ्य जनों का समाज यहाँ एकत्र हुआ है। हमको इसमें अपने देश की बुराइयों को दिखलाना अवश्य है। आशा है कि हमारे दर्शक जन इसे देखकर इन बुराइयों को सुधारने में तत्पर होंगे जिसमें मेरा उत्साह भंग न हो।

(नेपथ्य की ओर देखकर)

प्यारी! यहाँ आओ।

(नटी आती है)

नटी—प्राणनाथ! क्या आज्ञा होती है ?

सूत्रधार—प्यारी! देखो आज इन महाशयों ने हमारे ऊपर अनुग्रह किया है इसमें हम लोगों को अपने चित्त का आशय प्रगट करना चाहिए क्योंकि ऐसा समय फिर न मिलेगा इससे हमारी इच्छा है कि इस समाज में 'दुःखिनी बाला रूपक'' खेला जाय। इससे मेरा यही तात्पर्य है कि लोग इसको देखकर देश की कुरीति को सुधारें। इसमें तुम्हारी क्या सम्मति है ?

नटी—प्राणनाथ! जो आपने बिचारा उसमें मेरी भी सम्मति है। हाँ! इस भारतवर्ष में बहुविवाह, बाल्यविवाह के होने और विधवा विवाह के न होने से कैसी हानि है। देखिए उस बिचारी श्यामा ही का कैसा बुरा हाल है। अच्छा तो चलिए अब देरी

करना उचित नहीं। हम लोगों के द्वारा यह कुरीति जितनी उठे उतना ही हम अपने को धन्य समझें।

सूत्रधार—चलो। (दोनों जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान—बाबू गोबर्धनदास की कोठी

(गोबर्धनदास और मुनीबजी बैठे हैं)

गोबर्धनदास—मुनीबजी, घर में लड़का होनेवाला है सो हमारी इच्छा है कि हम खूब धूमधाम करें।

मुनीब—हाँ साहब रुपैया का सुख यही सब है। आज भगवान् ई दिन देखाइस है तो आपके जरूर धूम करै के चहिए।

गो०—अच्छा तो सब तयारी कर रखो। २१ भाँत की मिठाई होय और नौबतखाना जरूर बजे और ७ तायफा रंडी, दो गोल भाँड़ की और भी सब बात ऐसी होय कि आज तक किसी ने न किया होय।

मु०—हाँ साहब आपकी बराबरी के कर सकथै।

गो०—कोई है—रज्जब मियाँ आतिशबाज, जियन मियाँ बाजेवाले, पुत्तन कसेरा, मन्नू बजाज, अनंतू दर्जी और बिहारी सुनार को बुला लाओ।

नौकर—जो हुकुम। (जाता है)

गो०—मुनीबजी हम हवेली में जाते हैं तुम यहीं रहो, वे लोग आवें तो बैठाना।

मु०—जो हुकुम। (गोबर्धनदास जाते हैं)

मु०—चलो अपने राम भी खाय आई। (जाता है)

तीसरा दृश्य
स्थान—गोबर्धनदास की बैठक

(गोबर्धनदास बलदेवदास मुनीबजी मुहम्मदअली बैठे हैं)

गो०—बलदेवदासजी ! हमारी लड़की ७ वर्ष की हो चुकी। शास्त्र में ७ वर्ष की लड़की का कन्यादान देना बड़ा पुन्य है सो दो लड़के ठहरे हैं—१ चौदह वर्ष का बड़ा सुंदर सुशील अँगरेजी पढ़ता है बड़ा बुद्धिमान् है लड़की योग्य परंतु जन्मपत्री बिलकुल नहीं बनती। २ छः वर्ष का रंग काला एक आँख से काना बड़ा कुरूप हठी मूर्ख पढ़ता लिखता कुछ नहीं, परंतु जन्मपत्री बहुत अच्छी बनती है आपकी क्या राय है ?

बल०—मेरी आप क्या राय पूछते हैं। मैं तो उसी १४ वर्षवाले की तरफ हूँ और जो कहिए जन्मपत्री नहीं बनती तो यह तो केवल मूर्खता है। ब्राह्मणों ने खाने का यह भी एक ढंग निकाला है क्योंकि वेद पुराण शास्त्र किसी में जन्मपत्री देखके विवाह करना नहीं लिखा है। देखिए श्रीरामचन्द्रजी ने जन्मपत्री नहीं देखी थी और न कृष्ण-चंद्रजी ने, सो फिर हम लोगों को भी वैसा ही करना चाहिए और फिर देखिए क्या अँगरेज और मुसलमान लोग जन्मपत्री दिखाकर विवाह करते हैं ? फिर क्यों नहीं उनके यहाँ ये सब आपत्तियाँ होतीं ? क्यों उनको उसमें विशेष सुख होता है ? भला उनको जाने दीजिए आप अपने यहाँ ही देखिए, जिनका विवाह जन्मपत्री दिखाकर होता है वे क्यों विधवा होती हैं ? क्यों उनको संतान नहीं होती ? क्यों उनको शारीरिक और मानसिक सुख नहीं मिलता ? क्यों उनमें आपस में लड़ाई होती रहती है ? निदान यह कि जन्मपत्री दिखाने से कुछ लाभ नहीं होता। एक नहीं इसके पचासों प्रमाण हैं, दूर न जाइए, पास ही देखिए, आपके मुनीबजी ने जन्मपत्री दिखाकर

न लड़की का विवाह किया था और कहते थे कि ३६ गुण बनता है फिर इनकी लड़की क्यों विधवा हो गई ? क्यों विवाह के महीने भर पीछे ही उसका पति मर गया ? यह सब कहने सुनने की बात है इससे कुछ नहीं होता।

जो कहिए कि लग्न का शुद्ध करना कठिन है तो फिर लग्न का दोष है हम लोग क्या करें ? इसका तो यह स्पष्ट उत्तर है कि फिर कैसे समझ सकते हैं कि लग्न शुद्ध है वा अशुद्ध ? जब हम यही नहीं समझ सकते तो जन्मपत्र दिखाना ही हमारी भूल है क्योंकि लग्न अशुद्ध हो तो हम क्यों ऐसा काम करें जिसमें हमारा अभीष्ट भी न सिद्ध हो अर्थात् जिस लड़के से विवाह करने की हमारी इच्छा हो उससे भी विवाह न कर सकें और वह लड़का भी जो अयोग्य हो मर जाय तो फिर हम अच्छे मूर्ख बने, न इधर के रहे न उधर के।

जो कहिए कि कर्म में जो लिखा है वही होगा तो फिर जन्म-पत्र दिखाना ही व्यर्थ है; जो कर्म में लिखा है वही होगा। जन्म-पत्री दिखाकर लड़के लड़की दोनों को दुःख देने से क्या लाभ ?

जो कहिए कि जो बाप दादे करते आए हैं वही करना चाहिए सो यह करना मूर्खता है। जो गुण हो वही ग्रहण करना चाहिए, अव-गुण को न लेना चाहिए। फिर यह बतलाइए कि आप लोग कौन-कौन सी बातें बाप-दादा की करते हैं ? उन लोगों के समय में तो हिंदू राजा थे अब कहाँ हैं ? वे लोग झूठ नहीं बोलते थे अब कौन सच बोलता है ? तब लोगों की अवस्था बहुत होती थी अब कौन दीर्घजीवी होता है ? तब स्त्रियाँ सती होती थीं अब कौन होती हैं ? तब सब लोग सभी हिंदुस्तानी वस्तुएँ काम में लाते थे अब कौन अँगरेजी के आगे हिंदुस्तानी को छूता है ? तब लोग बलवान् व्यवसायी अपने धर्म में दृढ़ रहते थे अब कितने ऐसे मनुष्य हैं ?

निदान आगे की कोई बात भी नहीं होती केवल एक पीटना ले बैठना है। यह नियम है कि जैसा काल होता है वैसा किया जाता है "जैसी बहै बयार पीठ तैसी ही कीजै"। बुद्धिमानों का यही मत है और ऐसा ही करते हैं और करना भी ऐसा ही चाहिए। अब आप देखिए कि पुराने शास्त्रों से यह जाना जाता है कि आगे स्वयंवर इत्यादि करके विवाह होता था, कहीं भी जन्मपत्री नहीं दिखाई जाती थी, फिर जो उनके पश्चात् लोगों ने यह चाल चलाई यह क्यों ? या तो उनको मूर्ख कहिए या काल का प्रभाव। यदि वे मूर्ख थे तो उनका अनुकरण करना भी मूर्खता है; और यदि वे कालानुसार करते थे तो अब वह काल नहीं है।

एक ही लग्न एक ही मुहूर्त में सैकड़ों लड़के होते हैं। उनमें से कोई राजाधिराज हो जाता है, कोई भीख ही माँगता रहता है। तो फिर जन्मपत्री का क्या फल हुआ "सब धान बाइस पसेरी"।

जब कोई नई बात हो जाती है तो सभी ज्योतिषी लोग कहते हैं कि यह अमुक ग्रह का फल हुआ पर पहले से कोई ठीक ठोक नहीं कह सकता कि यह होगा, इसका क्या कारण ?

निदान यह कि जन्मपत्री के ऊपर निर्भर होकर आजन्म अपनी संतानों को अंधकूप में डालना कैसी बड़ी मूर्खता है ? मेरी बुद्धि में जो कुछ आया मैंने निवेदन किया। करना न करना आपके हाथ।

मु०—ई तो अँगरेजी पढ़के नास्तिक हो गए हैं जो बाप दादा करत रहें सो करना चाहिए, चाहे लड़का अच्छा होय चाहे बुरा। का अच्छे लड़का के वास्ते गुरु ब्राह्मण की बात न मानैं ? इनके कहे से का होत है। आप वही छोटके से बिआह करो, जो भाग में लिखा होइहै सो होइहै।

बल०—क्या अँगरेजी पढ़ने से सब कोई नास्तिक हो जाता है? कभी नहीं। यह भी एक विद्या है, उसके पढ़ने से कोई नास्तिक नहीं हो सकता और जो आपने कहा कि "जो बाप दादा करते थे वह करना चाहिए" यह भी ठीक नहीं, जो वेद में लिखा है वह करना चाहिए क्योंकि हम वैदिक हिंदू हैं और ब्राह्मण कुछ परमेश्वर नहा हैं। जहाँ ब्राह्मणों का महात्म है वहाँ यह नहीं लिखा है कि जो ब्राह्मण कहे, अच्छा हो या बुरा, वही किया जाय। ब्राह्मणों को केवल जप-तप पठन-पाठन वैदिक कर्म कराने का अधिकार है। यह अधिकार नहीं है कि वे नित्यमेव नई नई बात कहें और लोग उसको जबरदस्ती मानें। भला यह तो कहिए कि नास्तिक शब्द का अर्थ क्या है? यह आप ही लोगों के मुख से अच्छा लगता है कि जो कुछ बात समझ में न आवे उसे नास्तिकत्व कहना। आप अपना प्रमाण तो दीजिए कि क्यों उस छोटे से होना चाहिए और उस बड़े से नहीं? पहले शास्त्र को देखिए तब पीछे यों बात करिए, पर यह कहाँ से हो, आपके पुरोहित जी क्या करेंगे? जब आपही पढ़ लेंगे तो वह किसको खायँगे। इसके सिवा बाप दादों की बात हम ऊपर सिद्ध कर ही आए हैं।

मु०—महाराज हम तो पहले कह दिया कि ई नास्तिक हो गए। आप इनकी बात मत सुनो, ओही से करो।

बल०—हा! इन्हीं मूर्खों ने देश को चौपट कर रखा है। निस्संदेह ईश्वर का पूर्ण कोप इसी देश पर है जिससे यहाँ के लोगों की ऐसी बुद्धि हो रही है। यहाँ कुछ कहना ही व्यर्थ है।

गो०—बाबू साहब आपने ठीक कहा पर हम तो ऐसा करके नक्कू नहीं बन सकते। और फिर मुनीबजी भी ठीक कहते हैं जो बाप दादा करते आए हैं वही करना चाहिए, इससे हम उसी लड़के से विवाह करेंगे।

मु० अ०—जी हाँ हजूर बजा फरमाते हैं। जो लोग अँगरेजी पढ़ते हैं उनकी अकिल नजिस हो जाती है इससे मैंने अपने लड़के को अँगरेजी की तालीम नहीं दी। वह शबोरोज खोदा की इबादत में मशगूल रहता है और मिर्जा साहब ने अपने लड़के को अँगरेजी पढ़ाया है वह कभी खोदा का नाम भी नहीं लेता सेवाय वाहियात खुराफात पढ़ने लिखने के और कुछ नहीं करता। ऐसे लोगों पर खोदा की मार। अल्लाह ऐसे लोगों से पनाह दे।

गो०—मुनीबजी ब्याह की तयारी करो और लड़के के बाप से भी कह दो कि पक्की करने की साइत देखावें, चलिए सैर कर आवें। बैठे बैठे जी उकता गया। (सब गए)

चौथा दृश्य

स्थान—सरला का शयनागार

(सरला और उसका पति लल्लू बैठे हैं)

लल्लू—करे? तो से कहा कि तूँ पढ़ना लिखना छोड़ दे पर तैं नहीं मनती—लाख बेर समझावा कि हमरे इहाँ पढ़ना नाहीं सहता पर कुछ सुन्तियै नाहीं—कोई की जान लेबे का? बोल छोड़िबे कि नाहीं?

सरला—(हाथ जोड़कर) प्यारे! हमारा कुछ दोष—

ल०—फिर ओही बात। हम दोष ओस कुछ नाहीं जनते, जैसे सब कोई रहते तैसे रहै के होई है, बोल तोरे मन में का है?

सरला—मैं क्या कहूँ मेरी तो बुद्धि—

ल०—फिर बके जाथी हम करी सो का करी? अरे कहे जाइथै कि पढ़े लिखे का कुछ नाहीं है अपने लोग जैसे बोलित चालित है

वैसे बोला कर। संसकीरित छाँटथो वर बहैयें अपने यार के चिट्ठी लिखिहैं।

सरला—बस चुप, फिर ऐसी बात न कहिएगा नहीं तो मैं प्राण दूँगी। मेरा सिवा आपके और कौन यार बैठा है? मैं तो आपकी, मेरे जो कुछ हैं आप हैं आपकी आज्ञा मेरे शिरोधार्य।

ल०—(उसके स्वाभाविक तेज से भीत होकर) नाहीं, हम अउर कुछ नाहीं कहते ऐही कि तूँ अपनिए बोली बोला करो।

सरला—मैं पढ़ना लिखना छोड़ सकती हूँ पर बोली नहीं बदल सकती, जो चाहे सो हो। मेरा अभ्यास ऐसा ही पड़ गया है इससे लाचार हूँ।

ल०—तैं ऐसे न मनबे। जो अब न मनबे तो हम तोरी खूब पूजा करबे। अच्छा ए बखत तो जाइथे हमें काम है फिर समझा जैहै।

(जाता है)

सरला—(रोदन करती हुई) हाय! ईश्वर ने मेरा जन्म व्यर्थ दिया। मेरा रहना न रहना दोनों बराबर है। हाय! मेरे माता पिता ने मुझे अच्छी फाँसी दी। मुझ पर क्या घर घर यही दशा देखती हूँ। भारत के भाग्य का यह फल है। हा! हतभाग्य भारत! क्या तू इसी दशा में रहेगा? क्या फिर से तेरे संतानगण अपनी दशा न सोचेंगे? हाय! हमारे देश की ऐसी दुरवस्था इस मूर्खता ही ने की! हा! हमारे पूरे भाग फूटे जो ऐसे पति मिले! इस जीने से तो मरना ही भला है। हम अबलाओं पर सभी सहाय होते हैं! भला और तो सब जो करते हैं सो करते ही हैं ईश्वर जो कि न्यायपरायण और दयालु कहाता है वह भी हम लोगों के लिये निर्दयी और अन्यायी हो गया है!! सभी कोई बली की सहायता करते हैं अबला को कौन पूछेगा!!! हाय! हमारी यह दशा क्यों

हुई ? जन्मपत्र और बाल्यविवाह से! यदि जन्मपत्र न होता तो क्यों ऐसे मूर्ख से मेरा विवाह होता ? यदि बाल्यविवाह न होता तो क्यों न मैं स्वयं अपनी भलाई बुराई को समझकर अपने इच्छानुसार पति करती ? मुझको उस समय कौन रोक सकता था ? अब मैं क्या कर सकती हूँ ? हमारा जीवन अब व्यर्थ रोने ही के लिये बन गया ! हाय ! अब मुझे कोई सुख कभी न मिलेगा ! अब मैं क्या हूँ ? केवल एक "दुःखिनी बाला"। (रोती है)

पटाक्षेप

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—सरला के पिता का घर

(सरला बैठी है, मोहिनी का प्रवेश)

मोहिनी—प्यारी क्या सोच रही हैं ?

सरला—हिंदुस्तानियों की मूर्खता।

मो०—हिंदुस्तानियों ने क्या मूर्खता की ?

सरला—विधवाविवाह को बुरा कहते हैं और जन्मपत्री देख के ब्याह करते हैं।

मो०—इसमें क्या मूर्खता है ?

सरला—आप पूछती हैं इसमें क्या मूर्खता है ? अभी तक आपको नहीं सूझी हमको इसी के पीछे आप लोगों ने फाँसी दी फिर भी पूछती हैं कि क्या मूर्खता की ? हा ! हमारा रोम रोम ब्राह्मणों को श्राप देता है। हा ! जो विपत्ति हमारे ऊपर पड़ी, किसी पर न पड़ी होगी। इसी जन्मपत्री ने हमारा विवाह

उस कुरूप मूर्ख लड़के से कराया अंत में अब जन्मपत्री क्या हुई मैं क्यों विधवा हुई ? वे पंडित लोग कहाँ गए जिन्होंने जन्मपत्री देखी थी, भगवान् उन लोगों का सर्वनाश करे अगर उस सुंदर बुद्धिमान् लड़के से विवाह होता तो यह दुःख क्यों होता, यदि वह मर भी जाता तो जब तक जीता रहता तब तक तो सुख होता, पर हा ! यह काहे को होनेवाला था, ब्राह्मणों का कहाँ से तार लगता। अब बतलाइए ब्राह्मण लोग क्या कहते हैं उससे तो बहुत अच्छी बनती थी वह क्यों मर गया ?

मो०—प्यारी, कर्म की गति कुछ जानी नहीं जाती। इसमें ब्राह्मणों का क्या दोष है ? तुम उनको मत श्राप दो।

सरला—तो किसको कोसें, वेद पुरान शास्त्र को या ब्राह्मणों को और उनके पाखंड शास्त्र को। जो कर्म में लिखा था वही होने को था तो वह लड़का क्या बुरा था ? जन्मपत्री की क्या आवश्यकता थी ?

मो०—अच्छा अब तो जो होना था सो हो चुका। अब वृथा शोच से क्या ?

सरला—क्यों नहीं अब आगे से यह कुरीति उठा दी जाय तो फिर ऐसा दुःख काहे को हो। हम पर तो जो बीतना था सो बीत ही चुका दूसरी बिचारी तो यह दुःख न सहें, पर यह काहे को होना है। ब्राह्मणों को फिर कौन पूछेगा, चाहे अपनी कैसी ही हानि क्यों न हो परंतु ब्राह्मणों की बात न टले। हा ! ईश्वर तू कहाँ है, क्यों नहीं सुध लेता, प्रलय क्यों नहीं हो जाता, अब घोर कलियुग आ गया, इन ब्राह्मणों का अत्याचार देखके फिर भी तू क्यों चुपचाप है ?

मो०—मेरी प्यारी, ऐसा नहीं कहना, दोष होता है, ईश्वर का ध्यान करो।

सरला—दोष तो आपको होता है कि इतने होने पर भी आप इन मूर्ख ब्राह्मणों का पक्षपात करती हैं, अच्छा जो हुआ सो हुआ अब आप हमारा फिर से विवाह करवा दीजिए।

मो०—राम राम यह कभी नहीं हो सकता, विधवा विवाह हाय! हाय! तेरी तो इस समय बुद्धि ठिकाने नहीं है, तेरे कहने से हम ऐसा करके दोष-भागी हों, तेरे ऊपर तो ईश्वर का कोप है, देख पंडित काशीनाथजी ने जो कलियुग के सबसे बड़े पंडित हैं शास्त्र और पुराण से क्या सिद्ध किया है, चाहे जो हो लाखों विधवा कुकर्म करती और घोर दुःख उठाती क्यों न मर जायँ, पर पंडितजी वही बात रखेंगे, क्यों न हो कलियुग-भूषण यही हैं।

सरला—हा! विधवा विवाह में इन लोगों ने न मालूम क्या दोष निकाला है। यह तो वेद पुराण सब में लिखा है कि विधवा विवाह करना चाहिए। देखिए पंडित ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने क्या निर्णय किया पर आप काहे को समझ सकेंगी क्योंकि आप पर तो यह विपत्ति नहीं पड़ी है "जाके पैर न फटे बिवाई, सो का जाने पीर पराई"। भगवान् न करे कि यह विपत्ति पड़े, नहीं तो मालूम होगा। हा! ईश्वर तू कब इस भारतभूमि की सुध लेगा? हा! अब इन ब्राह्मणों की बदौलत मैं कैसे जीने पाऊँगी। भगवान् इनका बुरा करे। यदि किसी पंडित को इस विषय में कुछ कहना हो तो मेरे पास आवे मैं समझा दूँ, युक्ति से, शास्त्र से सभी तरह से विधवा विवाह सिद्ध कर सकती हूँ आपसे क्या कहूँ।

मो०—प्यारी, अब वृथा रोओ मत, चलो दिल बहलावें। तुम ठीक कहती हो परंतु मैं क्या करूँ, मैं भी तो पराधीन हूँ, चलो।

(दोनों जाती हैं)

छठा दृश्य

स्थान—सरला का मकान

(सरला और एक सहेली का प्रवेश)

सरला—हा ! अब तो दूसरा विवाह होना संभव ही नहीं है और कामदेव ने जोर किया अब पतिव्रता धर्म कैसे निबहेगा ? इस शरीर के स्वभावसिद्ध वेग को कौन रोक सकेगा ?

सहेली—आप क्यों सोच करती हैं और क्यों विवाह की हठ करती हैं। क्या संसार में दूसरा और कोई मनुष्य नहीं है क्या पृथ्वी पुरुषों से निर्बीज हो गई ? आप अब आनंद कीजिए न अब आप का पति ही फिर आवेगा न दूसरा विवाह ही होगा और बिचारी हम अबला लोग काम के बान की चोट जिसको विश्वामित्रजी ऐसे महात्मा लोग सह ही न सके और सर्व शक्तिमान शिवजी का जी तो चलायमान हो ही गया कैसे सह सकती हैं ?

सरला—छी ! छी ! अरे दुष्टा ! ऐसी बात कहती है, तेरी जीभ नहीं कट जाती। हाय ! ऐसा दुष्कर्म मैं कभी न करूँगी। क्या सदा जीना है अंत में तो मरना ही है, आज ही सही क्या तूने मुझे निरी मूर्ख ही समझ लिया है, चल दूर हो, मुझे मुँह न देखा, मैं निस्संदेह आज बिख खाऊँगी।

सहेली—रुष्ट न होइए वृथा प्रान देने से क्या लाभ ? जो काम सहज में हो सके उसको बढ़ाने से क्या काम ?

सरला—रे दुष्टा ! अब न बोल बस चुप रह रे पापिन ! तैं मुझको यह उपदेश करती है। देख ईश्वर तुझको कैसा दंड देता है। मरना तो दुई है—एक वह कि धर्म और मान खोकर मरना दूसरा धर्म और मान के साथ, तो फिर थोड़े से आनंद के लिये इतना बड़ा

कुकर्म करके आप तो गए ही सारे कुल को बोरना यह मेरा कर्म नहीं है। तेरे मुख देखने का प्रायश्चित्त है।

हे ईश्वर तू इस अभागिनी को फिर भी जीता रखता है। हा पृथ्वी! तू क्यों नहीं फट जाती कि मैं तुझमें समा जाऊँ। धिक्कार है कि मैं ऐसी बातें सुनकर भी जीती हूँ। (मन में) इसको बिगाड़ना न चाहिए अभी इसे विष मँगवाना है (प्रकाश) मेरी प्यारी सखी! तुझको आज क्या हुआ है, तेरी बुद्धि कहाँ गई है, तू मेरे साथ लड़कई से है, मैंने तुझे अपनी समझा था, तू तो ऐसी न्यायविरुद्ध बात कभी नहीं कहती थी, आज तुझे क्या हुआ है, तू अपने होश की दवा कर, मैं तो मरूँहीगी, यदि तू मेरा सुख चाहे तो मुझे कहीं से बिष ला दे कि जिससे मैं सुख से मर जाऊँ, नहीं तो मैं गंगा में डूब मरूँगीअथवा ऊपर से कूद पड़ूँगी या फाँसी लगाऊँगी, बोल जो करना हो सो कर, मुझको पल पल बरस समान बीतता है, जल्दी बोल।

सहेली—प्यारी, तुम्हारा बिछुरना मुझसे न सहा जायगा। चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी प्रानप्रिये! तू मुझसे रुष्ट हो गई, मैं तो केवल परीक्षा के लिए ऐसा कहती थी, क्षमा कर अब मैं जाती हूँ किसी ढब से विष लाती हूँ परंतु सखी मुझे बड़ा क्लेश होता है मैं कैसे अपने हाथ से तुझको विष दूँगी हा! रे विधाता! जो न करे सो थोड़ा है। क्या तूने हम लोगों को इसी क्लेश के लिये संसार में भेजा था? जिसके साथ मैं सदा खेली आनंद किया उसे अब मैं विष दूँ—हा! ईश्वर तू बड़ा निर्दयी है। क्या करूँ कैसे अपनी प्यारी सखी को विष दूँ परंतु क्या करना होगा, दिए बिना काम नहीं चलता। खैर अब जी कड़ा करके लाती हूँ, उसकी ईश्वरता में किसी का कुछ वश नहीं है जो उसने किया उसे भी करना पड़ा और जो करेगा वह भी करना ही पड़ेगा।

छठा दृश्य

स्थान—सरला का मकान

(सरला और एक सहेली का प्रवेश)

सरला—हा ! अब तो दूसरा विवाह होना संभव ही नहीं है और कामदेव ने जोर किया अब पतिव्रता धर्म कैसे निबहेगा ? इस शरीर के स्वभावसिद्ध वेग को कौन रोक सकेगा ?

सहेली—आप क्यों सोच करती हैं और क्यों विवाह को हठ करती हैं। क्या संसार में दूसरा और कोई मनुष्य नहीं है क्या पृथ्वी पुरुषों से निर्बीज हो गई ? आप अब आनंद कीजिए न अब आप का पति ही फिर आवेगा न दूसरा विवाह ही होगा और बिचारी हम अबला लोग काम के बान की चोट जिसको विश्वामित्रजी ऐसे महात्मा लोग सह ही न सके और सर्व शक्तिमान शिवजी का जी तो चलायमान हो ही गया कैसे सह सकती हैं ?

सरला—छी ! छी ! अरे दुष्टा ! ऐसी बात कहती है, तेरी जीभ नहीं कट जाती। हाय ! ऐसा दुष्कर्म मैं कभी न करूँगी। क्या सदा जीना है अंत में तो मरना ही है, आज ही सही क्या तूने मुझे निरी मूर्ख ही समझ लिया है, चल दूर हो, मुझे मुँह न देखा, मैं निस्संदेह आज बिख खाऊँगी।

सहेली—रुष्ट न होइए वृथा प्रान देने से क्या लाभ ? जो काम सहज में हो सके उसको बढ़ाने से क्या काम ?

सरला—रे दुष्टा ! अब न बोल बस चुप रह रे पापिन ! तैं मुझको यह उपदेश करती है। देख ईश्वर तुझको कैसा दंड देता है। मरना तो हुई है—एक वह कि धर्म और मान खोकर मरना दूसरा धर्म और मान के साथ, तो फिर थोड़े से आनंद के लिये इतना बड़ा

कुकर्म करके आप तो गए ही सारे कुल को बोरना यह मेरा कर्म नहीं है। तेरे मुख देखने का प्रायश्चित्त है।

हे ईश्वर तू इस अभागिनी को फिर भी जीता रखता है। हा पृथ्वी! तू क्यों नहीं फट जाती कि मैं तुझमें समा जाऊँ। धिक्कार है कि मैं ऐसी बातें सुनकर भी जीती हूँ। (मन में) इसको बिगाड़ना न चाहिए अभी इसे विष मँगवाना है (प्रकाश) मेरी प्यारी सखी! तुझको आज क्या हुआ है, तेरी बुद्धि कहाँ गई है, तू मेरे साथ लड़कई से है, मैंने तुझे अपनी समझा था, तू तो ऐसी न्यायविरुद्ध बात कभी नहीं कहती थी, आज तुझे क्या हुआ है, तू अपने होश की दवा कर, मैं तो मरूँहीगी, यदि तू मेरा सुख चाहे तो मुझे कहीं से बिष ला दे कि जिससे मैं सुख से मर जाऊँ, नहीं तो मैं गंगा में डूब मरूँगी अथवा ऊपर से कूद पड़ूँगी या फाँसी लगाऊँगी, बोल जो करना हो सो कर, मुझको पल पल बरस समान बीतता है, जल्दी बोल।

सहेली—प्यारी, तुम्हारा बिछुरना मुझसे न सहा जायगा। चलो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी प्रानप्रिये! तू मुझसे रुष्ट हो गई, मैं तो केवल परीक्षा के लिए ऐसा कहती थी, क्षमा कर अब मैं जाती हूँ किसी ढब से विष लाती हूँ परंतु सखी मुझे बड़ा क्लेश होता है मैं कैसे अपने हाथ से तुझको विष दूँगी हा! रे विधाता! जो न करे सो थोड़ा है। क्या तूने हम लोगों को इसी क्लेश के लिये संसार में भेजा था? जिसके साथ मैं सदा खेली आनंद किया उसे अब मैं विष दूँ—हा! ईश्वर तू बड़ा निर्दयी है। क्या करूँ कैसे अपनी प्यारी सखी को विष दूँ परंतु क्या करना होगा, दिए बिना काम नहीं चलता। खैर अब जी कड़ा करके लाती हूँ, उसकी ईश्वरता में किसी का कुछ वश नहीं है जो उसने किया उसे भी करना पड़ा और जो करेगा वह भी करना ही पड़ेगा।

सरला—प्यारी विलंब मत करो अब विलंब करने का समय नहीं है अब जल्दी जा, मुझसे अब नहीं सहा जाता, अपने कलेजे को पत्थर सा करके अब तू मुझे विष दे।

सहेली—हा! प्यारी, तू न मानेगी, जान ही देगी, तो अब शोच करने और विलंब करने से क्या लाभ? जाती हूँ कहीं से ले आती हूँ। (जाती है और विष लेकर आती है) प्यारी ले तो आई परंतु देते हुए तो छाती फटती है।

सरला—सखी, अब छाती फटने दे. देर मत कर, जल्दी दे।

सहेली—नहीं प्यारी, मुझसे नहीं दिया जाता।

सरला—तो फिर मैं छीन लूँगी (छीन लेती है) प्यारी अब मिल ले यही अंतिम भेंट है (गले से मिलकर) कहा सुना क्षमा करना, अब मैं बिदा होती हूँ (घुटने के बल बैठकर दोनों हाथ ऊपर उठा के) हे ईश्वर मैं तो अब चली परंतु मेरी प्रार्थना है कि तू अब अपनी संतानों पर कृपा कर और इस भारतभूमि का अंधकार दूर कर। जगदीश्वर! अब मैं विशेष नहीं कह सकती, यही कहती हूँ अब अपनी भारत की दीन प्रजा पर कृपा कर।

तजि मूर्खता उन्नति करहिं निज देश में शुभ मति रहै।
समुचित विवाह प्रचारहीं कुलनारिगण आनँद लहै॥
फैले सुविद्या देश में गृह कलह मिथ्यालस बहै।
यह दासपन आधीनता तुव कृपा ते छिन मैं दहै॥१॥

[पटाक्षेप

इति

(२) महारानी पद्मावती

यह ऐतिहासिक रूपक संवत् १६३६ में बना था। पहले पहल यह साहित्यसुधानिधि पत्र में छपा था, पीछे यह पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ और तब से इसके कई संस्करण हो चुके हैं। इसमें चित्तौर की महारानी पद्मावती का वृत्तांत है।

संपादक

भूमिका

एक दिन मैं "इतिहास तिमिरनाशक" नाम की पुस्तक पढ़ रहा था। उसमें श्रीमती महारांणी पद्मावती का वृत्तांत पढ़कर मेरे चित्त में सहसा यह बात उत्पन्न हुई कि यदि इस विषय पर हिंदी में नाटक लिखा जाय तो अत्यंत उत्तम हो। यद्यपि उसी समय चित्त में यह आया कि मैं इस योग्य नहीं हूँ कि यह गुरुतर काय्य कर सकूँ, और कोई विद्वान इस विषय पर कोई ग्रंथ बनाता तो बहुत उत्तम होता, तथापि चित्त के वेग को न रोक सका और फिर चित्त में विचारा कि क्या हुआ अच्छा न बनेगा तो कुछ चिंता नहीं कोई न कोई विद्वान तो इसको शोधकर मेरे साहस को सफल करेगा। मैंने परम पूज्य-वर श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्रजी से आज्ञा लेकर इस नाटक को बनाना आरंभ किया।

यह नाटक "टाड राजस्थान", "इतिहास तिमिरनाशक" और "पद्मावत" (काव्य) की सहायता से लिखा गया है अतएव मैं उक्त ग्रंथ-प्रणेताओं को कोटिशः धन्यवाद देता हूँ।

महाराजा रतनसेन का नाम टाड साहब ने महाराणा भीमसिंह लिखा है परंतु 'इतिहास तिमिरनाशक' और 'पद्मावत' में महाराणा रतनसेन लिखा है इससे यही नाम प्रामाणिक जान पड़ता है। टाड साहब लिखते हैं कि लक्ष्मणसिंह बहुत अल्प-वयस्क थे, इसलिये महाराणा रतनसेन ही राज्य काय्य करते थे। सन् १३०३ ई० में यह घटना हुई थी पर भट्ट लोगों के मत से १२९० ईस्वी में। महा-राणी पद्मावती का नाम पद्मिनी भी था, वह चौहान जातीय हमीर-

वंश की बेटी थीं और महाराणा रतनसेन सिंहलद्वीप (लंका) से विवाह करके इन्हें लाये थे। ये परम सुंदरी थीं।

इनको बारह पुत्र थे परंतु देवी के आज्ञानुसार सब मारे गए। 'खुमान रायसा' में लिखा है कि देवी ने आदेश दिया कि जब तक बारह राजा की बलि मैं न लूँगी न संतुष्ट होऊँगी, तीन तीन दिन पर एक एक राजा गद्दी पर बैठे और लड़कर मारा जाय। यदि बारह राजा न मारे जायँगे तो मैं दूसरे दल में चली जाऊँगी। इसी आज्ञा के अनुसार अरिसिंह जो सबसे बड़े थे अपने पिता से आज्ञा लेकर सिंहासन पर बैठे और तीसरे दिन मारे गए। फिर अजयसिंह की पारी आई परंतु वे अपने पिता के परमप्रिय पुत्र थे इससे पिता ने न बैठने दिया और उनको केलवारा देश में भेज दिया जहाँ वे सामान्य मनुष्य की नाईं रहने लगे। यहाँ ग्यारह पुत्र और बारहवें स्वयं महाराणा मारे गए और इस प्रकार देवी की आज्ञा पूरी हुई।

अलाउद्दीन ने महाराणा को छल से बंदी कर लिया और कहा कि जब तक पद्मावती को न लाओगे तुम्हें न छोड़ूँगा। पद्मावती ने इस बात को स्वीकार किया और कहा कि मेरे साथ मुझसे अंतिम भेंट करने को बहुत सी स्त्रियाँ दिल्ली तक आवेंगी। ७०० डोलियों में छिपाकर १४०० अस्त्रधारी राजपूतगण और आठ कहारों के स्थान पर आठ सैनिक लेकर दिल्ली आईं। वहाँ पर केवल आध घंटे के लिये अपने पति से मिलने गईं और उन्हें एक घोड़े पर भगा दिया। जब देर होने पर अलाउद्दीन देखने को आया कि क्यों विलंब हुआ तब पद्मावती को वीर वेश में राजपूतों से घिरी हुई देखा। उस समय कुछ न कर सका और भीतर ही भीतर जलता रहा। पद्मावती चित्तौर आ गईं, अलाउद्दीन ने सेना भेजी

जिससे कि चित्तौर के फाटक पर क्षत्रियों से लड़ाई हुई और अंत में यवन लोग हार गये।

जो लड़ाई चित्तौर के फाटक पर हुई उसमें प्रायः चित्तौर के आधे मनुष्य मारे गए। सिंहलद्वीप के बादल ने जो कि महाराणी पद्मावती के साथ आया था और जिसकी अवस्था उस समय केवल बारह बरस की थी लड़ाई में असीम साहस प्रदर्शित किया था। घर लौट आने पर उसके पितृव्य गोरा की स्त्री ने पूछा कि "वत्स! हमारे प्राणपति ने समर-क्षेत्र में कैसा व्यवहार किया?" बादल ने कहा—"माता! हमारे पितृव्य ने लड़ाई में यथेष्ट शत्रु-छेदन किया, मैं केवल उनका अनुगामी मात्र था। उनके हाथ से जो अधमुए छूट गए थे मैंने केवल उन्हीं को मारा।"

गोरा की स्त्री ने फिर फिर यही पूछा और बादल ने यही उत्तर दिया, यह सुन सानंद बादल से विदा हुई और यह कहकर कि "हमारे प्रभु देर होने से क्रुद्ध होते होंगे" जलती चिता में कूद कर भस्म हो गई।

महाराणा के रण में जाने के पहले जौहर व्रत का अनुष्ठान किया गया। जब चित्तौर के बचने की कोई आशा नहीं रहती तब राजपूत वनिताओं के शत्रुओं के हाथ से मानसंभ्रम-रक्षार्थ यह व्रत किया जाता है। राणा के आदेशानुसार उस गह्वर में जहाँ पर कि यह व्रत होता है अग्नि प्रज्वलित की गई और सब राजपूत स्त्रियों ने उसमें प्रवेश किया। इसमें रमणीराजिरूप मणिमाला की शिरोमणिस्वरूप राजमहिषी पद्मावती ने प्रांतिवर्तिनी होकर प्रयान किया! चित्तौर के वीर लोग नीरव खड़े होकर देखने लगे कि उनकी ममतामयी, जननी, रमणी, भगिनी और नंदिनी प्रभृति सहस्र सहस्र अंगनागन श्रेणीबद्ध होकर काल के कवल स्वरूप इस गह्वराभिमुख जाती

हैं ! पाठकगण ! तनिक उस समय की अवस्था को विचारिए ! अहा ! राजपूतों का धैर्य, धर्म सभी कैसा विचित्र है। उस समय का चित्र जब चित्त में आता है तो आँखों से पानी टपकने लगता है, वह चितानल चित्त में आग लगा देती है और एक विचित्र दशा हो जाती है। प्रस्ताव बढ़ने और पाठकों का समय नष्ट होने के भय से विशेष नहीं लिख सकता पाठकगण स्वयं विचार लेंगे।

अंत में अलाउद्दीन विजयी हुआ और चित्तौर भर में कोई भी जीवित न था। उस चितानल का धूँआँ देखकर जिसमें कि पद्मावती भस्म हुई थी—जिसके लिये उसने इतनी क्षति स्वीकार की थी और जिसके मिलने की आशा में उसने बड़े ही उत्साह से नगर में प्रवेश किया था—वह भीतर भीतर दग्ध हो गया और सारे नगर को ध्वंस करने की आज्ञा दी। पल भर में वह चित्तौर जिसमें कि बड़े बड़े प्रतापी महाराणा राज्य कर गये थे और जो कि त्रैलोक्य में प्रसिद्ध था खंडहर हो गया, केवल एक प्रासाद नहीं छूआ जिसमें पद्मावती रहती थी।

जिस शिशोदिया वंश ने बारह सौ वर्ष तक चित्तौर का निष्कंटक राज्य किया था उसी के एकमात्र पुत्र धुरंधर राणा अजयसिंह फिर से चित्तौर जय करने की आशा से थोड़े से विश्वासी अनुचर लेकर समय की प्रतीक्षा करते हुए साधारण मनुष्य की नाईं केलवारा देश में रहने लगे, उन्होंने अपने पिता के आज्ञानुसार अपने मरने के समय अपने ज्येष्ठ भ्रातुष्पुत्र हमीर को अपना स्थानापन्न किया जिन्होंने चित्तौर को पुनः स्वाधीन किया और बसाया।

इस राजवंश का विवरण समस्त पढ़ने योग्य है। आर्य मात्र को चाहिए कि एक बेर मेवार का इतिहास अवश्य पढ़ें।

इस वंश में अब वर्तमान महाराणा का नाम श्री महाराणा सज्जनसिंह है। ये एक सुंदर, वीर, युवा पुरुष हैं। सर्कार अँगरेज

बहादुर ने अपनी मित्रता दृढ़ करने के लिये इन्हें जी० सी० एस० आई० की पदवी दी और इक्कीस तोपों की सलामी की। ये जब बारह बरस के थे तब हिंदुस्तान में प्रिंस आफ वेल्स आए थे और बंबई में दर्बार हुआ था, उस समय इनकी कुर्सी बड़ोदा के नीचे रखी गई, इसमें इन्होंने अपने वंश का अपमान समझकर अपने वंश की वीरता दिखलाई। इनकी उस समय की वीरता से सब लोग काँप उठे और दर्बार खड़े खड़े ही हो गया। इसके सिवाय भी बहुत सी बातें इन्होंने विलक्षण कीं। इनकी सहायता से "सारसुधानिधि" और "मित्रविलास" इत्यादि कई पत्र बंद होते होते बच गए और कई एक पुस्तकें बनीं। इन्होंने अपनी राजधानी में "सज्जन कीर्ति सुधाकर" पत्र प्रकाशित कराया है, प्रजा इनसे बहुत ही प्रसन्न है और बहुत चाहती है। इनके गुणों की सारे संसार में प्रसिद्धि है, इनके मंत्रियों में राय पन्नालाल बहादुर, कविराजा श्रीश्यामलदासजी, पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या प्रभृति कई एक कृतविद्य महाशय हैं।

इस घटना के पहले और पीछे बाप्पा रावल, राणा राजसिंह, प्रतापसिंह प्रभृति वीर पुरुष प्रायः हुए हैं। अकबर बादशाह ने हिंदुओं से बेटी लेने देने का व्यवहार करके सारे भारतवर्ष को मुसल्मान बनाना चाहा था और जयपुर जोधपुर प्रभृति सब राजाओं ने उसे बेटी दी किंतु इस वंश ने आज तक कभी बेटी न दी और अपने परम पवित्र कुल में कोई दाग ही न लगने दिया, इसके लिये अकबर से और महाराणा प्रतापसिंह से घोर युद्ध हुआ था। इसका वृत्तांत देखने योग्य है, यदि पाठकों की रुचि होगी तो इस विषय पर भी कुछ लिखा जायगा।

श्री राधाकृष्णदास

उपक्रम

पूज्यपाद भाई साहब बाबू हरिश्चंद्रजी भारतेंदु ने जब "नील-देवी" लिखा, मुझसे आज्ञा की कि भारतवर्ष में अब ऐसे ही नाटकों की आवश्यकता है जो आर्य्य संतानों को अपने पूर्व पुरुषों का गौरव स्मरण करावें अतएव तुम कोई नाटक इस चाल का लिखो। उनकी आज्ञा पाते ही मैंने "महारानी पद्मावती" रूपक में हाथ लगाया और इसे पूर्ण करके पूज्य भाई साहब को दिखलाया। उन्होंने इसे बहुत पसंद किया और नाना स्थानों पर शुद्ध करके अपनी सम्मति के साथ स्वर्गवासी श्री महाराणा सज्जनसिंह बहादुर की सेवा में इसे उनके नाम समर्पण करने की आज्ञा प्राप्त करने के लिये भेज दिया परंतु दुर्भाग्यवश महाराणा साहब के असमय संसार-त्यागी होने से रह गया।

कुछ काल हुआ मित्रवर कुँवर फतहलाल साहब ने इसे मँगवाया और देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए और श्री महाराणा फतहसिंह बहादुर की सेवा में इसे पेश करके उनके चरणों में समर्पण करने की आज्ञा दिलाई।

मेरी इच्छा थी कि इसे पृथक् उत्तमतापूर्वक छपवा कर प्रकाश करूँ परंतु इसी अवसर में श्री बाबू देवकीनंदनजी ने "साहित्य-सुधानिधि" मासिक पत्र प्रकाश किया और इस ग्रंथ को आग्रहपूर्वक उसमें प्रकाशित किया, इसलिये आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ। यद्यपि इस नाटक की रचना-प्रणाली सुंदर नहीं है परंतु अपने पूर्व-पुरुषों की गौरवयुक्त कथा तथा अपने सेवक का परिश्रम समझकर कदाचित् सज्जन जन इसे सादर ग्रहण करें इस आशा से प्रकाशित

करने का साहस किया। यदि इसकी प्रणाली आप लोगों को रुचेगी और कृपापूर्वक मुझे उत्साह देंगे तो शीघ्र ही कोई दूसरा नाटक वा उपन्यास ऐतिहासिक लिखने का साहस करूँगा।

मैं अपने माननीय मित्र कुँअर फतहलाल साहब को कोटिशः धन्यवाद देता हूँ जिनकी कृपा से इस गुणहीन ग्रंथ ने श्रीमदार्यकुल-कमल-दिवाकर के चरणों में समर्पित होने का गौरव पाया।

—श्रीराधाकृष्ण दास।

दूसरे संस्करण की उपक्रमणिका

इस नाटक को मैंने सत्रह अठारह वर्ष की अवस्था में बनाया था इसलिये इसके पाठ में कुछ परिवर्तन करना उचित न समझकर ज्यों का त्यों रहने दिया है, केवल भूमिका (उसी समय की लिखी) छूट गई थी उसको लगा दिया है।

मुझे अत्यंत आनंद है कि मेरी तुच्छ लेखनी का सज्जन जन ने आदर किया और इसके द्वितीय संस्करण का अवसर आया। आशा है कि भाषा-रसिक सज्जनों की ऐसी ही कृपादृष्टि सदा बनी रहेगी।

—श्रीराधाकृष्ण दास।

उदयपुर के महाराणाओं की वंशावली

यह वंशावली मुझे उदयपुर के दीवान श्रीयुत राय पन्नालाल बहादुर के सुयोग्य पुत्र मित्रवर कुँअर फतेहलाल जी मेहता द्वारा प्राप्त हुई है, इसका प्रकाश करना आवश्यक जानकर धन्यवादपूर्वक प्रकाशित की जाती है।

दोहा

बापा १ गुहिल रु २ भोजनृप ३ रावल शील ४ चितौर ।
कालभोज ५ ताको तनय भर्तरि भट ६ नृप और ॥ १ ॥
श्री अवसिंह महीपति ७ समहायक ८ सुत तास ।
श्री खुमान ९ अल्लट १० सुखद नरवाहन ११ नृप खास ॥२॥
शक्तिकुमार रु १२ शुचिवरम १३ प्रभु नरवर्म १४ कृपाल ।
कीर्त्तिवर्म १५ वैरड कहे १६ बैरीसिंह १७ नृपाल ॥ ३ ॥
विजयसिंह १८ अरिसिंह लौ १९ चौड़सिंह २० धर छत्र ।
विक्रम सिंह २१ अमंद कुल चेत्रसिंह २२ सुत तत्र ॥४॥
सुत ताके सामंतसी २३ जाके सिंह कुमार २४ ।
मथनसिंह २५ अरु पद्मसी २६ जैत्रसिंह २७ जुधकार ॥५॥
तेजसिंह २८ ताके तनय समरसिंह २९ महिपाल ।
रत्नसिंह ३० अरु कर्णसी ३१ राहप ३२ रान भुआल ॥६॥
नरपति ३३ दिनकर ३४ जसकरण ३५ नागपाल ३६ महिनाथ ।
पूर्णपाल ३७ पृथिपाल ३८ भे माणसिंह ३९ समराथ ॥७॥
भीमसिंह ४० जयसिंह ४१ गढ़लक्ष्मणसिंह ४२ अधीस ।
अरसी ४३ अजय ४४ हमीर ज्यो ४५ चेत्र ४६ लक्ष ४७ धर ईस॥८॥
मोकल ४८ कुंभ रू ४९ रायमल ५० साँगा ५१ रत्न सधीर ॥ ५२ ॥
विक्रम ५३ उदय ५४ प्रताप बलि ५५ अमर ५६ कर्ण ५७ रणधीर ॥९॥
जगतसिंह ५८ अरु राजसी ५९ जयसी ६० अमर ६१ अमंद ।
संग्र ६२ जगत ६३ पातल ६४ भए राजसिंह ६५ जिहि नंद ॥ १० ॥
अरसो ६६ और हमीर ६७ नृप भीमसिंह ६८ कुलभान ।
लिए दान अगनित कविन जाके तनय जवान ६९ ॥११॥
सरदार ७० और सरूपसी ७१ शंभु रान ७२ कुलजोत ।
तिनके सज्जन कुल तिलक अब फतमाल ७४ उदोत ॥१२॥

१ महारावल बाप्पा—इन्होंने सन् ७०० ईस्वी में भोरियों से चित्तौर लिया।
२ रावल गुहिल।
३ रावल भोज।
४ रावल शील।
५ रावल कालभोज।
६ रावल भर्तरिभट।
७ रावल अघसिंह।
८ रावल समहायक।
९ रावल खुमान।
१० रावल अल्लट।
११ रावल नरबाहन।
१२ रावल शक्तिकुमार।
१३ रावल शुचिवर्म।
१४ रावल नरवर्म।
१५ रावल कीर्तिवर्म।
१६ रावल वैरड़।
१७ रावल बैरीसिंह।
१८ रावल विजयसिंह।
१९ रावल अरिसिंह।
२० रावल चौंड़सिंह।
२१ रावल विक्रमसिंह।
२२ रावल चेत्रसिंह।
२३ रावल सामंतसिंह।
२४ रावल कुमारसिंह।
२५ रावल मथनसिंह।
२६ रावल पद्मसिंह।
२७ रावल जैत्रसिंह।
२८ रावल तेजसिंह।
२९ रावल समरसिंह—कहते हैं कि दिहली में शहाबुद्दीन की लड़ाई में पृथ्वीराज के साथ थे, बड़े वीर थे।
३० रावल रत्नसिंह।
३१ रावल कर्णसिंह।
३२ महाराणा राहप।
३३ महाराणा नरपति।
३४ महाराणा दिनकरण।
३५ महाराणा जसकरण।
३६ महाराणा नागपाल।
३७ महाराणा पूर्णपाल।
३८ महाराणा पृथ्वीपाल।
३९ महाराणा माणसिंह।
४० महाराणा भीमसिंह।
४१ महाराणा जयसिंह।
४२ महाराणा गढ़लक्ष्मणसिंह।
४३ महाराणा अरसी।
४४ महाराणा अजयसिंह।
४५ महाराणा हमीरसिंह।

४६ महाराणा चेत्रसिंह ।

४७ महाराणा लचसिंह ।

४८ महाराणा मोकल ।

४९ महाराणा कुंभा—गुजरात फतह किया, कुमलगढ़ का किला बनाया, चित्तौर में कीर्ति-स्तंभ बनवाया ।

५० महाराणा रायमल्ल ।

५१ महाराणा सांगा—बड़े बहादुर थे, एक लड़ाई में ८४ घाव लगे थे ।

५२ महाराणा रत्नसिंह ।

५३ महाराणा विक्रमसिंह ।

५४ महाराणा उदयसिंह—उदयपुर बसाया ।

५५ महाराणा प्रतापसिंह—बड़े वीर थे, अकबर के साथ हलदी घाटी पर लड़ाई हुई थी ।

५६ महाराणा अमरसिंह ।

५७ महाराणा कर्णसिंह ।

५८ महाराणा जगतसिंह—शाहजहाँ जब शाहजादा था, रण के समय में इनके यहाँ शरण रहा ।

५९ महाराणा राजसिंह—राजसमुद्र तालाब बनाया, १ करोड़ व्यय हुआ ।

६० महाराणा जयसिंह—जयसमुद्र बनाया—९ मील लंबा ५ मील चौड़ा ।

६१ महाराणा अमरसिंह ।

६२ महाराणा संग्रामसिंह ।

६३ महाराणा जगतसिंह ।

६४ महाराणा प्रतापसिंह ।

६५ महाराणा राजसिंह ।

६६ महाराणा अमरसिंह ।

६७ महाराणा हम्मीरसिंह ।

६८ महाराणा भीमसिंह ।

६९ महाराणा जवानसिंह ।

७० महाराणा सरदारसिंह ।

७१ महाराणा स्वरूपसिंह ।

७२ महाराणा शंभूसिंह ।

७३ महाराणा सज्जनसिंह ।

७४ महाराणा फतहसिंह ।

महारानी पद्मावती

(ऐतिहासिक दृश्य—रूपक)

अथ प्रस्तावना

अद्भुत नाटक रूप सबै संसार बनायो ।
अति विचित्र परलोक यवनिका तहँ सरकायो ॥
पात्र जीव सब बने नचावत अनुपम भायो ।
राखि सबै स्वाधीन खेल अद्भुत दिखरायो ॥
माया रूपी नटिन बस जग भूल्यो सब मोहमय ।
मोहत अपुने खेल जन नट-नागर जय जयति जय ॥

इति नांदी

[सूत्रधार का प्रवेश]

सूत्र०—(घूमकर और चारों ओर देखकर) आज इन महाशयों ने नाटक देखने के लिये कृपा की है, पर मुझे तो इस समय कोई ऐसा नाटक ध्यान में नहीं आता जिसे दिखाकर मैं इन लोगों को प्रसन्न करूँ। (सोचता है)

[नेपथ्य में]

(झिंझौटी—जलद—तिताला)

धन धन भारत की छत्रानी ।
बीरकन्यका बीरप्रसवनी बीरबधू जग जानी ॥
सतीशिरोमणि धर्मधुरंधर बुधि-बल-धीरज-खानी ।
इनके यश की तिहुँ लोकन में अमल ध्वजा फहरानी ॥ १ ॥

सूत्र०—अहाहा ! भली याद दिलाई, आज किसी वीर स्त्री का पवित्र चरित्र इन लोगों को दिखलाना चाहिए, यह स्त्री भी किसी ऐसे वीर वंश की होनी चाहिए जिसके वंश में सदा से वीर ही होते हों। (कुछ सोचकर) इसमें बहुत सोच विचार क्या ? मेवार राज-वंश से पवित्र और वीर वंश इस पृथ्वी के तल पर कौन दूसरा वंश है ? जिस वंश के शिरोमणि साक्षात् भगवान् रामचंद्रजी हुए हैं उसकी समता कौन कर सकता है। इस पवित्र वंश की मर्य्यादा महाराज हरिश्चंद्र, महाराणा प्रतापसिंह, महाराणा राजसिंह प्रभृति महापुरुषों ने बढ़ाई है और इसी वंश में हम लोगों के परम श्रद्धापात्र महामान्यवर, सकलगुणनिधान, परम विद्वान्, हिंदी भाषा के एकमात्र सहायक, परम उदार वीरशिरोमणि श्री १०८ महाराणा सज्जनसिंह बहादुर जी० सी० एस० आई० हुए हैं, जिनकी प्रशंसा करना सहज नहीं है। इन्हीं ने अपनी बाल्यावस्था में श्रीमान् प्रिंस आफ वेल्स को बंबई के दर्बार में अपने चमत्कार गुणों से मोहित किया था और इन्हीं की सहायता से "सारसुधानिधि", "मित्रविलास", "हिंदीप्रदीप" प्रभृति हिंदी के पत्र जो कि इस समय प्रथम श्रेणी में गिने जाते हैं जी रहे हैं। इस समय भी इस वंश में वर्तमान महाराणा राजकुलतिलक श्री १०८ महाराणा फतहसिंहजी बहादुर इस पुण्यभूमि भारत की शोभा को बढ़ाते हैं। इनकी सच्चरित्रता और लोगों के लिये एक उत्तम उदाहरण है। इनके ऐसा धार्मिक, सच्चरित्र, जातिहितैषी और सर्वगुणसंपन्न महान् पुरुष राजकुल में होना अत्यंत ही कठिन है। इनके सद्गुणों का वर्णन करना अत्यंत ही कठिन काम है। जगदीश्वर इन्हें चिरायु करके भारत का गौरव बढ़ावै। इसी वंश में कृष्णाकुमारी, सरोजिनी, पद्मावती प्रभृति कई एक स्त्रियाँ भी अति प्रसिद्ध हुई हैं। अहा ! अच्छा स्मरण हुआ,

आज हम महारानी पद्मावती के पवित्र चरित्रों को दिखाकर अपनी दर्शक-मंडली को प्रसन्न करेंगे। (जाता है)

इति प्रस्तावना

[नेपथ्य में]

जयति पति-प्रेम-रस-मगन नित प्रेमनिधि
सती-कुल-तिलक रानी जु पद्मावती।
बीर-रस-पूरि गंभीरता-आगरी
देश-पावन-करन सबै गुण भावती॥
आर्य-पथ-गामिनी परम अभिरामिनी
कामिनी-कुल-कमल-सुजस नव छावती।
जयति आनंदकरन जगत-पावनकरन
नित बिमल सुजस सब सुरबधू गावती॥ १॥

प्रथम अंक

प्रथम दृश्य

चित्तौर का राजदर्बार

(बहुत से राजपूत सर्दार, प्रधान मंत्री और महाराणा रत्नसेन बैठे हैं)

[नेपथ्य में गान]

सबै मिलि भारत की जय गाओ ।
मारि मारि इन दुष्ट यवनगण तुरतहिं दूर भगाओ ॥
करि निष्कंटक या भारत को प्रेमसुधा बरसाओ ।
जय जय धर्म जयति जय भारत यहै प्रवाह बहाओ ॥ १ ॥

रत्नसेन—अहा ! आज बड़े ही आनंद का दिन है, भगवान् एकलिंगजी* ने अपने कुल का गौरव रख लिया, उन दुष्टों को यह विदित करा दिया कि राजपूतों की ओर टेढ़ी दृष्टि से देखना कैसा होता है । जो उसमें मनुष्यत्व का कुछ भी अंश होगा तो फिर कभी क्षत्रियों का सामना करने का साहस न करेगा ।

मंत्री—महाराज ! शिक्षा तो ऐसी ही दी गई है कि आजन्म न भूलें, यदि उनके अभाग्य हों तो कदाचित् भूल जायँ ।

रत्न०—इसमें तो संदेह नहीं ।

[एक सैनिक का प्रवेश]

सैनिक—महाराज की जय ! आज के युद्ध में अपनी ही जय रही, शत्रुओं के कई हजार मनुष्य खेत रहे और चार पाँच सौ के अनुमान बंदी भी हो गए हैं, अपने चार सौ वीर काम आए जिनमें वीरसिंह, धर्मसिंह, रामसिंह प्रभृति कई एक प्रधान वीरगण भी थे ।

---

* उदयपुर में प्रधान देवता एकलिंगजी ही हैं ।

रत्न०—और तो सब अच्छा ही हुआ पर खेद इतना ही है कि हमारे हाथ के कई रत्न निकल गए।

एक सर्दार—महाराज ! कुछ चिंता नहीं, उनके धन्य भाग्य कि उनका शरीर अपनी जन्मभूमि के काम आया। अहा ! उन्हें साक्षात् स्वर्गलोक प्राप्त हुआ। क्या हम लोगों के भाग्य में भी यह सुख लिखा है ?

रत्न०—इसमें क्या संदेह है ? यदि यह पामर शरीर अपनी मातृभूमि के कुछ भी काम आवे तो इससे बढ़कर और पुण्य का क्या फल है ? अच्छा जो होना था सो हुआ, अब आगे को खूब सावधान रहना चाहिए, क्योंकि ये दुष्ट यवन यों सहज में नहीं माननेवाले हैं, अवश्य फिर उपद्रव मचावेंगे।

मंत्री०—कुछ चिंता नहीं महाराज ! आने दीजिए। इस बेर भी यदि भगवान् एकलिंग की कृपा होगी तो वह हाथ बैठेगा कि फिर कभी इधर मुँह न करेगा।

रत्न०—ईश्वरेच्छा सब पर प्रबल है, जो होगा वह देखा जायगा, आज की विजय के आनंद में उत्सव होना बहुत ही आवश्यक है। मंत्री ! तुम इसकी घोषणा कर दो और मैं भी थोड़ी देर में अभी आता हूँ।

मंत्री—जो आज्ञा महाराज की। (सभों का प्रस्थान)

[नेपथ्य में]

हाय अब भारत दुरदिन आए।
चारहुँ दिशा दीखियत नीचहिं यवन म्लेच्छगण छाए ॥
ग्रसन चहत सब राहु दुष्टमति आर्य सूर कुँभिलाए।
हे भारत हित आरत क्यों अब वाहि गहत नहिं धाए ॥१॥

द्वितीय दृश्य

अलाउद्दीन का शयनागार

[अलाउद्दीन बैठा है]

अलाउ०—आह! उस रानी की तारीफ सुनते सुनते तो नाकों में दम आ गया, मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूँ? किस तरह उसे देखूँ और पाऊँ? (कुछ ठहरकर) जो हो, मैं इस बात के लिये कसम खाता हूँ, कि उस रानी को जरूर जरूर अपनी बेगम बनाऊँगा। मुझको उम्मीद होती है कि बहुत जल्द इस काम में कामयाब हूँगा। क्यों नहीं, दुनिया में ऐसा कौन सा काम है जो मैं न कर सकूँ। दरहकीकत मैं दूसरा सिकंदर हूँ और क्या मजाल है जो मेरे सामने कोई चूँ भी कर सके। तमाम दुनिया के बादशाह मेरे गुलाम हैं, मैं जो चाहूँ करूँ, तब मुझको इतनी फिक्र से क्या काम है? क्या मकदूर है राणा का जो मेरा हुक्म न माने! मैं अभी उसको खत लिखता हूँ कि अगर वह अपनी भलाई चाहे तो पद्मावती मुझे दे दे, नहीं तो उसको खाक में मिला दूँगा। साथ ही इसके एक खत रानी को भी लिखना चाहिए कि तुम हमारे पास चली आओ, हम तुम्हें अपनी बेगम बनावेंगे। आखिर तो औरत ही है, जरा सी लालच से खुश हो जायगी, उसके लिये इतनी तरद्दुद की कोई जरूरत नहीं है उसे तो बात की बात में ले लूँगा मगर इस बारे में अपने दोस्तों से भी सलाह ले लेनी चाहिए। हहा! वे लोग क्या जानें जो सलाह देंगे? खुदाताला ने हमारे मुकाबले में सभी को अक्ल, दानाई, इल्म, मुल्क, जर, हशमत, खूबसूरती और कूवत वगैरह में कम बनाया है, वे बेचारे क्या हैं जो मुझको राय देंगे? यह बात कभी मुमकिन नहीं है कि पद्मावती मुझे देखे और मुझ पर आशिक न हो जाय। खैर, इन बातों की इस वक्त कोई जरूरत

नहीं है, दोस्तों से राय पूछ लेनी चाहिए, क्योंकि करना न करना तो अपने हाथ है। मुझे दम भर भी चैन हासिल न होगी जब तक कि मैं उस माह से चेहरे को न देखूँगा और उस पाक खानदान को नापाक न करूँगा।

[दो मुसाहिबों का प्रवेश]

अला०—क्यों जी, तुम लोगों की उस बारे में क्या राय है? हम, तुम दोनों को अपना निहायत दोस्त समझकर यह बात कहते हैं, देखो जिसमें यह भेद हरगिज जाहिर न हो।

दो०—हुजूर यह मुमकिन नहीं कि हम लोगों के जरिये से कोई बात जाहिर हो सके।

अला०—बेशक इसमें कोई शक नहीं मगर यहतयातन् कह दिया। तुम लोगों के भरोसे हम बड़े बड़े कामों में हाथ डाल देते हैं और बराबर कामयाब होते हैं। तुम लोगों की बदौलत हम इतनी बड़ी बादशाहत करते हैं। यह कभी मुमकिन नहीं कि तुम लोगों से कोई बात जाहिर हो सके। मैंने यहतयातन् कह दिया उसका कुछ ख्याल न करना।

दोनों—हुजूर की इनायत हम गुलामों पर हद से ज्यादे है गो कि फिदवियान इस लायक नहीं हैं, अगर हुजूर ही इनायत न फर्मा-येंगे तो और कौन इनायत फर्मा सकता है।

अला०—खैर ये सब बातें रहने दो, मतलब की बातें इस वक्त सोचनी चाहिएँ। तुम लोगों की राय क्या है?

१ मु०—हुजूर की राय मुकद्दम है, इस बारे में हुजूर ने जो राय सोची है वह बहुत ठीक है।

२ मु०—हुजूर की राय बेशक दुरुस्त है।

अला०—इसमें कोई शक नहीं कि मेरी राय बहुत ही उम्दः है। इस राय के सिवाय भी मेरी राय हमेशा ही दुरुस्त होती आई है। पर ताहम तुम लोगों को भी अपनी अपनी मुनासिब राय देनी चाहिए।

२ मु०—हुजूर ने जो राय सोची है वह उम्दः है और हुजूर ने उसका अंजाम भी सोच ही लिया होगा क्योंकि कोई काम बिला अंजाम सोचे न करना चाहिए।

अला०—अजी इस छोटी सी बात में अंजाम सोचने की क्या जरूरत हैं? ऐसी बातें तो रोज ही हुआ करती हैं।

२ मु०—खुदावंद-निआमत आप बजा फरमाते हैं मगर इस गुलाम की अक्लनाकिस में तो यह आता है कि अंजाम सोचना जरूर है, आइंदः हुजूर मालिक हैं।

अला०—(कुछ क्रोध से) फिर वही फजूल बातें करते हो, इसमें कौन सी बड़ी भारी बात अंजाम सोचने की है, तुम्हीं बतलाओ।

२ मु०—(हाथ जोड़कर) गरीबपरवर जरा मेरी बात पर गौर कीजिए, अगर राणा और रानी ने आपकी दरखास्त न कबूल की तो क्या कीजिएगा?

अला०—(क्रोध से कुछ मुस्कुराकर) तुम निरे बेवकूफ हो। भला कभी यह मुमकिन है कि वह हमारा हुक्म न माने।

२ मु०—हुजूर फर्ज किया जाय कि अगर न माने तब क्या किया जायगा?

अला०—(क्रोध से) जो हाल तुम्हारा किया जाता है वही। (नेपथ्य की ओर देखकर) कोई है—इधर आओ (नेपथ्य से) जो हुक्म हुजूर।

[दो सैनिकों का प्रवेश]

दोनों सै०—क्या हुक्म होता है?

अला०—(दूसरे मुसाहिब की ओर देखकर) इस कंबख्त को पकड़कर ले जाओ, इस वक्त कैदखाने में रखो, कल सुबह तजबीज की जायगी। इस वक्त यह मुनादी करा दो कि बेअदबी के कुसूर में इस कंबख्त का कल सुबह इंसाफ किया जायगा। (मुसाहिब से) जनाबेमन् यही हालत उसकी भी की जायगी।

२ मु०—(हाथ जोड़कर) हुजूर मेरा कुछ भी कुसूर नहीं है, जरा मेरी बात सुन लें।

अला०—चुप रहो, चले जाओ, खबरदार चूँ न करना।

२ मु०—(स्वगत) खुदाया ! इस जुल्म पर ख्याल कर और खल्क को इस जालिम के जुल्म से बचा। उफ यह जुल्म ! गजब खुदा का, कंबख्त बेफाएद: मेरी जान.........

अला०—अब क्यों इसको खड़ा रखा है ? फौरन ले जाओ, हम बदमाश का चेहरा नहीं देखना चाहते ! (दोनों सैनिक उसे पकड़कर खींचते हुए ले जाते हैं) उफ ! इस कंबख्त ने दिमाग खाली कर दिया। नालायक नमकहराम इस कंबख्त को मुझसे भी ज्याद: अक्ल हो गई !!

१ मु०—हुजूर इस कंबख्त की बातों को सोच सोचकर क्यों रंज उठाते हैं ? उस नामाकूल की बहुत ही मुनासिब सजा हुई। दरहकीकत उसने निहायत बेजा काम किया।

अला०—खैर, मैं आज ही राणा को खत लिखूँगा, देखा चाहिए क्या जवाब आता है।

१ मु०—हुजूर इस नेक काम में देर करने की कोई जरूरत नहीं है, आज ही खत जाना चाहिए, इस वक्त हुजूर को बड़ी तकलीफ हुई है जरा आराम फरमाइए।

अला०—तुम ठीक कहते हो, खत आज ही जाना चाहिए।

[पटाक्षेप

तृतीय दृश्य

राजपथ

[दो मनुष्यों का प्रवेश]

१ला—कहो भाई आजकल क्या करते हो। क्या दशा है?

२रा—क्या बतावें, फाकों से जान जाती है, कहने से जान का डर, हाय ईश्वर, कब इस अन्यायी बदमाश से हम लोगों की जान छुड़ावेगा? उह! अति हो गई! अब तो नहीं सही जाती। हाय इस समय कोई ऐसा नहीं है जो हम लोगों की रक्षा करे! हे भारत-भूमि, क्या तू अब ऐसी निस्तेज हो गई कि इतने अत्याचार होने पर भी इन पापी यवनों को नहीं भस्म कर डालती !!

१ला—भाई अब तो हम लोग नहीं बच सकते, हम सभी की जान गई, हाय ऐसा अत्याचार तो कभी कान से भी नहीं सुना। हमको तो घर जाते लाज लगती है। जाते ही लड़के "बाबा बाबा" कहके दौड़ते हैं और कहते हैं, बड़ी भूख लगी है कुछ खाने को दो। हाय! उस समय मारे दुःख के प्राणांत कष्ट होता है! हाय! जिन बालकों के बोलने से सारे संसार को सुख होता है उन्हीं बालकों के दीन शब्दों से कलेजा फटा जाता है !!

२रा—भाई कुछ न पूछो, ऐसा नाकों में दम आ गया है कि कौन दिन ऐसा हो कि हमें मौत आवे (ऊर्द्ध्वश्वास) हा! एक दिन था कि हम लोग चैन से अपना समय व्यतीत करते थे, एक दिन यह है कि—(रोता है)

१ला—उह! अब तो भारतवर्ष की यह दशा नहीं देखी जाती।

दोनों—रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा भारत-दुर्दशा न देखी जाई॥

सबके पहले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहले जेहि सभ्य विधाता कीनो ॥
सबके पहले जो रूप रंग रस भीनो।
सबके पहले विद्याफल जिन गहि लीनो॥
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा हा भारत-दुर्दशा न देखी जाई ॥
जहँ भए शाक्य हरिश्चंद्र नहुष जयाती।
जहँ राम युधिष्ठिर व्यासदेव सर्य्याती ॥
जहँ भीम करण अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती ॥
अब जहँ देखहु तहँ दुख ही दुःख दिखाई।
हा हा भारत-दुर्दशा न देखी जाई ॥
लरि वैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी।
करि कलह बुलाई यवन सैन पुनि भारी ॥
तिन नास्यो बुधिबल विद्याधन बहु बारी।
छाई अब आलस कुमति कलह अँधियारी ॥
भए अंध पंगु सब दीन हीन बिलखाई।
हा हा भारत-दुर्दशा न देखी जाई ॥

हे ईश्वर, अब बहुत हुआ अब तो सुध लो। हे भारतमाता ! अब क्यों नहीं निर्लज्जता छोड़ती ? हे भारतवासी महाराज लोग ! क्यों नहीं अपने पूर्वजों का स्मरण करते ? हे भारतवासी आर्य्य-भ्रातृगण ! अब क्यों नहीं अंतिम साहस करते ? अब क्या बाकी है ? अब और कौन आफत झेलनी है ? इस जीने से क्या मरना अच्छा नहीं है ? हा दुष्ट अलाउद्दीन तुझ पर क्यों नहीं पत्थर पड़ते ? तू क्यों नहीं मरता ? तुझसे संसार में क्या लाभ है ?

हे ईश्वर ! अब शीघ्र ही सुध ले। इंद्रदेव ! तुम क्यों नहीं अपने मेघों से संसार को डुबा देते ? क्या तुम्हारा बल उसी समय था कि जब श्रीकृष्णचंद्र भगवान् ने तुम्हारा गर्व प्रहार किया था ? आओ इस समय आओ, इस समय कोई तुम्हारा सामना नहीं कर सकता, शीघ्र ही आओ—हाय ! हम लोगों की बात कोई भी नहीं सुनता।

२रा—भाई अब क्या करें ? कोई सुनता ही नहीं, चुप रहो, कहीं कोई आ न जाय, नहीं तो आज ही फाँसी पर चढ़ाए जायँगे।

१ला—हाँ ठीक कहते हो, अब चुप रहना चाहिए। ऐं ! वह देखो एक मुसलमान आता है। हाय ! सर्वनाश हुआ।

[एक मुसलमान कर्मचारी का प्रवेश]

मुस०—क्यों नालायको ! क्या शोर मचा रहे थे ? कंबख्तो ! क्या तुम लोगों को बादशाह का डर नहीं है ? बोलो क्या शोर कर रहे थे ? बोलता क्यों नहीं है गदहा-नालायक !!

१ला—सावधान रहो गाली मत दो, हम लोग जो चाहते थे बातें करते थे, तुम्हारा क्या ? चुप रहो विशेष न बोलो।

मुस०—पाजी सुअर कहता है चुप रहो ! कंबख्त जानता नहीं कि हुजूर बादशाह सलामत का हुक्म है कि जो हमारे या हमारे दीन के बरखिलाफ बोले उसको मय उसके खांदान के नेस्तनाबूद कर डालो। हम लोग उसी हुक्म की रू से तुम दोनों को मय घर बार के नेस्तोनाबूद कर देंगे। अब भी अच्छा है अगर तुम लोग सौ रुपए मुझे दो और सच्चा दीन इसलाम कुबूल करो तो जान बच जाय।

१ला—चुप रह दुष्ट ! हम कभी अपना धर्म न छोड़ेंगे, जान रहे या जाय !!

२रा—मरना स्वीकार है पर धर्म छोड़ना स्वीकार नहीं !!

मुस०—भाई हिंदू भी बड़े ही बेवकूफ होते हैं! अपनी जान को तो कुछ समझते ही नहीं! अपनी जान के आगे मजहब कंबख्त क्या चीज है? मुझे तो कोई सौ रुपए दे मैं अभी मजहब छोड़ता हूँ। हहह हिंदू लोगों को कुछ भी अक्ल नहीं होती! अच्छा रुपया भी होगा या नहीं?

दोनों—रुपया हम लोगों के पास कहाँ?

मु०—तब फिर तुम लोगों को हम न छोड़ेंगे। जरूर बजरूर आज फाँसी पड़ोगे।

दोनों—आहा! आज बड़े ही आनन्द का दिन है! ईश्वर ने हम लोगों की प्रार्थना सुनी! "मूँदहु आँख कतहुँ कोउ नाहीं" जब हम लोग इस संसार में न रहैंगे तो हम लोगों के लिये प्रलय ही हो गई। धन्य है ईश्वर! हम लोग बड़े आनन्द से फाँसी चढ़ेंगे।

मु०—(नेपथ्य की ओर) अजी बरकतुल्लाह, अजी शम्सउद्दीन, जल्द आओ, इन काफिरों को पकड़ो, जल्द पकड़ो भागने न पावैं।

दोनों—छिः मूर्ख! हम लोगों का यह धर्म नहीं है कि धोखा देकर भागें, चलो हम लोग तुम्हारे साथ चलते हैं। जो चाहो करो। पर खेद इतना ही है कि इस समय तलवार नहीं है! नहीं तो पृथ्वी को दस बीस दुष्टों से हलकी करते चलते। अच्छा नहीं सही! चलो तुम हम लोगों को ले चलो।

मु०—(स्वगत) ये लोग बड़े भारी बेवकूफ हैं। (प्रगट) अच्छा चलते जाओ, देखना भागना मत, होशियार।

दोनों—चलो। (सब जाते हैं)

(इति प्रथमांक)

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

स्थान—महाराणा रतनसेन का राजभवन

[महाराणा रतनसेन, महारानी पद्मावती, मंत्री और कुमार अजयसिंह बैठे हैं]

रतन०—दुष्ट अलाउद्दीन की दुष्टता तो तुम लोगों ने देखी ही, पहले तो लड़ा, फिर हारने पर प्यारी पद्मावती को धमकी देकर माँगा और अब, जब कोई बात न चल सकी तो यह पत्र लिखा है। अब तुम लोगों की क्या सम्मति है, इनकी प्रार्थना को स्वीकार करना या नहीं ?

पद्मा०—हाय! इस अभागिनी के लिये आपको बड़े दुःख सहने पड़े! प्राणनाथ! मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए। मैंने आपको बड़ा ही दुःख दिया और अभी न मालूम कितने दुःख दूँगी। हाय रे भाग्य! तू जो चाहे सो करा! (रोदन)

रतन०—प्यारी रोओ मत। तुमने क्या किया ? यह सब हमारे कर्मों का फल है। (आँसू पोंछकर) रोओ मत। अब रोने का समय नहीं है। उस दुष्ट ने लिखा है कि हम कुछ नहीं चाहते केवल एक बार चित्तौरगढ़ के भीतर हम आकर आपसे मिलना चाहते हैं, सो अब हम लोगों को यह विचार करना चाहिए कि उसकी इस विनती को स्वीकार करें वा नहीं, क्योंकि अब तक किसी दुष्ट यवन का पाँव इस महापवित्र भूमि के ऊपर नहीं आया।

पद्मा०—महाराज! मेरी बुद्धि में तो यही आता है कि उसकी इस विनती को मान करके इस झगड़े को मिटाइए।

रतन०—हमारी भी यही सम्मति है।

अजय०—और मैं भी इसी को अच्छा समझता हूँ।

मंत्री—मेरी समझ में भी यही अत्युत्तम सम्मति है।

पद्मा०—पर इसका ध्यान रहे कि वह कुछ छल न करै।

रतन०—नहीं यह संभव नहीं, भला ऐसा कभी हो सकता है।

अजय०—महाराज! वह कुछ भी न कर सकेगा। आप निश्चिंत रहिए।

मंत्री—कुमार! आपका कहना बहुत ठीक है तथापि सावधान रहना चाहिए।

पद्मा०—महाराज! ठीक कहते हैं।

रतन०—अच्छा मंत्री! तुम शीघ्र एक पत्र लिख भेजो कि हमको आपकी प्रार्थना स्वीकार है, आप जब चाहे आइए।

मंत्री—जो आज्ञा।

रतन०—परंतु सैन्य सज्जित रहनी चाहिए। इन पामरों का स्वप्न में भी विश्वास न करना चाहिए। अच्छा मंत्री! सेनापति से कह दो कि सावधान रहैं।

मंत्री—जो आज्ञा।

रतन०—अब नहाने का समय निकट है। मंत्री देखो! जो कुछ कहा गया है उसका ध्यान रखना, भूलना मत।

मंत्री—जो आज्ञा। (सब जाते हैं)

द्वितीय दृश्य

स्थान—पद्मावती का उपवेशनागार

[विषण्णवदना पद्मावती बैठी है]

पद्मा०—हाय! मेरे भाग्य में क्या लिखा है ? क्या मेरी अब यह दशा हो गई कि मेरे पीछे महाराज को दुःख हो ? कोई समय वह था कि मुझे देखकर महाराज का मन प्रफुल्लित हो जाता था, अब मुझे देखकर महाराज के कलेजे में आग भड़क उठती है। हाय विधना! क्या तूने मुझे इसी लिये सुंदर बनाया था कि मेरे पीछे सारे चित्तौरवालों को दुःख हो। हाय चित्तौर! तेरी यह गति मेरे ही कारण हुई, न सुंदरी होती न पाजी अलाउद्दीन इस पवित्र भूमि चित्तौर के लेने का विचार करता। हाय प्राणनाथ! तुमको हमने बड़ा दुःख दिया। जो तुम यह जानते कि मेरे पीछे तुम्हारी यह दशा होगी तो तुम क्यों मुझे ब्याहते ? सब मेरा ही दोष है, मेरे भाग का दोष है। अभागिनी पद्मावती ही इस उपद्रव की जड़ है। हाय! इतना होने पर भी महाराज का प्रेम इस अभागिनी पर बना है! हाय! प्राणनाथ! तुम मेरे ऊपर बड़ी ही कृपा रखते हो पर मैं इस लायक नहीं हूँ। प्राणनाथ! तुम्हारे सुख में मैं काँटा हुई! हाय यह बात झूठी ही मालूम होती है कि, "भलाई का बदला भलाई है।" तुमने मेरे साथ जो भलाई की है यह उसी का बदला है! हे प्राण तू अब भी क्यों नहीं निकलता ? क्या तेरे जी में यह है कि जब सारा चित्तौर छार हो जाय तब अपमान के साथ निकले। हाय! ये प्राण बड़े ही निर्लज्ज हैं! ओह! अब यह नहीं सहा जाता! अब यह जीवन वृथा है! मैं आत्मघातिनी होऊँगी, निश्चय आत्मघातिनी होकर चित्तौर के इस कंटक को दूर करूँगी। ऐं! यह क्या! क्या मैं आत्मघातिनी होऊँगी ? चित्तौर को इस दशा में

फेंककर आत्मघातिनी ! महाराज को इस विपत्ति में डालकर आत्मघातिनी ! कभी नहीं, कभी नहीं, कभी नहीं, क्या राजपूतिनी होकर मेरा यही काम है ? मैं अपने देश को साक्षात् अग्नि में डालकर आत्मघातिनी होऊँ ! चौहानवंशीय कन्या और सूर्यवंशीय पतोहू होकर यह मेरा विचार कि मैं इस कायरता के साथ प्राण देकर आत्मघातिनी होऊँ ? छि: ! यह मेरा भ्रम है, मैं कभी अपने कुल में कलंक न लगाऊँगी। देखें यह पाजी तुर्क कैसे बहादुर हैं ? दुष्ट ! दूसरे की स्त्री का सतीत्व बिगाड़ने की इच्छा ! पापिष्ठ देखना राजपूतनी कैसी धर्मपरायण, वीर और प्रतिज्ञा की पूरी होती हैं। ऐसा स्वप्न में भी न सोचना कि राजपूतनी धन वा प्राण के डर से अपना सतीत्व नष्ट कर देगी। संसार में कौन ऐसी जाति है जो राजपूतों की बराबरी कर सकती है ? (क्रोध से खड़ी हो जाती है और इधर उधर घूमती है) वह यही चित्तौर है जिसके लिये हजारों राजपूत कट गए परंतु स्वाधीनता कभी न छोड़ी। दुष्टो ! यह अच्छी तरह सोच रखो कि राजपूत लोगों की यह चिर-स्वाधीन वीरभूमि चित्तौर कभी पराधीन न होगी।

नेपथ्य में—धन्य देवी धन्य !!

पद्मा०—किसने धन्य धन्य कहा है ?

[रतनसेन का प्रवेश]

रतन०—धन्य देवी ! धन्य ! तुम्हारा साहस परम प्रशंसनीय है। प्यारी ! तुम्हारी सब बातें मैं सुन चुका हूँ। तुम वृथा इतना सोच करती हो। देखो यह कैसे आनंद का दिन है, शत्रु ने तुम्हारे ही से संधि करना स्वीकार कर लिया है ! अब किसी बात की चिंता नहीं।

पद्मा०—इसमें संदेह नहीं कि उस पाजी ने मेल की प्रार्थना की है, पर मुझे इन दुष्ट म्लेच्छों का विश्वास नहीं है। अकस्मात् मेरे

चित्त में यह बात आती है कि ये लोग अवश्य ही धोखा देंगे। आप निश्चय जानिए कि इस संधि में अवश्य ही कुछ न कुछ भीतरी बात और है।

रतन०—तुम्हारा यह सोचना वृथा है, तुम इसके लिये कुछ भी चिंता न करो। मैं जहाँ तक समझता हूँ, वह इतना बड़ा बादशाह होकर कभी विश्वासघात न करेगा।

पद्मा०—जो चाहे हो, पर मुझे तो विश्वास नहीं होता। मैं बहुत चाहती हूँ कि इसमें शंका न करूँ पर मेरी यह शंका मिटती ही नहीं।

रतन०—तुम स्त्री हो, इससे तुम्हें वृथा भय लगता है। चलो रात्रि बहुत बीती, अब सोने चलो, व्यर्थ चिंता को छोड़ो।

पद्मा०—जो कहिए, पर महाराज! न मालूम क्यों चित्त नहीं मानता। (दोनों जाते हैं)

तृतीय दृश्य

स्थान—चित्तौर का राजपथ

[चार सैनिकों का प्रवेश]

१ सै०—कहो भाई, कोई नया समाचार भी पाया है?

२ सै०—हाँ, यह सुना है कि महाराणा से दुष्ट अलाउद्दीन ने संधि की प्रार्थना की है और उसकी इतनी ही इच्छा है कि एक बेर महारानी का दर्शन कर ले।

३ सै०—भाई बात तो अच्छी हुई, सब झगड़ा थोड़े ही में निपट गया।

४ सै०—अजी निपटा तो अच्छा हुआ, नहीं तो डर किसको था, राजपूत लोग प्राण रहने तक किसी से नहीं डरते। पामर अला-

उद्दीन क्या करता ? जब तक एक राजपूत भी जीवित रहेगा तब तक किसी की सामर्थ्य है कि चित्तौर में पाँव धरे। इन दुष्टों ने जो संधि कर ली वह केवल अपनी प्राण-रक्षा के लिये, हम लोगों को इसमें कुछ आनंद नहीं है, राजपूत काल से स्वप्न में भी नहीं डरते। हम लोगों के आनंद का वही दिन होगा कि जिस दिन हम लोग स्वदेश के लिये और महाराणा के लिये प्राण देंगे। हम लोग इसको कभी भी आनंद नहीं समझते कि अपनी प्राणरक्षा के लिये संधि को अच्छा समझें। हम शपथ खाकर कहते हैं कि हमको उसी दिन आनंद होगा जिस दिन हम अपने देश, अपने प्रभु और अपनी महाराणी के लिये प्राण देंगे।

१ सै०—भाई वीरसिंह ! तुमने बहुत ठीक कहा। हम लोगों के जीते किसका साध्य है जो इस पुण्यभूमि में हाथ लगा सके।

२ सै०—भ्रातृगण ! तुम लोगों का कहना बहुत ठीक है। हम लोगों के तो दोनों हाथ लड्डू हैं अर्थात् लड़ाई में लड़कर मरें तो स्वर्ग और यदि जीतकर जीते फिरें तो यश, स्वदेश का हित और महाराज का कार्य्य साधन।

३ सै०—यह सब तो ठीक ही है, पर संधि होने से हम लोगों की क्या हानि है ? सहज ही में स्वदेशरक्षा भी हुई और अपनी मान-मर्यादा भी बनी रही।

४ सै०—परंतु मुझे इन पामर यवनों पर तनिक भी विश्वास नहीं है। ये दुष्ट बड़े ही विश्वासघाती, झूठे, नीच, दुष्ट और क्रूर होते हैं। मुझे ऐसा संदेह होता है कि ये दुष्ट अवश्य कुछ न कुछ उपद्रव करेंगे, अतएव हम लोगों को प्रत्येक समय सावधान रहना चाहिए।

१ सै०—अजी इसमें कौन सी बात है, जिस दिन से यह लड़ाई प्रारंभ हुई तभी से हम लोग तो सावधान हैं।

३ सै०—राम राम, ऐसा कभी भी संभव नहीं है। ईश्वर ने मनुष्यों में क्या ऐसे गुण भी दिए हैं? कभी भी यह संभव नहीं।

२ सै०—भाई! संसार के मनुष्य मात्र राजपूतों के ऐसे नहीं हैं। ईश्वर ने संसार में क्षत्रियों के बराबर सच्चा, दृढ़प्रतिज्ञ और धार्म्मिक किसी को नहीं बनाया है, और यवनों के ऐसा नीच और विश्वासघाती। अतएव यह आवश्यक है कि हम लोग भली भाँति सावधान रहैं।

३ सै०—महाराज ने तो इस विषय में कोई आज्ञा नहीं दी है। यह निश्चय है कि महाराज ने इसको भली भाँति सोच लिया है इससे कोई आज्ञा नहीं दी।

४ सै०—महाराज चाहे आज्ञा दें या न दें पर हम लोगों को सावधान रहना चाहिए।

१ और २ सै०—अवश्य, अवश्य।

३ सै०—देखो नेपथ्य में यह क्या कोलाहल है। (सब उसी ओर देखते हैं)

[नेपथ्य में]

हे सैनिकगण! महाराज की यह आज्ञा सावधान होकर सुनो—

"सावधान सब लोग रहहु सब भाँति सदाहीं।
जागत ही सब रहैं रैनहूँ सोअहि नाहीं॥
कसे रहैं कटि रात दिवस सब वीर हमारे।
अश्व पीठ से होहिं चारजामे जिन न्यारे॥
तोड़े सुलगत चढ़े रहैं घोड़ा बंदूकन।
रहै खुली ही म्यान प्रतंचे नहिं उतरैं छन॥
देखि लेहिंगे कैसे पामर यवन बहादुर।
आवहिं तो चढ़ि संमुख कायर कूर सबै गुर॥

दैहैं उनको स्वाद तुरतहिं तिनहिं चखाई।
जो पै इक छनहूँ सनमुख ह्वै करहिं लड़ाई॥"

हे वीरगण! सावधान रहो, कल अलाउद्दीन संधि के लिये चित्तौर में आवेगा, यद्यपि संधि की संपूर्णता आवश्यक है तथापि सावधान रहना भी आवश्यक है।

४ सै०—लो अब तो महाराज की आज्ञा भी हो गई। चलो हम लोग सावधान हो रहैं।

सब सै०—चलो। (सभों का प्रस्थान)

[पटाक्षेप

(इति द्वितीयांक)

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

स्थान—अलाउद्दीन का उपवेशनागार

[अलाउद्दीन, वजीर और एक मुसाहिब बैठे हैं]

अला०—(मुसकुराकर) आज बड़ी ही खुशी का दिन है, उस कंबख्त बेवकूफ ने हमारी बात को मान लिया। अब क्या बाकी है? चित्तौर और पद्मावती तो हमारे हाथ में है।

मुसा०—हुजूर बजा फरमाते हैं, इसमें कोई शक नहीं। अब चित्तौर बंदगाने हुजूर का है लेकिन इन काफिरों से होशियार रहना जरूर अमर है, शायद कुछ दगाबाजी न करें।

अला०—अल्लाह अल्लाह! ऐसा ख्वाब में भी न ख्याल करना। मैं राजपूतों को अच्छी तरह जानता हूँ। ये कभी भी दगाबाज

नहीं होते। इसी से तो मुझे कामिल यकीन है कि मैंने चित्तौर को दखल ही कर लिया। इन कंबख्तों से मुकाबले में लड़कर कोई भी नहीं जीत सकता, इनसे दगाबाजी करने ही में फतह है। वल्लाह ये बड़े बेवकूफ होते हैं। भाई! इन काफिरों पर खुदा की मार है। लानत है इनके मजहब और इनके कंबख्त धर्म्म को जो घर में आए हुए दुश्मन को छोड़ देते हैं।

वजीर०—खुदावंद निश्रामत! बंदगाने आली के मुकाबले में किसकी ताब है कि ठहर सके। हुजूर! इन कंबख्तों के जवाल के अय्याम अन्करीब आ गए हैं, इसी से उनकी अक्ल ऐसी हो गई। जहाँपनाह! क्या मजाल है सिकंदर की जो हुजूर की बराबरी कर सके। हुजूर ने सिक्के पर सिकंदरेसानी खुदवाया, मगर हुजूर का दबदबा सिकंदर से भी बढ़ा हुआ है। खुदातआला ऐसे बादशाह को ताअबद कायम रक्खे।

मुसा०—आमीं आमीं।

अला०—वजीर ने जो कुछ तारीफ मेरी की, वह मेरी सिफतों से कहीं घटकर है, किसकी मजाल है कि मेरी पूरी पूरी तारीफ कर सके। अच्छा वजीर! तुम फौजों से कह दो कि आज शाम को चित्तौर के बाहर छिपी रहें। जिस वक्त मैं इशारा करूँ, फौरन् निकलकर रतनसेन को कैद कर लेवें।

वजीर०—जो हुक्म, हुजूर।

अला०—रतनसेन मुझे पहुँचाने को खामखाह शहर के फाटक तक आवेगा और उसके साथ फौज वगैरह भी न रहेगी उस वक्त बहुत अच्छा मौका होगा, फौरन् उसको गिरफ्तार कर लेंगे। बाद-अजाँ रानी को हम पैगाम भेजेंगे कि अगर तुम हमारे यहाँ चली

आओ तो हम तुम्हारे पुराने शौहर को और चित्तौर को छोड़ दें, अगर न आओगी तो तुम्हें, मय तुम्हारे शौहर के, कैद करूँगा और चित्तौर को बिलकुल नेस्तोनाबूद कर डालूँगा। आखिर तो वह औरत ही है, फौरन् राजी हो जायगी। उस वक्त उसको अपनी बेगम बना लूँगा और रतनसेन को कतल करवा दूँगा। बस चित्तौर खाम-खाह मेरे हाथ में आ जायगा।

मु० और वजीर—वाह वाह! हुजूर के ऐसी अकल खुदा ने दुनिया में किसी को नहीं बख्शी है। हुजूर अब हम लोग जाकर फौजों को तैयार करें।

अला०—हाँ जाओ। (दोनों जाते हैं)

अला०—अहा हा! मैं भी अजीब शख्स हूँ। दुनिया में ऐसा कौन है, जो मेरी बराबरी कर सके? अगरचे पढ़ना लिखना तो मैं मुतलक नहीं जानता, मगर मेरी अक्ल ऐसी तेज है कि माशा अल्लाह, चश्म बददूर, जो चाहूँ कर डालूँ। किसकी ताब है जो मेरी बातों का जवाब दे? खुदा ने दुनिया भर की अक्ल मुझको ही दी है। मजा यह कि मेरे ऐसा खूबसूरत भी दुनिया में कोई नहीं है और उस पर तुर्रा यह कि मैं बहादुरी में भी लासानी हूँ। भाई खुदा को भी तो अक्ल है, उसने ये सब चीजें जो मुझे दी हैं और किसी को दे भी तो नहीं सकता था. सिवा मेरे इसके लायक और है कौन? वल्लाह मैंने भी कैसी चालाकी की, कैसा बेवकूफ बनाया। चलें जरा आराम करें, शाम को चलना ही है। (जाता है)

द्वितीय दृश्य

अलाउद्दीन का राजकारागार

[अलाउद्दीन और एक मुसाहिब बैठे हैं, महाराणा रतनसेन पिँजड़े में बंदी हैं]

अला०—(रतनसेन से हँसकर) महाराणा जी साहब ! कहिए पद्मावती की याद है ? अब वह मेरी होगी। हहह ! आपने क्षत्रिय धर्म्म तो खूब निबाहा। हमने सुना था कि क्षत्रिय लोग स्त्री के लिये प्राण देते हैं सो आपने तो खूब प्राण दिया। हाँ, चूँकि आप रघुवंशी हैं इसलिये शायद आपकी यह चाल नहीं है, हहह !!! वाह रे बहादुरी ! क्यों हुजूर ? हुजूर तो बड़े बहादुर थे यह क्या ? हुजूर ऐसे क्यों हो रहे हैं ?

रतन०—(क्रोध से) दुष्ट पामर अधम नराधम विश्वासघातक यही मुसल्मानों का धर्म है ? देख क्षत्री कैसे होते हैं ! दुष्ट नराधम ऐसी विश्वासघातकता ? पापिष्ठ ! तेरे मुख देखने का भी प्रायश्चित्त नहीं है। उह ! पद्मावती ! प्यारी पद्मावती ! प्राण की पद्मावती ! हा ! प्राणेश्वरी ! अब मुझे बिदा करो, अब तुम्हारा वह स्नेहमय मुख फिर कब देखने में आवेगा ? प्यारी ! हमको भी कभी कभी याद करना। पुत्र अजयसिंह ! तुम्हारा यह अभागा पिता अब चला, देखो यह स्मरण रखना कि अपने पिता का बदला इन दुष्ट यवनों से अवश्य ही लेना, अवश्य लेना, अवश्य लेना। हा ! चित्तौरवासी प्रजागण ! हमने तुम लोगों को बड़ा कष्ट दिया, क्षमा करना। हे सूर्य्यदेव ! अपनी संतान की यह दशा देखो !!

अला०—हह ! कैसा भारी बेवकूफ है ! अजी इतना रोते क्यों हो ? सीधी सीधी तो बात है. तुम पद्मावती को मुझे दे दो और मुसल्मान हो जाओ, मैं तुम्हीं को चित्तौर का नाजिम बना दूँगा।

रतन०—(अत्यंत क्रोध से) चुप रह नराधम ! चुप रह पाजी सूअर (दाँत पीसकर) दुष्ट नरपिशाच शस्त्र दे, देख किसको सामर्थ्य है जो मुझसे लड़ सके। दुष्ट ! ठहर देख ईश्वर तुझको शीघ्र ही प्रतिफल देता है। क्या तू मुझको पिंजरे में बंद करके जानता है कि तू जो चाहेगा करावेगा। ऐसा कदापि न समझना, क्षत्री लोग प्राण रहने तक नीच पामर म्लेच्छों की अधीनता न स्वीकार करेंगे। क्षत्री धर्म्म सा संसार में कोई धर्म्म नहीं है। प्रेत ! सामने से हट जा। तेरा मुख देखने से शरीर क्रोधाग्नि के द्वारा भस्म होने लगता है। विश्वासघातक देख क्षत्रियों की वीरता, देख क्षत्रियों का धर्म्म, देख देख हम क्षत्रियों का यह धर्म है कि तुझको शस्त्रहीन, निर्बल निर्जन पाकर भी सैन्यों ने तुझे न पकड़ा, न मारा, न कोई दुख दिया, परंतु कालसर्प ! तूने अपनी कुटिलता दिखलाई। दुष्ट ! तू मेरे सामने से हट जा, तू मुख दिखाने योग्य नहीं है। निर्लज्ज तुझे लज्जा नहीं आती। छिः ! मुझे निस्सहाय पाकर तूने यह दुष्ट कर्म किया कि मुझको बंदी बनाया। धन्य राजपूत वीरगण ! धन्य तुम्हारी वीरता ! धन्य तुम्हारी राज-भक्ति ! मेरी आज्ञा के बिना भी तुम लोग थोड़े से सैनिक मेरे साथ थे। दुष्ट ! तूने राजपूत वीरों की वीरता देखी ? (चारों ओर घूमता है)

अला०—बेशक राजपूत लोग बड़े बहादुर होते हैं, मगर मेरी फौज के मुकाबले में कुछ भी नहीं हैं। खैर इससे क्या मतलब, अब तो राजपूतों की बहादुरी देखी गई। इस वक्त इसकी अक्ल दुरुस्त नहीं है। दूसरे वक्त देखा जायगा। मैं जाता हूँ। (अलाउद्दीन जाता है)

रतन०—जा, नराधम जा। हा ! किस आपत्ति में पड़े, इस नारकी पिशाच की दुष्टता से कलेजा दग्ध होता है। उह !

अब नहीं सहा जाता ! हा दैव ! मैंने कौन अपराध किया था जो तुमने इस भीषण अत्याचारी के हाथ में डाला। कुलदेव सूर्य्यनारायण ! क्या आपको अपने कुल की यह दारुण दुर्दशा देखकर लज्जा नहीं आती ? नहीं नहीं, सूर्य्यदेव अब अपने कुल की रक्षा करेंगे। हाँ हाँ, वह तो देखो वह सूर्य्यनारायण क्रोध से जलते हुए इधर आते हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि कदाचित् सारे संसार को भस्म कर देंगे, प्रति क्षण तेज बढ़ता ही जाता है। देखो अभी तो सवेरा हुआ है, अभी कैसे सूर्य्यदेव में इतना तेज हो जायगा ? निःसंदेह पृथ्वी को जलाने ही के लिये सूर्य्यदेव चले आते हैं। आह ! कैसी सुंदर शोभा है, मार्त्तंड के प्रचंड अग्निरूपी तेज से सब जंतु व्याकुल होकर कैसे भागे जाते हैं और घोर चिकार कर रहे हैं, मानो यह सूचित कराते हैं कि भागो भागो अरे अपनी रक्षा करनी हो तो भागो। देखो सूर्य्यनारायण ससैन्य संसार को भस्म करने के लिये चले आते हैं। धन्य देव धन्य ! इस समय आपने हम लोगों पर बड़ी ही कृपा की। यह देखो यमुना नदी पर सूर्य्य की किरणें ऐसी चमकती हैं कि मानो सबके पहले नदी ही जलकर भस्म होगी। (थोड़ी देर आनंद से उन्मत्त की नाईं इधर उधर घूमता है, नेपथ्य में दोपहर की नौबत बजती है) चौंककर, हैं ! यह क्या ? यह नौबत कैसी बजती है ? क्या अब संसार छोड़कर जाने का समय निकट देखकर यवनों ने कूच का डंका बजाया ! अथवा ये मूर्ख अभी तक नहीं समझे कि काल अब समीप है ? जो हो, मुझे इससे क्या काम ? मेरे लिये तो यह आनंद का दिन है, (कुछ ठहरकर) नहीं नहीं, यह डंका दोपहर का बजा है। ऐं क्या दोपहर हो गया ? वास्तव में क्या यह सूर्य्यनारायण का स्वाभाविक तेज है ? क्या यह कालाग्नि का स्वाभाविक तेज है ? नहीं है, हाय ! तब

तो बड़ा अनर्थ हुआ, उह सूर्य्यदेव, यह क्या! क्या बहुत काल बीतने पर आप अपने कुल को भूल गए? हाय! संसार में अब क्षत्री लोगों के कुल का सहायक कोई भी नहीं रहा! हा दैव! पद्मावती! अपने प्राणप्यारे पति की यह दुर्दशा देखो, हाय! हमने तुम्हारा वाक्य न माना उसी का यह फल है। प्यारी क्षमा! उह! अब नहीं सहा जाता। प्राण प्राण प्राण, उह विदा विदा विदा। (मूर्च्छित हो जाता है)

तृतीय दृश्य

स्थान—कारागार

[महाराणा रतनसेन शोकमग्न पड़े हैं]

रतन०—हा अब भी न मरा! जन्मभूमि मैंने तुम्हारी बड़ी ही अप्रतिष्ठा की! क्षमा करना, तुम्हारे पुत्रों में कोई भी ऐसा हतभाग्य न हुआ जैसा कि मैंने अपने कुलमात्र को कलंकित कर दिया! भगवान् श्री रामचंद्रजी के वंश की यह दुर्दशा इसी दुष्ट कुलांगार ने की। हा मैं स्वयं अपने कलंकित मुख को नहीं देख सकता तो और कौन देख सकेगा? मेरे लिये इस लोक और परलोक में कहीं स्थान नहीं है! हा! कुलदेव! क्यों नहीं तुम अपने पुत्रों की यह दशा देखकर प्रगट होते और यवनों को विध्वंस करते? अथवा इस कुलांगार ही को क्यों नहीं समुचित दंड देते? हे पिता सूर्यनारायण! अपने कुल की यह दशा देखकर भी आप अपने क्रोधानल से क्यों नहीं इस संसार को दग्ध कर देते? हे कल्कि भगवान्! क्या अब भी आपके प्रगट होने में कुछ विलंब है? क्या

यह घोर कलिकाल और अत्याचार देखकर भी चुप बैठे रहोगे? हा! कोई मेरी बात नहीं सुनता! हा दैव! हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था जो तुम हमको इतना सता रहे हो? जगदीश्वर! कृपासिंधु भगवान्! क्या आप अपने एक दीन भक्त की यह दशा नहीं देखते? हा! मेरे ऐसे खोटे भाग्य हैं कि कोई भी मुझे उत्तर नहीं देता। हा क्षत्रियगण! जिसके लिये तुम लोग प्राण देने को प्रस्तुत थे वही आज, तुम लोगों के जीते जी, निराश्रयों और अनाथों की नाईं इस भयानक कारागार में अकेला मारा जाता है! हे धर्म्म! मैंने आज तक जहाँ तक बना आपकी सेवा की, यदि कोई दोष हो गया हो तो उसे क्षमा कीजिएगा। हा! अब मैं जीकर क्या करूँगा? दुष्ट यवनों के हाथ से मरने से तो आत्महत्या ही अच्छी, निश्चय आत्महत्या ही करूँगा।

[नेपथ्य में]

वृथा प्राण जिन देहु तुम या दुख सों अकुलाय।
बिना बिचारे जो करे सो पाछे पछिताय॥
दया धरम को मूल है ताहि न तजहु सुजान।
निश्चय छूटहु कैद सों कहनो मेरो मान॥
सोचहु निज कुल धर्म्म अरु धीरज बुद्धि विवेक।
दृढ़ता हठ अरु बीरता सोच करहु जिन नेक॥
तुम्हरे कुल को वाक्य यह देखहु चित्त विचार।
"जो हठ राखे धर्म को तेहि राखै करतार॥"
कोउ वंश संसार में नहीं जो बोले बैन।
या पवित्र कुल सामने सबको नीचो नैन॥
काको है यह सामरथ जो कर गहि किरपान।
लरै तुम्हारे संग में बचै दुष्ट का प्राण॥

तनिकहु जिन घबराहु तुम ईश्वर को करि ध्यान।
निहचै रच्छा करहिगो अरु राखैगो मान॥
आत्महतन की बात नहिं है तुम्हरे उपयुक्त।
बोर कबहुँ नहिं होत हैं या विचार सों मुक्त॥
कर मैं ले किरपान तुम यवनन को करि नास।
यह स्वदेश-रच्छा करहु नासहु सबकी त्रास॥
देत अहैं आसीस हम यहै पुकारि पुकारि।
नासन में इन यवन के रच्छहिं तुम्हें मुरारि॥

रतन०—(चौंककर) हैं यह क्या ! ऐसे कुसमय में यह सदुपदेश किसने किया ? हा ! मुझे क्या हो गया था ? मैं क्षत्रिय होकर और इन दुष्ट पामर यवनों के डर से डरूँ ! छिः ! यह कोई बात नहीं है, क्षत्रियों को किसका डर है ? साक्षात् यमराज से क्षत्रिय लोग लड़ सकते हैं, भला यह तो कुछ हई नहीं। निश्चय मुझे मारे शोक के बुद्धिभ्रम हो गया था। मुझे शस्त्र की क्या आवश्यकता है ? हाथ ही मेरा शस्त्र है, और वज्र सी हथेलियाँ ढाल। किसकी सामर्थ्य है जो मेरी ओर आँख उठाकर देख सके ? कुछ डर नहीं, दुष्ट आवे तो सही मैं उसे इसका फल चखा दूँगा।

(वीर वेष से इधर उधर घूमता है)

[नेपथ्य में]

धन्य ! क्षत्रियकुल धन्य ! धन्य महाराणा रतनसेन धन्य ! धन्य क्षत्रियकुलभूषण धन्य ! कोई चिंता नहीं। अब अवश्य क्षत्रिय कुल की जय होगी। किसी की सामर्थ्य नहीं है कि तुम्हारे ऐसे वीर पुरुष के रहते चित्तौर को जय कर सकै।

[पटाक्षेप

(इति तृतीयांक)

चतुर्थ अंक

प्रथम दृश्य

अरण्य

[एक गूँगे भिखारी का प्रवेश]

(भिखारी हाथ से इशारा करता है कि कोई मुझे एक पैसा दे मैं भूखा हूँ और अपने शक्य भर चिल्लाता है। एक मुसलमान खवास का प्रवेश और गूँगे का उससे पैसा माँगना।)

खवा०—अबे हट कमबख्त! मेरे पास पैसा कहाँ धरा है जो मैं तुझे दूँ? चल भाग जा, नहीं तो अल्लाह की कसम तुझे मारते मारते बेदम कर दूँगा।

(भिखारी फिर उसी तरह पर इंगित करता है और पैर पकड़ता है।)

खवा०—छोड़ छोड़ पैर छोड़, अल्लाह इस फकीर कंबख्त ने तो मेरा नाक में दम कर दिया। अबे छोड़। (छुड़ाने का यत्न करता है और आपस में दोनों लड़ते हैं।)

खवा०—(मन में) यह कहाँ की हत्या लगी, मुझे चटपट महारानी से सब वृत्तांत निवेदन करना है और यह दुष्ट मुझे छोड़ता ही नहीं। (प्रगट) देख नहीं छोड़ता तो कैसी सजा देता हूँ। (बल से उसे उठा लेता है और पहिचानकर अलग हो जाता है) अच्छा चला आ, अब मैं पैसा देता हूँ। (दोनों कुछ दूर जाते हैं और खवास एक जगह खड़ा होकर चारों ओर देखता है) क्यों जी प्रभुदयालसिंह! क्या दशा देख आए? महाराज का शरीर कैसा है? महाराज क्या करते हैं?

भिखा०—भाई महाराज की तो बहुत ही बुरी दशा है, कभी मूर्छा खाते हैं, कभी आत्मघात का विचार करते हैं, कभी वीरता प्रकाशित करते हैं इत्यादि। परंतु मैं जिस काम के लिये गया था वह ईश्वर के अनुग्रह से और महाराणी के प्रबल प्रताप से सिद्ध हो गया। मैंने छिपकर बहुत कुछ कहकर उनके चित्त को ढाढ़स बँधाया। अब वे कभी न घबरायँगे परंतु शीघ्रता करनी चाहिए, क्योंकि जहाँ कोई मुसलमान आया और उपद्रव हुआ।

खवा०—क्योंजी! प्रगट होकर क्यों नहीं कहा?

भिखा०—उसमें दो बातें थीं; एक तो मुझे देखकर उनका शोकानल और भी भड़कता और दूसरे मेरे वाक्यों पर उनको इतना विश्वास न होता जितना कि अब हुआ क्योंकि उनको सर्वथैव वाणी का संदेह है।

खवा०—क्यों न हो! भाई तुमने बड़ी ही चतुराई का काम किया।

भिखा०—छिः यह क्या हुआ? यदि महाराणा, महाराणी और जन्मभूमि चित्तौर के लिये धन, जन, प्राण भी जाय तो कुछ चिंता नहीं और भी आनंद हो। भला बताओ तो तुमने क्या क्या किया?

खवा०—मैंने गुप्त रूप से उनका सब अभिप्राय जान लिया। उनका यह अभिप्राय है कि छल से महाराणी को ले लें और तब तक महाराणा को न मारें। महाराणी को लेकर महाराणा को मार चित्तौर को विध्वंस करें। हा! ये दुष्ट बड़े ही अधम होते हैं। नराधम चित्तौर को विध्वंस करेंगे। दुष्टो! इस भरोसे मत रहना। जब तक कोई भी चित्तौर का क्षत्री जीता रहेगा, चित्तौर को ध्वंस न होने देगा। हा! महाराज की यह दशा देखकर हम लोगों की

छाती फटी जाती है। क्या कहें महाराणी की आज्ञा शिरोधार्य्य है नहीं तो हम लोग इन दुष्टों को चिता देते कि चित्तौर का ध्वंस करना कैसा होता है।

भिखा०—इसमें क्या संदेह है? दुष्ट पामर यवन! भाई महाराज की वह दीन दशा देखकर मेरा कलेजा फटा जाता था पर क्या करूँ सभी देखना पड़ा।

खवा०—भाई! ईश्वर जो कुछ दिखावेगा सब देखना पड़ेगा। चलो शीघ्रता करें क्योंकि उधर महाराणी घबराती होंगी इधर महाराज।

भिखा०—हाँ चलो। (दोनों जाते हैं)

द्वितीय दृश्य

स्थान—चित्तौर-राजपथ

[अपनी माँ के साथ दो बालकों का प्रवेश]

१ बा०—माँ आज क्यों इतनी धूमधाम मच रही है? क्यों लोग अपने ढाल तरवार आदि शस्त्रों को सँभाल रहे हैं? क्यों लोग एक साथ हर्षित और दुखित होते हैं?

स्त्री०—बेटा! पाजी मुसलमानों ने महाराणा को छल से पकड़ लिया है, इसी से लोग दुखित होते हैं और तुरत ही अपने देश के लिये लड़ाई करनी होगी और उसमें प्राण देने होंगे, इससे लोग प्रसन्न हैं और सज्जित हो रहे हैं।

२ बा०—क्यों माँ! छल किसे कहते हैं? क्या छल कोई बड़ा भारी शस्त्र है? अथवा कोई बड़ा पहलवान है? हम लोगों ने तो आज तक इसका नाम भी नहीं सुना है।

स्त्री०—बेटा ! तुम लोगों ने इसका नाम कभी न सुना होगा। राजपूत बालकों ने क्यों कभी छल का नाम सुना होगा? इसकी शिक्षा तो मुसलमानों ही में होती है, धोखा देने को छल कहते हैं।

१ बा०—क्यों माँ! ये लोग सब दुष्ट चोर चाँइएँ हैं जिन्होंने महाराज को मिठाई या किसी और वस्तु के देने का लालच देकर बंदी कर लिया? पर माँ! महाराज क्यों उनके धोखे में आ गए?

स्त्री०—बेटा! ये दुष्ट चोर चाँइएँ तो हई हैं, पर महाराज को मिठाई के लालच से नहीं धोखा दिया। महाराज का बड़ा मित्र बनकर मिलने को अकेला आया और जब वे उसको पहुँचाने के लिये बाहर तक गए तब धोखे से उन्हें कैद कर लिया।

दोनों बा०—क्यों माँ! ऐसा भी हो सकता है? क्या मनुष्य ऐसा कर सकता है?

स्त्री०—बेटा! तुम लोग क्या जानो? भोले भाले राजपूत बालक, बेटा! राजपूत ऐसी सब जाति नहीं होतीं। ये मुसलमान तो और भी दुष्ट होते हैं। तुम लोग इन बातों को पूछकर क्या करोगे? जाओ खेलो कूदो चैन करो।

दोनों बा०—नहीं माँ! हम लोग भी इन दुष्टों से लड़ेंगे।

स्त्री०—नहीं बेटा! तुम लोग अभी लड़ने लायक नहीं हो, तुम लोग इन बातों पर ध्यान मत दो, जाओ अपना खेल कूद देखो।

दोनों बा०—नहीं नहीं, हम लोग तो अवश्य पिता के साथ संग्राम-क्षेत्र में जायँगे। क्या हम लोग क्षत्री नहीं हैं? क्या हम लोगों की यह जन्मभूमि नहीं है? क्या हम लोगों को लड़ने की शक्ति नहीं है? माँ! हम दोनों भाई अकेले दस-पाँच चोरों को मार लेंगे। माँ! हम लोग बाबा के साथ अवश्य जायँगे। देखना माँ! हम लोग कैसी वीरता से लड़ते हैं। माँ! हम लोगों ने आपके गर्भ से व्यर्थ ही नहीं

जन्म लिया। हम लोग आपकी कोख को कलंकित कदापि न करेंगे! तुम क्यों डरती हो? हम लोग रण में जाकर आपका नाम न हँसावेंगे।

स्त्री०—शाबाश बेटा! क्यों नहीं बेटा! तुम कभी नाम न धराओगे! तुम लोग आनंद से जाओ और अपना बदला लो। मैं असीस देती हूँ कि तुम लोग वीरता के साथ अपनी जननी जन्मभूमि के लिये अपना सिर कटाओ और हमको आनंदित करो। देखो बेटा! ऐसा न हो कि लोग हँसें और कहें कि यह कुल ऐसा कायर है कि उसके लड़के आकर लड़ाई में से भाग गए।

दोनों बा०—नहीं माँ! ऐसा कदापि न होगा। (दोनों आनंद से गाते और नाचते हैं)

आनँद को दिन या सम नाहीं।
काटहिं माथ यवन को निज कर रक्त बहै रण माहीं॥
देखहिंगे को अहै जगत में जो लरि छत्रिन जीते।
कौन बहादुर जग में इन सम को जानै रणरीते॥
कहा नाम याही को भुजबल अलाउद्दीन जो कीनो।
करी मित्रता देई धोखा पुनि महाराजहिं गहि लीनो॥
कहा जानै रण कहा होत है कपट भली बिधि जानै।
जब इनको सिखवहिंगे छत्री तब रण को पहिचानै॥
बाबा के सँग जाइ दोऊ जन लरिके शत्रुन मारैं।
रहैं स्वतंत्र प्राण तजिबे तक जो प्रण नाहिन हारैं॥
चलिकै लरिहैं यवन गणन सों कायर हो नहिं भागैं।
या तो जन्मभूमि की रच्छा या निज प्राणहिं त्यागैं॥
त्यागि प्राण बरु देहि सबै मिलि नदी रक्त की बहिहैं।
पै छत्री कुल कबहूँ जीवत दासपनो ना करिहैं॥

[पटाक्षेप

तृतीय दृश्य

महाराणी का उपदेशनालय

[महाराणी पद्मावती बैठी हैं और मंत्री हाथ जोड़े बैठा है, सामने हाथ जोड़े हुए दो भृत्य खड़े हैं]

मंत्री—महाराणी ने तो सब वृत्तांत सुना ही है, अब कर्तव्य क्या है ?

पद्मा०—तुमने क्या सोचा है ?

मंत्री—रण।

पद्मा०—नहीं नहीं, यह समय लड़ने का नहीं है। इस समय दूसरी ही चाल चलनी चाहिए।

मंत्री—महाराणी ने कौन सी चाल सोची ?

पद्मा०—सुनो। (कान में कुछ समझाती है)

मंत्री—हाँ ठीक है, नहीं तो यदि दुष्ट और कुछ कर बैठें तो फिर महाराज का दर्शन भी होना कठिन होगा।

पद्मा०—अच्छा तो फिर देर मत करो।

मंत्री—जो आज्ञा। (पत्र लिखता है)

पद्मा०—(आप ही आप) हाय प्राणनाथ ! अब तो बड़ा दुःख दिया, प्यारे शीघ्र मिलो, देखो तुम्हारे लिये आज इस क्षत्रिय बाला की क्या दशा हो रही है ? तुम्हारे लिये आज कैसा कलंकित कार्य्य कर रही हूँ ? हा ! क्या हम लोगों का यही अंतिम परिणाम हुआ ! उह ! धर्म्म का यह फल है ! क्या धर्म्म का लोप हो गया ? क्या पाषंड पाप की जीत हो गई ? कभी नहीं, ऐसा नहीं हो सकता, प्यारे ! शीघ्र ही वह दिन आवेगा, जब हम लोग फिर एकत्र होंगे; परंतु प्यारे ! यह दुःख कभी न भूलेंगे। ईश्वर महाराज की जय करै।

मंत्री—महाराणी ! सब प्रस्तुत है ।

पद्मा०—अच्छा सुनाओ । (व्यग्रता और औदास्य नाट्य करती है)

मंत्री—जो आज्ञा ।

"माननीय महाराजाधिराज ! आप ऐसे सम्राट् को यह पत्र लिखते हुए बड़ा ही डर लगता है, परंतु साहस करके क्षमा की प्रार्थना करती हूँ ! जिस दिन से वह कोमल सुंदर मूर्ति देखी है, उस दिन से प्रेमाग्नि कलेजे में दहक रही है । जी चाहता है कि प्यारे कहकर पुकारूँ परंतु—"

पद्मा०—(अत्यंत व्यग्रता से) ऐं ! संसार में सिवाय प्राणनाथ के कौन है कि जिसको मैं प्यारा कहूँ ? हाय काल ! तू जो चाहे कर, हाय ! मेरा तो कलेजा फटा जाता है ।

मंत्री—सावधान महाराणी सावधान! आप वीर स्त्री होकर ऐसी व्यग्र होती हैं ! जो सिर पर पड़ता है वह सहना ही होता है । संभव है कि एक दिन उस नरपिशाच का मुंड आपकी भेट करूँ । व्यग्र न होइए सुनिए ।

"मारे भय के नहीं कह सकती । ईश्वर वह दिन भी शीघ्र लावेगा कि जब मैं इस अमूल्य रत्न को अपने गले का हार बनाऊँगी । मुझको यह सुनकर कि श्रीमान् भी इस दासी को दासी बनाया चाहते हैं, अत्यंत आनंद हुआ, और मुझे साहस हुआ कि मैं अपना दुःख निवेदन करूँ । मैं केवल मात्र यही चाहती हूँ कि एकचित्त होकर श्रीचरण-सेवा करूँ ।

पद्मा०—कभी नहीं, कभी नहीं ।

मंत्री—आप न घबराएँ ।

"यह मंगल कार्य मंगलाचार के दिन होगा, आप उस दिन सब ठीक रखें। मैं भी एक राजकुल की कामिनी हूँ और आप भी महाराजाकुलचूड़ामणि हैं इससे हम लोगों के सम्मानार्थ ७०० कुल-कामिनियाँ मेरी अंतिम बिदाई के लिये वहाँ तक आवेंगी, उनको कोई न रोके। विशेष प्रेम।"

"प्रेम-भिखारिनी"

मंत्री—महाराणी इस पर हस्ताक्षर कीजिए।

पद्मा०—नहीं, मैं कभी नहीं लिखूँगी। तुम्हीं लिख दो।

मंत्री—जो आज्ञा। (लिखता है)

[पटाक्षेप

(इति चतुर्थांक)

पंचम अंक

प्रथम दृश्य

अलाउद्दीन का उपवेशनालय

[अलाउद्दीन बैठा है]

अला०—(आनंद से) आहा! आज बड़ी खुशी का दिन है! आज वह परी पैकर तशरीफ लावेंगी। मुझको जो अपनी खूबसूरती का घमंड था वह झूठा न था, क्योंकि पद्मावती ऐसी खूबसूरत औरत मुझ पर फिदा हुई है तो जरूर मैं बड़ा ही खूबसूरत हूँ। वाह! मैंने भी क्या ही उस्तादी का काम किया है कि चित्तौर भी लिया, उस कंबख्त काफिर को भी मारूँगा और एक परीपैकर बेगम भी मिली। (व्यग्रभाव से) मगर इतनी देर क्यों हुई? वक्त तो

हो गया, मेरा जी घबराता है। (कुछ सोचकर) वाकई मैं बड़ा अक्लमंद हूँ, मगर हाय! मेरे दिल को एक दम की भी तसकीन नहीं! जब मैं गरीबों को निहायत खुश देखता हूँ तो बड़ा ही दुःख होता है। कैसे गजब की बात है कि मैं इतना बड़ा बादशाह होकर गमगीन रहूँ और ये कंबख्त खुश। खैर, उस नाज़नी की शक्ल जब आँखों में घूम जाती है, तो मुझको होश नहीं रहता! उह! बड़ी देर लगाई।

[पद्मावती का प्रवेश]

अहा! जिसके लिये मैं घबरा रहा था वह आ गई! जैसे आस्मान से चाँद उतरा चला आता हो, वाह! कैसी खूबसूरत है। आओ प्यारी मेरे नजदीक आओ, बहुत दिनों पर ज्यारत नसीब हुई। जरा बगलगीर हो लें। (बढ़ता है)

पद्मा०—(पीछे हटकर) जरा आप ठहरें, इतनी जल्दी न करें, अब तो मैं आपकी हो ही चुकी। (स्वगत) हाय! (प्रगट) एक बेर मैं अपने पुराने पति से जन्म भर के लिये बिदा हो लूँ फिर तो जो आप कहेंगे करूँगी।

अला०—खैर क्या मुजायका, जाओ। (प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य

अलाउद्दीन के राजकारागार का बाहरी प्रांत

[महाराणा रतनसेन और महाराणी पद्मावती खड़े हैं]

रतन०—प्यारी! मैं सोता हूँ या जागता? क्या फिर तुम्हारे दर्शन हुए? नहीं, मुझे भ्रम हुआ है। मेरे भाग्य में उस पूर्णिमा के चंद्रमा की अमल अपूर्व सुधा-ज्योति कहाँ? निश्चय भ्रम ही है।

उह ! सिर घूमता है। (मूर्छित हो गिरा चाहता है और महाराणी पकड़ती हैं)

पद्मा०—प्राणेश ! यह क्या ? ऐसे क्यों हुए ? यह देखो तुम्हारी प्यारी पद्मावती तुम्हारे मधुर वाक्य सुनने की आशा में व्याकुल हो रही है ! ऐसी विपत्ति में बिना धैर्य्य के कैसे काम चलेगा ? प्राणप्यारे ! आँखें खोलो, एक बेर कृपा-कटाक्ष से इस दासी को आनंदित करो। (अत्यंत प्यार से मुँह चूमती है)

रतन०—(चैतन्य होकर) ऐं ! सुधा किसने बरसाई ! किसने नींद से जगाया ! क्या मेरी दशा देखकर सुर-बालाओं को दया आई है और वे मुझे कृतार्थ करने के लिये यहाँ पधारी हैं ? (एकाएकी महाराणी को देखकर) ऐं ! क्या मैं सचमुच प्राणेश्वरी की गोद में हूँ ? प्यारी प्यारी ! (अत्यंत प्रेम से दोनों मिलते और प्रेमाश्रु बहाते हैं)

रतन०—प्यारी ! मैंने सुना था कि तुम म्लेच्छाधम के साथ विवाह करने पर उद्यत हुई हो, क्या यह बात सच है ?

पद्मा०—इसकी बड़ी कहानी है, घर चलकर कहेंगे। आप अभी भागने के लिये प्रस्तुत रहें।

[अलाउद्दीन का अत्यंत क्रुद्ध भाव से प्रवेश]

अला०—(गर्जनपूर्वक) यह क्या ? इसके क्या मानी ? क्यों रे ?

रतन०—चुप रह, सूअर !

[पद्मावती ताली बजाती है। नेपथ्य में "धर्म्म की जय, महाराज रतनसेन की जय, चित्तौर की जय" कहते हुए कुछ सैनिकों का प्रवेश]

अला०—(दाँतों के नीचे उँगली दबाकर) यह दगाबाजी !!

पद्मा०—पाजी पिशाच ! यह दगाबाजी है पापी ? मित्र बनकर महाराज को बंदी कर लिया वह दगाबाजी न थी ? स्त्री पर

कुदृष्टि से देखना दगाबाजी न थी? बिना दोष हिंदुओं को दंड देना दगाबाजी न थी? अपने प्राणपति को बचाना दगाबाजी है? दुष्ट यह दगाबाजी! अपने शत्रु से बदला लेना दगाबाजी है? देख हम हिंदुओं की वीरता, धर्म्मभीरुता। अब इस समय अपने सहायक को बुला, अपनी रक्षा कर, हमको दंड दे, देखें तेरी बहादुरी! दुःख यही है कि तेरे हाथ में शस्त्र नहीं है, नहीं तो तुझसे इस पृथ्वी की रक्षा करती, तेरे पापों का फल तुझको देती। यदि तुझमें कुछ भी सामर्थ्य हो तो आ शस्त्र ले और मुझसे लड़। देख क्षत्राणियों का सतीत्व भंग करना कैसा होता है? प्यारी किस मुँह से कहना होता है? दुष्ट! मैंने इसमें कुछ भी अधर्म्म नहीं किया है; अपने प्राणपति को बचाने के लिये, स्वदेश-रक्षा के लिये और अपने सतीत्व की सहायता के निमित्त कुछ झूठ बोली हूँ, तिस पर भी उस पत्र पर मेरे हस्ताक्षर नहीं हैं। यदि मैं आज क्षत्राणी न होती, यदि मेरा यह धर्म्म न होता तो आज ही स्वदेश-रक्षा करती, तेरी दुष्टता का प्रतिफल देती, यदि तेरे हाथ में शस्त्र होता, अथवा मुझसे ही शस्त्र लेकर लड़ता तो मैं तेरा सिर काटकर अभी इसी दम सब बदला चुका लेती। (रतनसेन से) प्राणनाथ! चलिए, अब विलंब न कीजिए। (सैनिकों से) तुम लोग यहीं रहो, इसको कहीं मत जाने देना, यहीं पकड़ रखना, जब तक इसकी सेना न आ जाय और लड़ाई आरंभ न हो ले।

सैनिक——जो आज्ञा।

[महाराणा और महाराणी का विद्युत् की तरह चला जाना और अलाउद्दीन का एकटक उसी ओर देखते रहना]

अला०——ऐं! क्या यह मैंने ख्वाब देखा या सहाब? मेरी यह बेइज्जती? आह! जिंदगी भर में यह पहला मौका है। अफ-

सोस ! कुछ भी न कर सका। जिस वक्त उसका वह तेजी के साथ निकल जाना खयाल करता हूँ, छाती पर साँप लोट जाता है, आग बल उठती है, कलेजा टुकड़े टुकड़े हो जाता है, आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है और अपने तईं सम्हाल नहीं सकता। क्या हुआ कुछ परवाह नहीं। मैं इसका बदला लूँगा। तब मेरा नाम अलाउद्दीन जो मैंने उस कंबख्त का भोंटा पकड़कर न घसीटा।

सैनिक—दुष्ट चुप रह, जीभ पकड़कर खैंच लेंगे।

[सभों का महा कोलाहल करना और पटाक्षेप

[नेपथ्य में]

धर्म की जय, महाराज रतनसेन की जय।

(अल्लाहो अकबर इत्यादि का शब्द होना)

तृतीय दृश्य

अलाउद्दीन का उपवेशनालय

[अलाउद्दीन बैठा है]

अला०—खैर जो हुआ सो हुआ, अब इसका मैं ऐसा बदला लूँगा कि वे सब भी याद करेंगे। उस कंबख्त को एक अदने सिपाही से न खराब कराया तो मेरा नाम नहीं। कोई है सिपहसालार को बुलाओ।

ने०—जो हुक्म, बंदगानआली।

[सिपहसालार का प्रवेश]

अला०—उन कंबख्त काफिरों को गिरफ्तार करने के लिये फौज गई ?

सिप०—हुजूर ! उसी वक्त।

अला०—कुछ खबर आई ?

सिप०—हुजूर ! अभी तक तो कोई खबर नहीं मिली ।

अला०—आह ! उसने बड़ी भारी जक दी ।

सिप०—हुजूर ! कुछ परवाह नहीं, एक एक से बदला लूँगा। हुजूर का इकबाल ऐसा नहीं है कि कोई बचने पावे ।

अला०—खैर तुम तैयार हो, हम खुद जंग में लड़ने को चलेंगे।

सिप०—हुजूर के तकलीफ फरमाने की कोई जरूरत नहीं है, गुलाम जाता है इनशाअल्लाहतआला सुर्खरूई हासिल करके लौटूँगा।

अला०—नहीं, हम खुद चलेंगे। तुमको ज्याद: बोलने की कोई जरूरत नहीं है ।

सिप०—जो हुक्म ।

अला०—हाय ! मुझे धोखा दे गई ! मेरी इतनी होशियारी पर पानी फेर गई ! मेरा सिर आज तक किसी ने नीचा नहीं किया था सो इसने मेरी इतनी बेइज्जती की ! हाय अफसोस ! सद-अफसोस !

(क्रोध और दु:ख नाट्य करता है)

[पटाक्षेप

(इति पंचमांक)

षष्ठांक

प्रथम दृश्य

महाराणी पद्मावती का उपवेशनालय

[महाराणी और महाराणा बैठे हैं]

रतन०—प्यारी ! तुमने बड़ी चतुराई की । यदि तुम न बचाती तो हमारा प्राण जा चुका था ।

पद्मा०—प्राणनाथ ! हमने कुछ भी नहीं किया, केवल ईश्वर ने किया। परंतु प्यारे ! हमें उस दुष्ट को प्यारे लिखने में बड़ा दुःख हुआ, और वह दुःख जन्म भर न भूलूँगी !

रतन०—खैर जो हुआ सो हुआ, अब आगे की बात करनी चाहिए। जो बीती, सो बीती, देखो चित्तौर के बाहर लड़ाई हो रही है, हमारे मुख्य वीरगण उसी में लड़ रहे हैं, देखा चाहिए क्या होता है ?

पद्मा०—होना क्या है ? जय, परंतु अब चित्तौर बचता नहीं दीखता, क्योंकि वह दुष्ट बेतरह पीछे पड़ा है।

रतन०—इसका कुछ डर नहीं। हमारा धर्म रहेगा और वंश भी बना रहेगा तो फिर चित्तौर स्वतंत्र होगा, फिर धर्म की पताका फहरायगी, लड़कर मरने से हमें स्वर्ग होगा, संसार में कोई यह तो नहीं कहैगा कि रतनसेन कायर था, न लड़ सका। सब उसी नराधम को धिक्कारेंगे जो दो दो बार हारकर भी फिर निर्लज्ज होकर लड़ता है। देवी का जो आदेश हुआ है वह तो तुमने सुना ही। अब क्या कर्त्तव्य है ?

पद्मा०—करना यही है कि ग्यारह पुत्र और बारहवें आपकी बलि हो, एक पुत्र वंश के लिये बचाया जाय, और मैं बैठकर तमाशा देखूँ। (आँखों में आँसू भर आते हैं)

रतन०—प्यारी ! यह क्या, तुम राजपूत बाला होकर ऐसी घबराती हो ! ईश्वर ने हम लोगों का पाषाण हृदय बनाया है सभी कुछ सहेंगे। तुम लोगों के लिये पहले जहरव्रत* अवलंबन किया

---

* जब जय की कोई आशा नहीं रहती तब स्त्रियाँ संभ्रम-रक्षार्थ इस व्रत का अनुष्ठान किया करती हैं। नगर की सब स्त्रियाँ नहा धो पवित्र होकर इकट्ठी होती हैं। एक गुहा में आग लगाई जाती है और बाहर से लोहे का फाटक बंद कर दिया जाता है। एक क्षण में देखते देखते आँखों के

जायगा फिर हम लोग लड़ेंगे। यह कभी संभव नहीं है कि दुष्ट अपवित्र यवन लोग पवित्र राजपूत कुल-बालाओं की छाया भी स्पर्श कर सकें।

पद्मा०—(आनंद से) प्राणनाथ ! यही तो हमारी भी इच्छा थी परंतु आपकी आज्ञा बिना नहीं कह सकती थी, तो मैं इसकी आयोजना करूँ।

[एक सैनिक का प्रवेश]

सैनि०—(हाथ जोड़कर) महाराज की जय ! महाराणी की जय ! लड़ाई में हम लोगों की जीत हुई और मुसलमान लोग बड़ी भारी क्षति उठाकर भाग गए ! परंतु महाराज वीरसिंह प्रभृति सब बड़े बड़े योधा इस लड़ाई में मारे गए ! आधे के लगभग चित्तौर के वीर इस लड़ाई में काम आए। अब सुना है कि शीघ्र ही अलाउद्दीन फिर चित्तौर पर चढ़ाई करेगा।

रतन०—अच्छा कुछ हर्ज नहीं। प्यारी ! मैं सैन्य प्रस्तुत करने के लिये जाता हूँ, तुम जहरव्रत की तैयारी कर रखना।

पद्मा०—जो आज्ञा। (महाराणा और सैनिक का प्रस्थान)

[पटाक्षेप

———

सामने हजारों सुंदर तथा कोमल कुल-कामिनियाँ सतीत्व की रक्षा के निमित्त जल भुनकर राख हो जाती हैं ! धन्य राजपूत वीर धर्म्म धन्य ! उदयपुर राज्य-वंश में कई बार ऐसा हो चुका है।

द्वितीय दृश्य

गोरा का स्थान

[बादल और गोरा की स्त्री का प्रवेश]

स्त्री०—वत्स, लड़ाई में तुम्हारे पितृव्य ने कैसा काम किया ? हमने सुना है कि तुमने बड़ा ही पराक्रम किया।

बादल—माता ! हमारे पितृव्य ने यथेष्ट शत्रुओं से बदला लिया, हम केवल उनके अनुगामी थे, उनके हाथ से जो अधमरे छूट गए थे मैंने केवल उन्हीं को मारा, पराक्रम कुछ भी न था।

स्त्री०—बेटा ! तुम धन्य हो, इस समय सारा चित्तौर एक मुँह होकर तुम्हारी प्रशंसा कर रहा है। बारह बरस की अवस्था में तुमने आश्चर्य पराक्रम किया। परंतु हमें सच सच बतलाओ कि प्राणपति ने क्या किया ?

बादल—माता ! हमने कुछ नहीं किया, जो कुछ किया हमारे पितृव्य ने किया।

स्त्री०—अच्छा तो बेटा ! हमें आनंदपूर्वक बिदा करो, हमारे प्रभु देर होने से क्रुद्ध होते होंगे।

बादल—हमें छोड़कर कहाँ जाती हो, माँ ?

स्त्री०—बेटा ! राजपूत होकर ऐसे अधीर होते हो ? छिः अब हमें बिदा करो। (बादल चुपचाप खड़ा रहता है, गोरा की स्त्री चिता पर बैठती है। नेपथ्य में महाप्रकाश होता है।)

[पटाक्षेप

———

तृतीय दृश्य

महाराणा रतनसेन की राजसभा

[राजपूत लोग बैठे हैं और महाराणा सिंहासन पर विराजमान हैं]

रतन०—वीरगण ! चित्तौर की जो दशा है वह आप लोगों के सामने है, अब क्या कर्तव्य है ?

१ राजपूत—लड़ाई। हम लोगों के जीते किसकी सामर्थ्य है जो चित्तौर को छू सके ?

२ राज०—हमारी तलवार की चोट को कौन सहन कर सकता है ?

३ राज०—महाराज ! किस नराधम की सामर्थ्य है जो हमारे पैर को भी हिला सके ?

रतन०—भ्रातृगण, इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि हमारे वीर राजपूतों के जीवन समय तक कोई इस पवित्र भूमि की ओर देखने का साहस नहीं कर सकता, परंतु आप लोग जानते हैं कि उन लोगों की सैन्य-संख्या बहुत है और हम लोग अब थोड़े रह गए हैं। इसका हमको कुछ भी डर नहीं है, पर स्त्रियों की मानरक्षा के लिये "जहरव्रत" करना चाहिए।

सब राज०—अवश्य, अवश्य, अवश्य।

रतन०—वीरगण ! हम लोगों के लिये आज बड़े ही आनंद का दिन है ! अपने देश की रक्षा के निमित्त आज हम लोग अपना प्राण देंगे, आज हम लोग अपने धर्म्म के लिये शत्रु से लड़ेंगे, आज हम लोग धर्म्म, देश, धन, नारी और मान का शत्रुओं से बदला चुकावेंगे। मुसलमान, दुष्ट मुसलमान, जिन्होंने हमारे धर्म्म का नाश किया, जिन्होंने हमारे मान का नाश किया, जो हमारी जन्मभूमि के विरोधी हैं, जो कुलस्त्रियों का सतीत्व भंग करते हैं, जो नारियों पर अत्याचार करते हैं, जो हम लोगों की पूज्यपादा जननी गौ की हिंसा

करते हैं जिनका मुँह देखने से पाप लगता है, उन्हीं मुसलमानों के संहार का आज दिन है, उन्हीं से बदला चुकाने का शुभ मुहूर्त्त है, भ्रातृगण ! उठो देखें किस शस्त्र से वे राजपूतों को हराते हैं ? देखें किस मुँह से राजपूतों के साथ बोलते हैं ? हम लोगों के इन्हीं पैरों के—इन्हीं पवित्र पैरों के नीचे महाअपवित्र सहस्रों यवनों के सिर लुड़केंगे ! वीरगण ! आज तुम लोगों को बदला चुकाने का बहुत अच्छा अवसर मिला है, ये वे ही दुष्ट हैं जिन्होंने हमें धोखा देकर बंदी किया था, ये वेही दुष्ट हैं जो तुम लोगों की ममतामयी महारागी का सतीत्व भंग किया चाहते थे, ये वेही नराधम हैं जो तुम लोगों को दो बेर पीठ दिखा चुके हैं, देखो यह हाथ खाली न जाय, आज इस सूर्य्यवंश की नामधराई न हो, देखो सावधान ! सूर्य्यवंश, राजपूत कुल और मेवार की प्रतिष्ठा तुम लोगों के हाथ है, सिर नीचे न कराना पड़े। वीरगण ! तुम्हें सब दशा में स्वर्ग है, परंतु स्वदेश-रक्षा के लिये हम स्वर्ग को भी तुच्छ समझते हैं, हम नरक का रहना अच्छा समझते हैं, जो स्वदेशहित साधन कर सकें।

चलहु बीर उठि तुरत सबै जय ध्वजहिं उड़ाओ।
लेहु म्यान सों खड़ग खींचि रणरंग जमाओ॥
परिकरि कसि करि उठो धनुष पै धरि शर साधौ।
केसरिया बानो सजि सजि रणकंकन बाँधौ॥
जौ आरजगण एक होइ निज रूप सँभारें।
तजि गृह-कलहिं आपनी कुल मर्य्याद बिचारें॥
तौ ये कितने नीच कहा इनको बल भारी।
सिंह जगे कहुँ स्वान ठैरिहै समर मझारी॥
पदतल इन कहँ दलहु कीट तृण सरिस यवन चय।
तनिकहुँ संक न करहु धर्म जित जय तित निश्चय॥

आर्य्य बंस को बधन पुण्य जो अधम धर्म मैं।
गोभच्छण द्विज श्रुति हिंसन नित जासु कर्म मैं॥
तिनकौं तुरतहिं हतौ मिलें रण कै घर माँहीं।
इन दुष्टन सों पाप किए हूँ पुण्य सदाही॥
चिउटिहुँ पदतल दबे डसत है तुच्छ जंतु इक।
ये प्रतच्छ अरि इनहिं उपैछै जौन ताहि धिक॥
धिक तिन कहँ जे आर्य्य होइ यवनन कहँ चाहैं।
धिक तिन कहँ जो इनसौं कछु संबंध निबाहैं॥
उठहु बीर तलवार खैंचि मारहु घन संगर।
लोह लेखनी लिखहु आर्यबल यवन हृदय पर॥
मारू बाजे बजैं कहीं धौंसा घहराहीं।
उड़हिं पताका शत्रुहृदय लखि लखि थहराहीं॥
चारण बोलैं आर्य्य सुयश बंदी गुण गावैं।
छुटहिं तोप घनघोर सबै बंदूक चलावैं॥
चमकहिं असि भाले दमकहिं ठनकहिं तन बकतर।
हिंहसहिं हय झनकहिं रथ गज चिक्करहिं समर थर॥
छिन मँह नासैं आर्य नीच यवनन कह करि छय।
कहहु सबै भारत जय भारत जय भारत जय॥

दोहा

उठहु उठहु सब बीरगण साजहु सब रण साज।
लोहै कौ अभरण सजहु रण में करहु समाज॥
यवन गणन के रक्त की प्यासी है तलवार।
आज बुझावहु प्यास वह करि मलेच्छ कुल छार॥
जिन तोरी मूरति बहुत हिंदुन करत अधर्म।
नासत हैं गइयान कौं करत सदैव कुकर्म॥

कुल नारिन को करत जो महा पतिव्रत भंग।
बल प्रकाश करि दुष्टगण करत कुमारी संग॥
तिनही के विध्वंस को मंगल दिन है आज।
जासों प्रमुदित देखियत सबही आर्य समाज॥
तनिक विलंबहु होइ नहिं चलहु सबै सानंद।
जीति लराई फिरहिंगे जीय बढ़ाइ अनंद॥
केसरिया बानौ सजहु वेगि होहु तैयार।
चलहु लरहु अरु जय करहु सब मिलि समर मझार॥
सूर्यवंश को मान अब तुम्हरे ही है हाथ।
ऐसो करहु उपाय अब नीचौ होइ न माथ॥
खोलि शस्त्र धाश्रो सबै जिय बढ़ाइ अति चाह।
लरहु मलेच्छन सों सबै छोड़ि फूट अरु डाह॥
बजहिं धर्म डंका गहकि फहरहिं धर्म्म निसान।
बोलहिं सब मिलि धर्म जय बढ़ै धर्म को मान॥

(महाराणा और सब वीरगण शस्त्र खींचकर और उत्तेजित होकर)

धर्म की जय! भारत की जय! चित्तौर की जय! महाराणा रत्नसेन की जय! महारानी पद्मावती की जय! सूर्य्यवंश की जय! क्षत्रियवंश की जय! महाराज! जब तक चित्तौर में एक मनुष्य भी जीवित रहेगा तब तक किसी की सामर्थ्य नहीं है जो यहाँ प्रवेश कर सके।

(सभों का वीर वेश में धर्म की जय इत्यादि कहते हुए घूमना)

[पटाक्षेप

———

चतुर्थ दृश्य

स्थान—पहाड़ की गुहा का बाहरी प्रांत

गुहा में अग्नि जलती है, वीर वेष में महाराणा रतनसेन और राजपूत लोग केसरिया बाना पहिरे निस्तब्ध खड़े हुए गुहा की ओर एकटक देखते हैं। सबके आगे महाराणी पद्मावती और पीछे पीछे राजपूत बालागण का प्रेमभरी चितवन से राजपूतों को देखते हुए प्रवेश]

पद्मा०—भगिनीगन! सानंद आज उत्साह मनाओ।
आर्य्यधर्म की ध्वजा भेदि नभ मैं फहराओ॥
कहो कहाँ यह समय कहाँ यह अवसर शुभतम।
परम धन्य सब भईं आजु लहि समयो यह हम।
नासमान यह देह न जाने कितीक जनमीं।
खाइ पीई अरु बिहरि जगत मैं कितीक भरमीं॥
पै ऐसो शुभ समय कहो कब किन जो पायो।
जनमभूमि अरु सतीधर्म हित प्रान गँवायो॥
जदपि बहुत जग धर्म निगम आगम ने गायो।
पै नारिहि पतिधर्म कोउ समता नहीं पायो॥
यद्यपि जग में बहुत भाँति संपत्ति बड़ाई।
पै सतीत्व धन सरिस बड़ाई कोउ न पाई॥
सो धन सोई धर्म प्राण हूँ सो प्रिय जो है।
चढ़ी म्लेच्छ की सैन आज सोइ नासन को है॥
ताहि बचावन हेतु आज यह शुभ व्रत मान्यौ।
मिल्यो सुअवसर आज भाग्य धन अपनो मान्यौ॥
आवहिं सुख सो दुष्ट करैं जोई मन भावै।
आर्य्य रमणि गण के छाया हूँ को नहिं पावै॥
सोइ नारी कुलवंति सोइ धार्मिक धन सोई।

सोइ जगत में सुखी नारिकुलतिलक जो होई ॥
जाके तन मन प्रान देश के कामहिं आवै ।
जो पतिव्रत रच्छन के हित नित देह गवाँवै ॥
अहो भगिनि तुम धन्य लह्यो अनयास जु यह सुख।
भारत-रमनि-समाज ! आज उज्ज्वल कीनों मुख ॥
धिक तिनको जे प्रान मोह सो मुख को मोरैं ।
धिक धिक तिनके प्रान जौन यह शुभ व्रत तोरैं॥
परम भाग्य निज मानि परम आनंद मनाओ ।
सती धर्म्म की मेंड़ थापि जग में जस पाओ ॥
आओ आओ बढ़ौ अग्निमंडल में जावैं ।
यह पवित्र तन धूम्र चहूँ दिसि नभ में छावैं ॥
चलौ चलौ सब बेगि पहुँच सुरपुर मैं जावैं ।
प्राणनाथ हित तहाँ बेगि सब साज बनावैं ॥
आवैंगे पिय आज तहाँ हम आगे सों बढ़ि ।
भेटि अंक भरि लेहिं कसक सब जाइ हिए कढ़ि।।
बड़ भागिन पिय संग विहरिहैं जग दुख खोई ।
परम कांत एकांत रहस सुख अंत न होई ॥
चलो चलो अब तुरत बिलम को काम नेकु नहिं ।
सतीधर्म जय आर्य धर्म जय भारत जय कहि ॥

[आगे आगे महारानी पद्मावती और पीछे पीछे सब स्त्रियों का अग्निमय गुफा में प्रवेश]

(नेपथ्य में परम प्रकाश। आकाश में तीन अप्सराएँ एक हाथ में फूलों की डाली और दूसरे में फूलों की माला लिए दिखलाई पड़ती हैं)

अप्सरागण—आओ आओ पद्मावति महरानी !
यह जयमाल कंठ पहिरावें धन्य भाग्य निज मानी ॥

(३) धर्मालाप

यह वार्त्तालाप संवत् १९४२ में लिखा गया था और पहले पहल धर्मामृत पत्र में छपा था। पीछे से यह पुस्तकाकार छपा। इसमें ग्रंथकार ने भिन्न भिन्न मतों के अनुयायियों का परस्पर वार्तालाप कराया है।

संपादक

समर्पण

जो सब मतों का जीवन, प्रेमियों का प्राण,
भक्तों का प्रभु, ग्रंथकर्त्ता का सर्वस्व है
उसी के चरणकमलों में भक्ति-
प्रेम-श्रद्धा-पूर्वक सानंद
समर्पित।

श्रीबसंतपंचमी
१९४२

श्रीराधाकृष्णदास

धर्मालाप

(वृद्ध सनातन धर्म बीच में बैठा है और बहुत से लड़के चारों ओर घेरे बैठे हैं।)

सनातन धर्म—प्यारे संतानगण, देखो तुम लोगों के रहते भी हमारी कैसी दुर्दशा हो रही है! क्या तुम लोग अपने वृद्ध पिता के उद्धार का कोई उपाय न करोगे?

सब०—क्यों नहीं—क्यों नहीं—हम सब यथाशक्य उपाय कर ही रहे हैं पर ईश्वरेच्छा बलीयसी।

सनातन धर्म—प्यारो, ईश्वर का दोष कदापि मत दो, सब हमारे भाग्य का दोष है। भला तुम लोग अपना अपना उपाय तो बतलाओ कि क्या करते हो?

पंडित लोग—महाराज, हम लोग सबसे उत्तम उपाय करते हैं, पर क्या करें कुटिल काल के आगे कोई वश नहीं चलता—हम लोगों ने लोगों के सुबीते के लिये अपने शास्त्रों को कामधेनु बनाया, जिसमें किसी को कष्ट न हो, जिसको जैसी आवश्यकता हो वैसी ही आज्ञा मिल जाय, जिसमें बहकने न पावे, और सच पूछिए तो वही हमारे काम आ रहा है, नहीं तो काहे को लोग व्यवस्था के लिये हमारे पास आते। हमारी तो कोई बात भी न पूछता, भूखे ही मरना पड़ता। ब्राह्मणों की महिमा गाई जिसमें लोग उन पर श्रद्धा करें और धर्म की ओर रुचि हो, पाँच पैसे में गऊदान कराया, जिसमें सब कोई कर सकै इत्यादि इत्यादि कहाँ तक गिनावैं जितने उपकार हम लोगों के धर्म पर हैं उतने किसी के नहीं। देखिए,

अब तक बराबर सभाओं में जाकर एक दूसरे का सिर इसी लिये फोड़ते हैं जिसमें धर्म की उन्नति हो। पर अब काल के प्रभाव से सब उलटा ही हो गया, अब लोग हमारा ही दोष देते हैं। पर महाराज जो हम लोगों ने इतनी गुंजाइश न रखी होती तो आज एक हिंदू भी न दिखलाई पड़ता।

वैरागी वा वेदांती—आहा! हम लोगों ने तो संसार को तार ही दिया। सबको मिथ्या जाल से छुड़ा दिया। अगर हम न होते तो कोई ब्रह्म को न पहिचानकर संसार के बखेड़ों ही में पड़ा सड़ा करता।

"रचि के मत वेदांत को हिंदुन ब्रह्म बनाय।
सबको पुरुषोत्तम किए तोरि हाथ अरु पाय" ॥

ब्राह्मण देवता—अपने तो जिजमान की बढ़ती मनावा करीथै और धर्म की जयजयकार—साल भर में कुछ नाहीं तो सौ पचास गऊदान तो ब्राह्मण के वचन और विष्णु के प्रसाद से करावत होइबै— करिया अच्छर भैंस समान 'जो पढ़तव्यम् सो मरतव्यम् दाँत खटाखट किं करतव्यम्' और का नहीं तो।

शैव—हम जितना काम करते हैं उतना क्या कोई करैगा। सवेरे से उठकर स्नान ध्यान संध्या पूजा पाठ यात्रा, और शिवजी को जल चढ़ाने ही में तीसरा प्रहर करते हैं और संझा को बूटी रगड़ भोलानाथ को चढ़ा प्रसादी लेने ही में सबेरे की खबर लेते हैं। निदान रात दिन धर्म ही के अर्पण करते हैं। धर्म के लिये वैष्णवों को लाखों गालियाँ देते हैं और अगर बखत पड़ा तो आपुसै में सिर कटाने को भी तयार।

शाक्त—हमें तो चंडीपाठ और तंत्रों ही से छुट्टी नहीं मिलती करैं सो क्या करैं। और फिर हम न होते तो भगवती चामुंडा की जीभ लाल कैसे होती।

कौल—हम तो भाई धर्म के लिये और भ्रातृभाव बढ़ाने के लिये * * खाने तक को तैयार हैं इससे बढ़कर और क्या कर सकते हैं ?

वैष्णव—हम तो अपने धर्म में ऐसी रुचि रखते हैं जैसी कोई नहीं रखता। गुरु की सेवा अपने चित्त से करते हैं। जो गुरु सोई गोविंद, 'तन, मन, धन, श्रीकृष्णार्पण'।

सनातन धर्म—बस बस बहुत हुआ। हमें इतना समय नहीं है कि सब मत वालों की बात सुनें।

'भए सब मत वारे मतवारे।
अपुनो अपुनो मत लै लै सब झगरत ज्यों भटियारे॥
कोउ कछु कहत ताहि कोउ दूजो खंडत निज हठ धारे।
कह झगड़े ही मैं तेइ मान्यौ पागल भए विचारे॥
आपुस में पहले सब मिलि निश्चै करि होइ न न्यारे।
हरीचंद आओ तौ भाखैं जामैं मिलैं पियारे॥'

अब जरा बाबू साहब, साव जी, लाला साहब, इत्यादि का हाल सुनना चाहते हैं क्योंकि संसार का काम इन्हीं लोगों से चलता है और ये लोग चाहें तो बात करते करते हमारा उद्धार हो सकता है। (मारवाड़ी की तरफ देखकर) सेठजी! आप कहिए क्या करते हैं ?

मारवाड़ी—म्हाँ तो महाराज, पुरोहित जी की आज्ञा बिना कोई काम करैं नहीं। घर बार लड़का, जोरू धरम सरम सबका हाल पुरोहित जी जान छे। उनसे पूछो।

साव जी—हमरे तो पुरखा लोग जो कुछ थोड़ा बहुत छोड़ गए हैं ओही से गुंजारा चलथै। नित्त सबेरे गंगाजी नहाय आइथै और अपना एक पइसा घाटिया के दे दिहा। एकादसी एकादसी एक ठे

बाँभन जेवाय दिहा। अपन तो बाबा पुन्न धरम का बड़ा खयाल रक्खीथै। बाकी अब के लड़कन के देख के तो अकिलै काम नाहीं करती—

'लोग क्रिस्तान भए जाथैं बनथैं साहेब।
कैसा अब पुन्न धरम गंगा नहाना कैसा॥'

बाबू साहब —

'सिजदे से गर बिहिश्त मिलै दूर कीजिए।
दोजख ही सही सिर का हिलाना नहीं अच्छा॥
धोती भी पहिने जब कि कोई गैर पिन्हा दे।
उमूरा को हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा॥'

लाला साहब—कलमदान कसम, हम तो खुदा का नाम लिए बिना कोई काम करते ही नहीं। बंद: तो तसबीह हाथ से छोड़ता ही नहीं।

सनातन धर्म—शाबाश। क्यों न हो।

पंचपिरिए—हमरे तो गाजी मियाँ बाबा सहाय हैं। अहा! शहीद बाबा की लीला भी अपरंपार है। हम तो साल में तीन पियाला देइथै। धन है नोनिया चमाइन के, उनकी कला भी परतच्छै है—हे गहरू दादा, सब तोहरै पुन्न परताप।

सनातन धर्म—बहुत हुआ। कान भर गए, कलेजा कबाब हो चुका, अब रहने दीजिए—भला ये नई रोशनी के लोग जिनसे कि बहुत कुछ आशा की जाती है क्या करते हैं?

दयानंदी—महाराज मैं क्या करूँ, इन सब मूर्ख लोगों और पोप लोगों के मारे कुछ नहीं होने पाता। यदि जैसा स्वामीजी कहते थे वैसा सब करने लगते तो हिंदू देवता हो जाते। क्या आवश्यकता है पत्थर की मूर्ति की? क्या आवश्यकता है कंठी माला की? 'कंठी बाँधे हरि मिलैं तो बंदा बाँधे कुंदा'।

ब्राह्मो—हमारा कहना लोग मानता और हमारे माफिक चलता तो अलबत हम ब्रादरहुड फैला देता। डोम चमार को भट्टाचार्ज महाशय का साथ खिलाता, और ब्राह्मण का विधवा हलालखोर का साथ विवाहता। लोग मूर्ख—कुछ सुनतइ नेई।

थियोसोफिस्ट—हमको तो ये मूर्ख लोग कूएँ में गिरा बतलाते हैं। जो हमारा कहना मानते तो बात की बात में कर्नल साहब और मैडम साहिबा की कृपा से डाढ़ी जटा बढ़ाकर संसार योगी हो जाता। धन्य प्रभु कुट्टमी लाल सिंह!

न्यूफेशनिये—आ यू ओल्ड फूल्स!!

'या संसार असार में चार वस्तु है सार।
जूआ मदिरा मांस अरु नारी संग बिहार॥'

नेटिव क्रिश्चियन—जिस दिन हजरत ईसा पर लोग ईमान लावैगा उस दिन दुनिया का सच्चा तरक्की होगा और आपका बी उद्धार हो जायगा—और ईठी सब बखेड़ा छूट जायगा।

नेचरिए या नास्तिक—जब तक लोग अंधेरे कूएँ में पड़े ईश्वर को खोजा करेंगे कभी उनका उद्धार न होगा—जिस दिन व्यर्थ ईश्वर का भ्रम छोड़कर लोग नेचर का प्रभाव जानेंगे उसी दिन कंट्री रिफार्म्ड हो जायगी।

सनातन धर्म—चुप रहो अब कान मत फोड़ो, भाग्य में जो कुछ था सो सब सुन चुके, अब केवल मरना बाकी है।

प्रेमी भक्त—महाराज कुछ थोड़ी सी मेरी भी बिनती है यदि आज्ञा हो तो सुनाऊँ?

सनातन धर्म—कहो।

प्रेमी भक्त—महाराज, इन सभों ने तो अपना अपना धर्म कहा पर मुझे बड़ा शोच है कि मेरी क्या दशा होगी?

'न हिंदुअम् न मुसल्माँ न काफिरम् न यहूद ।
ब हैरतम् कि सरंजामें मा चि ख्वाहद बूद ॥'

हमको तो यह सब बखेड़ा ही सा प्रतीत हुआ। हमारी समझ में तो—

'जाति पाँति पूछै नहिं कोई।
हरि को भजै सो हरिका होई ॥'

व्यर्थ सब सिर फोड़ते हैं।

'नाहिं इन झगरन मैं कछु सार।
क्यों लरि लरि कै मरो बावरे बादन फोरि कपार ॥
कोइ पायो कै तुम ही पैहौ सो भाखौ निरधार।
हरीचंद इन सब झगरन सो बाहर है वह यार ॥'

इसमें तो विचार करके देखै और शांत भाव से अनुभव करै तब कुछ ठिकाना लगै।

'लगाओ चसमा सबै सपेद।
तब सब ज्यों को त्यों सूझैगो जैसो जाको भेद ॥
हरो लाल पीरो अरु लीलो जो जो रंग लगायो।
सोइ सोइ रंग सबै कछु सूझत यासों तत्त्व न पायो ॥
आग्रह छोड़ि सबै मिलि खोजहु तब वह रूप लखैहै।
हरीचंद जो भेद भूलिहै सोई हरि को पैहै ॥'

कहाँ तक कहूँ—असिल बात तो यह है कि चुप होकर अनुभव करे और चूँ भी न करे—

'पियारे तुव गति अगम अपार।
या मैं खोलै जीह जौन सो मूरख कूर गँवार ॥
तेरे हित बकनो बिन बातहि ठानि अनेकन रार।
या सों बढ़िकै और जगत नहिं मूरखता व्यवहार ॥

कहाँ मन, बुद्धि, वेद अरु जिह्वा, कहाँ महिमा विस्तार।
हरीचंद बिन मौन भए नहिं और उपाय बिचार॥'

प्यारे भाइयो, इन सब बखेड़ों को छोड़ो, जरा शांत भाव धारण करो, भगवान् के श्रीचरणों में चित्त लगाओ, देखो सब मंगल ही होगा।

'तृण गत जल कन सों चपल जीवन छिन विश्वास।
परम धर्म हरि पद भजन तजहु न एकहु साँस॥
ऊँचे भुज करि टेरि कै कहत पुकारि पुकारि।
विनु हरि काम न आइहैं कछू धर्म धन नारि॥'

सनातन धर्म—साधु साधु सच है 'बिनु हरि काम न आइहैं कछू धर्म धन नारि' प्यारे बालको! देखो इन बातों पर ध्यान दो, इस स्वर्ग का सुखानुभव करो, देखो सारा संसार मंगलमय हो जायगा। जब तक नखचंद्रछटा का आश्रय न लोगे तब तक कदापि इस अँधेरी कोठरी से न निकल सकोगे। सावधान! सावधान! भूलना मत, इन बातों को अपने हृदय-पट में वज्रलेखनी से लिख रखो और अपने मंगल के साथ इस किनारे के रूख अपने वृद्ध पिता का भी मंगल साधन करो।

(सब एक साथ कोलाहल करते हैं और आपस में लड़ते हैं)

सनातन धर्म—हाय! मेरे इतने बकने का कुछ भी फल न हुआ! न जाने ईश्वर क्यों हमसे इतना रूठा है। हाय! जिसको एक लड़का नहीं होता सो लड़के के लिये तरसता है पर मेरे इतने लड़के होने पर यह दुर्दशा!!!

'कोऊ नहिं पकरत मेरो हाथ।
बीस कोटि सुत होत फिरत मैं हाहा! होइ अनाथ॥
जाकी सरन गहत सोइ मारत सुनत न कोउ दुख गाथ।
दीन बन्यो इत तें उत डोलत टकरावत निज माथ॥

दिन दिन विपति बढ़त सुख छीजत देत कोऊ नहिं साथ।
सब विधि दुखसागर मैं डूबत आइ उबारौ नाथ ॥'

(मूर्छित होना चाहता है)

(एक साथ परम प्रकाश के साथ साहस और आशा का प्रवेश)

साहस—हैं! हैं! यह क्या? हमारे बाल्य सखा सनातन धर्म हमें बिल्कुल भूल ही गए? ऐं हमारे रहते भी क्या हमारे परम सहायक की यह दशा हो सकती है? मित्र! हमारे जीते ही तुम इतने घबड़ाए जाते हो। उठो एक बेर उद्योग करो "हारिए न हिम्मत बिसारिए न हरि नाम, जाही बिधि राखै राम ताही बिधि रहिए।"

आशा—हमारे रहते किसी ने भी प्राण दिए हैं कि यही देगा। देखो मैं अपनी उसी मोहनी शक्ति से जिससे सारे संसार को मोहती हूँ और जिस बड़े खंभे पर सारा संसार खड़ा है इसको जगाती हूँ (सनातन धर्म के मुँह पर हाथ फेरकर) प्यारे सनातन धर्म भला तुम इतने बड़े बुद्धिमान् और धैर्यवान् होकर ऐसा बच्चों की नाईं घबड़ा गए! छिः! तुम्हारा अभी बिगड़ा क्या है! तुम्हारे इतनी संतानें हैं इन्हें सचेत करो, आज दिन भी कोई तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता। उठो।

सनातन धर्म—(सचेत होकर) हाय! सुख से मरने भी नहीं पाते। न जाने हमारी क्या दुर्दशा होनेवाली है। हे दयासिंधु यदि इस अमोघ दयासागर में से एक बिंदु भी मुझ पर छिड़क दो तो मेरा कल्याण हो जाय और तुम्हारा कुछ भी न बिगड़े। (मेघों की ओर देखकर)।

'पर कारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधिनीर सुधा के समान करौ सबही बिधि सुंदरता सरसौ ॥

घन आनँद जीवन दायक है कबौं मेरियै पीर हिए परसो।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मो अँसुवान को लै बरसो ॥'

(आकाश में फूल बरसाती तीन अप्सरा गान
करती दिखलाई पड़ती हैं।)

सबै मिलि जै जैकार मचाओ।
जयति सनातन धर्म जयति जय प्रेम बधाई गाओ ॥
प्रेम, भक्ति ज्ञानामृत ले ले पीओ और पिलाओ।
दास क्षमा आनँद रस माते सब जग को ललचाओ ॥

[पटाक्षेप

(४) महाराणा प्रतापसिंह

महाराणा प्रतापसिंह संवत् १९५४ में समाप्त हुआ। इसमें उदयपुर के महाराणा प्रतापसिंह की वीरता और धीरता तथा बादशाह अकबर की कुटिल राजनीति का वर्णन किया गया है। इस नाटक का बहुत आदर हुआ है और यह कई बेर किंचित् परिवर्तन के साथ खेला भी जा चुका है।

संपादक

निवेदन

पूज्यपाद भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र जी ने एक याददाश्त पर लिखा था कि "किसी नाटक में (प्रतापसिंह के) अकबर की पालिसी स्पष्ट करके दिखाना"। उसे देखकर मैंने इस नाटक को लिखना आरंभ किया और जगदीश्वर की कृपा से आज पूरा करके आप लोगों की भेंट करता हूँ।

यद्यपि वीरवर महाराणा प्रतापसिंह तथा राजनीतिविशारद अकबर का चरित्र जैसा अंकित करना चाहिए वैसा करने की तो मुझे सामर्थ्य नहीं है, तथापि यदि मेरे इस नाटक से उक्त भारतमुखोज्ज्वलकारी प्रातःस्मरणीय महानुभाव के वीरचरित्र का प्रचार इस आत्मविस्मृत देश में कुछ भी हो, तथा सहृदय पाठकों का कुछ भी मनोरंजन हो सके, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

इस नाटक को पहले मित्रवर बाबू जगन्नाथदास बी० ए० (रत्नाकर) ने अपने "साहित्यसुधानिधि" मासिक पत्र में छापना आरंभ किया था तथा इसके संशोधन आदि में बहुत कुछ सहायता दी थी परंतु हिंदी रसिकों के अभाव से उक्त मासिक पत्र बहुत शीघ्र बंद हो गया और ग्रंथ अधूरा ही रह गया। परंतु फिर पंडित जगन्नाथ मेहता और बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए० के उत्साह से यह पूरा हुआ और मुझे आप सज्जनों की भेंट करने का अवसर प्राप्त हुआ। अतएव मैं अपने इन मित्रों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

उदयपुर-निवासी मित्रवर कुँवर योधसिंह मेहता ने मुझे बहुत सी ऐतिहासिक घटनाओं तथा कविताओं के संग्रह में सहायता

दी और उत्साहित किया इसलिये मैं उन्हें भी धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता।

इस ग्रंथ के लिखने में मुझे टाड साहब के "राजस्थान," पूज्य भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्रजी के "उदयपुरोदय," कुँवर योधसिंह मेहता के "मेवाड़ का संक्षिप्त इतिहास," मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ जोधपुर के "महाराजा प्रतापसिंह का जीवन-चरित्र" तथा कवि गणपतिराम राजाराम के गुजराती "प्रताप नाटक" से बहुत कुछ सहायता मिली है, इसलिये मैं हृदय से इन ग्रंथकारों को धन्यवाद देता हूँ।

मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं भारतवर्ष के गौरव-स्वरूप प्रसिद्ध व्यक्तियों के चरित्र, किसी को नाटक, किसी को उपन्यास और किसी को इतिहास स्वरूप में यथावकाश अपने पाठकों की भेंट करूँ, परंतु यह इच्छा पूरी करना उन्हीं सहृदय पाठकों के हाथ है। यदि आप लोगों से यथोचित उत्साह मिलेगा और मुझे यह निश्चय होगा कि मेरा लेख आपको रुचिकर हुआ, तो मैं शीघ्र ही फिर आपकी सेवा में, परम प्रसिद्ध भगवद्भक्तिपरायणा मीराबाई का नाटक तथा जीवन-चरित्र (जिसे मैंने बहुत परिश्रम और खोज से संग्रह किया है) लेकर फिर उपस्थित होऊँगा।

अंत में मेरी प्रार्थना है कि विज्ञ महाशयों की दृष्टि में जो त्रुटि इस नाटक में दिखाई दे कृपा कर उससे वे मुझे मित्रभाव से अवश्य सूचित करें जिसमें यदि उचित हो तो दूसरे संस्करण में धन्यवादपूर्वक वे त्रुटियाँ दूर कर दी जायँ।

काशी चौखंभा
श्रीगिरिधर-जन्मोत्सव
संवत् १६५४ मि० पौषकृष्ण
ता० १२ दिसंबर सन् १८६७ ई०

हिंदी रसिकों का सेवक
श्रीराधाकृष्णदास

भूमिका

महाराणा उदयसिंह संवत् १५९७ (१५३९–४० ई०) में चित्तौर (मेवाड़) की राजगद्दी पर बैठे, अकबर ने बड़ी धूम-धाम से धावा किया परंतु वह हार खाकर लौट आया। कुछ दिनों पीछे मेवाड़ में आपस की फूट देखकर अकबर को अवसर मिला और चित्तौर पर फिर उसने धावा किया। उदयसिंह अपनी जान लेकर भागे परंतु राजपूत सरदारों ने अपना प्राण रहते चित्तौर शत्रुओं को न दिया। घोर युद्ध हुआ, जयमल और पुत्ता ने बड़ी वीरता से लड़ाई की। अंत में मेवाड़ की राजलक्ष्मी भाग्यवान् अकबर के हाथ आई। इस लड़ाई में तीस हजार राजपूत वीर काम आए और बहुत सी स्त्रियाँ भी लड़कर मर गईं। शेष जो रह गई थीं उन्होंने "जहरव्रत" किया अर्थात् जलकर अपनी पवित्रता को बचाया। अकबर ने चित्तौर दखल किया। इसका पूरा वृत्तांत फिर कभी निवेदन करेंगे।

उदयसिंह भागकर पिपली राज्य के जंगलों में गोहिल जाति की सहायता से रहने लगे। वहाँ से वे अरावली की घाटी में आए, जहाँ बाप्पा रावल भी रहे थे। उन्होंने पहले उस स्थान पर अपने राजत्वकाल में एक झील बनवाई थी जिसका नाम उदयसागर है। अब एक छोटा सा महल बनवाया और फिर तो उसके आसपास और भी इमारतें बन गई और वह एक छोटा सा नगर हो गया। उसका नाम उदयपुर रखा जो कि अब तक मेवाड़ राजवंश की राजधानी है।

चित्तौर जाने के चार वर्ष पीछे ४२ वर्ष की अवस्था में उदयसिंह ने संसार छोड़ा। उन्हें पचीस बेटे थे। मरते समय उदयसिंह ने

छोटे बेटे को कुल की प्रथा के प्रतिकूल अपना उत्तराधिकारी बनाया। जगमल गद्दी पर बैठ गया परंतु यह बात मेवाड़ के सरदारों को बहुत ही बुरी लगी और उन लोगों ने शीघ्र ही उसे उतारकर महाराणा प्रतापसिंह को गद्दी पर बैठाया।

प्रतापसिंह का जन्म जेठ सुदी १३ संवत् १५९६ को हुआ था और मिती फागुन सुदी १५ संवत् १६१८ को गाँव गोघूंदे में वे गद्दी पर बैठे थे।

प्रतापसिंह राज्याधिकारी तो हुए परंतु न तो उनके पास कुछ विशेष राजसी ठाट और न कोई दृढ़ किला रहा। प्रतापसिंह वीर पुरुष थे, उत्साह से हृदय भरा हुआ था, भीतर भीतर चित्तौर मुसलमानों से छीनकर अपने कुल का गौरव पुनः स्थापन करने की अग्नि सुलग रही थी। यद्यपि सरदार लोग लड़ाई में हारते हारते टूट गए थे और उनका जी छोटा हो गया था परंतु इनकी दृढ़ता, वीरता और उच्चाभिलाष देखकर फिर सभों को साहस हुआ, फिर सब कमर कसकर खड़े हुए, प्रतापसिंह ने इसकी तनिक भी परवा न की कि अकबर ऐसे बादशाह से लड़ने के लिये कोई सामान ठीक नहीं है। परंतु उनका हृदय स्वाधीनता के सुस्वादु फल चखने की उमंग से भरा हुआ था। उन्होंने यह सोचकर, कि जैसे हमारे पूर्वजों ने इस चित्तौर की रक्षा की है और अपने शत्रुओं को इसी दुर्ग में कैद किया है क्या हम वैसा न कर सकेंगे, अकबर की सेना और सामान को तुच्छ जाना।

जिस समय प्रतापसिंह अकबर से लड़ने के लिये सन्नद्ध हो रहे थे, उस समय अकबर ऐसे उपायों में लग रहा था, जिनको सुनकर प्रतापसिंह अत्यंत ही दुखित हुए। वह उनके जाति-भाइयों तथा संबंधीगण को अपनी ओर मिला रहा था।

मारवाड़, बीकानेर, आमेर, (जो कि पहले प्रताप के साथ थे) अकबर के पक्षपाती हुए, यहाँ तक कि प्रतापसिंह का सगा छोटा भाई (सक्ताजी) सगरजी भी उनको छोड़कर बादशाह से जा मिला और इसके बदले में उसे उसके पूर्वजों की राजधानी चित्तौर का किला दिया गया और वह राणा की पदवी से भूषित किया गया।

ज्यों ज्यों उनके विरुद्ध सामान बढ़ते जाते थे त्यों त्यों प्रताप का उत्साह और साहस भी बढ़ता जाता था। उन्होंने अपनी जननी के दूध की सौगंध खाई कि जैसे होगा अपनी मातृभूमि का उद्धार करूँगा। अकेले निःसहाय प्रतापसिंह ऐसे प्रतापी शत्रु के साथ २५ वर्ष तक बड़े पराक्रम से लड़ते रहे और अंत में एक प्रकार सफलमनोरथ भी हुए।

महाराज मानसिंह गुजरात विजय करके लौटते हुए उदयपुर के रास्ते आए, प्रतापसिंह ने उनका बड़ा आतिथ्य सत्कार किया परंतु वे उनके साथ खाने में शरीक न हुए, यही जड़ लड़ाई आरंभ होने की हुई।

मानसिंह के दिल्ली आने पर, बादशाह ने राणा पर क्रुद्ध होकर, मानसिंह के साथ मिती चैत्र सुदी ५ संवत् १६३३ को पाँच सहस्र सेना भेजी। इस सेना के साथ आसिफखाँ मीरबख्शी, गाजीखाँ, सैयद अहमद, सैयद हाशिम, राय लूनकरण आदि सरदार भी थे। टाड साहब ने लिखा है कि इस लड़ाई में शाहजादा सलीम भी आए थे परंतु यह भ्रम है, शाहजादा सलीम उस समय केवल ७ वर्ष के थे।

यह लड़ाई हल्दी घाटी की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है।

ग्वालियर के राजा रामसिंह का एकलौता बेटा इस लड़ाई में मारा गया, परंतु इससे उक्त राजा दुखी न होकर और भी उत्साह के साथ लड़े तथा काम आए, और ग्वालियर के राजसिंहासन को अनाथ छोड़ गए।

राणा ने अपने घोड़े चेतक को मानसिंह के हाथी पर कुदाकर बरछी मारी, परंतु वह वार खाली गया। हौदे को तोड़कर बरछी महावत को लगी और वह मारा गया। फिर तो बादशाही फौज इन पर टूट पड़ी और समीप था कि राणा मारे जाते परंतु स्वामिभक्त झाला मानसिंह राणा के छत्र और झंडे को लेकर एक ओर भागे। मुसलमानों ने समझा कि राणा उधर ही भागे जाते हैं, सब उसी ओर झुक पड़े और इधर अवसर पा राणा निकल गए। झाला मानसिंह अपने सब साथियों के साथ वहीं खेत रहे और ऐसी वीरता के साथ अपने स्वामी का प्राण बचाया। राणा ने इसके पलटे में उक्त झाला राना के वंशधरों को अपने दाहिने ओर स्थान दिया और आज्ञा दी कि ये लोग महल तक नकारा बजाते अपने छत्र और झंडे के साथ आया करें।

राणा को भागते हुए पहचानकर दो मुगलों ने उनका पीछा किया। परंतु एक बरसाती नदी बीच में आ गई और राणा का घोड़ा चेतक बहुत घायल होने पर भी अपने स्वामी को लेकर नदी फाँद गया। इधर इस असहायावस्था में राणा को देखकर उनके भाई सक्ता जी का भो भ्रातृस्नेह उमड़ आया और वे प्राचीन बैर भुलाकर उनके पीछे दौड़े, और जिस समय दोनों मुगल नदी उतरने के उद्योग में थे उनको ललकारा और दोनों को लड़कर मार गिराया। इस भाँति राणा दूसरी बार जान जोखों से बचे।

चेतक, ज्योंही राणा उससे उतरे, गिरकर मर गया। राणा ने उसके मरने पर बड़ा शोक किया और उस स्थान पर एक चबूतरा बनवाया। वे प्राय: स्वयं वहाँ जाया करते थे।

टाड साहब के लेखानुसार यह लड़ाई मिती सावन बदी ७ संवत् १६३३ को हुई थी और इसमें ५०० मनुष्य राणा

के तथा ३५० तोमर (तुँवर) राजा रामसिंह ग्वालियरवाले के काम आए।

"अकबरनामे" में लिखा है कि बादशाही फौज उखड़ चुकी थी और निकट था कि भाग खड़ी होती, परंतु महतरखाँ ने चालाकी की, वह चंदौल की फौज को दौड़ाए हुए आया और यह बात प्रसिद्ध की कि बादशाह आ पहुँचे, बस फिर सभों को साहस हो गया और राणा की सेना हताश होकर लौट पड़ी।

मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ जोधपुर ने महाराणा प्रतापसिंह का जीवनचरित बहुत खोज के साथ लिखा है। हम आगे का वृत्तांत अविकल उन्हीं के ग्रंथ से धन्यवादपूर्वक उद्धृत करते हैं—

"इस लड़ाई के पीछे महाराणा ने कुँभलमेर के किले में अपनी गद्दी जमाई जो उदयपुर से पश्चिम की तरफ पहाड़ों में परगने गोढ़-वाड़ के ऊपर है और मैदान का तमाम मुल्क जिसको बहुत करके मेवाड़ कहते हैं उजाड़ दिया और वहाँ के आदमियों को पहाड़ों में बुलाकर अजमेर मालवे और गुजरात के रास्तों पर लूट मार शुरू कर दी जिससे नाज और दूसरी व्योपार की चीजों का आना जाना बंद हो गया और बादशाही लश्कर पर बडी तकलीफ गुजरने लगी। आसिफखाँ और मानसिंह से कुछ बंदोबस्त न हो सका और इसकी शिकायत बादशाह के कानों तक पहुँची। मगर बादशाह का दिल उस वक्त बंगाले की तरफ लगा हुआ था क्योंकि वहाँ उनकी फौज पठानों से लड़ रही थी और वे खुद उसकी मदद के वास्ते सावन बदी २ को बंगाले की तरफ रवाना हुए। खुशनसीबी से उसी मिती को जो पचीसवाँ दिन गोघूँदे की फतह से था बंगाला फतह हो गया और बादशाह यह खबर सुनकर रास्ते से राजधानी में लौट आए। वहाँ से जाहिर में तो जियारत और असल में मेवाड़ के लश्कर को

मदद पहुँचाने के लिये रवाने होकर आसोज सुदी ७ को अजमेर पहुँचे। वहाँ सुना कि गोघूंदे के लश्कर में रास्तों की तकलीफों से नाज कम आया है और कुँवर मानसिंह ने राणा का मुल्क लूटने की मनाई कर रखी है इस सबब से गोघूँदे में बड़ी तकलीफ है। इसके सिवाय कुँवर और आसिफखाँ में अनबन भी है। इस पर बादशाह ने लश्कर के अमीरों के नाम छड़ी सवारी से हाजिर होने का हुक्म भेजा। जब वे हाजिर हुए तो कुँवर और आसिफखाँ की ड्योढ़ी कई दिन तक बंद रखी फिर कसूर माफ करके रूबरू बुलाया।

"इस अवसर में महाराणा ने सिरोही के राव सुरतान देवड़ा, जालौर के खान ताजखाँ और ईडर के राजा नारायणदास को भी अपने में शामिल कर लिया और यह सब मिलकर अरवली पहाड़ों के दोनों तरफ गुजरात के रास्तों पर लूट-मार और फसाद करने लगे। बादशाह ने जालौर और सिरोही के ऊपर तरसूखाँ और रायसिंह को भेजा और वे दोनों सरदार डरकर अजमेर में बादशाह के पास हाजिर हो गए। तब बादशाह ने तरसूखाँ को पाटन की हुकूमत पर भेजा और रायसिंह को नाँदोत में रहने का हुक्म दिया जिससे महाराणा का गुजरात में आने जाने का रास्ता बंद हो गया।

"अब बादशाह ने कातिक बदी ६ को अजमेर से गोघूँदे की तरफ कूँच किया और फौज को तो दो दिन पहले से बकतर पाखर पहिना दिए थे। गोघूँदे पहुँचकर कुतुबुद्दीन, राजा भगवंतदास और कुँवर मानसिंह को तो पहाड़ों में महाराणा के ऊपर और कुलीचखाँ वगैरः को ईडर की तरफ भेजा और इनके साथ ही हाजियों के काफिले यानी संग को भी हलोदर की घाटी से गुजरात की तरफ रवाना किया और मेवाड़ के पहाड़ों में होकर ईडर पहुँचा। महा-

राणा और नारायणदास लूटने का काबू न पाकर एक तरफ हो गए मगर ईडर कातिक बदी १३ को फतह हो गया।

"फिर बादशाह गाजीखाँ वगैर: अमीरों को मोही में जो गोघूँदे से २० कोस है और अबदुलरहमान वगैर: को मदारिये में छोड़कर पूस सुदी ८ को बाँसवाड़े के रास्ते से मालवे की तरफ रवाने हुए। कुतुबुद्दीनखाँ और राजा भगवंतदास जो हाजियों को गुजरात की सरहद तक पहुँचा चुके थे बगैर हुक्म आकर शामिल हो गए मगर उन पर खफगी हुई और कुछ दिन तक दरबार बंद रहा।

"बादशाह उदयपुर होकर बाँसवाड़े को रवाने हुए। उदयपुर में शाह फखरुद्दीन और जगन्नाथ को उदयपुर के दरे यानी दहवाड़ी की घाटी में राजा भगवंतदास और सैयद अबदुल्लाखाँ को छोड़कर लश्कर की अफसरी कुतुबुद्दीनखाँ की जगह आसिफखाँ को दे गए और बाँसवाड़े होकर कि जहाँ डूँगरपुर और बाँसवाड़े के रावल परताप और आसकरन हाजिर हो गए थे देपालपुर में पहुँचे और वहाँ कुछ दिन रहे।

"बादशाह के गोघूँदे की तरफ आने और पहाड़ों में होकर मालवे की तरफ जाने का एक मतलब यह भी था कि किसी तरह महाराणा भी दूसरे रईसों के माफिक उनके पास हाजिर हो जावें तो यह यात्रा सुफल हो जावे। मगर महाराणा तो ऐसी पट्टी पढ़े ही नहीं थे, उनको सब तरह से अपना नुकसान करना मंजूर था लेकिन बादशाह को सिर झुकाना हरगिज मंर नहीं था। और तो क्या एक भाट, जिसको महाराणा ने अपनी पगड़ी दी थी, जब बादशाह से मुजरा करने को गया तो उसने पगड़ी उतार हाथ में ले ली और नंगे सिर मुजरा किया। बादशाह ने सबब पूछा तो कहा कि यह पगड़ी राणा प्रतापसिंह की है जिसने कभी किसी हिंदू

मुसलमान को सिर नहीं झुकाया है, इसलिये मैंने भी उसका अदब रखा।

"बादशाह कम से कम ६ महीने के करीब महाराणा के मुल्क में और उसके आसपास रहे और उन्होंने महाराणा के तंग करने में भी कसर नहीं रखी, तो भी महाराणा ने कुछ परवाह न की और सलाम तक उनको नहीं कहलाकर भेजा बल्कि हर तरह से उनको दिक करते रहे और जब देखा कि बादशाह उनके मुल्क से निकल गए तो पहाड़ों से उतरकर बादशाही थानों पर चढ़ाई करना शुरू किया और मेवाड़ की तरफ से आगरे का और बादशाह के लश्कर का रास्ता बंद कर दिया जैसा कि मुल्ला अबदुलकादिर लिखता है कि मैं उस वक्त बीमारी के सबब से वतन में रह गया था और बाँसवाड़े में से लश्कर में जाना चाहता था मगर हिंडोन में अबदुल्लाखाँ ने वह रास्ता बंद और भयानक बताकर मुझको लौटाया, तब मैं ग्वालियर सारंगापुर और उज्जैन के रास्ते से देपालपुर में जाकर बादशाह के पास हाजिर हुआ।

"इस अरसे में सुरतान देवड़ा भी बादशाह के लश्कर से भागकर सिरोही में जा पहुँचा था और ईडर का राव नारायणदास भी फिसाद करने लगा था। बादशाह ने यह खबरें सुनकर माघ सुदी ७ को फिर राजा भगवंतदास, कुँवर मानसिंह, मिरजाखाँ और कासिमखाँ वगैर: को गोघूँदे की तरफ भेजा और सुरतान देवड़े के वास्ते राय रायसिंह को और नारायणदास की बाबत आसिफखाँ को लिखा कि राय रायसिंह ने तो सिरोही और आबूगढ़ सुरतान से छीन लिया और आसिफखाँ के ऊपर नारायणदास को महाराणा ने मदद देकर भेजा। वह ईडर से दस कोस पर पहुँचकर बादशाही थाने ईडर पर छापा मारना चाहता था कि आसिफखाँ ने फागुन

सुदी ६ को सात कोस आगे जाकर मुकाबिला किया और लड़ाई में हराकर भगा दिया; लेकिन राजा भगवंतदास और मिरजाखाँ वगैर: से कुछ बंदोबस्त महाराणा का न हो सका, वे उसी तरह थानों के ऊपर दौड़ते रहे। बादशाही अमीर उनके पकड़ने की बहुत कोशिश करते थे मगर उन तक पहुँच भी नहीं सकते थे और जब कि वे पहाड़ को महाराणा का ठहरना सुनकर घेरते थे तो महाराणा दूसरे पहाड़ से निकलकर छापा मार जाते थे। वे कभी एक जगह या किले में जमकर नहीं बैठते थे कि इसमें बाज वक्त बहुत मुशकिल पड़ जाती है। हमेशा इधर उधर बादशाही अमीरों की देख-भाल में फिरा करते थे। इस दौड़ धूप का यह फल हुआ कि उदयपुर और गोघूँदे से बादशाही थाने उठ गए और मोही का थानेदार मुजाहदबेग मारा गया।

बादशाह का दुबारा अजमेर में आना

"अकबर बादशाह कातिक बदी १२ को मामूल के माफिक फिर अजमेर आए और अगली फौज से मेवाड़ में कुछ काम निकला हुआ न देखकर कातिक सुदी १५ को मेड़ते से फिर एक फौज महाराणा के ऊपर भेजी। उसमें अफसर तो वही राजा भगवंतदास, कुँवर मानसिंह, पायँदाखाँ, मुगल सैयद कासिम, सैयद हाशिम, सैयद राजू असदतुर्कमान और गजरा चौहान वगैर: थे लेकिन बख्शी आसिफखाँ की जगह शहबाजखाँ को किया और इख्तियार भी कुल फौज का उसी को दिया। यह बड़ा चालाक अफसर था। इसने पहले तो हाजियों के काफिले को, जिसके साथ बहुत रुपया मक्के को भेजा गया था, महाराणा की सरहद से पार उतार दिया और फिर बादशाही थाने देखकर सरहद के जाबते

के लिये बादशाह से और मदद माँगी। बादशाह ने शेख इब्राहीम फतहपुरी को कुछ फौज देकर भेजा। उसके पहुँचने पर शहबाजखाँ ने महाराणा से कुंभलगढ़ ले लेने का इरादा करके राजा भगवंतदास और कुँवर मानसिंह को तो तरफदारी के वहम से बादशाह के पास जाने की सीख दे दी और फिर शरीफखाँ, गाजीखाँ और मिरजाखाँ वगैर: के साथ जाकर उस किले को घेरा। बैसाख * बदी १२ संवत् १६३५ को महाराणा ने अंदर से लड़ाई की। मगर एक बड़ी तोप के फट जाने से किले का सामान जल गया।

"महाराणा लाचार किला छोड़कर बाँसवाड़े की तरफ निकल गए मगर उनके नामी राजपूत पहले किले के दरवाजे पर लड़े और फिर मंदिरों और घरों के आगे बहादुरी से मुकाबिला करके काम आए। शहबाजखाँ गाजीखाँ को किले में छोड़कर महाराणा के पीछे रवाना हुआ। दूसरे दिन दोपहर को गोघूँदे में और आधी रात को जयपुर में अमल किया और बहुत सा माल लूटा।

"मूता नैणसी की ख्यात में लिखा है कि अकबर की फौज ने संवत् १६३३ में कूँभलमेर फतह किया, सोनगरा भान, अखेराजीत और कई चाकर राणाजी के मारे गए। मालूम नहीं कि यह दो बरस की गलती संवत् में क्यों है।

"महाराणा शहबाजखाँ को पहाड़ों में बहुत लिए लिए फिरे मगर हाथ नहीं आए। आखिर उसने थककर पीछा छोड़ दिया

---

* मेवाड़ में असाढ़ बदी १५ संवत् १६३५ मानते हैं। हमने बैसाख बदी १२ अकबरनामे में लिखी हुई तारीख १४ फरवरदीन से हिसाब करके लिखी है। इससे २ महीने का फरक आता है; मगर फरवरदीन महीना कभी असाढ़ में नहीं आता, चैत बैसाख में ही आता है जब कि सूरज मेष राशि पर हो। शायद ऐसा हुआ हो कि लड़ाई बैसाख बदी १२ को शुरू हुई और किला असाढ़ बदी १५ को फतह हुआ।

और पता लगाकर उनका डेरा लूट लिया। राय सुरजन हाड़ा का बेटा दूदा जो बादशाह से बागी रहा करता था और बरस दिन पहले बादशाही लश्कर से लड़कर महाराणा के पास चला आया था, शहबाजखाँ के पास हाजिर हो गया। वह उसी को लेकर पंजाब में बादशाह के पास गया। असाढ़ सुदी १३ संवत् १६३५ को उसका मुजरा हुआ। बादशाह ने उसकी अरज से दूदा के कसूर बख्श दिए।

"शहबाजखाँ के जाने पर महाराणा बाँसवाड़े की तरफ से छप्पन के पहाड़ों में आए और बादशाही थानों को काटने लगे। बादशाह ने फिर पौष बदी १४ संवत् १६३५ को शहबाजखाँ और गाजीखाँ को भेज मुहम्मदहुसेन, शेख तैमुर बदख्शी और मीरजादा अलीखाँ और बहुत से अमीरों को साथ किया। महाराणा फिर पहाड़ों के ऊपर चढ़ गए। शहबाजखाँ फिर दो तीन महीने तक मेवाड़ में फिरा और थानों में हर जगह कारगुजार आदमी रखकर पीछे चला गया और जेठ सुदी १४ संवत् १६३६ को बादशाह के पास पहुँचा और महाराणा को फिर अपने काम करने का मौका मिल गया जिससे कातिक बदी १३ संवत् १६३६ को बादशाह खुद अजमेर में आए और सुदी १२ को पीछे जाने लगे। तब मुकाम साँभर से फिर शहबाजखाँ को सूबे अजमेर का बंदोबस्त कायम रखने के वास्ते छोड़ गए। इससे पाया जाता है कि महाराणा ने मेवाड़ के सिवा और जगह भी सूबे अजमेर में दस्तंदाजी की थी।

"शहबाजखाँ ने फिर महाराणा का पीछा किया। इस दफे उनको बहुत मुश्किल पड़ी, खाना खाने तक की फुरसत नहीं मिलती थी। जिधर जाते थे दुश्मन पीछा दबाए चला आता था। एक दिन ऐसा हुआ कि पाँच दफे खाना छोड़कर भागना पड़ा ऐसा

विखा कभी किसी को नहीं हुआ होगा कि दुश्मन हरदम तलवार लिए हुए सिर पर खड़ा मिले और विखे का भुगतना भी महाराणा प्रतापसिंह का ही काम था कि ऐसी ऐसी कड़ी झेलते थे। बड़े लोगों ने जो यह वचन कहा है कि शूरवीर उसको कहना चाहिए कि जिसके तेवर हार में भी न बदलें सो यह महाराणा प्रतापसिंह में अच्छी तरह से देखा जाता था कि हार पर हार होती थी और जमीन सब जाती रही थी तो भी लड़ने मरने ही पर तैयार रहते थे और दीन वचन मुँह से कभी नहीं निकालते थे। टाड राजस्थान में लिखा है कि एक दफे उनकी बेटी अपने हिस्से की रोटी आधी तो खा गई थी और आधी दूसरी बार के वास्ते रख छोड़ी थी कि एक बिल्ली आई और उसको खा गई जिसके वास्ते वह लड़की चिल्लाकर रोई। यह दुःख महाराणा से नहीं सहा गया और उन्होंने अकबर को लिखा कि मेरी तकलीफ कम करो। अकबर इससे बड़ी शेखी में आ गया और दरबार करके यह लिखावट सबको दिखाई। बीकानेर के राजा रायसिंह के भाई पृथ्वीराज* ने कहा कि यह

---

* पृथ्वीराज के विषय में "भक्तमाल" में नाभाजी लिखते हैं—

नरदेव उभै भाषा निपुन पृथ्वीराज कविराज हुव।
सवैया गीत श्लोक वेलि दोहा गुन नव रस॥
पिंगल काव्य प्रमाण बिबिध बिध गायो हरि जस।
परदुख विदुखि सलाघ्य वचन रसना जु उचारै॥
अर्थ विचित्रनि मील सबै सागर उद्धारै।
रुक्मिणि लता वर्णन अनूप वागीश वदन कल्यान सुव॥
नर देव उभै भाषा—१४०

टीका। प्रियादास जी लिखित—

माड़वार देश बीकानेर को नरेश बड़ो
पृथ्वीराज नाम भक्तराज कविराज है।

किसी ने राणा के नाम पर बट्टा लगाने के वास्ते जालसाजी की है। राणा को मैं जानता हूँ। वह कभी ऐसा हर्फ नहीं लिखेगा और फिर पृथ्वीराज ने महाराणा को इस हरकत से रोकने के वास्ते बहुत

सेवा अनुराग अरु नियम वैराग ऐसी
रानी पहिचानी नाहिं, मानो देखी आज है ॥
गयो विदेश तहाँ मानसी प्रवेश कियो
हियो नहीं छुवै कैसे सर मन काज है।
बीते दिन तीन प्रभु मंदिर के दीठ परै
पाछे हरि देखि भयो सुख को समाज है ॥ ५३० ॥
लिखि कै पठायो देश सुंदर सँदेस यह
मंदिर न देख हरि बीते दिन तीन है।
लिख्यो आयो साँचु बाँचि अतिही प्रसन्न भए
लगे राज बैठे प्रभु बाहर प्रवीन है ॥
सुनी और एक योंं प्रतिज्ञा करि हिय धरी
मथुरा शरीर त्यागि करै रस लीन है।
पृथ्वीपाल जानिकै मुहीम भई काबिल की
बल अधिकाई नहीं काल के अधीन है ॥ ५३१ ॥
जीवन अवधि रहे निपट अलप दिन
कलप समान बीति पल न विहात है।
आगम जनाइ दियो वाहै इन्हें साँचो कियो
लियो भक्ति भाव जाके छायो गात गात है ॥
चल्यो चढ़ि साँड़िनी पै, लई मधुपुरी आनि
करिके स्नान प्रान तजे सुनी बात है।
जय जय धुनि भई गई व्यापि चहुँ ओर
अहो भूपति चकोर जस चंद दिन रात है ॥ ५३२ ॥

बाबू शिवसिंह और डाक्टर ग्रिअर्सन साहब ने भी अपने ग्रंथों में पृथ्वीराज का वर्णन किया है।

श्री राधाकृष्णदास।

से चमत्कारी दोहे बनाकर भेजे जिनके सुनने से महाराणा को १०००० घोड़े का बल हो गया। सो हमारी समझ में निरी कहानी मालूम होती है क्योंकि अकबर बादशाह की किसी तवारीख से भी नहीं पाया जाता है कि महाराणा ने कभी कोई ऐसी दरख्वास्त बादशाह से की हो। जो की होती तो अबुलफजल जिसने जरा जरा सी बात को बना बनाकर लिखा है इसको राई का पहाड़ बनाकर लिखता। मगर कहीं अकबरनामे में ऐसा जिक्र नहीं है जिससे यह बात साफ बनावट की मालूम होती है। हाँ, यह सही है कि जब शहबाजखाँ का पीछा लेने से महाराणा के पाँव उखड़ गए और उनको कहीं आस पास ठहरने के लिये जगह नहीं मिली तो वे मूँधा के पहाड़ों में, जो आबू से १२ कोस पच्छिम में है जहाँ पहले राणा मोकलसीजी भी विखे में रह चुके थे, चले गए। वहाँ देवल राजपूतों की बस्ती है। उन्होंने महाराणा की बहुत आवभगती की और लायाणे ठाकुर राय धवल ने जो सब देवलों में पाटवी था अपने पास कोई अच्छी चीज उनकी नजर के लायक न देखकर अपनी बेटी उनको ब्याह दी और पहाड़ के ऊपर उनको बड़ी खातिर और हिफाजत से रखा। महाराणा ने वहाँ बाग लगाया और बावड़ी बनवाई जो अब तक मौजूद है।

"मूधा पहाड़ पर रहने से मेवाड़ में फिर कुछ पता महाराणा का शहबाजखाँ को नहीं लगा और उसी अरसे में बादशाह का हुक्म उसके नाम पूरब में जाने के वास्ते आया जहाँ और बिहार के अमीर बागी होकर फसाद कर रहे थे। शहबाजखाँ मेवाड़ से रवाने होकर आसाढ़ सुदी ९ संवत् १६३७ (मेवाड़ी १६३६) को फतहपुर में बादशाह के पास पहुँचा। महाराणा उसका जाना सुनकर अपने मुल्क में आने के वास्ते राय धवल से रुखसत हुए। उस वक्त

राय धवल की खिदमतों का इनाम देने के वास्ते उनके पास कुछ न था तो भी उसको राणा का खिताब देकर अपने बराबर कर लिया।

"बादशाह ने शहबाजखाँ की जगह रुस्तमखाँ को अजमेर का सूबेदार करके भेजा था। वह चार महीने में ही कछवाहों के मुकाबिले में मारा गया। उसकी जगह मिरजाखाँ * मुकर्रर होकर आया जो बाद को खानखाना कहलाया। मालूम होता है कि यह महाराणा का दोस्त था और महाराणा की तारीफ में इसके बनाए हुए दोहे बहुत मशहूर हैं। इसने महाराणा से छेड़ नहीं की जिससे उनका जमाव अपने मुल्क में फिर हो गया और वे धीरे धीरे आगे भी बढ़ने लगे।

"मूता नैणसी ने लिखा है कि बैसाख सुदी संवत् ३८-३९ में महाराणा ने शेरपुरे का थाना मारा। यहाँ मिरजाखाँ की बेगम पकड़ी गई मगर महाराणा ने बहुत इज्जत और हुरमत के साथ पीछे मिरजाखाँ के पास भेज दी।

"राजप्रशस्ति में लिखा है कि कुँवर अमरसिंह मिरजाखाँ के कबीलों को पकड़ लाया था जब कि बादशाह उसको गोघूँदे छोड़ गए थे और महाराणा ने फौरन उसको मिरजाखाँ के पास पहुँचा दिया।

"खैर कभी हुआ हो यह काम बड़ी भलाई का था जो महाराणा की तरफ से अपने दुश्मनों के साथ हुआ और शायद इस इहसान के बदले में खानखाना ने वे दोहे महाराणा की तारीफ में बनाए हों।

"मिरजाखाँ संवत् १६३८ के पौष तक अजमेर के सूबे में रहा क्योंकि माघ सुदी ६ को जब कि बादशाह काबुल से फतेहपुर में पीछे आए थे अकबरनामे में उसका नाम दरबारियों में लिखा है और उस दिन नगर चेन में बखशियों ने बादशाह के हुक्म से उसको

* अबदुल रहीमखाँ खानखाना।

शाहबाजखाँ के ऊपर खड़ा किया था। इससे शाहबाजखाँ ने बुरा माना और अदूल हुकमी करने को तैयार हुआ। बादशाह ने खफा होकर उसको रायसाल दरबारी के पहरे में बिठा दिया।

"इससे मालूम होता है कि मिरजाखाँ माह में या कुछ पहले अजमेर से चला गया था और फिर इस काम पर नहीं आया।

"मिरजाखाँ के जाने से महाराणा को और सुभीता हुआ। वे फिर अपना मुल्क दबाने लगे। हर एक थाने पर लड़ाई शुरू हुई; रास्ते बंद हो गए। फिर बादशाह तक पुकार पहुँची, बादशाह ने इस दफे जगन्नाथ कछवाहे की अफसरी में फौज तैयार की। बख्शीगीरी मिरजा जाफरबेग को दी। फागुन बदी १ को यह लोग रवाने हुए। सैयद राजू को मांडल में छोड़कर महाराणा के ऊपर गए। महाराणा दूसरी घाटी से निकलकर मेवाड़ में आए और कई गाँव लूट लिए। सैयद राजू लड़ने को गया तब चित्तौर की तरफ मुड़े। उधर से जगन्नाथ भी आ गया मगर राणाजी तो लड़ते मारते पहाड़ों में चले गए और कुछ अरसे पीछे फिर आए। यह फिर पीछे पड़े। एक दफे बहुत ही पास जा पहुँचे थे मगर महाराणा फिर भी हाथ न आए। तब यह पता लगाकर उनके कबीलों के ऊपर गए जो एक विकट जगह पर भीलों की हिफाजत में थे मगर महाराणा को खबर हो गई और वे उनको भी ले गए। ये गुजरात की सरहद तक पीछे गए मगर महाराणा का पता न लगा तब डूँगरपुर के रावल से जुरमाना लेकर लौट आए।

"गरज इसी तरह से जगन्नाथ भी दो बरस तक पहाड़ों में भटकता रहा फिर मजाहदबेग की बदली तो बादशाह ने इलाहाबाद के सूबे में कर दी और जगन्नाथ भी संवत् १६४२ में काश्मीर को चला गया।"

महाराणा की फतह

"इस वक्त से महाराणा के दिन फिरे। बादशाह की फिर कोई फौज नहीं आई। अकबरनामे में १२ बरस यानी १६५३ तक महाराणा का जिक्र नहीं आता है। सिर्फ उस संवत् में उनके मरने की खबर लिखी है। इतनी मुद्दत तक बादशाह के चुप रहने और फौज नहीं भेजने का यह सबब था कि संवत् १६४१ से पंजाब में रहते थे और उनका ध्यान जियादातर उत्तर और पश्चिम की तरफ था क्योंकि तूरान के बादशाह अब्दुल्लाखाँ उजबक से बिगाड़ हो गया था और अकसर खबरें उसके काबुल और हिंदुस्तान के ऊपर चढ़ाई करने की उड़ा करती थीं।

"टाड राजस्थान में लिखा है कि महाराणा के ऊपर तकलीफ देखकर उनके पुश्तैनी दीवान भीमाशा का जी जला और जो दौलत उसके बाप दादा की जोड़ी हुई चली आती थी वह सब उसने महाराणा के नजर कर दी और महाराणा उस रुपए से घोड़ा और राजपूतों की सजाई करके बादशाही लश्कर पर जो दबेर में पड़ा था जा पड़े और उसको गाजर मूली की तरह से काटकर भागे हुओं के पीछे आमेर तक गए और उसी गरमागरमी में कुंभलमेर के ऊपर हमला करके अब्दुल्ला और उसके लश्कर को काट डाला और फिर उसी तरह दुश्मनों के २२ थाने छीनकर उनको मार भगाया।

"मेवाड़ की तवारीख लिखनेवाले कहते हैं कि एक ही साल यानी संवत् १६४२ की लड़ाई में तमाम मेवाड़ अजमेर चित्तौर और मांडलगढ़ के सिवाय दुबारा फतह हो गया और हिंदूपति ने राजा मानसिंह और जगन्नाथ को बदला लेने के लिये जो फूले फूले फिरते थे कि हमने महाराणा को कैसा खराब कर दिया, आमेर के ऊपर

हमला किया और उसके मालदार शहर मालपुरे को लूटकर खाक में मिला दिया।

"महाराणा की बाकी उमर आराम से गुजरी क्योंकि १२ बरस तक फिर कोई चढ़ाई मुगलों की नहीं हुई। इस मुद्दत में उन्होंने अपने उजड़े मुल्क को सँभाला। उदयपुर को जो दुश्मनों की चढ़ाइयों से बसते बसते रह गया था नए सिरे से बसाया, सरदारों को जो विखे में साथ रहे थे बड़ी बड़ी जागीरें दीं और उनके दरजे और कुर्ब जियादे किए।"

महाराणा का इंतकाल

"संवत् १६५३ में महाराणा का देहांत हुआ। मिती मालूम नहीं हुई, न टाड राजस्थान में देखी गई, न मूता नेणसी की ख्यात में है। मगर अकबरनामे में लिखा है कि तारीख बहमन सन् ४१ जलूसी को राणा* कीका का जमाना खतम हो गया। उसके अधर्मी बेटे अमरा ने जहर खिला दिया और एक कड़ी कमान के खैंचने से भी झटका लगा था सो हिसाब लगाने से यह तारीख माघ सुदी पंचमी संवत् † १६५३ के मुताबिक होती है।"

टाड राजस्थान में महाराणा के मरने का हाल इस तौर पर लिखा है

"महाराणा की तमाम उमर विखे और लड़ाइयों में गुजरी, उनका तमाम बदन जखमों से चूर था, वे गम और फिक्र के मारे

* अकबर बादशाह महाराणा प्रतापसिंह को कीका कहते थे।

† यह लिखने के पीछे हमको उदयपुरी एक मित्र की लिखावट से मालूम हुआ कि महाराणा का देहांत माह सुदी ११ को हुआ।

जवानी में ही वृद्ध हो गए थे, उनके हाथ-पाँव रात-दिन की दौड़-धूप से ढीले हो गए थे, कमजोरी से उनको तरह तरह की बीमारियाँ पैदा हुईं। उनके मरने की हालत भी उनकी बहादुरी साबित करती थी। उन्होंने अपने वली अहद को कसम दिलाई कि तुम हमेशा दुश्मन से लड़ते रहना और कभी लड़ाई से पीछे मत हटना। अमरसिंह ने कसम खाई और वचन दिया तो भी महाराणा को तसल्ली न हुई क्योंकि वे जानते थे कि मेरा बेटा कभी आजादी और विखे की तकलीफों को न सह सकेगा और सबब ऐसा समझने का यह था कि महाराणा और उनके साथियों ने पीछोला झील के किनारे पर कई झोंपड़े डाल रखे थे जिनमें वे अपने विखे के दिन तै करते थे और अँधेरे और मेह में सिर छिपाकर बैठ जाते थे। राजकुमार अमरसिंह को यह ख्याल तो रहा नहीं कि झोंपड़ा बहुत नीचा है और उसका एक बाँस बाहर को निकला हुआ है और वैसे ही निकल खड़े हुए। मुड़ास डाँड़े में अटका उसको वैसा ही ऐंचते हुए चले गए।

"धीरे धीरे महाराणा ने जो अपने बेटे की यह जल्दबाजी देखी तो उनको बड़ा रंज हुआ और उन्होंने जान लिया कि वह कभी उन मेहनतों को नहीं झेल सकेगा जो दुश्मनों से लड़ने में आ पड़ती हैं।

"हिंदूपति उस वक्त एक टूटे से झोंपड़े में थे और उनके सरदार जो बुरे वक्तों में आड़े आए थे सब उनके सिरहाने बैठे थे और उनके दम तोड़ने की हालत को बड़ी लाचारी, बेबसी और दुःख से देख रहे थे। जब बहुत देर हुई तो सलूमर के सरदार ने ठंढी साँस भरकर पूछा कि ऐसी क्या मुश्किल आपकी जान पर पड़ी है जो वह निकलती नहीं।

"महाराणा ने सँभाला लेकर जवाब दिया कि मेरी यह तसल्ली करो कि यह मुल्क मेरे पीछे कहीं तुरकों को तो नहीं दे दिया

जावेगा। मैं उस झोपड़ेवाली कैफियत से अपने बेटे के मिजाज का हाल मालूम करके तो यही समझ रहा हूँ कि वह इनकी जगह बड़े बड़े ऊँचे मकान और महल बनवावेगा और उनमें आराम से बैठ जावेगा और मेवाड़ का स्वतंत्रपना कि जिसके वास्ते मैंने इतना खून बहाया है उसके हाथ से जाता रहेगा। क्या तुम लोग भी उसी के माफिक करोगे? सरदारों ने यह सुनकर बाप्पा रावल के तख्त की कसम खाई और कहा कि हम राजकुमार की तरफ से जामिन होते हैं कि जब तक मेवाड़ की आजादी (स्वतंत्रता) दुबारा हासिल नहीं हो जावेगी हम कभी राजकुमार को महल नहीं बनाने देंगे और न आराम से बैठने देंगे।

"इस बात के सुनने से महाराणा को पूरी तसल्ली हो गई और फिर उनकी जान झट से निकल गई।

"टाड साहब कहते हैं कि उन मुल्कों के मालिकों को कि जो उथला पुथली से बचे हुए हों सोचना चाहिए कि कितनी बहादुरी और सूरबीरपने का जोश इस राजपूत बादशाह में होगा, जिसने थोड़ी सी ही फौज और दौलत से ऐसे बड़े शाहनशाह का सामना किया जिसका लश्कर गिनती में उस दम (मेकदार) में ही कहीं ज्यादा था कि जो कभी ईरानी लोग यूनान के ऊपर चढ़ा ले गए थे।

"अरवली पहाड़ में कोई ऐसी घाटी नहीं है कि जहाँ महाराणा ने कोई काम बहादुरी का न किया हो, जिसमें उनको या तो फतह हुई या ऐसी शिकस्त कि जिससे उनकी और शान बढ़ गई हो और नाम भी हुआ हो। इन लड़ाइयों में से हल्दी घाटी और देवर की लड़ाई ज्यादा मशहूर है।"

राजस्थान-केशरी

अथवा

महाराणा प्रतापसिंह

छप्पय

प्रभु की बातहिं टारि आपुनी बातहिं राखूँ।
हरि को शस्त्र गहाऊँ कै निज शस्त्रहिं नाखूँ॥
पांडव दलहिं कँपाइ कृष्ण बच टारन भाखूँ।
चक्र धारि धावत लखि जीवन फल निज चाखूँ॥
इमि दृढ़प्रतिज्ञ लखि बीरबर धाए तुरतहिं चक्र लै।
जय भक्तमानरच्छक सदा जादवपति जय जयति जै॥

इति नांदी

[सूत्रधार का प्रवेश]

सूत्र०—(चारों ओर देखकर) आहा ! संसार कैसा परिवर्तन-शील है ! क्षण क्षण पर इसका रूप बदलता रहता है। देखो क्या यह वही भारत-भूमि है जिसमें एक समय लोग विमानों पर आकाश-मार्ग में विहार करते थे, तपबल से ऋषिगण जिधर निकलते थे, प्रकाश हो जाता था। विद्या, कला, कौशल प्राणीमात्र में शोभा पाती थी। अवश्य अब वे सब बातें दूर गईं, अब यह भारत वह भारत नहीं है, परंतु क्या यह भारत वह भारत ही नहीं है ? अथवा अब इसमें कोई शोभा ही नहीं है ? नहीं, ऐसा कदापि नहीं। यह भारत वही भारत है, इसमें सभी कुछ वर्तमान है परंतु काल के प्रभाव से रूपांतर अवश्य हो गया है, परंतु वही भूमि, वही आकाश, वही मनुष्य, वही पशु-पक्षी, सब वही हैं। उस समय

की शोभा दूसरी थी इस समय की दूसरी, उस समय विमान पर लोग घूमते थे, इस समय रेल रूपी धूम्रयान पर, उस समय योगबल से ऋषिगण घर बैठे त्रिलोक के समाचार जान सकते थे, इस समय टेलीग्राफ द्वारा, उस समय सुंदर रथों पर महारथी शोभायमान थे, इस समय डाइक्स की बड़ी बड़ी फिटनें वेलर की जोड़ियाँ चौड़ी चौड़ी सड़कों की शोभा बढ़ाती हैं, उस समय सोने चाँदी के रत्न-जटित पात्र घर के गौरव को बढ़ाते थे, इस समय सुंदर शीशे के ग्लास, रिकाबी आदि स्वच्छता की झलक दिखाते हैं। उस समय सोने चाँदी के सिक्कों के रखने का स्थान न था, इस समय कागज के सिक्के उड़ते दिखाई देते हैं, उस समय गली गली में वेदध्वनि प्रतिध्वनित होती थी इस समय कदम कदम पर अँगरेजी की धारा बहती है। निदान इस समय भारत की शोभा दूसरी ही चाल की हो रही है, शहरों में लंबी चौड़ी हवादार सड़कें बन गई हैं, उनमें लालटेनों की माला जगमगाती नगर की शोभा को चतुर्गुण करती है।

[परिपार्श्वक का प्रवेश]

परि०—मित्र ! आज तुम कौनसा पचड़ा लेकर बैठे हो ? इन निरर्थक बकवादों से क्या लाभ है ? देखो यह कैसा भयानक समय उपस्थित हुआ है, चारों ओर से शत्रुओं ने आकर बृटिश गवर्नमेंट को घेर रखा है, नाना प्रकार के उपद्रव मच रहे हैं, हम लोग आदि काल से राजभक्त प्रजा हैं, क्या इस समय हम लोगों को हँसी खेल में मत्त रहना उचित है ?

सूत्र०—भाई ! यह तो तुमने ठीक कहा परंतु हम लोग कर ही क्या सकते हैं और गवर्नमेंट को सहायता ही क्या दे सकते हैं ?

परि०—क्यों नहीं, हम लोग बहुत कुछ कर सकते हैं। क्या तुमने इतिहासों को नहीं देखा है ? तुम्हें विदित नहीं है कि प्राचीन

कवि लोग अपनी वीर कविता से राजपूत योद्धाओं का उत्साह बढ़ाकर कैसे उमंग के साथ लड़ा दिया करते थे ?

सूत्र०—हाँ हाँ यह सब तो हम जानते हैं पर इससे क्या ? हम कुछ कवि तो हैं ही नहीं कि युद्ध के समय उपस्थित रहकर वीरों का उमंग बढ़ा सकें।

परि०—तुमने समझा नहीं। काव्य दो प्रकार के होते हैं, एक दृश्य और दूसरा श्रव्य—दृश्य काव्य का जैसा शीघ्र असर होता है उसका अनुभव तो तुम्हें नित्य ही हुआ करता है। हमारी इच्छा है कि हम लोग ऐसे वीररसपूर्ण नाटक खेलें कि जिससे हमारे भारतीय वीरगण प्रोत्साहित होकर अपने शत्रुओं से जी छोड़कर लड़ें। भारतसंरक्षण अकेले अँगरेजों के किए कदापि नहीं हो सकता जब तक कि हिंदुस्तानी योद्धागण उनके साथ अपना पराक्रम न दिखलावें, क्योंकि यह हिंदुओं का देश है, हिंदू प्रजा ही यहाँ विशेष रहती है और सरकारी पल्टनों में भी हिंदू ही विशेष हैं, अतएव आज किसी ऐसे राजपूत वीर का चरित्र दिखाना चाहिए जिसके नाम सुनने ही से भारतीय वीरगण प्रोत्साहित हो जायँ।

सूत्र०—हाँ यह तो तुम्हारी सम्मति बहुत ही उचित है और इसी की समग्र भारतवासियों को कमी है, क्योंकि वे अपने पूर्वजों के उदार चरित्र भूल रहे हैं; उनका स्मरण कराना आवश्यक है। परंतु ऐसा कौन सा नाटक है ?

परि०—क्यों, मुद्राराक्षस, नीलदेवी, महारानी पद्मावती आदि कई एक नाटक हैं, जो इच्छा हो खेलो।

सूत्र०—नहीं नहीं वे सब तो कई बेर खेले जा चुके, अब कोई नवीन नाटक खेलना चाहिए जो मनोरंजक भी हो और उत्साह-वर्द्धक भी हो।

की शोभा दूसरी थी इस समय की दूसरी, उस समय विमान पर लोग घूमते थे, इस समय रेल रूपी धूम्रयान पर, उस समय योगबल से ऋषिगण घर बैठे त्रिलोक के समाचार जान सकते थे, इस समय टेलीग्राफ द्वारा, उस समय सुंदर रथों पर महारथी शोभायमान थे, इस समय डाइक्स की बड़ी बड़ी फिटनें वेलर की जोड़ियाँ चौड़ी चौड़ी सड़कों की शोभा बढ़ाती हैं, उस समय सोने चाँदी के रत्न-जटित पात्र घर के गौरव को बढ़ाते थे, इस समय सुंदर शीशे के ग्लास, रिकाबी आदि स्वच्छता की झलक दिखाते हैं। उस समय सोने चाँदी के सिक्कों के रखने का स्थान न था, इस समय कागज के सिक्के उड़ते दिखाई देते हैं, उस समय गली गली में वेदध्वनि प्रतिध्वनित होती थी इस समय कदम कदम पर अँगरेजी की धारा बहती है। निदान इस समय भारत की शोभा दूसरी ही चाल की हो रही है, शहरों में लंबी चौड़ी हवादार सड़कें बन गई हैं, उनमें लालटेनों की माला जगमगाती नगर की शोभा को चतुर्गुण करती है।

[परिपार्श्वक का प्रवेश]

परि०—मित्र! आज तुम कौनसा पचड़ा लेकर बैठे हो? इन निरर्थक बकवादों से क्या लाभ है? देखो यह कैसा भयानक समय उपस्थित हुआ है, चारों ओर से शत्रुओं ने आकर बृटिश गवर्नमेंट को घेर रखा है, नाना प्रकार के उपद्रव मच रहे हैं, हम लोग आदि काल से राजभक्त प्रजा हैं, क्या इस समय हम लोगों को हँसी खेल में मत्त रहना उचित है?

सूत्र०—भाई! यह तो तुमने ठीक कहा परंतु हम लोग कर ही क्या सकते हैं और गवर्नमेंट को सहायता ही क्या दे सकते हैं?

परि०—क्यों नहीं, हम लोग बहुत कुछ कर सकते हैं। क्या तुमने इतिहासों को नहीं देखा है? तुम्हें विदित नहीं है कि प्राचीन

कवि लोग अपनी वीर कविता से राजपूत योद्धाओं का उत्साह बढ़ाकर कैसे उमंग के साथ लड़ा दिया करते थे ?

सूत्र०—हाँ हाँ यह सब तो हम जानते हैं पर इससे क्या ? हम कुछ कवि तो हैं ही नहीं कि युद्ध के समय उपस्थित रहकर वीरों का उमंग बढ़ा सकें।

परि०—तुमने समझा नहीं। काव्य दो प्रकार के होते हैं, एक दृश्य और दूसरा श्रव्य—दृश्य काव्य का जैसा शीघ्र असर होता है उसका अनुभव तो तुम्हें नित्य ही हुआ करता है। हमारी इच्छा है कि हम लोग ऐसे वीररसपूर्ण नाटक खेलें कि जिससे हमारे भारतीय वीरगण प्रोत्साहित होकर अपने शत्रुओं से जी छोड़कर लड़ें। भारतसंरक्षण अकेले अँगरेजों के किए कदापि नहीं हो सकता जब तक कि हिंदुस्तानी योद्धागण उनके साथ अपना पराक्रम न दिखलावें, क्योंकि यह हिंदुओं का देश है, हिंदू प्रजा ही यहाँ विशेष रहती है और सरकारी पल्टनों में भी हिंदू ही विशेष हैं, अतएव आज किसी ऐसे राजपूत वीर का चरित्र दिखाना चाहिए जिसके नाम सुनने ही से भारतीय वीरगण प्रोत्साहित हो जायँ।

सूत्र०—हाँ यह तो तुम्हारी सम्मति बहुत ही उचित है और इसी की समग्र भारतवासियों को कमी है, क्योंकि वे अपने पूर्वजों के उदार चरित्र भूल रहे हैं; उनका स्मरण कराना आवश्यक है। परंतु ऐसा कौन सा नाटक है ?

परि०—क्यों, मुद्राराक्षस, नीलदेवी, महारानी पद्मावती आदि कई एक नाटक हैं, जो इच्छा हो खेलो।

सूत्र०—नहीं नहीं वे सब तो कई बेर खेले जा चुके, अब कोई नवीन नाटक खेलना चाहिए जो मनोरंजक भी हो और उत्साहवर्द्धक भी हो।

परि०—आहा ! अच्छी याद आई, अभी हम लोगों के परम प्रिय भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र जी के वात्सल्यभाजन बंधु श्रीराधाकृष्ण-दास ने महाराणा प्रतापसिंह का नाटक लिखा है; उसको खेलो। वह समयानुकूल है, क्योंकि एक तो वीरकेशरी प्रातःस्मरणीय प्रताप-सिंह का पवित्र चरित्र, दूसरे जगत्प्रसिद्ध अकबर बादशाह का राजत्व-वर्णन सभी को अच्छा लगेगा और अकबर के काल से अँगरेजी काल में बहुत बातों में समानता भी है।

सूत्र०—बस बस ठीक कहा, चलो शीघ्रता करो। लोग उकता रहे हैं। (दोनों जाते हैं)

प्रथक अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—उदयपुर राजदरबार

(महाराणा प्रतापसिंह, भीमाशा मंत्री तथा कृष्णसिंह आदि सरदारगण)

[नेपथ्य में]

जय जय भानु-वंश में भानु।
जासु प्रताप प्रकाशित जग में चहुँ दिसि भानु समान।
जाके हृदय सदा ही जागत सुभग आर्य कुल कान॥
सोई या डूबे भारत असि रच्छन को इक स्थान॥

प्रतापसिंह—हाय ! मेरे हृदय में इस सिंहासन पर पैर रखते अग्निज्वाला सी भभक उठती है, यह राजसिंहासन कंटकमय प्रतीत होता है। मेरे प्यारे सरदारो ! जिस दिन से हमारे पिता ने इस आसन पर पैर रखा उसी दिन से इसका पतन आरंभ हुआ, इस उदयपुर का उदय हृदय को शोकाकुल कर देता है, हाय अंबर,

जोधपुर, बीकानेर आदि महाराज लोग आज दिन यवनों से घनिष्ठ संबंध करने और बेटी ब्याहने में अपने को धन्य मानते हैं और इसमें अपना गौरव समझते हैं और कहाँ तक, इस पवित्र सिसोदिया कुल के कलंक सक्ताजी ने भी अकबर के कृपापात्र होकर सेवकाई स्वीकार कर ली है।

कृष्णसिंह—महाराज आप यथार्थ कहते हैं, एक मान-संभ्रम ही में क्यों, खजाने की दशा भी तो शोचनीय हो रही है।

भीमाशा—यथार्थ आज्ञा होती है अन्नदाताजी। खजाने की तो बात ही न पूछिए, आज कै कै बरस से इन दुष्टों के उपद्रव और लड़ाई से मालगुजारी एक पैसा नहीं मिलती, स्वर्ग सदृश मेवाड़ प्रांत मानों जंगल हो रहा है।

प्रतापसिंह—ऐसी राजगद्दी से तो तापस वेष अच्छा। यदि यह बखेड़ा पीछे न लगा होता तो आज दिन हम एकांत में भगवान् का भजन तो करते होते! अब तो साँप छछुंदर सी गति हो रही है। हमने व्यर्थ इस गद्दी को कलंकित किया।

रामसिंह—महाराज, यह आप क्या कहते हैं? इस पवित्र वंश की महिमा स्वर्ग तक फैल रही है, बाप्पा रावल से लेकर आज तक इस गद्दी का नाम परमेश्वर ने रखा है। आप ऐसा जी न करें। सिंह के सिंह होते हैं। जिस समय आप कृपाणहस्त होकर सिंहनाद करेंगे, ये सब गीदड़ जहाँ के तहाँ दबक रहेंगे।

प्रतापसिंह—यह ठीक है; पर समय फिर गया है। देखिए, चारों ओर म्लेच्छगण छा गए हैं, राजपूत राजा लोग इनके संबंधी बनने में अपना अहोभाग्य मानते हैं। आप ही के घर के सक्ताजी ने उनकी वश्यता कर ली है। स्वदेशप्रेमी वीर राजपूतगण मन ही मन जल रहे हैं, ऐसे दु:समय में कहिए क्या हो सकता है?

कृष्णसिंह—महाराज, आपका ध्यान किधर है? इन बातों को आप कभी स्वप्न में भी न बिचारिए। परमेश्वर बड़े ही को बड़ा करता है, जिसके हाथ असिधारण करने की सामर्थ्य है, जिसका हृदय साहस और बल से पूर्ण है, जिसका मस्तिष्क स्वाधीन भाव से भरा है उसी महापुरुष के सिर राजमुकुट शोभा देता है। उसके वीर दर्प के आगे किसकी सामर्थ्य जो ठहर सके? देखिए सिंह को मृगराज कौन बनाता है? गरुड़ को पक्षिराज का तिलक किसने किया है? और आपके पूर्वजों को इस राजासन पर किसने बिठाया है? केवल अपने बाहुबल ने, अपने स्वाभाविक तेज ने, अपने हृदय की दृढ़ता ने। सूर्य का प्रकाश होने पर भी क्या दुष्ट चोरगण इधर उधर नहीं भागते? क्या प्रताप के प्रतापोदय होने पर ये दुराचारी खड़े रह सकते हैं।

मानसिंह—महाराज तनिक आँख खोलकर देखिए। इस समय स्वदेशभक्त प्रजामात्र आपकी बाट जोह रही है; वीरों की दक्षिण भुजाएँ बार बार आप ही के भरोसे फड़क रही हैं, सब एक दृष्टि आप ही की ओर देख रहे हैं, आपके उठने ही से फिर सब सामान एकत्र हो जायँगे! संसार में कीर्ति ही मुख्य है, शरीर का क्या है, यह तो नाशमान हई है। आप स्मरण करें किस महान् वंश में आपका अवतार हुआ है। सिंह के बच्चे को क्या कोई शिकार करना सिखा सकता है? आप क्या अपने कुल का यह वाक्य भूल गए?—

"जो हठ रक्खै धर्म को तेहि रक्खै करतार"

[नेपथ्य में]

सिसोदिया कुल साख, जान चहत बिन तुव उठे।
राखि सकै तो राख, यह अवसर पैहै न फिर॥

प्रतापसिंह—हैं! यह अमृतवर्षा किसने की ?

चोबदार—धर्मावतार, कविराजा जी पधारते हैं।

प्रतापसिंह—आदर के साथ लिवा लाओ।

[कविराजा का प्रवेश]

कविराजा—घणी खमा अन्नदाता—

गुणगाहक नरपाल, राजपूत-कुल केशरी।
गो-ब्राह्मण-प्रतिपाल, तुव प्रताप दिन दिन बढ़े॥

कृष्णसिंह—कविराजा जी, आप बड़े समय पधारे। इस समय इस राज्य की वर्तमान दशा पर विचार हो रहा था। ऐसे समय में आपका पधारना परम मंगलसूचक है।

कविराजा—महाराज, इस समय का विचार ही क्या ? सुनिए—

जब लौं उगे न भानु तबहिं लौं जग अँधियारो।
जब प्रताप भयो उदय भयो मंगल जग सारो॥
जबहि धार असि हाथ सिंह सम टुक हंकारो।
तबहिं शत्रु धड़ शीश आपुही ह्वैहैं न्यारो॥
शत्रु नारि सौभाग्य तजि विधवा लच्छन धारिहैं।
बालक गण निज पितृ को तबही पिंडा पारिहैं॥

खंडेराव—वाह कविराजा जी वाह, क्या अच्छी बात कही है, भविष्यत् का कैसा सुंदर चित्र आँख के सामने खींच दिया है।

कविराजा—महाराज सुनिए, पूर्वपुरुषों की कीर्ति सुनिए—

सूर्यवंश इक्ष्वाकु जगत में कीरत छाई।
प्रगटे पूरन ब्रह्म राम रावनहि नसाई॥

तिनके लव सुत भए शत्रु हति कीरति थापी।
बापा तिनके वंश जासु भय पृथ्वी काँपी॥
जनमे जंगल माहिं आइ चित्तौरहिं छीन्यौ।
मोरि वंश परमार मार मेवारहिं लीन्यौ॥
हिंदूपति हिंदूकुल सूरज नाम धारिकै।
हिंदू जस की ध्वजा उड़ाई गगन फारिकै॥
नवएँ भए खुमान पराक्रम जग में छायो।
काबुल लौं करि विजय मुहम्मद कैद बनायो॥
समरसिंह भए समरसिंह भारत-रखवारे।
पृथ्विराज सँग यवन जूझि सुरपुरी सिधारे॥
कर्म देवि पति राज्य पुत्र सह रच्छन कीनो।
कुतुबुद्दिनहिं हराइ यवन मसि टीका दीनो॥
करणसिंह तब यथासमय निज राज सँभार्‌यो।
ता सुत रावल महप तिनहिं झालोरे मार्‌यो॥
रहपसिंह झालोर मारि निज राजहिं थाप्यो।
रावल नामहिं पलटि महाराणा जग छाप्यो॥
रतनसेन या वंश आप संभ्रमहिं बढ़ायो।
अलादीन के दाँत तोड़ि निज धर्म बचायो॥
ग्यारह पुत्र कटाइ बारहें अजय बचायो।
ठानि जहरब्रत नारि धर्म कुलधर्म रखायो॥
अजयसिंह करि विजय केलवाड़ा बस कीनो।
मुंज अचानक अजय सीस में घाव जु दीनो॥
सोइ जो लावै मुंज सीस युवराज हमारो।
तव पुत्रन प्रति यह आज्ञा महराज प्रचारो।
निज पितु शत्रु हराइ मँज सिर हम्मिर काटे।

बैठे तब हम्मीर केलवाड़ा के पाटे ॥
मुहमद शा करि कैद चित्तौरहिं फेरि बसायो ।
यवन दर्प दरि आर्य ध्वजा आकाश उड़ायो ॥
प्रबल पराक्रम खेतसिंह जब गादी पायो ।
यवन मारि अजमेर जीत निज राज मिलायो ॥
जहाजपुर दच्छिण लों जय करि राज बढ़ायो ।
यवन सीस पग धारि बैर अपनो पलटायो ॥
लक्खो राणा सीस राजलक्ष्मी तब आई ।
लक्ष्मी चारों ओर मनहुँ छाई छितराई ॥
किए पहाड़ो प्रांत आप बस रत्नखानि सह ।
सोना चाँदी रत्न अमोलक जड़े महल मह ॥
किले महल बहु बने राजश्री चहुँ दिसि राजे ।
फीके शत्रुहिं किए अटल सिर छत्र बिराजे ॥
प्रबल पराक्रम साथ पौत्र कुंभा जब बैठे ।
शत्रु-हृदय दलमले क्रूर कायर घर पैठे ॥
कविकुल-मुकुट कहाइ नाम थिर जग में थापे ।
विजय कियो गुजरात यवन हिय भय सों काँपे ॥
याही कुल रानी मीरा जग कीरति छाई ।
गिरधरलाल रिझाइ बहुत विधि लाड़ लड़ाई ॥
राणा साँगा कीरति जग मैं को नहिं जानै ।
जाके असि को तेज शत्रु जिय सहजहिं मानै ॥
बाबर को बावरो कियो रण-स्वाद चखाई ।
कितेक राजा रावल रावत सिरहिं नवाई ॥
रत्नसिंह मेवाड़ रत्न निःसंक सदाई ।
पुर के फाटक रात दिवस राखे खुलवाई ॥

निज भुजबल नहिं घुसन दिए यवनन रजधानी।
जिनके यश की सदा जगत में चली कहानी॥
बिगत निसा भए उदय भानु खल लंपट लाजे।
चहुँ दिसि छयो प्रताप-सिंह लखि गीदड़ भाजे॥
अब सोचन की बात कौन है शूर बीर गन।
उठो उठो कटि कसो याद करि निज पवित्रपन॥
जिनके नायक खुद प्रताप तिनको का संसय।
जिनकी टेढ़ी भृकुटी लखि भाजत जग के भय॥
जबलों जीवन देह तबहि लौं जग के झंझट।
आपु मुए जग परलय तासों सुनहु महा भट॥
जब लौं घट में प्रान न तबलौं छूअन दीजै।
यवन सैन मेवारहिं लखि लखि हाथनि मीजै॥
पिंजरबद्ध बिहंगम से परवस जीवन धिक।
जब लौं जीवन रहै दुःख नहिं होइ मानसिक॥
अब विलंब को काज नहीं असि बेग उठावहु।
निज प्रताप अब हे प्रताप अरिगनहिं देखावहु॥
कोउ काज जग कठिन नहीं जौ दृढ़व्रत धारो।
तातें हे नरव्याघ्र बेगि रन घोष प्रचारो॥
आगो पीछो त्यागि होहु सब एक प्रेममय।
यह निहचय जिय धरौ धर्म जित जय तित निसचय॥

प्रतापसिंह—(आवेश से खड़े होकर) सुनो सुनो मेरे वीर सरदारो—

जब लौं तन में प्रान न तब लौं टेकहि छोड़ौं।
स्वाधीनता बचाइ दासता शृंखल तोड़ौं॥

जो निज कुल मरजाद सहित जीवन तौ जीवन ।
नहिं तातें शत गुणित मरन रन मैं जस पीवन ॥
जौ पै निज शत्रुहिं मारि कै यह परतिज्ञा राखिहौं ।
तौ या सिंहासन्न पै बहुरि पग धारन अभिलाखिहौं ॥

[पटाक्षेप

द्वितीय गर्भांक

स्थान—उदयपुर का किला

(सैनिकगण)

१ सैनिक—क्यों भाई, कुछ तुमने भी सुना ?

२ सैनिक—कौन बात ?

१ सैनिक—सुना है चित्तौर उद्धार के हेतु दर्बार तयारी कर रहे हैं ।

२ सैनिक—उड़ती उड़ती खबर तो हमने भी सुनी है, भगवान् श्री हजूर को सुमति दे कि जल्दी ही उधर की ओर रुख करें । भाई वीरसिंह, अब तो सही नहीं जाती ।

वीरसिंह—हम लोग तो उसी समय नहीं हटते थे पर क्या करें बड़े दर्बार ने माना नहीं, नहीं तो चित्तौर ले लेना इन लोगों को मालूम हो जाता ।

१ सैनिक—इसमें कौन संदेह था, देखो एक वीरवर जयमल अड़ गए तो दो घड़ी लग गई और जान पड़ा कि चित्तौर लेना कैसी टेढ़ी खीर है ।

वीरसिंह—जयमल और पुत्त ने संसार में अपनी कैसी कीर्ति छोड़ी ! हाय ! हम अभागे थे जो उस समय काम न आए ।

१ सैनिक—भाई मालिक को भी तो अकेला छोड़ना उचित न था। करते क्या? अच्छा, क्या चिंता है, प्रतापसिंह के प्रताप का अब उदय हुआ ही चाहता है, अब ये कहाँ टिकते हैं। जैसे भगवान् सूर्यनारायण के उदय होते ही चोर लंपट अंतर्धान हो जाते हैं, देखना वैसे ही उनका उदय यवनों को नाश कर देगा।

वीरसिंह—हाँ हाँ और क्या, अब वह समय पहुँचा ही चाहता है, सब लोग दृढ़ रहो, देखें कौन कहाँ तक वीरता दिखाता है।

१ सैनिक—अजी हम सब तयार हैं, प्राण रहते तो कोई हटते ही नहीं पर सिर कटने पर भी धड़ दो एक को ले ही मरेगा।

वीरसिंह—देखो देखो श्री हजूर की सवारी इधर ही को आखेट को पधारती है। आओ हम लोग ऐसे गीत गावैं जिसमें और भी हमारे मालिक का उत्साह बढ़े।

(सब सैनिक गाते हैं)

तजि सोच उठौ सब बीर बाँधि दृढ़ आसा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा॥
दुखमय परबस की रैन अहो सब बीती।
दिन गए यवनगन जो चितौर गढ़ जीती॥
चलि बेग लगाओ मसि उनके मुख चीती।
कसि कमर उठौ अब एक होइ करि प्रीती॥
सब भाजहिंगे लखि इनको तेज विकासा।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा॥ १॥
चलि शत्रुन के दल भेदि निसान उड़ावैं।
फिर चित्रकूट पर आर्य ध्वजा फहरावैं॥
आनँद सो सब मिलि नाचैं कूदैं गावैं।
स्वाधीन दिवस सब सुख सों सदा बितावैं॥

निर्द्वंद होहु चित चाव बढ़ाइ हुलासा ।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ॥ २ ॥
अपनी अपनी करतूति सबै दिखराओ ।
लरि लरि अरि सैनहिं इत तें तुरत भगाओ ॥
जड़ सों भारत तें इनके नाम मिटाओ ।
फिर आर्य सुजस की नदी पवित्र बहाओ ॥
करि कैं अब विजय मिटाओ जग परिहासा ।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ॥ ३ ॥
परसन्न होइ परताप जबहिं प्रगटायो ।
तो विजय महूरत अब तुम्हरे दिसि आयो ॥
चूकौ जिनि समयो ऐसो सुंदर पायो ।
तुम्हरे सिर राजत छत्र प्रताप सुहायो ॥
उत्साह सहित उठि कीजै शत्रु विनासा ।
अब भयो भानुकुल भानु प्रताप प्रकासा ॥ ४ ॥

(सभों का प्रस्थान)

तृतीय गर्भांक

स्थान—उदयपुर—अंतःपुर

(महाराणा विराजमान हैं)

महाराणा—कैसा कठिन समय उपस्थित हुआ है ! जब से यहाँ मुसलमानों के कदम आए सारा देश उजाड़ हो गया, खजाना खाली पड़ा है, खेत ऊसर हो रहे हैं, सारी श्री जाती रही, जिस वंश की उन्नत ध्वजा सदा आकाश भेद कर उड़ा करती थी, हाय ! आज वह वंश भी अपनी आँखों से चित्तौरगढ़ में विजातीय शत्रुओं का निवास चुपचाप सहन कर रहा है। पितृचरण ने न जाने क्या

और किस जीवन के लाभ से जीते जी चित्तौर छोड़ दिया और अपने शरीर में प्राण रहते भी शत्रुओं को प्रवेश करने का अवसर दिया। धन्य है वीरवर जयमल और पुत्त को कि जिन्होंने उस डूबती हुई मेवाड़ की कीर्ति को कुछ तो ठहरने का ठिकाना किया। आह! कैसी वीरता और साहस के साथ प्रबल पराक्रमी शत्रुओं का गतिरोध किया था। क्या उनकी अक्षय कीर्ति कभी लोप हो सकती है? ऐसे पुरुषरत्न क्या हमें सहायक मिलेंगे? जो चार वीर ऐसे साहसी हमें मिलें तो हम प्रतिज्ञापूर्वक मेवाड़ ही से क्या सारे भारत से इनको निकाल दें। पर क्या हुआ जो हमारे राज्य में इन्होंने प्रवेश किया है, हमारे हृदय पर तो हमारा पूरा अधिकार है। लाख लाख कठिनाइयों के पहाड़ गतिरोध करने को क्यों न खड़े हों परंतु प्रताप के वेग को कौन रोक सकता है? यद्यपि इस समय राजस्थान के सब राजाओं ने स्वार्थ के वश होकर आत्मविस्मरण कर दिया है, इन विधर्मी शत्रुओं के साथ संबंध कर लिया है और यहाँ तक कि हमारे ही छोटे भाई ने अकबर से मित्रता कर ली है, परंतु क्या इससे हम कभी हताश हो सकते हैं? कभी नहीं, यदि इन कुलांगारों को अपना प्रताप न दिखाया और इनकी इस नीचता के लिये लज्जित न किया तो मेरा नाम प्रतापसिंह नहीं। अपने पिता के लिये हम बहुत शीघ्र रामगंगा में स्नान करके प्रायश्चित्त करेंगे। हमारे हृदय में शक्ति चाहिए, हमारे हाथ में बल चाहिए फिर हमारे आगे कौन ठहर सकता है? देखो, हमारे वंश के मूल पुरुषों ने कैसे पराक्रम और साहस के कर्म किए हैं। भगवान् श्रीरामचंद्र जी ने अपने ही बाहुबल से बानर और भालुओं की निमित्त मात्र सैन्य बनाकर रावण ऐसे प्रबल शत्रु का विनाश किया था, बाप्पा रावल ने खुरासान तक विदेश में जाकर अपनी ध्वजा फहराई थी,

खुमान ने काबुलियों का सारा कट्टरपन भुला दिया था, योंही बराबर एक से एक वीर होते ही गए, क्या उनके पवित्र कुल में जन्म धारण करके हम इस कुल को कलंकित करें ? कभी नहीं, और फिर जैसी कठिनाइयाँ उन्हें झेलनी पड़ी थीं उनसे तो कहीं कम हमारे आगे हैं। हम तो अपने घर अपने स्वदेशप्रेमी वीरों के बीच में बैठे हैं। इन भुनगों को दूर करना हमारे लिये क्या बड़ा भारी काम है। भगवान् इस समय सानुकूल प्रतीत होते हैं। जिधर देखते हैं उत्साह दिखाई देता है, जिससे सुनते हैं उमंग-भरी बातें कान में आती हैं। क्या ऐसा अवसर चूकने योग्य है ? कभी नहीं, और फिर ऐसे पराधीन निर्जीव जीवन से तो मरना ही उत्तम ! या तो चित्रकूट गढ़ की ऊँची शिखर पर सिसोदिया कुल की पवित्र ध्वजा फहराती देखकर अपनी छाती ठंढी करेंगे अथवा अचल कीर्ति संसार में छोड़-कर अक्षय धाम के सिंहासन पर अधिकार करेंगे। (आवेश में) प्रताप-सिंह ! तुझे अपनी जननी के दूध की सौगंध है जो प्राण रहते कभी इन म्लेच्छों के निकालने की चेष्टा से निरस्त हो। जो अपनी प्रतिज्ञा पालन कर सके तो वीर माता का दूध पीना सफल है, नहीं तो ऐसे जीवन पर धिक्कार ! अकबर अपने को बड़ा प्रतापी, बड़ा चतुर, बड़ा वीर लगाता है, दक्खिन का राज्याधिकार करके उसे बड़ा गर्व हुआ है, राजपुताने के कुलांगारों को अपना साला सुसरा बनाकर बड़ा फूला है, अपना राज्य अटल समझता है। परंतु प्रताप ! तेरा नाम तभी है जब तू इस रावण सरीखे शत्रु का मुकुट अपने चरण-तल में मर्दन करे। कुछ चिंता नहीं, जो इसका दर्प चूर्ण न किया तो संसार में अपना मुँह न दिखाऊँगा। (नेपथ्य की ओर देखकर) अच्छे अवसर पर राजमहिषी आ रही हैं। इनके मन की थाह तो लें। देखें ये कितने पानी में हैं।

[राजमहिषी का प्रवेश]

रानी—आर्यपुत्र की जय हो ! क्या मैं सुन सकती हूँ आज आपकी चिंता का क्या कारण है ?

महाराणा—भला तुमसे न कहेंगे तो किससे कहेंगे ? हम तो अभी तुम्हें बुलाने ही वाले थे, अच्छे अवसर पर तुम्हारा आना हुआ। हम इस समय यहाँ सोच रहे थे कि इस कठिनाई के समय में हमें क्या करना उचित है ? क्या हम भी जयपुर की तरह अपनी प्राण से भी प्यारी बेटी को यवनराज की भेंट करके अपना झूँठा साज बाज बढ़ावें और अपने बड़ों की कीर्त्ति को मिट्टी में मिलावें ?

रानी—महाराज कभी नहीं। आपको ऐसा कभी विचारना ही न चाहिए। ऐसा विचार भी करने से प्रायश्चित्त लगता है। विचारी भोली भाली हिंदुओं की लड़कियाँ अपना भला बुरा क्या जान, उनका तो सुख दुख सब माँ बाप के हाथ है, जो वे किसी लोभ में पड़कर वा प्राण के डर से उनका सर्वनाश करते हैं तो न केवल अपनी कुलमर्यादा को उल्लंघन करके संसार में अपयश के भागी होते हैं वरन् उन्हें परमेश्वर के यहाँ भी उत्तरदाता होना पड़ता है। मैं तो कभी अपनी प्यारी बेटी को म्लेच्छ-कुल-कलंक की हवा भी न लगने दूँगी चाहे आप भी इसमें बुरा मानें तो मानें और फिर महाराज यह जीवन कितने दिन का ! इस नाशमान शरीर की रक्षा के लिये अपने कुल को कलंकित करना कभी उचित है ? मैं तो स्त्री हूँ, मेरी तो छोटी बुद्धि है पर मेरी दो ही इच्छाएँ हैं; या तो इन विजातीय शत्रुओं को मारकर महाराज के साथ चित्तौर राजसिंहासन की गौरव के साथ अधिकारिणी बनूँ अथवा वीरदर्प से गिरे हुए महाराज के पवित्र शरीर को अपनी गोद में

लेकर हँसते हँसते भारत रमणियों का मुख उज्ज्वल करके पतिलोक में आपसे मिलूँ।

महाराणा—साधु महाभागे, साधु! प्रतापसिंह की अर्द्धांगिनी होने का अधिकार तुम्हारे अतिरिक्त किसको है? तुम निश्चय रखो जब तक इस शरीर में प्राण हैं हम कभी इन म्लेच्छों की अधीनता स्वीकार न करेंगे।

[धूलिधूसरित राजकुमार का प्रवेश]

राजकुमार—(रानी की पीठ पर लपटकर तुतलाते हुए) माँ! दलबाल जवनों का छिकाल खेलने जाँयगे।

रानी—(मुख चूमकर) हाँ, हाँ बेटा तुम भी जरूर जाना। अच्छा बताओ तो हमारे लिये क्या लाओगे।

राजकुमार—भाई अम तो छहजादा को मालैंगे उछके गले की हीले की कंथी ले आवेंगे छो तुमको देंगे औल उछकी तलबाल दलबाल को देंगे और तोपी हम लेंगे?

महाराणा—भला मुसलमान की जूठी टोपी तुम पहिरोगे?

राजकुमार—काहे तुमी न कहते थे कि लाजा का मुकुट जूथा नहीं होता?

(महाराज गोद में लेकर मुख चूमते हैं)

[नेपथ्य में गान]

सबै मिलि सावधान अब होय।
उदय होत भारत नभ सूरज तिमिर यवन कुल खोय॥
अपुने अपुने काज सँभारहु तजि आलस सब कोय।
करहु पवित्र शत्रु यवनन के रुधिर भूमि को धोय॥

महाराणा—ओह! बड़ी देर हो गई। दरबार का समय हो गया। सुना है मानसिंह दक्षिण विजय करके आते हैं, उदयपुर भी

रहनेवाले हैं, इनके आतिथ्य का भार मंत्री को सौंपा है क्योंकि हम तो उस म्लेच्छप्राय हिंदू कुलकलंक का मुख नहीं देखना चाहते।

(प्रस्थान)

(इति प्रथम अंक)

द्वितीय अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—दिल्ली, जनाना मीना बाजार

(एक से एक चढ़ बढ़कर तैयारी की दूकानें और उन पर रूपवती स्त्रियाँ सौदा बेचती हुईं। बड़े-बड़े घरों की बहू बेटियाँ सखियों के साथ घूम रही हैं। अकबर एक ऊँची खिड़की से चिक की ओट में दिखाई देता है।)

[पृथ्वीराज * की रानी का प्रवेश और एक वृद्धा का उसके पास आगमन]

वृद्धा—बेटी तू किसी बड़े घराने की जान पड़ती है। जो तुझे बाजार की सैर करने की ख्वाहिश है तो आ मैं तुझे सैर करा दूँ, क्योंकि बहुत बड़ा बाजार है, तू नाहक फिरैगी।

रानी—आप कौन हैं?

वृद्धा—ऐं, मैं इसी शहर की रहनेवाली हूँ, कोई नंगी लुच्ची नहीं हूँ। तुम डरो मत, तुमसे मैं कुछ सवाल न करूँगी।

रानी—(मन में) जान पड़ता है इसी कुटनी के द्वारा अकबर अपनी घृणित इच्छा को चरितार्थ करता है। शकुन तो अच्छा

---

* महाराज बीकानेर का भाई और अकबर का दरबारी सरदार।

मिला। आज यदि भगवान् की कृपा होगी तो इन सभों को इसका मजा चखाऊँगी।

वृद्धा—(चटक मटक कर) ऐ बलैया लूँ; बेटी तू किस सोच में पड़ी है, मैं तुझे ऐसी ऐसी सैर कराऊँगी कि तू खुश हो जायगी।

रानी—नहीं नहीं और कुछ नहीं सोचती थी—आपकी भलमनसाहत सोच रही थी। (मन में) भला नानी देखें आज तू मुझे सैर कराती है या मैं तेरे बाप के साथ तुझे जहन्नुम की सैर कराती हूँ।

वृद्धा—यह आपकी मेहरबानी है, मैं किस काबिल हूँ? (मन में) वह मारा अब कहाँ जाती है। आज का शिकार तो बहुत ही नफीस है। आज भारी गठरी हाथ आएगी। (प्रगट) अच्छा हुजूर, अब इधर मुलाहिजा फर्मावें, यह जौहरिन की दूकान है, कैसे कैसे बेबहा जवाहिरात रौनकबख्श हैं कि जिनकी चमक से सारा बाजार खिल रहा है। (हँसकर जौहरिन की ओर देखकर) और बी जौहरिन ने तो अपने याकूत लब गौहर दंदाँ की आब के आगे सब को मात कर रखा है।

जौहरिन—(भौंह टेढ़ी करके) चल मुई बूढ़ी खब्बीस, तुझे हर वक्त दिल्लगी सूझती है। (रानी से) हुजूर देखें यह याकूत की अंगुश्तरी कैसी खूबसूरत है। यह हुजूर ही के काबिल है। (रानी अँगूठी लेकर देखती है।)

एक सखी—(वृद्धा से) क्यों बूआ, अब भी जो तुम्हें ये जेवरात पहिरा दिए जायँ तो क्या किसी से कम जँचो?

वृद्धा—(प्रसन्न होकर) अब क्या बेटी, जब हमारा जमाना था तब था अब तो बूढ़े मुँह मुँहासे।

जौहरिन—नहीं नहीं, ऐसा क्यों जी छोटा करती हो। अब भी तुम्हारे कदरदान—

वृद्धा—(रानी से) ए हुजूर, जो लेना देना हो लेकर चलिए। अभी बहुत बाकी है। नावक्त हो जायगा।

रानी—ठीक है। (एक सखी से) यह अँगूठी ले लो।

(अँगूठी का दाम देकर सब आगे बढ़ती हैं)

वृद्धा—देखिए ये बजाजिन की दूकान है और इस मनिहारिन को इधर मुलाहिजा फर्माइए। मुसौवरिन की दूकान पर कैसी कैसी खूबसूरत तस्वीरें आवेजाँ हैं, अहाहाहा! यह देखिए हमारे बादशाह सलामत की तस्वीर है ओ हो हो। कैसा शवाब है!

(रानी के मुँह की ओर देखती है)

रानी—(घृणा नाट्य करती हुई मन ही मन) भला चढ़ो देखा जायगा तेरा यह शवाब। (प्रकाश) यह सुंदर चित्र किस स्त्री का है?

मुसौ०—हुजूर यह बादशाह की बेगम जोधाबाई की तसवीर है।

रानी—यह वही कुलकलंकिनी है?

वृद्धा—(मन में) घबराइए न। अभी आपकी भी कलई खुली जाती है। (प्रकाश) ऐ हुजूर, वक्त नावक्त होता है। अभी हुजूर को बड़ी बड़ी सैर करानी है। एक एक दूकान पर इतनी देर करने से कैसे काम चलेगा?

मुसौ०—मर राँड़ मुँहजली, तेरे मारे किसी का भला काहे को होने पाएगा।

(रानी हँसकर एक चित्र मोल लेकर आगे बढ़ती है और वृद्धा रानी को दिखाते ही दिखाते नेपथ्य की ओर चली जाती है।)

[पटाक्षेप

द्वितीय गर्भांक

स्थान—दिल्ली, बादशाही महल के भीतर एक अँधेरा रास्ता

(पृथ्वीराज की रानी की सखियाँ घबराई हुईं)

१ सखी—यह क्या अँधेर हुआ, महारानी कहाँ चली गईं, कुछ पता नहीं लगता। यह ठग की बुड्ढी न जाने किधर महारानी को लेकर गुम हो गई। हाय! अब क्या करें?

२ सखी—हम सब तो बेमौत मारी गईं। अब महाराज को चलकर कौन मुँह दिखाएँगी?

३ सखी—अरे अभी तो हम लोगों के साथ थीं; इतने ही में वह निगोड़ी महारानी को लेकर किधर समा गई?

४ सखी—हा! हमारी सखी की कौन जाने क्या दशा होती होगी। हम लोगों ने साथ ही रहकर क्या किया?

५ सखी—महाराज जब सुनेंगे उनकी क्या दशा होगी? हममें से एक को भी जीता न छोड़ेंगे।

(व्याकुल होकर इधर उधर घूमती हैं)

[एक खवासिन का प्रवेश]

खवासिन—तुम सभों ने क्या शोर मचा रखा है? जानती नहीं हो यह शाही महल है? यहाँ अदब से रहना चाहिए।

१ सखी—हम सब अदब क्या जानें! इस समय तो हम लोगों का जी ठिकाने नहीं है। हमारी रानी का पता नहीं लगता। बहिन तुम जानती हो तो बताओ, बड़ा जस मानेंगी।

खवासिन—(मुस्कराकर) तुम्हारी रानी? तुम्हारी रानी इस वक्त हमारी रानी बनी है। तुम लोग घबराओ मत।

२ सखी—चल लुच्ची! तुझे इस समय भी हँसी सूझती है! सच सच बता हमारी रानी कहाँ हैं?

खवासिन—(हँसकर और चमककर) ऐं ! तुम मानती ही नहीं हो तो हम क्या कहें ? अच्छा अभी दम भर में देखना तुम्हारी रानी मालामाल यहीं पहुँचती हैं । यह तो शाही महल है, यहाँ का दस्तूर है कि खाली आवे और भरी जावे । (व्यंग्यपूर्वक हास्य)

सखियाँ—(रूखी होकर) चल निगोड़ी, तेरा सत्यानाश हो। तेरी जीभ निकाल लें ।

खवासिन—(ँसकर) तो तुम सब क्यों रश्क खाती हो, चलो न तुम सभों का भी बंदोबस्त हम किए देते हैं । यह शाही महल है । यहाँ कमी क्या है ?

(सब सखियाँ उसे पकड़ने को दौड़ती हैं और
वह हँसती हुई भागती है)

[पटपरिवर्तन

तृतीय गर्भांक

स्थान—बादशाही महल में एक सुसज्जित कमरा

(अकबर उत्कंठित भाव से इधर उधर घूमता और
द्वार की ओर देखता है)

[नेपथ्य में गान]

मधुकर काहे को अकुलात ।
खिलन चहत पंकज की कलियाँ अब न दूर परभात ॥
यह पराग तेरे ही बाँटे क्यों नाहक ललचात ।
छन ही छकिकै प्रेम सुधा तू डोलेगो इतरात ॥

अकबर—हाय ! मैं इतना बड़ा शाहनशाह, मेरे यहाँ दुनियाँ के ऐशो इशरत के सामान मुहय्या, मगर मेरे दिल को एक दम भी राहत नहीं, शबोरोज फिक्र, लहज: बलहज: तरद्दुदात, रोज नई ख्वाहिशें, रोज नए हौसिले और हाय ! इन गुलबदनों की चाह ने

तो मुझे पागल ही बना दिया। कितनी देर से कितने कामों का हर्ज करके बावला सा यहाँ घूम रहा हूँ मगर अब तक सिवाय हसरत के कुछ हाथ न आया। (नेपथ्य में पैर की आहट सुनकर) मालूम होता है बी नसीरन हमारे गुलेमुराद को लिए आ रही हैं। किसी ने खूब कहा है—

"वादए वस्ल चूँ शवद नजदीक।
आतिशे शौक तेजतर गर्दद॥"

(द्वार खुल जाता है और वृद्धा का रानी का हाथ
पकड़कर खींचते हुए प्रवेश)

वृद्धा—उम्रो दौलत की खैर, तरक्किए जाहो हशमत, मुरादें भरपूर—लौंड़ी दुआगो अब रुखसत की तलबगार है।

रानी—(वृद्धा को पकड़कर) क्यों री हरामजादी, यही सैर कराने लाई थी, अब चली कहाँ ?

वृद्धा—(हाथ छुड़ाकर मुस्कराती हुई) बेटा, दम भर बाद इसी सैर को फिर जन्म भर तरसोगी।

(रानी वृद्धा को एक लात मारती है; वह गिर पड़ती है और
उठकर कमर पकड़े गिरती पड़ती बड़-बड़ करती जाती है)

अकबर—(रानी के पास आकर) प्यारी, इधर आओ, जरा आराम फर्माओ, किस सोच में हो, देखो यह वह शाहनशाहे दिहली जिसकी निगाह की कोर दुनिया के बादशाह देखते रहते हैं आज तुम्हारे कदमों की गुलामी की ख्वाहिश करता हाजिर है।

रानी—(मुँह फेरकर और रूखे स्वर से) देख अकबर, तू बहुत बड़े सिंहासन पर बैठा है। ऐसे दुष्कर्मों से इस राजसिंहासन को कलुषित न कर और मुझे अभी मेरे घर पहुँचा।

(अकबर रानी का हाथ पकड़ना चाहता है और रानी झटककर हट जाती है)

अकबर—ऐ जानेजाँ, इस नीमजाँ को अब न सताओ। तुम्हारे इस जाँनिसार ने इसी वक्त तुम्हारी नाजनी अदा पर जो कवित्त तसनीफ किया है उसको भी जरा सुन लो—

"शाह अकब्बर बाल की बाँह अचिंत गही चल भीतर भौने।
सुंदरि द्वार ही दृष्टि लगाय के भागिवे की श्रम पावत गौने॥
चौंकत सी सब ओर बिलोकत संक सकोच रही मुख मौने।
यों छबि नैन छबीले के छाजत मानो बिछोह परे मृगछौने॥

रानी—(क्रोध से) देख नराधम दिल्लीपति कुलांगार! मैं राजपूत बाला हूँ, मेरा अंग स्पर्श न करना, नहीं अभी तुझे भस्म कर दूँगी।

अकबर—(हाथ जोड़कर) नहीं, नहीं, खफा होने की बात नहीं है, देखो, यह नौलखा हार, यह बेशकीमत चंपाकली, यह बेबहा मोतियों का सतलड़ा, ये सब एक से एक उमदा जवाहिरात सब तुम्हारी नजर हैं और यह दिल्ली का बादशाह हमेशः के लिये तुम्हारा गुलाम है। आज अपनी जरा सी मेहर की निगाह से बादशाहत को बिला कीमत खरीद सकती हो।

रानी—(लाल लाल आँखें निकालकर और निर्लज्ज भाव से) क्यों रे नर-पिशाच, तू मेरी बात न सुनेगा? क्या तेरा काल ही तेरे सिर पर नाच रहा है? क्या आज मुझी को नरपतिहत्या से अपना हाथ अपवित्र करना होगा? सुन, मैं तेरी सब दुष्टता सुन चुकी हूँ और आज तेरे हाथ से निर्बोध राजपूत बालाओं के सतीत्व-रक्षार्थ मैं तैयार होकर आई हूँ। तुझसे फिर भी यही कहती हूँ कि अपने इस नीचता के काम को छोड़ और अपने कर्त्तव्य की ओर देख।

(अकबर फिर रानी का हाथ पकड़ना चाहता है। रानी झपटकर अकबर को धरती पर पटककर अपनी कमर से छिपाए कटार को निकाल अकबर की छाती पर बैठ क्रोध से हाँफती हुई)

रानी—ले नराधम, जो तू मानता नहीं तो आज तेरा यहीं निबटेरा किए देती हूँ और तेरे बोझ से पृथ्वी को हलका करती हूँ। (कटार अकबर के गले के पास ले जाती है)

अकबर—(आर्त्तस्वर से) तौबा तौबा, मैं हाथ जोड़ता हूँ, मेरी बात खुदा के लिये सुन लो, मुझे न मारना, मेरी एक बात सुन लो—

रानी—कह, क्या कहता है।

अकबर—मैं अपने गुनाहों के लिये सख्त नादिम हुआ, मेरा क़ुसूर मुआफ करो, मेरी जाँ-बख्शी करो, मैं खुदा की कसम खाकर कहता हूँ, मुझे मेरी उम्र नातजुर्बाकार और दुनियावी यारों ने धोखा दिया। मैं अब तक इस पाकदामनी, इस बहादुरी, इस नेकचलनी को कभी ख्वाब में भी न सोच सकता था। मेरे ख्याल में औरतों का रकीक दिल तमः के फंदे से फाँसना आसान था। वह परदा आज दूर हुआ। मुझे बखशिए। लिल्लाह मुझे बखशिए। अब कभी किसी के साथ ऐसा गुनाह सरजद न होगा।

रानी—मुझे तेरी बात का विश्वास कैसे हो? हाय! जिन राजपूत वीरों की सहायता से आज तुझे यह प्रताप प्राप्त हुआ है, रे कुलांगार, उन्हीं की बहू बेटियों पर हाथ डालते तुझे लज्जा नहीं आती! धिक्कार है तुझको!

अकबर—आप मुझ नापाक गुनहगार को जितना धिक्कार दें बजा है मगर याद रखें, यह हुमायूँ का बेटा अकबर जब कि खुदायपाक के नाम पर आज अहद करता है अगर कभी फिर उससे

यह गुनाह हुआ तो इस दुनिया में मुँह न दिखायगा। अब मुझे ज्यादा न शर्माएँ और मेरी जाँ बखशी करें।

रानी—देख, तू बड़ा बादशाह है। मेरे स्वामी ने तेरा नमक खाया है इसलिये तुझे आज छोड़ देती हूँ परंतु समझ रख, तेरा राज्य केवल राजपूतों के बाहुबल से है। यदि आज पीछे कभी तेरी यह हरकत सुनने में आयगी, सारे राजपूताने में तेरे इस भेद को खोल दूँगी और एक दिन में राजपूत मात्र को तेरा बैरी बनाऊँगी। (अकबर को छोड़ देती है)

अकबर—(रानी के पैरों पर गिरकर) मैं आपके इहसान से कभी सुबुकदोश नहीं हो सकता। आपने न सिर्फ आज मेरी जाँ-बख्शी की बल्कि बहुत बड़े गुनाह से बचाया। मेरे ऊपर जैसे इतना करम हुआ यह भी वादा फर्माया जाय कि यह भेद किसी से जाहिर न किया जाय और मेरा गुनाह मुआफ फर्माया जाय।

रानी—मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि यह भेद किसी से न प्रकाश करूँगी। परंतु मैं गुनाह मुआफ करनेवाली कौन? उस करुणामय जगत्पिता की सच्चे जी से क्षमा प्रार्थना कर, वही क्षमा करेगा।

(अकबर घुटनों के बल बैठकर भगवान् से क्षमा-प्रार्थना करता है। रानी कटार लिए खड़ी है)

अकबर—

रहा मैं गुमराह जिंदगी भर इलाही तौबा इलाही तौबा।
चला न नेकी की हाय राह पर इलाही तौबा इलाही तौबा॥
दी इसलिये मुझको बादशाही कि तेरे बंदों को पहुँचे राहत।
व ले किया मैंने जुल्म इन पर इलाही तौबा इलाही तौबा॥
रहा लगा नफ्स-पर्वरी में न दिल दिया दाद-गुस्तरी में।
पड़ें मेरी अक्ल पर ये पत्थर इलाही तौबा इलाही तौबा॥

बहाना जालिमकुशी का करके किए बहुत मुल्क फतह हमने ।
व ले किए और उनपः बदतर इलाही तौबा इलाही तौबा ॥
भला हो इस हूर पारसा का उठाया आँखों से जिसने परदा ।
हैं जिश्त एमाल मेरे अकसर इलाही तौबा इलाही तौबा ॥
हुआ है दामन गुनाह यों तर कि गर निचुड़ जाय वह जमीं पर ।
तो डूब जाऊँ मैं उसमें ता सर इलाही तौबा इलाही तौबा ॥
फकत तेरे बखशिशो करम का है एक भरोसा मुझे खुदाया ।
नहीं कोई और अब है यावर इलाही तौबा इलाही तौबा ॥
नजर जो किर्दार पर मेरे की तो हो चुकी शक्क मुखलिसी की ।
निगाह अपनी करम पः तू कर इलाही तौबा इलाही तौबा ॥*

[धीरे धीरे पटाक्षेप

चतुर्थ गर्भांक

स्थान—दिल्ली, शाही महल का एक कमरा

[अकबर का चिंतित भाव से प्रवेश]

अकबर—हाय, मैं इतने दिनों तक किस तारीकी में था, इतनी उम्र किस गुनहगारी में बिताई, इलाही, इस अपने बंदे पर करम कर। अब इस दिले बेचैन को सब्र अता कर।

खुदाया !

"एवज न कर मेरे जुर्मो गुनाह बेहद का ।
इलाहि तुझको गफूरुल रहीम कहते हैं ॥
कहीं कहैं न उदू देखकर मुझे मुहताज ।
यह उनके बंदे हैं जिनको करीम कहते हैं ॥"

---

* यह गजल मित्रवर बाबू जगन्नाथदास बी० ए० (रत्नाकर) की सहायता से बनी है ।

अहा ! दरहकीकत उसके बराबर कौन करीम है। अपने बंदे को गुमराह देखकर आज इस पाकदामन औरत के जरिए से कैसी नसीहत दी। उफ ! बला की तेजी, गजब की दिलेरी, कैसा खुदाई नूर था ! क्या यह वाकिआ कभी भूलने का है ? हर्गिज नहीं। अगर मेरी यह हरकत इसी तरह जारी रहती और यह खबर बहादुर राजपूतों के कान तक पहुँचती, जरूर था कि हमारी सल्तनत पर जवाल आता। आहा ! उस जनाबेबारी की दर्गाह में किस जुबाँ से शुक्रिया अदा करूँ। उसकी बेहद शफाकत का किस मुँह से बयाँ करूँ। आहा ! कैसे मुसीबत के वक्त में इस नाचीज की पैदायश हुई ! ओफ ! उस संगदिल चचा की सख्ती क्या कभी भूल सकती है ! ओफ ! उस वक्त खुदायपाक ने कैसी मुश्किलात आसान कीं ! फिर से यह तख्तो ताज बख्शा, खान बाबा की बगावत जिस वक्त याद आती है, दिल काँप उठता है, मगर वाह रे मुश्किलकुशा, अपने इस बच्चे की बात उस वक्त कैसी रखी ! (कुछ ठहरकर) अहा हा, हिंदू मुसल्मानों की रिश्तेदारी की बुनियाद कैसी उम्दा डाली गई है। अगर इसमें पूरे तौर पर कामयाबी हुई तो खांदान तैमूरिया कभी हिंदोस्तान से नहीं हट सकता। मगर वाह रे भगवानदास, तेरे बराबर दूरंदेश कोई काहे को पैदा होगा ! हमारी पूरी चाल न जमने पाई। जो कहीं हमारे घर की लड़कियाँ हिंदुओं के घर जातीं तो सब काम बन जाता। फिर तो इन्हें मुसलमान बनाने में कुछ भी देर न थी। मगर उस दानिशमंद ने इस चाल को ताड़ लिया। अच्छा, कुछ मुजायका नहीं, जाते कहाँ हैं। जो चाल चली है उसी की तरक्की होने का नतीजा वह भी होगा। (कुछ सोचकर) यह हिंदुओं का मुल्क है। यहाँ हिंदू ही बसते हैं, इनकी बहादुरी का मुकाबिला दुनिया में कोई कौम नहीं कर सकती

हालाँ कि इस वक्त इन पर जवाल है मगर कब खुदा ताला किसको उरूज देगा इसका कौन ठिकाना ? इसलिये जब तक इनके दिल से मुसलमानों से नफ़रत न दूर की जावेगी, जब तक इनके दिल में बिरादराना मुहब्बत न पैदा की जायगी तब तक मुमकिन नहीं कि मुसलमानी सल्तनत को कयाम हो और यह तब तक मुमकिन नहीं जब तक कि मजहबी जोश, मजहबी खियालात इनके मजबूत हैं। मगर क्या बजोर शमशेर इनका मजहबी खियाल तबदील हो सकता है ? हर्गिज़ नहीं बल्कि खौफ है कहीं उल्टी आग न भभक उठे। इसको मिटाने, इनको मुसल्मान बनाने की अगर दुनिया में कोई तदबीर है तो यही कि इनसे नाता-रिश्ता बढ़ाकर इनके दिल से अपनी तरफ से नफरत दूर करना, इनके मजहब की तारीफ करना, इनकी मजहबी तकरीबों में शिरकत करके इनकी निगाह में खुद हिंदू बनकर कुल पर-हेजों को दफा करना। हाय, हमारे नाआकबतअंदेश मुसल्मान भाई हमारी इस दूरंदेशी पर तो खियाल करते नहीं और हम्हीं से नाखुश होते हैं। हाँ—मगर मैं अपनी इस चाल को नहीं तबदील कर सकता। अकबर ! अगर तुझ पर खुदा की मेहरबानी हो और पूरी उम्र अता हो, तो तू साबित करके दिखला कि तैंने मुसलमानी सल्तनत की मेख हिंद में किस कदर मजबूती के साथ गाड़ी है और इन काफिरों के मजहब में दीन इसलामिया की बू किस तरह मह्व कर दी है !

[एकाएक राजा टोडरमल का प्रवेश]

अकबर—(मन में) यह तो बड़ा गजब हुआ; जो कहीं इन्होंने हमारी गुफ्तगू सुनी होगी तो बड़ा बुरा हुआ। (प्रकाश) आइए राजा साहब, आज इस वक्त आप कहाँ ?

टोडर—खुदावंद, फिदवी एक जरूरी अम्र में गुजारिश करने की गरज से हाजिर हुआ है।

अकबर—फरमाइए।

टोडर—जहाँपनाह, हुजूर के साया में रऐयत निहायत अमनो अमान से है और शेर व बकरी एक ही घाट पानी पीते हैं। अगर इसे रामराज्य कहें तो भी मुबालिगा न होगा, मगर अफसोस की बात है कि मुसलमान भाइयों के दिल से तअस्सुब रफा नहीं होता और वे रोज नए फिसाद उठाते हैं। सुनने में आया है कि खिलाफ हुक्म बंदगाने आली आज फिर कुछ शूरा पेश है जिससे लोग खौफजदा हो रहे हैं।

अकबर—राजा साहब, मैं इन अपने भाइयों की नादानी से सख्त परेशान हूँ। आप देखिए, वालिदा माजिदा की वफात में अगर मैंने बाल बनवाए तो क्या बेजा किया? मगर इन सभों ने कैसा बावैला मचाया। चाहे कोई खुश हो या नाखुश मैं तो हिंदुओं के मजहब का कायल हूँ। जहाँ तक मैं हिंदू वेदांतशास्त्र में डूबता हूँ एक अजीब लुत्फ हासिल होता है। मुझे तो अपने कौम का मुतलक एतबार व भरोसा नहीं। मेरा तो दारोमदार आप ही जैसे रुकनेसल्तनत पर है। आप लोगों को तशफ्फी दें, मैं अभी आकर इंतजाम करता हूँ। अकबर का हुक्म किसकी मजाल है जो टाल सके।

टोडर—ऐ शाहन्शाहे आलम, आप इतमीनान रखें, हिंदू प्रजा का सर हुजूरेआली के कदमों में हमेशः हाजिर है और आलो-जाह, अपने बादशाह से बगावत करना तो हिंदू कौम ने सीखा ही नहीं है। तावेदार इस वक्त रुखसत हो!

अकबर—हाँ आप चलें—मैं भी अभी आता हूँ। (मन में) शुक्र है इन्होंने कुछ न सुना। अकबर का दिली इंदिया किसी को मालूम होना दिल्लगी नहीं है। (टोडरमल का प्रस्थान)

[पटाक्षेप

(इति द्वितीयांक)

तृतीय अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—उदयपुर, महाराज मानसिंह का आतिथ्य

(एक सुसज्जित कमरा—महाराजा मानसिंह और कुँवर अमरसिंह बैठे हैं। भीमाशा मंत्री और सरदारगण खड़े हैं)

(नेपथ्य में गान)

क्यों तू भरि गुमान इतरात।
इत उत चमकि फूलि निज छबि पै रे खद्योत इठलात ॥
है दिन चार साहिबी तेरी जब ही लौं बरसात।
तापै भानु समान होन को अरे मूढ़ ललचात ॥
भानु उदय कहुँ देखि न परिहै कोउ न पूछिहै बात।
रविकुलरवि प्रताप के जागे रिपुकुल मानत मात ॥

मानसिंह—(स्वगत) यहाँ के ढँग कुछ विलक्षण दिखाई देते हैं। यह सब बौछार हम्हीं पर है। अच्छा देखें यह अभिमान कब तक ठहरता है। (प्रकाश) आज हम पर राणाजी ने बड़ी कृपा की है और हमारे लिये बड़े सामान किए हैं; परंतु अब तक आप क्यों नहीं पधारे ?

मंत्री—(हाथ जोड़कर) हुकुम अन्नदाताजी आज श्री हुजूर का शरीर अच्छा नहीं है. कुँवरजी तो पधारे ही हैं। उनमें और इनमें भेद क्या है, देखिए शास्त्रों ने भी कहा है—"आत्मा वै जायते पुत्रः।"

मानसिंह—हाँ, आपका कहना एक प्रकार से अनुचित तो नहीं है पर संसार की जो रीति है वही बरती जाती है। यों तो शालग्राम की बटिया क्या छोटी क्या बड़ी, हमारे तो यह सिरताज ही

हैं परंतु जब तक श्री एकलिंगजी की कृपा से राणाजी वर्तमान हैं इनकी गिनती लड़कों ही में गिनी जायगी, और आप न पधारकर लड़कों को भेजना अपने घर में आए हुए मेहमान का अनादर करना है। आप हमारी ओर से राणाजी से बिनती कीजिए, हमारी जो कुछ भूल चूक हो क्षमा करें और पधारें। जब तक आप न पधारेंगे, हम मुँह में ग्रास न देंगे।

मंत्री—नहीं धर्मावतार, आपको ऐसा न समझना चहिए। यह बात नहीं है। श्री जी हुजूर के माथे में दर्द न होता तो वे अवश्य ही पधारते।

मानसिंह—(दर्प के साथ मोछों पर हाथ फेरता हुआ) माथे में जिस कारण से दर्द है हम खूब समझते हैं। राणाजी ने अपने घर आए हुए हमारा अपमान किया पर हम अन्न का अनादर न करके उसे सिर चढ़ाते हैं। (चावल के दाने पगड़ी में रखकर) याद रखना इस माथे के दर्द की दवा लेकर हम बहुत जल्द फिर आवेंगे और तब दिखावैंगे मानसिंह का अपमान करना कैसा होता है। (चलने को उद्यत होते हैं)

(प्रतापसिंह वेग के साथ आते हैं)

प्रतापसिंह—सुनो महाराज मानसिंह—

जिन कुल की मरजाद लोभ बस दूर बहाई।
जीवन भय जिन खोइ दई आपनी बड़ाई॥
जिन जग-सुख-हित करी जाति की जगत हँसाई।
लखि जिनको मुख वीर सबै सिर रहे नवाई॥
तिनके सँग खानो कहा मुख देखन हू पाप है।
जाइ सीस बरु धर्म हित यह सिसोदिया थाप है॥

अच्छा अब आप सुख से पधारिए और अपने हिमायती के साथ शीघ्र ही फिर हमारी अतिथिसेवा रणक्षेत्र में स्वीकार कीजिए, यही प्रार्थना है।

(मानसिंह क्रोध के साथ राणा की ओर देखते हुए जाते हैं)

प्रतापसिंह—मंत्री—

यह पवित्र थल जेहि न विधर्मी छाया दरस्यो।
ताहि आज या कुल कलंक ने पायन परस्यो॥
तातें याहि धुवाइ शुद्ध गंगोदक छिरकौ।
नाना विधि दै धूप वायु के मल को हिरकौ॥
हमहुँ सवत्सा गाय दान बिप्रन को दैहीं।
मुख देखन को आप प्रायछित निज कर लैहीं॥
अहो वीरगण निर्भय रहौ सचेत सदाई।
निज पवित्र पुरुषारथ को फल देहु चखाई॥
रहै धर्म तौ प्रान नहीं जौ धर्म प्रान नहिं।
कोउ न कहै नहिं रहे वीर छत्री भारत महिं॥
बहु देसनि करि विजय ब्याह अधमन की बाला।
अकबर को मन बहकि रह्यो धन मद एहि काला॥
गर्व खर्व करि थापि आपुनी हाँक तासु जिय।
अहो बहादुर चूकौ जिन अवसर न हाथ दिय॥
जहँ साहस जहँ धर्म जहाँ साँचे सब संगी।
तहीं विजय निहचय तासों सब होहु इकंगी॥

सब—महाराज ऐसा ही होगा।

[पटाक्षेप

द्वितीय गर्भांक

स्थान—उदयपुर

(राणा चिंतित भाव से बैठे हैं और पुरोहित सामने बैठे हैं)

प्रताप—पुरोहितजी ! कल का वृत्तांत तो आपने सुना ही होगा, अब बहुत शीघ्र मेवाड़ में समराग्नि भभकना चाहती है।

पुरोहित—हुकुम अन्नदाताजी, मैंने सब सुना। मुझे तब से बड़ी चिंता है।

प्रताप—चिंता किस बात की है, क्या आप प्रतापसिंह को निरा असमर्थ समझते हैं ?

पुरोहित—नहीं अन्नदाताजी, मैं ऐसा कभी नहीं समझता, परंतु मुझे इस लड़ाई में देश की महान् दुर्दशा दिखाई पड़ती है। इससे मैं निवेदन करता हूँ कि अब भारतवर्ष में मुसल्मानों की जड़ ऐसी जम गई है कि इसे निर्मूल करना कठिन ही नहीं वरंच असंभव है, फिर व्यर्थ बैठे बिठाए देश को उजाड़ करने से क्या लाभ ? अब हमारा उनका चोली दामन का साथ है, अब तो ऐसे उपाय करने चाहिएँ जिनसे आपस में भ्रातृभाव बढ़े।

प्रताप—पुरोहितजी ! आपका कहना ठीक है पर आपने इसका पूरा वृत्तांत नहीं सुना है इसी से ऐसा कहते हैं, नहीं तो कदापि ऐसा न कहते। प्रतापसिंह क्षत्रिय संतान है—क्षत्रियों का यह काम नहीं है कि व्यर्थ परमेश्वर की सृष्टि को नाश करें और उसके आगे अपराधी बनें। दूसरे हम लोग हिंदू हैं, हम लोगों का धर्म अत्यंत उदार भावपूर्ण है, प्राणी मात्र की रक्षा करना हमारा धर्म है, फिर यह क्योंकर संभव है कि हम ईर्षावश विधर्मी लोगों का नाश करें। क्या वे लोग उसी जगत्पिता की संतान नहीं हैं ? परंतु महाराज,

हमारे क्रोध का कारण दूसरा ही है। हमारा यह कर्त्तव्य अवश्य है कि हम अपने धर्म और अपने देश की रक्षा करें। जब कोई हमें छेड़ेगा हम कभी चुप नहीं रह सकते। देखिए हमारे पुरुषों ने जिस चित्तौरगढ़ के लिये निःसंकोच अपना प्राण अर्पण किया, जिसका गौरव अपने प्राण से बढ़कर पुत्ररत्न को गँवाकर भी नष्ट नहीं होने दिया, उसी चित्तौरगढ़ पर—उसी परम पवित्र आराध्य चित्तौरगढ़ पर मुसल्मानी झंडा फहराय और हम उसे सुख से देखें! हमारे आर्य भाइयों को मुसल्मान बनावें और हम आँख बंद कर लें?

पुरोहित—धर्मावतार, यह आप ठीक आज्ञा करते हैं परंतु जगदीश्वर को यदि यही अभीष्ट है तो हम लोग क्या कर सकते हैं? पृथ्वीनाथ, देखें श्रीमद्भागवत ही में आज्ञा हुई है कि इनके पीछे गौरांगों का राज्य होगा। फिर जब भारत के भाग्य में ऐसा ही लिखा है तो व्यर्थ बैठे बिठाए अपने ऊपर झगड़े खड़े करने से क्या लाभ?

प्रताप—पुरोहितजी, यह आप क्या कहते हैं? क्या यह समझकर कि कल तो हमको मरना ही है आज ही से खाना पीना छोड़ देना उचित है? आप निश्चय रखिए अब जो आवेंगे इनसे अच्छे ही आवेंगे। एक यूरोप का विद्वान् अकबर के दर्बार में है। अनुमान होता है गौरांग जाति का ही वह है, उसकी बड़ी प्रशंसा सुनने में आई है। वह दिन भारत के सौभाग्य का होगा जिस दिन इन सभों के हाथ से यह राज्य निकल जायगा, परंतु क्या यह सब सोच-विचारकर आज ही से हमको निराश होकर अपने राज्य को कौन कहै अपने धर्म को भी उसे सौंप देना चाहिए? क्या आप आज्ञा देते हैं कि उसके प्रार्थनानुसार राजकुमारी का विवाह उसके बेटे के साथ कर दिया जाय?

पुरोहित—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, ऐसा भी कभी हो सकता है? उस दुष्ट की इतनी बड़ी स्पर्द्धा है? महाराज, उसे तब तो अवश्य ही समुचित दंड देना चाहिए।

प्रतापसिंह—गुरुदेव,

जेहि मुख तें ये बैन भरे अभिमान निकारे।
सिसोदिया कुल करन कलंकित बचन उचारे॥
करि वश चत्रिय कुल कलंक ह्वै चार बिचारे।
बढ़ि बढ़ि बोलत जौन आजु सब शंक निवारे॥
जबलौं तिनको मसलि नहिं तुम पद गेंद बनाइहौं।
तबलौं हे गुरुदेव नहिं सुख सों दिवस बिताइहौं॥

पुरोहित—अन्नदाताजी, आप सब कुछ कर सकते हैं। श्रीएकलिंगजी आप पर प्रसन्न हैं। हमारी इच्छा है कि हम लोग सबसे पहले एकलिंगजी की सेवा में यह सब निवेदन करके इस उपलक्ष में आज पूजन करें।

प्रताप—अवश्य, चलिए।

(दोनों का प्रस्थान)

तृतीय गर्भांक

(उदयपुर के एक सुंदर उद्यान में पुष्पित गुलाब के वृक्ष के निकट एक सुंदरी खड़ी है और दूर पर एक कुंज की ओट से एक युवा पुरुष अलक्षित भाव से अतृप्तनेत्र से उसकी ओर देख रहा है। *)

सुंदरी—(एक फूल तोड़कर)

अरे तेरे कोमल तन पर वारियाँ
मधुर रंग माधुरी गंध पै तन मन भई बलिहारियाँ॥

---

* गुलाबसिंह और मालती के चरित्र से कोई ऐतिहासिक संबंध नहीं है।

झलक लखत बाँकी तुव अँग मैं, मैं तो भई मतवारियाँ।
तुव मिलाप मैं कंटक जेवे, कसक कसक उर फारियाँ॥

अहा, गुलाब तेरा रूप जैसा सुंदर है नाम भी वैसा ही मनोहर है और मेरे जीवन का मूल कारण ही है। प्यारे गुलाबसिंह देखो, तुम्हारे वियोग के दिनों को इन्हीं गुलाबों के साथ काटती हूँ, ये ही मेरे आराध्य देव हैं। अहा, कहीं ये ही गुलाब गुलाबसिंह हो जाते।

युवा—(कुंज की ओट से)

'या आसा अटक्यो रहै अलि गुलाब के मूल।
फिर बसंत ऐहै सखो इन डारन तरु फूल॥

सुंदरी—(चकपकाकर) हैं, यह अमृतवर्षा कहाँ से !

युवा—(कुंज की ओट से)

अरे कोउ मधुकर की सुधि लेहु।
घायल तलफत प्रान गँवावत तेहि बिसारि जनि देहु।
रे मालति तुव बिरह भौंर भटकत बन बन तजि गेहु।
राखि लेत किन बरसि दया करि प्रेमसुधा घन मेहु॥

सुंदरी—वाह ! यह तो वही स्वर जान पड़ता है जिसकी झंकार सदा मेरे हृदय में गूँजा करती है (युवा को कुंज की ओट से निकल-कर धीरे धीरे अपनी ओर आते देखकर घबराई हुई दाँतों के नीचे उँगली दाबकर) हैं तो गुलाबसिंह ही। हाय, मैंने आज तक अपने हृदय के भाव को कैसी कठिनाई से छिपा रखा था; पर आज अनायास वह प्रकाश हो गया। अब क्या करूँ ? (लज्जा के साथ वस्त्र को सँभालकर उँगली दाँत के नीचे दाबे दूसरे हाथ में लिए गुलाब की ओर नीची दृष्टि से देखती पुतली की भाँति, कुछ मुड़कर खड़ी हो जाती है)

गुलाबसिंह—(सुंदरी के पास आकर उत्कंठित भाव से) प्यारी मालती, अब कब तक भटकाओगी ? हाय, तनिक तो जी में दया बिचारो !

मालती—(उसी भाव से) गुलाबसिंह, तुम क्यों दुःख उठाते हो ? इस उद्यान में बहुत से सुंदर फूल हैं, किसी और की ओर जी लगाओ, इसकी आशा छोड़ो ।

गुलाबसिंह—

चातक स्वाती तजि कबौं अमृत हू परसै न ।
ताकी गति जग और को जेहि मारे तुव नैन ।।

मालती—(गुलाबसिंह की ओर फिरकर) गुलाबसिंह, मैंने बहुत चाहा था कि अपने जी के भाव को तब तक छिपाऊँ जब तक अवसर न पाऊँ, पर क्या करूँ आज दैवयोग से वह आप ही प्रकाश हो पड़ा । मैं क्या करूँ, मेरी तो प्रेम और नेम के बीच में साँप छछूंदर सी गति हुई । मैं क्षत्राणी हूँ इससे अपनी प्रतिज्ञा से लाचार हूँ और इसी से तुम्हें निराश होने के लिये कहती हूँ ।

गुलाबसिंह—क्या मैं उस प्रतिज्ञा को सुन सकता हूँ ?

मालती—हाँ, हाँ, उसके सुनने के अधिकारी तुम्हीं तो हो, सुनो—

प्रबल शत्रु दल दलि निज बल मेवार बचावै ।
म्लेच्छ रुधिर प्यासी भुव की जो प्यास बुझावै ।।
आर्य धर्म की धुजा गगन को भेदि उड़ावै ।
क्षत्रिय कुल मेवाड़ देश को नाम बढ़ावै ।।
ताकी सेवा करन मैं बड़भागिनि सुख पाइहौं ।
नहिं तौ यह जीवन सदा इकली बैठि बिताइहौं ।।

गुलाबसिंह—(आवेश से) अच्छा तो आज मैं भी जो प्रतिज्ञा करता हूँ उसे सुन रक्खो—

जब लौं निज बल को फल इनकौं नाहिं चखाऊँ।
म्लेच्छ धुजा को काटि न जब लौं भूमि गिराऊँ॥
आर्य धर्म की जय धुनि सों सब जग न कँपाऊँ।
निष्कंटक मेवार देस जब लौं न बनाऊँ॥
तब लौं मुख करि सामुहें तुमसों कबहुँ न भाषिहौं।
अरु कोमल कर परस को मन में नहिं अभिलाषिहौं॥

(वेग से जाता है और मालती अतृप्त नयन से उसकी ओर देखती है)

चतुर्थ गर्भांक

स्थान—उदयपुर, राजपथ

[गुलाबसिंह का चिंतित भाव से प्रवेश]

गुलाबसिंह—

भूलि जिय काहू सों न लगै।
जब लौं रहै रहै निज बस को दूजे सों न पगै॥
पगै तो वाही संग पगै जो अपुने रंग रँगै।
दई निरदई प्रेममई सों कबहूँ नाहिं पगै॥

हाय! आज कितने दिनों की कितनी आशा और अभिलाषा को उसने एक दम में पलट दिया! प्यारी मालती! भला अपने इस व्याकुल प्रेमी की दो दो बातें तो सुन ली होतीं, इसके दुःखों की कहानी तो अपने कानों तक पहुँच लेने दी होती, जी भरके एक बेर देख तो लेने दिया होता, तूने तो ऐसी लट्ठ सी मार दी कि मेरे सभी हौसले पस्त हो गए! (कुछ ठहरकर) और मैं ही धीरज धर कर दो दो बातें कर लेता तो क्या होता, पर हाय! मैं क्या

करता, उसकी प्रतिज्ञा सुनकर मैं अपने आपे में तो था ही नहीं, कहता क्या और सुनता क्या! उस स्वाभाविक वेग को सँभालना मेरे सामर्थ्य के बाहर था। अच्छा, अब जो हुआ अच्छा ही हुआ। अब तो प्रतिज्ञा की है उसे पूरी करने का उद्योग करना चाहिए।

[वीरसिंह का प्रवेश]

वीरसिंह—यह आज आप बेपेंदी के लोटे की तरह क्यों लुढ़कते फिरते हैं!

गुलाबसिंह—कुछ तो नहीं।

वीरसिंह—कुछ तो नहीं क्या? "कछु पिय सों खटपट भई टप टप टपकत नैन" का मामला दिखाई देता है—क्यों यार कैसा ताड़ा?

गुलाबसिंह—(हँसकर) तुम्हें सदा हँसी ही सूझती है—खटपट किस बात की?

वीरसिंह—यह जानो तुम—यहाँ तो सदा पौ बारह है।

गुलाबसिंह—अच्छा, अब यह मसखरापन रहने दो—हमारी इच्छा है कि आज दिल्ली चलें।

वीरसिंह—क्यों? क्या उधर से यह आज्ञा मिली है?

गुलाबसिंह—देखो, हर समय की हँसी अच्छी नहीं होती। यहाँ तो न जाने क्या बीत रही है और तुम मानते ही नहीं।

वीरसिंह—यह न कहिए—"जादू वह जो सिर पर चढ़के बोले" मैंने तो पहले ही कहा था।

गुलाबसिंह—तुम्हें हाथ जोड़ते हैं तंग न करो। यह बताओ तुम हमारे साथ दिल्ली चलोगे या नहीं?

वीरसिंह—सुनो भाई हम तो तुम्हारे साथ नरक में भी चलने को तैयार हैं पर बिना तुम्हारा मतलब सुने न आप जायँगे न तुम्हें जाने देंगे।

गुलाबसिंह—मतलब क्या? तुम नहीं जानते कि महाराज मानसिंह यहाँ से चिढ़कर गए हैं?

वीरसिंह—तो फिर, तुम्हें क्या?

गुलाबसिंह—अजी वहाँ जाकर एक की अट्ठारह लगावेंगे और न जाने क्या उपद्रव उठावेंगे, चलो आगे से उसकी खबर छिपकर ले आवें।

वीरसिंह—हाँ तो मैं चलने को तैयार हूँ। (मन में) ऐसे ही तो खबर लानेवाले थे; आज जान पड़ता है कि उधर से मुँह की खाई तो जी में यही समाई। (प्रगट) अच्छा तो जरा घरवाली से भी बिदा हो लूँ।

गुलाबसिंह—हाँ हाँ, पर शीघ्र आना।

वीरसिंह—आया, और—और तुम भी जरा उधर—(आँख मटकाता है)।

गुलाबसिंह—चल लुच्चे—(ढकेलता है)।

(एक ओर से वीरसिंह हँसता हुआ और दूसरी ओर से गुलाबसिंह कुछ अप्रतिभ सा होकर जाता है)

[पटाक्षेप

(इति तृतीय अंक)

चतुर्थ अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—श्रीवृंदावन

[तानसेन के पीछे पीछे भृत्यवेश में तानपूरा लिए हुए अकबर का प्रवेश]

तानसेन—(अकबर की ओर फिरकर) जहाँपनाह, यह बड़ा ही गजब कर रहे हैं।

अकबर—तानसेन ! चुप भी रहो, कोई जान लेगा तो फिर सब लुत्फ जाता रहेगा। आहा ! तानसेन, यहाँ तो कुछ जी ही और हुआ जाता है, गैर मजहब होने पर भी यहाँ की मिट्टी में लोटने को बेतरह जी चाहता है और इन भोली भाली व्रजवासिनियों की सहज बातें तो तान सुर को मात करती हुई जी को खींचे लेती हैं। (चौंककर) वह देखो, मोर बोला और जी में कुछ और ही झलक सी झलकी।

तानसेन—खुदावंद ! मैं हुजूर से गलत थोड़े ही अर्ज करता था, यह जमीन कुछ और ही है और फिर जब हुजूर मेरे गुरुजी महाराज श्री स्वामी हरिदासजी का दर्शन करेंगे उम्मीद है तबीयत ही दूसरी हो जायगी।

अकबर—भाई, उनके इश्तियाक ने तो मुझे बावला ही बना रखा है। उन्हीं के दर्शन के लिये तो यह सूरत बनाई है। (आगे की ओर देखकर) वह देखो चंद व्रजवासिनी गाती हुई जल भरने के लिये इधर ही की ओर आ रही हैं। वाह वाह क्या समा है ! धन्य ! व्रजगोपिका धन्य !

(दोनों एक किनारे खड़े होते हैं। कुछ व्रजवासिनी सिर पर घड़ा लिए गाती हुई आती हैं)

व्रजवासिनीगण—(गीत)

"माई री नेकु न निकसन पैए।
घाट बाट पुर बन बीथिन में जहीं तहीं हरि पैए ॥
उत सुनियत इत को चलियत हू मन वाही पै जैए।
ब्रह्मदास छूटिए कहाँ लों कान्हमई व्रज मैए ॥

एक व्रज०—अरी बीर !

दूसरी व्रज०—का कहै बीर !

पहली ब्रज०—अरी नेक पाँय बढ़ाए चल। या ब्रज में ऊधमी को राज ठहरयो। कहूँ काहू पै दीठ न परि जाय—सिदौसिऐ घर कूँ चल।

तीसरी ब्रज०—हम्बे बीर—चल।

(सब जाती हैं)

तानसेन—(विह्वल होकर) खुदावंद ! इस ब्रजभूमि के रूप को हुजूर ने देखा ? धन्य है उनके भाग्य, जिन्हें ब्रजरज नसीब हो।

अकबर—तानसेन ! आज तुमने मुझ पर बड़ा इहसान किया। आज तुम्हारी बदौलत मुझसे नापाक बदबख्त को भी ब्रजरज नसीब हुई। धन्य है बीरबल को, जिनका काव्य ये ब्रजगोपिका गाती हैं।

तानसेन—इसमें तो शक नहीं। हुक्म हो तो ताबेदार इस वक्त हस्ब हाल कुछ सुनावै।

अकबर—जरूर—मैं तानपूरा छेड़ता हूँ।

तानसेन—

"नैन माँगौं इंद्र सों जासों दरसन करौं अघाय अघाय।
रसना माँगि लेहुँ सहसफन सों जासों गोविंद गुन गायो जाय॥
लंकापति सों सीस माँगि लेहुँ जो बंदन करूँ बनाय बनाय।
सहसबाहु सों भुज माँगि लेहुँ तानसेन के प्रभु परसन कों पाय॥

[पटाक्षेप

द्वितीय गर्भांक

स्थान—दिल्ली, राजपथ

[एक हिंदू और एक मुसलमान नागरिक का प्रवेश]

मुस०—(हिंदू को देखकर बड़े प्रेम से सलाम करके) अल्लाह भाई बिहारीलाल ! आज तो बाद मुद्दत के मुलाकात हुई। कहिए सब खैरियत तो है।

हिंदू—(प्रेमपूर्वक मुसलमान का कर स्पर्श करके) आपकी दया से सब खैरियत है। क्या कहैं भाई मेहरअली! कामकाज की भीड़ में छुट्टी तो मिलती ही नहीं, क्या करें कहाँ जायँ? अपनी खैरसलाह खैराफियत कहिए!

मुस०—(सलाम करके) शुक्र है, कहो दोस्त आजकल रोजगार का क्या हाल है?

हिंदू—भाई परमेश्वर इस मुसलमानी बादशाहत को कायम रक्खे और हमारे बादशाह सलामत को उम्र दे। इन दिनों जैसे आनंद से दिन कटते हैं कुछ कह नहीं सकते। बेखटके खूब रोजगार करते हैं और खूब बरकत होती है।

मुस०—इसमें तो शक नहीं—भाई साहब हमारा तुम्हारा तो चोली दामन का साथ है—अगर हमारे हाथ से तुम्हें कोई ईजा पहुँची तो तुफ है हम पर! चंद नाआकबतअंदेश बादशाहों ने तुम लोगों की कुछ ईजारसानी की थी, अब खुदा चाहेगा तो मुसलमानी सल्तनत में हिंदुओं को बहुत आराम मिलेगा।

हिंदू—परमेश्वर ऐसा ही करै—भाई हम लोग तो राजभक्त प्रजा हैं, हमारी यह इच्छा नहीं कि हम राजगद्दी पर बैठें, हम तो अपने राजा को चाहे वह कैसा ही क्यों न हो ईश्वर का अवतार ही समझते हैं। हाँ जरा हमसे चुमकारकर बोलिए हम प्रसन्न हो जायँ, डाँट दीजिए हम मन ही मन मसूस कर रह जायँ, देखिए पंडितराज ने हमारे हजरत सलामत के बारे में क्या अच्छा कहा है—"दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" और हम लोगों का यही विश्वास भी है।

मुस०—भाई हमारे बादशाह सलामत तो तुम्हीं लोगों के भरोसे शाही करते हैं और तुम्हारे ही बल पर नाजाँ हैं, देखो आधे

से ज्यादा वजरा हिंदू ही हैं; महाराज टोडरमल, महाराज बीरबल, महाराज मानसिंह, राजा मटटूशाह वगैरह कैसे कैसे दकाक और खैरख्वाह वजीर हैं, और लुत्फ तो यह है कि इनके हाथ से जो इंसाफ और फैज मुसलमान रैयत को मिलता है वह मुसलमान वजरा से नहीं। खुदा हम दोनों हिंदू मुसलमानों की मुहब्बत यों ही तो अबद निबाह दें।

हिंदू—तथास्तु, सुना है आज दर्बार में बड़ा जशन होगा, महाराज मानसिंह दक्खिन फतह कर आते हैं, चलिए हम लोग भी जरा दर्शन कर आवैं।

मुस०—बिस्मिल्लाह, तशरीफ ले चलिए।

(एक ओर से दोनों जाते हैं, दूसरी ओर से चारण के वेश में गुलाबसिंह और वीरसिंह का प्रवेश)

गुलाबसिंह—वीरसिंह, दिल्ली की शोभा अकथनीय है, ऐसा सुंदर और श्रीमान् नगर तो इस समय संसार में दूसरा कोई न होगा। यह चौड़ी सड़क, आकाश से बात करनेवाले महल, मन को प्रसन्न किए देते हैं।

वीरसिंह—इसी लिये मैं दिल्ली नहीं आता था। मैं तो पहले ही से जानता था कि कहीं आपका बिगड़ैल जी किसी महल में न मचल जाय, सो कुछ लक्षण दिखाई देने लगा।

गुलाबसिंह—तुम तो एक विलक्षण मनुष्य हो, कोई बात ही ऐसी न बोलोगे कि जिसमें व्यंग न हो।

वीरसिंह—अच्छा लो अब हम न बोलेंगे, हमारी बात तुम्हें नहीं सुहाती तो हम बोलेंगे ही नहीं।

गुलाबसिंह—(उँगली से दिखाकर) वीरसिंह, देखो वही वीरवर पृथ्वीराज का कीर्तिस्तंभ जान पड़ता है। हाय!

वीरसिंह—(मुँह फेरकर) चुप।

गुलाबसिंह—वीरसिंह—इधर देखो।

(वीरसिंह निश्चल)

गुलाबसिंह—हाथ जोड़ते हैं अब कुछ न कहेंगे। जरा इधर तो फिरो।

(वीरसिंह और भी हट गया)

गुलाबसिंह—सुनते हो कि नहीं!

(वीरसिंह चुप)

[नेपथ्य में]

सावधान सब लोग होहु निज पथ अनुसारा।
मिले धूर मैं सहज जौन मरजादहिं टारा॥
देश देश बस करत बाहुबल अरिहिं चखावत।
दिल्लीपति मरजाद थापि मन मोद बढ़ावत॥
करि विजय शत्रु दल दलन करि मान महीपति आवहीं।
कर कुसुम लिए सुरबधूजन चढ़ि विमान जस गावहीं॥

गुलाबसिंह—जान पड़ता है, महाराज मानसिंह दर्बार में जाते हैं। तो अब हम लोगों को भी शीघ्र चलना चाहिए।

(दोनों जाते हैं)

तृतीय गर्भांक

स्थान—शाही दर्बार

(अकबर सिंहासन पर विराजमान है, दोनों ओर कतार बाँधे राज्यपारिषदगण खड़े हैं। कई एक नर्तकी गान और नृत्य कर रही हैं, बड़ा प्रकाश और बड़ी तैयारी है)

बढ़े औज इस तख्त का या इलाही।
दुरखशाँ रहे कौकबे बख्ते शाही॥

उदू होवें पामालो मगलूब शह के।
पड़े उनके सर पर सरासर तबाही॥
रहे हुक्मराँ सबका अल्लाह अकबर।
जहाँ में जहाँ तक कोई होवे राही॥
तेरे सायए फैज से बहरवर हों।
है मखलूक जो माह से ता ब माही॥

अकबर—आज निहायत खुशी का दिन है, हमारे कूवते बाजू महाराज मानसिंह आज वह काम करके तशरीफ लाते हैं जो कि खास हम भी शायद न कर सकते। सूबए दक्खन का फतह करना कोई दिल्लगी न थी, यह काम महाराज मानसिंह ही के हिस्से का था। (दर्बारियों से) जिस वक्त महाराज तशरीफ लावैं आप सब लोग उन्हें मुबारकबादी दें।

सब—बजा इर्शाद खुदावंदे आलम।

अकबर—मगर देर बहुत हुई, महाराज की सवारी की खबर तो बहुत अर्सा हुआ आई थी!

[नेपथ्य में]

सावधान दिगपाल सँभारहु निज दिशान कों।
हे नच्छत्र थिर रहौ सफल निज निज सुथान कों॥
अहो सिंधु मरजाद गहो जौ चहौ मान कों।
हे अभिमानी बीर भगौ चाहौ जु प्रान कों॥
निज भुज बल जग बस करत कायर हृदय कँपावहीं।
विजय लच्छमी लुटत पद मान महीपति आवहीं॥

अकबर—वेह महाराज आ गए।

चोबदार—(स्वर से) निगाह रूबरू जहाँपनाह सलामत।

[महाराज मानसिंह का प्रवेश]

अकबर—(अर्धाभ्युत्थान देकर) मुबारक महाराज, दक्खन की फतह आपको मुबारक।

(सब लोग इसी को दोहराते हैं)

मानसिंह—(महा क्रोध के साथ पगड़ी को अकबर के सामने पटककर कंपित स्वर से)

रहै मुबारक यह मुबारकी शाहनशाहा।
बढ़े औज शब रोज तख्त का जहाँपनाहा॥
दुश्मन हों पामाल आपके आली जाहा।
रैयत हो दिलशाद दुआगो ऐ नरनाहा॥
इस गुलाम नाचीज की खता बख्श सब दीजिए।
रजा बख्श के अब हमें इज्जतबख्शी कीजिए॥

अकबर—(आश्चर्य और क्रोध के साथ खड़े होकर) इसके मानी क्या हैं? महाराज, हम लोग आज आपकी फतहयाबी पर कैसी खुशियाँ मना रहे हैं और आप ऐसे रंजीदः हो रहे हैं। फर्माइए तो किस नाकाम का काम आज पूरा होनेवाला है, किसने सिंह की गुफा में जान बूझकर हाथ डाला है?

कहिए तो दिल को आपके है किसने दुखाया।
खुद जान बूझ मर्ग को है किसने बुलाया॥
अकबर के तेग तेज को है किसने भुलाया।
नाम उसका हमें जल्द कहो बहरे खुदाया॥
उसको हम एक आन में पामाल करेंगे।
उसके लहू से तेग के दामन को भरेंगे॥

मानसिंह—खुदावंद, इस दुनिया में सिवाय अभिमानी प्रतापसिंह के और कौन जन्मा है जो हुजूर के गजब से न डरता हो?

पृथ्वीराज—(मन में) सच है, सिंह का कान सिंह ही खुजलाता है।

अकबर—(मानसिंह को पगड़ी अपने हाथ से पहिराकर) क्या प्रतापसिंह का दिल इतना बढ़ गया है कि उसने महाराज मानसिंह का अपमान किया ? सच है, चींटे की जब मौत आती है उसे पर जम जाते हैं। फर्माइए तो हुआ क्या ?

मानसिंह—खुदावंद ! मैं दक्खिन से लौटने के वक्त उदयपुर के रास्ते आया। राणा ने बड़ी तैयारी के साथ मेहमानी की, मगर मेरी बेइज्जती की गरज से खाने में खुद न शरीक होकर अपने कुँवर को भेज दिया और जब मैंने खुद आए बगैर खाने से इंकार किया तो बड़े तैश के साथ आकर बोले—जिसने अपनी बहिन मुसलमान के साथ ब्याही उसके साथ मैं कभी नहीं खा सकता। (क्रोध से आँखें लाल हो जाती हैं।)

पृथ्वीराज—(मन में) धन्य प्रतापसिंह, धन्य ! तुम्हारे सिवाय और किसमें इतना जात्यभिमान है ?

अकबर—(क्रोध से काँपता हुआ) प्रताप की इतनी बड़ी जुरअत हो गई ? उसको इस बात का गर्रा है कि अब तक उसकी लड़की इस खांदान में नहीं ली गई ! खैर (मुहब्बतखाँ की ओर) आप उदयपुर पर चढ़ाई का सामान बहुत जल्द करें, देखा जायगा प्रतापसिंह का कितना प्रताप है।

[एक चोबदार का प्रवेश]

चोबदार—(हाथ जोड़कर) खुदावंद ! दो परदेशी फर्यादी आए हैं, कहते हैं उन लोगों को उदयपुर के राणा ने लूट लिया है।

अकबर—हाजिर लाओ।

(चोबदार का जाना और एक जौहरी तथा एक
पोर्तुगीज फिरंगी को साथ लेकर आना)

अकबर—तुम लोग कौन हो ?

पोर्तुगीज—खोडावंड, श्रम पोर्तुगीज हैं, अमारा नाम अगस्टाइन है ; अमारा गोआ के गवर्नर ने अमको हजूर के लिये बहुत सा नजर लेकर भेजा ठा, राह में उदयपुर के राजा ने अमको लूट लिया, बोला अमारे सिवाय बाडशाह कौन है, यह नजर अमारा है ।

जौहरी—(हाथ जोड़कर) जहाँपनाह फिद्वी जौहरी है, बहुत से बेशकीमत जवाहिरात लेकर हुजूर को मुलाहिजा कराने के लिये आता था । मैं यह समझकर कि हुजूर के अहदेहुकूमत में किसकी मजाल है जो शाही रैयत पर आँख उठावेगा, बेखटके आ रहा था मगर रास्ते में उदयपुर के राणा ने मेरा सब माल लूट लिया । हाय ! अब मैं क्या करूँ !

अकबर—तुम लोग घबराओ मत, अब उसका प्याला लबरेज हो गया, बहुत जल्द वह अपनी सजा पायगा और तुम लोगों की हालत पर भी खयाल किया जायगा । (मानसिंह से) महाराज, बिहतर होगा कि आप भी मुहब्बतखाँ के साथ तशरीफ ले जायँ और उस नाबकार को उसके किर्दार का मजा चखाएँ ।

मानसिंह—जो हुक्म खुदावंदे आलम !

तब ही लों सब दाप, जब लौं दीठ न तुव फिरी ।
कह बापुरो प्रताप, कोपे अकबरशाह जब ॥

सब—आमीं आमीं ।

[पटाक्षेप

चतुर्थ गर्भांक

स्थान—दिल्ली में पृथ्वीराज का घर

[पृथ्वीराज, गुलाबसिंह और वीरसिंह आते हैं]

पृथ्वीराज—यहाँ का हाल तो तुमने छिपकर अपनी आँखों से देख ही लिया, अब तुरंत उदयपुर जाओ और राणाजी को समाचार दो। यहाँ की फौज पहुँची जानो। हमारी ओर से निवेदन करना कि सारे क्षत्रियों ने तो डुबा ही दी है, अब केवल मान मर्यादा आप ही के हाथ है, सो आप दृढ़ रहैं, कहीं से डिगैं नहीं। श्री एकलिंगजी की कृपा से अच्छा ही होगा। और यहाँ मैं आपका सेवक हई हूँ, बराबर यहाँ के समाचार देता रहूँगा।

गुलाबसिंह—कुँअरजी, आप किसी बात की चिंता न करें। प्रतापसिंह क्षत्रिय वंश का नाम हँसने न देंगे। उनके हाथ में शस्त्रग्रहण की सामर्थ्य है। मैं अभी जाता हूँ, रात दिन चलकर पहुँचूँगा और आपका संदेसा ठीक समय से पहुँचाऊँगा; पर आप एक पत्र भी दें तो बहुत अच्छा हो।

पृथ्वीराज—अच्छा मैं पत्र लिख देता हूँ। तुम कहीं रुकना मत, सीधे चले जाना। (पत्र लिखता है)

वीरसिंह—भाई गुलाबसिंह, तुम दर्बार से सिपारस करके महराज मानसिंह की मेहमानदारी हमें दिला देना।

गुलाबसिंह—तुम क्या मिहमानी करोगे ?

वीरसिंह—अजी देख ही न लेना, (हाथ से दिखाकर) यह बड़े बड़े तो बारूद के लड्डू खिलाऊँगा और आबे खंजर का जल

पिलाऊँगा। जब पेट भर अघा जाँयगे खूब स्वच्छ चमकता हुआ तिलक करके हाथ में नारियल देकर बिदा करूँगा।

(सब लोग हँसते हैं)

गुलाबसिंह—तुम्हें दिल्लगी ही की सूझती है।

वीरसिंह—अच्छा न सही, तुम्हीं उनकी खातिरदारी करना। जिसमें दिल्लगी न हो सो करना।

पृथ्वीराज—(पत्र देकर) अब आप लोग बिना विलंब किए चले जायँ और खूब सावधान रहें।

(दोनों चलने को उद्यत होते हैं)

[नेपथ्य में गान]

जय जग जननि उदार, दनुज दलनि भवभय हरनि।
लै खप्पर तरवार, रच्छा निज जन की करहु॥

पृथ्वीराज—अहा! शकुन तो बहुत अच्छा मिला। मा! कब तक चुपचाप बैठी रहोगी? कब तक अपने संतानों की दुर्दशा देखती रहोगी? अब उठो, मौन साधने का समय नहीं है, (खड़े होकर) देवीजी की आरती का समय है। चलें, हम भी प्रार्थना करें।

[प्रस्थान

पंचम गर्भांक

स्थान—दिल्ली, मुसलमानों की गोष्ठी

एक मुसलमान—यार हम लोगों को तो अब कोई पूछता ही नहीं, क्या करैं।

दूसरा—अजी पूछे कहाँ से—अपनी पौ बारह तो तब हो जब कुछ राग रंग हो, कुछ इधर उधर झाँक झूँक हो, सो यहाँ कोई ठिकाना ही नहीं।

तीसरा—कुछ पूछो मत, हमारे बादशाह सलामत तो ऐसे मुल्लाजी हैं कि कभी कोई फर्माइश ही नहीं करते। सिवाय अपनी बीबी के कभी इधर उधर की हवा ही नहीं खाते।

चौथा—अजी निरा मजदूरा है, यह क्या बादशाह होने काबिल है? रात दिन पीसना पीसा करता है; जब देखो हजरत काम में मशगूल हैं—ऐश-आराम तो इसे ख्वाब में भी नसीब नहीं।

पाँचवाँ—शहर की तवायफें तो बिल्कुल राँड हो गईं। उन सभों की हालत पर तो रहम आता है, भाई मुझे तो एक दिन के लिये भी कहीं तख्त मिल जाय तो रंग बाँध दूँ, उन बिचारियों के दुःख दरिद्दर दूर कर दूँ और सारे शहर में रज गज मचा दूँ।

पहला—अब वह दिन दूर गए, बैठे रोया करो, मुहर्रमी सूरत बनाए रहो, दर्बार में तो कदम रखने का जी नहीं चाहता। जिन लोगों से जूते उठवाते थे अब वे सब दर्बार में बड़े मंसब पाकर बढ़ बढ़कर बोलते हैं।

चौथा—(लंबी साँस लेकर) भाई जान, कहें क्या, जब अपना ही सोना खोटा हो तो परखवइया का क्या कुसूर? अरे जब हजरत सलामत ही काफिर हो गए तो फिर ये सब क्यों न उभड़ें।

तीसरा—और लुत्फ तो यह है कि हम लोग लब भी नहीं हिला सकते। जरा बोले नहीं कि वह बेभाव की पड़ने लगे कि सिर खुजलाकर रह जाना पड़ता है।

(बी इलाहीजान का प्रवेश—सब उठ उठकर लंबी चौड़ी आदाब अर्ज करते हैं)

इलाहीजान—(सबको सलाम का जवाब देकर) क्यों हजरत, क्या हम लोगों के नसीब के साथ आप लोगों का दिल भी फिर गया?

पहला—भला ऐसा कभी हो सकता है, जानेमन ! हम लोगों की तो जिंदगी तुम हो। तुमसे कभी दिल फिर सकता है ? मगर करें क्या मजबूरी है, क्या मुँह लेकर आवें, न गिरह में दाम है और न कहीं किसी उम्रा के यहाँ कुछ तार लगता है।

तीसरा—अजी इस मनहूस बादशाह ने तो शहर को बेरौनक कर डाला, और तुर्रा यह है कि आप तो आप, आपके मुसाहिबीन और वजरा भी जामय पारसाई पहिने हैं ! अब हम लोग क्योंकर जीएँगे ?

इलाहीजान—अब इसकी फिक्र कहाँ तक करोगे। अगर हम तुम सलामत रहेंगे, तो बहुतेरे गाँठ के पूरे आँख के अंधे फँसेंगे ही, मगर मुलाकात क्यों तर्क करते हो ? मैं कभी कुछ कहती हूँ ?

चौथा—तुम्हारे इसी सब्र का नतीजा तो है कि इसी मनहूस के वक्त में एक मौका हाथ आया।

सब—(घबराकर) कौन मौका ?

चौथा—(बड़ी शेखी के साथ) अजी हजरत आप लोग कुछ खबर भी रखते हैं, अलमस्त पड़े रहते हैं, बंदा रात दिन इसी फिराक में पड़ा रहता है, आपको क्या ?

पहला—फर्माइए तो मुआमिला क्या है ?

दूसरा—वल्लाह कहो तो सही क्या गुल खिलाया ?

तीसरा—लिल्लाह अब देर न करो, जल्द जुबाँ खोलो।

पाँचवाँ—मीर साहेब, आप बड़े कारू हैं, आपकी क्या बात है। आपको सिर की कसम जल्द उकद:कुशाई कीजिए।

(चौथा सिर हिला हिला मोछों पर ताव देता हुआ इधर उधर देखता है पर बोलता नहीं)

इलाहीजान—(मीर साहब का हाथ पकड़कर) वल्लाह ! जब से तुमने यह खुशखबरी दी कलेजा उमड़ा पड़ता है; खुदा के लिये जल्द फर्माइए क्या मौक: हाथ आया।

मीर—खुदा की कसम इन सभों को तो मैं हर्गिज न बतलाता मगर तुम्हारी बात नहीं टाल सकता ! उदयपुर के राना ने राजा मानसिंह से कुछ बेहूदगी की है इसलिये शाही फौज की उस पर चढ़ाई होनेवाली है, बस अब यार लोगों की भी बन पड़ेगी, फौज के हमराह हम भी चलेंगे, मौक: पाकर अपना काम बनाएँगे, लूट का माल तो ऐनुल माल ही ठहरा और फिर इधर उधर मौके से कोई घात लग गया तो उसमें भी कोई मुजायका नहीं। वहाँ से लौटकर आवेंगे तब फिर आपको हाजिरी देंगे और सारे दिनों की कसर निकालेंगे।

(सबके सब मारे हर्ष के उछल पड़ते हैं और "खूब," "खूब" कह कहकर एक दूसरे से हाथ मिलाते और कहकहा मारते हैं)

इलाहीजान—(मन में प्रसन्न होकर परंतु प्रकाश में कातर स्वर से) नहीं, नहीं, लड़ाई में बड़े खतरे रहते हैं। मैं तुम लोगों को न जाने दूँगी।

मीर—तुमने क्या हम लोगों को बेवकूफ समझा है। अरे हम लोग लड़ाई के वक्त टल रहते हैं और जब लूट का वक्त आता है तब सबसे आगे कूदते हैं।

इलाहीजान—और अगर शाही फौज ने शिकस्त खाई ?

मीर—तो हमारा नुकसान क्या ? उस्तुरा पास रखेंगे फौरन डाढ़ी मूँड़ जुन्नार पहिर हिंदू बन जायँगे।

इलाहीजान—अच्छा, तो आओ हम लोग खुदावंद तआला से कामयाबी के लिये दुआ माँगें।

(सब मिलकर गाते हैं)

मुरादें बर आएँ हमारी खुदाया।
हमेश: हो मतलब बरारी खुदाया॥
जहाँ में जहाँ तक गुजर हो हमारी।
बिछाए रहैं जाल भारी खुदाया॥
बनाएँ निशाना जिसे वह न छूटे।
न हो वार खाली हमारा खुदाया॥
कोई मत का हीना औ पूरा गिरह का।
रहै करता खिदमतगुजारी खुदाया॥
ये बुड्ढे खबीसों से दुनियाँ हो खाली।
हो नौउम्र जी अखतियारी खुदाया॥
गली कूचे घर घर में ऐशो तरब हो।
हमेश: रहै दौर जारी खुदाया॥
हो घर में मुयस्सर न रोटी व कपड़े।
मगर हो न कम मै खुमारी खुदाया॥

[पटाक्षेप

(इति चतुर्थ अंक)

पंचम अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—उदयपुर, देवीजी का मंदिर

(मालती पूजा कर रही है)

[नेपथ्य में गान]

जय जग जननि हरनि भवभय-दुख भक्ति मुक्ति सुख कारिनि।
असुर निकंदिनि सुर नर बंदिनि जय जय विश्व बिहारिनि॥

जब जब भीर परत भक्तन पै तब तब निज वपु धारी।
असुर सँहारत भक्त उबारत आरत हृदय विचारी॥
तुव पद बल हम गिनत न काहू चरित उदार तुमारे।
अब जिनि बिलम करहु जगजननी मेटहु दुःख हमारे॥ १ ॥

मालती—माँ!

"मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उरपुर सबही के॥"

मैंने कठिन व्रत धारण किया है। माँ! ऐसी सुमति देना जिसमें मन न डिगने पावे। एक ओर प्रेम और दूसरी ओर धर्म है; जननी! इसका निबाह मेरी सामर्थ्य से बाहर है, केवल तुम्हारी कृपा साध्य है। इस तुच्छ हृदय को उसके सहने का बल प्रदान करो—गुलाबसिंह का उद्योग सफल हो। जगतजननि! उनकी सफलता के साथ तुम्हारे संतानों की भी सफलता है, अतएव इधर ध्यान दीजिए। माँ! अशरणशरणि! त्राहि!

(गद्गद कंठ से प्रणाम करती है, सखियाँ आरती लिए आती हैं, मालती आरती करती है, सभों का एक साथ गाना)

राग रामकली

"जय जय जगजननि देवि, सुर नर मुनि असुर सेवि,
भक्ति मुक्ति दायिनि, भय हरनि कालिका।
मंगल मुद सिद्धि सदनि, पर्व शर्वरीश बदनि,
ताप तिमिर तरुण तरणि, किरण मालिका॥
वर्म्म चर्म कर कृपाण, शूल सैल धनुष बाण,
धरणि दलनि दानव दल रण करालिका।
पूतना पिशाच प्रेत, डाकिनि शाकिनि समेत,
भूत ग्रह वेताल खग, मृगाल जालिका

जय महेश भामिनी, अनेक रूप नामिनी,
समस्त लोक स्वामिनी, हिम शैल बालिका।
भारत आरत अनाथ, दीजै सिर अभय हाथ,
जय जय जगदंब पाहि, प्रणत पालिका॥

(मंदिर में प्रकाश हो जाता है और देवीजी के कंठ से माला खसककर गिरती है)

सखियाँ—ले सखी! तुझे बधाई है, माँ ने प्रसन्न होकर तुझे प्रसाद दिया है।

(मालती माला उठा सिर चढ़ाती है, धीरे धीरे परदा गिरता है)

द्वितीय गर्भांक

स्थान—उदयपुर, राणा का दर्बार

(राणा और सरदारगण यथा यथा स्थान बैठे हैं, गुलाबसिंह राणा के सामने खड़ा है)

गुलाबसिंह—हुकुम अन्नदाता! बीकानेर कुँवर पृथ्वीराज श्रीदर्बार के बड़े शुभचिंतक हैं। उन्होंने यह पत्र दिया है। (पत्र देता है)

राणा—(पत्र मंत्री को देकर) मंत्री! इसे पढ़ो।

(मंत्री पढ़ता है)

स्वस्ति श्री हिंदू कुल गौरव मान बढ़ावन।
वीरनाद हुंकारि शत्रुदल हृदय कँपावन॥
रविकुलरवि सिसौदिया ध्वज जग में फहरावन।
श्री प्रताप राणा प्रताप जग मैं फैलावन॥
पृथ्वीराज तुव दास अनेकन करत प्रणामा।
इतै कुशल उत ईश सँवारैं सब तुव कामा॥

सुनिए इत की कथा मान—उतते जब आए ।
बरनत निज अपमान रोष बेहद बढ़ाए ॥
ताही समय और फरियादिहु आनि पुकारे ।
लूट्यो शाही भेंट कह्यो—कह शाह बिचारे ॥
बादशाह भए आग बबूला यह सब सुनतहिं ।
मान मुहब्बतखानहि आज्ञा दीनी तुरतहिं ॥
एक लाख लै सैन तुरत राना पै धाओ ।
उदयपूर करि चूर सकल गढ़ धूर मिलाओ ॥
थापि आपनी थाप दाप परताप मिटाओ ।
करि बंदी तेहि तुरत आज दर्बार पठाओ ॥
सुनि आज्ञा फरमान किए सेना पर जारी ।
मान, मुहब्बतखान कूच की करत तयारी ॥
पहुँचे समुझौ तिन्हें सदा रखियो हुसियारी ।
परम प्रबल अरि दलन, दलन की करो तयारी ॥
हम सबनै तो राजपूत को नाम डुबायो ।
अबलौं तुमहीं एक मान मरजाद बचायो ॥
पितर खरे आकाश-मार्ग तुम्हरो मुख जोवत ।
इक तुम्हरी ही आस वीर छत्री सब सोअत ॥
जब लौं तन मैं रहै प्राण तब लौं जिनि डगियो ।
हे प्रताप भारत प्रताप सुधि जिय मैं पगियो ॥
ह्याँ के सब संवाद भेजियौं तुम्हें बराबर ।
ह्वाँ निज जय की खबर हमें दीजौ किरपा कर ॥
तुव प्रताप राणा प्रताप सब पूरि रहै छिति ।
विजय लछमी तुम्हैं मिलै नित किम् अधिकम् इति ॥

राणा—(आवेश के साथ) आवैं, आवैं, हम सदा उनके

लिये तैयार हैं, वे आवैं तो सही, (सर्दारों के प्रति) हमारे वीर सर्दारो !

सावधान सब लोग रहहु सब भाँति सदाहीं।
जागत ही सब रहैं रैन हूँ सोवैं नाहीं॥
कसे रहैं कटि रात दिवस सब वीर हमारे।
अश्व पीठ सों होहिं चारजामे जिनि न्यारे॥
तोड़ा सुलगत रहैं चढ़े घोड़ा बंदूकन।
रहैं खुली ही म्यान प्रतंचे नहिं उतरैं छन॥
देखि लेहिंगे कैसे पामर जवन बहादुर।
आवहिं तो सनमुख चढ़ि कायर कूर सबै जुर॥
दैहैं रन को स्वाद तुरंतहिं तिनहिं चखाई।
जोपै इक छन हू सनमुख ह्वै करहिं लराई॥

(धीरे धीरे परदा गिरता है)

तृतीय गर्भांक

स्थान—अजमेर, शाही फौज का खेमा

(शाहजादा सलीम, * मानसिंह और मुहब्बत खाँ तथा और सेनापतिगण)

मानसिंह—(शाहज़ादे से) हम लोग दौड़ा दौड़ तो यहाँ तक पहुँचे, अब हुजूर का क्या कस्द है ?

सलीम—मेरी राय है कि अब यहाँ दो चार दिन आराम करके तब आगे बढ़ा जाय।

* टाड साहब ने अपने राजस्थान में उदयपुर की लड़ाई में शाहजादः सलीम का जाना लिखा है, परंतु अब यह निश्चय हो गया कि शाहजादः उस समय बहुत ही छोटा था और वह इस लड़ाई में नहीं भेजा गया था।

मुहब्बतखाँ—खुदावंद ! ताबेदार की राय नाकिस में अब एक लहज: भी तवक्कुफ करना मुनासिब नहीं, क्योंकि अगर दुश्मनों को जरा भी खबर हो जायगी तो फिर फतहयाबी मुश्किल हो जायगी, एकाएक जा गिरना चाहिए।

मानसिंह—खबर की आप क्या कहते हैं ? प्रतापसिंह कोई मामूली आदमी नहीं है। उसने जब सोते सिंह को छेड़ा है तब पहले ही से बचने का भी उपाय किया ही होगा। जिस वक्त उसके यहाँ से हम बिदा हुए उसी समय उसका दूत भी दिल्ली खबर लेने छूटा होगा, अब जितनी ही देर होगी उतना ही वह तैयार हो सकेगा।

सलीम—खबर ही होकर क्या होगी ? क्या उसकी फौज हमसे जियाद: है ?

मानसिंह—शाहजादे सलामत ! आपको कभी इनसे काम पड़ा होता तो हर्गिज ऐसा न फर्माते। उसकी फौज हम लोगों की चौथाई भी न होगी मगर एक राजपूत दस आदमियों के लिये काफी है—तिस पर मेवाड़ के राजपूत तो गजब के बहादुर होते हैं। जरा चित्तौर के जंग का हाल खाँ साहब से पूछें तब कैफियत मालूम होगी।

मुहब्बतखाँ—इसमें कोई शुबह: नहीं—अगर वे लोग पहले से खबरदार हो जायँगे हर्गिज फतह नसीब न होगी, चित्तौर पर बड़ी ही मुश्किलों से फतह नसीब हुई थी वह भी घर की फूट से।

सलीम—तो बिस्मिल्लाह कीजिए—सलीम आरामतलब नहीं है। आप लोग मेरी तरफ से इतमीनान रखें। मैं तो महज आप लोगों के आराम के खयाल से कहता था—मगर महाराज मानसिंह ! अगरचि राजपूत बड़े बहादुर हैं—मगर मुगल भी कोई ऐसे वैसे नहीं हैं। राजपूतों को घर बैठे लड़ना था मगर मुगलों ने तो हजारों कोस से आकर हिंद को फतह किया था। सलीम ने भी

कमजोर हाथ से तलवार नहीं पकड़ी है और फिर हमारे साथ तो राजपूतकुलतिलक महाराज मानसिंह हैं।

मानसिंह—यह कौन कहता है कि मुगल बहादुर नहीं हैं। मगर खुदावंद—अगर घर में नफाक न होता तो जरा हिंद को फतह करना मुश्किल था, खैर—मेरी गरज सिर्फ यह है कि देर करने में बजुज नुकसान के कोई फायदा नहीं।

सलीम—बेशक—तो आज ही कूच करना चाहिए।

मानसिंह—(सेनापतियों के प्रति) बादशाह सलामत ने आप ही लोगों के भरोसे इस जंग को छेड़ा है और अपने लख्ते जिगर शाहजाद: सलीम को साथ दिया है। आप लोग ऐसी मुस्तैदी और बहादुरी के साथ उदयपुर पर धावा करें कि चलते ही दुश्मनों को हटा दें।

एक सेनापति—हुजूर! इसकी कैफियत मैदान जंग में मालूम होगी, हम लोग तो जाँनिसार हैं। मगर मेरी अक्ल नाकिस में इधर से कोई शख्स ऐसा जाना चाहिए कि जो वहाँ की भीतरी खबर भी ले और अगर मुमकिन हो तो उनमें से कुछ चीद: सरदारों को अपनी तरफ मिलावे।

मुहब्बतखाँ—खूब खूब तुमने यह खूब सोचा, मगर इस वक्त इस काम के लिये तुमसे बढ़कर और कौन है?

सेनापति—(मन में) "जो बोले सो घी को जाय" (प्रकाश) हालाँ कि फिद्वी किसी काबिल नहीं, मगर तामील इर्शाद फर्ज समझ कर रजा चाहता है।

सलीम—शाबाश, आपही सा जवाँमर्द मुस्तैद शख्स तो ऐसा काम अंजाम दे सकता है, अच्छा अब आप अल्लाहो अकबर का नाम लेकर कूच कीजिए। (सेनापति को पान देता है और वह सलाम करके जाता है।)

मानसिंह— (सेनापतियों के प्रति)

चलो चलो सब वीर बहादुर कमर कसो अब ।
दिल्लीपति सेवा को अवसर फिर पैहो कब ॥
निज प्रताप बल तुच्छ प्रताप प्रताप मिटाओ ।
थापि आपनी थाप ताप निज अरिहिं तपाओ ॥
चढ़ि शिखर उदयपुर महल के शाही ध्वज फहरावहीं ।
जय नाद जु अकबर शाह की चारों ओर मचावहीं ॥

सब—आमीं-आमीं-आमीं ।

[पटाक्षेप

चतुर्थ गर्भांक

स्थान—उदयपुर, अंतःपुर

(महाराणा और महाराणी)

प्रतापसिंह—मानसिंह ने जो कुछ किया वह तुमने सुना ही ।

महाराणी—महाराज ! मानसिंह का कौन दोष है ? आपने जो सलूक उनके साथ किया उसके बदले वह और करते ही क्या ?

प्रताप—प्रिये ! तुम प्रतापसिंह की स्त्री होकर ऐसी बात कहती हो ? मानसिंह को अपनी करतूत पर लज्जित होकर घर बैठना था, या एक अनुचित काम करके उसे ढाकने के लिये दूसरा घोरतर अनुचित काम करना था ? जब मान ही नहीं तो फिर मानसिंह क्या ? चाहे हम लोगों का हिंदू धर्म भला हो या बुरा परंतु जब तक हम हिंदू धर्म अवलंबन किए हैं उसके नियमों का पालन करना हमारा कर्त्तव्य है। जहाँ हमारे धर्मानुसार हिंदुओं ही में एक जाति दूसरी जाति का बनाया अन्न नहीं खाती, वहाँ विधर्मी मुसलमानों

को बेटी देना क्या कम लज्जा और घृणा की बात है ? और फिर यदि उसने किसी कारण से ऐसा काम कर भी डाला था तो चुपचाप लज्जित होकर उसके लिये पश्चात्ताप करना उचित था, या यह कि और भी बचे बचाए लोगों का धर्मनाश करना ? दो चार लड़ाइयों को जीतकर उसका मन बहुत ही बढ़ रहा था इसलिये मैं ऐसा न करता तो और क्या करता ? यदि वह यहाँ से भी अपने घृणास्पद काम के लिये कुछ शिक्षा न पाता तो संसार में और कहाँ पाता ? यह अधर्म भी तब धर्म ही समझा जाता, क्योंकि इस गद्दी की बड़ाई केवल हिंदू-गौरवरक्षा के कारण है। यदि हम ऐसा न करते तो इस कुल को कलंकित करते, दूसरे यह कि उसे इस बात का बड़ा अभिमान होता कि राणा मेरे भय से दब गया और उसने मेरे धर्म पर ढाकन डाल दिया, इसलिये, प्यारी ! मरना अच्छा—राज्यासन छोड़कर बन बन घूमना अच्छा, परंतु अपयश और अधर्म का भागी होना नहीं अच्छा।

तरु छाया आसन सिला भीलन संग निवास।
परम सुखद पै धर्म तजि रुचत न राज विलास ॥

रानी—नाथ ! हमारा अपराध क्षमा कीजिए, हम स्त्री जाति कहाँ तक समझ सकती हैं। हमारे लिये तो यह भाग्य की बात है कि आपकी सेवा का अधिक अवसर मिलेगा।

जल भरि सब थल स्वच्छ करि नाना पाक बनाय।
बड़ भागिनि जीवन करूँ अमित पलोटौं पाय ॥

प्रतापसिंह—शाबाश ! यह बात तुम्हीं को शोभा देती है। भला, मानसिंह, भला, तुमने जो किया अच्छा किया। इसका प्रतिफल तुम्हें दिए बिना विश्राम नहीं लेने का।

जबलौं नहिं गढ़ ढाहि करि दासिन कौड़िन बेच ।
करौं न दच्छिण कर असन सेज न पगिया पेच ॥*

* यह किंवदंती प्रसिद्ध है कि महाराणा प्रतापसिंह ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जब तक जयपुर का गढ़ अपने हाथ से ढहाकर दासियों को कौड़ी के मोल न बेचलूँगा न शय्या पर शयन करूँगा, न सिर पर पाग रखूँगा और न दाहिने हाथ से भोजन करूँगा। इस प्रतिज्ञा का पालन उस वंशवाले बराबर करते आते थे। जयपुर के महाराज रामसिंह ने सोचा कि क्षत्रियों की प्रतिज्ञा महा भयानक होती है, एक न एक दिन परिणाम बुरा होगा। इसलिये सन् १८७७ ईसवी में जब श्रीमती भारतेश्वरी के प्रिय युवराज प्रिंस आफ वेल्स भारत में आए थे उस समय महाराणा सज्जनसिंह और महाराज रामसिंह उनसे भेट करने बंबई गए थे, तब महाराज रामसिंह आग्रहपूर्वक महाराणा साहिब को जयपुर ले गए। ज्योंही किले के दरवाजे पर पहुँचे तोप में गोला भरा तैयार था। महाराज रामसिंह ने महाराणा साहिब से बहुत आग्रह करके उसे उनके हाथ से दगवाकर गढ़ के दो चार कनगूरे ढहवा दिए और दो चार गोपियों (दासियों) को अपने ही मुसाहिबों के हाथ कौड़ियों मोल बिकवा दिया। इस भाँति उनकी प्रतिज्ञा पूरी कराके उन्हें शय्या पर सुलाया और आप पगड़ी पहराई। यह किंवदंती कहाँ तक ठीक है इसका निर्णय करने के लिये मैंने अपने मित्र कुँवर जोधसिंह (उदयपुर राज्य के सुयोग्य दीवान राय पन्नालाल बहादुर सी० आई० ई० के भ्रातुष्पुत्र) को लिखा था। उन्होंने जो उत्तर दिया है अविकल प्रकाशित किया जाता है। पाठकगण इससे इसकी अलीकता समझ सकेंगे।

"प्रताप नाटक" आपने पद्मावती से भी अच्छा लिखा है। आपने जो प्रतापसिंह की जयपुर के लिये प्रतिज्ञा पूछी यह इधर प्रसिद्ध नहीं है और न मैंने भी किसी इतिहास में पढ़ी। श्री महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदासजी निर्मित "वीरविनोद" नामक बृहत् इतिहास में महाराणा प्रतापसिंहजी के प्रकरण में इन प्रतिज्ञाओं का जिक्र नहीं है। यह बात भी निर्मूल है कि रामसिंहजी ने महाराणा सज्जनसिंह से कोई प्रतिज्ञा पूरी करवाई थी। न जाने ऐसी निर्मूल गप्पें क्यों लोक में प्रसिद्ध हो जाती हैं। आपने टाड राजस्थान या मेरे ही छोटे इतिहास में पढ़ा होगा कि महाराणा अमरसिंह जी द्वितीय ने

[नेपथ्य में]

आलस निसि भइ भोर, उदय होत रविकुल तरनि ।
भागहु कायर चोर, अब विलंब नहिं नास में ।।

ही जयपुर के महाराज सवाई जयसिंहजी को निज कन्या ब्याह दी थी और जयपुर से एक घर का सा व्यवहार हो गया था। व उसके उपरांत जयसिंह के पश्चात् सवाई माधोसिंहजी उनके पुत्र और मेवाड़ के भानजे थे, गद्दी पर बैठे।

हाँ जयपुर से संबंध रखनेवाली श्री प्रतापसिंहजी के समय में कुँवर मानसिंह और भगवानदास का अलहदा अलहदा तौर से श्रीजी के पास आना व हलदीघाटी की लड़ाई प्रसिद्ध घटना हुई थी। इसके सिवाय और भी कई घटनाएँ श्री प्रतापसिंहजी के समय की प्रसिद्ध हैं और इतिहास में भी कई सन्निवेशित की गई हैं वे कहाँ तक लिखी जायँ पर उनमें भी जयपुर से संबंध रखनेवाली तो दो ही हैं।

आप अपने नाटक को सुखांत करोगे या दुःखांत ? क्योंकि उनके पिछले आठ वर्षों में अकबर ने फिर मेवाड़ पर चढ़ाई न की थी और उनके पुत्र अमरसिंहजी के समय में अकबर के बाद तो जहाँगीर ने ही अमरसिंहजी पर आप अजमेर में रहकर सेना भेजी थी। यदि दुःखांत करोगे तो प्रतापसिंहजी के परलोकवास की घटना के सिवाय कोई दुखदायक वार्ता नहीं हुई। उनके परलोक करते समय का पश्चात्ताप तथा उपदेश बड़े वीरता के शब्दों से भरे थे।

आज मेरे पत्र में जिन वीर पुरुषों का विशेष हाल है उन्हीं के लिये यहाँ जो दोहे प्रसिद्ध हैं उन्हें लिखता हूँ और अंत में एक श्लोक भी लिखता हूँ जो प्रतापसिंहजी की खोदित लिपि में मिला है जिसमें हलदीघाटी की लड़ाई का वृत्तांत है। यदि उचित समझें तो इन दोहों को नाटक के टाइटल पर छपवा देवें।

सोरठा

अकबर समद अथाह। सूरायण भरियो सलल ।।
मेवाड़ी तिण माह। पायण फूल प्रताप सी ।।
अकबर घोर अँधार। ऊघाणे हिंदू अवर ।।
जागे जग दातार। पीहरे राण प्रताप सी ।।

प्रतापसिंह—प्रिये, अब बिदा करो, देखो कविराजा जी युद्ध आरंभ करने की सूचना दे रहे हैं।

रानी—(सहास्य) नाथ, आप सुख से पधारें परंतु दासी को भूल न जाइएगा।

(राजकुमार एक छोटी सी तलवार लिए दौड़ते हुए आते हैं)

राजकुमार—(तलवार खोलकर) मा ! हम बादशाह के बेते का छिल इछी तलवार छे कात कल खेलने का गेंद बनावैंगे हमें भी दलबाल के छाथ जाने का हुकुम देव।

रानी—वत्स ! तुम अवश्य जाओ—पर लूट में जो गहना लाना वह हमीं को देना।

राजकुमार—हाँ हाँ, छब तुमको देंगे पल छिलपेच औल कलँगी तो हमही पहिलैंगे।

(सब लोग हँसते हैं)

[नेपथ्य में महाराज प्रतापसिंह की जय का कोलाहल होता है]

प्रतापसिंह—(खड़े होकर) सेना लड़ने के लिये बड़ी उत्सुक हो रही है। प्रिये ! अब जाता हूँ—देखें इस जन्म में फिर तुम्हारा चंद्रानन देखने में आता है कि नहीं।

अकबर एकण बार। दागल की सारी दुनी॥
बिन दागल असवार। एकज राण प्रताप सी॥

श्लोक

कृत्वा करे खड्गलतां सुवल्लभां प्रतापसिंहे समुपागते प्रगे।
सा खंडिता मानवती द्विषच्चमू: संकोचयंती चरणौ पराङ्मुखी॥

ऐतिहासिक गलती

यह बात निश्चित रूप से प्रसिद्ध हुई है कि हलदीघाटी की लड़ाई में अकबर स्वयं मौजूद न था और न उसका शाहजादा। पर मानसिंह था और उसके संग शाही सैनिक अफसर भी थे।

रानी—नाथ ! हमारा आपका साथ क्या कभी छूट सकता है ? भगवान् श्री एकलिंगजी बहुत ही शीघ्र विजयलक्ष्मी देंगे।

प्रतापसिंह—तथास्तु।

(प्रतापसिंह नंगी तलवार लिए आगे आगे, राजकुमार छोटी नंगी तलवार लिए पीछे पीछे मुड़ मुड़कर प्रेमपूर्वक रानी की ओर देखते हुए जाते हैं—रानी अतृप्त नेत्रों से देखती है)

[पटाक्षेप

पंचम गर्भांक

स्थान—उदयपुर, मैदान

(महाराणा की सेना, घोड़े पर महाराणा, सरदारगण तथा कविराजा)

कविराजा—

उमड़ी क्यों सुरबाला सब नभ मंडल मोहैं।
ह्वै व्याकुल क्यों लरत करन जयमाला सोहैं ॥
कटकटाइ क्यों अरी जोगिनी धावत उत इत।
गिद्धराज मँड़रात व्यर्थ ही कलह करत कित ॥
धरि धीर बैठि देखत न किन सबकी आशा पूरिहै।
जब वीर प्रताप कृपाण लै शत्रुन के तन घूरिहै ॥
कहा कहत? मम प्यास राम रावण रण माहीं।
कौरव पांडव लरे बुझी तब हूँ वह नाहीं ॥
ताहि बुझावनहार कौन जग में है जायो।
हाय ! न कोऊ अब लौं मेरो हृदय जुड़ायो ॥
चुप लखत न क्यों रे बावरे छिन ही मैं घबराइहै।
जब बाण गंग इत उमड़िहै तो पै पियो न जाइहै ॥

अहो वीर क्यों करत विलम अवसर क्यों खोवत ।
क्यों न शत्रु सिर गिरत बाट अब काकी जोवत ॥
देखौ नभ में पुरुषे तुव गति की गति जोहत ।
हिय उछाह आनंदित मुख आतुरता सोहत ॥
करि सिंहनाद हरि शत्रु हिय अपुने पाँव बढ़ाइयै ।
जय जयति मिवार प्रताप जय कहि अरि हृदय कँपाइयै ॥

(महाराणा प्रतापसिंह की जय, मेवार की जय आदि कोलाहल करते उत्साह के साथ सेना का नेपथ्य में गमन और दूसरी ओर से गुलाबसिंह का प्रवेश)

गुलाब०—प्रेम ! तेरा इतना बड़ा साहस कि तू पाषाणवत् कठोर वीर हृदय पर भी अपना अधिकार जमा लेता है ? अरे जिस गुलाबसिंह ने कभी स्वप्न में भी शत्रु से पीछा न दिया होगा आज तैंने उसे डोर में बाँधकर अपना बंदी बना लिया ? किधर से आया, कब आया और कैसे इस दृढ़ हृदयगढ़ में समाया कुछ जान भी न पड़ा कि भला मैं कुछ तो अपने जी की निकाल लेता, तुझे कुछ तो दिखला देता कि वीर हृदय पर चढ़ाई करने का फल क्या होता है ? पर हाय ! मैं अब क्या कर सकता हूँ, अब तो तेरे फंदे में फँस गया, हिल तो सकता ही नहीं वीरता क्या दिखलाऊँ ! हाय ! देशभक्त वीर क्षत्रिय लोग वह देखो रणभूमि में पहुँच गए और मैं अभी यहीं खड़ा हूँ ! कुछ चिंता नहीं । भाइयो ! मैं भी पहुँचा । गुलाबसिंह पीछे रहनेवाला नहीं है । तुम्हारा साथ देगा, अब मुझे प्राण विसर्जन करने में तनिक भी आगा पीछा नहीं है । मैं अपनी प्रेम-पुत्तलिका से अंतिम बिदाई ले आया । अब उसके कोमल मुखकमल का ध्यान करते-करते मैं निःसंकोच अपनी मातृभूमि के लिये प्राण खो सकूँगा । (कुछ ठहरकर इधर उधर टहलते हुए) प्राण !

क्यों घबराते हो ! क्यों, शत्रुहीन पृथ्वी करने के लिये व्याकुल हो रहे हो ? पृथ्वी में कौन है जो तुम्हारी चोट को सम्हाल सकेगा ? जब तुम अकेले थे तब तो कोई तुम्हारा सामना कर ही नहीं सकता था और अब ? अब तुम्हारे साथ प्रेम के रहते कौन है जो तुम्हें जीत सके ? अब तो "कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि"। प्यारी मालती ! देखो अपनी प्रतिज्ञा स्मरण रखना। देखो अभी तुम्हारा गुलाबसिंह तुम्हारी आज्ञा-पालन करके आता है। अभी अपनी असीम साहसाग्नि में शत्रुदल भस्म कर तुम्हारा हृदयराज्य अधिकार करेगा अथवा तुम्हारे प्रेममय मुख का ध्यान करता करता अनंत सुखधाम की ओर प्रस्थान करेगा। पर याद रखना तुम्हारा चातक कभी दूसरे जल से तृप्त न होगा; तुम भी कृपा कर उसकी सुध न भुला देना।

[नेपथ्य में कोलाहल]

(चौंककर) जान पड़ता है लड़ाई आरंभ हो गई। तो मैं भी पहुँचा—(उन्मत्त की भाँति वीरदर्प के साथ जाता है।)

षष्ठ गर्भांक

स्थान—एक पहाड़ी बरसाती नदी का किनारा

(नदी के एक किनारे पर चेतक घोड़े पर सवार प्रतापसिंह और पीछे पीछे घोड़े पर सवार सक्ता जी, दूसरी ओर दो मुगल सर्दार मुमूर्षु अवस्था में भूमि पर पड़े छटपटा रहे हैं)

सक्ताजी—(राणा को ललकारकर) ओ नीले घोड़े के सवार !

राणा—(पीछे फिरकर सक्ताजी को देख घोड़े को रोककर मन ही मन) आह ! यह क्या, सक्ता इस समय अपना बैर चुकाने आया है ? अच्छा कुछ चिन्ता नहीं। उन नीच यवनों के हाथ

से मरने की अपेक्षा पवित्र सिसोदिया-कुल के हाथ से वीर-गति पाना सहस्र गुण श्रेय है। (प्रकाश ललकारकर) रे क्षत्रिय कुलकलंक! आ हम तेरी प्रतिहिंसा वृत्ति चरितार्थ करने के लिये प्रस्तुत हैं।

सक्ताजी—(घोड़े से कूदकर राणा के पैर पकड़कर) भैया प्रताप, वाक्यबाणों से हमारा हृदय मत बेधो। बहुत हुई; हम प्रतिहिंसा लेने नहीं आए हैं, हम अपराध-मार्जन कराने आए हैं। भाई प्रताप एक बेर हृदय से कहो—सक्ता, हमने तेरा घोर अपराध क्षमा किया!

राणा (सक्ता का हाथ थामकर साश्रुनयन) भाई सक्ता, प्यारे भाई, हमने तुम्हारे अपराधों को क्षमा किया। क्या तुम भी हमारे अनुचित बर्तावों को अपने हृदय से भुला दोगे?

सक्ता—(रोते रोते) भैया, भैया, अब कुछ न कहो, अब नहीं सही जाती, हाय जिसने तुम्हारे जैसे वीर, देशहितैषी, उदार और प्रेम-पूरितहृदय भाई के साथ शत्रुता की, क्या उससे बढ़कर नीच कोई संसार में हो सकता है उसके साथ जो बर्ताव किए जायँ थोड़े हैं।

राणा—(आँखों को पोंछकर—बात फेरकर) हाँ यह तो बतलाओ तुम यहाँ इस कुसमय में कैसे आ गए?

सक्ता—(आँखें पोंछते पोंछते) जब हमने देखा कि रणक्षेत्र से तुम इस ओर बढ़े और इन दोनों नीच अन्यायो यवनों ने तुम्हारा पीछा किया, हमसे न रहा गया। न जाने कैसा भ्रातृस्नेह हृदय में उमड़ा कि हमसे रुक न सका, हम भी पीछे हो लिए। जब तुम्हारा प्यारा चेतक तुम्हें लेकर तीर की भाँति नदी पार हो गया और वे दोनों नीच नदी हलने में हिचकिचाए हमने उन दोनों पर हमला किया और भैया प्रताप तुम्हारे चरणों के प्रताप से दोनों को मार गिराया, देखो वे दोनों पड़े छटपटा रहे हैं।

राणा—धन्य भाई सक्ता धन्य, भाई मिलै तो तुम सा। अहा! सच कहा है "मिलै न जगत सहोदर भ्राता।" आओ तुम्हें छाती से लगा हृदय शीतल करें। (राणा ज्योंही रिकाब से पैर निकालते हैं चेतक पृथ्वी पर गिरता और छटपटाता है)

राणा—(व्याकुल होकर) अरे यह क्या ? अरे मेरे बहादुर प्राणदाता चेतक, हाय, क्या तू मुझे यहाँ अकेला ही छोड़कर भागना चाहता है ?

(दोनों भाई दौड़कर चेतक की जीन आदि काट देते हैं। राणा दौड़कर नदी से अपनी पगड़ी भिगाकर जल लाते और चेतक के मुख में चुलाते हैं। सक्ताजी अपने डुपट्टे से हवा करते हैं। चेतक हाँफता और एकटक राणा की ओर देखता आँसू बहाता है)

राणा—(चेतक के मुख को गोद में लेकर मुख चूमकर स्नेह के साथ हाथ फेरते हुए) प्यारे घोड़े, मेरा विपत्तिसहचर चेतक, तू ऐसा क्यों कर रहा है? अरे तू यहाँ मुझे किस के भरोसे छोड़ जाता है? (आँखों से आँसू बहते हैं, चेतक जरा सा मुँह उठाकर धीमे शब्द से हिनहिनाता राणा की ओर देखता प्राणत्याग करता है, आँख खुली ही रह जाती है।)

प्रतापसिंह—(अत्यंत करुण स्वर से)

विपति सँघाती धीर, स्वामिभक्त साँचो सुहृद।
चल्यो होइ बेपीर, रे चेतक परताप तजि॥
सहे अनेकन घाय, चढ़ि सलीम गज सीस पै।
पीछो दियो न पाय, अब क्यों भाजत मोहिं तजि॥
रतन अमोलक तौल, सहस गुनो जो वारिए।
तौहू लहै न मोल, रे चेतक तुव सामुहै॥

करिके अनिया मोहिं, हा हा चेतक चलि बस्यो ।
सहि नहिं सकत बिछोह, अब जीवन लागत वृथा ॥

सक्ताजी—(सांत्वना देकर) भैया, तुम धीर वीर होकर ऐसे अधीर होते हो ? चेतक ने अपना काम किया, प्राण दिया पर अपने कर्तव्य से विमुख न हुआ और क्या प्रतापसिंह आज मोह के वशीभूत होकर निज कर्तव्य को भूल रहे हैं ? सारी हिंदू जाति इस समय एक तुम्हारा मुख देख रही है—उठो देर न करो। मेरे इस घोड़े पर चढ़कर किसी सुरक्षित स्थान पर जाकर अपने इन घावों की दवा करो, मेरे लिये कुछ चिंता न करना, मैं उन दोनों मुगलों के घोड़ों में से एक को लेकर अभी मुगल शिविर में जाकर उनकी खबर लेता हूँ।

(प्रताप के उत्तर की प्रतीक्षा न करके सक्ता का तीर की
भाँति प्रस्थान और प्रतापसिंह का भौंचक से होकर
इधर उधर देखते रह जाना)

[पटाक्षेप

(इति पंचम अंक)

षष्ठ अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—दिल्ली—शाही महल

(अकबर और पृथ्वीराज)

अकबर—अब तक उदयपुर की कोई खबर न मिली, तबीयत निहायत परेशान है।

पृथ्वीराज—हुजूर, राणा प्रतापसिंह को परास्त करना कोई हँसी खेल नहीं है। फौज इसी तरद्दुद में होगी, इसी से कोई खबर

नहीं आई। पर मेरी समझ में ऐसे खतरे की जगह शाहजादा सलीम को भेजना कुछ अच्छा नहीं हुआ।

अकबर—राजा साहब, यह आप क्या फर्माते हैं? अकबर ऐसा बुजदिल नहीं है जो बमुकाबिल जंग अपनी या अपने औलाद की जान को अजीज समझे—अगर मैदाने जंग में बहादुरी के साथ मेरा फर्जन्द काम आवै तो मैं समझूँगा कि वह अपने हक को अदा कर गया और अपने तईं उसका वालिद होना फख्र मानूँगा। देखिए बचपन से मैंने जिस कदर तकलीफें उठाईं और जैसे खतरों में अपने तईं डाला अगर उनसे खौफ खाता तो हर्गिज आज यह दिन नसीब न होता।

[नेपथ्य में]

जय प्रताप तुव शाह विजयलक्ष्मी चेरी सी।
हाथ बाँधि मनु करत रहत चहुँ दिसि फेरी सी॥
जो हतभागी परत आइ तुव कोप-ज्वाल मैं।
भस्म होत छिन माहिं पिसत सौ काल गाल मैं॥
मेवार छार जयहार लै फतेह मुबारक मुख कहत।
युवराज सलीम उमंग सों तुव पद चूमन अब चहत॥

पृथ्वीराज—(मन में) देता तो है बादशाह को विजय की मुबारिकबादी, परंतु पहले ही मुख से "जय प्रताप" निकला। मा दुर्गे, तेरी शरण—

[शाहजादा सलीम का प्रवेश]

सलीम—(बादशाह के पैरों पर गिरता है और बादशाह उठाकर छाती से लगाता है) जहाँपनाह को आज फतहेहिंद मुबारक हो।

अकबर—(फिर सलीम को छाती से लगाकर) जिसे तुम्हारा सा फर्जन्द खुदावंद तआला ने दिया हो उसके लिये ऐसी ऐसी

फतहयाबी क्या हकीकत है ? मगर यह तो कहो आज फतहेहिंद के क्या मानी ? क्या अब तक हिंद फतेह होने को बाकी था ?

सलीम—खुदावंद बंदगाने आली ने गो कि सारे हिंद पर फतेहयाबी हासिल कर ली मगर जब तक इस छोटे से टुकड़े मेवार पर फतेह न हासिल हो, तब तक हिंदुओं की नजर में हिंद फतेह नहीं हुआ। राणा को लोग हिंदूपति कहते हैं।

अकबर—तुम अभी फतेह की मुबारकबादी दे न रहे थे।

सलीम—जरूर, बएकबाले आली हम लोग फतेहयाब तो जरूर हुए मगर यह फतेह नहीं के शुमार में है।

अकबर—क्यों क्यों—

सलीम—खुदावंद ! मैं शुरू से कैफियत अर्ज करता हूँ। हम लोगों ने जाते ही अजमेर से सिपहसालार जवाँमर्दखाँ को खबर लेने और दुश्मनों के चंद लोगों को काबू में लाने की कोशिश के लिये भेजा; मगर खबर लाना और किसी को काबू में लाना तो दर किनार, वह हजरत खुद दुश्मनों के काबू में आ गए और डाढ़ी मूँछ मुड़ा कलंदर की सूरत बनाकर प्रताप की तरफ से बतौर तुहफः हम लोगों के सामने पेश किए गए। एक तो तमाम फौज मुस्तैद थी ही दूसरे उसकी इस हरकत से सबके सब गजब में आ गए और हम लोगों ने बड़े जोर शोर से चढ़ाई कर दी—फिर मैं क्या अर्ज करूँ, वाह रे बहादुराने राजपुताना ! जिस वक्त वे लोग भूखे शेर की तरह हमारी फौज पर टूट पड़े कुछ अक्ल काम न करती थी। वह मुट्ठी भर राजपूत हमारी बेशुमार फौज को आन की आन में मूली की तरह काटकर रख देते थे। हमारे कैसे कैसे सर्दार इस जंग में काम आए हैं कि ताबेदार कुछ गुजारिश नहीं कर सकता और उन लोगों के लिये तो मरना कोई बात ही न थी। ग्वालियर

के राजा रामसिंह का इकलौता कुँवर खंडेराव बड़ी बहादुरी से लड़कर मारा गया मगर रामसिंह को उसकी कुछ भी परवा न थी, गोया बारूद में पलीता लगा दिया गया। फिर किस तरह पर जान छोड़कर वह लड़ा है कि फिद्वी अर्ज नहीं कर सकता।

अकबर—शाबाश बहादुर रामसिंह, शाबाश ! हाँ फिर—

सलीम—मैं अपनी फौज के घेरे में हाथी पर अम्मारी में सवार था—देखता क्या हूँ कि खुद प्रताप देव की सूरत हाथ में भाला चमकाता घोड़ा फेंककर हाथी पर पहुँचा और एक ही हाथ में महावत को मार गिराया। उस वक्त बिजली की तरह कड़ककर उसने मुझसे जो कुछ कहा वह अब तक मेरे दिल में कड़क उठता है।

अकबर—(जोश में आकर खड़ा हो जाता है) क्या कहा ?

सलीम—हुजूर ! कहा कि "अरे लड़के ! तैं क्या जनानखाने में बैठकर लड़ाई की बहार देखने आया है ? क्यों नहीं मैदान में निकलता ? खैर, तुझे लड़का समझकर छोड़ देता हूँ, मगर ले यहाँ का निशान लेता जा" इतना कहकर अम्मारी पर एक ऐसा भाला मारा कि अगला खंभा पाशपाश हो गया।

अकबर—(घबराकर) फिर फिर—

सलीम—इतने में तो नीचे से हमारे बहादुर सरदारों ने गोलियों की झड़ी बाँध दी। प्रताप को सात घाव लगे, बहादुर घोड़े को भी गोली लगी, दोनों नीचे आए—फिर तो वह खौफनाक जंग हुआ कि जिसका बयान नहीं। इस जंग में प्रताप का तो काम तमाम हो चुका था क्योंकि प्रताप अकेला ही मेरी फौज में आ कूदा था और वह चौतरफ से घिर गया था मगर वाह रे निमकहलाल झाला राजा मानसिंह ! यह तुम्हारा ही काम था। खुदावंद, वह बिजली की तरह बादल के मानिंद फौज को चीरता हुआ पहुँचा और राणा को

हटाकर आप राणा की जगह खड़ा हो गया और राणा के धोखे आप मेरे सिपाहियों के हाथ जाँ बहक हुआ मगर अपने मालिक को बचाया।

पृथ्वीराज—(मन में) धन्य झाला राजा धन्य, तुम्हारा जन्म सुफल हुआ।

अकबर—फिर प्रतापसिंह का क्या हुआ ?

सलीम—हुजूर ! मेरे सिपाह तो यह समझकर कि प्रताप मारा गया खुशी के मारे मरने लगे और झाला राजा के सिपाह बिजली के मानिंद राणा को लेकर निकल गए।

अकबर—वाह रे बहादुराने राजपूताना, वाह ! क्यों न हो यह उन्हीं के हिस्से है—हाँ फिर क्या हुआ ?

सलीम—हमारे दो बहादुर सरदारों ने प्रताप का पीछा किया और करीब था प्रताप को मार लेते क्योंकि प्रताप तो मजरूह था ही लेकिन उसके बहादुर और वफादार घोड़े चेतक ने बावजूदे कि निहायत ही जखमी था ऐसी वफादारी की जो इन्सान से नामुमकिन है; और अपने मालिक को बचा लिया। दर्मियान में एक बरसाती नदी आ गई। हमारे सरदार जब तक उसके करीब पहुँचे चेतक राणा को लेकर तीर के मानिंद पार हो गया। मुगल सरदार नदी उतरने की कोशिश ही में थे कि राणा के भाई सक्ताजी ने, जिसके साथ हुजूर ने इतने इहसान किए थे, उन दोनों पर हमला किया और दोनों को मार गिराया।

अकबर—(क्रोधपूर्वक) सक्ता से यह दगाबाजी ! तुमने उसे क्या सजा दी ?

सलीम—खुदावंद, उसने मुझसे जाँ बख्शी का कौल लेकर कुल सहीह हाल कह दिया इसलिये मैंने उसे मुवाफ कर दिया मगर उसे और उसके कुल सक्तावंशी सरदारों को शाही मुलाजिमत से अलाहदः कर दिया।

अकबर—खूब किया, इस जंग में कितने राजपूत खेत रहे ?

सलीम—बाइस हजार फौज लेकर राणा ने चढ़ाई की थी जिनमें से सिर्फ आठ हजार जीते फिरे।

अकबर—शाबाश—हाँ फिर क्या हुआ ?

सलीम—फिर हम लोग फतह का डंका बजाते शहर में दाखिल हुए मगर वहाँ धरा क्या था। सारा शहर वीरान, जंगल हो रहा है, कहीं किसी का पता नहीं, कुछ भी हाथ न आया और उसी जंगलिस्तान में हमारी फौज पड़ी है। बकौल शख्से कि "बगुला मारे पंख हाथ।"

अकबर—शहर की यह हालत क्यों हुई ?

सलीम—सुना गया है कि बरसों पहले से प्रताप ने सारी बस्तियों को उजाड़ कर दिया था ताकि दुश्मन अगर फतेहयाब भी हों तो कुछ न पाएँ। तमाम बाशिंदगान को जंगलों और पहाड़ों में रहने का हुक्म था और खुद कभी कभी आकर तहकीकात करता था कि उसके हुक्म की तामील हुई या नहीं। एक चरवाहा एक सबज: में अपनी भेड़ चराता पाया गया—फौरन् उसे फाँसी लटकवा दिया। इस सख्ती के साथ उसने मेवाड़ ऐसे खुशनुमा मुल्क को जंगल बना दिया है।

अकबर—आफरीं है इस दूरंदेशी पर, मगर तुम लोगों ने जंगलों में क्यों नहीं उसका पीछा किया ?

सलीम—जहाँपनाह ! एक तो उस पहाड़ी जंगल में हम लोगों का नावाकफियत की हालत में घुसना नामुनासिब दूसरे मौसिमे बरसात शुरू, इस वक्त तो नामुमकिन ही था।

अकबर—कुछ मुजायक: नहीं, बाद बरसात सही। मुझे मुल्क मेवाड़ की फतेह से सीमोजर की ख्वाहिश नहीं; मुल्कगीरी की ख्वाहिश नहीं, सिर्फ बातों की आन है। मगर देखना खबर-

दार जिसमें प्रताप ऐसा बहादुर शख्स मारा न जाय, जिंदः गिरफ्तार हो। आहा! क्या ऐसा बहादुर भी रूए जमीन पर मौजूद है? अकबर, तू खुशनसीब है कि तुझे ऐसा दुश्मन मिला।

पृथ्वीराज—(मन में) आहा!

साधु सराहैं साधुता जती जोगिता जान।
रहिमन साँचे सूर की बैरिहु करैं बखान॥

[पटाक्षेप

द्वितीय गर्भांक

मेवाड़—जंगल—गिरि-गुहा का बाहरी प्रांत

(एक पत्थर की चट्टान को काट छाँटकर सिंहासन बनाया हुआ, उस पर राणाजी विराजमान, ताड़ के पत्तों का छत्र लगा, चँवर होता, नकीब चोबदार आदि खड़े, सरदारगण यथा यथा-स्थान भूमि पर बैठे, दाहिनी ओर सिंहासन के पास भीलों का सरदार काछा काछे सिर पर लाल पाग मोर का पंख खोसे हाथ में धनुष बाण लिए)

कविराज—

दिन दिन बढ़ै प्रताप प्रताप प्रताप ईस के।
होइ नास जम पास बास सब यवन कीस के॥
फिर मिवार सुखसार गरें जयमाल विराजैं।
देव रविन यह अवनि यवनि बिनु सब दिन छाजैं॥
हे देव दमन अशरन शरन अब न बिलम मन में धरहु।
करि कृपा आर्य गौरव बहुरि थापि दुःख दारिद हरहु॥

प्रतापसिंह—मेरे प्यारे भाइयो! मेरे कारण तुम लोगों को बड़ा क्लेश उठाना पड़ा है। आहा! कहाँ तुम लोग राजप्रासाद के रहनेवाले, राजसुख से सुखी और कहाँ कंटकमय मरु देश,

पहाड़ों का घूमना, चट्टानों पर सोना, उस पर भी स्वच्छंदता की नींद नहीं। एक स्थान पर जमकर रहना होता तो भी भला कुछ आराम के सामान हो जाते पर यहाँ इसका भी ठिकाना नहीं। आज यहाँ हैं तो यह निश्चय नहीं कि कल कहाँ कितने कोसों पर जंगल काटकर बैठने योग्य स्थान निकालना होगा—कल कैसा? यह भी तो स्थिर नहीं कि खाया यहाँ है तो हाथ कहाँ चलकर धोना होगा? आहा! जहाँ हजारों को भोजन देकर भोजन करते थे वहाँ अब अपने और अपने बच्चों के पेट भरने के लिये लालायित होना पड़ता है। आहा! बहादुर भाइयो! जो तुमने भी आज यवन बादशाहों की गुलामी स्वीकार की होती तो इन शिला-खंडों के बदले रत्नजटित सिंहासनों पर विराजमान होते, बड़े बड़े अभिमानी नरेश तुम्हारे चरणों पर अपने मुकुट झुलाते, संसार की यावत् सुख-सामग्री तुम्हारे आगे हाथ जोड़े खड़ी रहती और जो कहीं बादशाही महलों में अपनी बहिनों को पहुँचाए होते तब तो फिर कहना ही क्या था, सालों से बढ़कर किसका आदर होता है। जहाँ दिल्ली पहुँचते कि फिर तुम्हीं तुम दिखाई देते। पर हाय! मैं क्या करूँ; मेरी मोटी बुद्धि इन क्षणिक सुखों को सुख कहकर नहीं मानती। मैं गँवार आदमी, मुझे इस जंगल का बास उन शाही महलों से कहीं बढ़कर सुखद जान पड़ता है। आहा! हमारा हृदयमंदिर जो पवित्र आर्यगौरव वासना से पूरित है इन बाहरी शोभाओं से मोहित नहीं होता। मैं क्या करूँ मेरा मन उन सुखद सामग्रियों को दुःखद करके मानता है परंतु तुम लोग क्यों मेरे लिये कष्ट उठाते हो? अपने जीवन को क्यों व्यर्थ गँवाते हो? मुझे यहीं योंही भटकने दो, तुम लोग अपने कामों को देखो न? हम तुम लोगों को सुखी देखकर संतुष्ट होंगे।

एक क्षत्रिय—(क्रोधपूर्वक तलवार को राणा के सामने फेंककर) महाराज! यह लीजिए। जिस तलवार को हमने शत्रुओं के सिर जुदा करने के लिये बहुत दिनों से तेज कर रखा था, आज उसी से हम लोगों का सिर अपने हाथ से जुदा कर दीजिए; जो तलवार शत्रुओं के रक्तपान की प्यासी, देखिए मा दुर्गा की जीभ की भाँति लपलपा रही है, उसकी प्यास को हमी लोगों के रुधिर से बुझाइए। पर महाराज, इन हृदयवेधी वाक्यबाणों का प्रयोग न कीजिए। जो स्वाधीनता का स्वर्गीय सुख हम लोग यहाँ भोग रहे हैं क्या कभी बड़े से बड़े पराश्रित राजसिंहासन पर बैठने से भी वह सुख प्राप्त हो सकता है? छिः! मरना तो एक दिन हई है पर क्या उसके भय से आज ही हम अपने को बेंच दें? क्या दासत्व स्वीकार करने से हमारा मृत्यु-भय जाता रहेगा? फिर महाराज! जब मरना ही है तो मान खोकर मरने से क्या?

"अहमद मोहि न सुहाय, अमिय पियावन मान बिनु।
जो विष देइ बुलाय, मान सहित मरिबो भलो।।"

भीलराज—सुणो राणाजी! हम लोगों के पुरुखों ने जान देकर इस राज का मान बचाया है, हम लोगों के जीते जी कभी यह न होने पावेगा। दूसरे की कौन कहै, आप भी चाहें तो हमारी स्वाधीनता को नहीं बेच सकते। आपका जी चाहे तो जाकर बादशाह से सुलह कर लीजिए, पर हम भील लोग तो प्राण रहते कभी सिवाय हिंदूपति के दूसरे किसी की गुलामी नहीं करने के।

प्रतापसिंह—धन्य आर्य वीर, धन्य! हम तुम लोगों से ऐसे ही उत्तर की आशा रखते थे। तुम लोगों के ऐसे वीरों के सहायक रहते हमें पूरा विश्वास है कि हमारी स्वाधीनता को कभी कोई छू भी न सकेगा।

मान रहै तौ प्रान, मानहीन जीवन वृथा।
राखो दृढ़ करि मान, जौ जीवन चाहै। सुखद ।।

[रसोईदार का प्रवेश]

रसोइया—अन्नदाता, काँसा ❀ तयार है।

प्रताप—लाश्रो, यहीं ले आओ—

(रसोइया एक पत्थर के बड़े थाल में कुछ वन्य फल तथा बहुत से पत्ते के दोनों में उबाले हुए शाक और वृक्षों की जड़ रखकर लाता है, स्वयं राणा तथा सब क्षत्रिय सरदार एक ही थाल में बैठते हैं)

[नेपथ्य में गान]

जो पै मिलै तीन दिन बीते।
कंद मूल फल शाक उबाले अनायास सुख ही ते ।।
बिना निहोरे, बिनु सेवकाई, सुख स्वतंत्रता साने।
तो उनपै जग की सब सम्पति वारि सुधा सम माने ।।
राज साज, पकवान रसीले, धन सम्पत्ति बड़ाई।
सब ही तुच्छ, तुच्छतम निहचय निज मर्याद गँवाई ।।
बन रजधानी, महल गिरि गुहा, फूल आभरन सोहैं।
धर्म हेतु दुख सहत सुखी ते देव बधू लखि मोहैं ।।

(ज्योंही सब लोग ग्रास उठाते हैं त्योंही एक सैनिक घबराया हुआ आता है)

सैनिक—(हाथ जोड़कर) घणी खमा, अन्नदाताजी बड़ी भारी मुसलमान सेना इधर को उमड़ी चली आ रही है।

प्रताप—(भोजन छोड़ दर्प के साथ खड़े हो और तलवार खींचकर) कितनी दूर है?

❀ काँसा—राजाओं के यहाँ भोजन के थाल को काँसा कहते हैं।

सैनिक—धर्मावतार! अभी आध कोस पर होगी।

प्रताप—कुछ चिंता नहीं, बहादुर सरदारो! आप लोग दुखी न हों; अभी तो पाँच ही बेर परोसी थाल छोड़नी पड़ी है, जो सौ बेर भी छोड़नी पड़े तो क्या चिंता है! अब इस स्थान को अभी छोड़ देना चाहिए। रामसिंह, आप स्त्रियों को लेकर जंगली रास्ते से आगे बढ़ें, हम लोग पीछे पीछे आते हैं, यदि शत्रु पास पहुँच भी जायँगे तो हम लोग थोड़ी देर तक अटका रखेंगे, जब तक आप स्त्रियों को सुरक्षित स्थान में पहुँचा दीजिएगा।

[नेपथ्य में]

धन तुव हृदय प्रताप, तजे सबै जग के सुखनि।
सहत दुसह संताप, पै न तजत निज धर्म हठ॥

(एक ओर से प्रतापसिंह तथा सरदारों का और दूसरी ओर से रामसिंह का वेग से जाना)

तृतीय गर्भांक

स्थान—जंगली कुंज—एक स्वच्छ शिलाखंड

(मालती और गुलाबसिंह)

गुलाब—प्यारी मालती! तुम हमारे कारण बड़े दुख उठा रही हो। आहा! यह सुकुमार अंग और यह कठिन तापस व्रत!

मालती—देखो जी, तुम हमें बार बार लजाया न करौ। भला मैंने ऐसा क्या किया है जो तुम सदा ऐसा ही कहा करते हो? धन्य तो है तुम्हारा यह असीम साहस!

गुलाब—हमारा साहस? हमारा साहस भी क्या अपने मन से है? उसकी जड़ भी तो तुम्हीं हौ।

मालती --चलो चलो, रहने दो; बहुत बातें न बनाओ। देखो हमने यह जंगली फूलों की एक माला बनाई है, लाओ तुम्हें पहिरावैं; देखैं कैसी लगती है।

गुलाब—(अलग खड़े होकर) नहीं, नहीं—मालती! अभी नहीं

जब लौं निज बल को फल इनको नाहिं चखाऊँ।
म्लेच्छ ध्वजा को काटि न जब लौं भूमि गिराऊँ॥
आर्य धर्म की जयध्वनि सों सब जग न कँपाऊँ।
निष्कंटक मेवार देश जब लौं न बनाऊँ॥
तब लौं मुख करि सामुहे तुम सों कबहुँ न भाखिहौं।
अरु कोमल कर परस को मन मैं नहिं अभिलाषिहौं॥

[नेपथ्य में]

वीर हृदय जो कछु कहै फबै सबै तेहि साँच।
पै न फबै सुख बिलसिबो जब लौं बुझै न आँच॥

गुलाब—(धीरे से, दाँत के नीचे जीभ दाबकर) अरे कविराजजी को हम लोगों का यहाँ रहना कैसे विदित हो गया! देखो कैसी चितावनी दे रहे हैं? अच्छा प्यारी मालती! अब बिदा दो, मुझे छद्म वेष करके उदयपुर जाना है, क्योंकि बरसात आ गई, देखूँ मुसल्मानी सेना क्या कर रही है।

मालती—हाँ, इसमें देर न करनी चाहिए। मा दुर्गा सदा तुम्हारी रक्षा करैं।

(गुलाबसिंह धीरे धीरे सतृष्णनेत्र मालती की ओर मुड़ मुड़कर देखते हुए जाते हैं)

मालती—धन्य गुलाबसिंह धन्य! यह तुम्हारा ही काम है। इस कठिन परीक्षा में ठहरना सहज नहीं है। हाय! मुझ अभागिनी के कारण तुम्हें इतने कष्ट भोगने पड़ते हैं। पर मालती! तू

भी धन्य है जो तूने अपना हृदय ऐसे वीर हृदय को सौंपा है। (आँखों में आँसू डबडबा आते हैं) आहा! कितने साध से यह बनैले फूलों की माला गाँथी थी पर हाय! एक क्षण भी मैं इसे उनके गले में पहिराकर अपनी आँखों को ठंढा न कर सकी, तो चलें अब इसे मा विपत्ति-विदारिणी ही के चरणों में अर्पण करके उनकी मंगल प्रार्थना करें। (चौंककर) और क्या उन्हें इस विपत्ति में अकेले ही जाने देना चाहिए? नहीं नहीं, मैं भी चुपचाप उनके पीछे पीछे भेष बदलकर चलूँ।

[नेपथ्य में]

धन्य देश मेवार वारिए तुम पै सब जग।
जहँ फूले ये फूल किए सौरभमय सब मग ॥
धन्य वीर परताप थाप तुम न्याय विराजै।
जासु सहायक ऐसे तिन्हें अकर कहा काजै ॥
रे कवि तुव जन्म सुफल भयो करि सेवकाई वीर की।
धन बाणी कहि विरुदावली धर्म धुरंधर धीर की ॥

(मालती का प्रस्थान)

चतुर्थ गर्भांक

स्थान—जंगली प्रांत, राजकुमार, राजकुमारी, भील बालक बालिका तथा राजपूत बालक

(राजकुमार के सिर पर फूलों की कलगी तुर्रा और गले में जंगली फूलों के हार—राजकुमारी के सब अंगों में फूलों का शृंगार—कुमार पत्थर के शिलाखंड पर बैठे हैं, दो भील बालक बाँस के मोटे मोटे लट्ठों के आसा बनाकर आगे खड़े हैं, एक ताड़ का छाता राजछत्र के बदले में लिए पीछे खड़ा है)

एक चोबदार—(आगे बढ़कर) घणी खमा अन्नदाता, दिल्ली से पाच्छाह का एक दूत आया है।

कुमार—(बेपर्वाई से) आने दो।

[सन को रँगकर कृत्रिम दाढ़ी लगाए एक दूत का प्रवेश]

दूत—(सलाम करके) हजूर, हमको दिल्ली के पाच्छाह छलामत भेजा है।

कुमार—(टेढ़ी दृष्टि से देखकर) अच्छा, तुम्हारा पाच्छा क्या बोला ?

दूत—पाच्छा बोला है कि आप हमसे क्यों लड़ाई करता है। इसमें बर नहीं आवेगा इससे हम जो चाहा था उसके करने से हम आपको सबसे बड़ा मनसब देगा।

कुमार—(बड़े ही क्रोध से) कोई है इस बेअदब बेतमीज को मुँह काला करके हमारे शहर से निकाल दे।

(चारों ओर से सब लड़के "जो हुकुम" "जो हुकुम" करके कूदते ताली बजाते इकट्ठे हो जाते हैं और दूत को मारते घसीटते नाचते कूदते ले जाते हैं। दूत दोहाई दोहाई पुकारता जाता है)

कुमार—कोई है ? सेनापति को बुलाओ।

एक चोबदार—जो हुकुम अन्नदाता।

(जाता है और सेनापति को लाता है। सेनापति चिथड़े का परतला, सिर में लाल कपड़े की पट्टी बाँधे कमर में तलवार लटकती आकर प्रणाम करके अदब से खड़ा होता है)

कुमार—देखो सेनापति, डिल्ली का पाच्छा अब बड़ी बेअदबी करने लगा। उस पर फौज लेकर अभी चढ़ाई करो !

सेनापति—जो हुकुम अन्नदाता—

(ताड़ की पोपली बिगुल की तरह बजाता है। चारों ओर से कूद कूद सब लड़के इकट्ठे हो जाते हैं और एक ओर राजपूत बालक और दूसरी ओर भील बालक श्रेणीबद्ध होकर

फौज की नाईं खड़े हो जाते हैं। सेनापति सबों से कवायद कराता है और कुमार की सलामी उतरवाकर आगे आगे सेनापति पीछे पीछे श्रेणीबद्ध सेना जाती है)

राजकुमारी—(बालिकाओं के प्रति) अरी तुम सब खड़ी मुँह क्या देख रही हो! जब तक फौज दिल्ली जीतकर आवे तुम सब दर्बार के आगे नाचो गाओ।

(सब लड़कियाँ मंडप बाँधकर नाचती गाती हैं)

जियो जियो मेवाड़ ना महाराजा—जियो—
मेवाड़ ना महाराजा, मेवाड़ ना महाराजा।
जियो जियो।
राजपूत कुल ना रखवारा भारत ना सिरताजा।
जियो जियो।
लाओ लाओ सइयो, चुनि चुनि कलियाँ,
रंग रंग अभरन काजा।
अपणा धणी ने रचि पहिरावाँ मंगल रूप बिराजा।
जियो जियो।

["एकलिंगजी की जय", "मेवाड़ की जय", "रानी की जय" इत्यादि कोलाहल करते नाचते कूदते लड़कों की सेना का प्रवेश]

(सब नाचते और गाते हैं)

"सिपाहियाँ नो कलो बनती आवेरे महाराजा।
आवी लागी दरवा पेले काठे रे महाराजा॥
नीला पीला तंबुड़ा खींचावो रे महाराजा।
रूपा केरी खूटा धमकावो रे महाराजा॥

सोना केरी डोरें बिछावो रे महाराजा।
गोड़ीला बलाओ रावली पाएगाँ रे महाराजा॥
गोड़ीला छुड़ाओ हरआ मुँगेरे महाराजा।
हाथीड़ा नीरांवें छूटा सुरमा रे महाराजा॥
ऊठोआँ ने नाखो कड़वा नींवां रे महाराजा।
सरदारां ने देवो चावल चोखा रे महाराजा॥
सीपा आने देवो तोल माँ भाता रे महाराजा।
फोजाँ में तो वतरी बाजा बाजे रे महाराजा॥
बाजारे बाजे भवाआँ नाचे रे महाराजा। *"

सेनापति—(आगे बढ़कर कुमार को सलाम करके) घणी खमा अन्नदाता, डिल्ली की फतह मोमारक।

कुमार—(प्रसन्नतापूर्वक) साबास, साबास, डिल्ली फतह कर आए! पाच्छा क्या हुआ?

सेनापति—धर्मावतार, पाच्छा श्रीजी हुजूर के डर से आगरे भाग गया।

कुमार—कुछ पर्वा नहीं, भागनेवाले को भागने दो।

एक भील बालक—(आगे बढ़कर) अब हम दर्बार को तिलक करेंगे।

एक राजपूत बालक—(आगे बढ़कर) नहीं नहीं, तुम मेवाड़ की गद्दी का तिलक नहीं कर सकते हो, डिल्ली की फतह का तिलक हम करेंगे, हम भाई बेटे हैं। (दोनों आपस में द्वंद्व युद्ध करते हैं कुमार दोनों को छुड़ाते हैं)

कुमार—(राजपूत बालक से) सुनो भाई, आपस में लड़ते क्यों हो; तुम तो हमारे अंग ही हो, हमको तिलक हुआ तो

* यह भीलों का गीत मित्रवर कुँवर योधसिंह मेहता द्वारा प्राप्त हुआ है।

तुमको हुआ। पर तिलक करने का अधिकार बहादुर भील सरदारों ही को है।

(भील बालक "जय हिंदूपति की" कहते और तिलक करते हैं। सब लोग नजर में फल फूल, दही आदि पेश करते हैं और कुमार किसी को "पंच हजारी" किसी को 'सेह हजारी' किसी को 'हजारी' आदि पदवी वितरण करते हैं)

[पटाक्षेप

पंचम गर्भांक

स्थान—उदयपुर, किले का एक भाग

(पाँच चार मुसलमानों की गोष्ठी। कोई शराब के प्याले ढाल रहा है और कोई अफीम घोल रहा है)

एक—(अफीम घोलते घोलते) अजी हजरत, अजब मनहूस जगह है। न कोई सैरगाह, न कोई दिल्लगी का शगल, जी घबरा गया—लाहौल वला कूवत।

दूसरा—(शराब की झोंक में) और क्या जनाब, जहन्नुम है, जहन्नुम। न मालूम क्या किस्मत फूटी कि इस जंगलिस्तान में आ फँसे।

तीसरा—(मोछों पर ताव फेरते हुए) हजरत मेरी भी इतनी उम्र हुई, सैकड़ों ही जंग इन्हीं हाथों फतह किए मगर जनाब, यह मायूसी, यह कोर कोरा रहना तो कहीं भी नसीब न हुआ। एक फूटी कौड़ी भी हाथ न आई।

चौथा—भला यह तो फर्माइए, बी इलाहीजान से बड़े बड़े वादे कर आए थे—मीर साहब, अब उन्हें क्या मुँह दिखाइएगा?

मीर साहब—(रोना सा मुँह बनाकर) जनाब कुछ न पूछिए, मेरी तो इसी फिक्र में रूह फ़िना हुई जाती है—यार जो कहीं वहाँ

खाली हाथों गए तो वह बे भाव की पड़ेगी कि सर में एक बाल भी न रहने पावेगा।

खाँ साहब—भाई, बंद:दर्गाह तो घर में सेंद लगाएगा, बीबी साहबा की नथ तक बेचेगा मगर जनाब वहाँ झूठा नहीं बनने का। वहाँ तो जो कह आए हैं खाली हाथ नहीं कदम रखने का।

एक—और क्या मर्दों के यही मानी—"जाय लाख रहै साख।"

दूसरा—(उसे एक चपत जमाकर) अबे ओ साखवाले धन्ना सेठ के नाती, जरा अपनी टोपी तो सँभाल, फिर लाख की फिकिर करना। बचो नामर्दो, अबे जो रंडी ही के सिर न घहराए और उसी से न पुजाया तो मर्दानगी क्या? यार लोग भी कहीं टका दे-कर कुछ काम करते होंगे।

तीसरा—(मोछों पर ताव फेरते फेरते) बहर हाल, यहाँ से तो खाली हाथों घर चलना मसलहत नहीं।

(एक मुसलमान घबराया हुआ आता है)

आगंतुक मुसलमान—अबे पहले दाढ़ी मोछें तो खैरियत से घर पहुँचा तब दूसरी चीजों की फिक्र करना।

तीसरा—(चेहरे का रंग फक हो जाता है) ऐं ऐं क्या कहो? दाढ़ी मूँछ? अरे क्या हुआ? क्यों म्याँ क्या गनीम आए?

आ० मुसलमान—पूछता है गनीम आए? अबे आए कि आ पहुँचे—दम साइत में हम सभों का वारा न्यारा है।

सब—तोबः तोबः या इलाही तू ही मुईनो मददगार है।

[नेपथ्य में "हिंदूपति की जय" का कोलाहल]

तीसरा—अरे यार—उस्तरा कहाँ गया—अरे जल्दी करो नहीं सब मारे जायँगे।

मीर—हाय! बी इलाहीजान, तुमने पहले ही कहा था।

खाँ साहब—(मीर को एक चपत लगाकर) अबे तुझे इलाही-जान की ही पड़ी है—अरे कलुआ कंबखत मेरी बीबी से निकाह कर लेगा—हाय ! मैं क्या करूँ ?

एक—हाय ! बरसात में यह जंगली रास्ते कैसे तै होंगे ? अरे रास्ते का निशान भी तो मिट गया है—या खुदा क्या जंगलिस्तान में कुत्तों की मौत मरना पड़ेगा ?

(नेपथ्य में "एकलिंगजी की जय" और "अल्लाहो अकबर" का कोलाहल और भी निकट आ जाता है और सब गिरते काँपते हुए भागते हैं)

षष्ठ गर्भांक

स्थान—रणक्षेत्र

(कोई सिर कटा, कोई हाथ कटा, कोई मरा, कोई सिसकता पड़ा है—शवों के ढेर में जीते और मरों का पता भी नहीं लगता, मुमूर्षुओं का आर्तनाद गूँज रहा है—एक संन्यासिनी आकर शवों में किसी को ढूँढ़ रही है)

संन्यासिनी—(उदासी और उत्साह के साथ)

"बताय दे मेरे जोगिया को किन्ने बिलमाया रे—
बताय दे मेरे—
अंग भभूत गले मृगछाला घरघर अलख जगाया रे।
उनहीं पर जोग कमाया रे।"

गुलाबसिंह—(मुमूर्षु अवस्था में पड़ा हुआ टूटे फूटे स्वर से) हैं—यह असमय अमृतवर्षा कहाँ से ? मन ! अपने को सँभाल—भला इस भयानक रणभूमि में प्यारी मालती कहाँ ?

मालती—(दौड़कर गुलाबसिंह के मस्तक को अपनी गोद में रखकर) नाथ आप घबड़ायँ नहीं, सचमुच मैं ही हूँ। अब आपका शरीर कैसा है ?

गुलाबसिंह—बहुत अच्छा—जो कसर थी वह भी पूरी हुई। आहा!

जनमभूमि अरु स्वामि हित रण गंगा में न्हाय।
तजत प्राण प्रिय अंक में मो सम कौन लखाय॥

(राणाजी राजवैद्य को साथ में लिवाए हुए
घबराए से आते हैं)

राणा—वैद्यराज! आज जो आप गुलाबसिंह को बचा सकें तो मैं आपका सदा ऋणी रहूँगा—आहा, आज के युद्ध में गुलाबसिंह की वीरता प्रशंसनीय थी और मुझे बचाने ही में उसकी यह दशा हुई। गुलाबसिंह की रक्षा होने से मुझे चित्तौर की रक्षा से भी अधिक आनंद प्राप्त होगा।

वैद्य—हुकुम अन्नदाता, मेरे पास वह जड़ी बूटी है कि जो तन में प्राण होगा तो बचने में कोई संदेह नहीं।

राणा—(मालती को देखकर) बेटी मालती! तू यहाँ कहाँ? धन्य तेरा प्रेम।

गुलाबसिंह—(राणा का पैर छूकर टूटे फूटे स्वर से) स्वामिन्! आपने क्यों कष्ट किया? आहा मुझसे तुच्छ पर इतनी कृपा!

(वैद्य गुलाबसिंह की नाड़ी तथा घावों को देखते हैं)

[नेपथ्य में गान]

जियो जुग जुग जुग ऐसे वीर।
जे निज देश, स्वामि हित कारन गिनत न अपनी पीर॥
धन धन ते रमनी जे पति सों मिलत मनौं पय नीर।
धन्य स्वामि जिनके सेवक हित निस दिन प्राण अधीर॥

[धीरे धीरे परदा गिरता है

(इति षष्ठ अंक)

सप्तम अंक

प्रथम गर्भांक

स्थान—उदयपुर का जंगली मैदान

(बादशाही फौज—मुहब्बतखाँ और फरीदखाँ)

मुहब्बतखाँ—छिः तुम लोगों ने क्या बहादुरी का नाम डुबाया! उदयपुर दुश्मनों के हाथ छोड़ते तुम्हें शर्म न आई ?

फरीदखाँ—हुजूर बजा इर्शाद, मगर मौसिमे बरसात इस मुल्क में हम अजनबियों को कयामत का सामना है, एक तो कम्बख्त नहरू का मर्ज करीब करीब निस्फ फौज को तंग किए था, दूसरे हम लोग यह समझकर कि अब शिकस्त पर शिकस्त खाकर ये मर्दूद पस्त हो गए होंगे इतमीनान से थे और कहीं इनका नामोनिशान भी न था, मगर खुदा की पनाह न जाने किस खोह से ये टिड्डी दल की तरह हम लोगों पर आ गिरे, हालाँ कि हम लोगों के बहादुरों ने जी छोड़कर मुकाबिला किया, मगर बेशुमार जर्रार राजपूतों और भीलों के सामने कहाँ तक ठहर सकते थे, पैर उखड़ गए। जनाबेआली, हम लोग तो खुद ही निहायत नादिम हैं।

मुहब्बतखाँ—खैर कुछ मुजायकः नहीं, "गुजश्तः रा सलवात आइंदः रा इहतियात" हालाँ कि जहाँपनाह निहायत ही गजबनाक थे मगर हम लोगों ने उनके गुस्से को यही वजूहात दिखलाकर फरो कराया, अब हुकुम दिया है कि अगर इस जंग में सच्ची बहादुरी का सुबूत मिलेगा और उदयपुर फत्तह करके आवेंगे तो सब गुनाह मुआफ़ फर्माए जायँगे और आला मनसब दिए जायँगे, वरनः हमारे रूबरू आने की जरूरत नहीं।

फरीदखाँ—खुदावंद, इंशाअल्ला तआला अब ऐसा ही होगा।

(नेपथ्य में "राणा प्रतापसिंह की जय" का कोलाहल।)

मुहब्बतखाँ—(फौज की ओर फिरकर) देखो बहादुरो, दुश्मनों की फौज आ पहुँची, अब तुम्हारे आजमाइश का वक्त है, नमक अदा करने और बिहिश्त हासिल करने का यही वक्त है।

(नेपथ्य से गुलाबसिंह अट्टहास्य करते हुए)

"और दोजख में जाने का यही वक्त है।"

(मुसलमान सेना "काफिर काफिर" पुकारती हुई बड़े जोश के साथ एक ओर से आती है और दूसरी ओर से राणा की सेना आती है, आगे आगे कविराजा जी)

कविराजा—

चलो चलो सब वीर चलो घनघोर युद्ध करि।
मेटें हिय की कसक यवन हित आजु पाँय दरि॥
देखो देखो मातु कालिका जीभ निकारैं।
यवन रुधिर प्यासी सुलोल जिह्वा चटकारैं॥
वह देखो तुव प्रभु प्रताप निहारत तुव मुख।
है तुम्हरे ही हाथ आत्मगौरव मेवार सुख॥
निज पुरुषन की करौ याद जिन सह्यो सबै दुख।
पै न तज्यो स्वाधीनपनो छोड़्यो जग के सुख॥
बढ़ौ बढ़ौ सब वीर आर्य ध्वज नभ फहरावै।
चढ़ौ चढ़ौ सब वीर यवन ध्वज धूरि मिलावै॥
लरौ लरौ सब वीर आर्य पौरुष दिखरावैं।
धरौ धरौ सब वीर यवन धरि दास बनावैं॥
तरौ तरौ सब वीर युद्ध गंगा में न्हावैं।
करौ करौ सब वीर अकर कर कीर्ति बढ़ावैं॥

अरौ अरौ सब वीर यवन पग आजु डिगावैं।
परौ परौ सब वीर शत्रु के पीछे धावैं॥
हरौ हरौ सब वीर देस दुख आजु नसावैं।
मरौ मरौ सब वीर—

(अचानक नेपथ्य से एक गोली आकर कविराजा को लगती है और गिरते गिरते)

—स्वर्ग चलि आजु बसावैं।

(सब आवेश में आकर नेपथ्य में शाही फौज पर टूटते और कुछ लोग कविराजा के मृत शरीर को लेकर नाचते कूदते हैं)

क्षत्रियगण—चलो, चलो "स्वर्ग चलि आजु बसावैं"।

(नेपथ्य में "श्रीएकलिंग की जय" "अल्लाहो अकबर" का कोलाहल)

[पटाक्षेप

द्वितीय गर्भांक

स्थान—जंगली मार्ग

कई भील सिर पर बड़े बड़े पिटारे लिए घबराए हुए आते हैं)

एक भील—चलो, चलो, भाइयो पैर बढ़ाए चलो।

रानी—(एक पिटारे के भीतर से) अरे दर्बार कहाँ हैं ? उनकी क्या दशा है ?

दूसरा भील—चुप, चुप, माजी चुप, अभी दुश्मन दूर नहीं हैं, अभी साँस न लेना।

तीसरा भील—माँ, दर्बार के लिये कुछ चिन्ता न करना। जब तक एक भीं भील बच्चा जीता रहेगा आप लोगों में से किसी का एक बाल भी न खसकने पावेगा।

[नेपथ्य में]

"धन्य स्वामिभक्ति"।

सब भील—अरे कौन आया ? चलो चलो जल्दी भागो। (सब भागते हैं)

[वीरवेष से बहुत जख्मी गुलाबसिंह का प्रवेश]

गुलाबसिंह—धन्य स्वामिभक्ति धन्य; आहा ये गँवार इस समय प्रभु की कैसी सेवा कर रहे हैं ! धिक्कार है हम लोगों को कि प्रभु के एक काम न आए। न जाने कहाँ दरबार पड़ गए हैं, बहुत खोजा कहीं पता न लगा, हाय ! हे दीनानाथ, प्रतापसिंह की रक्षा करना। इस समय हिंदू मान गौरव का एक वही आश्रय है, उसे न छीन लेना।

[नेपथ्य से]

छिः ! प्रभु को अकेले छोड़कर कायरों की तरह बड़बड़ा रहे हो ! अरे जाओ, जल्दी जाओ, या तो राणा की रक्षा करो या वहीं तुम भी उनका साथ दो।

गुलाबसिंह—(चौंककर) हैं ! इस असमय में यह अमृत-वर्षा किसने की ! (नेपथ्य की ओर देखकर) आहा ! प्यारी मालती के बिना और किसका इतना उदार हृदय होगा ? धिक्कार है हमको कि दरबार विपत्ति में फँसे हैं और हम प्राण लेकर यहाँ खड़े हैं। (जाने के लिये उद्यत होता है और आगे की ओर देखकर प्रसन्नतापूर्वक) अहाहा ! वह देखो राणाजी तो भील-वेष में चले आ रहे हैं। जान पड़ता है प्रभुभक्त भीलों ने अपने को राणा बना, दर्बार को अपने वेष में बचाया, धन्य भील जाति धन्य—आज तुम्हारा जन्म

सुफल हुआ, अब जो तुम्हें नीच कहै, वह आप नीच। चलैं हम भी प्रभु की सेवा करैं। (जाता है)

तृतीय गर्भांक

स्थान—घोर जंगल

(एक गुफा की चट्टान पर राणा जी सोए हैं और रानी पैर दाब रही हैं)

रानी—(मन ही मन) हाय ! देवतुल्य शरीर इस घोर जंगल में इस पत्थर की सेज पर सोने योग्य है ? जिसे सैकड़ों ही दास दासी अपनी सेवा से प्रसन्न नहीं कर सकते थे उसे मैं, जिसे कभी सेवकाई सीखने का काम न पड़ा, कैसे प्रसन्न कर सकती हूँ ? तिस पर इन बालकों के लालन-पालन से और भी समय नहीं मिलता कि इनकी कुछ सेवा कर सकूँ। (राणा की ओर सजल नेत्र से देखकर) नाथ ! इस अभागिनी के कारण आपको बहुत दुःख सहने पड़ते हैं— क्षमा करना, हाय ! मैं तुम्हारी कुछ सेवा नहीं कर सकती। मैं जब से तुम्हारी सेवा में आई दुःख ही देती रही, हाय ! मैं इसका क्या उत्तर परमेश्वर को दूँगी ? जो मैं अभागिन आज मर भी गई होती तो तुम्हारी बहुत चिंता कम हो जाती। मेरी ही रक्षा के लिये तुम्हें हैरान रहना पड़ता है। (आँसू पोंछती है)

राजकुमारी—(आकर रानी के गले से लिपटकर) मा, बड़ी भूख लगी है।

रानी—बेटी, अभी थोड़ी ही देर न हुई है कि तुमने खाया है।

रा० कु०—हूँ हूँ आधी ही तो रोटी दी थी, उससे पेट तो भरा ही नहीं, फिर बड़ी भूख लगी है।

रानी—अच्छा, हौरा न कर, नहीं दर्बार की नींद खुल जायगी।

रा० कु०—(धीरे से) मा, दर्बार उदयपुर कब चलेंगे ?

रानी—(आँखों में आँसू भरकर) जब भाग ले जाय।

रा० कु०—अच्छा खाने को तो दे, अब भूख नहीं सही जाती।

रानी—प्राण मत खा, जा उस पत्थर के नीचे आधी रोटी ढकी है उसे खा न।

रा० कु०—मा, घास की रोटी और कब तक खानी होगी। यह रोटी तो रूखी खाई नहीं जाती। और कुछ नहीं है ?

रानी—(आँखें डबडबाकर) बेटी, जब जो मिले तब उसे प्रसन्न होकर खाना चाहिए, अन्न को ऐसा नहीं कहना।

(राजकुमारी जाकर ज्योंही पत्थर उठाती है कि बिल्ली झपटकर उस आधी रोटी को भी खींच ले जाती है, राजकुमारी चोखकर रोने लगती है। रानी भी अपने वेग को नहीं रोक सकती फूट-कर रो उठती है, राणा चौंककर खड़े हो जाते हैं।)

राणा—क्या हुआ ? क्या हुआ ? दुश्मन आए क्या ? (राजकुमारी की ओर देखकर) बेटी, तू क्यों इस तरह रो रही है ?

(राजकुमारी कुछ बोल नहीं सकती, रोती हुई उँगली से बिल्ली की ओर दिखाती है)

राणा—क्या तेरी रोटी बिल्ली उठा ले गई ?

रा० कु०—(राणा से लिपटकर रोते रोते) ब-ड़ी-भू-ख-ल-गी-है।

राणा—(वेगपूर्वक आँसू रोककर स्वगत) हाय, वह प्रताप का हृदय जो कभी बड़े बड़े शत्रु-दल में नहीं हिला, आज क्यों काँपा जाता है, जो आँखें बड़ी बड़ी विपत्तियों में फँसने से और बड़े बड़े दु:ख पड़ने पर भी तर न हुईं आज उनमें स्वत: आँसू क्यों उमड़े आते हैं ? (रानी की ओर देखकर) भद्रे ! हमारे हिस्से की

रोटी हो तो इसे देकर चुप कराओ। इसके रोने से तो हमारा कलेजा उमड़ा आता है।

(रानी निरुत्तर होती है)

राणा—तो क्या तुम्हारे पास ऐसा कुछ भी नहीं है जिससे इसकी भूख बुझा सको ?

(रानी बड़े वेग से रो उठती है)

राणा—हाय, आज मेवाड़ के राणा की यह दशा हुई कि घास की जड़ की रोटियाँ भी उसके संतान को प्राप्त नहीं। दीनानाथ ! हमने ऐसे कौन से दुष्कर्म किए हैं जो ऐसे दारुण दुःख सहने पड़ते हैं ? हे प्रभु ! क्या मैं जो इस आर्यभूमि की रक्षा और गौरव बढ़ाने के लिये इतने कष्ट उठा रहा हूँ, वे तुम्हें नहीं रुचते ? जाना, जाना, तुम्हारा कोप इस देश पर है इसलिये अपनी इच्छा के प्रतिकूल कार्य करने के कारण तुम प्रताप पर रुष्ट हो; पर नाथ ! इन अबोध बालकों ने क्या बिगाड़ा है जो तुम्हें इन पर भी दया नहीं आती ? (उन्मत्त की भाँति घूमता हुआ) अच्छा जाने दो, जाने दो, इस अभागे देश को रसातल में जाने दो, मुझे क्या, मैं भी न बोलूँगा, तुम्हारी यही इच्छा है तो यही सही—(कुछ ठहरकर) सारा देश अकबर के करतलगत है, सब क्षत्रिय अपनी स्वतंत्रता स्वतंत्रतापूर्वक बेच रहे हैं, किसी को कुछ इसकी पर्वा ही नहीं है तो प्रताप, तू क्यों व्यर्थ प्राण दिए देता है—अरे अकेले तेरे किए क्या होगा ? क्यों व्यर्थ इन कुसुम-सुकुमार बालकों को कष्ट दे देकर सताता है ? हाय, यह प्रताप का वज्र हृदय हिमालय के उच्चतम शिखर से गिराए जाने की चोट सह सकता है, वह बड़े बड़े गोले, गोली, तीर कमान छाती पर रोक सकता है, इस शरीर को टुकड़े टुकड़े कर डालो यदि मुँह से उफ भी निकले जबान खींच

लेना, पर हाय इन सुकुमार अबोध बच्चों के करुण वचन तो सहे नहीं जाते, हृदय को छेदे डालते हैं—

सहे सबै दुख नेकु न अपने प्रण तें हटके।
राज गयो, धन गयो, फिरें बन बन में भटके॥
बंधु बांधव कटे आपुने सुतहिं कटायो।
राखि आपुनी टेक सबै तृण सरिस सहायो॥
पै हाय सही अब जात नहिं जीवत इन नैननि निरखि।
इन दूध पीवते बालकनि रोटी हित रोवत बिलखि॥

प्रभु अपनी सृष्टि को सँभालो, आज अनहोनी हो रही है, वज्र-हृदय प्रताप का हृदय आज द्रव हुआ जाता है, आज क्या होनहार है? (राजकुमारी रोते रोते सो जाती है) आहा! सचमुच नींद सी सच्ची सहचरी इस संसार में कोई नहीं। देवी! इस समय तुमने हमारा बड़ा उपकार किया; हम तुम्हें प्रणाम करते हैं। (रानी से) तुम यहीं रहो, मैं देखूँ जो कुछ मिल सके तो लाऊँ, नहीं नींद खुलते ही फिर—

[नेपथ्य में]

अरे राणाजी कहाँ हैं, जल्दी उन्हें खबर दो, शत्रुओं को यहाँ का भी पता लग गया।

राणा—हाय अब नहीं सही जाती, और तो और इस भूख की मारी छोकरी को कैसे जगावें? (घबराया हुआ बाहर जाता है)

[पटाक्षेप

———

चतुर्थ गर्भांक

स्थान—दिल्ली, अकबर का मंत्रणागृह

[अकबर हाथ में एक पत्र लिए और पीछे पीछे खानखाना का प्रवेश]

अकबर—क्यों भाई रहीम, क्या फिर कभी वैसी खुशी हासिल होगी जो हम लोगों को बचपन में उस रेगिस्तान और जंगलों के खेल में हासिल होती थी ? वह जेठ बैसाख की धूप और वह तपी हुई रेत, हम लोगों को गोया क्वार कातिक की चाँदनी और जमुना किनारे की सर्द और मुलायम बालू जान पड़ती थी।

खानखाना—और उस वक्त के उन खटमिट्ठे जंगली बेर, और चने के साग में जो मजा आता था वह इस वक्त इन इंतिहा के लजीज खानों में नसीब नहीं। क्यों याद है, उस रोज जो दरख्त से गिरे थे ?

अकबर—खूब—अरे यार कुछ न पूछो, एक तो चोट लगी, दूसरे खानबाबा बे भाव की लगे जमाने।

खानखाना—(कुछ अप्रतिभ होकर) हमारे बाबा का स्वभाव जरा गुस्सेवर था।

अकबर—हजरत कुछ यह भी खबर है अगर उनकी तालीम न होती तो आज हमको आपको यह दिन भी न मयस्सर आते—बाबा उस वक्त कैसी मुसीबत में थे, खानबाबा को उधर उनकी दिलजोई करनी इधर हम लोगों की खबरगीरी करनी और साथ ही फिर सल्तनत हासिल करने की कोशिश करनी।

(नेपथ्य में एकाएक बाजे बजने लगते हैं और तोपों की आवाज होने लगती है)

अकबर—हैं, यह एकबारगी क्या हुआ ?

[एक खलीता लिए हुए चोबदार का प्रवेश]

चोबदार—(जमीन चूमकर) निगाह रूबरू खुदावंद नेश्रामत दौलत दराज, जानोमाल की खैर—अभी एक साँड़नी-सवार उदयपुर से आया है, यह खलीता लाया है और सारे शहर में शादयाना मचाया है।

(अकबर खलीता खोलकर पढ़ता है और मारे आनंद के उछल पड़ता है)

अकबर—(चोबदार को अपने हाथ की एक अँगूठी देकर) जाओ, अभी उस कासिद को सीमोजर से मालामाल करो, जशने नौरोज की तैयारी हो, शहर में आज रोशनी होने का हुक्म जारी हो।

(चोबदार जमीन चूमकर जाता है)

खानखाना—खुदावंद, इस खत के मजमून को जानने के लिये जी उमड़ा आता है।

अकबर—(खत देते हुए) यह लो, मेरे हिंद के बादशाह होने की सनद देखो।

(खानखाना पत्र लेकर पढ़ते हैं, पृथ्वीराज आते हुए दिखाई देते हैं)

पृथ्वीराज—(आप ही आप) सुना है, आज सूर्यनारायण अपना राज्यासन निशिनाथ को देकर बंगाले की खाड़ी में निवास के लिये चले जा रहे हैं। राणा प्रतापसिंह ने मुगलराज से सन्धि का प्रस्ताव किया है। देखें यह बात कहाँ तक सही है। (आगे बढ़कर अकबर को सलाम करता है)

अकबर—अल्लाह। आइए महाराज, लीजिए आपके राना उदयपुर ने यह सुलह का पैगाम दिया है। आपको मुबारक हो। (पत्र पृथ्वीराज को देता है)

पृथ्वीराज—(पत्र पढ़कर)

भूखे प्राण तजै भले, केसरि खर नहिं खाय।
चातक प्यासो ही रहै, बिना स्वाति न अघाय॥
बिना स्वाति न अघाय, हंस मोती ही खावै।
सती नारि पति बिना, तनिक नहिं चित्त डिगावै॥
त्यों परताप न डिगै, होय सब ही किन रूखे।
अरि सन्मुख नहिं नवै, फिरै किन बन बन भूखे॥

अकबर—तो क्या आपको इस खत में कुछ शक है।

पृथ्वीराज—खुदावंद, पूरा शक है, क्योंकि—

बरु दिनकर पच्छिम उए, ग्रहपति पूर्व अथायँ।
सागर मर्यादा तजै, पंकज गगन लखायँ॥
पंकज गगन लखायँ, केसरी खर बरु खावैं।
नभ नछत्र कर मिलैं, केदली फेरि फरावैं॥
जब लौं तन में प्रान, प्रान में बुद्धि रतिक भर।
तजै न हठ परताप, उऐ पच्छिम बरु दिनकर॥

अकबर—तो आपका शक किस तरह रफः हो सकता है।

पृथ्वीराज—जब तक मैं खुद न तसदीक कर लूँ।

अकबर—क्या मुजायका है, आपका जैसे जी चाहे इतमीनान कर लें।

(पृथ्वीराज कृतज्ञतापूर्वक सलाम करके एक ओर से जाता है और दूसरी ओर से अकबर खानखाना जाते हैं)

———

पंचम गर्भांक

स्थान—अरवली पार्वत्यप्रांत

(राणा प्रतापसिंह अकेले घूम रहे हैं)

राणा—हाय, मेरा इतना किया सब नष्ट जाता है, एक काम न आया, जिस निर्दय दैव ने मुझे इस विपत्ति सागर में डाला उसी ने न जाने इस समय कैसी मोहनी माया मेरे हृदय पर डाल रखी है जो मेरी बुद्धि में ऐसा विपर्यय हो रहा है—हाय, प्रताप, तू भी अब यवनों का दास बनेगा ! अरे तुझे भी अब दिल्ली में सलामी बजानी पड़ेगी ! देख, तेरे इस कर्म से आज कुलगुरु सूर्यनारायण का मुख भी मलिन हो रहा है। (सूर्यनारायण की ओर देखकर) देव ! रक्षा करो। अपने कुल—

[गुलाबसिंह का एक पत्र लिए हुए प्रवेश]

गुलाबसिंह—(हाथ जोड़कर) घणीखमा अन्नदाता, दिल्ली से कुँवर पृथ्वीराजजी का यह पत्र लेकर एक दूत आया है।

राणा—(आग्रहपूर्वक) पढ़ो, पढ़ो, हमारे विपत्तिसहचर पृथ्वीराज क्या लिखते हैं ?

(गुलाबसिंह पत्र पढ़ते हैं)

स्वस्ति श्री अरवली-बली जन-आश्रयदायक।
जहाँ बसत परताप शत्रु-हिय-ताप-विधायक ॥
पराधीन दिल्लीबासी नित दास वृत्ति कर।
महा अधम प्रिथिराज छुअत तुव चरन पुण्यतर ॥
अब कुशल कहाँ इत है रही गई बिदा ह्वै कै कबै।
उत रही कछुक भाजत सोऊ रुख प्रताप मोरयो जबै ॥ १ ॥

बूड़े राज समाज, दिल्ली यवन समुद्र मैं ।
आरज गौरव लाज, इक राखी परताप तुम ॥ २ ॥
अकबर परम प्रबीन, राजपूत दागिल किए ।
इक मिवार दागी न, तुव प्रताप बल कारनै ॥ ३ ॥
दिल्ली रूप बजार, बिकीं सबै कुल-कामिनी ।
वीर रहे सिर डार, राणावत ही इक बची ॥ ४ ॥
छत्र छेत्र निःछत्र, भयो होत निहचय कबै ।
जौ न धरत सिर छत्र, परम हठो परतापसिंह ॥ ५ ॥
खोए राजसमाज, असन बसन खोए सबै ।
खोए सब सुख-साज, पै राखी जातीयता ॥ ६ ॥
लै परताप उछंग, जननी जन्म सुफल भयो ।
अकबर काल भुअंग, कुचले फन जिन पग तरैं ॥ ७ ॥
जदपि न राज-समाज, फिरत सहत दुख बनहिं बन ।
तउ न तजी कुल लाज, विमल कीर्ति छाई जगत ॥ ८ ॥
सबै अचंभो होय, कौन सहाय प्रताप को ।
साँच सहायक कोय, वीर हृदय असि वीर सम ॥ ९ ॥
अब लौं तजी न टेक, धर्म मान स्वाधीनता ।
डिगन दियो नहिं नेक, अभिमानी परताप नै ॥ १० ॥
सुनत हाय कह आजु, प्रलय होन चाहत कहा ।
राना छोड़त लाज, झुकत जु अकबर सामुहे ॥ ११ ॥
दिल्ली के दरबार, झुकिहै सिर मेवार को ।
दिल्ली रूप बजार, शोभित राणावत करै ॥ १२ ॥
जननि धरित्री हाय, क्यों न फटत तू तुरत ही ।
पृथ्वीराज समाय, सुनै न फिर ये दुखद बच ॥ १३ ॥

देखु प्रताप बिचारि, नासमान संसार यह ।
यह जीवन दिन चारि, क्यों सुखहित कीरति तजत ॥ १४ ॥
देखौ साँचै वीर, एक आस गुन तुव गहे ।
जियत धारि जिय धीर, सो आसा जिन तोरिए ॥ १५ ॥
यह दिन द्वै सुखकाज, कीरति अच्छय जिन तजहु ।
छत्रिय-लाज-जहाज, जवन-समुद्र न बोरिए ॥ १६ ॥
जो पवित्रतर मान, रच्छयो सहि सहि असह दुख ।
सो न दीजिए जान, दिल्ली की बाजार मैं ॥ १७ ॥
सिला सिला टकराय, टूक टूक रोटी बिना ।
भूखन किन मरि जाय, सँग स्वतंत्रता अतुल धन ॥ १८ ॥
तुव पुरुखे निज आप, जो रच्छयो जन सीस दै ।
सो बेचत परताप, छणिक सुखहि के कारनै ॥ १९ ॥
नासमान करि आस, अविनासी की आस तजि ।
नासमान सुख-रास, बुद्धिमान राना चहत ॥ २० ॥
इक दिन अकबर नाहिं, मुगल राज्य हूँ नहिं रहै ।
तुव कीरति रहि जाहि, जब लौं भारत नाम थिर ॥ २१ ॥
ह्वैहै वह दिन एक, जब अकबर हूँ नहिं रहै ।
रखिहैं कुल की टेक, सब छत्रिय तुव सरन गहि ॥ २२ ॥
खोवहु जिन निज धीरता, धोवहु जिन निज लाज ।
सोवहु जिनि सुख-सेज पैं, जब लौं सरै न काज ॥
जब लौं सरै न काज, न तब लौं थिर ह्वै रहिए ।
जो दुख सिर पै परै, धीर ह्वै सब कुछ सहिए ॥
अहो वीर परताप, हृदय-दुर्बलता गोवहु ।
उठौ उठौ कटि कसौ, क्लीवता जड़ सौं खोवहु ॥ २३ ॥

श्रौर अधिक हम कह लिखैं, तुम हौ परम सुजान।
मान राखिए आपुनो, हँसै न जासों मान * ॥ २४ ॥

प्रतापसिंह—(क्रोधपूर्वक, मोछों पर हाथ फेरता हुआ) अरे अधम प्रताप धिक्कार है तुझको ! छिः !

"पराधीन ह्वै कौन चहै जीवै जग माँही।
को पहिरै दासत्वशृंखला निज पग माँही॥

---

* खेद का विषय है कि पृथ्वीराज के पत्र की मूल प्रति हमें प्राप्त न हो सकी। उदयपुर से भी नैराश्यपूर्ण उत्तर मिला। बाबू गोकर्णसिंहजी बाँकीपुर निवासी द्वारा केवल ये आठ सोरठे और दोहे हमें मिले हैं—

सोरठा

अकबर घोर अँधार, ऊघाणा हिंदू अवर।
जागै जगदातार, पोहरै राण प्रतापसी॥ १॥
अकबरिये इक बार, दागिल की सारी दुनी।
अण दागल असवार, एकज राण प्रताप सी॥ २॥
अकबर समद अथाह, सूरायण भरियो सुजल।
मेवाड़ो तिण माह, पोयण फूल प्रतापसी॥ ३॥
आई हों अकबरियाह, तेज तिहारी तुरकड़ा।
नगि नमि नौसरियाह, राण बिनासह राजबी॥ ४॥
चौथी चेतौडाह, बाँटी बाजंती लगू।
दीसै मेवाड़ाह तो सिरगण परताप सी॥ ५॥

दोहा

जननी सुत अहडा जणे, जहड़ो राण प्रताप।
अकबर सूतो औधके, जाण सिराणे साप॥ ६॥

सोरठा

पातल पाघ प्रमाण, साँची साँगा हरतणी।
रही अभोगत राण, अकबर सूंब भी अणी॥ ७॥
सोवै संह संसार, असुर पलोलै ऊपरै।
जागै तू निणबार, पाहेरे राण प्रताप सी॥ ८॥

इक दिन की दासता अहै शत कोटि नरक सम ।
पल भर को स्वाधीनपनो स्वर्गहु ते उत्तम ॥*"

सुनो सुनो—

जब लौं तन मैं प्राण न तब लौं मुख को मोड़ौं ।
जब लौं कर में शक्ति न तब लौं शस्त्रहि छोड़ौं ॥
जब लौं जिह्वा सरस दीन बच नहिं उचारौं ।
जब लौं धड़ पर सीस झुकावन नाहिं बिचारौं ॥
जब लौं अस्तित्व प्रताप को क्षत्रिय नाम न बोरिहौं ।
जब लौं न आर्यध्वज नभ उड़ै तब लौं टेक न छोरिहौं ॥

[नेपथ्य में]

जब लौं जग परताप, क्षत्रियत्व तब लौं अभय ।
कौन करत परिताप, परि संसय निर्मूल मैं ?

प्रतापसिंह—आहा ! गुरुदेव अच्छे समय आए । चलें उनसे परामर्श करके पृथ्वीराज को उत्तर लिख दें ।

(प्रस्थान)

षष्ठ गर्भांक

स्थान—मेवाड़ का सीमाप्रांत

(आगे आगे घोड़े पर सवार राणा प्रतापसिंह, पीछे पीछे घोड़े पर कुछ सरदार लोग)

राणा—मेरे विपत्ति के सहायक भाइयो, मेरे साथ तुम लोगों ने बड़े दुःख उठाए और अंत में अब यह दिन आया कि मुझ भाग्य-हीन के साथ तुम्हें भी अपनी प्यारी जन्मभूमि को छोड़ना पड़ता है । आहा सच है—

* "हिंदी बंगवासी" १२ अप्रैल सन् १८९७ से उद्धृत ।

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।"

एक सर्दार—अन्नदाता ! यह आपके कहने की बात है ? क्या आप अपने लिये यह कष्ट उठा रहे हैं ? जिस जन्मभूमि की रक्षा में आप इतने दुःख सह रहे हैं वह क्या हमारी नहीं है ? उसकी रक्षा क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं है ?

राणा—पर भाई इस अधम प्रताप के किए जन्मभूमि की रक्षा भी तो नहीं हुई ? अब तो जन्मभूमि को भी शत्रुओं के हाथ में छोड़कर अज्ञातवास करने चले हैं।

सर्दार—क्या हुआ पृथ्वीनाथ, कोई यह तो न कहेगा कि राणा प्रतापसिंह ने सुख की चाह में अपनी जननी जन्मभूमि को यवनों के हाथ बेचा ? परमेश्वर की लीला कौन जानता है, क्या आश्चर्य है कि फिर ऐसा समय आवै जब श्री हुजूर अपने देश को शत्रुओं से लौटा सकैं, धर्मावतार, उस समय कलंकित पैर से तो इस राज-सिंहासन पर न चढ़ेंगे।

राणा—इसमें तो संदेह नहीं, और फिर अपनी आँखों से अपने देश की यह दुर्दशा देखते हुए जीते रहने से तो अनजाने विदेश में मरना ही अच्छा, क्योंकि—

"मरनो भलो विदेश को जहाँ न अपुनो कोय।
माटी खायँ जनावराँ महा महोच्छव होय ॥"

एक सर्दार—ठीक है—

"दुरदिन पड़े रहीम कहि दुरथल जैए भाग।
जैसे जैयत घूर पर जब घर लागत आग ॥"

राणा—सच है, अच्छा चलो भाइयो ! चलो, अब इस स्थान की मोह माया छोड़ौ। (आँखों में आँसू भरकर)—

"जेहि रच्छी इच्छ्वाकु सो अब लौं रविकुलराज।"
हाय अधम परताप तू तजत ताहि है आज ॥

तजत ताहि है आज प्राण सम प्यारी जो ही।
हे मिवार सुखसार कृपा करि छमियो मोही॥
रह्यो सदा करि भार काज आयों तुम्हरे केहि।
बिदा दीजिए हमैं भार हलकाय आजु जेहि॥

(सब लोग सजलनेत्र से बेर बेर पीछे की ओर देखते देखते घोड़ा बढ़ाते हैं और दूर से घोड़ा दौड़ाते हाथ उठाकर इन लोगों को रोकते हुए भामाशा दिखाई पड़ते हैं)

भामाशा—(पुकारकर) ओ मेवार के मुकुट! ओ हिंदू नाम के आश्रयदाता! तनिक ठहरो, इस दास की एक बिनती सुनते जाओ। भामाशा को अकेले छोड़कर मत जाओ।

राणा—(घोड़ा रोककर) भामाशा ऐसे घबराए हुए क्यों आ रहे हैं?

(भामाशा पास आ जाते हैं और घोड़े से कूदकर राणा के पैरों पर रोते हुए गिरते हैं, राणा घोड़े से उतरकर भामाशा को उठा छाती से लगाते हैं, दोनों खूब रोते हैं)

राणा—मंत्रिवर, तुम ऐसे धीर वीर होकर आज ऐसे अधीर क्यों हो रहे हो?

भामाशा—प्रभो, मेरे अधैर्य का कारण आप पूछते हैं?

धिक सेवक जो स्वामि-काज तजि जीवन धारै।
धिक जीवन जो जीवन हित जिय नाहिं बिचारै॥
धिक सरीर जो निज कर्तव्य विमुख ह्वै बंचै।
धिक धन जो तजि स्वामिकाज स्वारथ हित संचै॥
धिक देशशत्रु किरतघन यह भामा जीवत नहिं लजत।
जेहि अछत वीर परताप बर असहायक देशहिं तजत॥

राणा—परंतु इसमें तुम्हारा क्या दोष है? तुमने तो अपने साध्य भर कोई बात उठा नहीं रखी?

भामाशा—अन्नदाता, यह आप क्या कहते हैं ? परमस्वार्थी भामाशा ने आपके लिये क्या किया ? अरे आपके अन्न से पला हुआ यह शरीर सुख से कालक्षेप करै और आप बन बन की लकड़ी चुनैं और पहाड़ पहाड़ टकरायँ ! प्रतापसिंह स्वाधीनता रक्षार्थ, हिंदू नाम अकलंकित करणार्थ देशत्यागी हों और भामाशा अपने जन्म-भूमिनिवास का स्वर्गोपम सुख भोगै ! जिन राणा की जूतियों के कारण भामाशा भामाशा बना है, वही राणा पैसे पैसे को मुहताज हों, सहायताहीन होने के कारण निज देशोद्धार में असमर्थ हों, प्राणोपम जन्मभूमि को छोड़ मरुभूमि की शरण लें, और भामाशा धनी मानी बनकर, ऐसे उपकारी स्वामी की सेवा छोड़कर, विदेशीय विजातीय हिंदू नाम को कलंकित करनेवाले राजा की प्रजा बनकर सुखपूर्वक कालयापन करे ! धिक्कार है ऐसे धन पर ! धिक्कार है ऐसे सुख पर !! धिक्कार है ऐसे जीवन पर !!!

राणा—पर भामाशा, तुम इसको क्या करोगे, जो भाग्य में होता है वही होता है; अब तुम क्या चाहते हो ?

भामाशा—धर्मावतार, आज मेरी एक बिनती स्वीकार हो, यही मेरी अंतिम बिनती है ।

राणा—क्या प्रतापसिंह ने कभी तुम्हारी बात टाली है ?

भामाशा—तो अन्नदाता ! एक बेर फिर मेवार की ओर घोड़े की बाग मोड़ी जाय । इस दास के पास जो पचीसों लाख रुपये की संपत्ति दर्बार की दी हुई है उसी से फिर एक बेर सेना एकत्रित की जाय और एक बेर फिर मेवार की रक्षा का उद्योग किया जाय । जो इसमें कृतकार्थ हुए तब तो ठीक ही है और नहीं तो फिर जहाँ स्वामी वहीं सेवक, जहाँ राजा वहीं प्रजा ।

(राणा सरदारों की ओर देखते हैं)

भामाशा—आप इधर उधर क्या देखते हैं; अरे यह धन क्या मेरा या मेरे बाप का है, यह सभी इन्हीं चरणों के प्रताप से है। मैं तो आगोर-दार था अब तक अगोर दिया, अब धनी जानें और उनका धन जाने।

कविराज—धन्य मंत्रिवर, धन्य ! यह तुम्हारा ही काम था—

जेहि धन हित संसार बन्यो बौरो सो डोलै।
जेहि हित बेचत लोग धर्म अपुने अनमोलै॥
जो अनर्थ को मूल सूल हिय में उपजावै।
पिता पुत्र, पति पत्नि, अनुज सों अनुज छुड़ावै॥
सो सात पुरुष संचित धनहिं तृण समान तुम तजत हौ।
धन स्वामिभक्त मंत्रीप्रवर ताहूँ पैं तुम लजत हौ॥

[बहुत से राजपूत और भीलों का कोलाहल करते हुए प्रवेश]

सब—महाराज, हम लोगों को छोड़कर आप कहाँ जा रहे हैं? चलिए एक बेर और लौट चलिए, जब हम सब कट मरैं तब आपका जिधर जी चाहे पधारैं।

राणा—जो आप लोगों की यही इच्छा है तो और चाहिए क्या ?

चलो चलो सब वीर आजु मेंवार उबारैं।
अहो आज या पुण्यभूमि तें शत्रु निकारैं॥
चिर स्वतंत्र यह भूमि यवन कर सों उद्धारैं।
हिंदू नामहिं थापि धर्म अरिगनहिं पछारैं॥
नभ भेदि आजु मेवार पै उड़ै सिसोदिया कुल ध्वजा।
जा सीतल छाया तरें रहै सदा सुख सों प्रजा॥

(चारों ओर से "महाराणा की जय" "हिंदूपति की जय" आदि पुकारते हुए लोग उमंग पूर्वक कूदते उछलते हैं)

[पटाक्षेप

सप्तम गर्भांक

स्थान—दिल्ली—शाही महल

(अकबर और खानखाना)

अकबर—उदयपुर से तो निहायत ही मनहूस खबर आई है, राणा के वफादार वजीर ने अपनी पुश्तहापुश्त की कमाई दौलत बेदरेग राणा को दे दी है। सुना है उसके पास इतनी दौलत है जिससे वह पचीस हजार फौज की बारह बरस तक परवरिश कर सकता है। शाबाश है उसकी दर्यादिली और वफादारी को, आफरीं है उसके हुब्बेवतनी और बेदारमगजी को। क्या दुनिया में ऐसे भी लोग हैं ?

खानखाना—और सुना है, प्रताप बड़े जोश के साथ फौज मुहय्या कर रहा है और जंगजू राजपूत व भील बराबर आते जाते हैं।

अकबर—वाह रे प्रतापसिंह, मैंने भी बहुत सी तवारीखें देखी हैं मगर इसकी मिसाल मुझे कोई न मिली, शाबाश! गजब का बहादुर और गजब का जफाकश है।

खानखाना—मगर खुदावंद, अब तो मेरी यही इल्तिजा है कि ऐसे शख्स को अब जियादा तकलीफ न दी जाय। हुजूर, ऐसे बहादुर शख्स को सताना नाजेबा है।

अकबर—दिल तो हमारा भी यही चाहता है कि अब प्रतापसिंह को बाकी जिंदगी आराम से काटने दें। राजा पृथ्वीराज आते हैं, देखें इनके पास राणा का क्या जवाब आया है ?

[पृथ्वीराज का प्रवेश]

अकबर—आइए राजा साहब तशरीफ रखिए, कहिए उदयपुर से कुछ जवाब आया ?

पृथ्वीराज—हाँ जहाँपनाह, राणाजी लिखते हैं "मैंने कभी संधि की प्रार्थना नहीं की, मेरी यदि कोई प्रार्थना है तो यही है कि अकबर स्वयं युद्ध-स्थल में आवें, एक हाथ में उनके तलवार हो और एक में हमारे; तब हमारा जी भर जाय, वह क्या वहाँ से बैठे बैठे लड़कों को तथा अपने साले ससुरों को भेजते हैं, हम क्या इन पर शस्त्र चलावें ?"

अकबर—ठीक है, बहादुर प्रतापसिंह जो कुछ कहे सब बजा है, ये कलमें उसी को जेबा हैं।

खानखाना—अब तो जहाँपनाह मेरी इल्तिजा कुबूल हो और प्रतापसिंह पर बखशिश की निगाह मबजूल हो।

अकबर—नवाब साहब, अगर आप लोगों की यही राय है तो मुझे कोई उज्र नहीं है। शहबाजखाँ को लिख भेजिए वापस चले आयँ।

पृथ्वीराज—(स्वगत) धन्य गुणग्राहकता, यह अकबर ही के हृदय का काम है।

[एक चोबदार का प्रवेश]

चोबदार—(जमीन छूकर सलाम करके) जहाँपनाह, उदयपुर से एक सिपाही आया है।

अकबर—फौरन हाजिर लाओ।

[घबराए हुए एक मुसलमान सैनिक का प्रवेश]

सैनिक—(जमीन छूकर सलाम करके) खुदावंद, बड़ा गजब हुआ, राना ने उदयपुर फिर दखल कर लिया।

अकबर—सब सरगुजश्त जल्द बयान कर जाओ।

सैनिक—आलीजाह, परताप मुतवातिर शिकस्त खाते खाते शिकस्तः-दिल होकर अरवली की सरहद छोड़कर भागने की फिक्र में हुआ। हम लोगों को इतमीनान हुआ कि अब मेवार बे खरखशः हो

गया, मगर इतने ही में उसके वजीर ने उसे बहुत सी दौलत की मदद दी और वह एकाएक बड़ी फौज इकट्ठी कर हम लोगों पर टूट पड़ा, सिपहसालार शहबाजखाँ की फौज को टुकड़े टुकड़े काट डाला, अब्दुल्लाखाँ और उसकी फौज बिल्कुल मारी गई। गरीबपरवर हम लोगों पर मुतवातिर ३२ हमले किए गए। करीब करीब तमाम मेवार इस वक्त दुश्मनों के कब्जे में है। सुना गया है कि अम्बर तक राना चढ़ गया था और मालपुरा की बाजार लूट ले गया। मैं किसी तरह जान बचाकर हुजूर को खबर देने आया, और लोगों की मालूम नहीं क्या हालत है।

अकबर—(क्रोधपूर्वक खानखाना से) कहिए अब आप क्या फर्माते हैं ?

खानखाना—खुदावन्द, प्रताप के लिये तो यह कोई नई बात नहीं है, मगर हुजूर का हुक्म जो एक मर्तवा जुबान मुबारक से निकल चुका क्योंकर पलट सकता है ?

अकबर—मगर इसमें सख्त बदनामी होगी।

पृथ्वीराज—जगत्विजयी अकबर के उद्दंड प्रताप को कौन नहीं जानता ? प्रताप के मुकाबिले अकबर को कौन बदनामी दे सकता है ?

खानखाना—और फिर मेरी अकल-नाकिस में तो प्रताप ऐसे बहादुर से दरगुजर करना ऐन फख्र का बाइस है बल्कि उसे सताना ही बदनामी है।

(नेपथ्य से "अजान" का शब्द सुनाई दिया)

अकबर—नमाज का वक्त हो गया, इस वक्त यह शूरः मुलतवी रहै, फिर गौर किया जायगा।

(सभों का प्रस्थान)

———

अष्टम गर्भांक

स्थान—उदयपुर—राज-दर्बार

(परम सुसज्जित तथा आलोकमय राजसिंहासन पर महाराणा प्रतापसिंह विराजमान, दोनों ओर गुलाबसिंह, भामाशा, कविराजा आदि तथा राजपूत और भील सरदारगण श्रेणीबद्ध खड़े हैं। नर्तकी-गण नाचती और गाती हैं)

गाओ गाओ आनंद बधाइयाँ।
हिंदूपति छत्रिय-कुल-गौरव राणा सुख सरसाइयाँ।
राखी लाज आज भारत की अपुनी टेक निबाहियाँ॥
जुग जुग जीए मेरे साईं तन मन धन सब वारियाँ॥

राणा—मेरे प्यारे भाइयो! आज श्री एकलिंगजी की कृपा और तुम लोगों के उद्योग से यह दिन देखने में आया कि इस पवित्र स्थान से हिंदूद्वेषी यवनों का पौरा गया और फिर आज हम लोगों ने अपनी प्यारी जन्मभूमि का दर्शन पाया। जिस स्वाधीनतारक्षार्थ हम लोगों के अगणित पूर्व-पुरुषों ने अकुंठित हो संग्रामस्थल में परम प्रिय जीवन विसर्जन किया था, आज जगदीश्वर की कृपा से वह हमें प्राप्त हुई, इससे बढ़कर भी कोई आनंद की बात हो सकती है? प्यारे भाइयो, बस हमारा यही उपदेश है कि संसार में जीना तो अपने गौरवसहित जीना, नहीं मरना तो हई है। आहा! महाबाहु अर्जुन का कैसा आदरणीय और अनुकरणीय सिद्धांत था।

"आयुः रक्षति मर्माणि आयुरन्नं प्रयच्छति।
अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्॥"

कविराजा—ठीक है पृथ्वीनाथ, आप जो आज्ञा कर रहे हैं उसे प्रत्यक्ष उदाहरण स्वरूप कर भी दिखाया। आहा!

जो न प्रगट होते प्रताप भारत-हितकारी ।
को करि सकत कलंकरहित हिंदू व्रतधारी ॥
अकबर से उद्दंड शत्रु दरि निज प्रण राखी ।
को हिंदू गौरव को सब जग करतो साखी ॥
या प्रबल म्लेच्छ इतिहास मैं हिंदू नाम बिलावतो ।
को हे प्रताप बिनु तुव कृपा यह अपवाद मिटावतो ॥

राणा—कविराजजी, आप मुझे व्यर्थ की बड़ाई देते हैं, मैं तो निमित्त मात्र था। जो ये सब राजपूत और भील सरदारगण सहायता न करते तो मैं अकेला क्या कर सकता था ? आहा ! झाला महाराज मानसिंह ने तृणवत् अपना शरीर दे दिया और मुझे बचाया, महाराज खंडेराव, राजा रामसिंह ऐसे वीर पुरुषों ने मेरे लिये क्या क्या न किया। हाय ! मैं अब इनके लिये क्या कर सकता हूँ ? बड़े कविराजा जी ने अपने देश की जैसी सेवा की और जिस भाँति प्राण दिया कौन नहीं जानता ? जब तक पृथ्वी रहेगी इन लोगों का यश स्वर्णाक्षरों में मेवार के इतिहास में अंकित रहेगा। प्यारे चेतक ने पशु होकर मेरा जैसा उपकार किया उससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकता। मंत्रिवर, जहाँ चेतक का शरीर गिरा है एक उत्तम समाधि बनवाई जाय और प्रति वर्ष उसके सम्मानार्थ वहाँ मेला लगाकर, मैं स्वयं वहाँ चला करूँगा। (कविराजा से) कविराजाजी, आप एक पर्वाना लिखिए कि जब तक मेरे और भामाशा के वंश में कोई रहै, मंत्री का पद उसी को दिया जाय और मैं इन्हें प्रथम श्रेणी के सरदारों में स्थान देकर झाट कपट ताजीम, पैर में सोने का लंगर पाग पर माँझा आदि यावत् प्रतिष्ठा बखशता हूँ, जो इनकी सेवा के आगे सर्वथा तुच्छ है। (गुलाबसिंह के प्रति) वत्स गुलाबसिंह, तुमने अपने प्रण को जैसी दृढ़ता से निबाहा सबको

उससे शिक्षा लेनी चाहिए। आहा! तुम्हारा और मालती का प्रेम आदर्श स्वरूप है। तुम दोनों ने अपने अपने प्रण को दृढ़तापूर्वक निबाहा, इसलिये अब विलंब का प्रयोजन नहीं। मंत्री, मेरी ओर से मालती के विवाह की तयारी की जाय। दायजे में जागीर आदि का सब प्रबंध मैं स्वयं करूँगा। आप एक शुभ मुहूर्त दिखलावैं और अब इस शुभ संयोग में विलंब न करें, मैं स्वयं इन दोनों का विवाह अपने हाथ से करूँगा।

(गुलाबसिंह राणा के पैरों पर गिरता है और राणा
उठाकर उसे हृदय से लगाते हैं)

(राजकुमार के प्रति) देखो कुँवरजी अपने धर्म और देश-रक्षार्थ मैंने जो जो कष्ट सहे हैं तुमने अपनी आँखों से देखा है, देखो ऐसा न हो कि तुम हमारे पीछे विलास-प्रियता में पड़ अपने पिता का नाम डुबाओ, प्रताप की कीर्ति पर धब्बा लगाओ और मरने पर मेरी आत्मा को सताओ। मेरे इन वाक्यों को सदा स्मरण रखना—

जब लौं जग में मान तबहिं लौं प्रान धारिए।
जब लौं तन में प्रान न तब लौं धर्म छाड़िए॥
जब लौं राखै धर्म तबहिं लौं कीरति पावै।
जब लौं कीरति लहै जन्म स्वारथ कहवावै॥
हे वत्स सदा निज वंश की मरजादा निरबाहियो।
या तुच्छ जगत सुख कारनै जिनि कुल नाम हँसाइयो॥

(सरदारों के प्रति)

मेवाड़ की शोभा, मेरे प्यारे भाइयो,—

यह बालक अज्ञान, सौंपत तुमको आजु हम।
जब लौं तन में प्रान, मान जान जिनि दीजियो॥

(सब सरदारगण सिर झुका हाथ जोड़ सजलनेत्र पृथ्वी की ओर देखते हैं)

(नर्तकीगण गाती हैं)

यह दिन सब दिन अचल रहै।
सदा मिवार स्वतंत्र बिराजै निज गौरवहिं गहै ॥
घर घर प्रेम एकता राजै, कलह कलेस बहै।
बल, पौरुष, उत्साह, सुदृढ़ता, आरजबंस चहै ॥
वीरप्रसविनी वीरभूमि यह वीरहिं प्रसव करै।
इनके वीर क्रोध मैं परि अरि कायर क्रूर जरै ॥
राजा निज मरजाद न टारै, प्रजा न भक्ति तजै।
परम पवित्र सुखद यह शासन सब दिन यहाँ सजै ॥
जब लौं अचल सुमेरु विराजत जब लौं सिंधु गँभीर।
तब लौं हे प्रताप तुव कीरति गावैं सब जग वीर ॥
हे करुणामय दीनबंधु हरि नित तुव कृपा बसै।
यह आरत भारत दुख तजिकै परम सुखहिं बिलसै ॥

[परम प्रकाश के साथ धीरे धीरे पटाक्षेप

---

(५) सती-प्रताप

इस रूपक के पहले चार दृश्यों को भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने लिखा था। पीछे से सन् १८९२ में बाबू राधाकृष्णदास ने उसकी पूर्ति की। इसमें सावित्री सत्यवान की कथा दृश्य रूपक में दिखाई गई है।

संपादक

——— ———

उपक्रम

यह दृश्य रूपक स्वर्गीय भाई साहिब बाबू हरिश्चंद्रजी ने पूरा न किया था कि अपना जीवन पूरा कर हम लोगों को छोड़ परमधाम चल बसे। यद्यपि इसके पूरा करने का साहस करना न केवल मूर्खता बरंच बड़े दोष का भागी होना है; परंतु दो विचारों ने इस दुःसाहस पर आरूढ़ कराया, एक तो यह कि इस सर्वहितकारी ग्रंथ के अधूरा रह जाने से पूज्यपाद भाई साहब की अभिलाषा सिद्ध न होगी, दूसरे यह कि यदि कुछ त्रुटि होगी तो मुझे उनका वात्सल्य-भाजन जानकर पाठकगण अवश्य ही क्षमा करेंगे।

इस बात के प्रकाश करने की आवश्यकता नहीं है कि मेरा लिखा कहाँ से है क्योंकि लेख का भद्दापन आप ही प्रकाश कर देगा। मेरी इच्छा कदापि यह नहीं थी कि इसमें अपना नाम प्रकाश करूँ परंतु मेरी अशुद्धि कदाचित् भाई साहब की अकीर्ति का कारण हो इस विचार से यह प्रकाश किया गया।

यदि इसकी लेखप्रणाली सज्जनों को रुचैगी तो और भी ग्रंथों को पूरा करने का उद्योग करूँगा।

दासानुदास

राधाकृष्णदास

सती-प्रताप

(एक गीति-रूपक)

पहला दृश्य

हिमालय का अधोभाग

(तृणलतावेष्टित एक टीले पर बैठी हुई तीन अप्सराएँ गाती हैं)

१ अप्सरा—

(राग झिंझौटी)

जय जय श्री रुकमिन महरानी।
निज पति त्रिभुवन-पति हरिपद में छाया सी लपटानी॥
सतीसिरोमनि रूपरासि करुनामय सब गुनखानी।
आदि शक्ति जग-कारिनि पालिनि निज भक्तन सुखदानी॥

२ अप्सरा—

(राग जंगला या पीलू)

जग में पतिव्रत सम नहिं आन।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जग में यासु समान॥
अनसूया सीता सावित्री इनके चरित प्रमान।
पति देवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान॥
धन्य देस कुल जहँ निबसत हैं नारी सती सुजान।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य ब्याह असथान॥
सब समर्थ पतिबरता नारी इन सम और न आन।
याही ते स्वर्गहु में इनको करत सबै गुन गान॥

३ अप्सरा—

(रागिनी बहार)

नवल बन फूलीं द्रुम वेली ।
लह लह लहकहिं मह मह महकहिं मधुर सुगंधहि रेली ॥
प्रकृति नवोढ़ा सजे खरी मनु भूषन बसन बनाई ।
आँचर उड़त बात-बस फहरत प्रेम धुजा लहराई ॥
गूँजहिं भँवर विहंगम डोलहिं बोलहिं प्रकृति बधाई ।
पुतली सी जित तित तितली गन फिरहिं सुगंध लुभाई ॥
लहरहिं जल लहकहिं सरोज मन हिलहिं पात तरु डारी ।
लखि रितुपति आगम सगरे जग मनहु कुलाहल भारी ॥

[पटाक्षेप

दूसरा दृश्य

तपोवन

(लता-मंडप में सत्यवान बैठा हुआ है)

(रंग गीति-पीलू-धमार)

क्यों फकीर बन आया बे मेरे वारे जोगी ।
नई बैस कोमल अंगन पर काहे भभूत रमाया बे ॥
किन वे मात पिता तेरे जोगी जिन तोहि नाहिं मनाया बे ।
काँचे जिय कहु काके कारन प्यारे जोग कमाया बे ॥

(चैती गौरी तिताला)

बिदेसिया बे प्रीति की रीति न जानी ।
प्रीति की रीति कठिन अति प्यारे कोई बिरले पहिचानी ॥

सत्यवान—यह कोमल स्वर कहाँ से कान में आया ? प्रतिध्वनि के साथ यह स्वर ऐसा गूँज रहा है कि मेरी सारी कदंबखंडी शब्द-ब्रह्ममय हो गई। बीच बीच में मोर कुहुक कुहुककर और भी

गूँज दूनी कर देते हैं। (कुछ सोचकर) हाय! मेरा मन इस समय भी स्थिर नहीं। हाय! प्रासादों में स्फटिक की छत पर चलने में जिनके चरण को कष्ट होता था आज वह कंटकमय पथ में नंगे पाँवों फिर रहे हैं! और दुग्धफेन सी सेज के बदले आज मृग-चर्म पर सोते हैं। हाय! हमारे माता पिता बुढ़ापे से सामर्थ्यहीन तो थे ही ऊपर से दैव ने उन्हें अंधा बनाया। हाय अभागे सत्यवान से कभी माता पिता की सेवा न बन पड़ी। कभी उनके वात्सल्य-पूर्ण प्रेमामृत-वचन ने मेरे कान न शीतल किए। और न ऐसा होना है। जनमते ही तो तपस्या करनी पड़ी। धन्य विधाता! दरिद्र को धनवान और धनवान को दरिद्र करना तो तुम्हें एक खेल है। किंतु दरिद्र बना के फिर क्यों कष्ट देते हो! दारिद्र्य ही सही पर मन को तो शांति दो। भला दो घड़ी वृद्ध माता पिता की सेवा करने पावें। (चिंता)

(सावित्री को घेरे हुए गाते गाते मधुकरी, सुरबाला और लवंगी का आना और फूल बीनना)

सखी जन—

(गौरी)

भौंरा रे बौरानो लखि बौर।
लुबध्यौ उतहि फिरत मड़रान्यौ जात कहूँ नहिं और—
भौंरा रे बौरानो॥

(चैती गौरी)

फूलन लागे राम वन नवल गुलबवा।
फूलम लागे राम—महुआ फले आम बौराने डारहि डार भँवरवा
झूलन लगे राम॥

(गौरी)

पवन लगि डोलत बन की पतियाँ।
मानहु पथिकन निकट बुलावहिं कहन प्रेम की बतियाँ ॥
अलक हिलत फहरत तन सारी होत हैं सीतल छतियाँ।
यह छबि लखि ऐसी जिय आवत इतहि बितैए रतियाँ ॥

सुरबाला—सखी कैसा सुंदर वन है।

लवंगी—और यह बारी भी कैसी मनोहर है।

मधुकरी—आहा ! तपोवन ऋषि मुनि लोगों को कैसा सुखदायक होता है।

सावित्री—सखी, ऋषि मुनि क्या तपोवन सभी को सुख देता है।

सुरबाला—क्योंकि यहाँ सदा वसंत ऋतु रहती है न।

सावित्री—वसंत ही से न तपोवन ऐसा नहीं है।

मधुकरी—अहा ! यह कुंज कैसा सुंदर है। सखी देखो माधवी लता इस कुंज पर कैसी घनघोर छाई हुई है।

सावित्री—सहज वस्तु सभी मनोहर होती है। देखो इस पर फूल कैसे सुंदर फूले हैं जैसे किसी ने देवता की फूल मंडली बनाई हो।

सुरबाला—और उधर से हवा कैसी ठंढी आती है ?

लवंगी—और हवा में सुगंध कैसी है ?

मधुकरी—सखी ! एकटक उधर ही क्यों देख रही हो ?

सुरबाला—सच तो सखी, वहाँ क्या है जो उधर ही ऐसी दृष्टि गड़ा रही हो ?

लवंगी—तू क्या जानै। तपोवन में सैकड़ों वस्तुएँ ऐसी होती हैं।

सावित्री—

(राग सोरठ)

लखो सखि भूतल चंद खस्यौ।
राहु केतु भय छोड़ि रोहिनिहि या बन आइ बस्यौ ॥
कै सिव-जय-हित करत तपस्या मनसिज इत निबस्यौ।
कै कोऊ बनदेव कुंज में बनबिहार बिलस्यौ ॥

मधुकरी—सच तो, तपसियों में ऐसा रूप !

सुरबाला—जाने दो वनवासी तपस्वी में ऐसा रूप कहो !

सावित्री—यह मत कहो। विधना की कारीगरी जैसी नगर में वैसी ही वन में। (सत्यवान की ओर सतृष्ण दृष्टिपात)

सुरबाला—देखती है ? एक-मन एक-प्राण होकर कैसा सोच रही है ?

लवंगी—(परिहास से) आज जो हम तापस कुमार के बदले राजकुमार होते तो घर बैठे गंगा बही थी।

मधुकरी—सखी इसका कुछ नेम नहीं है कि राजकुमारी का ब्याह राजकुमार ही से हो।

सावित्री—विधाता ने जिस भाव से राजपुत्र को सिरजा है उसी भाव से मुनिपुत्र को। और फिर राजधन से तपोधन कुछ कम नहीं होता।

सत्यवान—(आप ही आप) यह क्या वनदेवी आई हैं।

मधुकरी—हम उनके पास जाकर प्रणाम तो कर आवैं।

(मधुकरी का कुंज की ओर बढ़ना और सत्यवान का लता-मंडप से निकलकर बाहर बैठना)

मधुकरी—(सत्यवान के पास जाकर) प्रणाम। (हाथ जोड़कर सिर झुकाना)

सत्यवान—आयुष्मती भव। आप लोग कौन हैं ?

मधुकरी—हम लोग अपनी सखी मद्र देश के जयंती नगर के राजा अश्वपति की कुमारी सावित्री के साथ फूल बीनने आई हैं।

सत्यवान—(स्वगत) राजकुमारी ! वामन को चंद्र स्पर्श।

मधुकरी—कृपानिधान ! आप सदा यहीं निवास करते हैं ?

सत्यवान—जब तक दैव अनुकूल न हो यहीं निवास है।

मधुकरी—इससे तो बोध होता है कि किसी राजभवन को सूना करके आप यहाँ आए हैं।

सत्यवान—सखी ! उन बातों को जाने दो।

मधुकरी—हमारे अनुरोध से कहना होगा। दयाल सज्जनगण अतिथि की यांचा व्यर्थ नहीं करते। विशेष करके पहले ही पहल।

सत्यवान—हम शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन के पुत्र हैं। हमारा नाम चित्राश्व वा सत्यवान है। इस मेध्यारण्य नामक वन में पिता की सेवा करते हैं।

मधुकरी—(आप ही आप) तभी ! गंगा समुद्र छोड़कर और जलाशय की ओर नहीं झुकती। (प्रगट) तो आज्ञा हो तो प्रणाम करूँ।

सत्यवान—(कुछ उदास होकर) यह क्यों ? बिना आतिथ्य स्वीकार किए हुए ?

मधुकरी—इसका तो मैं सखी से पूछ लूँ तो उत्तर दूँ। (सावित्री के पास आकर) सखी ! कुमार तापस कहते हैं कि आतिथ्य स्वीकार करना होगा।

(सावित्री सखियों का मुँह देखती है)

लवंगी—(परिहास से) अवश्य, अवश्य। इसमें क्या हानि है ?

सावित्री—(कुछ लज्जा करके) सखी ! उनसे निवेदन कर दे कि हम लोग माता पिता की आज्ञा लेकर तब किसी दिन आतिथ्य स्वीकार करेंगे । आज विलंब भी हुआ है ।

मधुकरी—(सत्यवान के पास जाकर) कुमारी कहती हैं कि किसी दिन माता पिता की आज्ञा लेकर हम आवैंगे तब आतिथ्य स्वीकार करैंगे । आप तो जानते ही हैं कि आर्यकुल की ललनागण किसी अवस्था में भी स्वतंत्र नहीं हैं । इससे आज क्षमा कीजिए ।

सत्यवान—(कुछ उदास होकर) अच्छा । (सखियों के साथ सावित्री का प्रस्थान) (उधर ही देखता है) यह क्या ? चित्त में ऐसा विकार क्यों ? क्या स्वर्ण और रत्न में भी मलिनता ? क्या अग्नि में भी कीट की उत्पत्ति ? वह ! फिर वही ध्यान ! यह क्या ? अब तो जी नहीं मानता । चलैं आगे बढ़कर बदली में छिपते हुए चंद्रमा की शोभा देखकर जी को शांति दें । (जाता है)

[पटाक्षेप

तीसरा दृश्य

जयंती नगर का गृहोद्यान

(जोगिन बनी हुई सावित्री ध्यान करती है)

(नेपथ्य में वैतालिक गान)

प्र० वै०—नैन लाल कुसुम पलास से रहे हैं फूलि
फूल-माल गरें वन झालरि सी लाई है ।
भँवर गुंजार हरि नाम को उचार तिमि
कोकिला सी कुहुकि बियोग राग गाई है ॥
हरीचंद तजि पतझार घर बार सबै
बौरी बनि दौरी चारु पौन ऐसी धाई है ।

तेरे बिछुरे तें प्रान कंत के हिमंत अंत
तेरी प्रेम जोगिनी बसंत बनि आई है ॥

द्वि० वै०—पीरो तन परयो फूलीं सरसों सरस सोई
मन मुरझान्यो पतझार मनों लाई है।
सीरी स्वास त्रिबिध समीर सी बहति सदा
अँखियाँ बरसि मधुझरि सी लगाई है ॥
हरीचंद फूले मन मैन के मसूसन सों
ताही सों रसाल बाल बदि कै बौराई है।
तेरे बिछुरे तें प्रान कंत के हिमंत अंत
तेरी प्रेम जोगिनी बसंत बनि आई है ॥

प्र० वै०—"बरुनी बघंबर मैं गुदरी पलक दोऊ
कोए राते बसन भगौंहैं भेख रखियाँ।
बूड़ी जल ही मैं दिन जामिनी हूँ जागैं भौंह
धूम सिर छायो बिरहानल बिलखियाँ ॥
आँसू ज्यौं फटिक-माल काजर की सेली पैन्हि
भई हैं अकेली तजि चली संग सखियाँ।
दीजिए दरस देव कीजिए सँजोगिन ये
जोगिनि ह्वै पैठी हैं बियोगिनि की अँखियाँ" ॥

द्वि० वै०—एकै ध्यान एकै ज्ञान एकै मन एकै प्रान
दसो दिसि अबिचल एकै तान तानो है।
जग मैं बसत हूँ मनहुँ जग बाहिर सी
हियौ तन दोऊ निसि दिवस तपानो है ॥
हरीचंद जोग की जुगति रिद्धि सिद्धि सब
तजि तिनका सी एक नेह को निभानो है।

बिना फल आस सीस सहनी सहस्र त्रास
जोगिन सों कठिन बियोगिन को बानो है ॥
(सावित्री ध्यान से आँख खोलती है)

सावित्री—अहा ! एक पहर दिन आ गया। सखीगण अब तक नहीं आईं। इसी से ध्यान भी निर्विघ्न हुआ, हमारी वासना सत्य है तो अंतर्गति जाननेवाली सती-कुल-सरोजिनी भगवती भवानी हमारी भावना अवश्य पूर्ण करेंगी। मन बच कर्म से हमारी भक्ति पति के चरणारविंद में है तो वह हमको अवश्य ही मिलेंगे। अथवा न भी मिलें तो इस जन्म में तो दूसरा पति हो नहीं सकता। स्त्री-धर्म बड़ा कठिन है। जिसको एक बेर मन से पति कहकर वरण किया उसको छोड़कर स्त्रीशरीर को अब इस जगत् में कौन गति है ? पिता माता बड़े धार्मिक हैं। सखियों के मुख से यह संवाद सुनकर वह अवश्य उचित ही करेंगे वा न करेंगे तो भी इस जन्म में अन्य पुरुष अब मेरे हेतु कोई है नहीं। (अपना वेष देखकर) अहा ! यह वेष मुझको कैसा प्रिय बोध होता है। जो वेष हमारे जीवितेश्वर धारण करें वह क्यों न प्रिय हो। इसके आगे बहु-मूल्य हीरों के हार और चमत्कारदर्शक वस्त्र सब तुच्छ हैं। वही वस्तु प्यारी है जो प्यारे को प्यारी हो। नहीं तो सर्व सम्पत्ति की मूल-कारण स्वरूपा देवी पार्वती भगवान भूतनाथ की परिचर्या इस वेष से क्यों करतीं। सती-कुल-तिलका देवी जनकनंदिनी को अयोध्या के बड़े बड़े स्वर्ग-विनिंदक प्रासाद और शची-दुर्लभ गृह-सामग्री से भी वन की पर्णकुटी और पर्वतशिला अति प्रिय थीं, क्योंकि सुख तो केवल प्राणनाथ की चरण-परिचर्या में है। जब तक अपना स्वतंत्र सुख है तब तक प्रेम नहीं। पत्नी का सुख एक मात्र पति की सेवा है। जिस बात में प्रियतम की रुचि उसी में सहधर्मिणी की

रुचि। अहा! वह भी कोई धन्य दिन आवेगा जब हम भी अपने प्राणाराध्य देवता प्रियतम पति की चरणसेवा में नियुक्त होंगी। वृद्ध श्वशुर और सास के हेतु पाक आदि निर्माण करके उनका परितोष करेंगी, कुसुम दूर्वा तुलसी समिधा इत्यादि बीनने को पति के साथ वन में घूमेंगी। परिश्रम से थकित प्राणनायक के स्वेद-सीकर अपने अंचल से पोंछकर मंद मंद वनपत्र के व्यजन-वायु से उनका श्रीअंग शीतल और चरण-संवाहनादि से श्रम गत करेंगी। (नेत्रों से आँसू गिरते हैं)

(गान करते हुए सखीगण का आगमन)

सखी-त्रय—

(ठुमरी)

देखो मेरी नई जोगिनियाँ आई हो। जोगी पिय मन भाई हो।
खुले केस गोरे मुख सोहत जोहत दृग सुखदाई हो॥
नव छाती गाती कसि बाँधी कर जप माल सुहाई हो।
तन कंचन दुति बसन गेरुआ दूनी छबि उपजाई हो॥
देखो मेरी नई जोगिनियाँ आई हो।

(सावित्री के पास जाकर)

लवंगी—

(लावनी)

सखि! बाले जोबन महा कठिन व्रत कीनो।
यह जोग भेख कोमल अंगन पर लीनो॥
अबहीं दिन तुमरे खेल कूद के प्यारी।
पितु मातु चाव सों भवन बसो सुकुमारी॥
ओढ़ौ पहिरौ लखि सुख पावै महतारी।
बिलसौ गृह संपति सखी गईं बलिहारी॥

तजि देहु स्वाँग जो सबही बिधि सो हीनो ।
यह जोग-भेष जो कोमल अँग पर लीनो ॥

मधुकरी—सखि ! यही जगत की चाल जिती हैं कारी ।
उनके सबही बिधि मात पिता अधिकारी ॥
जेहि चाहैं ताकहँ दान करैं निज बारी ।
यामैं कछु कहनो तजनो लाज दुलारी ॥
विनती मानहु हठ माँहि वृथा चित दीनो ।
यह जोग-भेष जो कोमल अँग पर लीनो ॥

सुरबाला—सखी ! औरहु राजकुमार बहुत जग माँहीं ।
विद्या बुधि गुन बल रूप समूह लखाहीं ॥
चिरजीवी प्रेमी धनी अनेक सुनाहीं ।
का उन सम कोऊ और जगत में नाहीं ॥
जाके हित तुम तजि राजभेष सुख भीनो ।
यह जोग-भेष निज कोमल अँग पर लीनो ॥

सावित्री—(ईषत् क्रोध से)
बस बस ! रसना रोको ऐसी मति भाखो ।
कछु धरमहु को भय अपने जिय मैं राखो ॥
कुलकामिनि ह्वै गनिका-धरमहि अभिलाखो ।
तजि अमृतफल क्यों विषमय विषयहि चाखो ॥
सब समुझि बूझि क्यौं निंदहु मूरख तीनों ।
यह जोग-भेष जो कोमल अँग पर लीनों ॥

लवंगी—सखी को कैसा जल्दी क्रोध आया है ?

सावित्री—अनुचित बात सुनकर किसको क्रोध न आवेगा ?

सुरबाला—सखी ! हम लोगों ने जो वचन दिया था वह पूरा किया ?

सावित्री—वचन कैसा ?

सुरबाला—सखी, तुम्हारे माता पिता ने हम लोगों से वचन लिया था कि, जहाँ तक हो सकेगा, हम लोग तुमको इस मनोरथ से निवृत्त करैंगे।

सावित्री—निवृत्त करोगी ? धर्मपथ से ? सत्यप्रेम से ? और इसी शरीर में ?

सुरबाला—सखी, शांत भाव धारण करो। हम लोग तुम्हारी सखी हैं कोई अन्य नहीं हैं। जिसमें तुमको सुख मिलै वही हम लोगों को करना है। यह सब जो कुछ कहा सुना गया, केवल ऊपरी जी से।

सावित्री—तब कुछ चिंता नहीं। चलो अब हम लोग माता के पास चलैं किंतु वहाँ मेरे सामने इन बातों को मत छेड़ना।

तीनों सखियाँ—अच्छा चलो।

[जवनिका-पतन

चौथा दृश्य

तपोवन—द्युमत्सेन का आश्रम

(द्युमत्सेन, उनकी स्त्री और ऋषि बैठे हैं)

द्युमत्सेन—ऐसे ही अनेक प्रकार के कष्ट उठाए हैं, कहाँ तक वर्णन किया जाय।

१ ऋषि—यह आपकी सज्जनता का फल है।

(छप्पय)

क्यौं उपज्यौ नरलोक ? ग्राम के निकट भयो क्यौं ?
सघन पात सों सीतल छाया दान दयो क्यौं ?
मीठे फल क्यौं फल्यौ ? फल्यौ तो नम्र भयो कित ?
नम्र भयो तो सहु सिर पैं बहु विपति लोक कृत।

तोहि तोरि मरोरि उपारिहैं पाथर हनिहैं सबहि नित।
जे सज्जन है नै कै चलिहिं तिनकी यह दुरगति उचित॥

२ ऋषि—ऐसा मत कहिए। वरंच यों कहिए—

चातक को दुख दूर कियो पुनि दीनो सबै जग जीवन भारी।
पूरे नदी नद ताल तलैया किए सब भाँति किसान सुखारी॥
सूखेहू रूखन कीने हरे जग पूर्‌यौ महा मुद दै निज वारी।
हे घन! आसिन लौं इतनी करि रीते भए हूँ बड़ाई तिहारी॥

द्युमत्सेन—मोहि न धन को सोच, भाग्य बस होत जात धन।
पुनि निरधन सों दोस न होत यहै गुन गनि मन॥
मोकहँ इक दुख यहै जु प्रेमिन हू मोहि त्याग्यौ।
बिना द्रव्य के स्वानहु नहिं मोसों अनुराग्यौ॥
सब मित्रन छोड़ी मित्रता बन्धुन हू नातो तज्यौ।
जो दास रह्यौ मम गेह को मिलनहुँ मैं अब सो लज्यौ।

१ ऋषि—तो इसमें आपकी क्या हानि है? ऐसे लोगों से न मिलना ही अच्छा है।

द्युमत्सेन—नहीं उनके न मिलने का मुझको अणुमात्र शोच नहीं है। मुझको तो ऐसे तुच्छमना लोगों के ऊपर उलटी दया उत्पन्न होती है। मुझको अपनी निर्धनता केवल उस समय अति गढ़ाती है जब किसी सत्पुरुष कुलीन को द्रव्य के अभाव से दुखी देखता हूँ। उस समय मुझको निस्संदेह यह हाय होती है कि आज द्रव्य होता तो मैं उसकी सहायता करता।

२ ऋषि—आपके मन में इसका खेद होता है तो मानसिक पुण्य आपको हो चुका। और आपकी मनोवृत्ति ऐसी है तो वह अवश्य एक न एक दिन फलवती होगी।

१ ऋषि—सज्जनगण स्वयं दुर्दशाग्रस्त रहते हैं तब भी उनसे जगत् में नाना प्रकार के कल्याण ही होते हैं।

द्युमत्सेन—अब मुझसे किसी का क्या कल्याण होगा। बुढ़ापे से शरीर में पौरुष हई नहीं। एक आँख थी सो भी गई। तीर्थ-भ्रमण और देवदर्शन से भी रहित हुए।

१ ऋषि—आपके नेत्रों के इतने निर्बल हो जाने का क्या कारण है? अभी कुछ आपकी अवस्था अति वृद्ध नहीं हुई है।

द्युमत्सेन—वही कारण जो हमने कहा था। (उदास होकर) पुत्रशोक से बढ़कर जगत् में कोई शोक नहीं है। गणक लोगों ने यह कहकर कि तुम्हारा पुत्र अल्पायु है मेरा चित्त और भी तोड़ रखा है। इसी से न मैं ऐसा घर ऐसी लक्ष्मी सी बहू पाकर भी अभी विवाह संबंध नहीं स्थिर करता।

२ ऋषि—अहा! तभी महाराज अश्वपति और उनकी रानी इस संबंध से इतने उदास हैं। केवल कन्या के अनुरोध से संबंध करने कहते हैं।

(हरिनाम गान करते हुए नारद जी का आगमन)

नारद—(नाचते और वीणा बजाते हुए)

(चाल नामकीर्तन महाराष्ट्री कटाव)

जय केशव करुणा कंदा। जय नारायण गोविंदा॥
जय गोपीपति राधानायक। कृष्ण कमललोचन सुखदायक॥
माधव सुररिपु रावणहंता। सीतापति जदुपति श्रीकंता॥
बुद्ध नृसिंह परशुधर बावन। मच्छ कच्छ वपुधर जगपावन॥
कल्कि वराह मुकुंदा। जय केशव करुणा कंदा॥
जय जय विष्णुभक्त भयहारी। वृंदावन बैकुंठ बिहारी॥
जसुदा सुवन देवकीनंदन। जगबंदन प्रभु कंस-निकंदन॥

शंख चक्र कौमोदकि धारी। वंशीधर बक-बदन-विहारी ॥
जय वृंदावन चंदा। जय केशव करुणा कंदा ॥
जय नारायण गोविंदा।

(सब लोग प्रणाम करके बैठाते हैं)

द्युमत्सेन—हमारे धन्य भाग्य कि इस दीनावस्था में आपके दर्शन हुए।

नारद—राजन्, तुम्हारे पास सत्यधन तपोधन धैर्यधन अनेक धन हैं; तुम क्यों दीन हो ? और आज हम तुमको एक अति शुभ संदेश देने को आए हैं। तुम्हारे पुत्र का विवाह संबंध हम अभी स्थिर किए आते हैं। सावित्री के पिता को भी समझा आए हैं कि उनकी कन्या सावित्री अपने उज्वल पातिव्रत धर्म के प्रभाव से सब आपत्तियों को उल्लंघन करके सुखपूर्वक कालयापन करैगी और अपने पवित्र चरित्र से दोनों कुल का मान बढ़ावैगी। तुमसे भी यही कहने आए हैं कि सब संदेह छोड़कर विवाह का संबंध पक्का करो।

द्युमत्सेन—मुझको आपकी आज्ञा कभी उल्लंघनीय नहीं है। किंतु—

नारद—किंतु फिंतु कुछ नहीं। विशेष हम इस समय नहीं कह सकते। इतना मात्र निश्चय जानो कि अंत में सब कल्याण है।

द्युमत्सेन—जो आज्ञा।

नारद—अब हम जाते हैं।

(गान चाल भैरव ताल इकताला वा बाउल भजन
की चाल पर ताल आड़ा)

बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम परम मधुर नाम।
गोविंद गोविंद केशव केशव गोपाल गोपाल माधव माधव ॥

हरि हरि हरि वंशीधर वंशीधर श्याम नारायण वासुदेव ।
नंदनंदन जगबंदन वृंदाबन चारु चंद्र गरे गुंजदाम ॥
हरीचंद जनरंजन सरन सुखद मधुर मूर्त्ति ।
राधापति पूर्ण करन सतत भक्त काम ॥

(नृत्य और गीत)

[जवनिका पतन

पाँचवाँ दृश्य*

वनदेवी और वनदेवता आते हैं

दोनों—(गाते हुए)

हम वनवासी हो रामा ।
जाँहि न पास नगर के कबहीं सबसे रहत उदासी हो रामा ॥
फल भोजन फूलन के गहिना गिरि-कंदरा-निवासी ।
जगत जाल सों बचि हम विहरत केवल प्रेम उपासी हो रामा ॥

वनदेवी—(गाती हुई—पूरबी)

आओ प्यारे प्रान हमारे बैठो सीतल छाँहीं हो ।

वनदेवता—तुमहुँ थकी ग्रीषम दुपहरिया चलौ दिए गलबाँही हो ॥

(दोनों एक कुंज के पास जाते हैं)

वनदेवी—यह रसाल की सीतल छाया तापर मालति छाई हो ।

वनदेवता—वैसे तुमहू प्यारी मेरे कंठ रहौ लपटाई हो ॥

(दोनों कुंज में एक शिला पर बैठते हैं)

वनदेवी—देखहु प्यारे उपवन सोभा कैसी छई लुनाई हो ।

वनदेवता—वासों बढ़ि तुव अंग अंग में प्यारी देत लखाई हो ॥

---

* इस दृश्य से बाबू राधाकृष्णदास की कृति आरंभ होती है ।

वनदेवी—प्राणनाथ ! देखो जब से सती-कुल-तिलक श्री सावित्री देवी के पवित्र चरण इस वन में पड़े हैं तब से इसकी शोभा दूनी हो गई है ।

वनदेवता—इस वन में जिस शोभा के अंकुर को महात्मा सत्य-वान ने लगा रखा था उसे पतिप्राणा सावित्री ने अभिसिंचन करके पूरी उन्नति पर पहुँचाया । जैसे प्यारी ! तुमने हमारे प्रेमांकुर को सींचकर पुष्पान्वित किया ।

वनदेवी—प्राणवल्लभ ! पति भी स्त्री के लिये कैसा देवता है ।

पतिसम जग में नहिं कोउ देव ।
हम अबलन कहँ पति ही को बल प्रानपतिहि कहँ सेव ॥
पतिप्राना नारी सो सुख धन कोउ जग में नहिं लेव ।
पति बिनु नारीजीवन बिरथा ज्यों बारी बिनु नेव ॥

वनदेवता—भगवान तुम्हारी सी पतिप्राणा भार्या सबको दे ।

नारी सम जग में नहिं सुखमूल ।
पतिबरता नारी मिलबे सम सुख नहिं पायो भूल ॥
पतिहि उधारे तीन पुरुष सँग एक सुलच्छन नारि ।
ऐसी प्राणपियारी ऊपर दीजै सब जग वारि ॥

वनदेवी—आहा नाथ ! प्रेम सा अमूल्य रत्न संसार में नहीं है । देखो उसके उदय होते ही तुम्हारे कमलनेत्रों में मुक्ता फूल उठे । (मुँह फेरकर आँसू पोछती है और दोनों गले लगकर प्रेमाश्रु से अभिसिंचित होते हैं)

दोनों—गाओ सब मिलि प्रेम बधाई ।

प्रेमहि सुख सागर अरु प्रेमहि तीन लोक को राई ॥
प्रेम-रज्जु मैं बँध्यो सकल जग याकी फिरत दुहाई ।
प्रेमनाथ ही की स्वर्गहु मैं एकछत्र ठकुराई ॥

प्रेम ही जग का जीवन प्रान ।
प्रेमहि सगरो काम करावत प्रेम बढ़ावत मान ।।
बिना प्रेम के जो नर जग में सो नर पसू समान ।
प्रेमहि सुख संपत्ति रतन को अति अनुपमतर खान ।।
प्रेम मैं निसि दिन बसत मुरारी ।
बिना प्रेम पैए नहिं पीतम लाख संपदा बारी ।।
बिना प्रेम रीझत नहिं प्यारो वृंदा बिपिन बिहारी ।
प्रेमहि जग को तारन कारन प्रेमहि भव-भय-हारी ।।

वनदेवी—(नेपथ्य की ओर देखकर) प्यारे ! देखो वह सती-सिरोमनि सावित्री देवी शोभा को बढ़ाती वन को हँसाती अपने प्राणपति के साथ इसी कुंज में पधारती हैं ।

वनदेवता—और देखो सत्यवान भी प्रेम में मग्न अपनी प्यारी का मुख एकटक देखता और कोमल पुष्पकली की वर्षा करता मदोन्मत्त झूमता कैसा शोभायमान है। आहा ! इन दोनों नव-किशोरों को तापसी वेष कैसा सजा है जैसे साक्षात् शिव पार्वती का जोड़ा हो ।

वनदेवी—प्यारे चलो हम लोग इस कुंज की आड़ में से इन दोनों के पवित्र प्रेम पुरान को सुनकर अपना जीवन चरितार्थ करें ।

(दोनों कुंज की ओट में छिपते हैं)

[पटाक्षेप

छठा दृश्य

(मालती कुंज में शिला पर सावित्री और सत्यवान बैठे हैं)

सावित्री—तुम मेरे बहुत जतन के प्यारे।

तुव दरसन लालसा पियारे कह कह कठिन नेम नहिं धारे ॥
तुमहि प्रानधन जीवन-सर्वस तुम मम नैनन के तारे।
अब तौ नेकहुं नाहिं टरौं पिय दुष्ट काल हू जो पै टारै ॥

सत्यवान—(मुख चुंबन करके)

तुव मुख चंद चकोर ये नैना।
पलक न लगत पलहु बिनु देखे भूलि जात गति पलहु लगै ना ॥
अरबरात मिलिबे को निसि दिन मिलेइ रहत मनु कबहुँ मिलै ना।
भावत रसिक रसिक की बातैं रसिक बिना कोउ समुझि सकै ना ॥

दोनों—प्रीत की रीति ही अति न्यारी।

लोक वेद सब सों कछु उलटी केवल प्रेमिन प्यारी ॥
को जानै समझै को याको बिरली समझनहारी।
हरीचंद अनुभव ही लहिए जामैं गिरवरधारी ॥

सत्यवान—प्यारी ! जब से तुम यहाँ पधारी तब से इस वन की शोभा ही दूसरी हो गई। अहा ! वह सुंदर राजप्रासाद और वे सब सुख के सामान जैसे सुखद थे उनसे कहीं बढ़कर यह वन तुम्हारे कारण सुखप्रद है।

सावित्री—नाथ ! यह सब केवल तुम्हारा ही प्रभाव है। भला मेरे भाग्य कहाँ जो मैं इस शरीर से तुम्हारी सेवा कर सकूँ, पर न जाने किस देवता की कृपा से आज मैं तुम्हारे चरणों की दासी हुई; जिसके लिये लोग जनम जनम पच मरते हैं पर नहीं पाते। (आँखों में आँसू भर आते हैं)

सत्यवान—(गाढ़ आलिंगन करके) मेरी प्राण ! धन्य हमारे भाग्य जो तुम सी नारी हमने पाई। हमारे ऐसा बड़भागी कोई स्वर्ग में भी न होगा। अहा !

हम सम जग मैं नहिं कोउ आन।
जा घर तुम सी नारि विराजत ताके कौन समान॥
रूपरासि गुनरासि छबीली प्रेममयी मम जीवन प्रान।
सकल संपदा वारूँ तुम पर प्यारी चतुर सुजान॥

सावित्री—प्राणनाथ ! क्यों मुझे लजाते हो ? मैं कदापि तुम्हारे योग्य नहीं। न जाने मेरे कौन से पुरबले पुन्य उदय हुए जो आपकी श्रीचरणसेवा मेरे बाँट पड़ी। प्राणवल्लभ ! आपके गुणों का अनुभव जो मेरे चित्त को है उसे क्या यह बिचारी चमड़े की जीभ कभी भी जान सकती है ? (प्रेमाश्रु आँखों में भर आते हैं)

सत्यवान—चलो रहने दो शिष्टाचार की बातें बहुत हो चुकीं। (ऊपर देखकर) ओ हो ! हम लोगों की बातों में इतना दिन चढ़ आया। पिता के अग्निहोत्र का समय हो गया। अभी लकड़ी चुनकर ले जाना है। प्यारी ! तुम यहीं ठहरो मैं अभी काष्ठ लेकर आता हूँ।

सावित्री—नहीं प्राणनाथ ! तुम्हें जाने देने को जी नहीं चाहता। आज न जाने क्यों जी उदास हो रहा है। न जाने कैसा कैसा जी कर रहा है, आप मत जाइए।

सत्यवान—स्त्रियों का स्वभाव अत्यंत कोमल और प्रेममय होता है इसी से तुम्हारा जी ऐसा हो रहा है और कुछ बात नहीं है। अब हम जाते हैं।

सावित्री—(दहिनी आँख का फड़कना दिखाकर) नहीं नहीं, आप मत जाइए, देखिए मेरी दहिनी आँख फड़कती है। आज न जाने क्या होनहार है ! मैं आपको न जाने दूँगी।

सत्यवान—यह स्त्रियों के स्वाभाविक दौर्बल्य का कारण है और कुछ भी नहीं है। होता वही है जो उसकी इच्छा होती है। अब तुम आग्रह मत करो, हमें जाने दो, देर हो रही है, पिता दिक हो रहे होंगे ! (जाता है और सावित्री बेर बेर मना करती है और व्याकुलता नाट्य करती है)

सावित्री—(अत्यंत उदास होकर) आज जी ऐसा क्यों हो रहा है ! आज ऐसा जान पड़ता है कि कोई भारी अनर्थ होगा। (चौंककर) हैं ! क्या आज ही वह भयानक दिन है जो मुनि ने बतलाया था ? हाय ! मैंने बुरा किया जो प्राणनाथ को अकेले जाने दिया। हाय ! अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? क्या मुझ निगोड़ी को मौत नहीं है ? प्राणनाथ तुम कहाँ गए ? एक बात हमारी सुनते जाओ। (कुछ ठहरकर) जान पड़ता है दूर निकल गए। तो चलूँ मैं ही खोजकर मिलूँ। मैंने बुरा किया जो आज उन्हें अकेले जाने दिया। (अत्यंत व्याकुलता के साथ जाती है)

[नेपथ्य में गान]

हाय सुख देख सकत नहिं नेक।
महा कठोर विधाता कीनी सुख भंजन की टेक ॥
द्वै दिन हू सुख सों नहिं बीतत भोगत जग के चैन।
दुख-सागर बोरत अचानचक नेकहु दया करै न ॥
जग के झूठे सुख संपति में धोखेहु भूलहु नाहिं।
अरे बावरे बेग धाइ गहु चरन तरोवर छाँहि ॥

[पटाक्षेप

सातवाँ दृश्य

घोर अरण्य

(एक बड़े वृक्ष के नीचे सत्यवान मूर्छित सा पड़ा है और सावित्री उसका सिर अपनी गोद में रखे अत्यंत व्याकुल बैठी है)

सावित्री—प्राणनाथ—जीवनधन—यह तुम्हें क्या हुआ ? अरे अभी तो अच्छे विच्छे हमसे बिदा होकर आए थे अभी यह क्या दशा हो गई ? हाय ! यह गुलाब की पत्ती सा कोमल सुंदर मुख इतनी ही देर में ऐसा श्याम क्यों हो गया ? अरे कोई दौड़े रे—किसी वैद्य गुणी को बुलाओ—(कुछ ठहरकर) हाय ! यहाँ कौनबैठा है जो मेरी इस विपत्ति में सहायता करेगा—हे दीनानाथ अशरण-शरण ! मुझे सिवाय तेरे और कोई अवलंब इस समय नहीं है—देखो तुम्हारे रहते मैं अबला इस घोर वन में अनाथों की तरह लूटी जाती हूँ—मुझे बचाओ।

सत्यवान—(कुछ सचेत होकर सावित्री की ओर देखकर) प्रिये तुम यहाँ कहाँ ? मैं तो चला, मेरे कारण तुम्हें बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़े, मुझे क्षमा करना और कभी कभी इस अभागे को भी स्मरण करना—(कुछ रुककर) पिता से मेरा बहुत तरह से प्रणाम कहना और कहना कि मुझे इस बात का बड़ा खेद है कि मैं आपकी सेवा बहुत कम करने पाया। मेरे अपराधों को आप क्षमा करें—मातृचरण में भी मेरा प्रणाम पहुँचाना। मुझे बड़ा ही दुःख है कि मैं अंत समय उनके दर्शन न कर सका—तुम अपने सास ससुर की सेवा बड़ी सावधानता से करना, भगवान के चरणों में सदा स्नेह रखना। (घबड़ाहट नाट्य करके) उह ! अब चलें कंठ सूखा जाता है। बड़ी प्यास लगी है। पानी—पानी—

सावित्री—(घबड़ाकर) हाय ! यहाँ पत्र भी नहीं कि पानी लाऊँ। (दौड़कर अंचल में भिगाकर पास के तालाब से पानी लाकर सत्यवान के मुँह में निचोड़ती है)

सत्यवान—(कुछ स्थिर हो जाता है) धन्य देवी धन्य। इस समय तुमने मानो अमृत के बूँद चुआ दिए।

सावित्री—इन सब बातों को रहने दीजिए यह बतलाइए अभी तो आप अच्छे चंगे थे, अभी यहाँ क्या हो गया ?

सत्यवान—(मुमुर्षू अवस्था में) मैं—तुम—से—बिदा होकर लकड़ी चुनने आया। इस झाड़ी में घुसकर उस सूखे वृक्ष की लकड़ा ज्योंही काटी मुझे जान पड़ा मानो मेरा सिर एकदम उड़ा जाता है। ऐसी भारी वेदना मेरे सिर में अकस्मात् उठी कि मैं किसी तरह सम्हल न सका, किसी किसी तरह झाड़ी से निकला, यहाँ तक आते आते तो असुध होकर गिर ही पड़ा। फिर मुझे कुछ ज्ञान नहीं। जब ज्ञान हुआ तो तुम्हें बैठे पाया—उह ! बड़ी ज्वाला, शरीर झुका जाता है—अब चला—(मूर्च्छित हो जाता है)

[नेपथ्य में गान]

यमदूत हैं हम भूत हैं मजबूत हैं रन में।
सोने के घर को खाक हमीं करते हैं छन में ॥

सावित्री—हाय ! क्या यमदूत आ गए ? क्या अब मुझसे प्राणनाथ का वियोग ही होगा ? कभी नहीं—कभी नहीं—यदि हमारा सतीत्व सत्य है तो देखते हैं यमदूतों की क्या सामर्थ्य है जो प्राणनाथ के अंग-को छू भी सकें।

(अंधकार हो जाता है और यमदूत आते हैं)

यमदूतगण—(गाते और नाचते हुए)

यमदूत हैं हम भूत हैं मजबूत हैं रन में।
सोने के घर को खाक हमी करते हैं छन में ॥
हो बादशाह या भिखारी ही कोई हो।
ज्ञानी हो या कि पापी हो जो चाहे जोई हो ॥
इक दिन सभी हमारे ही चंगुल में फँसेंगे।
उस दिन किसी फरेब से हमसे न बचेंगे ॥
हम मुश्क बाँध बाँध के सबको ले जायँगे।
हम कूद कूद खूब ही डंडे लगाएँगे ॥
हम जिसको लेंगे उससे जरा भी न डरेंगे।
जो कुछ कि जी में आवैगा हम वही करेंगे ॥
यमदूत हैं हम भूत हैं—

एक दूत—अरे तुम सब नाचा ही गाया करोगे या कुछ काम करोगे?

सब—(घबड़ाकर) हाँ हाँ चलो भाई सत्यवान के प्राण को अभी प्रभु के पास ले चलना है। (सब आगे बढ़ते हैं)

एक दूत—(डरकर) हैं! यहाँ तो आग सी जल रही है किसकी सामर्थ है जो इसमें कूदेगा? (सब आश्चर्य और भय से उसी ओर देखते हैं)

दूसरा—सच तो; हमने भी असंख्य जीवों के प्राण लिए, यही करते जन्म बीता; पर ऐसा चमत्कार कभी नहीं देखा था। अब महाराज से चलकर क्या कहेंगे?

तीसरा—छिः—तुम सब निरे डरपोक हो, हम लोग रातदिन के नरकाग्नि में रहनेवाले लोग, हमारा इस आग में क्या होना है, देखो हम अभी लाते हैं। (सत्यवान के पास तक जाता है और बड़े जोर से चिल्लाकर "अरे बाप रे मरे" कहकर अचेत हो गिरता है)

सब—(मारे डर के काँपते हुए) भाइयो ! जान बचाना हो तो जल्दी यहाँ से भागो। जो दशा देखते हैं वही वहाँ निवेदन कर देंगे।

एक दूत—जरा ठहरो एक बेर इनसे यह तो कहना चाहिए कि ये हट जायँ। देखें क्या कहती हैं तब वैसा चलकर कहेंगे।

दूसरा—तुम्हें अपनी जान भारी पड़ी हो तो कहो, हम तो न कहैं कहैंगे।

पहला—(साहसपूर्वक दूर से हाथ जोड़कर) देवी ! तुम जरा सा हट जाओ तो हमारे प्रभु की जो आज्ञा है वह करके हम लोग शीघ्र ही प्रभु के पास जायँ। अब व्यर्थ दुःख करने का क्या फल ?

सावित्री—(तीक्ष्ण दृष्टि से देखकर) खबरदार एक पैर भी आगे मत रखना। जाकर अपने प्रभु से कह दो कि प्राण रहते हुए इस शरीर को न छूने दूँगी।

सब—(घबड़ाकर) अरे बाप रे जले रे ! (सब भागते हैं)

[नेपथ्य में गान]

(राग पीलू या जंगला)

जग में पतिव्रत सम नहिं आन।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो जग में यासु समान ॥
अनसूया सीता सावित्री इनके चरित प्रमान।
पति देवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान ॥
धन्य देस कुल जँह निवसत हैं नारी सती सुजान।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य ब्याह असथान ॥
सब समर्थ पतिवर्ता नारी इन सम और न आन।
याही ते स्वर्गहु में इनको करत सबै गुन गान ॥

[यमराज का हाथ में लौह-दंड लिए हुए प्रवेश]

यम—(आप ही आप) आहा ! देखो सतीत्व का कैसा तेज है मानो प्रलयाग्नि बल रही है। मुझे यह निष्ठुर कार्य करते इतने दिन हो गए पर ऐसा अपूर्व दृश्य कभी नहीं देखा। (प्रगट) देवी ! तुम क्यों वृथा हठ करती हो जब दिन पूरे हो जाते हैं तो किसी को सामर्थ्य नहीं है जो जीव को बचावै। तुम जरा हट जाओ हम सत्यवान के प्राण-वायु को ले जायँ।

सावित्री—(हाथ जोड़कर) महाराज ! ऐसी बात मत कहिए। इसके सुनने से हमारा कलेजा फटा जाता है। ये (सत्यवान) हमारे जीवनसर्वस्व हैं इनको छोड़कर हम कहाँ रह सकती हैं ?

यम—सावित्री ! तुम्हारे पवित्र सतीत्व में कुछ संदेह नहीं—पर पूर्व जन्म के पाप का फल भोगना ही पड़ता है। विधाता के लेख को कौन मिटा सकता है ? अब व्यर्थ हठ मत करो, हट जाओ।

सावित्री—धर्मराज ! यदि आपको ऐसा ही आग्रह है तो मुझे भी ले चलिए, इनके (सत्यवान) बिना मैं जी ही कर क्या करूँगी ?

यम—यह हमारी सामर्थ्य से बाहर है; अभी तुम्हारे दिन नहीं पूरे हुए हैं अच्छा हमें अब बहुत देर होती है।

सावित्री—हाय ! आपको मुझ अबला पर तनिक भी दया नहीं आती !

यम—सावित्री ! हम क्या करें हमारी क्षमता के बाहर जो बात है वह हम कैसे कर सकते हैं ? सत्यवान के सिवाय तुम और जो कुछ चाहो हम देने को प्रस्तुत हैं।

सावित्री—महाराज ! मेरे बूढ़े सास ससुर की आँखें जाती रही हैं सो आप कृपा करके दें।

यम— एवमस्तु । अच्छा लो अब हट जाओ। (सावित्री हट जाती है) और यमराज सत्यवान् के प्राणवायु को लेकर जाते हैं और पीछे पीछे सावित्री भी जाती है)।

[नेपथ्य में गान]

तुझ पर काल अचानक टूटैगा।
ग़ाफ़िल मत हो लवा बाज ज्यों हँसी खेल में लूटैगा ॥
कब आवैगा कौन राह से प्रान कौन बिधि छूटैगा।
यह नहिं जानि परैगी बीचहि यह तन दरपन फूटैगा ॥
तब न बचावैगा कोई जब कालदंड सिर कूटैगा।
हरीचंद इक वही बचैगा जो हरिपद रस घूँटैगा ॥

(वह पर्दा हट जाता है दूसरा दृश्य घोर अरण्य अंधकारमय दिखाई पड़ता है। आगे आगे यमराज पीछे पीछे रोते हुए सावित्री का प्रवेश)

यम—(फिरकर सावित्री को देखकर) देवि ! तुम क्यों हमारे साथ आती हो ? जाओ अपने घर। होना था सो तो हो चुका।

सावित्री—सूने घर में जाकर क्या करैं ? जहाँ ये (सत्यवान) वहीं सावित्री।

यम—तुम्हारे सतीत्व से हम अत्यंत संतुष्ट हुए सत्यवान के प्राण को छोड़ और जो इच्छा हो सो माँगो।

सावित्री—महाराज ! जो आप प्रसन्न हैं तो हमारे ससुर का राज्य जो शत्रुओं ने छीन लिया है सो फिर मिलै।

यम—तथास्तु। अच्छा अब तुम फिर जाओ।

(यमराज आगे बढ़ते हैं सावित्री पीछे पीछे चलती है, वह पर्दा उठ जाता है, दूसरा दृश्य भयानक वन महा अंधकार)

यम—(पीछे देखकर) एँ ! तुम अभी भी नहीं गईं ! क्यों व्यर्थ का प्रयास करती हो—जाओ—अब सत्यवान का मिलना असंभव ही समझो।

सावित्री—धर्मराज ! एक बात और भी प्रार्थनीय है।

यम—सत्यवान के सिवाय और जो कुछ चाहो मिल सकता है।

सावित्री—महाराज ! मेरे श्वसुरकुल में वंश चलानेवाला कोई नहीं है इससे मुझे यह वर दीजिए कि सत्यवान से मुझे एक सौ लड़के हों।

यम—तथास्तु।

(यम आगे बढ़ते हैं सावित्री उनका अनुसरण करती है। वह पर्दा उठ जाता है। दूसरा दृश्य स्वर्ग का द्वार, महा उज्ज्वल तीन अप्सराएँ हाथ में माला लिए खड़ी हैं)

अप्सरागण—आओ सावित्री के जीवन।
बहुत दिनन की आसा पूजी अधरसुधा रस पीवन ॥
तुव हित प्रेम मालिका गूथी पहिरावैं निज हाथ।
निर्भय ह्वै नंदन वन विहरैं पलहूँ तजैं न साथ ॥

यम—(पीछे सावित्री को देखकर) क्या तुम अभी तक हमारे साथ ही हो ?

सावित्री—महाराज ! क्या अपने दिए हुए वर को अभी भूल गए ? इन (सत्यवान) का प्राणवायु मुझे दीजिए।

यम—धन्य देवि धन्य ! मैं तुमसे हारा। यद्यपि विधाता के नियम के विरुद्ध है तथापि मैं तुम्हें सत्यवान का जीवन दान करता हूँ (सत्यवान का प्राण दान) आज से मैंने जाना सती नारी को सब कुछ करने की सामर्थ्य है; संसार में सती का अकर्तव्य कोई काम नहीं है। सावित्री ! तुम्हारी यह विमल यशध्वजा अनंत

काल तक संसार में उड़ती रहैगी; तुम्हारा पवित्र गुणगान संसार को पावन करता रहैगा, और तुम्हारा पूजनीय नाम पतिव्रता स्त्रियों का सर्वस्व होगा। आहा! इस अलौकिक सतीत्व के आगे मुझे भी पराजित होना पड़ा। सतीत्व की जय—सावित्री की जय!
(यही शब्द चारों ओर से प्रतिध्वनित होता है और आकाश से पुष्प-वृष्टि होती है। तीनों अप्सरा सावित्री को बीच में करके नाचती और गाती हैं)

गाओ सब मिलि प्रेमबधाई।
पतिप्राना नारी के आगे काहू की न बसाई ।।
पतिहि जिवायो निज सतीत्व बल कालहु दियो हराई।
इनके जस की सुभग पताका तीन लोक फहराई ।।
थाप्यो थिर करि प्रेम पंथ जग निज आदर्श दिखाई।
देव-बधूगन आनंदित ह्वै प्रेम बधाई गाई ।।

(सावित्री वहाँ से चलती है और एक एक करके वही दृश्य दिखलाई पड़ते हैं जो सावित्री को यमराज के साथ दिखलाई पड़े थे, अंत में वन का वह दृश्य दिखलाई पड़ता है जिसमें सत्यवान का मृत शरीर पड़ा है। सावित्री उसमें प्राण संस्थापन करती है और सत्यवान उठता है जैसे कोई सोता हुआ जागे)

सत्यवान—(अँगड़ाई लेकर) उह! कैसा भयानक दुःस्वप्न मैंने देखा है। मानो कोई महाविकराल मूर्ति धारण किए महाकाल मेरे प्राण को लेकर चला है। रास्ते में कैसे कैसे घोर वन और भयानक नरक कुंड मिले हैं जिसके स्मरण होने ही से रोमांच हो जाता है। फिर मानो वह महाकाल स्वर्ग के द्वार पर मुझे ले गया है। वहाँ

मुझे वरण करने के लिये तीन अप्सरा खड़ी हैं। इतने में मानो किसी स्वर्गीय देवी ने मेरा प्राणदान महाकाल से ले लिया है और वह देवी मानो हूबहू तुम्हीं हो। उफ! कलेजा काँपता है। हे जगदीश! रक्षा करो।

सावित्री—नाथ डरिए मत, अब कुछ चिंता नहीं। यह सब सत्य था, स्वप्न न था, पर अब कुछ डर नहीं।

सत्यवान—ऐं! क्या यह सब सच था? क्या मुझे महाकाल के पाश से तुम्हीं छुड़ा लाईं? धन्य देवि धन्य! (घबड़ाहट नाट्य करता है) अह! बेतरह सिर घूमता है। कुछ समझ नहीं पड़ता जागता हूँ या सोया।

(नारद मुनि बीन बजाते गाते आते हैं)

"बोलो कृष्ण कृष्ण राम राम परम मधुर नाम।
गोविंद गोविंद, केशव केशव, गोपाल गोपाल॥
माधव माधव, हरि हरि हरि वंशीधर वंशीधर श्याम।
नारायण वासुदेव नंदनंदन जगवंदन वृंदावनचारुचंद्र गरे गुंजदाम।
हरीचंद जनरंजन सरन सुखद मधुर मूर्ति राधापति पूर्ण करन सतत भक्तकाम॥

(सत्यवान सावित्री प्रणाम करते हैं)

नारद—मंगलमय भगवान् श्रीकृष्णचंद्र सदा तुम लोगों का मंगल करैं। (सावित्री से) सावित्री आज तूने सती-कुल का मुख उज्ज्वल किया, आज तूने सतीत्व की वह ध्वजा फहराई जो अनंत काल तक उड्डीयमान रहैगी। तेरा यश देवांगनागण गा गाकर अपने को धन्य मानेंगी और तेरी पुण्य कथा संसार को पवित्र करैगी।

[लवंगी, मधुकरी और सुरबाला का प्रवेश]

सखीत्रय—वाह सखी वाह ! तुममें इतने गुण भरे हैं यह हम लोगों को तनिक भी विदित न था। धन्य तुम्हारा सतीत्व !

नारद—(सत्यवान से) पुत्र ! तुम्हारा धन्य भाग्य है जो तुमने ऐसी सती स्त्री पाई। (सावित्री का हाथ सत्यवान के हाथ में देते हैं) लो, आज फिर मैं तुम्हें इस अमूल्य रत्न को सौंपता हूँ। इसे यत्न से रखना। (तीनों सखी और अप्सरागण सावित्री सत्यवान को बीच में करके नाचती और गाती हैं। रंगशाला में खूब प्रकाश हो जाता है।)

जय जय सावित्री महरानी।
सती-सिरोमनि रूपरासि करुनामय सब गुनखानी ॥
प्रेममयी निज पति के पद में छाया सी लपटानी।
इनके जस की सुभग पताका तीन लोक फहरानी ॥
अचल प्रताप सतीत्व धरम को थाप्यो जग सुखदानी।
सती-मंडली भूषण है इनकी प्रेमकहानी ॥

(आकाश से पुष्पवृष्टि होती है और यवनिका गिरती है)

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग द्वारा प्रकाशित

बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए० के ग्रंथों की सूची

रामचरितमानस (सटीक)	...	६)
संक्षिप्त रामायण (सचित्र)	...	१)
हिंदी कोविद-रत्नमाला (सचित्र) भाग १ और २		३।।।) सेट
मानस-सूक्तावली	... ...	१)
गद्यकुसुमावली	... ...	१)
राजा लक्ष्मणसिंह की शकुंतला (गद्य संस्करण)		१)
,, ,, का मेघदूत	...	।।=)
भारतेंदु नाटकावली	... ...	३।।)
भारतेंदु हरिश्चंद्र	... ...	।।।)
भाषासारसंग्रह—भाग १—४ भाग	... प्रत्येक	।।=)
भाषा पत्रबोध	... ...	≡)
संक्षिप्त पद्मावत	... ...	१।।।)
हिंदी गद्यसंग्रह	... ...	१)
हिंदी कुसुमावली—भाग १ और २	... प्रत्येक	।।=)
साहित्य सुमन—भाग १ और २	... ,,	।।)
राधाकृष्ण-ग्रंथावली—भाग १	...	...

प्रकाशित होनेवाली पुस्तकें

राधाकृष्ण ग्रंथावली भाग २	... ...	...
गुलेरी-लेखावली	... ...	...
हिंदी भाषा और साहित्य	...	...

बाबू श्यामसुंदरदास बी० ए० द्वारा संपादित तथा काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित नीचे लिखी पुस्तकें भी इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग तथा उसकी शाखाओं से मिल सकती हैं,—